

mv 5
152, L.9

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नवनीत

[हिन्दी डाइजेस्ट]

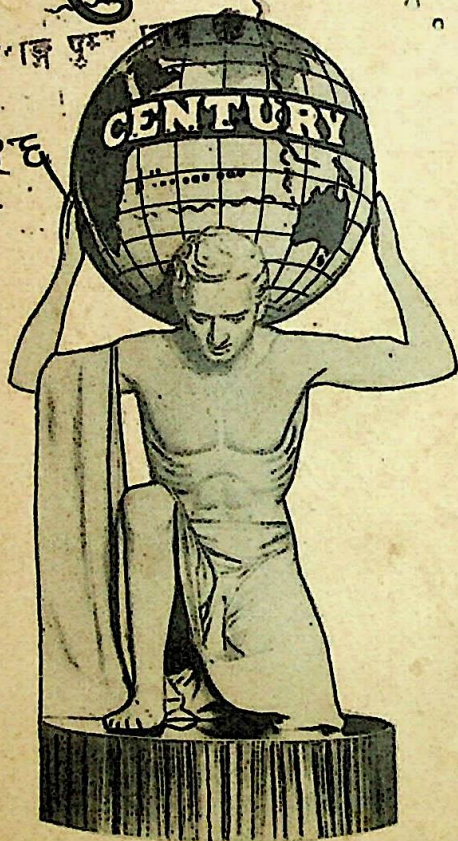
२५३६

सुसुक्ष्म श्वेत वेद वेदाङ्ग पुस्तकालय
अस्सी, वाराणसी ।

जनवरी १९७९ मूल्य : रु. २.२५



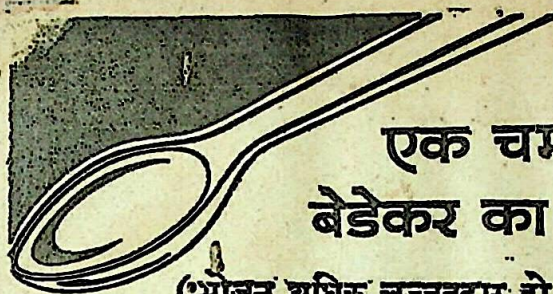
सेन्चुरी के अनुपम वस्त्र



१००% सूती कपड़ों के लिये

दि सेन्चुरी स्पिनिंग एण्ड मैनुफेक्चरिंग कंपनी लिमिटेड, लॉन्डन

मुमुक्षु भवन वेद वेदान्त पुस्तकालय
अस्सी, वाराणसी ।



एक चम्मचभर बेडेकर का अचार...

(भोजन अधिक लज्जतदार हो जाता है)

आपका भोजन शाकाहारी हो अथवा मांसाहारी
बेडेकर का अचार आपके भोजन को
अत्यधिक लज्जतदार बनाता है।

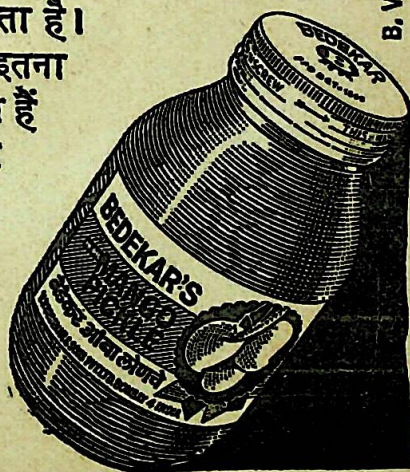
ल-भात के साथ आम का अचार, दही-भात के साथ
का अचार, मांसाहारी भोजन के साथ मिश्रित
मिर्ची का अचार और बच्चों व बड़ों के लिए
बू के रस का अचार (इस शीशी को बच्चों से
दूर रखिये नहीं तो वे दिन भर अचारही खाते)

1) बेडेकर का अचार आपके भोजन को

दृष्ट व रुचिकर बनाता है।

केवल बेडेकर ही आपको इतना
जायकेदार अचार दे सकते हैं
क्योंकि बेडेकर का अचार
बनाने का वर्षों-वर्षों का
अनुभव है।

B. Vasant/NPB/4-77



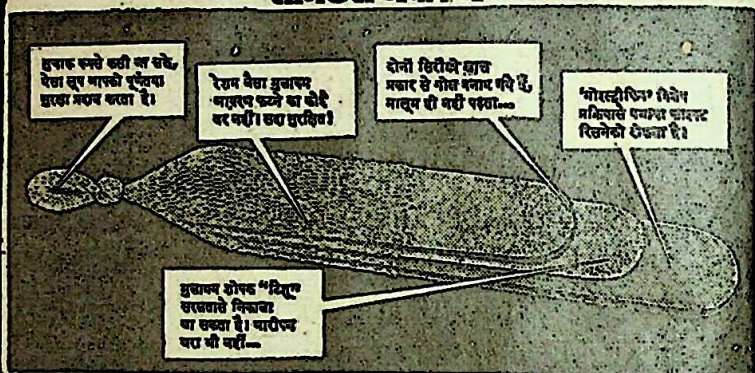
बेडेकर

वर्ष ४

आप जैसा चाहती हैं वैसा ही सानुकूल

‘क्लिन’

सेनिटरी नेपकिन



APR

- छिरी रनलपमके मिनेम दिनी मे
मपना रेवाना मीमन सरलवासे बापने
कले के छिरी मारीम कातसे मिनिम
सापनीकी चीन करती बा रही हैं।
किन्तु, बाव के निहत वन हवी
सापनीका एकमात्र रवान हैं।
- सवेन सवे मकिवासे मिनेम का ही
रलेमाव कर रही हैं।



पुष्प के बाव का
विनिमय वपसिवा।

क्लिम
मोल्दीफिन
(ममपान) का. वि.
मोली २५५५२२

‘क्लिम’ सुखदायी और किफायती

रु. 6650 में लंदन बस पर सैर का मज़ा.

रु. 5850 में मज़ेदार इटालियन खाने का लुत्फ़.

रु. 6590 में स्विट्ज़रलैंड के शीतल प्राकृतिक सौंदर्य का आनन्द.

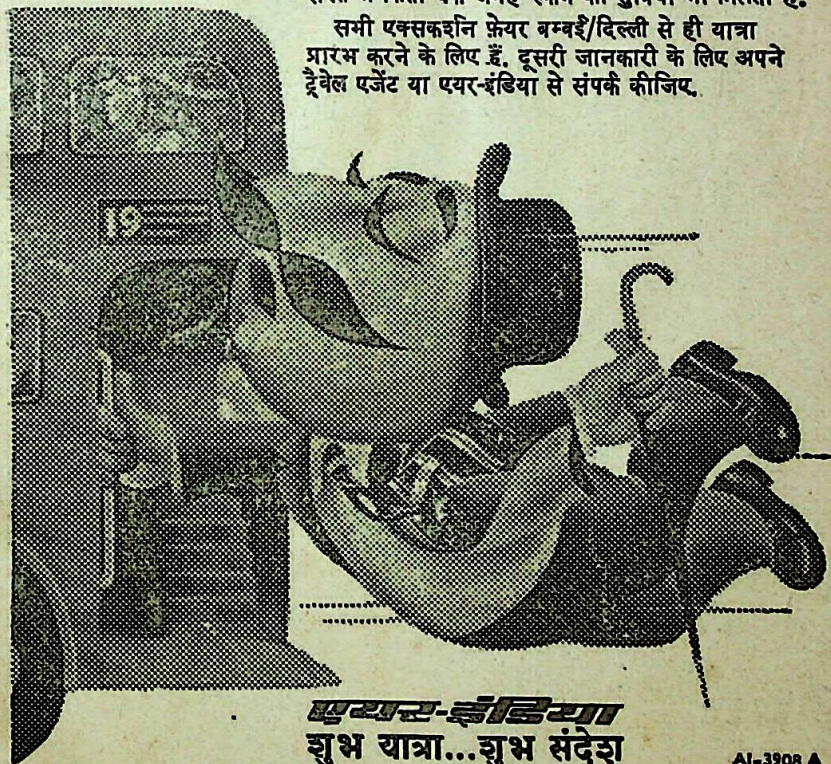
रु. 6600 में मोनालिसा की मोहक मुस्कान का रहस्य.

रोम, जिनेवा, पेरिस, लंदन. साथही हमारे वापसी
ट्रिपवाले एक्सकर्शन फ़ेयर पर और भी कई शहर.

मिलान—रु. 6099. बुसेल्स या प्राग या वासी—रु. 6600.

यूरोप के लिए सभी एक्सकर्शन फ़ेयर 14 से 90
दिनों तक के लिए मान्य हैं, तथा रास्ते में किसी एक
जगह रुकने की सुविधा भी है. भारत—यू. के. फ़ेयर
21 से 90 दिनों के लिए मान्य हैं और रु. 7350 देने पर
रास्ते में किसी एक जगह रुकने की सुविधा भी मिलती है.

सभी एक्सकर्शन फ़ेयर बम्बई/दिल्ली से ही यात्रा
प्रारंभ करने के लिए हैं. दूसरी जानकारी के लिए अपने
ट्रैवेल एजेंट या एयर-इंडिया से संपर्क कीजिए.



एयर-इंडिया
शुभ यात्रा... शुभ संदेश

AJ-3908 A



उच्च स्तर के प्रति अनन्य निष्ठा
के लिए सुविख्यात

जेनिथ स्टील पाइप्स एंड इंडस्ट्रीज लि.

१९५, चर्चगेट रिवलेमेशन
बंबई-४०० ०२०

फोन। २९४४४५, टेलीक्स: ०११-२४५८
ग्राम। ZENPIPES

अत्युत्तम स्टील पाइपों, औद्योगिक
छुरियों और विशेष फोलाद के
निर्माता ।

दि इंडियन टूल
मैन्यूफैक्चर्स लि.

१०१, सायन रोड, सायन,
बंबई-४०० ०२२

सुनिश्चित होकर चुनाव
कीजिये

‘डेंगर’ ट्विस्ट ड्रिल्स रीमर्स,
कटर्स, टैप्स, टूलबिट्स
और माइक्रोमीटर्स
डेंगोलाय कार्बाइड
टूल्स और टिप्स
डेंगर-साके गियरहाब्स
और गियरशॉपिंग कटर्स



प्रिसिशन का प्रतीक



स्वास्थ्य तथा दीर्घ जीवन के लिये 3000 वर्ष पुराना नुसखा

डाबर च्यवनप्राश पूरे परिवार के लिये 8 सूत्री आयुर्वेदिक टॉनिक



विटामिन सी
से भरपूर.
स्ट्राप्टो
सुडो-मीठा मिश्रण
अपने प्राकृतिक
रूप में

१. शरीर के तंतुओं को जवान रखता है
डाबर च्यवनप्राश से शरीर के तंतुओं का क्षय
धीमा पड़ जाता है।

२. शरीर की प्रतिरक्षा शक्ति को
बढ़ाता है

डाबर च्यवनप्राश शरीर की संपूर्ण प्रतिरोधक
शक्ति का विकास करता है तथा सर्दी और
जुकाम में भी लाभदायक है।

३. स्फूर्ति प्रदान करता है

डाबर च्यवनप्राश बच्चों में स्फूर्ति बनाए रखता
है और वृद्धावस्था में कार्यशक्ति विकसित
करता है।

४. इसमें संचय और वृद्धि करने के गुण हैं
डाबर च्यवनप्राश शरीर के विकास में मदद
देता है।

देवताओं का नुसखा

च्यवनप्राश का नुसखा 3000 वर्षों से भी पहले
का है, जैसा कि कहा जाता है कि देवताओं के
चिकित्सकों ने महर्षि च्यवन को उनका यौवन
फिर से प्रदान करने के लिए तैयार किया था।
यद्यपि च्यवनप्राश सम्भवतः विश्व में प्राचीन
स्वास्थ्य-प्रद टॉनिक है, तथापि डाबर में इसके
बनाने का तरीका पूर्ण प्रागुनिक एवं वैज्ञानिक है।

सुप्त चम्मच एक किलो डिब्बे के साथ

एक शक्तिदायक आयुर्वेदिक टॉनिक

डाबर च्यवनप्राश

सभी दवा विक्रेताओं के यहाँ मिलता है।

लिक चैन

जिसकी एक-एक कड़ी मजबूत, परखी हुई और
पूर्णतः विश्वसनीय है।



सभी उद्योगों व वाहनों में उपयुक्त



एलोय स्टील चैन एक विशेषता

इण्डियन लिक चैन मैनु. लि., भाण्डुप, बंबई-४०००७४

अपनी कन्या के विवाह में-और
प्रत्येक शुभ अवसर पर भेंट दीजिए

परमात्मा की अमरवाणी

चारों वेदों का हिन्दी भाष्य

लागत मूल्य रु० २५० किन्तु घर-घर में
पहुँचाने के लिए दो सुनहरी जिल्दों में
७ फरवरी १९७६ तक केवल रु० १२५
वजन ८ किलो
मन्त्र-अर्थ-स्वर-देवता-छन्द-सहित।

२५ के साथ आदेश भेजें, स्टेशन लिखें।

पं. राकेशगुनी अध्यक्ष दयानन्द संस्थान (धार्मिक न्यास)
१५६७, हरदयानसिंह मार्ग, करौलबाग, नई दिल्ली-५



ADMISSION NOTICE

**Success is
just a step away!**

The better-qualified person has better chances of success in life. So, go ahead, choose your course. Qualify for better prospects. More income. Higher standard of living.

**APPLICATIONS ARE INVITED FOR ADMISSION
TO THE FOLLOWING CORRESPONDENCE COURSES**
(For Boys & Girls—Employed & Unemployed)

ENGINEERING COURSES

A.M.I.E. (I), A.M.I.E.T.E. (I), A.M. Ae. S.I. (I),
A.M.I.I. Chem. E. (I), A.M.I.I.M.E. (I),
I.E.R.E. (U.K.), A.M.E. etc.

(All the above courses are recognised by the Government of India and all Indian Union States as equivalent to B.E. or B. Tech. Degree) in Civil, Electrical, Mechanical, Chemical, Metallurgical, Mining, Electronics & Communication Engineering, Metal Engineering, Aeronautical Engineering, Electronics & Radio Engineering, Marine Engineering, Production Engineering, Naval Architect, Surveyor of the Institute of Surveyor (India), Automobile, L.C.E.L.M.E./L.E.E. & L.C.R.E, Radio & TV, Agriculture Engineering, Refrigeration & Airconditioning Engineering Draughtsmanship : (Civil & Mechanical Engineering and many other Courses).

COMMERCE/ MANAGEMENT COURSES

1. I.C.W.A. Cost & Works Accountant
2. C.A. : Chartered Accountancy
3. Graduateship : A.M.I.B.M. (India) Part A & B in Business-Management
4. Government of India : Company Secretaries Examinations
5. Diploma : A.I.B.M. (India) in Business Management
6. Chartered Secretaries (London)
7. City & Guilds of London Institute—Diploma Course in Industrial Organisation, Management Planning—Estimating & Costing Engineering.

ADMISSION QUALIFICATION

S. S. C. or H. S. C. or P. U. C. or Inter or B. Sc. or ANY GRADUATE
with any subjects.

For detailed Engineering Prospectus & Admission Form, send Rs. 7/- For Commercial/Management Prospectus & Admission Form send Rs. 6/- The Money Order should be sent to "Principal" mentioning the publication in which you saw this advertisement.

INTERNATIONAL COLLEGE OF CORRESPONDENCE

KOTHI NO. 17, SOUTH PATEL NAGAR, NEW DELHI - 110008

ध्रांगध्रा केमिकल वर्क्स लिमिटेड

'निर्मल,' तीसरी मंजिल, २४१ बैकबे रिक्लेमेशन

नरीमन पाईंट, बंबई ४०० ०२१

टार : SODACHEM

फोन : २३०७४३-२३४२७८

२३४३३०-२३४४२७

भारत में हैवी केमिकल्स के क्षेत्र में अग्रणी

अब अंतरराष्ट्रीय बाजार में भी प्रस्तुत :

* अपग्रेडेड इलमनाइट *

(सिथेटिक रूटाइल ९०-९२ TiO_2)

हमारे बनाये हुए रसायन :

* फास्टिक सोडा

* सोडा एश

* सोडियम बाइकार्बोनेट

* अमोनियम बाइकार्बोनेट

* कैल्शियम क्लोराइड

* ट्राइक्लोरो एथिलीन

* लिक्विड क्लोरीन

* हाइड्रोक्लोरिक एसिड

* साल्ट *

दि हिंदुस्तान शुगर मिल्स लिमिटेड

गोला गोकर्णनाथ, जिला-खीरी, (उत्तर प्रदेश)

शुष्कश्वेत दानेदार शक्कर, रेफिंफाइड और डिनेचर्ड स्पिरिट,

शुद्ध अल्कोहल और औद्योगिक उपयोग में आनेवाली अल्कोहल

के उत्पादक

रजिस्टर्ड कार्यालय :

बजाज भवन, नरीमन पाईंट,

बंबई-४०००२१

टेलिफोन : २३३६२६

टेलेक्स : ०११-२५६३

टेलिग्राम : श्री (SHREE)

उचित व्यापार संघटन के सदस्य

**क्या आप हररोज़ का कामकाज
फिरसे करने को उत्सुक हैं?**

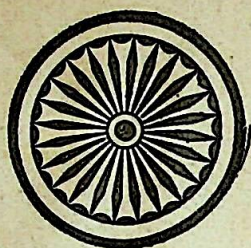
**ग्लैक्सोज़-डी® आपको तुरन्त शक्ति
देकर थकान मिटाता है।**

ग्लैक्सोज़-डी से आप घर के काम-काज के लिए
तेज़ार हो जाती हैं। क्योंकि ग्लैक्सोज़-डी
आप को वह भरपूर शक्ति देता है, जो आप को
थकान के बाद फिर से चुस्ती-फुर्ती के लिए चाहिए।
डॉक्टरों की सिफारिश पाने वाला ग्लैक्सोज़-डी
बहुत उच्च कोटि का ग्लूकोज़ है जो विटामिन-डी,
कैल्शियम और फॉस्फोरस से युक्त है।
ग्लैक्सोज़-डी आप की थकान मिटाता है और
आप को ऐसी शक्ति देता है कि आप मज़े से
घर का काम-काज करती रहती हैं।

**ग्लैक्सोज़-डी®
सारे परिवार के लिए
तुरन्त शक्ति का साथन**



dCA/GU/54/HN



२६ जनवरी

तीन वरदानों वाली - यह पावन वर्षगांठ
आज के दिन, ४९ वर्ष पहले, हमने पूर्ण
स्वराज्य प्राप्त करने का संकल्प लिया।
आज के ही दिन, १९५० में, हमने भारत को
एक गणराज्य घोषित किया और अपने
लिए एक संविधान स्वीकार किया जिसमें
न्याय, स्वतंत्रता, समता और बन्धुता
के आदर्शों को शामिल किया गया था।

दो वर्ष पहले, लगभग इसी समय, हमने संविधान
द्वारा गारंटी किये गये लोकतंत्र के रास्ते पर
अपनी यात्रा फिर से प्रारम्भ की।

इस पावन वर्षगांठ के शुभ अवसर पर -
आइये ! हम सब अपनी स्वतंत्रता फिर से कायम करने
के लिए भारत की जनता को धन्यवाद दें।

आइये ! हम उन लोगों के सपनों को साकार करने का
प्रयत्न करें, जिन्होंने स्वतंत्रता और समानता
के लिए अपने प्राणों की आहुति दी।

आइये ! हम सब पुनः संकल्प करें कि सामाजिक, आर्थिक
और राजनैतिक न्याय प्राप्त करने के
लिए तेजी से प्रयत्न करेंगे।

DAVP 78/394

मुझे ग्लायकोडिन पर भरोसा है

ये मुन्दी की खांसी से जल्द राहत दिलाएगा



ग्लायकोडिन ने खांसी की दूसरी दवाओं के मुकाबले, भारत भर में ज्यादा से ज्यादा लोगों की खांसी दूर की है. इसीलिये ये सबसे आगे है.



जहां जहां खांसी का प्रभाव हुआ हो, वहां-वहां यह तेजी से असर करता है... खांसी से जल्द और शतिया छुटकारा दिलाता है.

- गले की खराब मिटाता है.
 - छाती में जमे बलगम को निकालता है और सर्दी-खांसी से राहत दिलाता है.
 - छाती की जकड़न दूर करता है जिससे सांस लेने में आसानी होती है...
- आप चैन की नींद सो सकते हैं.

खांसी कैसी भी हो— उस पर पूरा काबू पाने के लिए आप मधुर स्वादवाले ग्लायकोडिन पर भरोसा कर सकते हैं.



ग्लायकोडिन— भारत में खांसी को पचाड़ने वाला जैमियन...
निबसनीय दवाएं बनाने वाली कंपनी एमेरिक की ओर से.

ग्वालियर के

क्षितिज पर नया सिताय...

MAPP-GRASIM-6 Hin



ग्रासीलीन से
बने कपड़े शीघ्र ही
सभी प्रमुख स्पोर्ट्स पर
उपलब्ध



GRASIM

दि ग्वालियर रेयन सिल्क मेन्युफैक्चरिंग
(बीवींग) कम्पनी लिमिटेड
स्टेपल फ्राइवर डिवीजन
विरलाग्राम, नागदा (एम.पी.)

Grasilene

सूटिंग्स/शर्टिंग्स
तथा अन्य कपड़े

वैज्ञानिक मिश्रित धागे ग्रासीलीन के बने।

Grasilene

कृत्रिम सामान्य विस्कोज
तथा अन्य प्राकृतिक रेशों से बना एक
आश्चर्यजनक उच्च कार्यकारिता वाला
मिश्रित धागा।



संस्थापक
स्व. श्रीगोपाल नेवटिया
प्रबंध-संचालक
हरिप्रसाद नेवटिया

संपादक
नारायण दत्त
सहसंपादक
सुरेश सिन्हा
उपसंपादक
गिरिजाशंकर त्रिवेदी

व्यापार-व्यवस्थापक महेंद्र महेता

वर्ष २८ : अंक १

इस अंक में

जनवरी १९७९

पत्र-वृष्टि	संपादक की डाक से	१५
शुक्र पर बनायेंगे घर	राजेश्वर गंगवार	२०
त्रिनिदाद में रामलीला की परंपरा	डा. जगदीशचंद्र झा	२७
अपेक्षा-गीत	उमाकांत मालवीय	३३
पुष्पगंध	कु. नवनीत	३४
एक स्वगत (कविता)	रमेशचंद्र शाह	३६
एक महान पत्रकार	बनारसीदास चतुर्वेदी	३७
विज्ञान-बिंदु	केजिता	४०
कफन-ईसा मसीह का ?	हरमन चौहान	४४
एक शादी ब्राउन्सविल में	आइज़ैक बाशेविस सिंगर	५२
सूर में लोकसंग्रह-तत्त्व	डा. विजयेन्द्र स्नातक	६१
आज (कविता)	फकीर चंद तुली	६७
आदमी (कविता)	शिल्पिन् थानकी	६८
संभालिये राष्ट्र की संपदा को	डा. एस. राधाकृष्णन्	६९
कभी न खेलें ताश अजनबी के साथ	दिनेश कुमार	७२
दरख्त (हिंदी कहानी)	राजेंद्र कुमार शर्मा	७६
बीदरी-नफासत-भरी	वी. एस. रघुनाथ राव	८६

रावण-बाह : संस्कृति या विकृति	प्रेमाचार्य शास्त्री	९०
शैतान को चकमा (जर्मन लोककथा)	सागरिका	९४
स्मृति के अंकुर	शिवजी, कुलश्रेष्ठ, उर्मि कृष्ण	९७
नया उपनाम	सत्य स्वरूप दत्त	९९
बिजूबा (तुर्कों व्यंग्य)	अजीज ने सिन	१००
भारतीय भाषा का पहला सचित्र मासिक	वेंकटलाल ओझा	१०४
गजब	हंसराज रहवर	११२
रंग भर सकते हैं जीवन में रंग	ज्ञानचंद्र	११३
हृत्यारे 'जीवित शव' (पुस्तक-सार)	वाल्टर बोवार्ट	११७
पैसे आपके कि आप पैसों के	१४६
ग्रंथलोक	डा. मंत्री, प्रशांत, चौहान	१४९
शब्दातीत (कार्टून)	१५५
दो क्षण हूँ न ल	१५६

चित्र : हर्मन हेस, जगदीश गुप्त, ओके, शेणै, सत्यकाम राहुल, डा. भटनागर, सतीश चव्हाण, शरद कांबली, पंकज गोस्वामी, दत्त प्रसन्न राणे, चोणकर।

श्रीगोपाल नेवटिया लेख-प्रतियोगिता (१९७८) का परिणाम
फरवरी १९७९ के नवनीत में प्रकाशित होगा। —संचालक

एक अपील

हिंदी के निष्ठावान पत्रकार श्री गौरीशंकर गुप्त, वाराणसी लंबे अरसे से अस्वस्थ हैं और अर्थाभाव के कारण समुचित चिकित्सा नहीं करा पा रहे हैं। श्रद्धेय श्री बनारसीदास चतुर्वेदी ने उनकी सहायता के लिए यह अपील निकाली है :

श्री गौरीशंकर गुप्त को मैं बहुत वर्षों से भली भांति जानता हूँ और उनकी असाधारण परिश्रमशीलता तथा लगन से भी पूर्णतया परिचित हूँ।

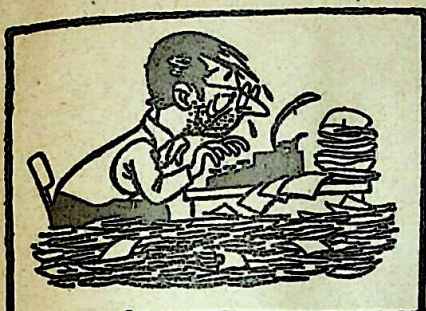
भाई गौरीशंकरजी विशुद्ध साहित्यिक हैं और संकटग्रस्त होते हुए भी वे निरंतर सात्त्विक साहित्य की सृष्टि करते रहे हैं। अब आर्थिक कठिनाइयाँ उनके मार्ग में विशेष बाधक होने लगी हैं। वे सरकार तथा समाज से प्रचुर आर्थिक सहायता पाने के पूर्ण अधिकारी हैं।

—बनारसीदास चतुर्वेदी

सहायतार्थ रकम निम्नलिखित पते पर भेजी जा सकती है :

श्री गौरीशंकर गुप्त, ए २/५, कामेश्वर महादेव की गली, गायघाट, वाराणसी-१

श्री हरिप्रसाद नेवटिया द्वारा नवनीत प्रकाशन लिमिटेड, ३४१, ताडदेव, बंबई-३४ के लिए प्रकाशित तथा श्री वेंकटेश्वर प्रेस, ३६/४८ खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग, बंबई-४ में मुद्रित।



पत्र-पृष्टि

विशेषांक देखकर मुग्ध हो गया ! कवि-
ताएं कई हैं, पर एक से एक चित्ता-
कर्षक, सरल और सामान्य पाठक को सर-
सता, आह्लाद और प्रफुल्लता प्रदान करने
वाली। 'किमाश्चर्यम् ?' एक सुखद स्तंभ
है, जिसमें विभिन्न विचारकों से मन को
अनेक प्रकार के विचार-व्यंजनों का स्वाद
मिला। विदेशी लेखकों की रचनाएं, अनु-
वाद, सहृदय पाठकों का सहज स्पर्श करती
हैं और पाठक नवल लोक में विचरित होते
हैं। संस्मरणों में रचनाकारों का व्यक्तित्व
जितना उभारा गया, उतनी चर्चित व्यक्ति
को नगण्यता-सी मिलती लगी। विज्ञान,
प्रविधि, खगोलशास्त्र, इतिहास संबंधी श्वेष-
णात्मक सामग्री का अभाव अखरा। मुखपृष्ठ
का चित्र मध्ययुगीन जीवन-धारा को प्रति-
बिंबित करता है।

—चक्रधर नलिन, रायबरेली-२२९००१

दीपावली-विशेषांक में विज्ञान संबंधी
परिचर्चा में प्रो. बी. आर. शेषाचार के
विचार जितने स्वस्थ, संतुलित तथा सम-
ग्रता लिये हुए हैं, डा. एच. नरसिम्हैया के
विचार उतने ही असंतुलित और एकांगी
हैं। लगता है, डा. नरसिम्हैया यह भूल गये
कि केवल विज्ञान के द्वारा जीवन के असंख्य
रहस्य नहीं जाने जा सकते।

'किमाश्चर्यम्' के उत्तर में डा. भगवत-
शरण उपाध्याय ने श्रीराम के जीवन की
अंगणित महनीय घटनाओं की उपेक्षा करके
केवल दो घटनाओं के आधार पर (उनकी
भी अपने अभिप्राय के अनुसार व्याख्या
करके) न्यायाधीश की तरह जो निर्णय
सुना दिया, वह अपने-आपमें एक महान
आश्चर्य है।

—डा. सुवालाल उपाध्याय शुकरतन,
ग्वालियर, म. प्र.

०००

श्री ना. ग. गोरे का लेख 'क्या वे अपनी
संस्कृति बचा सकेंगे ?' (दीपावली-विशे-
षांक) ब्रिटेन के भारतीयों के संदर्भ में ही
नहीं, भारत में रहने वाले भारतीयों के
संदर्भ में भी उतनी ही तीव्रता से लागू होता
है। जिस प्रकार के उदाहरण श्री गोरे ने
विदेश से दिये हैं, वैसे कोटि-कोटि उदाहरण
भारतभूमि में ही उपलब्ध हैं।

एक बार आकाशवाणी में मैंने वाल्मीकि
जयंती के अवसर पर 'मा निषाद' शीर्षक
रूपक प्रसारित करने का प्रस्ताव रख दिया
था। उस रूपक के संबंध में पत्र-पत्रिकाओं

बंदे की दरें

(भारत में) एक वर्ष : २४ रु., दो वर्ष ४६ रु., तीन वर्ष : ६६ रु.। भारत में नवनीत का आजीवन सदस्यता-शुल्क ४०० रुपये है। (विदेशों में) हवाई डाक से एक वर्ष का १२० रु., दो वर्ष का २१० रु., तीन वर्ष का ३०० रु., समुद्री डाक से एक वर्ष का ६० रु., दो वर्ष का १०५ रु. तथा तीन वर्ष का १५० रु.।

मैं भोजने के लिए टिप्पणी तैयार कर देने को मुझे कहा गया। परंतु रूपक का आलेख अभी प्राप्त नहीं हुआ था, अतः मैं टिप्पणी अभी तैयार नहीं कर पाया था। संबद्ध अधिकारी ने समझा कि मैं आलस्य-वश काम को टाल रहा हूं। अंततः वे बोले—‘कृपया आप मुझे यह बता दें कि “मा निषाद” कौन थी, टिप्पणी मैं स्वयं लिख लूंगा।’

एक राजपत्रित कर्मचारी उच्च पद के लिए लोक सेवा आयोग के समक्ष साक्षात्कार के लिए बुलाये गये थे। तैयारी के लिए वे मेरे पास आये। मैंने उनसे प्रश्न किया कि ‘रामचरितमानस’ नाम का क्या महत्त्व है? क्या ‘रामचरित’ पर्याप्त नहीं था? ‘मानस’ शब्द क्यों जोड़ दिया गया? उन्होंने सहज भाव से उत्तर दिया—‘मानस यानी मनुष्य। राम जैसे मानस की कहानी इस पुस्तक में है, इसीलिए “रामचरितमानस” नाम रखा गया।’ इसी प्रकार के उत्तर देकर वे उच्च पद के लिए चुन लिये गये।

भारत सरकार का सूचना-प्रसारण मंत्रा-
नवनीत

लय और केंद्र व राज्यों के शिक्षा मंत्रालय इसी तरह के लोगों से भरे पड़े हैं, जबकि यही वे तंत्र हैं जिनसे देश की संस्कृति की रक्षा की आशा की जानी चाहिये। स्कूल-कालेजों और विश्वविद्यालयों में आजकल जो कुछ देखने में आ रहा है, वह किस सांस्कृतिक परंपरा का प्रतीक है? दूरदर्शन पर किस प्रकार के कार्यक्रमों की प्रधानता रहती है? महंगे होटलों में पाश्चात्य संगीत और नृत्य पेश करने वाले पेशेवर लोगों को युवकों के कार्यक्रमों में युवा रुचि के नाम पर दिखाया जा रहा है और ऊपर वाले महाप्रभु हैं कि कुछ नहीं कह पा रहे। मुझे तो यह सब देखकर उर्दू के श्रेष्ठ और लोकप्रिय कवि फ़ानी का यह शेर याद आता है :
फ़ानी दकन में जाके उक़दा खुला कि हम
हिंदोस्तां में रहते हैं हिंदोस्तां से दूर।

—विश्वप्रकाश दीक्षित ‘बटुक’,
नयी दिल्ली-११००५८

०००

दीवाली-विशेषांक बहुत अच्छा लगा। मेरे लिए व्यक्तिगत रूप से कविताओं की देन अधिक महत्त्वपूर्ण रही। सभी कविताओं ने तो नहीं परंतु निरंकारदेव सेवक, बशीर अहमद मयूख एवं अंचलजी की कविताओं ने विशेष रूप से प्रभावित किया। शेष कविताएं मुझे स्तरीय नहीं लगीं। अंचलजी की प्रबंध कृति के प्रकाशित अंश के संबंध में भी कुछ कहना चाहता हूं। उनके काव्य की उत्कृष्टता के प्रति यद्यपि मुझे पूरी आस्था है, परंतु इस प्रबंधांश में प्रयुक्त छंद में

लिया गया है। इस दिशा में नेपाल तथा भारत के प्रयत्न सराहनीय हैं।

—सूरज प्रसाद श्रेष्ठ

संस्कार : रायल शुक्ला फांटा बन्धु जंतु
आरक्ष, सिंहपुर, कंचनपुर, नेपाल

०००

नवनीत-परिवार के बूढ़े हितैषी के नाते पिछले दो अंकों की दो भूलों की ओर आपका ध्यान खींचना चाहता हूँ :

१. अक्तूबर अंक में पृष्ठ ६२ पर एकांकी नाटक 'चक्र' में छपा है—'दांत निपोरकर 'गाय ! गाय !' कहकर जोर से हंसने वाले कौरवों के'। 'गाय ! गाय !' से वहाँ महाभारत के जिन श्लोकों (सभापर्व ७७.२०-२३ और २८-२९; कर्ण. ८३. १६-२१ और २५-२८ और ४१-४४; शल्य. ५९.३-८) की ओर इंगित किया गया है, उनमें कौरव 'गौः ! गौः !' कहकर हंसे थे। 'गौ' शब्द संस्कृत में पुल्लिङ्ग और स्त्रीलिङ्ग दोनों में होता है। कौरवों ने भीम को 'गौः' पुल्लिङ्ग में कहा था, स्त्रीलिङ्ग में नहीं। उनका आशय भीम को बैल कहना था। 'गाय' कहा होता तो भीम बुरा क्यों मानता ! उसे 'गौर्वाहीकः' भी कहा गया था, जिसका पंजाबी में अनुवाद होगा—'पंजाबी ढग्गा'।

२. दीपावली अंक में पृष्ठ १३८ पर 'विरादरी वाले' नामक कथा छपी है। यह बात कम से कम इतनी पुरानी तो अवश्य है, जितनी संस्कृत की यह उक्ति—'ब्राह्मणो ब्राह्मणं दृष्ट्वा कुक्कुर इव धुर्धुरायते।' और नवनीत

जहाँ तक मुझे याद पड़ता है, प्रेमचंदजी ने आधी शताब्दी पहले ऐसा ही कुछ लिखा था। इतनी पुरानी बात नवनीत में नहीं छपनी चाहिये। —इंद्रचंद्र नारंग, इलाहाबाद

* ये बातें श्री नारंगजी ने एक निजी पत्र में लिखी थीं और ये हमें पाठकों के लिए उपयोगी प्रतीत हुईं।

—संपादक

०००

आपके कृपापत्र से यह पता चला कि एक पाठक ने आपको सूचित किया है कि मेरी रचना 'सर्द चांदनी का दर्द' नवनीत से पूर्व अरुण (मुरादाबाद) में प्रकाशित हो चुकी थी।

मैंने दो वर्ष पूर्व १९७६ में अपनी कहानी 'टूटते संदर्भ' प्रकाशनार्थ अरुण में भेजी थी। काफी समय तक वहाँ से कोई उत्तर नहीं आया। मैंने दो स्मृतिपत्र भी संपादक के नाम डाले कि आप अगर मेरी रचना को प्रकाशित नहीं कर रहे हों तो कृपया रचना वापस भेज दें, ताकि मैं अन्यत्र उसका उपयोग कर सकूँ। उनका भी कोई उत्तर न पाकर मैंने उसे कुछ बदलकर 'सर्द चांदनी का दर्द' के नाम से 'श्रीगोपाल नेवटिया कहानी प्रतियोगिता १९७७' में भेजा। मुझे तो आपके पत्र से ही इसका पता चला कि अरुण ने भी उस रचना को छपा है और ढूँढ़ने पर जुलाई १९७८ का अरुण मिला और उसमें वह कहानी प्रकाशित मिली। मुझे अरुण से कहानी के प्रकाशन की कोई सूचना नहीं मिली।

इस अवस्था में मेरा दोष क्या और

कितना है, इसका निर्णय आप ही करें।

—मशीयत अली, कोटा-३२४००१

०००

हिंदी के दो-तीन प्रयोगों के संबंध में मन में उठी शंका प्रस्तुत कर रहा हूँ :

१. 'अधिकांश' शब्द का प्रयोग प्रायः किया जाता है—'अधिकांश लोग', 'अधिकांश देश' आदि । मेरा खयाल है कि इन स्थलों पर 'अधिकतर' होना चाहिये । वरना यहां 'अंश' (अधिक + अंश = अधिकांश) का कोई अर्थ नहीं निकलता ।

२. 'हर आने-जाने वालों से' जैसे प्रयोग आजकल बहुत मिलते हैं । 'हर' के साथ तो एकवचन होना चाहिये ।

३. 'दंपति' शब्द के साथ क्रिया का वचन क्या हो—'दंपति आ रहा है' या 'दंपति आ रहे हैं' ? —रवींद्र, पांडिचेरी-२

* १. 'अधिकांश' का 'ज्यादातर' अर्थ अब कोश-सम्मत है (द्रष्टव्य—वृहत् हिंदी कोश, ज्ञानमंडल, काशी) । यों व्याकरण की दृष्टि से यह अर्थ निकालना कठिन है । यदि इसे षष्ठी सत्पुरुष मानें तो अर्थ 'अधिक का अंश' होगा; हां, कर्मधारय समास मानें तो शायद खींच-तानकर यह अर्थ निकाला जा सके । परंतु जब कोई पद-प्रयोग बहुत प्रचलित हो जाता है, व्याकरण उसे मान लेता है—शास्त्राद् रुद्धिर्वलीयसी ।

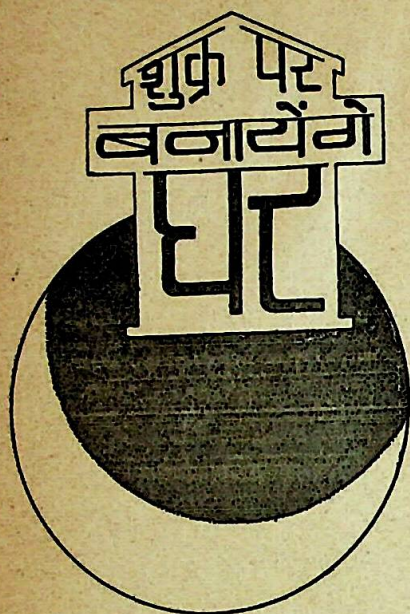
वैसे जिस 'अधिकतर' के आप तरफदार हैं, वह भी 'ज्यादातर' के अर्थ में बहुत

शास्त्रशुद्ध नहीं है । वृहत् हिंदी कोश ने इसे संस्कृत शब्द माना है और इसके दो अर्थ दिये हैं — १. (विशेषण) और अधिक, किसी की तुलना में ज्यादा बड़ा; २. (अव्यय) बहुत करके, ज्यादातर । मगर विचार करें तो दूसरा अर्थ संस्कृत के हिसाब से निकलता नहीं । संस्कृत का तद्धित प्रत्यय 'तरप्' कम्पैरेटिव डिग्री का सूचक है, जैसे—स्वच्छतर, सुंदरतर । यदि 'अधिकतर' में 'तरप्' है तो अर्थ हुआ (दो में से) 'ज्यादा अधिक' । मेरा तो खयाल है कि अव्यय 'अधिकतर' शब्द 'ज्यादातर' में 'ज्यादा' की जगह 'अधिक' बैठकर बनाया गया है । इस हिसाब से यह संकर शब्द है । सौभाग्य से शब्दलोक में 'संकरो नरकायैव' नहीं होता ।

२. फारसी विशेषण 'हर' के साथ एकवचन ही ठीक लगता है । उसका अर्थ ही ही प्रत्येक है । वैसे, every के साथ बहुवचन का प्रयोग अंग्रेजी भी में चलता था; हालांकि फ्राउलर जैसे शब्दब्रह्मा उसे गलत करार दे चुके, फिर भी कहीं-कहीं वह मिलता है ।

३. संस्कृत शब्द 'दंपती' है; वृहत् हिंदी कोश भी उसे ही शुद्ध मानता है । संस्कृत में 'दंपती' द्विवचन है । पुराने निरुक्तकार इसकी व्युत्पत्ति यों करते हैं—जाया + पति = जम्पती = दम्पती । मुझे तो इसके साथ बहुवचन का प्रयोग ही ठीक लगता है । विशेष आवश्यकता है लोगों को 'दंपति' लिखने से विरत करने की । —नारायण दत्त

संपादकीय पत्र-व्यवहार का पता : नवनीत हिंदी डाइजेस्ट, ३४१, ताडदेव, बंबई-४०००३४
व्यवस्था-संवेदी पत्र-व्यवहार का पता : नवनीत प्रकाशन लिमिटेड, आशीष बिल्डिंग,
३३५, बेलासिस रोड, ताडदेव, बंबई-४०००३४



राजेश्वर गंगवार

जो भोर का तारा है, वही सांध्य-तारा है और वही शुक्र ग्रह है, जो अनेक बातों में पृथ्वी का जुड़वां भाई है। हालांकि हम इसे सुबह-शाम रोज देखते हैं और यह पृथ्वी का सबसे नजदीकी पड़ोसी ग्रह है, फिर भी अभी तक यह हमारे लिए रहस्यमय बना हुआ है। घनत्व, द्रव्यमान, व्यास आदि अनेक बातों में शुक्र पृथ्वी से बहुत मिलता-जुलता है। शुक्र का घनत्व ५.३ है, पृथ्वी का ५.५; शुक्र का द्रव्यमान ०.८१ है, पृथ्वी का १.००; शुक्र का व्यास लगभग १२,००० कि. मी. है, पृथ्वी का १२,५०० कि. मी.। किंतु वातावरण की

-नवनीत

दृष्टि से दोनों ग्रहों में इतना भारी अंतर है कि ४८० डिग्री शतांश पर भट्ठी-सा घघकता शुक्र हमारी हरी-भरी पृथ्वी का जुड़वां भाई तो बिलकुल भी नहीं लगता।

शुक्र के चारों ओर जीवननाशक जहरीली गैस कार्बन डाइऑक्साइड के बादलों की मोटी व घनी परतें हैं, जिनके कारण उसका धरातल पृथ्वी पर से दूरकीन से भी दिखाई नहीं देता है। उसके धरातल पर वातावरणीय दबाव पृथ्वी की अपेक्षा १०० गुना अधिक है। वायुमंडल के दबाव की अधिकता के कारण शुक्र पर प्रकाश की किरणें ९० डिग्री से भी अधिक मुड़ जाती हैं। यानी अगर कोई मनुष्य शुक्र की सतह पर खड़ा हो सके, तो वह एक ही जगह खड़े होकर पूरे ग्रह को—यानी ग्रह के पृष्ठ भाग को भी—देख सकेगा। यदि उतना ही उच्च दबाव पृथ्वी पर पैदा हो सके, तो भारत में खड़े होकर अमरीका को देखा जा सकेगा।

वैज्ञानिकों का अनुमान है कि जब इन दोनों ग्रहों का निर्माण हुआ, तब शुक्र का ताप पृथ्वी की तुलना में सिर्फ १० डिग्री अधिक था; किंतु बाद में वह बढ़ता गया। वातावरण को प्रभावित करने वाले घनत्व, द्रव्यमान, व्यास आदि घटकों की समानता के बावजूद शुक्र का वातावरण पृथ्वी से इतना भिन्न क्यों है? क्या कारण है उसके इस उच्च तापमान और दबाव का?

इस रहस्य को जानने के लिए सन १९६१ से अब तक तेरह बार शुक्र को अंतरिक्ष-यान भेजे जा चुके हैं—दस बार रूस

द्वारा और तीन बार अमरीका द्वारा। रूस को शुक्र की सतह पर पांच मानव-रहित वेनेरा-यान उतारने में सफलता मिली है। इनमें वहाँ सबसे अधिक समय तक सक्रिय रहने वाले यान ने कुल १०७ मिनट तक काम किया। बाकी इससे भी कम समय में नष्ट हो गये। इन यीनों से शुक्र के वातावरण के बारे में अनेक बातों का पता चला है।

शुक्र के ऊँचे तापमान का कारण है उसके चारों ओर छाये कार्बन डाइ आक्साइड के घने बादल। सूर्य की तप्त किरणें (अवरक्त विकिरण) इन बादलों को बेधकर शुक्र की सतह तक पहुँच तो जाती हैं, किंतु वे उन्हें बेधकर बाहर नहीं निकल पातीं। इस तरह वे वातावरण के तापक्रम को बढ़ाती जाती हैं।

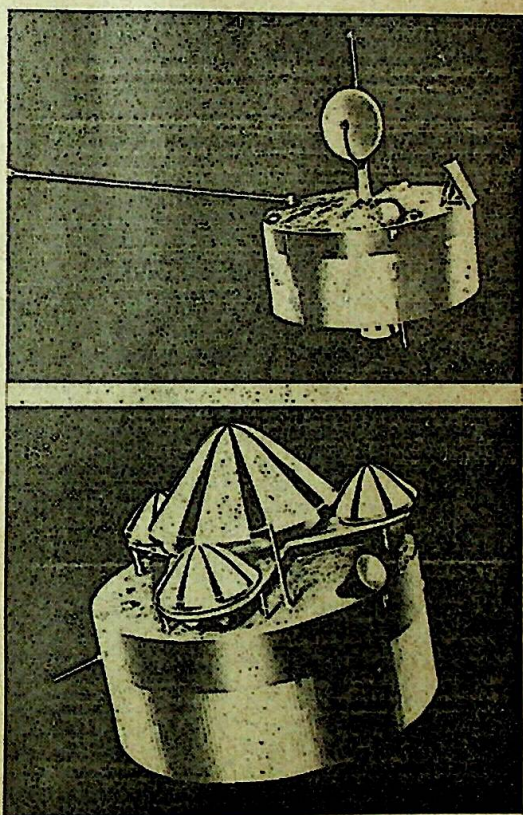
रूसी खोजों के अनुसार, कार्बन डाइ आक्साइड के बादलों में गंधक का तेजाब और अल्प मात्रा में पानी की भाप भी है। इन बादलों की संरचना और प्रकृति के बारे में इससे अधिक जानकारी अभी तक तो नहीं मिल सकी है। शुक्र की सतह किन तत्वों की बनी है, इस बारे में भी प्रामाणिक जानकारी का अभाव है।

यही सब पता लगाने के लिए

१९७९

शुक्र का अध्ययन जारी है और उसी अध्ययन के अंग हैं अमरीका द्वारा इस ग्रह को भेजे गये दो मानव-रहित अंतरिक्ष-यान—पायोनियर वीनस-१ और पायोनियर वीनस-२।

पायोनियर वीनस-१ (पा. वी.-१) २० मई १९७८ को पृथ्वी से रवाना हुआ और



पायोनियर वीनस-१ (ऊपर)

और पायोनियर वीनस-२।

उसके ढाई महीने बाद ८ अगस्त १९७८ को खाना हुआ पायोनियर वीनस-२ (पा. वी.-२)। दोनों ही खान ढाई-ढाई मीटर व्यास के हैं और पीपे के आकार वाली 'बस' जैसे हैं। पा. वी.-१ को शुक्र तक पहुंचने के लिए ४८ करोड़ कि. मी. की यात्रा करनी पड़ी। पा. वी.-२ कुछ छोटे रास्ते से गया; उसे सिर्फ ३५ करोड़ ४० लाख कि. मी. का सफर तय करना पड़ा। पहला यान ४ दिसंबर को भारतीय समय के अनुसार रात के ९ बजकर २६ मिनट पर शुक्र की कक्षा में पहुंच गया। उसके पांच ही दिन बाद ९ दिसंबर को दूसरा भी पहुंचा।

पा. वी.-१ शुक्र की कक्षा में चक्कर लगाते हुए उसके वातावरण को बेधकर उसकी सतह के नक्शे उतार रहा है। पा. वी.-२ को शुक्र के वातावरण के ताप, घनत्व और दबाव का अध्ययन करने के साथ-साथ यह भी पता लगाना है कि वह वातावरण किन तत्वों से बना है और शुक्र के रहस्यमय बादलों की संरचना कैसी है। इसके लिए ९०४ किलोग्राम वजन वाले उस यान ने शुक्र के वातावरण में चार खोजी यान (प्रोब) छोड़े हैं—एक बड़ा और तीन छोटे।

ये खोजी यान शुक्र के वातावरण को बेधते हुए उसकी सतह पर उतरने का प्रयास कर रहे हैं। उनमें से एक यान सही-सलामत सतह पर उतर गया है और काम कर रहा है। मूल यान से अलग

होने के बाद से ये पृथ्वी को सूचनाएं भेजने लगे हैं। ये अपने में स्वतंत्र यान हैं। इनका नियंत्रण न तो मूल यान से हो रहा है, न पृथ्वी पर के नियंत्रण-कक्ष से। मूल यान से छूटने के बाद इनके ट्रांसमिटर चालू हो गये। ये केवल संदेश भेजेंगे और पृथ्वी उन संदेशों को सुनेगी।

इन खोजी यानों में से जो सबसे बड़ा है, वह १.५ मीटर व्यास की गेंद जैसा है। उसका भार २८९ किलोग्राम है। २८ कि. ग्रा. के वैज्ञानिक उपकरण उसमें हैं। परि-योजना-वैज्ञानिक डा. लैरी कोलिन के अनुसार, उसमें रखा सबसे महत्वपूर्ण उपकरण है एक स्पेक्ट्रोमीटर (न्यूट्रल पार्टिकल मास स्पेक्ट्रोमीटर), जो शुक्र के आंतरिक वातावरण की संरचना का अध्ययन करेगा। शुक्र की सतह की ओर जाते समय यह स्पेक्ट्रोमीटर मार्ग में आने वाली गैसों और बादलों तथा रासायनिक दृष्टि से सक्रिय अन्य अनेक घटकों का अध्ययन करेगा। डा. कोलिन का कहना है कि अगर केवल यही उपकरण कार्य करता रहे और अन्य सब उपकरण बेकार हों जायें, तब भी हमारा प्रयास सफल माना जायेगा।

शुक्र के आंतरिक वातावरण का अध्ययन करने के लिए चारों खोजी यानों को उतारकर पा. वी.-२ ने बाह्य वातावरण के अध्ययन करने के इरादे से अपनी चाल कुछ धीमी कर ली है। वह ऊंचाई पर छाये (या उड़ते) बादलों के बारे में आंकड़े भेजेगा और धीरे-धीरे वातावरण की गरमी



पायोनियर बीनस-२ और चार खोजी यान।

से नष्ट हो जायेगा।

वैज्ञानिकों का अनुमान है कि यदि सब कुछ योजनानुसार चलता रहा, तो शुक्र के वातावरण के अनेक रहस्यों का पता चल सकेगा। वस, जरूरत इस बात की है कि खोजी यानों (प्रोब) की बैटरियां काम करती रहें। वैसे पृथ्वी पर निर्मित उपकरण शुक्र के वातावरण में कितने समय तक टिक सकेंगे, यह कहना मुश्किल ही है, क्योंकि पृथ्वी पर शुक्र का-सा वातावरण बनाकर उनमें उनकी जांच करना संभव नहीं है।

शुक्र का वातावरण बदलना

मगर क्या शुक्र पर ही पृथ्वी का-सा वातावरण बनाने की कोशिश नहीं की जा सकती? अत्यंत गरम और कार्बन डाइ आक्साइड व गंधक के तेजाब से बना शुक्र का वायुमंडल प्राणियों की क्या बात, घातु के उपकरणों तक को नष्ट कर डालता है।

किंतु इस घघकती भट्ठी को अगर ठंडा कर लिया जाये तो? कार्बन डाइ आक्साइड के बादलों को कार्बन और आक्सिजन में तोड़ दिया जाये तो?

यदि ऐसा हो सके, तो शुक्र पर भी शीतल वर्षा हो सकती है। फिर उस पर वनस्पतियां भी उग सकती हैं। हमारी पृथ्वी भी तो कभी काफी गरम थी। फिर स्थिति बदली। पहले उस पर अमीबा जैसे एकोशीय जीव का जन्म हुआ और आज अक्ल का पुतला मानव उस पर बसर कर रहा है और अन्य ग्रहों को अपने रहने योग्य बनाने की कल्पनाएं कर रहा है।

अमरीकी अंतरिक्ष-विज्ञानी डा. काल सैगान (निदेशक-लैबोरेटरी फ़ॉर प्लैनेटरी स्टडीज़, कार्नेल विश्वविद्यालय, अमरीका) के अनुसार, शुक्र पर आदमी के रहने की बात इतनी असंभव है नहीं, जितनी कि वह सुनने में लगती है।

शुक्र के वायुमंडल में ०.७ प्रतिशत पानी की भाप है। थोड़ी मात्रा में नाइट्रोजन और बहुत अल्प मात्रा में पारे और क्लोरीन के यौगिक भी उसमें विद्यमान हैं। उसमें लगभग ९७ प्रतिशत कार्बन डाइ आक्साइड है। हमारी पृथ्वी पर कार्बन डाइ आक्साइड केवल ०.०३ प्रतिशत है। लेकिन शुक्र की कार्बन डाइ आक्साइड ज्वालामुखियों से उत्पन्न है और वह केवल वायुमंडल में है।

कार्बन डाइ आक्साइड को कार्बन और आक्सिजन में तोड़ना असंभव काम नहीं है। पृथ्वी पर प्रकृति हर क्षण यह कार्य करती रहती है। पौधे कार्बन डाइ आक्साइड में से कार्बन लेकर आक्सिजन छोड़ते रहते हैं। कार्बन से ही पेड़-पौधों का अस्तित्व है और पेड़-पौधों के कारण ही अन्य प्राणियों का जीवन पृथ्वी पर संभव हुआ है। कार्बन डाइ आक्साइड के विभाजित होने की यह प्रक्रिया यदि किसी तरह शुक्र पर शुरू कर दी जा सके, तो फिर यह चक्र स्वयं चलता रहेगा। फिर शुक्र पर भी जीवन संभव हो पायेगा।

शुक्र पर कार्बन डाइ आक्साइड के विच्छेदन के लिए कार्ल सैगान ने एक योजना बनायी है। इसके लिए वे शुक्र के वायुमंडल में ऐसे जीवकोश छोड़ना चाहते हैं, जो ४८० शतांश जितने उच्च ताप को सहन कर लेते हों और कार्बन पर जीते हों।

इस तरह का ऐल्जी नामक एककोशीय जीव पृथ्वी पर विद्यमान है। असल में नवनीत

ऐल्जी वनस्पति और जंतु दोनों का मिला-जुला रूप है। कहा जाता है कि पृथ्वी पर भी सबसे पहले यही उत्पन्न हुआ और इसी की बदौलत पृथ्वी पर जीवन-योग्य वातावरण तैयार हो सका। ऐल्जी के सामान्य रूप हैं काई और सिवार।

ऐल्जी की ही एक जाति है—ब्लू ग्रीन ऐल्जी (सियानोफाइट)। यह तापक्रम की बहुत अधिक घट-बढ़ भी सहन कर लेती है। अत्यंत प्रतिकूल परिस्थितियों में भी यह मजे से जीवित रहती है। यहां तक कि परमाणु-संयंत्र से होकर बहने वाले पानी में भी यह पायी गयी है। (मनुष्य तो उस जगह पहुंचते ही घातक विकिरणों से मौत के मुंह में पहुंच जायेगा।) दक्षिण ध्रुव की बर्फ में भी यह रह लेती है। बर्फ की सिल्ली में यह वर्षों तक जिंदा दबी रहती है, और २२५ डिग्री शतांश तक गरम जल में भी मरती नहीं।

ब्लू ग्रीन ऐल्जी की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह बिना लैंगिक संबंध के उत्पन्न होती है और इसकी वंशवृद्धि बड़ी तेजी से होती है। प्रोटोजोआ (जिससे सचल जीव विकसित हुए) और बैक्टीरिया (जिन्हें पौधों की श्रेणी में रखा जाता है) दोनों की जन्मदात्री यह ब्लू ग्रीन ऐल्जी ही है। इस तरह यह पृथ्वी के सभी जीवों (जंतु और वनस्पतियों) की आदिपूर्वज है।

इन विशेषताओं के कारण ही ब्लू ग्रीन ऐल्जी को कार्ल सैगान ने शुक्र पर भोजन के लिए चुना है। उनका सुझाव है कि एक

साथ कई दर्जन अंतरिक्ष-यान शुक्र की कक्षा में भेजे जायें, जिन पर टारपीडो और राकेट हों। प्रत्येक राकेट के अभ्रमाण में भारी संख्या में ब्लू ग्रीन ऐल्जी हों। राकेट शुक्र के वायुमंडल में करीब पांच-पांच सौ मील के अंतर पर डेढ़-डेढ़ मिनट बाद छोड़े जायें। वे कार्बन डाइ आक्साइड के बादलों तक पहुंचते ही ऐल्जी को मुक्त कर देंगे। इसके लिए उन्हें थोड़ा-सा विस्फोटक पदार्थ भी इस्तेमाल करना पड़ेगा।

इस तरह अरबों-खरबों की संख्या में ब्लू ग्रीन ऐल्जी शुक्र के वातावरण में पहुंच जायेंगे। वहां वे कार्बन डाइ आक्साइड से कार्बन लेकर अपनी वंशवृद्धि शुरू कर देंगे।

यह प्रक्रिया जब शुरू हो जायेगी तो स्वयं ही तेजी पकड़ती जायेगी। धीरे-धीरे, शुक्र के वायुमंडल में कार्बन डाइ आक्साइड की मात्रा घटती जायेगी और आक्सीजन की मात्रा बढ़ती जायेगी। कार्बन डाइ आक्साइड के बादलों के छंटते-छंटते शुक्र की धरती पृथ्वी पर से दूरबीन से दिखाई देने लगेगी।

डा. सैगान की योजना की उपयुक्तता की जांच करने के लिए १९७० में चार जीवविज्ञानियों ने कार्बन डाइ आक्साइड से युक्त टैंकों में ब्लू ग्रीन ऐल्जी रखी। टैंकों में गैस इतनी अधिक दबाकर भरी गयी थी कि थोड़ी और भरी जाने पर टैंकों की दीवारें फट सकती थीं। उस भयंकर दबाव पर ऐल्जी अपनी वंशवृद्धि करती रही। प्रयोग की एक शृंखला में तो ऐल्जी ने आक्सीजन की मात्रा में ३८० प्रतिशत



कार्ल सैगान-शुक्र का वायुमंडल बदल दें।

प्रतिदिन के हिसाब से वृद्धि की।

इन प्रयोगों से यह भी पता चला कि गरम चश्मों में पायी जाने वाली सियानेडियम काल्डेरियम जाति की ब्लू ग्रीन ऐल्जी शुक्र पर भेजने के लिए सबसे उपयुक्त है।

शुक्र पर शीतल वर्षा

ब्लू ग्रीन ऐल्जी की बदौलत जैसे-जैसे शुक्र के वायुमंडल में कार्बन डाइ आक्साइड की मात्रा कम होती जायेगी, वैसे-वैसे अव-रक्त विकिरण को शुक्र के वायुमंडल से छूट भागने का अवसर मिलता जायेगा। इससे निचले वायुमंडल का तापक्रम कम होता जायेगा। वायुमंडल में विद्यमान भाप संघनित होती जायेगी। अनुमान है कि यह

भाप २५० से. मी. वर्षा के लिए काफी होगी। पर तब भी पानी की बूंदें शुक्र की धरती तक नहीं पहुँच सकेंगी; क्योंकि ४८० शतांश के तापमान के कारण बीच में ही वे फिर भाप बन जायेंगी। हाँ, इससे शुक्र का तापमान कुछ कम जरूर होगा।

उधर वायुमंडल में विद्यमान ऐल्जी आक्सिजन और कार्बन से अपने लिए कार्बो-हाइड्रेट और ग्लूकोज बनायेंगे। इस तरह वहाँ प्रकाश-संश्लेषण (फोटोसिंथेसिस) की प्रक्रिया भी शुरू हो जायेगी। इन्हीं कार्बो-हाइड्रेटों से जटिल कार्बनिक यौगिकों की उत्पत्ति होगी, जिनसे शुक्र पर वनस्पति का विकास संभव होगा।

वर्षा की प्रक्रिया जो एक बार शुरू हुई, वह बार-बार होती रहेगी और हर बार वर्षा की बूंदें पिछली बार की अपेक्षा शुक्र की धरती के अधिक नज़दीक पहुँचेंगी। जब तापक्रम २०० डिग्री शतांश तक गिर जायेगा, तब वर्षा और भी तेजी से होने लगेगी और पानी शुक्र के धरातल तक पहुँच जायेगा।

इस तरह वायुमंडल में कार्बन डाइ आक्साइड के बादलों के छंट जाने से शुक्र पर आक्सिजन पर्याप्त मात्रा में हो जायेगी। इस आक्सिजन से वहाँ ओजोन की परत का निर्माण होगा, जो सूर्य की खतरनाक पराबैंगनी किरणों को शुक्र की सतह तक पहुँचने से रोकेगी। अंततः मनुष्य के निवास के लिए एक पड़ोसी ग्रह प्राप्त हो जायेगा।

अपनी इस योजना के बारे में काल

सैगान ने स्वयं एक नैतिक प्रश्न उठाया है। सैगान का खयाल है कि शुक्र के मध्यवर्ती वायुमंडल में अमीबा या जेलीफिश जैसे जीव तैर रहे हो सकते हैं। ये जीव कार्बन डाइ आक्साइड पर ही पलने वाले होंगे, क्योंकि यदि वे कार्बन-भक्षी होते तो शुक्र के कार्बन डाइ आक्साइड के बादल कभी के छंट गये होते।

यदि शुक्र के वायुमंडल में ऐसे कोई जीव हैं, तो हमारे भेजे हुए ऐल्जी शुक्र की कार्बन डाइ आक्साइड को तोड़ने की प्रक्रिया में उन जीवों को भी नष्ट कर देंगे। लेकिन शुक्र के उन जीवों ने ही अगर हमारे ऐल्जी को मार दिया तो? आखिर वे तो अपने ही घर में होंगे—उन परिस्थितियों के अभ्यस्त। वे ऐल्जी पर भारी भी तो पड़ सकते हैं।

शुक्र के जीवों और ऐल्जी में लड़ाई ठने या नहीं, पर यह योजना है सचमुच बड़ी रोमांचक। यदि यह सफल हो गयी, तो शायद मनुष्य शुक्र पर घर बना लेगा।

लेकिन यहीं समस्याओं का अंत नहीं हो जायेगा। शुक्र पर एक सूर्योदय होने के बाद से अगला सूर्योदय होने के बीच पृथ्वी पर ११६.८ दिन बीत जाते हैं। यानी शुक्र का एक अहोरात्र हमारे ११६.८ अहोरात्रों के बराबर होता है। ५८.४ दिनों की रात तो काटे न कटेगी। मगर मनुष्य शायद अलग-अलग प्रदेशों में शिविर बनाकर अपनी इच्छा के अनुसार दिन और रात का सेवन किया करेगा।

—हिंदी विभाग,

भारतीय रिजर्व बैंक, बंबई-४००००१





त्रिनिदाद में रामलीला की परंपरा

डा. जगदीशचंद्र झा

भारत के मुख्य पर्वों में विजयादशमी का महत्त्वपूर्ण स्थान है। भारत के हर राज्य में अब भी यह समारोह मनाने की परंपरा कायम है। इस अवसर पर भारत के कुछ राज्यों में 'रामलीला' मनाने की भी परिपाटी है।

सन १८४५ से १९१७ के बीच करीब डेढ़ लाख भारतीय बंधुआ मजदूर के रूप में भारत से त्रिनिदाद भेजे गये थे। कालक्रम में अपनी कला और संस्कृति को उन्होंने कायम रखा। भारत के अन्य पर्व-त्योहारों की भांति त्रिनिदाद में विजयादशमी के अवसर पर 'रामलीला' मनाने की परंपरा कुछ संशोधित रूप में आज भी कायम है।

बंधुआ मजदूर त्रिनिदाद में गन्ने के खेतों में काम करने के लिए लाये गये थे और उन्हीं मजदूरों ने रामलीला की यह परंपरा यहाँ कायम की। उन मजदूरों में लगभग तीन चौथाई उत्तर प्रदेश और बिहार के गांवों से आये थे, इसलिए त्रिनिदाद की रामलीला उसी प्रकार की थी जैसी अंग्रेज पर्यटक विशप हेबर ने सन १८२४ में इलाहाबाद में देखी थी—ढोल, घड़ी, घंटे, आदि के बीच गहनों, चमकते कागज के मुकुट आदि से सजे, तीर-धनुष से लैस राम-लक्ष्मण, बांस के घेरे, राक्षसों का पुतला और मुखौटे, रंगीन वस्त्र आदि में वानर-गण।

शुरू-शुरू में त्रिनिदाद में जब भारतीयों

की संख्या कम थी या उनमें अच्छे रामायणी या रामलीला के जानकार का अभाव था, वे चाहते हुए भी रामलीला जैसे पर्व का आरंभ नहीं कर सके। लेकिन १८९० में राजनाथ करवर महाराज नामक एक पुरोहित ने डाव नामक गांव में रामलीला का शुभारंभ किया (देखिये, पोर्ट ऑफ स्पेन गजट, १० अक्टूबर १९०१, पृ. ६)।

प्रवासी भारतीयों ने बहुत उत्साह से इसका स्वागत किया और इसके लिए हर प्रकार की तैयारी की गयी। जंगल साफ करके बांस के घेरे डाले गये और मंचान बनाये गये। उत्तर का मंचान श्रीराम का 'सिंहासन' और दक्षिण का लंकापति रावण का था। सस्वर रामायण-पाठ करने वाले पंडितों का स्थान दोनों सिंहासनों के बीच में था। रंगीन कागज की तिकोन झंडियां लटकायी गयीं, आम और नारियल के पत्तें डोरियों में लटकाये गये और विभिन्न प्रकार के फूल-पत्तों और केले से द्वार सजाये गये। उस समय पूरे त्रिनिदाद में करीब १० हजार भारतीय थे, और हजारों लोग इसे देखने आये। आयोजकों ने उन्हें चीनी का शरबत पिलाया और भारतीय खाना खिलाया। कुछ आगंतुक अपने साथ ढोल, मृदंग, खंजड़ी, करताल आदि भी लेते आये थे। प्रतिदिन जब तक रामलीला आरंभ न हो जाती, वे भजन गाते रहते थे। एक अजीब समां था।

चार बजे के करीब आरती के साथ रामलीला का शुभारंभ हुआ। राम, लक्ष्मण,

नवनीत

सीता आदि की भूमिका ब्राह्मण और क्षत्रिय बालकों ने की तथा रावण और उसके दल के लोगों की वैश्य तथा शूद्र लड़कों ने। रामलीला में भाग लेने वाले लड़कों को दस दिनों तक गांव के मंदिर में ही रखा गया। चूंकि उन्हें स्वच्छ तन-मन से रहना था, इसलिए एक ब्राह्मणी उनका खाना तैयार करती। उनका विश्वास था कि सात्विक भोजन से सात्विक विचार आयेंगे। राम का सिंहासन पवित्र समझा जाता और उस पर लाल-पीले पताके फहराते। रावण का तामसी तत्त्वों वाला माना जाता तथा उस पर काली झंडियां लहरातीं। धूमन-गुग्गुलु जलाने के साथ उन पर फूल चढ़ाये जाते, हवन और आरती होती। सिपरिया रोड के पंडित गोवर्द्धन ने राम की भूमिका अदा की और दशरथ महाराज ने रावण की। पहली शाम भूमिका में ही बीत जाती। दूसरे दिन ऋषि विश्वामित्र पीत वस्त्र, लंबी पकी दाढ़ी और केश में राक्षसों का नाश करने के लिए राजा दशरथ के पास आते और राम तथा लक्ष्मण को ले जाते। जब-तब जोरों से ताशा बजाया जाता।

तीसरी शाम ताशा और ढोल पर जोर से थाप पड़ते—मारीच, सुबाहु और ताड़का का वध होता और विश्वामित्र राम तथा लक्ष्मण को जनकपुर ले जाते।

चौथे दिन धनुष-यज्ञ होता और रमा उस धनुष को तोड़ते। पांचवें दिन राम-विवाह का जलसा होता। राम जोड़ा-जामा और मुकुट में बड़े ही अच्छे लगते। दर्शक

२८

जनवरी

महिलाएं विवाह के मंगल गीत गातीं, नर्तक नाचते और ताशा जोर से बजता। छठी शाम को मंथरा-कैकयी संवाद और राम-वनवास का दृश्य दिखलाया जाता। सातवीं शाम को सीता-हरण, जटायु द्वारा उसे रोकने का प्रयास और राम तथा लक्ष्मण का क्रोध, आठवें दिन सीता की खोज, कबंध, शबरी और अंत में किष्किंधा संबंधी घटनाएं दिखलायी जातीं। नौवें दिन बालिवध, लंकादहन आदि और दसवें दिन राम-रावण युद्ध और रावण कुंभकर्ण और मेघनाद के विशाल पुतले आदि का जलाना संपन्न होता।

शुरू-शुरू में त्रिनिदाद में रामलीला का मुख्यतः यही ढंग रहा। कालक्रम से कई जगहों में रामलीला होने लगी और कहीं-कहीं कुछ परिवर्तन भी किये गये। फेलिसिटी, शगुआना (चौहान) पीनाल, देवे, मैकवीन, कैरोलिना, औरेंजवैली आदि में भी रामलीला का आयोजन होने लगा।

१८९५ में डाव गांव की रामलीला में राम बने गोवर्द्धनजी ने रावण बने दशरथ महाराज की एक आंख बांस के बाण से वींध डाली। रक्त-प्रवाह शुरू हुआ, लेकिन दशरथजी अपना 'रोल' अदा करते ही रह गये।

१९७९

१५ अक्टूबर १८९८ को 'हिंदोस्थानी कोहनूर का अखबार' ने दो स्थानों की रामलीला का वर्णन किया—१. डाव गांव में राम-उत्सव का मजा देखने के लिए हिंदुस्तानी भाइयों को कहा गया। मुख्य आयोजक थे बाबू शिवनंदन सिंह। २. लवार्टीन (लैवेन्टिल) गांव में 'अपने देशी पर्व का सत्कार' करने को रामरसिक जनों को कहा गया और बाबू कोलाहल सिंह इस 'पर्व और मेला' के आयोजक थे।

१९०१ के अक्टूबर में शगुआना के लाइम स्टेट में बड़े उत्साह से रामलीला का आयोजन हुआ और गरीबों के खाने और रहने का प्रबंध किया गया। ढोल, नगाड़े खूब बजे और आग में नाचने, जादूगरी आदि के करिश्मे दिखलाये गये।

सन १९१३ और १९१६ के अक्टूबर में शगुआना के 'उडफर्ड क्वायर' में पं. कपिलदेव की अध्यक्षता में रामलीला संपन्न हुई। लाल मथुरा पंडित, भगन महाराज, रिकी (ऋषि) महाराज आदि ने मुख्य 'रोल' अदा किया। १९१६ में रामलीला के क्षेत्र में एक साधु ने सबका ध्यान आकृष्ट किया। वह दिन-भर एक पांव पर खड़ा रहता दूसरे पांव को मोड़कर रखता



लेखक

२९

हिंदी डाइजेस्ट

और श्रीराम की प्रार्थना करता रहता। एक 'सीटन' नामक व्यक्ति ने भी अपने करतब दिखलाये। १९१६ में ही कूवा रिक्रियेशन ग्राउंड में भी बड़ी धूमधाम से रामलीला संपन्न हुई। 'मिरर' नामक अखबार (९ अक्टूबर १९१६, पृ. ९) में एक व्यक्ति ने रामलीला के असली महत्त्व पर प्रकाश डाला और इस बात की भर्त्सना की कि राम को 'कुली गाड' (भगवान) और हनुमान को बंदर कहा जाता है। उसने कहा—त्रिनिदाद के पश्चिमी वातावरण में रामलीला का धार्मिक महत्त्व समाप्त नहीं होना चाहिये।

सन १९१९ में शगुआना के 'उडफर्ड क्वारर' की रामलीला को सफल बनाने में पं. कपिलदेव, लाल मथुरा पंडित, भारत गोविन, लछमन सिंह आदि का मुख्य हाथ था। १९२१ में रेवरेण्ड सी. डी. लाला ने ईस्ट इंडियन लिटररी क्लब में रामलीला के महत्त्व पर प्रकाश डाला (पोर्ट आफ स्पेन गजट, १४ अप्रैल १९२१ ई.)। १९२४ ई. में सानवान की रामलीला अरंग्वेज मैदान में बड़ी धूमधाम से मनायी गयी। पट्टेसरी पंडित, राजनाथ पंडित और भोला पंडित ने जैराम गोसाईं आदि के सहयोग से इसे सफल बनाया। १९२८ में शगुआना, डाउ और पीनाल की रामलीला प्रशंसनीय थी। १९२९ में सानवान, सेंट जोसेफ क्यूरोप और शगुआना की रामलीला की प्रशंसा की गयी।

१९३० और १९३१ में सिपरिया रोड के गोवर्द्धन पंडित और चंदर महाराज ने

बड़ी शान से रामलीला आयोजित की। कई रात हजारों लोग जमा हुए, गरीबों को भोजन कराया गया। देवे में पंडित जानकी प्रसाद शर्मा (जो अभी भी जीवित हैं), संध्या महाराज, रामचरण साधु, प्रेमचन्द वंसी आदि ने मुख्य भूमिका निभायी।

१९३२ ई. में तो राजधानी पोर्ट आफ स्पेन के क्वीन्स पार्क सवाना में रामलीला का विराट आयोजन हुआ। १९३५ में शगुआना के पास फेलिसिटी गांव में पंडित हरगोविंद शर्मा द्वारा आयोजित रामलीला देखने योग्य थी (देखिये त्रिनिदाद गार्डियन, १० अक्टूबर १९३५, पृ. १४)। वहां रामायण गायन प्रतियोगिता में पीनाल, मानग्रेट्ट और काकंडी के रामायण गोल ने क्रमशः जैराम गोसाईं, रामप्रसाद और कतवार के नेतृत्व में भाग लिया। पं. मिसरी दत्त पांडे, पं. चंडिका प्रसाद तिवारी और बाबू रामटहल सिंह ने निष्पत्ति का काम किया। पीनाल गोल को प्रथम पुरस्कार के रूप में रामायण की पुस्तक दी गयी, काकंडी दल को द्वितीय पुरस्कार में ढोलक; और तीसरे दल को पं. दीनानाथ तिवारी ने एक विशेष पुरस्कार दिया।

सीडर हिल, रिफार्म आदि की रामलीलाएं भी अच्छी थीं। प्रिन्सेस टाउन से स्पेशल ट्रेन, बस और मोटरगाड़ियां यात्रियों को रामलीला-स्थली तक ले गयी थीं।

१९२३ ई. में पीनाल (दक्षिणी त्रिनिदाद) में राम की भूमिका अदा करते समय पं. कालीचरण का देहांत हो गया। १९५३ ई.

में एडिनबरा गांव शगुआना और बालमेन (कूवा) के मिल्टन स्टेठ में रामलीला हुई। १८९५ ई. की दुर्घटना की तरह दो और दुःखदायी घटनाएं घटीं। १९३१ ई. में टेबुल लैंड (दक्षिण त्रिनिदाद) के मोन्टाको रोड के पास जब गनपत नाम का आदमी रामलीला में भाग ले रहा था, कुंजबिहारी और उसके साथियों ने उसे बहुत पीटा (पोर्ट आफ स्पेन गजट, २३ जनवरी १९३१, पृ. ५)। इसी तरह १९६९ ई. में राम की भूमिका अदा करने वाले ने फेलिसिटी गांव में एक लोटा हवा में उछाल दिया, जिससे एक दर्शक का सिर फट गया।

गत बीस-पच्चीस वर्षों में त्रिनिदाद की रामलीला का स्वरूप काफी बदल रहा है। अब बांस की जगह लकड़ी और टिन के सिंहासन बनाये जाते हैं। लाउडस्पीकर का व्यवहार जमकर होता है, जिससे दूर-दूर तक के लोग संवाद सुनते हैं। लेकिन अब निर्देशक पंडित ही सारे संवाद बोलता है। कारण, अक्सर नवयुवक जो राम या सीता बनते हैं, हिंदी नहीं बोल सकते। सजावट के नये तरीके अपनाये जाते हैं। रंगीन विजली बें: लट्टू और गद्दी वातावरण को आकर्षक बनाते हैं। अब छोटी जात-यहां तक कि अफ्रीकी आदि भी रामलीला में रावण आदि का 'पाटें' लेते हैं। अब राम-सीता के चरण कोई नहीं छूता। लोग शराब पीते देखे जाते हैं। दो-तीन वर्ष पूर्व तो सेंट आगस्टिन में महाराज दशरथ के पुत्र-कामेष्ठि यज्ञ से रामलीला का आरंभ हुआ,

लेकिन डाव गांव में अभी भी विश्वामित्र के आगमन से ही शुरू होता है।

पहले रामलीला-क्षेत्र में पहलवानों की कुस्ती भी हांती थी। अब जुआ, ताश आदि का बोलबाला रहता है। अब रामलीला में भाग लेने वाले लोग भी मांस और मदिरा से परहेज नहीं करते। मुसलमान और ईसाई भी अब छोटे-मोटे रोल करते हैं। लड़ाई के दृश्य में तीर-धनुष के साथ आगे-पीछे पैतरा बदलना अब पहले जैसा नहीं होता। शूर्पणखा के 'रोल' में कभी-कभी वेजा हरकतें कर दी जाती हैं। द्रव्ययुद्ध अब पहले जैसा नहीं होता। ताशा और बड़े ढोल-ढाक अभी भी जोर से बजते हैं, लेकिन अब विदेशी शैक-शैक या मराकस का भी स्थान रहता है। पुरुष और स्त्री दर्शक अभी भी अलग-अलग घेरे में बैठते हैं। हिंदुस्तानी मिठाइयां लड्डू, जलेबी आदि खूब बिकती हैं। आइस्क्रीम और कोका-कोला आदि का भी जोर रहता है।

यों आजकल भड़कीली पोशाक के दाम बहुत बढ़ गये हैं, फिर भी रामलीला में भाग लेने वाले अंतिम दिन पीले, लाल और काले (लंकावासियों के) रंग की मखमली पोशाक पहनते हैं। कांच की माला आदि चमकीली चीजें भी रहती हैं। मुकुट, धनुष-बाण, तरकस आदि भी अच्छे रहते हैं। मुखौटे भी तरह-तरह के रहते हैं—कोई कागज या गत्ते की बड़ी जीभ निकाले पूंछ लगाये—बांस के पुष्पक विमान, नाव, सेतु, बांध तथा एक घूमते ऊंचे स्थान पर रावण-

आदि के पुतले जो लड़ाई के समय आगे-पीछे घूमते हैं, दिखाये जाते हैं। उन्हें तीर से बाँधकर बारूद में आग लगाकर समाप्त कर दिया जाता है। त्रिनिदाद के 'कानिवाल' में प्रयुक्त मुखौटे आदि का अब रामलीला में भी प्रयोग होने लगा है। नगाड़े बजाना, नाचना और कूदना भी अफ्रीकियों के ढंग का देखा जा सकता है।

फिर भी त्रिनिदाद के हिंदुओं के लिए रामलीला धार्मिक और सांस्कृतिक अभिव्यक्ति का एक उत्तम साधन है। बड़े-बूढ़े अभी भी उत्साह से दूर-दूर तक—सीडर-हिल, क्यूरप (औरेंज गांव) आदि में—रामलीला देखने जाते हैं और श्रीराम के सुख से सुखी और दुःख से दुःखी होते हैं। उनका विश्वास है कि लोकरक्षक मर्यादा-पुरुषोत्तम राम की लीलाएं देखकर वे पाप-मुक्त हो जायेंगे। लेकिन लड़कियां अभी भी रामलीला में भाग नहीं लेतीं और एक्टरों को कुछ बोलना नहीं पड़ता। संवाद पंडित बोलते हैं जिसके एवज में उन्हें अच्छी दक्षिणा मिल जाती है—जैसे सीडर-हिल में पं. काशी प्रसाद और विलियम्स विल में पं. चंद्रबलि महाराज। कहीं-कहीं राजनैतिक लड़ाई, चुनाव आदि के कारण

रामलीला बंद कर दी गयी है। लेकिन लोग फिर से इसे चालू करने की सोचते रहते हैं। भारतीय धार्मिक-फिल्में—संपूर्ण रामायण, जय हनुमान आदि दिखायी जाती हैं। फिल्में देखने के बाद नवयुवक अपनी रामलीला को निरर्थक प्रयास समझने लगे हैं। लेकिन फिर भी तीन वर्ष पूर्व जब यूनिवर्सिटी के पास ही सनातन धर्म-महासभा की खाली जमीन में रामलीला का आयोजन हुआ, तो रोज करीब हजार दर्शक उसी तरह जमा होते थे, जैसे भारत के मेलों में सजधज कर जाते हैं। अब हर साल यहां यह आयोजन होता है। आखिर रामकथा वचपन से ही इनके मानस में समायी रहती है।

इस प्रकार त्रिनिदाद में कुछ परिवर्तित रूप में रामलीला की परंपरा आज भी कायम है। अन्य भारतीय कला और संस्कृति की भांति पर्व-त्योहारों की इस परंपरा ने त्रिनिदाद के प्रवासी भारतीयों को भारत के लोगों के बिलकुल करीब लाने में एक शृंखला का काम किया है और वे भारतीयों के साथ अपनी भावात्मक एकता कायम किये हुए हैं।

—२९३, राजेंद्रनगर, पटना-८०० ०१६



१. पुस्तक-सार एवं अन्य लेखों के लंबे हो जाने से चार घोषित रचनाएं (वचपन की याद, एक साल में तीन पोप, अस्पताल की कहानी, कुकुरमुत्ते) और 'किमाश्चर्यम्' इस अंक में नहीं जा पाये। क्षमा करें और अगले अंकों में इन्हें पढ़ें।

२. शुक्र संबंधी लेख में यह जानकारी जोड़ लें कि मानव-रहित रूसी यान वीनस-१२ गत २१ दिसंबर को और वीनस-११ २५ दिसंबर को शुक्र पर उतरे। —संपादक



बलबील

नूतन-पुरातन ज्ञान-विज्ञान और मनोरंजन

अपेक्षा-गीत

कोई एक शब्द तो मिले,
रचना पर खूब तुलसीदास-सा
रचना की रचना नेवेद्य बने ।

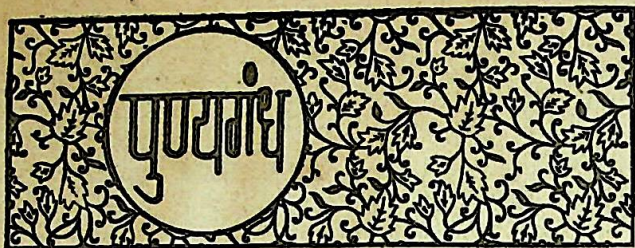
कोई एक फूल तो खिले,
चरणों पर खूब राजाजीवन्तयन
अगद-धूप गंध के वितान बने ।

कोई एक अधर तो हिले,
गंध-अनूप जिस पर छंद रच
पोर-पोर सोई अनुमति-मिले ।

कोई एक दिया मिलामिले,
जिसमें उपलब्ध हों परस्पर हम
समर्पण अर्पित हों घन-घन ।

—उमाकांत मालवीय

—महावीर लाल गली, इलाहाबाद-३



जिस तरह पुष्पित वृक्ष की सुगंध दूर-दूर तक फैलती है, उसी तरह पवित्र कर्मों की सुगंध दूर-दूर तक पहुंचती है।

प्रथम विश्वयुद्ध के आरंभिक दौर में १९१५ में चर्चिल ब्रिटेन के नौसेना-मंत्री थे और नौसेनाध्यक्ष एडमिरल लार्ड फिशर से उनकी अनबन रहती थी। धीरे-धीरे यह अनबन इतनी ज्यादा बढ़ गयी कि चर्चिल को अपने ओहदे से हाथ धोना पड़ा। यह आघात चर्चिल के लिए इतना गहरा था कि उसे वे जीवन-भर भूल नहीं पाये।

उस घटना के एक-डेढ़ साल बाद किसी प्रसंग में उसका जिक्र छिड़ने पर चर्चिल ने कहा—‘अगर मुझे फिर से वह ओहदा मिले तो मैं फिशर को बुलाकर उन्हें फिर से वही काम सौंप दूंगा। व्यवस्थापक के रूप में उनके काम की आज भी मेरे दिल में बहुत कद्र है।’

उसके कई साल बाद एडमिरल लार्ड फिशर की जीवनी प्रकाशित हुई, जिसमें चर्चिल की सख्त आलोचना की गयी थी। चर्चिल उसे पढ़ने लगे। फिशर की आलोचना उन्हें गलत और बुरी लगी। फिर भी पुस्तक समाप्त करते ही उन्होंने फिशर की

प्रशंसा में लंबा लेख लिखकर एक पत्रिका में छपने के लिए भेजा।

०

टेक्सास (अमरीका) के करोड़प व्यापारी ह्यू कलेन ने एक बार हाउस्ट विश्वविद्यालय को पचास लाख डालर का दान देने का एलान किया।

एक स्थानीय समाचार-पत्र में जब इसकी खबर छपी तो दान की रकम पचास लाख के बजाय एक सौ पचास लाख (५ मिलियन डालर के बजाय १५ मिलियन डालर) छप गयी।

अगले दिन सुबह कलेन ने खबर पढ़ते ही समाचार-पत्र के संपादक को फोन किया और गुस्से में कहा कि आखिर यह गलत खबर क्यों छपी गयी है। संपादक ने सुना तो सहम गया। फिर उसने माफी मांगते हुए कहा—‘यह गलती हमारे एक प्रूफरीडर की असावधानी से हुई है। मैं अच्छी तरह समझता हूं कि इससे आपके लिए मुश्किल पैदा हो गयी है। कल के अखबार में मैं इस गलती को’

‘खैर रहने दीजिये।’ कलेन ने संपादक की बात काटते हुए कहा—‘आपने एक सौ पचास लाख डालर लिखा है तो इस बार मैं इतनी रकम ही दे दूंगा। लेकिन फिर कभी ऐसी गलती न हो।’

एडविन स्टेन्टन बहुधा अब्राहम लिंकन की निंदा किया करते थे। और वह निंदा लिंकन तक पहुंच जाती थी।

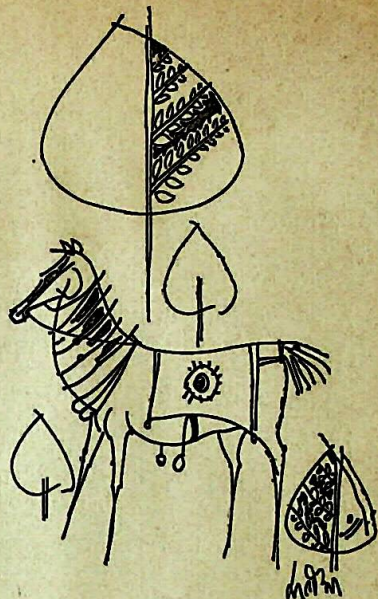
गृहयुद्ध के दिनों जब युद्ध-सचिव के पद के लिए किसी योग्य व्यक्ति के चुनाव का प्रश्न आया तो लिंकन ने बिना किसी शिक्षक के स्टेन्टन को ही चुना।

मगर मंत्रिमंडल में शामिल हो जाने के बाद भी स्टेन्टन ने लिंकन की निंदा करना न छोड़ा।

एक बार लिंकन के एक मित्र ने उनसे कहा—‘यह स्टेन्टन आपकी निंदा करने से अभी तक बाज नहीं आया। जब देखो, आपके खिलाफ बोलता रहता है। यहां तक कि उसने आपको मूर्ख कहा है।’

‘अच्छा !’ लिंकन ने दिलचस्पी दिखाते हुए कहा—‘तब तो इस बात की सचाई से इन्कार नहीं किया जा सकता; क्योंकि स्टेन्टन की बातें प्रायः सही होती हैं।’

एक आदमी हजरत मोहम्मद से बेहद नफरत करता था। वह जब भी उन्हें अपने घर के सामने से गुजरते हुए देखता, तो घर की छत पर रखा ढेर सारा कूड़ा-करकट उठाकर उनके सिर पर डाल देता।



चित्र : सतीश चव्हाण

हजरत मोहम्मद उसे एक नजर देखते, मंद-मंद मुस्कराते और आगे बढ़ जाते।

यह सिलसिला लंबे अरसे तक चलता रहा। न उस आदमी की नफरत कम हुई, न हजरत मोहम्मद को कभी उस पर गुस्सा आया।

एक दिन यह सिलसिला टूटा। उस दिन हजरत मोहम्मद अपने ऊपर कूड़ा न पड़ने पर गली में रुक गये और नजर उठाकर मकान की छत की ओर देखा। वहां उस व्यक्ति को न पाकर उन्हें आश्चर्य हुआ और उन्होंने पड़ोसियों से पूछताछ की। जब पता चला कि वह आदमी बीमार है, तो वे उसके घर गये और उसे दिलासा दिया कि तुम जल्दी ही ठीक हो जाओगे। फिर वहीं वे उसकी सेहत के लिए परमात्मा से प्रार्थना करने लगे।





चित्र : प्रेमचंद्र गोस्वामी

एक स्वगत

—रमेशचंद्र शाह—

कीच में धंस-धंसकर
 पौघे हरे होते हैं
 फिर भी उन्हें हवा और धूप के सिवा
 और कुछ सूझता ही नहीं;
 और तुम हो कि—लगे रहते हो
 अनवरत इसी धुन में
 कि तुम्हारे अलावा मुझे
 और कुछ सूझे नहीं ।
 काश !कि एलोरा के शिल्पी का
 चेतना-प्रवाह
 एक क्षण-भर के लिए मेरा हो सकता !

समय की दराज में
 अभी मत झोंको मुझे
 जीते जी मुझे पंचतत्त्वों को मत दो

अगर छितराना ही चाहो
 छितरा दो मुझे बादल-रंगों की तरह
 बरतें वह
 एक खास कस्बे का खास आसमान हो ।

ओ भाई !
 तुम्हारी बात दूसरी है
 मेरे लिए तो वह अनंत भी
 किसी कालकोठरी से कम नहीं
 जिसे
 मेरी सांसों ने
 कभी छुआ ही न हो ।

—३/२ प्रोफेसर्स कालनी, विद्याविहार,
 भोपाल, म. प्र.

महान पत्रकार संत निहालसिंह

बनारसीदास चतुर्वेदी

मैंने पत्रकारिता के क्षेत्र में चालीस वर्ष व्यतीत किये हैं; पर इस लंबे अरसे में मुझे कोई भी ऐसा व्यक्ति नहीं मिला, जिसमें पत्रकारिता के विषय में मिस्टर सिंह से अधिक प्रतिभा हो।

ये शब्द हैं स्वर्गीय डब्ल्यू. टी. स्टेड के, जो स्वयं अंतरराष्ट्रीय कीर्ति के पत्रकार थे। उन्होंने अक्टूबर १९१० में संत निहाल सिंह पर अपने पत्र 'रिव्यू ऑफ रिव्यूज' में यह बात लिखी थी। स्टेड तो संत निहालसिंह को 'टाइटैनिक' जहाज में अपने साथ ले जाना चाहते थे; परंतु उनकी (निहालसिंह की) पत्नी ने मना कर दिया। यदि वे स्टेड के साथ यात्रा करते, तो उनकी भी जल-समाधि हो जाती।

अभी कुछ महीने पहले हिंदी के एक प्रसिद्ध पत्रकार ने मुझसे संत निहालसिंह का पता पूछा, तो मुझे आश्चर्य तथा खेद भी हुआ, क्योंकि संत साहब तो बहुत वर्ष पहले ही स्वर्गवासी हो चुके थे। दुर्भाग्य की बात यही हुई कि किसी हिंदी पत्र ने उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित नहीं की। स्वयं मैं भी अपराधी हूँ; क्योंकि मैं भी उन पर कोई लेख नहीं

लिख पाया। बहुत दिनों तक मुझे भी उनके देहांत की खबर नहीं मिली थी।

संत निहालसिंह का जन्म सन १८८० के आस-पास रावलपिंडी में हुआ था। बाल्यावस्था से ही वे पुस्तकों के प्रेमी थे। जब कालेज में पहुँचे तो वे अंग्रेजी में अपनी कक्षा के सबसे तेज विद्यार्थी माने जाते थे; पर गणित में कमजोर थे। महान बनने की उनमें बड़ी आकांक्षा थी। एक दिन उनके मन में यह विचार आया कि अपने नगर में पड़े-पड़े इस आकांक्षा की पूर्ति नहीं हो सकती, इसलिए वे घर से भाग निकले। उस वक्त उनकी जेब में केवल एक रुपया था; पर उनका मनोरथ था एशिया-भर की यात्रा करने का। उस वक्त उनकी उम्र १८-१९ वर्ष की रही होगी। उसी एक रुपये के बल-बूते पर उन्होंने देश-विदेश की यात्राएं कर डालीं!

अपनी चीन-यात्रा में वे एक बार काफी बीमार पड़ गये और उन्हें अस्पताल में भरती होना पड़ा। जब स्वस्थ होकर वे वहाँ से निकले, उनकी जेब में कुछ ही पैनी पड़ी थीं। परंतु सौभाग्य से 'शंघाई मर्क्युरी' नामक

अंग्रेजी पत्र ने उनसे एक लेखमाला लिखने का अनुरोध किया। उन्होंने तुरंत यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया और शीघ्र ही वह लेखमाला लिख दी। उससे जो पारिश्रमिक मिला, वह उनके भोजन तथा यात्रा-व्यय के लिए पर्याप्त था।

चीन से संत निहालसिंह जापान पहुंचे। वहां भारतीय विद्यार्थियों ने उनसे कहा कि यहां लेख लिखकर कुछ कमा लेना असंभव होगा; पर संत निहालसिंह ने कुछ ही हफ्तों में उनकी भविष्यवाणी असत्य सिद्ध कर दी। लेख लिखकर उन्होंने जापान में अपना खर्च तो चला ही लिया, अमरीका की यात्रा के लिए पैसा भी जमा कर लिया। जापान में रहते समय वे वहां के प्रसिद्ध राजनीतिज्ञों से मिले और उनसे लेखों के लिए बहुत कुछ सामग्री भी एकत्र कर ली। उन्होंने यह नियम बना लिया था कि जिस भी नगर या देश में रहूंगा, वहां के सभी क्षेत्रों के विशेषज्ञों से मिलूंगा। जापान से वे अमरीका रवाना हुए और सन १९०६ में सियेटल (वाशिंगटन राज्य) पहुंचे। वहां उनका न कोई मित्र था, न किसी के नाम परिचय-पत्र, न जेब में पैसा ही।

उन्होंने बड़ी होशियारी से काम लिया। उन्हें पता लगा कि वैकूवर (कनाडा) में भारतीयों पर जुल्म हो रहे हैं। उन्होंने कनाडियन क्लबों में उसके बारे में भाषण देना शुरू किया, और पत्रों में लेख लिखना भी। हर जगह उनका हार्दिक स्वागत हुआ, जैसे वे कोई सिद्ध-पुरुष हों, यद्यपि उस

समय उनके पास न गरम कोट था और न जेब में पैसा। वे कनाडा छोड़कर न्यूयार्क आ गये और वहां उन्हें कुछ दिनों तक भूखों रहना पड़ा। कुछ दिन उन्हें आवारा आदमियों के साथ तंग कोठरियों में रहना पड़ा। पर उन्होंने हिम्मत नहीं हारी, यद्यपि उस समय उन्हें दिन में एक ही बार खाना मिल पाता था।

उन्हें भाषण देने के लिए निमंत्रण मिलते थे, पर यात्रा के लिए पैसे ही नहीं थे। पर वे इतने अच्छे वक्ता थे कि उनकी फटी-पुरानी पोशाक पर श्रोताओं का ध्यान ही नहीं जाता था। कुछ दिनों के भीतर ही उन्हें अमरीका की सुप्रसिद्ध पत्र-पत्रिकाओं में लेख लिखने के निमंत्रण मिलने लगे। सन १९१० में वे ब्रिटेन पहुंचे और वहां उनका हार्दिक स्वागत हुआ। ब्रिटेन से भारत आने से पहले वहां की पत्र-पत्रिकाओं ने उनसे लेख लिखने के लिए आग्रह किया। प्रायः उन्हें सप्ताह में प्रतिदिन सवेरे से लेकर शाम तक लेख लिखते हुए बैठे रहना पड़ता था; उन्होंने सैकड़ों लेख लिखे और कई ग्रंथ भी।

शिकागो में ही उन्होंने एक अमरीकी लड़की से शादी कर ली थी, जो स्वयं एक अच्छी पत्रकार थी और शिकागो के एक साप्ताहिक 'इंटरओशन' में काम करती थी। यह महिला बराबर उनके कार्य में सहायक रही।

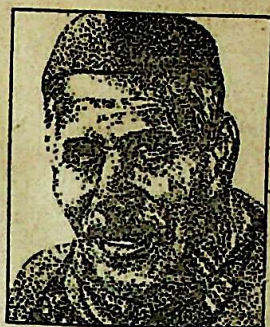
सन १९३४ या ३५ में मुझे भाई श्रीराम शर्मा के साथ देहरादून और मसूरी जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था और तब मैंने संत

निहालसिंह और उनकी पत्नी दोनों के दर्शन किये थे। उस समय उनकी धर्मपत्नी ने मुझे से कहा था—‘मिस्टर सिंह बहुत अच्छा भोजन बना लेते हैं और उन्होंने आज स्वयं ही खास तौर पर आप दोनों के लिए भोजन तैयार किया है।’ हम दोनों ने वह स्वादिष्ट भोजन किया। और बहुत-सी बातचीत भी होती रही। उनके घर पर पत्रों की कतरनों के ढेर व्यवस्थित रूप से रखे हुए थे। बात-चीत के प्रसंग में उन्होंने कहा था कि हमारा संग्रहालय किसी पत्रकार-विद्यालय के लिए उपयोगी होगा। यही बात उन्होंने रामानंद बाबू से कही थी, जब वे देहरादून गये थे।

स्वतंत्र पत्रकारिता के प्रयोग करते हुए संत निहालसिंह व्यावहारिक दृष्टि से अत्यंत कुशल बन गये थे। छोटे-बड़े सभी के साथ वे स्नेहपूर्ण संबंध स्थापित कर लेते थे। चूंकि मैं उनसे उम्र में बारह वर्ष छोटा था, इसलिए वे मेरा आधा नाम ही लिखते थे।

मेरे सहायक ब्रजमोहन वर्मा को भी वे नहीं भूले। उनके पत्र सदैव अत्यंत सुंदर अक्षरों में लिखे हुए होते थे। एक चिट्ठी में उन्होंने मुझे लिखा था—‘मेरे लेख का पारिश्रमिक यथासंभव शीघ्र ही भिजवाइये, क्योंकि यह सवाल मेरे लिए दाल-रोटी का है।’

आर्थिक दृष्टि से उन्हें निरंतर जागरूक रहना पड़ता था। कहीं भी उन्हें कोई काम मिले, तो वे उसे तुरंत स्वीकार कर लेते थे। एक रेल-कंपनी के लिए प्रचारात्मक लेख लिखने का कार्य उन्हें मिल गया, जिसे



श्री चतुर्वेदीजी

उन्होंने तुरंत स्वीकार कर लिया। राजेंद्र बाबू के अभिनंदन-ग्रंथ के लिए भी उन्होंने लेख लिखा था। ‘माडर्न रिव्यू’ के पुराने अंक उनके लेखों से भरे पड़े हैं।

अंतरराष्ट्रीय कीर्ति प्राप्त इस महान पत्रकार का जब स्वर्गवास हुआ, तो किसी हिंदी पत्र ने उन पर एक पंक्ति भी नहीं लिखी। अंग्रेजी पत्रों में कुछ छपा हो तो उसका हमें पता नहीं। कुछ समय पहले राजा महेंद्रप्रताप का एक पत्र मुझे मिला था, जिसमें उन्होंने लिखा था कि संत निहालसिंह अपना संग्रहालय सरकार के नाम कर गये हैं, पर सरकार ने उसकी रक्षा का कोई उचित प्रबंध नहीं किया।

संत निहालसिंह की स्मृति में किसी पत्र ने विशेषांक नहीं निकाला। उनका कोई स्मारक नहीं और लोग उन्हें बिलकुल भूल चुके हैं। संपादकाचार्य स्टैब साहव ने जिन्हें विश्व का एक अद्वितीय पत्रकार कहा था, उनके शुभ नाम की यह छीछालेदर हुई!

—फ़ीरोजपुर, जि. आगरा, उ. प्र.



मानव-शरीर प्रकृति का बनाया हुआ एक जटिल यंत्र है। हर यंत्र के संचालन के लिए ऊर्जा की आवश्यकता होती है। शरीर को यह ऊर्जा रक्त-शर्कराओं से प्राप्त होती है। मनुष्य जो कुछ खाता-पीता है, वह शर्करा में परिवर्तित होकर रक्त में मिल जाता है। शरीर को जब जरूरत होती है, रक्त-शर्करा ऊर्जा में परिवर्तित हो जाती है। इस प्रकार रक्त मानव शरीर में ऊर्जा के स्टोर और सप्लाई-एजेंट का काम करता है।

रक्त में शर्करा की मात्रा उचित अनुपात में रहे, यह उत्तरदायित्व एक प्रोटीन-हार्मोन का है, जिसे इन्सुलिन कहते हैं। शरीर में इन्सुलिन का अभाव होने पर रक्त में शर्करा की मात्रा बढ़ जाती है, उसकी धारण-क्षमता कम हो जाती है और वह मूत्र के साथ शरीर से बाहर आने लगती है। इसी को कहते हैं—मधुमेह (डायबिटीज)।

पिछले कुछ वर्षों में यह रोग काफी तेजी से फैला है। एक अनुमान के अनुसार, सारी दुनिया में लगभग दस करोड़ लोग इस रोग से पीड़ित हैं। ऐसा क्या कुछ हुआ है कि इतने सव लोगों के शरीर में इन्सुलिन का कम उत्पादन होने लगा? कोई स्पष्ट कारण अभी तक मालूम नहीं हो पाया है। यही कारण है कि मधुमेह के उपचार संबंधी खोज शरीर को बाहर से इन्सुलिन पहुंचाने तक सीमित रही है। लेकिन दोष यह है कि रोगी जीवन दवा पर आश्रित रहता है। असली और स्थायी उपचार तो यह होगा कि शरीर में ही इन्सुलिन का उत्पादन फिर से



विज्ञान-बिंदु

केजिता

शुरू कराया जा सके। इसी दिशा से अब इस समस्या को सुलझाने की कोशिश जेनेटिक इंजीनियरी के जरिये की जा रही है।

नेशनल मेडिकल सेंटर (कैलिफोर्निया, सं. रा. अमरीका) के उपनिदेशक डा. रैक-मील लेविन ने इस क्षेत्र में किये गये अनुसंधान-कार्यों पर हाल में प्रकाश डाला है। उनके अनुसार, उनकी प्रयोगशाला में एक मानव-जीन का संश्लेषण करने का प्रयत्न किया गया है, जिसकी सहायता से प्रयोगशाला में इन्सुलिन तैयार की जा सकेगी।

शोध-दल के एक सक्रिय सदस्य डा. राबर्ट क्री के अनुसार, प्रयोगशाला में जो

जीन तैयार की जाती हैं, वे पूर्णतः कृत्रिम होती हैं, इन्सानी नहीं। इन्सानी जीनों का अध्ययन उनके केमिकल कोडों को समझने के लिए किया जाता है। 'केमिकल कोड' से अभिप्राय जीन-विशेष की रासायनिक रचना का निर्धारण करना है। मानव-शरीर में जो जीन इन्सुलिन का उत्पादन करती हैं, उसकी रासायनिक संरचना को समझने के बाद वैज्ञानिकों ने उन्हीं घटक रसायनों की सहायता से प्रयोगशाला में कृत्रिम जीन का सफलतापूर्वक संश्लेषण किया है। यह संश्लिष्ट जीन प्राकृतिक जीन की तरह इन्सुलिन तैयार कर सकती है।

अभी मधुमेह के रोगियों को जो इन्सुलिन दी जाती है, वह पशुओं की पैक्रिया-ग्रंथियों से निकाली हुई होती है। यह पशु-जन्य इन्सुलिन कुछ रोगियों में एलर्जी पैदा करती पायी गयी है। आशा है, संश्लेषित मानव-जीन द्वारा उत्पादित इन्सुलिन मानव-शरीर को सहज स्वीकार्य हो सकेगी। यों भी जिस तेजी से यह रोग फैल रहा है, उससे इन्सुलिन की मांग इतनी बढ़ी है कि उसकी पूर्ति पशु-इन्सुलिन से करना अब बहुत कठिन हो जायेगा। इसलिए भी किसी अन्य स्रोत की जरूरत तो पड़ेगी ही।

समस्या पर एक और दिशा से भी आक्रमण किया जा रहा है। योजना यह है कि स्वस्थ पैक्रिया-ग्रंथियों से निकाली गयी इन्सुलिन-उत्पादक कोशिकाओं को सछिद्र प्लास्टिक की थैली में बंद करके मधुमेह के रोगी के शरीर में स्थापित कर दिया जाये।

थैली के गिद रक्त प्रवाहित होता रहेगा। कोशिकाएं इन्सुलिन तैयार करके रक्त में विसर्जित करती रहेंगी। मगर रक्त के श्वेतकण थैली में घुसकर कोशिकाओं पर हमला नहीं कर सकेंगे। प्लास्टिक थैली में जो छेद होंगे, वे इतने सूक्ष्म होंगे कि श्वेतकण उनमें से होकर थैली में प्रवेश न कर सकें; मगर भीतर से इन्सुलिन के कण बाहर निकल सकें।

भूगर्भीय भेदिये

देश के उत्तर-पूर्वी क्षेत्र में स्थापित कुछ रिफाइनरियों ने जोरहाट स्थित रीजनल रिसर्च लेबोरेटरी से खनिज तेल से संबंधित कुछ समस्याओं के समाधान तलाश करने का आग्रह कुछ समय पहले किया था। इनमें से एक महत्त्वपूर्ण सवाल यह था कि तेल के भंडारों की ठीक-ठीक अवस्थिति को 'पिन-पाइंट' करने का क्या तरीका हो, ताकि तेलकूप की खुदाई बिलकुल सही जगह शुरू की जा सके। साधारण भू-सर्वेक्षण विधियों से यह समस्या सुलझ नहीं पाती।

अब लगता है कि इस समस्या को सुलझाने का वैज्ञानिक आधार हाथ लग गया है। पता लगा है कि पृथ्वी की सतह के नीचे विभिन्न गहराइयों पर पाये जाने वाले अनक सूक्ष्म जीवों के परिवारों का भोजन वहां पर प्राप्य खनिज पदार्थ ही होते हैं। इसी तथ्य के सहारे कुछ सूक्ष्मजीवों के ऐसे परिवारों की पहचान की जा चुकी है, जो अपने भोजन के लिए पेट्रोलियम पर निर्भर होते हैं। मीथेनोजीन्स एक ऐसा ही परि-

वार बताया गया है।

इस कार्य के लिए जमीन के नीचे कुछ मीटर गहराई से मिट्टी के नमूने लेकर उनका रासायनिक विश्लेषण किया जाता है। अगर किसी नमूने में ब्यूटेन और प्रोपेन नामक रसायन पाये जायें, तो इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि वहाँ पेट्रोलियम-जीवी जीवाणु भी नीचे काफी गहराई पर जरूर होंगे। ब्यूटेन और प्रोपेन पेट्रोलियम-पोषित सूक्ष्मजीवों के शरीर से बाहर फँके गये रसायन हैं, जो धीरे-धीरे जमीन की गहराई से सतह की ओर अग्रसर होते हैं और सतह से कुछ मीटर नीचे तक आ पहुँचते हैं।

मीथेन गैस भी इस काम के लिए आधार मानी जा सकती है; परंतु उस पर पूरी तरह भरोसा नहीं किया जा सकता, क्योंकि जीवाणुओं के अलावा, सड़े हुए जैव पदार्थों से भी यह गैस निकलती है।

जोरहाट प्रयोगशाला के वैज्ञानिकों का एक दल इस क्षेत्र में काफी काम कर चुका है और एक सूचना के अनुसार, वह शीघ्र ही एक निर्णायक बिंदु पर पहुँचने वाला है। वास्ताने दिल

दुनिया दिल वालों की जरूर हो सकती है, मगर दिल की दुनिया की खैर-खबर रखने के लिए दिमाग चाहिये। एक ऐसे ही दिमाग वाले वैज्ञानिक हैं हंगरी के डा. पाल एल. वाघी, जिन्हें हृदय-अनुसंधान की अंतरराष्ट्रीय संस्था ने उनकी दिल-संबंधी महत्त्वपूर्ण खोजों के लिए हाल में सम्मानित नवनीत

किया है।

उनके शोध का विषय यह है कि दिल आक्सिजन का ग्रहण और उपभोग कैसे करता है। इसके द्वारा वे यह भी पता लगाना चाहते हैं कि धूम्रपान दिल को नुक्सान कैसे पहुँचाता है।

डा. वाघी इस परिणाम पर पहुँचे हैं कि धूम्रपान करते समय दिल को पहुँचने वाली आक्सिजन की मात्रा कम हो जाती है। जाहिर है कि 'चेन स्मोकर' जो कि लगभग हर समय धुएँ के कश खींचते रहते हैं, अपने दिल को काफी आक्सिजन से महरूम कर देते हैं। और दिल की तो खूराक ही आक्सिजन है। जब उसे खूराक ही पूरी नहीं मिलेगी, तो वह बेचारा कब तक अपनी गाड़ी घसीट सकेगा !

क्यामती कैफीन

हृदय-विशेषज्ञों का मत है कि कैफीन नामक रसायन हृदय के लिए काफी नुक्सानदेह है। पेय काफी में यह रसायन बड़ी मात्रा में रहता है। इसी कारण यह सुझाव दिया गया है कि एक दिन में दो-एक प्याले से अधिक काफी न पी जाये। प्रसिद्ध भारतीय हृदय-विशेषज्ञ डा. एम. ताजुद्दीन के अनुसार, पांच-छह प्याले काफी हर रोज पीने वाले व्यक्ति के दिल के रोग से ग्रसित होने की संभावना काफी अधिक होती है। इस दृष्टि से चाय को अपेक्षाकृत कम हानिकारक बताया गया है।

अमरीका के हार्वर्ड यूनिवर्सिटी मेडिकल कालेज में शोधरत दो भारतीय वैज्ञानिक

जनवरी

डा. एल. कौल और डा. बी. अहलूवालिया ने हाल में अपने शोधकार्य और उसके परिणामों की चर्चा करते हुए बताया है कि जो महिलाएं नियमित रूप से ओरल पिल और काफी दोनों का सेवन करती हैं, उनमें बहुत-सी ब्लड-प्रेशर से ग्रस्त पायी जाती हैं।

इन शोधकर्ताओं ने पिल का सेवन करने वाली और न करने वाली महिलाओं के रक्त-सीरम में उपस्थित कैफीन की मात्रा नापी और वे इस नतीजे पर पहुंचे कि पिल के रसायन शरीर में कैफीन के उपापचयन (मेटाबोलिज्म) को प्रभावित करते हैं। हाई ब्लडप्रेशर से ग्रस्त महिलाओं के सीरम में सामान्य महिलाओं की अपेक्षा एस्ट्रोजेन और प्रोगेस्टोजेन का अधिक मात्रा में पाया जाता भी इसी तथ्य की ओर संकेत करता है कि कैफीन और पिल का ब्लड-प्रेशर से संबंध है। एस्ट्रोजेन और प्रोगेस्टोजेन को मिलाकर ही ओरल पिल बनायी जाती है। पिल परमावश्यक

मगर ऐसा लगता है पिल से अब मानव-जाति को छुटकारा मिलना मुश्किल ही है। हां, उनके सेवन की सारी जिम्मेदारी केवल औरतों की नहीं रह जायेगी। पुरुष भी अब पिल का सेवन करेंगे। परंतु चूंकि पुरुष का प्रजनन-तंत्र अलग ढंग से काम करता है, इसलिए उसकी पिल भी अलग किस्म की होगी।

नयी दिल्ली के नेशनल इंस्टिट्यूट ऑफ हेल्थ एंड फैमिली वेलफेयर के प्रजनन-जैवचिकित्सा विभाग के अध्यक्ष डा. सोम-

नाथ राय बताते हैं कि उन्होंने साइप्रोटिरोन एसीटेट नामक रसायन को लेकर जो पुरुष-पिल तैयार की है, वह पुरुष-शुक्राणुओं (स्पर्म) की संख्या कम करने के साथ ही बचे जिंदा शुक्राणुओं को भी अशक्त कर देती है। फलतः वे शुक्राणु स्त्री की योनि-नलिका में पहुंचने पर भी गतिहीन ही रहते हैं।

स्वेच्छा से पिल खाने वाले कुछ पुरुषों द्वारा उत्सर्जित शुक्राणुओं की परीक्षा करने पर पाया गया कि उनके ६० से लेकर ७० प्रतिशत तक शुक्राणु गतिहीन हो जाते हैं। साथ ही इसकी भी जांच की गयी कि पिल खाने से कहीं पुरुष की संभोगेच्छा और संभोगशक्ति पर तो कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता और डा. राय का दावा है कि ऐसा कोई दुष्प्रभाव नहीं देखा गया है।

अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान के कुछ अन्य शोधकर्ता एक नये रसायन को इस कार्य के लिए अजमा रहे हैं। उसका नाम है-नारईथीनड्रोन एसीटेट। बताया जा रहा है कि इस रसायन की सहायता से शत-प्रतिशत सफलता संभव है। यह भी कहा जा रहा है कि इसका निरंतर सेवन करने की जरूरत नहीं पड़ेगी और आवश्यकता पड़ने पर पुरुष अपनी संसेचन-क्षमता और शक्ति को पुनः प्राप्त कर सकेगा।

अभी ये पुरुष-पिल निर्माण और विकास की स्थिति में ही हैं। इनमें क्या खामियां हैं, यह तो अभी पता चलेगा जब इनका व्यापक रूप से उपयोग होने लगेगा।



कफन ईसा मसीह का?

हरमन चौहान द्वारा प्रस्तुत

लोग उसे भक्तिपूर्वक 'सांता सिदोने' कहते हैं। वह बहुत पुरानी लिनेन का बड़ा-सा टुकड़ा है—कई जगह से मरम्मत किया हुआ और धुंधले रंगीन धब्बों एवं जलने के निशानों से युक्त। लंबाई में वह १४ फुट ३ इंच है और चौड़ाई में ३ फुट ७ इंच। सामान्यतः वह बड़ी सावधानी से तह करके चांदी के काम वाली एक काष्ठ-मंजूषा में रखा रहता है तुरीन (इटली) के प्रधान गिरजे के शाही प्रार्थना-गृह की वेदी के ऊपर बने जालीदार आले में, और आले पर जड़े रहते हैं कई-कई ताले।

पिछले ४०० वर्षों से 'सांता सिदोने' को प्रायः एक पीढ़ी में, एक बार खोलकर रखा जाता है और तब ईसाई दर्शनार्थियों की भीड़ उमड़ पड़ती है तुरीन में। पिछले साल २७ अगस्त से छह सप्ताह तक उसे दर्शनार्थ रखा गया था और तीस लाख भक्तों ने उस पर बनी धुंधली दोहरी मनाव-आकृति

को निहारकर धन्यता अनुभव की थी। दस कार्डिनल और सौ बिशप भी आये थे।

श्रद्धालु मानते हैं कि यह दोहरी आकृति ईसा मसीह के शव की छाप है। ऐसी मान्यता है कि सलीब से उतारकर मसीह के शव को इस कपड़े के आधे हिस्से पर लिटाकर शेष कपड़ा उसके ऊपर ओढ़ा दिया गया था (देखिये—चित्र पृष्ठ ४६) और तब पसीने और खून से सनी उनकी दिव्य देह की दोहरी छाप इस कपड़े पर पड़ गयी थी।

प्रश्न उठता है कि क्या सचमुच यह कपड़ा ईसा मसीहा का कफन है? इसकी जांच पिछले साल अक्तूबर से यूरोपीय और अमरीकी विज्ञानी नवीनतम वैज्ञानिक विधियों और उपकरणों से कर रहे हैं। जांच के परिणाम सामने आने में अभी शायद समय लगेगा। परंतु इस 'पवित्र कफन' और इसके बारे में अब तक हुई खोजों का परिचय तो पा लें।

जब 'पवित्र कफन' को पूरा फैला दिया जाता है, तो उसकी लंबाई में मानव-शरीर की धुंधली-सी दोहरी आकृति दिखाई देती है। ललछाँह भूरे रंग की इन दो मानव-आकृतियों के सिर आपस में छूते हैं और पैर विपरीत दिशा में हैं। एक आकृति शरीर के अग्रभाग की है, दूसरी पृष्ठभाग की। सामने वाली आकृति में भरी-पूरी दाढ़ी और घूरती हुई आंखों वाली मुखाकृति है। किरमिजी धब्बों की दो धाराएं इस तरह आकर पेड़ू के ऊपर मिलती हैं कि जैसे दोनों हाथों की कलाईयां एक साथ बांधकर हथेलियां पेड़ू पर रख दी गयी हों। पृष्ठभाग की आकृति में जगह-जगह नन्ही डम्बवेल जैसे बहुत-से निशान हैं जो किरमिजी रंग के हैं।

दोनों आकृतियों के दायें-बायें दो सीधी रेखाओं में बड़े-बड़े निशान हैं। ये कपड़े के जलने-झुलसने और मोटे कपड़े की थिगली बगाकर मरम्मत किये जाने के प्रमाण हैं। इनके बलावा टेढ़े-मेढ़े सुराखों के चार जोड़े भी हैं।

कहा जाता है कि 'पवित्र कफन' तुरीन के प्रधान गिरजे में पहुंचने से पहले कैम्बरी के गिरजे में रखा हुआ था। वहां आग लग जाने पर मंजूषा पर मढ़ी कुछ चांदी पिघलकर अंदर रखे वस्त्र पर चू पड़ी और उस हिस्से का कपड़ा जल-झुलस गया। क्लेयर मठ की संन्यासिनियों ने थिगलियां लगाकर उसकी मरम्मत कर दी।

सुराखों के किनारे जले हुए ह। अगर 'पवित्र कफन' को एक बार लंबाई में, फिर

एक बार चौड़ाई में तहाया जाये तो सुराखों के चारों जोड़े ठीक एक-दूसरे पर आते हैं। अनुमान है कि शायद कभी किसी ने लोहे की गरम सलाख घोंपकर 'पवित्र कफन' को नष्ट करने का यत्न किया था। यह वारदात



कफन पर की आकृति (अधिक स्पष्ट बनाकर) और जलने के दाग व थिगलियां।
हिंदी डाइजेस्ट



‘कफन’ पर शव ऐसे
लिटाया गया होगा।

१५१६ ई. से पहले ही हुई होगी; क्योंकि उस वर्ष ‘पवित्र कफन’ के जो चित्र बने, उन पर भी सूरख अंकित हैं।

यह प्रश्न स्वाभाविक रूप से उठता है कि यदि सचमुच यह ईसा मसीह का कफन था और इस पर उनके शरीर की छाप बन गयी थी, तो बाइबल में इसका जिक्र क्यों नहीं है? दूसरी बात यह है कि ‘पवित्र कफन’ का सबसे पहला जिक्र चौदहवीं सदी ई. में मिलता है; उससे पहले इतनी सदियों तक यह चमत्कारी धार्मिक अवशेष कहां तो छिपा रहा और एकाएक प्रकट कैसे हो गया?

असल में ‘पवित्र कफन’ की ज्ञात कहानी १९ सितंबर १३५६ को आरंभ होती है। उस दिन प्वात्या (फ्रांस) के मोर्चे पर अंग्रेज सना फ्रांसीसी सम्राट को लगभग कैद कर लेने को ही थी कि ज्योफ्री दे शार्नी नामक फ्रांसीसी सरदार अंग्रेजों की राह रोककर खड़ा हो गया। बड़े उग्र संघर्ष के बाद दे शार्नी भाले के आघातों से मरकर गिरा। तब तक फ्रांसीसी सम्राट को निकल भागने का मौका मिल गया।

इसी ज्योफ्री दे शार्नी के पास यह ‘पवित्र कफन’ था। यह उसने कहां से और कैसे हासिल किया था, इसकी जानकारी भी उसी के साथ सदा के लिए दफन हो गयी। सच तो यह है कि दे शार्नी के जीवन-काल में भी इस

नवनीत

पवित्र अवशेष के अस्तित्व के बारे में किसी को कुछ पता नहीं था। मगर उसकी मृत्यु के कुछ समय बाद उसकी दुर्दशाग्रस्त विधवा इसका प्रदर्शन करने लगी, जो सिलसिला उसके बेटे ने भी जारी रखा।

स्थानीय विशपों ने तब इसका तीव्र विरोध किया था और उन्हीं दिनों किसी ने लिखा था :

‘हमारे प्रभु की आकृति की छाप, वाला यह (वस्त्र) उनका असली कफन नहीं हो सकता, क्योंकि पवित्र सुसमाचारों में ऐसी छाप का कोई उल्लेख नहीं है, जबकि अगर यह असली होता तो यह लगभग असंभव है कि सुसमाचार-लेखक इसे दर्ज किये बिना छोड़ देते या कि यह तथ्य हमारे समय तक छिपा रहता।’

था भी वह जमाना ऐसी जालसाजियों का ही। यही नहीं, मृत सरदार के उत्तराधिकारियों ने ‘कफन’ के प्रदर्शन बंद कर दिये और जालसाजी के आरोप का कोई प्रतिवाद भी जारी नहीं किया। इससे संशय और भी घना हो उठा। बाद में सन १४५३ में सरदार की पोती ने, जो कि विधवा और निःसंतान थी, इसे सेवाय कें ड्यूक के हवाले कर दिया। तभी से इसे प्रतिष्ठा प्राप्त हुई।

पिछले साल मई में ब्रिटेन के विख्यात प्रकाशक विक्टर गोलांस्ज़ ने ‘द तूरीन

आउड' नाम की पुस्तक प्रकाशित की है। उसके लेखक इयन विलिस ने 'पवित्र कफन' से संबंधित तमाम तथ्यों का गहराई से अध्ययन किया है और इस वस्त्र का बारीकी से निरीक्षण भी किया है।

वे बताते हैं कि 'कफन' पर बनी आकृति को बहुत नजदीक से, या आतशी शीशे से देखने पर वह वस्त्र में विलीन-सी हो जाती है। अगर यह सचमुच किसी कलाकार द्वारा अंकित है, तो इसे 'इम्प्रेगनिस्ट' शैली का चित्र मानना होगा; मगर उस शैली का जन्म तो पांच सौ साल बाद हुआ। यों भी एक इतालवी विज्ञानी ने जांच-पड़ताल करके बताया है कि कपड़े पर कोई पेन्ट मौजूद नहीं है। आकृति अगर किसी द्रव से निर्मित होती तो रेशों में वह द्रव पैठ जाता; मगर रेशों के अध्ययन से ऐसी किसी चीज का अस्तित्व प्रकट नहीं हुआ है।

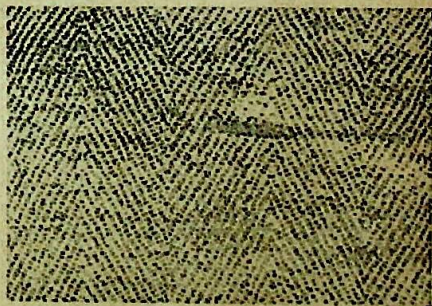
आज से अस्सी वर्ष पूर्व सेकंदोपिया नाम के इतालवी वकील ने 'पवित्र कफन' का सबसे पहला फोटोग्राफ लिया था। उसने इसके लिए उन दिनों प्रचलित कांच का निगेटिव उपयोग किया था। जब वह उसे डार्करूम में ले गया, तो वह चकित रह गया। जब 'कफन' पर ही मुखाकृति धुंधली है, तो निगेटिव पर तो और धुंधली होनी चाहिये। मगर सेकंदोपिया ने डेवलपर में देखा कि कपड़ा तो काला दिख रहा है किंतु मुखाकृति मुंदी हुई आंखों वाले शानदार शाही चेहरे में बदल गयी है। सन १९३१ में गुडसेप्पी एनरी नामक पेशेवर फोटोग्राफर ने जो

फोटो लिया, उसमें मुखाकृति और भी स्पष्ट दिखती थी।

ऐसा प्रतीत होता है, जैसे 'कफन' पर बना हुआ चित्र अपने आपमें निगेटिव है। क्या फोटोग्राफी के आविष्कार के कई सौ साल पहले कोई चित्रकार संयोग से ऐसा निगेटिव चित्र रच दे, यह संभव था?

जब अमरीकी वायुसेना अकादमी के भौतिकी के उप-प्राध्यापक डा. जैक्सन ने अमरीकी अंतरिक्ष-कार्यक्रम में प्रयुक्त वी. पी-८ इमेज एनालाइजर से 'पवित्र कफन' पर की आकृति का अध्ययन किया, तो यह देखकर वे स्तब्ध रह गये कि यह आकृति तो पूर्णतया त्रिविमीय (थ्री-डाइमेंशनल) चित्र है।

क्या यह संभव है कि कपड़े पर लिटाया गया शव उस पर अपने उभारों और गड्ढों की स्थायी छाप छोड़ जाये? इसी तरह, क्या यह संभव है कि पसीना और खून कपड़े पर आकृति अंकित कर दें? ये प्रश्न तो बने ही रहते हैं। एक दलील यह है कि भयंकर

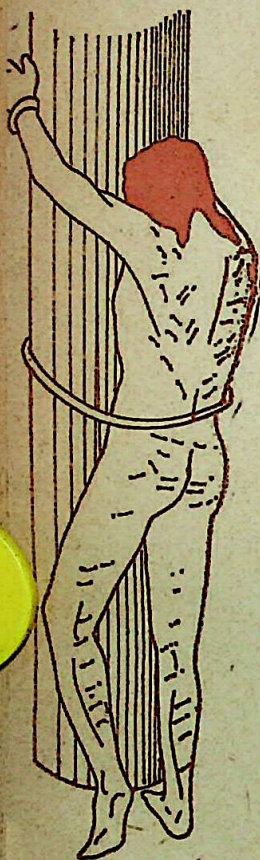


कफन के वस्त्र की बुनावट।

हिंदी डाइजेस्ट

वेदना के क्षणों में पसीने में कुछ विशष रसायन निकलते हैं, जिनसे यह संभव है। मगर परीक्षणों व प्रयोगों से सिद्ध होने तक इसे मानना कठिन है।

‘कफन’ पर बनी आकृति ५ फुट ११ इंच लंबे आदमी की है और नृवंशशास्त्री कार्ल-

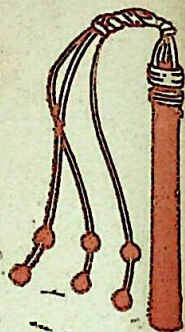


कोड़ों से पिटाई
नवनीत

टन कूल ने मुखाकृति का अध्ययन करके बताया है कि ऐसी आकृतियां कुलीन अरबों या सेफारिक यहूदियों में देखी जाती हैं। केश और दाढ़ी का कट रोमन यहूदियों जैसा है।

विस्मय की बात यह है कि ‘पवित्र कफन’ की जांच करने वाले चिकित्सकों में से बहुतों की राय इसे प्रामाणिक मानने के पक्ष में होती जा रही है। इस सदी के आरंभ में पेरिस के सोरबान विश्वविद्यालय में शरीररचना-शास्त्र के प्राध्यापक रहने वाले दे लाज, सन १९३०-४० के फ्रांसीसी सर्जन प्येर बाबैट,

आजकल के ब्रिटिश निदानशास्त्री डा. डैरेक वैरोविक एवं डा. डेविड विलिस, अमरीकी निदान-शास्त्री डा. राबर्ट बकलिन, चिकित्सक डा. एन्टनी सारा और इटली की न्यायिक-चिकित्साशास्त्र की



रोमन कोड़ा प्राध्यापिका जुडिथ कोर्दिग्लिया ‘पवित्र कफन’ के बारे में कई बातों में आपस में सहमत नहीं हैं; मगर वे सभी यह मानते हैं कि ‘पवित्र कफन’ पर बनी आकृति पांच बातों में बाइबल में आये वर्णनों से मेल खाती है :

१. मुखाकृति में खासकर दायीं आंख के नीचे सूजन के लक्षण हैं और मुंह पर उथले घावों के चिह्न हैं—बेशक सामान्य दर्शक इन्हें पहचान नहीं पाते—और बाइबल में कहा गया है कि ईसा के मुंह पर प्रहार किये गये थे।

२. सारे पृष्ठभाग पर और कहीं-कहीं अगले भाग पर भी छोटे डम्बवेल के से निशान हैं, जिनकी संख्या ९० से कुछ अधिक है। ये निशान रोमन कोड़ों से पीटे जाने के हैं। रोमन कोड़े में चमड़े की दो-तीन पट्टियां होती थीं, जिनके खुले सिरे पर मनकों के जोड़े पिरोये रहते थे। रोमन रिवाज था कि सूली पर चढ़ाने से पहले अपराधी पर कोड़े बरसाये जाते थे। ‘सुसमाचारों’ में

ईसा की ऐसी पिटाई का उल्लेख है।

३. आकृति के माथे तथा सिर के पिछले भाग एवं पाश्वर्षों पर खून बहने के चिह्न हैं; ये ईसा को कांटों का ताज पहनाये जाने की पुष्टि करते हैं।

४. हाथों-पैरों से रक्त निकलकर बहने के निशान इस वर्णन से मेल खाते हैं कि ईसा के हाथों-पैरों में कीलें ठोंकी गयी थीं।

[यहां एक बात उल्लेखनीय है। फ्रांसीसी सर्जन वार्बेट ने सिद्ध किया है कि 'पवित्र कफन' पर जिस मनुष्य की छाप है, उसकी कलाईयों में कीलें ठोंकी गयी थीं। सलीव पर टंगे ईसा मसीह के चित्रों में चित्रकारों ने हथेलियों में कीलें दिखायी हैं। सन १९६८ में इटालीली पुरातत्त्वज्ञ पहली सदी ई. के एक यहूदी कब्रिस्तान की खुदाई करवा रहे थे। वहां उन्हें सलीव पर चढ़ाकर मारे गये मनुष्य की पहली ठठरी मिली। उसमें कीलें कलाई में ही ठोंकी हुई थीं। अलबत्ता बाकी बातों में कुछ अंतर था।]

५. 'पवित्र कफन' पर की आकृति में दायीं ओर की पांचवीं व छठी पसली के बीच अंडाकार घाव है। वाइबल (युहन्ना का सुसमाचार) के अनुसार, सलीव पर टंगे ईसा की पसलियों में भाला घोंपा गया था।

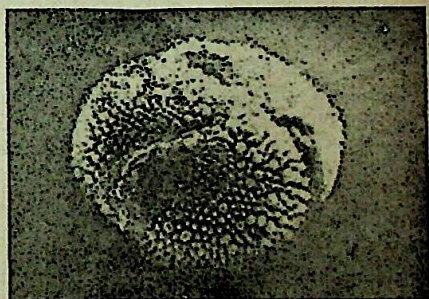
परंतु वाइबल के अनुसार ईसा के सिर पर कांटों का ताज पूर्वाह्न में पहनाया गया था और भाला घोंपा गया था सांझ को, जब तक सिर से निकला खून जमकर सूख चुका होगा। मगर 'पवित्र कफन' पर उसकी छाप बैंगनी-किरमिजी रंग की है। इससे

भी बड़ी बात यह कि जब 'कफन' से लिये गये धागों की पैराक्साइडस जांच की गयी, तो खून की उपस्थितिका कोई प्रमाण नहीं मिला। क्या कैम्बरी के गिरजे में लगी आग ने 'कफन' को झुलसाने-जलाने के साथ खून को भी निष्प्रभाव बना दिया?

डा. मैक्स फ्राइ पचीस वर्ष तक ज्यूरिच (स्विट्जरलैंड) की पुलिस-प्रयोगशाला के अध्यक्ष रहे थे। उन्हें सूझा कि यदि यह 'कफन' प्रामाणिक है, तो यह मूलतः फिलस्तीन से आया होगा; और वहां रहते समय इस पर जो धूल आदि गिरी, उसके कुछ तो कण इस पर जरूर होंगे। तुरीन के आर्च-बिशप की अनुमति से उन्होंने 'कफन' पर से कुछ धूलिकण लेकर सूक्ष्मदर्शक के नीचे



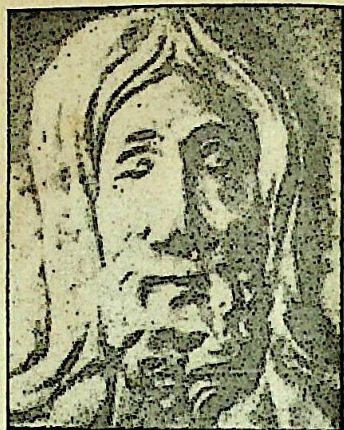
कफन-खंड-जांच के लिए काटा गया।



लिनल मैक्रोनेटस-कफन पर प्राप्त एक पराग-कण।

हिंदी डाइजेस्ट

उनकी जाँच की। उसमें उन्हें हैलोफाइट कुल की वनस्पतियों के पराग के कुछ कण मिले। ये पौधे नमक (सोडियम क्लोराइड) की उच्च मात्रा वाले परिवेश में पन-पते हैं। ऐसा परिवेश केवल मृत सागर (डेडसी) के आप-पास है। तुर्की इलाके के कुछ पौधों के पराग-कण भी 'कफन' पर मिले। (पराग के कण बड़े ही सख्त होते हैं और चिरकाल टिकते हैं।) सो 'कफन' कभी फिलस्तीन और तुर्की इलाके में रहा होगा और यह चौदहवीं सदी से पहले की बात ही हो सकती है।



‘द तूरीन श्राउड’ के लेखक इयन विलिस का खयाल है कि चौदहवीं सदी से पहले ‘पवित्र कफन’ का उल्लेख नहीं मिलने का कारण शायद यह है कि इस काल से पहले उसे कफन के बजाय, अन्य ही किसी रूप में जाना जाता था। किस रूप में भला ?

लेखक विलिस ने अपनी पुस्तक में इसका लंबा और जटिल उत्तर दिया है। उसका सार जान लेना ही काफी होगा।

ईसा मसीह की जो विभिन्न मुखाकृतियां चित्रों और मूर्तियों में अंकित की गयी हैं, उनमें से एक मुखाकृति ऐसी है, जिसमें बे ठीक सामने देखते हुए दिखाये जाते हैं। इस रख वाले विभिन्न चित्रों व मूर्तियों में दाढ़ी और केशों के विन्यास में कुछ-कुछ अंतर भले हो, मगर नाक-नकश की गहरी समानता पायी जाती है। ठेठ छठी सदी में बने चित्रों आदि तक में यह समानता देखी जा सकती है। इसके सबसे पुराने नमूनों

हमस से प्राप्त चांदी के पात्र (छठी सदी ई.) पर बना ईसा का मुखड़ा—कफन पर की मुखाकृति से आश्चर्यजनक साम्य।

में से एक है शाम (सीरिया) के हमस नामक स्थान से प्राप्त, छठी सदी ई. के चांदी के एक बरतन पर अंकित ईसा-मुख। उसे देखकर यह खयाल आये बिना नहीं रहता कि उसे अंकित करने वाले ने ‘पवित्र कफन’ पर की मुखाकृति अवश्य देखी होगी। सच तो यह है कि ऐसी आकृति छठी सदी से पहले के अंकनों में दिखाई नहीं देती। चौथी-पांचवीं सदी में ईसा बहुधा दाढ़ी-मूंछ रहित तरुण के रूप में दर्शाये गये हैं या हल्की दाढ़ी और लंबे वालों वाले युवक के रूप में।

फिर छठी सदी में यह घनी दाढ़ी वाली मुखाकृति कहाँ से टपक पड़ी ? ईसाई कला के इतिहासकार इस मामले में चुप ही हैं। मगर पूर्वी यूरोप व पश्चिम एशिया में प्रचलित अर्थोडॉक्स चर्च की परंपरा में इसका

मुमुक्षु भवन वेद वेदाङ्ग पुस्तकालय

कुछ उत्तर मिलता है।

अस्सी, बाराणसी

तो उन्हें झटका-सा लगा होगा।

आर्थोडाक्स चर्च की दृढ़ मान्यता रही है कि ईसा की मुखाकृति का मूल आधार है एक चमत्कारी वस्त्र पर अंकित ईसा की छवि। इस चमत्कारी वस्त्र को उनके यहां 'मेन्डिलियन' कहा गया है। इस 'मेन्डिलियन' की नकलें आज भी आर्थोडाक्स संप्रदाय के गिरजों में पायी जाती हैं। पर मूल 'मेन्डिलियन' तेरहवीं सदी में कुस्तुंतुनिया से गायब हो गया। उससे बहुत पहले छठी सदी ई. में भी एक बार वह गायब हुआ था और एशियाई तुर्की के एदेसा नगर में प्रकट हुआ था। और अभी हम कह आये हैं कि छठी सदी से ही ईसा की एक खास मुखाकृति को अंकन की परिपाटी चली।

'मेन्डिलियन' के बारे में बहुत-सी जानकारी दर्ज मिलती है। मान्यता है कि ईसा मसीह ने ग्रेथ्समेन की यातना के समय अपना मुँह धोया और एक कपड़े से सुखाया। तब उनकी मुखाकृति उस वस्त्र पर अंकित हो गयी थी। यही वस्त्र 'मेन्डिलियन' कहलाया। 'मेन्डिलियन' की जो अनुकृतियां आर्थोडाक्स संप्रदाय के पुराने गिरजों में हैं, उनमें भी ललछाँह भूरे रंग की, कुछ वैसी ही सामने देखती हुई मुखाकृति देखने को मिलती है, जैसी 'कफन' पर है।

इयन विलिस की राय है कि 'मेन्डिलियन' ही 'पवित्र कफन' है। वे दलील देते हैं कि ईसा मसीह के शिष्य तो मूलतः यहूदी थे—यहूदी संस्कारों में पले और पगे। जब उन्होंने कफन पर मसीह के शरीर की अकृति अंकित

रक्त-सना कफन यहूदी परंपरा के अनुसार तो अपवित्र चीज थी। यदि रहिवादी यहूदी कफन को देख लेते तो अवश्य ही नष्ट कर देते। शायद इसीलिए शिष्यों ने इसका बाइबल में भी जिक्र नहीं किया।

एक अनुश्रुति के अनुसार, ईसा मसीह को उनके जीवन-काल में ही एशियाई तुर्की के एदेसा शहर के शासक एबगार (पंचम) ने अपने यहां निमंत्रित किया था। (ऐतिहासिक प्रमाण इसकी पुष्टि करते हैं कि एबगार पंचम १३-५० ई. में एदेसा पर शासन करता था।) ईसा तो एदेसा नहीं जा सके; मगर उनकी मृत्यु के बाद उनका एक शिष्य तादेयस (जो बारह मुख्य शिष्यों में गिने जाने वाले तादेयस से भिन्न था) एदेसा गया और वहां उसने ईसाइयत का प्रचार किया।

परंपरागत मान्यता है कि तादेयस अपने संग 'मेन्डिलियन' भी ले गया था। मगर एबगार (पंचम) की मौत के बाद वहां के राजाओं ने ईसाइयत को तो तिलांजलि दी ही, ईसाइयों पर अत्याचार भी किया।

अगली पांच सदियों तक 'मेन्डिलियन' कहां रहा, इसका कुछ पता नहीं चलता। मगर छठी सदी में, शायद ५२५ ई. की बाढ़ के बाद जब शहर का पुनर्निर्माण हो रहा था, नगर-द्वार के ऊपर एक तरेड़ को खोलने पर उसमें अन्य अनेक वस्तुओं के साथ ईसा मसीह की एक तस्वीर मिली, जो 'हारथो से अर्निमित' थी। लोगों ने उसे 'मेन्डिलियन'

१९७९



मुमुक्षु भवन वेद वेदाङ्ग पुस्तकालय

गण पत्र १४५ मार

हिंदी डाइजेस्ट

बाराणसी

आगत क्रमांक ३५३६



अनुवाद : राजेन्द्र शर्मा

यह शादी शुरू से ही डा. सोलोमन मार्गोलिन के लिए परेशानी की वजह बन गयी थी। शादी इतवार को होने वाली थी, पर ग्रेटल की शिकायत थी कि ले-देकर उसे एक इतवार ही उनके साथ बिताने को मिलता है और वह भी अक्सर यों ही जाया हो जाया करता है। उनकी शामें अक्सर समाज-सेवा के कामों में बीत जाती थीं, और वे ग्रेटल को वक्त दे ही नहीं पाते थे। वे एक समिति के सदस्य थे, जो यहूदियों के लिए स्वतंत्र देश की मांग कर रही थी; एक यहूदी शैक्षणिक संस्था के संचालक-मंडल में भी वे थे; और एक यहूदी त्रैमासिक के सहसंपादक भी। और हालांकि वे अपने को नास्तिक कहते थे, पर सीडर जैसे

त्योहार की दावतों में वे वरसों से ग्रेटल को लेकर अपने गांव सैन्सीमिन के पुराने मित्र अब्राहम मेखल के यहां जाया करते थे। यहूदी पादरियों, शरणार्थियों और लेखकों का इलाज डा. मार्गोलिन मुफ्त कर दिया करते थे, जरूरत पड़ने पर उन्हें मुफ्त दवा-इयां और अस्पताल में बिस्तर भी दे देते थे।

अब अब्राहम मेखल अपनी सबसे छोटी लड़की सिल्विया की शादी करने जा रहा था। ग्रेटल ने तो इतनी दूर जाने से साफ मना कर दिया था। उसके अनुसार, शादियों में गरिष्ठ खाना खाने और नींद खराब करने के अलावा होता ही क्या है? शायद मेरी पत्नी सच कहती है, डा. मार्गोलिन ने सोचा। उन्हें सोने का मौका कब मिलेगा?

नवनीत

सोमवारकी सुबह रोज की तरह उन्हें अस्पताल पहुंचना होगा। ये शादियां उन्हें वैसे भी नापसंद थीं, क्योंकि इनमें यहूदी संस्कृति का बड़ा बिगड़ा हुआ रूप सामने आता था। यहूदी अपनी भाषा को बड़े बनावटी अंग्रेजी-नुमा लहजे में बोलते थे, संगीत कर्णकटु होता था, नाच जंगली। अपनी ईसाई पत्नी को ऐसे मौकों पर ले जाने में वे शरम महसूस करते थे। वह भी समझने लगी थी कि अमरीका में यहूदी धर्म अपनी पहचान खो चुका है। पर इस बार वह नहीं जा रही थी और उन्हें सफाई नहीं देनी पड़ेगी, उन्होंने सोचा।

साधारणतः इतवार को सुबह के नाश्ते के बाद वे अपनी पत्नी के साथ सेंट्रल पार्क में टहलने निकल जाते थे। पर आज वे बिस्तर में ही लेटे रहे। धीरे-धीरे उन्होंने सेन्सीमाइनर समाज के उत्सवों में जाना बंद कर दिया था। उनका गांव सैन्सीमिन कभी का बरवाद हो चुका था। वहां उनके परिवार के शेष सदस्यों को किसी जमाने में भीषण यातनाएं देकर मार डाला गया था। गांव के बचे-खुचे लोग भागकर अमरीका आ गये थे। वे लोग शिकायत करते थे कि सोलोमन उनसे दूर होता जा रहा है और अपने आपको बड़ा आदमी समझने लगा है। फिर भी उन्हें शादी में जाना था—भेंट तो वे पहले ही भेज चुके थे।

रात में काफी बर्फ गिरी थी और सुबह बड़ी बदरंग थी। सोलोमन ने देर तक सोने का इरादा किया था, पर आज उनकी नींद

और जल्दी खुल गयी थी। आखिर उन्होंने बिस्तर छोड़ दिया, उठकर दाढ़ी बनायी, भूरे बालों को छांटा। फिर भी उनकी ढलती उम्र साफ दिख रही थी, आंखों के नीचे सूजन थी और चेहरे पर झुर्रियां। नाश्ते के बाद वे ड्राइंग-रूम के सोफे पर लेट गये। यहां से ग्रेटल दिख रही थी, जो पेटीकोट पहने थी और रसोई में खड़ी कपड़ों पर इस्तिर कर रही थी। ग्रेटल बर्लिन के उस अस्पताल में नर्स थी, जहां वे कभी डाक्टर थे। उसका एक भाई नात्सी था और रूस की जेल में मर गया था। दूसरा साम्यवादी था और उसे नात्सियों ने गोली से उड़ा दिया था। उसका बूढ़ा बाप हैम्बर्ग में अपनी दूसरी बेटी के साथ रहता था, जहां ग्रेटल उसे बराबर पैसे भेजती रहती थी। वह खुद भी अपने तौर-तरीकों में लगभग यहूदिन हो गयी थी।

डा. मार्गोलिन ने जम्हाई ली, सिगरेट उठायी और अपने बारे में सोचने लगे। अपने व्यवसाय में उन्हें काफी सफलता मिली थी। उनके साथी उनका आदर करते थे और न्यूयार्क के यहूदियों में वे एक महत्वपूर्ण व्यक्ति थे। उनका दवाखाना वेस्ट एंड एवेन्यू में था और उनके मरीज काफी पैसे वाले लोग थे। सैन्सीमिन के एक गरीब धर्म-शिक्षक का बेटा इससे ज्यादा और क्या उम्मीद कर सकता था? उनका कद लंबा और व्यक्तित्व आकर्षक था और स्त्रियों को खुश करने में वे माहिर थे। वे अभी भी उनका साथ ढूंढते थे, हालांकि उनकी उम्र

काफी हो चुकी थी और रक्तचाप भी था।

पर भीतर ही भीतर वे जानते थे कि अपनी जिंदगी में वे असफल रहे हैं। बचपन में लोग उनकी चतुराई पर अचंभा किया करते थे—बाइबल के कई अंश उन्हें कंठस्थ थे और गूढ़ यहूदी धर्मग्रंथों का भी उन्होंने उस कच्ची उम्र में ही अध्ययन कर लिया था। सत्रह साल की उम्र होत-होते उन्होंने स्पिनोज़ा के नीतिशास्त्र का भी अनुवाद किया था। सब कहते थे कि वे बड़े होकर महान बनेंगे।

लेकिन वे अपनी प्रतिभा का समुचित उपयोग नहीं कर पाये। उनके अध्ययन का क्षेत्र बराबर बदलता रहा और उन्होंने कई साल विभिन्न भाषाएं सीखने और एक देश से दूसरे देश में भटकने में गंवा दिये।

उन्हें प्रेम के क्षेत्र में भी सफलता नहीं मिली। उन्होंने रैज़ेल से प्रेम किया था, जो घड़ीसाज मेलेख की लड़की थी। पर रैज़ेल की शादी कहीं और हो गयी थी और बाद में नाट्सियों ने उसे गोली से उड़ा दिया था। सारी जिंदगी कुछ अहम सवाल उन्हें परेशान करते रहे थे। रात में अक्सर उनकी नींद टूट जाती थी और वे सोचा करते थे कि दुनिया आखिर क्या है? वे सदा अपने को बीमार समझते थे और मौत का डर उन्हें सपनों में भी सताता रहता था। हिटलर ने जो यहूदियों का कत्लेआम किया था और जिस निर्दयता से उनके परिवार के लोगों की हत्या की गयी थी, उससे मनुष्य-जाति पर से उनका विश्वास ढिग गया था। उन्हें

नवनीत

उन औरतों से बड़ी नफरत होती थी, जो अपनी छोटी-छोटी तकलीफें लेकर उनके पास आया करती थीं, जबकि उधर असंख्य लोग एक दूसरे को यातना देकर मारने की तजवीजें ढूँढ़ रहे थे।

ग्रेटल रसोई से बाहर आ गयी। 'तुम कौन-सी कमीज पहनकर जाओगे?' उसने पूछा।

सोलोमन ने उसकी तरफ देखा। ग्रेटल ने खुद काफी मुसीबतें झेली थीं। वह अपने भाइयों पर भी शर्मिदा थी, जिनमें से एक नात्सी था। वह अपने पति के समक्ष अपने को अपराधी महसूस करती थी, जैसे उससे बड़ी भारी गलती हो गयी हो। शायद इसीलिए वह घर में नौकरानी रखने से साफ मना करती थी, और सारा काम खुद ही करती थी, हालांकि उसका पति धनी था।

'कमीज!' प्रकायक सोलोमन ने कहा— 'कोई-सी भी चलेगी। सफेद दे दो।'

वह कमरे के बाहर चली गयी।

डा. सोलोमन मार्गोलिन ने एक बार फिर शीशे में देखा और वे बाहर आ गये। अपने आकर्षक व्यक्तित्व से लोगों को प्रभावित करने की इच्छा उनमें अब भी मौजूद थी। मगर वे सिद्धांतवादी भी थे। अपने मरीजों के साथ वे सदा बेहद ईमानदारी बरतते थे और पैसा या प्रतिष्ठा कमाने के लिए अनुचित साधन उन्होंने कभी नहीं अपनाये। उनकी कार भी सादी थी, अन्य साथियों की तरह कैडिलैक नहीं। पर शादी में उन्होंने टैक्सी से जाना पसंद किया।

सिंगर अमरीका में रहने वाले यहूदी लेखकों में यहूदी परंपराओं से सबसे अधिक जुड़े हुए हैं और अमरीका की मिश्रित यहूदी संस्कृति के आलोचक हैं। उनका जन्म १९०४ में पोलैंड में हुआ था और १९३५ में जब हिटलर ने यहूदियों को वर्बर यातनाएं देना शुरू कर दिया, वे अमरीका चले आये थे और तब से वहीं हैं।

परंतु ऐसा नहीं लगता कि अमरीका की भड़कीली संस्कृति ने उन्हें बहुत अधिक प्रभावित किया है। उनकी जड़ें, उनका खास रिश्ता जमीन से है—पोलैंड के उन यहूदी गांवों से जहां वे पैदा हुए, जहां उनका वचन गुजरा। इस रिश्ते की काव्यात्मक प्रस्तुति इस कहानी में भी मिलती है।

एक और खास बात । गांव के लोग (जिनका कि सिंगर मुख्यतया चित्रण करते हैं) कुछ मानी में अधिक कल्पनाशील होते हैं, जादू-टोने में, अतींद्रिय अनुभवों में अधिक सहज विश्वास रखते हैं। सिंगर की अन्य कई रचनाओं की तरह इस कहानी में भी यथार्थ और कल्पना का अद्भुत सम्मिश्रण है। टैंक्सी में ब्राउन्सविल जाते हुए एक दुर्घटना में डा. मार्गोलिन की मृत्यु हो जाती है, फिर भी वे विवाह-स्थल पर 'पहुंच' जाते हैं, अपने गांव के मित्रों से 'मिलते' हैं, यहां तक कि अपनी प्रेमिका से भी जो उन्हीं की तरह मृत है। स्थूल यथार्थ के घरातल को छोड़ मानवीय संबंधों का सहज व मर्मस्पर्शी चित्रण वे यहां कर पाये हैं और इसी में कहानी की सार्थकता है। आत्मविश्लेषण भी बराबर मौजूद है। अर्थात् कहानी कई घरातलों पर साथ-साथ चलती है, उसमें गहराई है।

—राजेन्द्र शर्मा

इस सवे रात में टैक्सी की खिड़की से बाहर देखने को कुछ ज्यादा नहीं था, बस न्यूयार्क की सफेद सड़कों दूर तक फैली हुई थीं। कुछ देर बाद वे आँखें बंद करके सीट में पीछे झुक गये। शायद यह दुनिया भी एक टैक्सी की तरह है, जो अतजान रास्तों पर कहीं बढ़ी चली जा रही है। लेकिन इग्जर ने हिटलर और स्तालिन जैसे लोग क्यों बनाये? भयंकर नर-संहार वाले विश्व-युद्धों की क्या जरूरत थी? लोग बीमारियों से क्यों मरते हैं? डा. मार्गोलिन ने एक सिगरेट लेकर पुलगा ली। अपनी कन्नौ खोदते वक्त उनके कई चाचा क्या सोच रहे

ये ? (नातिसयों ने यहूदियों से कब्रों खुदवायी थीं और उन्हें मारकर उन्हीं कब्रों में गाड़ दिया था ।) क्या आदमी अविनाशी है ? क्या आत्मा जैसी कोई चीज है ? पर उन्हें लगा कि ऐसी सारी चर्चा सारहीन है ।

टैक्सी ईस्ट रिवर को पार करके आगे बढ़ने लगी और अब आसमान साफ दिख रहा था, जो भट्ठी में जलती धातु की तरह लाल था। बर्फ धीमे-धीमे बराबर गिर रही थी, घरती पर शांति फैलाते हुए, जैसा कि वह हजारों बल्कि लाखों सालों से करती आ रही थी। टैक्सी की सामने की खिड़की खुली थी और पेट्रोल व समुद्री गंध लिये हवा के

अगला नवनीत

मनुष्य छोटा है,
छोटा ही सुंदर है

स्व. शूमाकर के आर्थिक-सामाजिक
चिंतन का सार नेमिशरण मित्तल के
शब्दों में ।

काला ताजमहल

क्या मथुरा रिफायनरी शाहजहां के संगमरमरी स्वप्न ताजमहल को
दर्शनीय रहने देगी ?

रूसी राष्ट्रपति के साथ एक रात

मिस्र के एक मूर्धन्य पत्रकार का दिलचस्प अनुभव ।

कहानियां :

विकल्प (मराठी)—शरू रांगणेकर; कथा (हिंदी)—मनहर चौहान ।

वृद्धो, अपने को बदलो

क्रांतिकारी पृथ्वीसिंह आजाद का वृद्धों को उद्बोधन ।

अन्य लेख

औरत क्लार्क; नाभिक को कौन जोड़ता है ? ; महामौन की गोद में;
जीवजंतुओं में विद्युतगति; किस्सा कुंआरी जासूसों का; फूल कैसे
खिलते हैं ?

कविताएं—संस्मरण—विज्ञान—हास्य—अन्य स्थायी स्तंभ ।

सर्द झोंके भीतर आ रहे थे ।

यकायक पूर्वी पार्कवे पर टैक्सी बड़े जोर से उछली और फिर एकदम रुक गयी । शायद कोई दुर्घटना हो गयी थी । एक पुलिस कार दीड़कर वहां पहुंची और उस पर लगा साइरन जोर से बज उठा । एक एम्बुलेन्स भी तेजी से पहुंच गयी । डा. मार्गोलिन का चेहरा दुःख से सिकुड़ गया । बेचारा एक और आदमी मारा गया था । गाड़ी को जरा-सा गलत घुमा दो और एक आदमी की सारी योजनाएं हवा हो जाती हैं । दुर्घटनाग्रस्त आदमी को स्ट्रेचर पर ले जाया जा रहा था । गहरे रंग के सूट और खून सनी कमीज के ऊपर उसका निचुड़ा चेहरा पीला पड़ गया था । लाश की एक आंख बंद थी और दूसरी अधखुली । शायद वह भी किसी शादी में जा रहा था, डा. मार्गोलिन ने सोचा । शायद वह उसी शादी में जा रहा था, जिसमें वे खुद जा रहे थे !

कुछ समय बाद टैक्सी फिर चलने लगी । सोलोमन मार्गोलिन अब न्यायक की ऐसी बस्तियों में से गुजर रहे थे, जो उनके लिए अनजानी थीं । फिर वे एक औद्योगिक बस्ती में से गुजरने लगे । यहां कई कारखाने, कोयले के गोदाम बकबाड़ के ढेर थे । सड़कों पर यहां-वहां हब्शी लोग खड़े थे और उनकी आंखों में एक अजीब उदासी थी, जसे कि वे पिछले जन्म के पापों को ढो रहे हों । सोलोमन सोचने लगे कि ड्राइवर जाने-अनजाने कहीं उन्हें गलत दिशा में तो नहीं ले जा रहा ? पूरे समय वह बिलकुल

गुमसुम बैठा रहा था । पर तभी वे एक घनी बस्ती में आ गये । कुछ देर में विवाह-स्थल भी आ गया, जो रोशनी से जगमग था । डा. मार्गोलिन ने ड्राइवर को एक डालर का इनाम दिया, जो उसने बिना बोले रख लिया ।

हैट और कोट बाहर लांवी में रखकर डा. मार्गोलिन ने एक चिपकी यूहूदी टोपी पहन ली और वे भीतर आ गये । वहां संगीत की आवाज गूंज रही थी और सारी जगह लोगों से खचाखच भरी हुई थी । टेबल खाने की चीजों से लदी थी और पास में बहुत-सी शराब की बोतलें रखी थीं । बाजे वाले एक यूहूदी घुन बजा रहे थे । आदमी आदमियों के साथ नाच रहे थे, औरतें औरतों के साथ, और आदमी-औरतें साथ-साथ भी नाच रहे थे । यकायक दुल्हन अपनी सहेलियों के संग आयी । डा. मार्गोलिन हर एक को जानते थे पर एक बेगानापन भी महसूस कर रहे थे, हालांकि लोग उनसे हंसकर बात करते थे और वे भी उसी लहजे में जवाब दे रहे थे । उनके गांव के लोग उन्हें गुजरे जमाने की याद दिला रहे थे । कुछ उन दिनों को याद कर रहे थे, जब उनके समूचे परिवारों को जर्मनों ने गोलियों से भून दिया था । 'हम खुद भी तो तब मौत के कितने नजदीक थे !' एक ने कहा । 'एक तरह से हम सभी लोग मरे हुए हैं । हमारा सर्वनाश करने में उन्होंने क्या कसर छोड़ी थी ? जो बचे-खुचे लोग हैं, उनके दिलों में मौत की दहशत अभी भी बनी हुई है । पर इस वक्त शादी है और

हमें खुश होना चाहिये ।’

अब शादी की रस्म का वक्त हो चुका था, पर कोई महत्त्वपूर्ण व्यक्ति रह गया था और लड़की का बाप अब्राहम मेखल बेसन्नी से उसका इंतजार कर रहा था। इधर नाच और तेज होता जा रहा था, और ज्यादा लोग उसमें शामिल होते जा रहे थे। शोर इतना बढ़ गया था कि सोलोमन की कुछ समझ में नहीं आ रहा था कि लोग उनसे क्या कह रहे हैं, और वे हर बात पर हाँ कहकर सिर हिलाते जा रहे थे। ‘डा. मार्गोलिन, आप नाच क्यों नहीं रहे?’ एक पूछ रहा था। ‘हम आपके लिए कोई अजनबी तो नहीं हैं। वहाँ गांव में आप कोई डाक्टर-वाकटर नहीं थे, सिर्फ श्लोइम डेविड थे, धर्म-शिक्षक बे बेटे। हम सभी एक ही मिट्टी से बने हैं, और आगे कभी एक ही मिट्टी में साथ-साथ सो जायेंगे।’

डा. मार्गोलिन ने कुछ पिया नहीं था, पर फर्श उन्हें घूमता लग रहा था जैसे वे नशे में हों। एक कोने में खड़े होकर वे नाचने वालों को देख रहे थे। तभी एक मित्र उन्हें खींचकर ले गया और वे उसके साथ नाचने लगे। कुछ देर बाद उसका साथ छोड़कर वे फिर अलग खड़े हो गये। पर वह महिला कौन है? उन्हें वह कुछ जानी-पहचानी-सी लगी। क्या वे उसे सचमुच जानते हैं? वह तो उन्हें बुला रही है। वे पसोपेश में पड़ गये। वह न तो युवा थी, न बूढ़ी। उन्होंने याद करने की कोशिश की कि उन्होंने उसे कहाँ पर देखा है—वह छोटा-सा चेहरा, वे

नवनीत



नोबेल-पुरस्कृत सिगर

गहरी काली आंखें, वह जवान मुस्कान। उसका सौंदर्य ग्रामीण था, उनके गांव सैन्सी-मिन की लड़कियों जैसा। उसने अपने बाल भी वैसे ही गूथ रखे थे। उसे देखकर गुजरे जमाने की याद फिर से ताजा हो गयी। वे आंखें एक जमाने में उन्हें बड़ी प्यारी लगी थीं, और उनका आकर्षण अमिट था। हल्की-सी मुस्कराहट के साथ उन्होंने उसकी तरफ देखा और वह भी हंस दी। हंसने पर उसके गालों में छोटे-छोटे गढ़े बन गये। मार्गोलिन झेंपते हुए उसके पास गये।

‘मुझे ऐसा लगता है कि मैं आपको जानता हूँ। क्या आप सैन्सीमिन की हैं?’

‘हां, वहीं की।’

उन्हें वह आवाज पहचानी लगी। कभी इस आवाज से उन्हें बड़ा प्यार रहा था।

‘सैन्सीमिन की—तो फिर आप कौन हैं?’
उसके ओंठ कांपे।

‘क्या आप मुझे इतनी जल्दी भूल गये?’

‘मुझे सैन्सीमिन छोड़े बहुत वक्त हो गया है।’

‘आप पिताजी से मिलने आया करते थे।’

‘आपके पिता कौन थे?’

‘घड़ीसाज मेलेख।’

डा. मार्गोलिन यकायक कांप गये।

‘अगर मैं पागल नहीं हुआ हूँ, तो मैं अन-
होती घटनाएं देख रहा हूँ।’

‘आप ऐसा क्यों कह रहे हैं?’

‘क्योंकि रैजेल मर चुकी है।’

‘मैं रैजेल हूँ।’

‘तुम रैजेल हो? यहां कैसे आयीं? अगर
यह सही है तो कुछ भी संभव हो सकता है।

न्यूयार्क कब आयीं?’

‘कुछ ही देर पहले।’

‘कहां से?’

‘उधर से?’

‘पर मुझे सवने बताया था कि आप सभी
लोग मर चुके हैं।’

‘हां, मेरे पिता, मेरी मां, मेरा भाई
हर्शल’

‘पर तुम्हारी तो शादी हुई थी?’

‘हां, हुई थी।’

‘अगर यह सच है, तो कुछ भी संभव है’,

डा. मार्गोलिन ने इस अप्रत्याशित घटना से
कांपते हुए फिर कहा। शायद किसी ने उन्हें
गलत जानकारी दे दी थी। पर क्यों? वे
काफी उलझन में थे।

‘पर तुमने मुझे कभी सूचना क्यों नहीं
दी? आखिर.....’ वे चुप हो गये। वह भी
कुछ क्षण को चुप रही।

‘मैं सब कुछ खो चुकी थी। पर आत्म-
सम्मान तो मुझमें बाकी था।’

‘चलो, कहीं एकांत में चलें। यह मेरी
जिंदगी का सबसे अच्छा दिन है।’

‘पर अभी तो रात है.....’

‘तो सबसे खुशनुमा रात! जैसे कि कोई
मरकर जी उठे!’

‘कहां जाना चाहते हो? अच्छा चलो।’

मार्गोलिन ने उनकी वाह याम ली और
युवावस्था का प्रेम एक बार फिर उनके
भीतर हिलोरें लेने लगा। वे उसे दूसरे मेह-
मानों से दूर ले गये—उन्हें डर था कि वह कहीं
भीड़ में गुम न हो जाये या कोई दूसरा व्यक्ति
आकर उनकी खुशी को खत्म न कर दे। कक्ष
को छोड़कर वे ऊपर चले गये, जहां विवाह
की रस्म संपन्न होने वाली थी। यहां विवाह-
मंडप बना हुआ था और वैवाहिक अनुष्ठान
की पूरी तैयारी थी। दोनों यहां आकर
सकुचा गये। मार्गोलिन ने विवाह-मंडप की
तरफ इशारा किया।

‘हम दोनों वहां खड़े हो सकते थे।’

‘हां।’

‘अपने बारे में बताओ। आजकल कहां
हो? क्या कर रही हो?’

‘बताना आसान नहीं है।’

‘क्या अकेली हो? या किसी के साथ?’

‘साथ? नहीं।’

‘तुमने कभी मुझे अपने बारे में खबर क्यों

नहीं दी ?'

उसने कोई जवाब नहीं दिया ।

उसे देखकर सोलोमन को लगा कि जैसे उनका युवावस्था का उत्कट प्रेम वापस लौट आया है। वे इस विचार से कांप गये कि शीघ्र ही उनको जुदा होना पड़ेगा। वे उसे अपनी बांहों में लेकर चूम लेना चाहते थे, पर उन्हें डर था कि कोई वहां आ न जाये। उसके इतने नजदीक खड़े हुए वे अफसोस मना रहे थे कि क्यों उन्होंने किसी और से शादी कर ली, और आखिर क्यों रैजेल की मौत की खबर को सही मान लिया था। 'इतने सारे प्यार को मैं अभी तक कैसे दबा सका ? उसके बिना मैं अब तक जी कैसे पाया ? और अब ग्रेटल का क्या होगा ? मैं उसे सब कुछ दे दूंगा—अपना आखिरी पैसा तक....' वे सोच रहे थे। उन्हें खयाल आया कि यहूदी कानून के मुताबिक वे अभी भी अविवाहित हैं, ग्रेटल से उन्होंने सिर्फ कचहरी में शादी की थी। उन्होंने रैजेल की तरफ देखा।

'यहूदी कानून के मुताबिक मैं कुंआरा हूं।
'सचमुच ?'

'यहूदी कानून के मुताबिक मैं तुम्हें यहां ला सकता हूं और विवाह कर सकता हूं।'

वह उनकी बात पर विचार करने लगी।
'हां, मैं समझती हूं...'

'यहूदी कानून के मुताबिक मुझे एक अंगूठी भेंट करने की भी जरूरत नहीं है। विवाह एक पैसा देकर भी हो सकता है।'

'क्या तुम्हारे पास एक पैसा है ?'

नवनीत

उन्होंने अपनी जेब में हाथ डाला, पर बटुआ गायब था। वे अपनी दूसरी जेबें ढूंढ़ने लगे। क्या किसी ने मेरी जेब काट ली ? उन्होंने सोचा। पर यह कैसे हो सकता है ? मैं पूरे समय तो टैक्सी में बैठा हुआ था। क्या किसी ने यहां शादी में मेरा बटुआ पार कर दिया ? उन्हें बड़ा आश्चर्य हो रहा था।

'अजीब-सी बात है, पर मेरे पास एक पैसा भी नहीं है।'

'हम उसके बिना भी काम चला सकते हैं।'

'पर मैं घर वापस कैसे पहुंचूंगा ?'

'घर जाने की जरूरत ही क्या है ?' उसने हंसकर कहा। उसकी मुस्कान बड़ी रहस्यपूर्ण थी। सोलोमन ने उसकी कलाई पकड़ ली और गौर से उसे देखा। यकायक उन्हें लगा कि यह उनकी रैजेल नहीं हो सकती। यह बहुत जवान दिखती थी। शायद यह रैजेल की लड़की हो, जो उनके साथ मजाक कर रही है। 'हे, ईश्वर, मुझे क्या हो रहा है !' वे परेशान होकर सोचने लगे। उन्होंने उसकी उम्र का अंदाज लगाने की कोशिश की—शकल-सूरत से यह बता पाना कठिन ही था। उसकी काली आंखों में गहराई थी, उदासी भी। वह भी पसोपेश में पड़ गयी थी, जैसे कहीं कोई गड़बड़ हो।

सोलोमन भी यही सोच रहे थे। पर गड़बड़ कहां थी ? और उनका बटुआ कहां गायब हो गया था ? क्या वे बटुआ टैक्सी में ही भूल गये थे ? उसमें कितना पैसा

[शेष पृष्ठ १४८ पर]

सूर में

डा. विजयेन्द्र स्नातक

लोकसंग्रह-तत्त्व

भक्त-शिरोमणि सूरदास के काव्य को अभी तक या तो परंपरागत समीक्षा के मानदंड से परखा जाता रहा है, या उन आदर्शों से जो समीक्षकों ने अपनी वैयक्तिक दृष्टि से निर्मित किये हैं। इन मानदंडों से सूर को भक्त, कवि, दार्शनिक, सांप्रदायिक पंडित आदि तो ठहरा दिया गया; किंतु उनके काव्य की अंतर्भूत शक्ति का परिचय नहीं प्राप्त हो सका।

सूर ने सगुण भक्ति को उदात्त रूप में चित्रित करके लोकभाषा को जो गौरव दिया, उसे उस समय के अन्य कवि भी दे रहे थे। गोस्वामी तुलसीदास ने रामचरितमानस में अवधी और अन्य ग्रंथों में ब्रज को स्वीकार कर लोकभाषा का ही उन्नयन किया था। सूर की विशेषता यह है कि उन्होंने भक्ति जैसे गूढ़-गंभीर और व्यक्तिनिष्ठ साधना के विषय को बिना किसी कृच्छ्र साधना या दीक्षा के जनसाधारण के लिए साध्य बना दिया।

श्रीकृष्ण की सौंदर्यमयी लीलाओं का गान करके उन्होंने जनमानस को मोहित किया और भक्ति के प्रांगण में ला खड़ा किया। परिणामतः निराश और भयभीत हिंदू जनता अपने आराध्य श्रीकृष्ण को इतने समीप पाकर, उनकी विविध लीलाओं में विभोर होकर यह भूल गयी कि उसे कोई भय, त्रास या पीड़ा है, उस पर शोषण और दमन का चक्र चल रहा है; वह किसी प्रकार भी साधनहीन और अकिंचन है। यह आत्मविस्मृति उस समय की नव्य चेतना कही जायेगी। इसी नव्य चैतन्य को लोक के कल्याण का संवेत मानना चाहिये।

सूर ने श्रीकृष्ण की भक्ति का उपदेश किसी ग्रंथ के आधार पर, मर्यादा के मार्ग से, युद्ध और संघर्षरत नायक के जरिये नहीं दिया था। उनका उपदेश प्रेममार्ग में मग्न होकर, पुलकित होकर अपने प्रेमी परमेश्वर की ओर बढ़ने का था। उनका कहना था कि प्रेममार्ग से यह संसार-सागर पार

किया जा सकता है। यद्यपि यह कथन नितांत मौलिक या नया तो नहीं था, किंतु सूर की शैली में यह पहली बार व्यंजित हुआ था : प्रेम प्रेम से होय प्रेम ते पारहि पइये । प्रेम बंध्यो संसार, प्रेम परमारथ लइये । एकै निश्चय प्रेम को, जीवनमुक्ति रसाल, सांचौ निश्चय प्रेम को, जहि रे मिलै गुपाल ॥

सूर ने निराधार प्रेम की स्थापना नहीं की थी। उनके प्रेम के आधार गोपाल थे। वे गोपाल जिन्हें मीरा ने तन-मन-प्राण से स्वीकारा था—‘मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई।’ मुद्रा, भस्म, विषाण, मृगचर्म आदि धारण कर, पद्मासन लगाकर, मुदित-नयन ध्यान करने का विधान सूर ने नहीं किया था। निरंजन का ध्यान कर अजब जगाना भी सूर की प्रेम-साधना में नहीं था। सूर के सामने लोकमंगल का प्रश्न था, लोक की कल्याण-कामना ही उनका पहला अभीष्ट था।

क्या सूर ने लोकरंजक लीलाएं गाकर केवल जनता के मनोरंजन जैसा हल्का-फुल्का काम किया था ? क्या सूर का सारा साहित्य मनोरंजन के सतही स्तर पर समाप्त हो जाता है ? यदि ऐसा है तो उनका भक्तिरस, वात्सल्यरस, माधुर्यभाव, दर्शन, कला, संगीत, तत्त्वज्ञान सब थोथा है। स्मरण रहे कि सूर ने श्रीकृष्ण को छोड़कर किसी का मनोरंजन न किया, न कभी करना चाहा। सूर के आराध्य कृष्ण थे, उनकी लीलाओं द्वारा वे जनकल्याण की कामना से उनका गायन करने में प्रवृत्त हुए थे, इस

मवनीत

मंतव्य तक हमें पहुंचना होगा।

सूरदास के काव्य, दर्शन, भक्ति, लोक-तत्त्व और जीवन पर दृष्टिपात करने के बाद हम सहज ही इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि सूर-साहित्य किसी राजनैतिक प्रतिक्रिया या सांप्रदायिक परंपरा का संकीर्ण साहित्य न होकर भक्त हृदय की सात्त्विक प्रेरणा से प्रसूत रससिक्त साहित्य है।

जिस युग में सूरदास ने काव्य-सृजन किया, वह उनकी कोमल भावनाओं के सर्वथा अनुकूल नहीं था। उस युग में धर्म अंतर की पावन साधना न रहकर दंभ और पाखंड का रूप धारण कर चुका था। शास्त्रविहीन योगसाधना के मार्ग प्रचलित हो गये थे। एक ओर नाथपंथी सिद्धों का जमघट हो रहा था, तो दूसरी ओर सूफी संतों की रोमानी साधना-पद्धति का प्रचार हो रहा था। इन दोनों विचारधाराओं के योग से निर्गुणमार्गी कबीर, दादू, नानक, दरिया साहब आदि संतों का उदय हुआ।

इन संतों ने अंधविश्वास और आडंबर को चुनौती तो दी, लेकिन निर्गुण ज्ञानमार्ग का उपदेश गूढ़ और गंभीर होने से सर्वजन-सुलभ नहीं बन सका था। कहने को तो कबीर साहब ने सहज साधना, सहज समाधि और सहज ज्ञान की बात कही; लेकिन वह सहज न होकर अत्यंत दुरूह ही बनी रही। उधर सहजयान और बौद्धधर्म की नास्तिक दृष्टि भी धुंधली नहीं हुई थी। ऐसे संक्रांति काल में सूर ने कृष्ण-चरित्र का आश्रय लेकर मर्यादावादी आदर्शों का बीड़ा नहीं उठाया,

वरन कृष्ण की लोकरंजक लीलाओं का गान करके साहित्य को भक्ति के क्षेत्र में स्थान दिया। यह साहित्य का धर्म और भक्ति के साथ सम्मिलन-सहित नूतन संस्कार था।

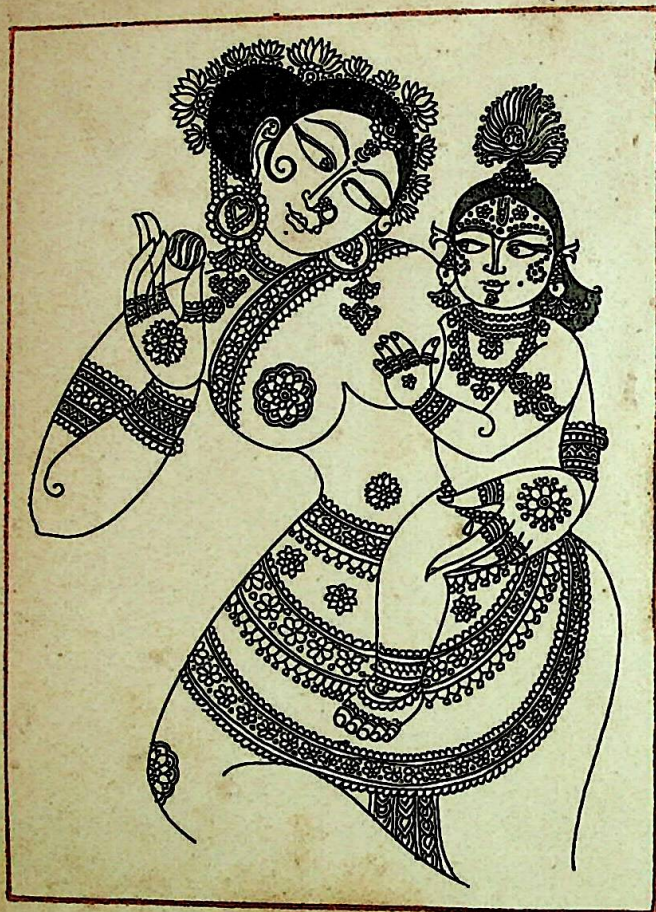
सूर ने जयदेव और चंडीदास की आवृत्ति नहीं की, किंतु भागवत के लीलातत्त्व को जनभाषा द्वारा लोकमानस तक पहुंचाया। सूर ने शास्त्र को तिलांजलि न देकर शास्त्र की प्रेरणा (स्फिरिट) को अपने साहित्य में प्रतिध्वनित किया। जनसाधारण का कृष्ण-चरित्र के प्रति अधिकाधिक अनुराग ही इस बात का प्रमाण है कि सूर-साहित्य काव्य, दर्शन, भक्ति, साधना और संप्रदाय सभी क्षेत्रों में समान रूप से समादृत है। इस सम्मान का भाजन होने पर भी सूर-सागर धर्मशास्त्र नहीं है, वरन वह संवेदनीय काव्यगीत है जो चित्तवृत्तियों को प्रफुल्लित और परिष्कृत करता है। सूर की वाणी में श्रीकृष्ण की मोहिनी मूर्ति और संगीत-भारती एक साथ साकार हो उठी है।

सूरदास ने अपने युग में 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या' का उपदेश झाड़ने वाले निर्गुण-मार्गी योगियों और दंभी साधुओं के समक्ष भक्ति का एक व्यवहार्य और सुगम मार्ग प्रस्तुत किया था, जिसका उद्देश्य संसार का त्याग किये बिना ही अपने आराध्य को सगुण-साकार रूप में प्रस्तुत करना था। यह उद्देश्य लोकसंग्रह की भावना से दूर न होकर संसार में रहकर लोकसंग्रह का ही एक रूप था। वस्तुतः सूर ने भक्तिमार्ग

को सगुणोपासना द्वारा कंटकविहीन बनाकर लोककल्याण का ही पथ प्रशस्त किया था, जिसका मूल्यांकन अभी तक नहीं किया गया है।

जो सूर के प्रेम को लोक से न्यारा और ऐकांतिक मानते हैं, वे वस्तुतः उसके उद्देश्य की गहराई तक नहीं जाना चाहते। सूर का प्रेम गांभीर्य के उस तल तक पैठा हुआ है, जहां सांसारिक कोलाहल और द्वंद से संतुष्ट मन की वृत्तियां अपने लिए राग और प्रेम की अतुल निधि पाकर परितुष्ट होती हैं। जीवन की गंभीर समस्याओं से तटस्थ रहने का आरोप भी सूरदास पर इसी कारण लगाया जाता है कि आज जीवन को राजनीति, समाज और संघर्ष तक सीमित मान लिया गया है। पारिवारिक जीवन की शाखा-प्रशाखाओं में फूटने वाली विविध परिस्थितियों का चित्रण, लोक-व्यवहार और लोकनीति का वर्णन भी लोकसंग्रह का ही दूसरा रूप है।

सूर की प्रेमचर्चा में संयोग और विरह का विशद व्यापक वर्णन होने के साथ गांभीर्य का अभाव नहीं है। सूर ने मानव-मन की अतल गहराइयों में प्रवेश कर प्रेम की रागात्मिका स्थिति का चित्रण किया है जो आज मनोविज्ञान की कसौटी पर श्लाघ्य ठहरती है। मनुष्य की पाशव भावना को संस्कृत कर, भक्ति की पावन मंदाकिनी में प्रक्षालित कर समाजोपयोगी बनाने का गुप्ततर कार्य सूर ने किया है। उन्होंने यह कार्य लोकसंग्रही दृष्टि से ही किया है और उसके



युग की सापेक्षता से सूर और उनका साहित्य सर्वथा वचा रहा। सूर ने भक्ति को माधुर्य-मंडित करके प्रस्तुत करने का ध्येय अपने सामने रखा था। यही उस युग की सबसे बड़ी मांग थी।

चैतन्य के शिष्य रूप गोस्वामी और सनातन गोस्वामी ने शास्त्रीय मर्यादा में देववाणी द्वारा भक्ति का माधुर्य-पक्ष स्थिर किया था। किंतु जन-मानस से उसका सीधा लगाव न उस युग में हुआ और न बाद में ही हो सका। सूर ने उसी युग में भक्ति की नूतन

प्रभाव का आकलन लोकसंग्रह के निकष पर ही करना चाहिये।

यदि युग-सापेक्ष दृष्टि से तात्कालिक समाज को केंद्रबिंदु बनाकर सूर-साहित्य का आकलन किया जाये तो स्पष्ट लक्षित होगा कि सूर ने बाह्य प्रपंच से मुक्ति लेकर अंतर्लौकिक दशा में काव्यसृष्टि की थी। किंतु इसका अर्थ यह न समझ लिया जाये कि

मर्यादा बनाकर जन-मानस को उसमें निमज्जित कर दिया।

इसके साथ ही सूर ने साहित्य की शाश्वत मान्यताओं को सदैव अपने सामने रखा। फलतः सूर-साहित्य युग की सीमाओं में सिमटकर समाप्त नहीं हो गया। यदि सूर आख्यान-काव्य लिख पाते तो शायद स्थिति कुछ और होती; किंतु गेय मुक्तकों की

चित्र—जसोदा मैया और नंदलाल : सत्यकाम राहुल

परंपरा में उन्होंने युग-निरपेक्ष चिरंतन साहित्य सृजन करके, अपना स्थान भक्ति, प्रेम, काव्य और संगीत में अमर बना लिया है।

सूर-साहित्य के मनोवैज्ञानिक पक्ष पर अभी तक सतही तौर पर ही विचार हुआ है। मनोवैज्ञानिक गंभीरता के साथ सूर-साहित्य का चिंतन-मनन अद्यावधि नहीं हुआ है। बाललीला या भ्रमरगीत के पदों में गोपियों (युवतियों) की विदग्ध वाक्-पटुता में मनोविज्ञान का शोध करने से सूर का आभ्यंतर भाव और मनोविकार-संबंधी मनोविज्ञान उद्घाटित नहीं होता। सूरकाव्य में भावों की सूक्ष्म शैली से व्यंजना हुई है। अतः शैशव एवं यौवन की इनी-गिनी बातों तक ही उसे सीमित नहीं कर देना चाहिये।

यह कहना कि सूर की उक्तियां अत्युक्तिपूर्ण हैं अतः वे स्वाभाविक रूप से किसी भाव की व्यंजना नहीं करतीं, बहुत युक्ति-संगत नहीं है। भावों की इयत्ता न होने के साथ उनकी अभिव्यक्ति के प्रकारों की भी सीमा नहीं है। कृष्णलीला के विविध रूपों में भावों और मनोविकारों की विविधता का यदि संधान किया जाये, तो विदित होगा कि सूर की अंतर्दृष्टि मन के उन गुह्य स्तरों तक गयी थी, जहाँ सामान्य मानव की पहुँच नहीं हो सकती।

मनोविज्ञान का सीमित अर्थ लेकर सूर-साहित्य को रूप-वर्णन या भाव-वर्णन तक नहीं बाँधा जा सकता। इन दोनों क्षेत्रों से

आगे मन के द्वंद्व और संघर्ष की अभिव्यक्ति को भी मनोविज्ञान की कसौटी पर परखना होगा। सूर की गोपियां, सूर की राधा, सूर की यशोदा, सूर के गोप और सूर के कृष्ण सभी अपने-अपने क्षेत्र की व्यापक परिधि में भाव-व्यंजना करते हुए मन के उन स्तरों का अनावरण करते दृष्टिगत होते हैं, जो मनस्तत्त्व के पारखी द्वारा ही संभव है।

सूर का कविता-क्षेत्र महाकाव्य-प्रणेता कवियों की अपेक्षा सीमित था। भक्ति की नींव पर सूर ने अपने वात्सल्य, माधुर्य और शृंगार का भवन खड़ा किया था। भवन बनकर तैयार हुआ तो वह शृंगार के उदात्त रूप का, माधुर्य के अवदात रूप का और भक्ति के उज्ज्वलतम रूप का प्रतीक बन गया। भक्त के रूप में सूर ने अपनी साधना शुरू की, भक्त के रूप में उसका उपसंहार भी किया; किंतु जब उनकी साधना फलीभूत हुई तो सूर भक्त, दार्शनिक, कवि और महात्मा बन गये।

सीमाओं में रहकर असीम हो जाना ही कला की परिणति है। सूर की कला आज असीम होकर श्रद्धा-सम्मान पा रही है। सूर की दृष्टि को परिमित, उनकी रचना को अनेकरूपता-विहीन और उनके काव्य को वस्तुग्राभीर्य-रहित कहना सूरकाव्य के व्यापक प्रभाव की अवहेलना करना है।

जीवन का सबसे व्यापक पक्ष और काव्य का शिरोमणि है शृंगार। रतिभाव की प्रबल शक्ति का उल्लेख अनादि काल से होता आ रहा है। सूर ने भक्ति की गरिमा



कृष्ण और राधिका : चोणकर

को जानते हुए भी शृंगार को माध्यम बनाकर काव्य लिखा—इस रहस्य को समझे बिना उनके काव्य का अध्ययन नहीं किया जा सकता। विश्व-साहित्य की भूमिका पर सूर-साहित्य की कतिपय विशेषताओं का विचार किया जा सकता है। भारतीय साहित्य में बालक्रीड़ा का जो रूप सूर ने प्रस्तुत किया, वह उनके पहले या उनके बाद और किसी कवि द्वारा वर्णित नहीं हुआ। विश्व-साहित्य में भी कदाचित् ईश्वर की बाललीलाओं का ऐसा वर्णन किसी कवि ने नहीं किया होगा। क्योंकि अवतारी ईश्वर की कल्पना के साथ शिशुक्रीड़ा का संबंध भारतीय कल्पना में तो संगत बैठ जाता है, विदेशी भावधारा के साथ उसका मेल ही नहीं है।

नवनीत

विश्व-साहित्य का पाठक न होने के कारण मैं इस विषय में प्रामाणिक रूप से कोई व्यवस्था देना उचित नहीं समझता। हाँ, इतना अवश्य कहूँगा कि जिस दुःखांत रचना विधान का श्रेय विदेशी कवियों और लेखकों को दिया जाता है, 'सूरसागर' के गोपी विरह-वर्णन में उसके बीज ही नहीं, उसका परिपूर्ण विकास विद्यमान है। जैसे गोपियों की मर्मांतक वेदना को सूर ने स्वयं भोगकर काव्य लिखा है, प्रत्येक पद से यह व्यंजित होता है। कवि की तल्लीनता ही काव्य की सफलता है और वह सफलता कवि ने विरह, जन्म, दुःखांत संदर्भों द्वारा प्राप्त की है।

एशिया के अरब, फारस आदि देशों के विरह-वर्णन के साथ सूर का विरह-वर्णन कोई तादात्म्य नहीं रखता। कारण, उनके काव्य का आधार इतना स्थूल एवं भौतिक है कि उनकी आध्यात्मिकता काव्य की व्यंजना में समाप्त हो जाती है। सूर-काव्य की व्यंजना लौकिक होने के साथ-साथ अपने पारलौकिक या आध्यात्मिक अनुबंध को तिल-भर भी नहीं छोड़ती। सूर की कविता न तो उन्मत्त प्रेमी का प्रलाप है और न अंधभक्त की रहस्य-साधना। उसमें न तो वासना की कालिमा है और न योग-साधना की जटिल दुर्बोधता।

महाकवि सूर ने लीलारस की जो अनुभूति अपने जीवन में प्राप्त की थी, उसका साक्षात्कार संयोग-वियोग की मृदुल-मोहक मर्मछबियों के चित्रण द्वारा अपने पाठक को भी कराया। कामभाव की विगर्हणा

६६

जनवरी

को स्वीकार न करके सूर ने काम के मूल में सन्निविष्ट जगत की रागमयी शुभ्र प्रवृत्तियों का पता लगाया और माधुर्य-शृंगार की स्थापना करके जगत और जीवन को रागरंजित कर दिया।

सूरकाव्य की सार्थकता न तो उनके शिल्प में है और न उनकी कोरी आध्यात्मिकता में ही; वरन उसकी सार्थकता तो जीवन को रागमय बनाकर, प्रसन्न और विशद बनाकर, भगवत्चरणारविदों में लीन करने में है। पुष्टिमार्गीय भक्ति को सूरदास ने पूरे विवेक के साथ स्वीकार किया था। वे पुष्टि में लोककल्याण का भाव देख सके थे। यह पुष्टि निवृत्ति का उपदेश नहीं देती, वरन प्रवृत्तिपरकता ही इसका संदेश है। जीवन के प्रति गहुरा प्रेम, आशा और उमंग की प्रेरणा ही इस मार्ग का ध्येय है।

निवृत्ति-परायण वैराग्य-भावना में भक्त और भगवान के बीच दूरी बढ़ गयी थी। असीम, अगाध, अगोचर, निर्गुण, निराकार बनकर भगवान का स्वरूप वैसा आकर्षक नहीं रह गया था, जो संत्रस्त और भग्न-मनोरथ हताश जन को सांत्वना दे सके। सूर ने लीलामय श्रीकृष्ण की अवतारणा द्वारा भक्ति, प्रेम, शृंगार और आनंद का नया मार्ग प्रशस्त किया।

मैं इसे लोकसंग्रह का महान मंगलमय कार्य मानता हूँ और विनम्रतापूर्वक सूर के समीक्षकों से सूर-साहित्य के हार्द को इसी दृष्टि से पहचानने का आग्रह करता हूँ। लोकमंगल केवल युद्ध और संघर्ष द्वारा ही स्थापित नहीं होता। शांति, संतोष, शील, भक्ति और समर्पण भी लोकमंगल की दिशा में ले जाने के वरेण्य साधन हैं।

—ए ५/३ राणा प्रताप बाग, नयी दिल्ली-७

★ आज

बाबा नानक !

अगर आज तुम्हें अमृतसर से ननकाना साहब जाना हो
तो अपनी फोटो की छह-छह कापियां
और अच्छे चाल-चलन का परवाना हाजिर करके
रिश्वत देकर
मिन्नतें करके
पुलिस से 'बीसा' मिलेगा—अपने जन्मस्थान जाने के लिए।

जब तुम सरहद पार करोगे,
वहां बैठे हुए 'रखवाले'
तुम्हारी 'सच की झोली' तक को टटोल-टटोलकर पूछेंगे—
'बाबा, इसमें कोई खतरनाक चीज तो नहीं?' —फकीर चंद तुली



सिर्फ घर से कब्र तक ही चल रहा है आदमी,
 और अपने आपको भी छल रहा है आदमी ।
 लौ नहीं, शोला नहीं आता नजर फिर भी मुझे
 लग रहा है, आज सिन्दा जल रहा है आदमी ।
 है तरल द्रव, बर्फ के टुकड़े मिले हैं ग्लास में,
 गल रही है बर्फ या खुद गल रहा है आदमी ?
 जी सकेगा कब तलक वह, बात यह संदिग्ध है,
 बस, प्रदूषित सांस ले-ले पल रहा है आदमी ।
 आईना जब बोल देगा, तब पता लग जायेगा:
 है हकीकत, आईने को खल रहा है आदमी ।
 जीस्त की आवाज को झुठला रहा है आदमी,
 आदमी को छोड़ सब कुछ पा रहा है आदमी ।
 फूलदानी में सजे ताजा गुलों के पास ही
 देखता हूं किस कदर मुरझा रहा है आदमी ।
 उड़ सकेगा वह पुनः आकाश में—संभव नहीं,
 पंख बूढ़े गीध-सा फैला रहा है आदमी ।



आदमी
 —शिल्पिन् थानकी—

मिल सकेगा क्या उसे कोई खजाना भी कभी ?
 हर शिला को स्थान से खिसका रहा है आदमी ।
 कौन जाने किस दिशा में बढ़ रहा है आदमी !
 फिर उतरकर बांस पर ही चढ़ रहा है आदमी !
 व्यक्त अपने आपको वह कर रहा है इस तरह—
 मंदिरों में संगेमरमर जड़ रहा है आदमी ।
 वृक्ष वैदिक काल में उसने उगाये थे कई,
 सूखे पत्ते की तरह अब झड़ रहा है आदमी ।
 बंद कमरे के कभी अंदर रहा है आदमी,
 बंद कमरे से कभी बाहर रहा है आदमी ।
 नाम मंदिर दें उसे, चाहे उसे मस्जिद कहें—
 पत्थरों के बीच, बस, पत्थर रहा है आदमी ।
 थक चुके शायर कई उद्बोधनों को पेश कर,
 बधिर श्रोता की तरह अक्सर रहा है आदमी ।
 ● जवाहर रोड, उपलेटा-३६०४९० [सौराष्ट्र] ●



शीर्षक के साथ
शरद कांबळी रचित चित्र

संतालिये राष्ट्र की इस संपदा को

डा. एस. राधाकृष्णन्

बच्चे राष्ट्र की संपत्ति हैं। उनकी शक्तियों को सही दिशा में प्रेरित करने से समूचे समाज का शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य सुधरता है।

हमारे देश में बच्चों की बड़ी प्रतिष्ठा रही है। बृहदारण्यक उपनिषद् का आदेश है कि पांडित्य का गर्व छोड़ो और बच्चे की तरह जियो—तस्माद् ब्राह्मणः पाण्डित्यं निर्विद्य वाल्येन तिष्ठेत्। बच्चे के स्वभाव की विशेषताएं क्या हैं? एक अन्य उपनिषद् (सुबाल) बताती है—बालस्वभावो असंगो निरवद्यः। बच्चे का स्वभाव है असंगता (अनासक्ति) और निर्दोषता। नीतिशे कहता है—बच्चा मासूमियत और विस्मृति है, नयी शुरुआत है, खेल है, स्व-

चलित पहिया है, प्राथमिक गति है, पवित्र 'हां' है। हम लोग दिव्यशिशु कृष्ण के पूजक रहे हैं। ईसाई धर्म के सर्वाधिक प्रसिद्ध प्रतीकों में से एक है 'मां और शिशु'।

'जब तक बच्चा नहीं बन जाओगे ईश्वर का राज्य नहीं देख पाओगे।' हैराक्लिटस के अनुसार—'(ईश्वरीय) राज्य सिर्फ बच्चे का है।' बच्चे—जैसा बन पाना आसान नहीं है। बच्चे की मनोहरता और विनम्रता अर्जित कर पाना बड़ा कष्टसाध्य है। चीनी विचारक मेनशियस कहता है—'महान वह है जिसने बाल-हृदय नहीं गंवाया है।'

ऐसी भी चीजें हैं जो विद्वानों से छिपी हुई हैं, परंतु बच्चों को विदित हैं। 'शब्द-कल्पद्रुम' के अनुसार, परब्रह्म का ज्ञान

दूसरों को देने वाले नारद मुनि ज्ञान प्राप्त करने के लिए सनत्कुमार के पास गये थे, जिन्हें भारतीय परंपरा सनातन-शिशु मानती है। अर्थात् पांडित्य-भरे नारद अपंडित सनत्कुमार के पास ज्ञान ग्रहण करने गये।

बच्चा खुले दिमाग और ग्रहणशीलता का प्रतीक है। बच्चे भावुक होते हैं, ऊष्मा-भरे होते हैं और मित्रता करने को उत्सुक रहते हैं। बच्चे का व्यक्तित्व संवेदनशील होता है और पास-पड़ोस के प्रभाव के प्रति तीव्रता से प्रतिक्रिया करता है। बच्चे की शारीरिक देखभाल ही पर्याप्त नहीं है; भावनाओं की देखभाल भी जरूरी है।

बड़ों के भ्रांत सिद्धांतों की वजह से बच्चे जीवन के स्वाभाविक स्रोतों से विमुख कर दिये जाते हैं। गलत सिद्धांतों का जहर बच्चों में भरकर हम उनकी सामाजिक



‘नहीं माई, मैं किसी लड़की को अपहरण करके नहीं ला रहा हूँ। यह मेरी पोती है, इसे मैं स्कूल पहुंचाने जा रहा हूँ। [‘स्पुतनिक’ से] नवनीत

प्रकृति को विकृत कर देते हैं। हमारे यहाँ शुरू से ही बच्चों को यह महसूस कराया जाता है कि वे अमुक जाति, राज्य या भाषा समूह के सदस्य हैं और इस तरह उनके मनों को हम तोड़-मरोड़ देते हैं। जब हम यह चाहते हैं कि हम सबसे पहले इस महान देश के निवासी हैं, यह चेतना अपने लोगों में विकसित हो, तो इसके लिए हमें छुटपन से ही नागरिकों के मन को इस दिशा में मोड़ना शुरू करना होगा।

प्रत्येक शिशु एक प्रयोग है, उदात्त जीवन की दिशा में एक ‘एड्वेंचर’ है, और रुढ़ प्रतिमानों को बदलकर नये प्रतिमान बनाने का एक अवसर है। प्रत्येक बच्चा एक स्पष्ट और विशिष्ट व्यक्ति है। व्यक्तिगत एवं सामाजिक संबंध जोड़ पाने की जो क्षमता बच्चे में होती है, उसे किसी प्रकार दिशाहीन या दिग्भ्रांत नहीं होने देना चाहिये; क्योंकि यदि यह क्षमता सही दिशा में बहेगी, तो बच्चे के जीवन में समृद्धि एवं स्थिरता लायेगी।

अपने बच्चों में हमें अपनी महान आध्यात्मिक विरासत का एहसास पैदा करना है, अपने भारतीय होने का गर्व उन्हें महसूस कराना है—दुर्लभ भारत जन्म..... भारत में जन्म मुश्किल से मिल पाता है। यहाँ जन्म पाने से भारत की सामाजिक संरचना और उसके जरिये मानवीय प्रकृति को बदलने का एक महान अवसर हासिल होता है। बच्चों को हमें अपनी संस्कृति के इस विचार से परिचित कराना चाहिये

कि सभी धर्म ईश्वर की ओर ले जाते हैं; वे ईश्वर तक पहुंचने के विभिन्न मार्ग भर हैं। मार्गों के अंतर को लेकर लड़ना अनुचित भी है और धर्मविरुद्ध भी। धार्मिक अ-हिष्णुता उस भावना के विरुद्ध है, जिसके लिए शताब्दियों से यह देश डटा हुआ है।

हमारी संस्कृति बताती है कि प्रत्येक प्राणी में ईश्वर का निवास है, भले ही वह दुष्ट या पतित जीव क्यों न हो। यही आस्था प्रजातंत्र का आधार है। हमारी संस्कृति हमसे दान, दम (आत्मनियंत्रण) और दया को आचरण में उतारने को कहती है। वह हमें अपने कर्मों के महत्त्व से आगाह करती है और बताती है कि प्रत्येक कर्म का परिणाम अवश्य होता है।

विश्व एक नैतिक व्यवस्था है। नैतिक नियमों के उल्लंघन का दंड अवश्य मिलता है। हम अन्याय करें और उसका दंड हमें भोगना न पड़े, यह संभव नहीं। इसलिए हमें न्यायप्रिय होना चाहिये।

ये सब शिक्षाएं हमें बच्चों को गीतों और कहानियों तथा खेल और काम के द्वारा देनी हैं। राष्ट्रीय पर्व और महापुरुषों व नेताओं की जयंतियां-पुण्यतिथियां मनाने से बच्चे हमारी विरासत चेतना को ग्रहण कर पाते हैं। विश्व की महान विभूतियों की जीवनियों से, जैसा कि ह्लाइटहेड का कहना है, महानता की निरंतर झांकी मिलती है। भ्रमण-यात्राओं से उन्हें अपने देश की विशालता और उसकी कला एवं स्थापत्य की महानता का प्रता चलता है।

अतीत का प्रथम परिचय बच्चों को मिलता है ऐतिहासिक आख्यानों से, और छोटी उम्र में मन में जमा दिये गये पूर्वग्रहों को आगे चलकर मिटा पाना मुश्किल हो जाता है। हम छुटपन से यह विचार लेकर बड़े न हों कि हमारा देश हमेशा सही रहा है। इतिहास की पुस्तकें सावधानी से लिखी जानी चाहिये और वे राष्ट्रों में परस्पर मैत्री-भावना की वृद्धि करने वाली होनी चाहिये।

बच्चों के लिए पुस्तकें और फिल्में बड़ी सावधानी से तैयार की जानी चाहिये। बच्चों के लिए विशेष रेडियो-कार्यक्रमों का आयोजन होना चाहिये, जो सावधानी, जीवन्तता और कल्पनापूर्ण अनुभव से तैयार किये गये हों। रेडियो और सिनेमा-बच्चों के मानसिक क्षितिज का विस्तार करें और उन्हें वापस पुस्तकों के पास लायें। महान पुस्तकें हमारी संस्कृति और सभ्यता का आधार हैं। हमें बच्चों को स्वाध्याय की महत्ता के प्रति जागरूक रखना चाहिये और उन्हें सुंदर रूप से लिखी व छापी गयी पुस्तकें देखने-पढ़ने का अवसर देना चाहिये।

बच्चों की देखभाल करना विज्ञान ही नहीं है, बल्कि कला भी है। हमें ऐसे लोगों की आवश्यकता है, जिनके मन में बच्चों के लिए सच्चा प्यार ही नहीं आदर भी हो। यह जरूरी है कि बालकल्याण के विचार का गांवों में प्रसार हो। सामाजिक पुनर्निर्माण की हमारी योजनाओं में बच्चों को ऊंची प्राथमिकता मिलनी चाहिये।





जेम्स आर्मस्ट्रांग के लेख पर आधारित

बच्चे, बूढ़े और जवान सभी बड़े चाव से ताश खेलते हैं। रमी, कोटपीस, ट्वेंटी-नाइन और ब्रिज आदि इसके कुछ लोकप्रिय खेल हैं। पर ताश के पत्तों से सबसे अधिक खेला जाने वाला या सबसे लोकप्रिय खेल है—जुआ। दुनिया के तमाम देशों में भारी पैमाने पर जुआ खेला जाता है, और उसमें ताश का प्रयोग सबसे अधिक होता है।

पश्चिमी देशों में जुए के रूप में 'पoker' खेल काफी मशहूर है तो अपने यहां 'प्लश' और 'पपलू' आदि बेहद लोकप्रिय हैं। इन खेलों में भारी रकमों दांव पर लगायी जाती हैं। इसलिए बेईमानी भी भारी पैमाने पर होती है। दांव जीतने के लिए विभिन्न तकनीकों से पत्तों में फेर-बदल की जाती है। ताश में इस तरह की 'चीटिंग' आम

नवनीत

बात है।

कुछ लोग निश्चय ही ईमानदारी से खेलते हैं, पर जुए के तौर पर ताश खेलते समय ईमानदारी कोई मानी नहीं रखती। चाहे शाम को क्लब में खेल रहे हों या दफ्तरमें लंच के समय, इस तरह की ठगी से सतर्क रहना पड़ता है, बेईमानी करने वाले व्यक्ति पर नज़र रखनी ही पड़ती है।

कारण, ताश में धोखाधड़ी या पत्तेबाजी मात्र फिल्मों या जुआघरों की फड़ तक ही सीमित नहीं है। पर ताश में ठगी की प्रवृत्ति इतनी आम हो गयी है कि सामान्य आदमी कुछ सोच भी नहीं सकता इस बारे में।

ट्रेन में यात्रियों के अजनबियों द्वारा ताश में ठगे जाने की खबरें अक्सर सुनी जाती हैं। ये पेशेवर ठग होते हैं और फर्स्ट क्लास में सफर करते हैं। लेकिन इस कला में माहिर तमाम लोग हमें अपने आस-पास भी मिल जायेंगे।

क्लबों में और टूर्नामेंट मैचों में भी इस प्रकार की बेईमानी प्रत्येक स्तर पर चलती है। एक बार विश्व ब्रिज चैंपियनशिप की विजेता टीम के दो सदस्यों को चीटिंग के आरोप में निलंबित कर दिया गया था।

वे खेल में एक सांकेतिक भाषा प्रयोग कर रहे थे।

बाजार में ताश की ऐसी गड्डियां भी विकती हैं जिन पर विशेष संकेत या चिह्न अंकित होते हैं। इससे ठगी करना आसान हो जाता है और भारी रकम जीती जा सकती है।

जादूगरी का सामान बेचने वाली दुकानों में विशेष प्रकार की गड्डियां विकती हैं जिन पर 'केवल जादूगरों के लिए' लिखा होता है। ये 'ट्रिक' या हाथ की सफाई दिखाने के लिए होती हैं।

कुछ लोग पेशेवर जादूगर न होते हुए भी संकेतयुक्त ताश की गड्डियां इस्तेमाल करते हैं। दुकानदारों से कुछ ग्राहक खास तौर पर निशान बनी हुई गड्डियों की मांग करते हैं। कुछ लोग तो दुकानों में यह तक पूछने आते हैं कि पत्तों पर किस प्रकार चिह्न आदि बनायें कि पकड़ में न आ सकें।

ताश में निशान बनाने की कोई ऐसी तकनीक नहीं है, जो अचूक हो या पकड़ी न जा सके। खिलाड़ियों पर तनिक भी संदेह हो तो चौकन्ने हो जाइये। नीचे हम आम तौर पर उपयोग किये जाने वाले चिह्न बता रहे हैं। ध्यान से देखिये कि पत्तों पर इनमें से कोई निशान तो नहीं बने हैं।

संकेत के लिए उपयोग की जाने वाली सबसे प्रचलित डिजाइन है घड़ी की डिजाइन। इसमें एक सूई अलग-अलग पत्तों पर १ से लेकर १२ के अंक तक के किसी स्थान पर दर्शायी गयी होती है। सूई अगर १

पर है तो पत्ता इक्का है, १२ पर है तो बेगम और ११ पर है तो गुलाम। बादशाह पर प्रायः कोई संकेत नहीं होता।

घड़ी-चिह्न वाले पत्तों की शिनाख्त का तरीका यह है कि बायें हाथ में गड्डी लेकर दायें हाथ से पकड़कर पत्तों को 'फ्लिक' कीजिये। पत्तों पर निशान होंगे तो एक लकीर या विदु थिरकता दिखाई देगा।

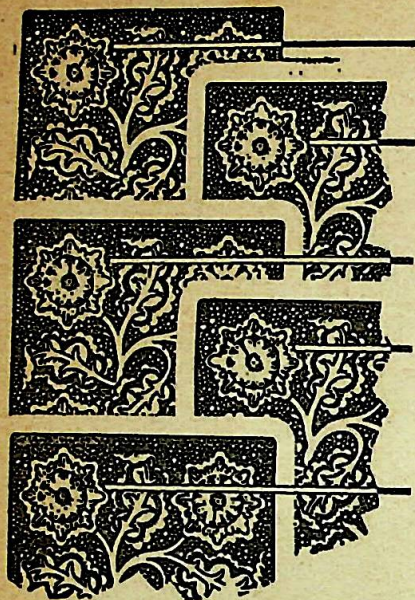
पत्तों पर फूल-पत्तियों वाली डिजाइन बहुत प्रचलित है। एक भी पत्ती के स्थान, आकार या रंग में तनिक-सा फर्क भी अनुभवी पत्तेबाज को यह बताने के लिए पर्याप्त है कि वह कौन-सा पत्ता है।

निशान इतनी बारीकी से बनाये जाते हैं कि साधारण खिलाड़ियों का उन पर ध्यान ही नहीं जाता। पर पेशेवर पत्तेबाज बता सकता है कि सामने वाले के हाथ में कौन-सा पत्ता है।

लेकिन सभी पत्तेबाज निशान या संकेतों से युक्त गड्डियों का प्रयोग नहीं करते। कुछ की अपनी ही विशिष्ट युक्तियां भी होती हैं। एक पत्तेबाज उंगलियों के पोरों में टिन की बनी चपटी कील फंसा लेता था और पत्तों पर भिन्न-भिन्न स्थानों पर हल्का-सा छेद बना देता था।

जुआघरों में प्रत्येक राउंड में नयी गड्डी की मांग करने पर तो खिलाड़ी को अनाड़ी या बददिमाग ही समझा जायेगा। इसलिए लोग पुरानी घिसी-घिसाई गड्डी से ही कई-कई राउंड खेलते हैं। पत्तेबाज के लिए यही स्थिति वरदान सिद्ध होती है।

● दिनेश कुमार द्वारा प्रस्तुत ●



रेखा १ बजे पर = इक्का;
सफेद पंखड़ी ६ बजे पर = ईंट ।

फूल पर कोई रेखा नहीं = बादशाह;
सफेद पंखड़ी १२ बजे पर = पान ।

रेखा १२ बजे पर = वेगम;
सफेद पंखड़ी ३ बजे पर = हुकम ।

रेखा ११ बजे पर = गुलाम;
सफेद पंखड़ी ९ बजे पर = चिड़ी ।

रेखा १० बजे पर = दहला;
सफेद पंखड़ी ३ बजे पर = हुकम ।

वह पत्तों पर निशान बनाने के लिए गंदा-सा गोंद प्रयोग कर सकता है। वह खास पत्तों के कोनों पर गोंद रगड़कर उसे गंदा कर देता है। यह हल्की-सी निशानी ही खेल में भारी परिवर्तन कर देने के लिए पर्याप्त होती है।

क्या आपने कभी किसी ऐसे खिलाड़ी के साथ ताश खेला है, जो खेलते समय काला चश्मा लगाये रहता हो? इसके लिए वह तेज रोशनी, धुएं या आंख की तकलीफ आदि का बहाना बना सकता है। हो सकता है, सचमुच वह कमजोर नजर वाला ईमानदार आदमी ही हो। मगर यह भी उतना ही संभव है वह कोई धूर्त पेशेवर जुआरी हो। कारण, चीटिंग के लिए भी काले

चश्मे का उपयोग होता है।

पत्तों की पीठ पर चमकदार पेंट से बड़े-बड़े अक्षरों में चिड़ी का इक्का, पान का बादशाह आदि लिख लिया जाता है। यह लिखावट केवल पोलराइज्ड चश्मे की मदद से पढ़ी जा सकती है। एक धाकड़ पत्तेबाज कई दिनों तक लोगों को मूर्ख बनाते रहने के बाद अचानक अपनी जरा-सी गलती के कारण पकड़ा गया। उसने अपना चश्मा उतारकर पत्तों के ऊपर रख दिया था। किसी की नजर पड़ी तो लेन्स में कुछ अंक चमकते दिखाई दे गये। बस, पत्तेबाज की कलाई खुल गयी। परंतु ऐसा बहुत कम हो पाता है। अभ्यस्त पत्तेबाज जल्दी पकड़ में आने वाली गलतियां करते नहीं।

दरअसल ताश की गड्डी जितनी घटिया दर्ज की हों, पत्तों पर निशान बनाना उतना ही आसान होता है। पत्तों की पीठ पर छपी जाने वाली डिजाइन की छपाई रही हो तो हाथ से बनाये गये हल्के-से निशान उसमें आसानी से छिप जाते हैं और कोई बहुत ही ध्यान से देखे, तो ही उनका पता चल पाता है।

सभी पत्तेवाज पत्तों पर निशान करते हों, ऐसी बात नहीं। कुछ लोग गड्डी में से चुपके-से खिसकाये हुए खास पत्ते छिपाकर रखने के लिए 'क्लिप' और 'रिस्टबैंड' आदि उपकरणों का प्रयोग करते हैं।

यदि यह मालूम हो जाये कि हमारे विरोधी के पास कौन-से पत्ते हैं, तो फिर दूसरे तरीकों के फेर में पड़ा ही क्यों जाये, जिसमें पकड़े जाने का जोखिम भी हो! 'स्ट्रिपर' नाम की एक प्रकार की गड्डी आती है। पत्तेवाज उसमें से एक ही चाल में कोई भी एक पत्ता या पत्तों का समूह काट सकता है। इन पत्तों का एक सिरा दूसरे सिरे से जरा-सा ज्यादा चौड़ा होता है। यह अंतर

इतना अल्प होता है कि जब तक सब तंग सिरे एक ही ओर हों, तो उसे बहुत बारीकी से माप-जोख किये बिना पकड़ा नहीं जा सकता। मगर एक पत्ता उलटी दिशा में घुमाकर रख दें तो उसका कौना गड्डी से इतना-सा बाहर निकल आयेगा कि पत्तेवाज आराम से गड्डी के किनारों पर अपनी उंगलियां फेरकर उस पत्ते का पता लगाकर उसे खींच सकता है। अंतर इतना सूक्ष्म होता है कि संदेह की गुंजाइश नहीं रहती। पत्तेवाज गलत दिशा में पत्ता घुमा-घुमाकर चारों इक्के हमेशा अपनी पहुँच में रख सकता है।

ये हैं पत्तेवाजों द्वारा आजमाये जाने वाले तरह-तरह के हथकंडों में से चंद। वास्तव में पत्तेवाजों की माया अनंत है। वैसे यह भी सच है कि इन हथकंडों का जितना ज्यादा ज्ञान आपको होगा, ताश खेलने का आपका मजा भी उतना ही कम होगा। क्योंकि तब आप खेल का रस लेने के बजाय खुफिया-गिरी करने लगेंगे। हां, खुफियागिरी का भी अपना आनंद तो है ही।



'अवध पंच' नामक समाचारपत्र ने एक बार खबर छपी—'आज शाम को लखनऊ से "काला बुखार" इलाहाबाद जा रहा है।' संयोगवश उसी दिन शाम को उत्तर प्रदेश का अंग्रेज लेफ्टिनेंट गवर्नर रेलगाड़ी से लखनऊ से इलाहाबाद जाने वाला था। उपर्युक्त खबर पढ़ने पर अधिकारियों को लगा कि उसमें लेफ्टिनेंट गवर्नर पर व्यंग्य किया गया है। सो समाचारपत्र के संपादक मुंशी सज्जाद हुसैन को बुलाकर जवाबतलबी की गयी।

मुंशीजी ने अपनी सफाई में कहा—'हुजूर, मेरा इशारा गवर्नर साहब की तरफ बिलकुल नहीं था। वे तो गोरे हैं। उन्हें "काला बुखार" भला कैसे कहा जा सकता है?'

—गोपीनाथ अमन



हरि स्तुति

• राजेन्द्र कुमार शर्मा



हिंदी कहानी

मैं पहुंचा तो दीदी लगभग तैयार थी।

दोनों बच्चे शायद स्कूल जा चुके थे। बहुत ही खुश दिखी दीदी। नयी सूती साड़ी, करीने से कढ़े बाल और पालिश की गयी चप्पलें। मैंने मजाक करते हुए पूछा—'क्या धीसू-बल्ली की सगाई-वगाई की तैयारी है दीदी?'

दीदी ने चाय का मग मेरी ओर बढ़ाकर हंसते हुए कहा—'अरे बैठ तो सही, ले पहले चाय पी।'

चटाई पर बैठते हुए मैंने चाय का मग ले लिया। चाय सिप करते हुए मैं दीदी की झोपड़ी का जायजा लेने लगा—कितनी सफाई रखती है दीदी, वरना इस गलीज बस्ती में नवनीत

तो.....।

'चाय पीते-पीते इसे देख तो घरम्।' दीदी ने एक गुलाबी रंग की पुस्तिका देते हुए कहा—'लेकिन जरा जल्दी।'

उत्सुकतावश चाय सिप करना छोड़कर, मैं पुस्तिका देखने लगा। वह किसी हाउसिंग सोसायटी की नियमावली थी। उसमें बहुत कुछ लिखा था। मैं चाय पीना भूल गंभीरता से उसे पढ़ने लगा। हाउसिंग सोसायटी का मुख्य उद्देश्य था—गरीबों के लिए सस्ते भाव पर मकानों के प्लॉट देना। मैं मन ही मन कृतज्ञता से भर उठा उस सोसायटी के प्रति, जो दीदी जैसे गरीबों को अपनी छत की छाया दिलवाने का प्रयत्न

कर रही थी।

‘और ये देख।’ दीदी ने मरा ध्यान बंटाते हुए कहा—‘अरे, तू चाय तो पी, ठंडी हो जायेगी।’

दीदी के हाथ से हरा कागज लेकर देखा—बहुत दीदी के नाम की रसीद थी, पैसा जमा कराने के एवज में हाउसिंग सोसायटी द्वारा जारी की गयी। मुझे बहुत अच्छा लगा। मैंने पुनः चाय सिप करते हुए कहा—‘तो अब मेरी दीदी मकान-मालकिन हो जायेगी—क्यों?’

दीदी ने हंसकर कहा—‘बिलकुल। हां तो धरमू, मेरे लिए आज थोड़ा समय तो है न तेरे पास?’

‘क्यों नहीं दीदी।’ मैंने शेष चाय सुड़कते हुए कहा—‘आपने खबर ही ऐसी भिजवायी थी। जरूरी हुआ तो आधे-दिन की छुट्टी ले लूंगा।’

‘तो चलें फिर?’

‘कहां?’

दीदी ने उत्साह से चप्पलें पहनीं। ताला-चाबी उठाते हुए कहा—‘धरमू, इस हाउसिंग सोसायटी के प्लाट तैयार हो गये हैं। सड़कों भी बन गयी हैं। पानी की टंकी भी। वस मुझे प्लाट मिलने ही वाला है। जरा देख तो आये, क्या-कैसे प्लाट कटे हैं?’

‘तो ये बात है?’

‘हां धरमू, तू तो जानता है यह पूरी बस्ती ही दूसरे की जमीन पर गैरकानूनी ढंग से बसी हुई है।’ दीदी ने उदास होकर कहा—‘जब इस बस्ती की झोपड़ियों पर बुलडोजर

चलाया जायेगा तो.... तो ये सब लेकर जाऊंगी कहां? प्लाट मिल ही रहा है तो उस पर अपनी झोपड़ी बनाकर, कम से कम सिर छिपाने का आसरा तो हो जायेगा न।’

‘लेकिन दीदी,’ मैंने झटके से उठते हुए कहा—‘इसमें तो बहुत दिन भी लग सकते हैं। न जाने आपका नंबर....।’

‘मुझे सबसे पहले प्लाट मिलेगा धरमू। दीदी ने मेरी बात काटी और दरवाजा बंद करके ताला लगाते हुए कहा—‘मैंने इस प्लाट के लिए सिर फुड़वाया है—सिर!’

‘क्या मतलब दीदी?’

‘प्लाट के पैसे जमा करवाने के लिए आयी भीड़ में लाठियां-चक्कू चल गये।’ दीदी ने उत्साह से बताया—‘मेरा भी सिर फूट गया उसमें, लेकिन मैंने चौथे-पांचवें नंबर पर पैसे जमा करवाकर ही सिर की मरहम-पट्टी करवायी—हां।’

‘तब तो दीदी आपको प्लाट मिला ही समझो।’

०००

दीदी और मैं मुख्य सड़क की तरफ चल पड़े। यहां से वहां तक झोपड़ियां ही झोपड़ियां। बेढब कच्चे रास्ते, जिन पर से गंदा पानी बह रहा था। छत कहीं टिन की थी तो कहीं फूस-खपरैल की। झोपड़ियों के सामने फटे-पुराने चिथड़ेनुमा कपड़े सूख रहे थे। नंगे-अधनंगे बच्चे खेल रहे थे। औरतों-युवतियों का जिस्म फटे कपड़ों में से झांक रहा था। मर्द अपने वर्तमान भविष्य से बेखबर बीड़ी-चिलम पी रहे थे।

इस गंदी वस्ती में रहने वाली दीदी को लेकर मेरे परिवार ने मेरा बहिष्कार-सा कर दिया है। भैया अक्सर कहते हैं—उस छिनाल को दीदी कह-कहकर क्यों इस खानदान की नाक कटवा रहा है धरम, न जात की न रिश्ते की। भाभी नाक-भौंह सिकोड़कर कहती हैं—क्यों लालाजी, यही मिली थी तुमको अपनी बहन और मेरी ननद बनाने के लिए? शीला, पत्नी का अधिकार जताने की गरज से कई प्रकार के सलाह-मशविरे भी दिया करती है। काश, कोई जानता कि दीदी का मुझ पर कितना बड़ा एहसान है, जिससे इस जीवन में तो शायद ही मुक्त हो पाऊँ मैं। जाति, समाज, परिवार, रिश्तों से ही क्या होता है? उस दिन दीदी का पति शंभू मुझे न बचाता तो या तो मैं आज जिंदा ही न होता, और अगर होता तो जेल के सींकियों के पीछे।

वह दिन मैं कभी नहीं भूल सकता—कभी नहीं। मोर्लिङग शाप में 'चार्लिंग' चल रहा था। 'क्युपोला' में तेजी से स्टील पिघल रहा था और पिघला हुआ स्टील 'खुर्सीबिल' (क्रूसिबल) में भर-भरकर हम तक क्रेन द्वारा लाया जा रहा था—'मोल्ड्स' में भरने के लिए। क्रेन के घिसे-पुराने 'क्रैक हुक' की शिकायत शंभू ने मुझसे कई बार की थी, लेकिन मैंने हमेशा ही उसकी शिकायत को हंसी में ढाल दिया था। एक दिन खीजकर वह बोला भी था—'साहब, आपकी ये लापरवाही एक दिन किसी की जान ले लेगी—हां।'।

नवनीत

'तुम मौत से डरते हो शंभू?' मैंने हंसे कर पूछा था।

'यह बात नहीं साहब।' शंभू ने दार्शनिक अंदाज में कहा था—'गरीब आदमी की तो पग-पग पर मौत है। लेकिन फिर भी जानबूझकर मौत को कौन बुलाना चाहता है?'

और वही हुआ, जिसकी आशंका शंभू को थी। उस दिन वह मेरे ही पास खड़ा था और पिघले स्टील से भरे-खाली 'खुर्सीबिल' को आते-जाते गौर से देख रहा था। सहसा शंभू ने मुझे जोर से धक्का दिया। उठकर-संभलकर देखा तो सिर चकरा गया। पिघले स्टील से भरा खुर्सीबिल शंभू के पास ही गिरा था और पिघले स्टील की धार उसको कई जगह से काट भी चुकी थी। मरते वक्त शंभू ने दुर्घटना की सारी जिम्मेदारी अपने ऊपर लेते हुए मुझसे सिर्फ इतना ही कहा था—'मेरे दीदी-बच्चों का खयाल रखना साहब।'।

दीदी ने मेरे ही कारण विधवापन ओढ़ लिया, बच्चे मेरे ही कारण अनाथ बन गये। लेकिन उसके बदले में उन्होंने कभी भी न तो कुछ मांगा, न शिकायत की और न कभी कोई एहसान ही.....।

'धरमू!' दीदी ने कहा—'तू सोचता बहुत है।'।

'आपका प्लाट कितनी दूर है?' मुख्य सड़क पर पहुंचकर बोला मैं—'और चलना किधर है?'

'रिक्शा ले लें धरमू।' दीदी बोली।

‘क्यों? मेरा स्कूटर जो है।’
 ‘घरमू!’ दीदी ने उदासी से कहा—
 ‘बेकार में लोग यहां तरह-तरह की बातें
 करते हैं।’

‘यहां—इस वस्ती में लोग बातें भी करते
 हैं दीदी?’ मैंने व्यंग्य से कहा—‘जिनके
 पैरों तले जमीन नहीं है वे बातें भी करते हैं—
 बाह!’

दीदी ने बुझी हंसी हंसकर कहा—‘पैरों
 तले जमीन भले ही न हो घरमू, मुंह में
 जबान तो है। और आजकल सबसे ज्यादा
 जबान का ही इस्तेमाल होता है ना। तू तो
 ...ये-ये रिक्शा.....।’

‘आप बैठिये दीदी, मेरे स्कूटर पर।’
 मैंने बात काटकर स्कूटर स्टार्ट करते हुए
 कहा—‘अगर लोगों की बातों की यों ही
 परवाह करते रहेंगे तो संसार में जीना ही
 मुश्किल हो जायेगा। आओ बैठो।’

दीदी एक सड़क की तरफ इशारा करती
 हुई, एहतियात से मेरे पीछे बैठ गयी। कुछ
 दूर चलने के बाद मैंने हंसकर कहा—‘अरे
 दीदी, मुझ अछूत से छू जाओगी इस डर
 से गिर-विर मत जाना—हां।’

दीदी ने हंसकर कहा—‘मार खाने का
 इरादा है क्या? ये ले—अब तो खुश है न तू।’

मैंने भी हंसकर ही कहा—‘दीदी, बहुत
 गरम हैं आप तो।’

‘चुप। शैतान कहीं का।’ दीदी ने कृत्रिम
 गुस्से से कहा—‘कोई तेरी बातें सुन ले
 तो.....।’

०००

एक बार शीला
 ने पूछा—‘तो यह
 थी आपकी दीदी?’

‘हां, क्यों?’

शीला ने ओंठ
 काटकर कहा—
 ‘एक ही है।’

‘क्या मतलब?’

मैंने चिढ़कर पूछा,
 तो वह हंसकर
 बोली—‘भई, इसमें

नाराज होने की क्या बात है। क्या मैं
 आपकी दीदी की सुंदरता का वर्णन या
 प्रशंसा भी नहीं कर सकती? सचमुच
 आपकी दीदी हसीन है।’

मैंने बात बदलने के इरादे से कहा—
 ‘लेकिन शीलू, वह तुमसे हसीन तो नहीं है।’

और वक्त होता तो शीला शरमा जाती,
 लेकिन इस बार वह गंभीरता से बोली—
 ‘सुना है, उसे आप अपने स्कूटर पर लिये
 घूमा करते हैं।’

‘घूमना क्या शीलू, दीदी को उसके
 किसी कांम-वाम से कभी-कभार यहां-वहां
 ले गया था। तुम तो जानती ही हो बस मैं
 कितनी देर लगती है और रिक्शा.....।’
 मैंने स्पष्टीकरण-सा दिया।

शीला ने जरा तीखेपन से कहा—‘लेकिन
 स्कूटर चलाते वक्त आपकी इस हसीन
 दीदी के चिकने-नरम अंग आपका स्पर्श
 करते हैं तो आपको मजा ही.....’

‘शीलू!’ मैंने तीखेपन से उसकी बात



स्केच :

डा. जगदीश गुप्त

काटी—‘इस तरह का अनुभव हासिल करने की बात भी कभी मेरे दिमाग में नहीं आयी। याद रखो, जिसके प्रति आदमी के मन में श्रद्धा होती है, उसके चिकने-नरम अंग, तीखे नक्श और दूसरी बातें तन-मन में उत्तेजना नहीं भरती।’

‘वस-वस, रुक जा धरमू।’ दीदी ने कहा तो मैंने झटके से ब्रेक लगा दिया। दीदी स्कूटर पर से उतर गयी, मैं भी।

सामने ही हाउसिंग सोसायटी का बोर्ड लगा था। पास ही दूसरा बोर्ड भी था, जिस पर वहां का नक्शा, प्लोटों की साइज, संख्या, रोड आदि दर्शाये गये थे। दीदी धीरे-धीरे आगे बढ़ रही थी और प्रत्येक प्लॉट को आत्मीयता से देख भी रही थी।

मैं दीदी के चिंतन में बाधा नहीं डालना चाहता था, सो इधर-उधर देखता हुआ साथ-साथ चल रहा था। यहां से वहां तक प्लॉट ही प्लॉट कटे थे। रोड लगभग बन चुके थे। पानी की टंकी और नालियां बन चुकी थीं। पानी के लिए पाइप-लाइन बिछायी जा रही थी। मैंने प्लॉटों की संख्या और दीदी की ‘सीनियारिटी’ का हिसाब लगाते हुए कहा—‘दीदी, इतने प्लॉट हैं; आपको जल्द मिल जायेगा।’

‘यही तो मैं भी सोच रही हूं, धरमू।’

‘एक काम करना दीदी’, मैंने उत्साह से कहा—‘आप प्लॉट लेकर, किसी बैंक से कर्ज ले लेना। अच्छा मकान बनवा लेना। मैं भी आपका किसयेंदार बन जाऊंगा—सच्ची।’

नवनीत

दीदी बोली—‘इतने बड़े प्लॉट में दौ-तीन कमरे और किचन तो आसानी से बन जायेंगे धरमू।’

‘बिलकुल। सिर्फ यही नहीं पिछवाड़े आंगन, सामने छोटा-सा बगीचा भी निकल जायेगा दीदी, घीसू-बल्ली के खेलने के लिए।’ मैंने उत्साह से कहा—‘इतने बड़े प्लॉट पर बीस-पच्चीस हजार कर्ज तो आपको मैं दिलवा सकता हूं। थोड़ा हिस्सा किराये पर देकर किस्ते चुकाती रहना आप।’

दीदी का चेहरा सुख से चमक उठा। भरे गले से बोली वह—‘धरमू, अगर ऐसा हो जाये तो.....।’

‘ऐसा होगा ही दीदी।’ मैंने बात काटकर कहा—‘क्या आपको अपने धरमू की बात पर शक है?’

दीदी की आंखों में आंसू आ गये—शायद खुशी के। अपने सिर पर अपनी छत का मोह किसे नहीं होता। आदमी भूखा-प्यासा भी निजी मकान की छत तले हंसकर जी सकता है। मैंने तभी मन ही मन पक्का निश्चय भी कर लिया कि दीदी के इस सपने को पूरा करने में मैं कोई कोर-कसर न उठा रखूंगा।

०००

रविवार को सुबह-सुबह ही घर आ गयी दीदी। शीला ने उसे बैठने तक को नहीं कहा। मुझे शीला के इस व्यवहार पर गुस्सा तो बहुत आया, लेकिन उससे उलझकर छुट्टी का दिन खराब नहीं करना चाहता

था। हंसते हुए मैं ही बोला—‘वैठो दीदी। शीलू, जरा दो कप चाय और नाश्ता भिजवा देना।’

‘अरे रहने दे घरमू!’ दीदी ने बैठते हुए कहा—‘क्यों बहू को परेशान करता है।’

‘परेशानी कैसी दीदी?’ मैंने हंसते हुए कहा—‘यह तो आपका ही घर है दीदी। हां, आपके उस प्लाट का क्या हुआ?’

दीदी ने उत्साह से कहा—‘बस समझो हो ही गया अब अपना प्लाट घरमू, ये..... ये देख तो जरा कागजात।’ और दो लिफाफे मेरी तरफ बढ़ा दिये। मैंने लिफाफे ले लिये। एक में वह नोटिस था, जो सरकार की तरफ से मिला था। दूसरे में हार्जिसिंग सोसायटी की सूचना थी, जिसके अनुसार तुरंत दो हजार रुपये जमा करने थे—प्लाट के एलाटमेंट के लिए। दोनों कागज और खाली लिफाफे दीदी को लौटाते हुए मैंने पूछा—‘तो दो हजार में प्लाट आपका हो जायेगा फिर?’

‘नहीं रे,’ दीदी ने बताया—‘हर महीने पंद्रह-बीस रुपये किस्त और देनी पड़ेगी। बीस साल तक। पूरा कागज पढ़ न।’

कागज मैंने पूरा ही पढ़ा था, लेकिन जो नोटिस दीदी को सरकार की तरफ से मिला था उसमें झोपड़ी एक सप्ताह में हटाने के आदेश के अलावा जो बातें लिखी थीं, उन्हीं में उलझकर मैं बाकी बातें भूल-सा गया था। दीदी का मन रखने के लिए मैंने दोनों कागज दुबारा पढ़ने का अभिनय-सा किया और स्वीकृति में गंभीरतापूर्वक

सिर हिला दिया और कहा भी—‘तब तो दीदी, वह प्लाट आपको बहुत ही महंगा पड़ेगा।’

‘महंगा-सस्ता क्या घरमू!’ दीदी बोली—‘सारी झोपड़ी का अटाला उठाकर अपने प्लाट पर चली जाऊंगी। पैरों तले अपनी जमीन तो हो जायेगी न। घरमू, सुना है—सात दिन में अगर हम लोगों ने अपनी झोपड़ियां नहीं उठायीं तो उन पर बुलडोजर चला दिया जायेगा।’

मैंने दीदी को दिलासा देने की गरज से कहा—‘अरे छोड़ो दीदी, मजाक है झोपड़ियों पर बुलडोजर चलाना! हूं, आंदोलन हो जायेगा। मार-पीट भी। क्या गरीब आदमी सिर छिपाने भर की जमीन भी नहीं ले सकता? आखिर वह जाये कहां।’

दीदी ने मेरे कथन को विशेष महत्त्व नहीं दिया। शायद वह ऐसी बातों की असलियत से वाकिफ थी। बोली—‘एक काम कर। ये कुछ रुपये हैं और कुछ गहने। गहने बेचकर और ये रुपये मिलाकर कल हार्जिसिंग सोसायटी के दफ्तर में जमा करवा आना।’

बात पूरी होने के साथ ही शीला चाय लेकर आ गयी। मैं दीदी से कहना चाहता था कि गहने बेचने की क्या जरूरत है, पैसों का इंतजाम मैं कर दूंगा। लेकिन शीला की उपस्थिति में ऐसा कहना बात का बतंगड़ बन जाने देना होता। शीला ने तभी कहा—‘अरे दीदी, सारी उम्र की धरोहर यों ही गंवाने की क्या जरूरत है,

रुपयों की व्यवस्था ये कर देंगे। आखिर भाई बनाने का कुछ तो फायदा उठाइये आप। क्यों जी ?'

शीला के इस व्यंग्य पर मैं बुरी तरह कटकर रह गया। गुस्से से उसे डांटना ही चाहता था, लेकिन तभी दीदी ने चाय पीना छोड़कर गंभीरता से कहा—'बहू, ऐसा भाई भगवान सबको दे। लेकिन जब मेरे पास रुपयों की व्यवस्था है तो इससे क्यों मांगूं ? जरूरत आ ही पड़ी तो मांग लूंगी। तुम लोगों के सिवा इस संसार में मेरा है भी कौन। अच्छा तो घरमू, अब मैं चलती हूं।'

'लेकिन चाय तो.....।'

'रहने दे घरमू, मन नहीं कर रहा है।' बोली दीदी, और गंभीर चाल से बाहर हो गयी। मैं हतप्रभ—सा उसे बाहर तक छोड़ने भी न जा सका। बहुत देर तक गुमसुम बैठा दीदी के बारे में ही सोचता रहा—कितना मजबूत दरख्त है दीदी, जो अपना अस्तित्व बरकरार रखते हुए, अन्यान्य को भी अपनी स्नेहसिक्त छाया प्रदान-करती जा रही है।

'आज पिक्चर चलना है ना।' मेरी विचार शृंखला को तोड़ते हुए बोली शीला—'हमेशा अपनी दीदी के बारे में सोचते रहते हो, कभी हमारे बारे में भी तो.....।'

'शीलू।' मैंने बात काटकर कहा—'ये गहने-वहने कहां बिकते हैं ?'

'सराफा बाजार में।'

'कितने के होंगे दीदी के ये गहने ?'

शीला ने इस बार मुझे घूरा और बड़ी

तिक्तता से कहा—'मैं कोई सुनार हूं ?'

'फिर भी, खरीदे-पहने तो हैं न।'

शीला ने गहनों को उलटते-पलटते हुए बताया—'चार हजार से कम के तो नहीं ही हैं।'

'हूं, और ये रुपये ? जरा गिनो तो।'

शीला रुपये गिनने लगी तो मैंने हिसाब लगाया कि ये रुपये और कुछ रुपये और मिलाने से दीदी के प्लाट की पूरी कीमत एक साथ दी जा सकती है। प्लाट की रजिस्ट्री भी दीदी के नाम अभी हो जायेगी। किस्तों का झमेला भी नहीं रहेगा। मकान के लिए कर्ज मिलने में भी सुविधा रहेगी।

'ग्यारह सौ।' शीला ने कहा तो मेरा ध्यान उचट गया और मैं उन गहनों की तरफ देखने लगा, जो दीदी ने कभी बढ़े चाब से बनाये होंगे, लेकिन आज-अब.....।

मेरे माथे पर पसीना आ गया। मैंने हाथ से पसीना पोंछते हुए कहा—'तो ये सब करीब पांच हजार का है।'

'पांच हजार !' शीला ने चौंककर कहा—'अरे, ये गहने सराफा में बेचने जाओगे न आप तो लफड़े में पड़ जाओगे—हां। ऐसा करती हूं, ये गहने मैं रख लेती हूं और नौ सौ दिये देती हूं। भर आना कल दो हजार हाउसिंग सोसायटी के दफ्तर में—दीदी के नाम पर।'

'लेकिन चार हजार के गहने नौ सौ में ?' मैं भी भस्व-ताव पर उतर आया था—

'चार हजार की व्यवस्था करती हो तो....., देखती नहीं, पुराना असली सोना है—

असली !'

शीला की आंखों में चमक भर गयी। कुछ सोचकर बोली—'मैं कौन इन गहनों को खाये जा रही हूँ जी। जब दीदी पैसे वापस कर देगी तो गहने भी वापस कर दिये जायेंगे।'

शीला का यह प्रस्ताव मुझे कुछ-कुछ अच्छा लगा। शीला भी अच्छी लगी—चलो दीदी के प्रति इसके मन में थोड़ी सहानुभूति तो.....।

०००

हार्जिसिंग सोसायटी के दफ्तर में दीदी के नाम पर दो हजार रुपये जमा कराके रसीद लेते हुए मैंने क्लर्क से पूछा—'भाई साहब, ये प्लाट कब तक एलाट हो जायेंगे?'

'जब जिसका नंबर आयेगा।' वह समझाता हुआ बोला—'लेकिन इसमें भी एक बात और है। पहले प्लाट आउट रेट पर बेचे जायेंगे, फिर नंबर वालों को सीनियरिटी से.....।'

'आउट रेट।' मैंने बात काटकर कहा—'क्या मतलब?'

'मतलब यह कि', उसने एक आंख बंद करके कहा—'जो प्लाट की पूरी कीमत के साथ कुछ दक्षिणा-पानी देगा, उसको प्लाट पहले दिया जायेगा और बाकी लोगों को बाद में।'

'तो इसका अर्थ तो यह हुआ कि ये प्लाट गरीबों के लिए नहीं, पैसे वालों के लिए हैं।'।'

क्लर्क के चेहरे पर दार्शनिक-भाव उभर आया। वह गंभीरता से बोला—'भाई साहब,

प्लाट की भली कही आपने, यह संसार ही पैसे वालों के लिए है। बाकी तो महज अपने जीने की भूमिका भर निभा रहे हैं।'

मैंने कुछ सोचकर कहा—'इस प्लाट की कीमत क्या है?' क्लर्क ने एक अन्य रजिस्टर उलटते-पलटते हुए बताया यही पांच-साढ़े पांच हजार।'

'मतलब साढ़े तीन हजार और जमा करवा दिये जायें तो.....।'

'सिर्फ तीन हजार!' क्लर्क ने तत्क्षण कहा—'बाकी पांच सौ कहां जमा होंगे, मैं बता दूंगा। प्लाट आज ही आपको मिल जायेगा। यह.....यह देखिये, ब्लैक एलाट-मेंट आर्डर।'।'

मैं स्कूटर पर तेजी से घर आया। शीला कहीं बाहर गयी हुई थी। मन में अतिरिक्त उत्साह था कि दीदी को आज जब प्लाट एलाटमेंट आर्डर दूंगा तो वह कितनी खुश होगी, कितने आशीर्वाद देगी। शीला को किसी तरह राजी करके दीदी के गहनों के नाम पर शेष साढ़े तीन हजार ले लूंगा और.....।

मेरा एक-एक क्षण बड़ी मुश्किल से कट रहा था।

शीला आयी तो मैंने नम्रता से उसको सारी बात बताकर साढ़े तीन हजार की बात कही। वह तटस्थता से बोली—'आपकी दीदी के गहनों के रुपये मैं दे चुकी हूँ।'

'लेकिन शीलू, गहने तो चार हजार के हैं।' मैंने समझाते हुए कहा—'तुमने सिर्फ नौ सौ दिये हैं। शीलू प्लीज, दीदी को प्लाट



चित्र : दत्तप्रसन्न राणे

नहीं मिला तो वह परेशानी में पड़ जायेगी। झोपड़ियों पर वैसे ही बुलडोजर चलाने की योजना बन रही है।'

'मैंने सारे जमाने का ठेका ले रखा है क्या?' इस बार शीला ने गुस्से से कहा।

'शीलू, दीदी गैर नहीं है।'

'गैर नहीं है तो इस घर में ही लाकर रख लो न।' शीला ने गुस्से से कहा—'मैं सब समझती हूँ कि आपको उस दीदी से इतनी सहानुभूति क्यों है।'

'शीलू।' मैंने गुस्से से कहा—'अपने पति पर इतना वेहूदा लांछन लगाते हुए शर्म नहीं आती तुमको? ठीक है, तुम ऐसा कह रही हो तो ऐसा ही सही—जाओ, दीदी के सारे गहने वापस करो। मैं गहने बाजार में बेचकर अभी तुम्हारे रुपये वापस करता हूँ और—और बाकी'

नवनीत

'गहने!' शीला बात काटकर व्यंग्य से हंसती हुई बोली—'कौन-से गहने? मैंने जब गहनों की कीमत ही चुका दी तो.....। मैंने तो उन्हें तुड़वाकर, नये गहने बनवाने का.....।'।

'शीला!' मैं गुस्से से चीखा—'तुमने दीदी के गहने तुड़वा दिये?'

'हां।'।

'और बाकी रुपये नहीं दोगी?'

'नहीं।'।

'तो कान खोलकर सुन लो शीला—दीदी अगर तुम्हारी इस हरकत के कारण किसी परेशानी में पड़ गयी तो मैं तुम्हें कभी क्षमा नहीं करूँगा और वह सचमुच इसी घर में आकर रहेगी।' गुस्से से मैंने कहा और घर से बाहर हो गया।

०००

तीन-चार हजार की व्यवस्था करने के लिए मैंने रात-दिन एक कर दिया, लेकिन सब व्यर्थ। पहली बार एहसास हुआ—आर्थिक संकट आदमी को इस स्तर तक परेशान कर सकता है। दीदी के सामने भी जाने की हिम्मत नहीं हो रही थी। दीदी के पास-पड़ोसी सामान उठाकर यहां-वहां जा रहे थे। पता चला—सचमुच बुलडोजर चलने वाला है। मैं एक बार और हाउसिंग सोसायटी के दफ्तर गया। उस क्लर्क ने मुझे देखते ही कहा—'भाई साहब, ले आये साढ़े तीन हजार और पांच सौ?'

'इंतजाम कर रहा हूँ।' मैंने नम्रता से कहा—'हां, प्लाट की क्या पोजिशन है?'

वह बोला—‘एक सेठ ने करीब-करीब सारे प्लाट आउट रेट पर खरीद लिये हैं। दो-चार बचे हैं।’

‘सेठ इतने प्लाट का क्या करेगा?’ मैंने जानते हुए भी व्यर्थ-सा प्रश्न किया। क्लर्क ने मुझे उचटती निगाह से देखा और फिर अपने काम में व्यस्त हो गया।

मुझे अपने आप पर गुस्सा आने लगा। तीखे स्वर में बोला—‘फिर जिन लोगों ने दो-दो हजार जमा करवाये हैं, उनके लिए सोसायटी क्या कर रही है?’

‘एक खेत खरीदा है।’ क्लर्क बोला—‘उसमें प्लाट.....।’

‘उसे भी कोई पैसे वाला आउट रेट पर खरीद लेगा।’

क्लर्क रहस्य से मुस्करा दिया।

०००

सुना—दीदी की वस्ती को नेस्तनाबूद करने के लिए बुलडोजर आ गये हैं। पुलिस भी। दो घंटे का समय और दिया गया है। रुपये का इंतजाम न कर पाने की विवशता से मेरी आंखों में आंसू आ गये। हे भगवान,

दीदी पर क्या बीत रही होगी?

सहसा मुझे अपने स्कूटर का खयाल आया। एक मित्र के पास स्कूटर गिरवी रखकर मैं रुपये लेकर हार्जिसिंग सोसायटी के दफ्तर गया। क्लर्क ने देखते ही कहा—‘सारी भाई साहब, बाकी प्लाट भी एक सेठ ने आउट रेट पर खरीद लिये हैं।’

०००

दीदी की वस्ती पर बुलडोजर चल रहे थे। हाहाकार मचा हुआ था। लोग बचे-खुचे, टूटे-फूटे सामान को समेटने का प्रयत्न कर रहे थे। प्रलय-लीला देखकर मेरे रोंगटे खड़े हो गये। गुस्से से मैं आगे बढ़ता कि तभी मुझे सुनाई दिया—‘घरभू!’

मैंने पलटकर देखा—दीदी बुझी हंसी हंस रही थी। पास ही भयभीत-से घीसू-वल्ली गिरती दीवारें, टूटते घर, उड़ती धूल देख रहे थे।

हम सब सड़क पर थे। मैंने सीधी-सपाट सड़क को देखा—आस-पास एक भी दरख्त नहीं था। —हाउस नं. ६, स्ट्रीट नं. १, परदेशीपुरा, इंदौर, म. प्र.

★

एक लोमड़ी बेहद भयभीत होकर भागी जा रही थी। किसी ने उससे इसका कारण पूछा, तो उसने कहा—‘देख नहीं रहे हो, लोग ऊंटों को पकड़कर ले जा रहे हैं! वे उनसे जबर्दस्ती अपना काम करवायेंगे।’

‘पर तुम्हें ऊंटों से क्या लेना-देना? ऊंटों की बदकिस्मती से तुम्हारा कोई वास्ता नहीं है। तुम्हें तो कोई गलती से भी नहीं पकड़ेगा, क्योंकि तुम ऊंट-जैसी बिलकुल भी लगती नहीं हो।’

लोमड़ी ने कहा—‘खामोश! अगर मेरे किसी दुश्मन ने अफवाह फैला दी कि मैं ऊंट’, तो फिर पकड़े जाने पर मुझे कौन छुड़ायेगा?’

★

—इवरीस शाह



बी. एस. रघुनाथ राव

बीदीरी सामान से आप अपरिचित नहीं होंगे। इसने यह नाम पाया है कर्नाटक राज्य के बीदर नगर पर से। यह एक विशिष्ट कुटीरोद्योग है, जो बीदर में केंद्रित है और अब सारे विश्व में मशहूर हो गया है। जिस मिश्रधातु से बीदीरी सामान बनाया जाता है, उसमें जस्ता और तांबा १६: १ के अनुपात में रहता है। इस मिश्रधातु से विविध वस्तुएं गढ़कर उनमें सोने-चांदी की जड़ाई की जाती है। यह उद्योग लगभग पांच सौ साल पुराना है।

कहा जाता है कि दक्षिण के वहमनी साम्राज्य का प्रधान-मंत्री महमूद गवान बीदीरी के बने एक खास प्याले में ही पानी पीता था, जिस पर सोने से कुरान की कुछ

आयतें अंकित थीं। आज भी पुराने खान-दानों में ऐसे प्याले मौजूद हैं, परंतु उन पर आयतें चांदी में लिखी हुई होती हैं। आज ये प्याले प्राचीन कलाकृतियों के रूप में बड़े मूल्यवान हैं। यह भी विश्वास प्रचलित है कि इन प्यालों में पानी पिलाने से छोटे बच्चों का बुखार दूर हो जाता है।

पुराने जमाने में चारपाई के पायों, प्यालियों, तश्तरियों, वाश-बेसिन, पानदान, खासदान, आभूषणों की पेट्टी, हुक्के, शेरवाती के बटन, अंगूठी और तस्वीरों के फ्रेम आदि के रूप में बीदीरीकाम की वस्तुओं का दैनिक जीवन में बहुत उपयोग होता था।

मिश्रधातु की गहरी काली पृष्ठभूमि में चांदी की निखरी हुई सफेदी इन वस्तुओं

● 'आकाशवाणी' से साभार ●

की खास सुंदरता है। फिर सोने की जड़ाई से इनकी सुंदरता और बढ़ जाती है। चांदी और सोने का यह सम्मिलित काम 'गंगा-जमुनी' काम कहलाता है।

बीदरी काम तीन प्रकार के हैं—१. तार का काम—मिश्रधातु की काली सतह पर चांदी के तार से फूल-पत्तियों एवं अन्य आकर्षक डिजाइनों की जड़ाई होती है। २. पत्तर का काम—चांदी के पत्तों को फूल-पत्ते और तस्वीरों के आकार में जड़ा जाता है। ३. चांदी के तार और पत्तों के संयोग से अंगूर की लताओं, फूल-पत्तियों एवं अन्य डिजाइनों के जड़ने का काम।

ग्राहक की मांग पर सोने का उपयोग भी किया जाता है। पहले इसके अलावा दो काम और होते थे—नक्काशी का काम और जड़ने का काम। मिश्रधातु की सतह के ऊपर सोने और चांदी में फूल-पत्तियों और लताओं की नक्काशी की जाती थी। अब तो यह काम बिलकुल बंद हो गया है। पर इस काम के नमूने हमें संग्रहालयों में या प्राचीन कलात्मक वस्तुओं की दुकानों में मिल सकते हैं।

बीदरी काम केवल भारत में होता है। इस मामले में यह अन्य हस्तकलाओं से विशिष्ट है ही, साथ ही अपनी चमत्कारी उत्पादन-प्रक्रिया की दृष्टि से भी यह उल्लेखनीय है। बीदर के पुराने किले की चहार-दीवारी में पायी जाने वाली एक विशेष प्रकार की मिट्टी से यह अद्भुत प्रभाव पैदा किया जाता है।

सबसे पहले मिश्रधातु तैयार करने के लिए १६:१ के अनुपात में जस्ता और तांबा लिया जाता है—अर्थात् ८०० ग्राम जस्ता तो ५० ग्राम तांबा। तांबा इसलिए मिलाया जाता है कि मिश्रधातु में चमक-दमक आये। जो चीज बनानी हो, उसका सांचा तेल में सनी मिट्टी से तैयार किया जाता है। जस्ते और तांबे की पिघली हुई मिश्रधातु सांचे में उड़ेली जाती है। क्षण-भर में ही धातु सांचे की मूल आकृति में ढल जाती है। निर्माण-प्रक्रिया का प्रथम चरण इस तरह पूरा होता है।

जब अपेक्षित वस्तु तैयार होकर सांचे से निकाल ली जाती है, उस पर से अतिरिक्त धातु रेती से घिसकर निकाल दी जाती है। यह काम अल्प-कुशल कारीगरों से कराया जाता है। आगे रेती से तराशने का काम सिद्धहस्त शिल्पकार करते हैं, जो नक्काशी के कार्य में निपुण होते हैं। ढला हुआ तैयार पात्र रंग में सफेद होगा, हालांकि थोड़ा बहुत तांबा भी इसमें मिला होता है।

अब इस पात्र को लकड़ी के एक टुकड़े से लाख की सहायता से जड़ दिया जाता है। इसके बाद कुशल शिल्पकार नक्काशी, खुदाई और तराशने का कार्य शुरू करते हैं। इस काम में बहुत कुशलता और प्रतिभा की आवश्यकता होती है। चूंकि पहले विशिष्ट डिजाइनों के लिए विकास-केंद्र तो थे नहीं, शिल्पकार स्वयं ही आकर्षक डिजाइनों की कल्पना करते थे और बड़ी कुशलता से उन्हें पात्रों पर अंकित करते थे।

मौलिकता के आकर्षण के कारण ये वस्तुएं अच्छे दामों पर विक्रि जाती थीं। डिजाइनों को दुहराया नहीं जाता था, जब तक कि कोई खरीदार इसकी फरमाइश न करे।

नक्काशी का काम समाप्त हो जाने पर सोने और चांदी के तार-पत्तों की जड़ाई का कार्य बहुत ही सावधानी के साथ छोटे और हल्के औजारों की मदद से धीमे-धीमे



हुक्का : बीदरी शान

ठोंककर किया जाता है। यह काम पूरा हो जाने के बाद अंदर जड़ी हुई धातु के अति-रिक्त अंश को रेती से आहिस्ते खरादकर साफ कर दिया जाता है। इससे डिजाइन निखर उठती है। चूंकि मूल मिश्रधातु और उस पर जड़ी चांदी, दोनों का ही रंग सफेद होता है, इसलिए उन पर उत्कीर्ण चित्र अथवा डिजाइनें इस अवस्था में पहली नजर नवनीत

में स्पष्ट नहीं हो पातीं।

अब जड़ावदार वस्तु को हल्की आंच पर गरम किया जाता है और ऐसे कपड़े के टुकड़े से रगड़ा जाता है जो बीदर किले की दीवारों की मिट्टी में नौसादर और पानी मिलाकर बनाये गये गारे से सना होता है। इससे जस्ते और तांबे की वह मिश्रधातु तुरंत आक्सीकृत होकर गहरा काला रंग पकड़ लेती है, जबकि सोने और चांदी पर कोई रासायनिक क्रिया न होने से उनका रंग वैसा ही बना रहता है।

मिश्रधातु का रंग काला पड़ जाने से वस्तु का शिल्प-सौंदर्य एकदम निखर उठता है। अब वस्तु को सादे पानी में धोया और सुखा लिया कि वस माल बिक्री के लिए तैयार। बीदरी काम के सामान पर पालिश करना हो तो खाने के तेल की कुछ बूंदें छिड़क कर कपड़े से रगड़ दीजिये, चीज चमक उठेगी। किसी दूसरी पालिश की जरूरत नहीं पड़ती।

पुराने समय में मशीनें तो थीं नहीं, ढलाई से लेकर आक्सीकरण तक की सारी प्रक्रियाएं विभिन्न शिल्पकार विभिन्न चरणों में करते थे। इसलिए बीदरी सामान की उत्पादन-लागत ज्यादा पड़ती थी। फिर हस्तनिर्मित होने के कारण उत्पादन भी सीमित मात्रा में हो पाता था, जिससे मांग की पूर्ति मुश्किल से हो पाती थी। इस कारण भी बीदरी सामान महंगा बिकता था।

आज मशीनों ने बहुत-सा काम संभाल लिया है। सांचे बनाने, ढलाई, रेती से

तराशने का कार्य और पालिश आदि कार्यों में मशीन के उपयोग से श्रम की लागत में पर्याप्त बचत होने लगी है। और साथ ही उत्पादन में वृद्धि भी। कुशल कारीगर अब पूरे समय नक्काशी और जड़ाई के काम में लगे रह पाते हैं। उत्पादन बढ़ जाने से अब ज्यादा नक्काश रोजगार पाते हैं।

आज विदेशों में बीदरी सामान की भारी मांग है। साड़ी-पिन, ब्रोच, टाइ-पिन, राखदान, पानदान, सिगार-सिगरेट-केस, गुलदान, कलमदान, पेपरबेट, पेपर-कटर, नेकलेस, पायल-पाजेब, बटन, तस्वीरों के फ्रेम, लैप-स्टैंड आदि अनेक सजावटी एवं दैनिक उपयोग की वस्तुएं विदेशी बाजारों में काफी लोकप्रिय हैं।

वैसे स्वदे में इनकी खपत बहुत कम

है। कारण, एक तो ये सामान काफी वजनदार होते हैं, दूसरे आज बाजारों में सस्ती और नकली चीजों का जोर है। मेरी मान्यता है कि मशीनों की मदद से इनमें से कुछ वस्तुओं का वजन तो निश्चित रूप से काफी कम किया जा सकता है। अभी बीदरी सिगरेट-केस देखने में तो आकर्षक होते हैं, पर भारी होने की वजह से कोट या वुशर्ट की जेब में मुश्किल से रखे जा सकते हैं।

एक और मुद्दा विचारणीय है। निर्यात के दौरान समुद्री जलवायु का बीदरी सामान पर दुष्प्रभाव पड़ता है। धातु का गहरा काला रंग एक-सा नहीं रह पाता और जगह-जगह धब्बे-से उभर आते हैं। इससे वस्तु का सौंदर्य नष्ट हो जाता है। इसका कोई इलाज खोजा जाना चाहिये।



कलंदरी फकीर बहुत हाजिर-जवाब और मुंहफट होते हैं। सो लोग उन्हें जल्द ही रोटी या पैसे देकर उनसे अपना पीछा छुड़ा लेते हैं कि कहीं कोई फिकरा न कस दें।

एक बार एक कलंदरी फकीर एक गली में घुसा तो उसे एक आबनूस-जैसे काले मुंशीजी दिखाई पड़े, जो बाहरी दलान में हरा दुशाला ओढ़े बैठे अखबार पढ़ रहे थे। फकीर खड़ा रहा, लेकिन मुंशीजी ने उसकी ओर देखा तक नहीं।

फकीर ने कहा—‘अरे, हरे खेत के काले कौए, कुछ फकीर को भी दिला।’

मुंशीजी उठकर घर के भीतर चले गये। फकीर कुछ देर इंतजार करने के बाद आगे बढ़ गया। थोड़ी देर बाद जब वह लौटा, तो देखा कि मुंशीजी हरे की जगह पीला दुशाला ओढ़कर कुर्सी पर बैठे हैं। जैसे वे उसका ही इंतजार कर रहे हों।

फकीर ने इस बार उनका पीला दुशाला देखकर कहा—‘अरे बंगाल की पीली मैना, कुछ फकीर को भी दिला।’ मुंशीजी कौए से पीली मैना बनकर खुश हो गये और उन्होंने जेब से एक रुपया निकालकर फकीर को दिया।

फकीर ने रुपया लेने के बाद कहा—‘भाई वाह ! मुर्गी है तो काली, लेकिन अंडा सफेद ही देती है।’ मुंशीजी खिसिया गये और फकीर आगे बढ़ गया।

—सुरेश सिंह





रावण-दाहः संस्कृति या विकृति

प्रेमाचार्य शास्त्री

श्री इंद्रचंद्र नारंग ने उक्त शीर्षक वाले लेख में ऐसी अनेक बातें लिखी हैं, जो मेरी राय में असंगत हैं और इस कारण विवादास्पद हैं। विजयादशमी के उल्लास-मय पर्व पर विशाल पुतले के रूप में रावण का दाह किया जाना व्यक्ति रावण के प्रति हिंदुओं की बढमूल घृणा का द्योतक नहीं, अपितु अन्याय, अधर्म और नीति-विपरीत आचरण के प्रति मानव-सहज धिक्कार-भावना का परिचायक है। भारतवर्ष में, जनमानस में श्रीराम और रावण शताब्दियों से मात्र ऐतिहासिक व्यक्ति नहीं, अपितु धर्म और अधर्म अथवा न्याय और अन्याय के प्रतीक हैं। रावण-दाह के पीछे भी यही सांस्कृतिक अंतर्दृष्टि है। उसे 'विकृति' की संज्ञा देना उसके परिप्रेक्ष्य का समुचित मूल्यांकन नहीं है।

लेख में यह भी स्थापित करने की चेष्टा की गयी है कि रावण ने कोई 'पाप' नहीं किया था। लेखक का कहना है कि तत्कालीन मान्यताओं के अनुसार अकामा से बलात्कार करना ही पाप, सकामा के साथ संपर्क हेतु नहीं था; रावण ने सीता का अपहरण मात्र किया था, कोई बलात्कार नहीं किया था; अतः वह निष्पाप था। इसके पक्ष में उन्होंने महाभारत तथा अन्य पुराणों से कुछ उदाहरण दिये हैं। परंतु इस संदर्भ में अन्य ग्रंथों को लाना आवश्यक नहीं है। स्वयं वाल्मीकि-रामायण ही अतिशय स्पष्ट रूप से रावण को 'पापकर्मी' घोषित करता है।

१. बृहस्पति के पुत्र ब्रह्मर्षि कुशध्वज की तपस्विनी कन्या वेदवती के साथ रावण ने बलात्कार करना चाहा। वह कन्या कहती रही कि मैं नारायण-प्राप्ति के लिए महाव्रत में संलग्न हूँ, मेरा स्पर्श करके मर्यादा भंग मत करो। परंतु रावण ने कन्या की याचना पर ध्यान नहीं दिया और बलपूर्वक उसके बाल पकड़ लिये। तब आत्मरक्षा का कोई अन्य नवनीत

उपाय न देखकर वेदवती ने अपने शील की रक्षा के लिए यज्ञाग्नि में कूदकर आत्मदाह कर लिया [वा. रा. ७. १७. ३०]।

२. कुबेर रावण का भाई था। उसके पुत्र नलकूबर की प्रेयसी रंभा पर रावण की दृष्टि पड़ गयी। वह कामाभिभूत हो उठा और उससे अनुचित प्रस्ताव करने लगा [वा. रा. ७. २६. २१-२७]। रंभा गिड़गिड़ाकर बोली :

अन्येभ्योऽपि त्वया रक्षया प्राप्नुयां धर्षणं यदि ।

तद् धर्मतः स्नुषा तेऽहं तत्त्वमेतद् ब्रवीमि ते ॥ [वा. रा. ७. २६. २९]

—किसी अन्य व्यक्ति द्वारा बलात्कार की चेष्टा किये जाने पर भी मैं आपके द्वारा रक्षणीय हूँ। (सो स्वयं अनुचित प्रस्ताव करना आपको शोभा नहीं देता।) मैं धर्मपूर्वक आपकी पुत्रवधू हूँ और यह तथ्य की बात निवेदन कर रही हूँ।

किंतु रावण ने रंभा की एक नहीं मानी और उसे वहीं वन में शिलातल पर गिराकर बलपूर्वक उसके साथ संभोग किया [वा. रा. ७. २६. ४०]।

बाद में जब रंभा से नलकूबर को रावण के दुष्कृत्य का पता चला, तो उसने उसे शाप दिया कि यदि भविष्य में तुम किसी भी अकामा स्त्री के साथ बलात्कार करोगे तो तुम्हारा मस्तक खंड-खंड हो जायेगा [वा. रा. ७. २६. ५५]। इस उप्रशाप से भयभीत होकर रावण ने अकामा नारियों पर बलात्कार न करने का संकल्प किया :

श्रुत्वा तु स दशग्रीवस्तं शापं रोमहर्षणम् ।

नारीषु मैथुनीभावं नाकामास्वभ्यरोचयत् ॥ [वा. रा. ७. २६. ५८]

इस तरह सीता से बलात्कार न करने के पीछे भी रावण का सौजन्य अथवा सिद्धांत प्रेम नहीं था; अपितु नलकूबर के दिये शाप का भय ही उसे रोकता रहा। अन्यथा परस्त्रियों के अपहरण तथा उनके साथ बलात्कार को रावण 'स्वधर्म' मानता था :

स्वधर्मो रक्षसां भीरु सर्वदैव न संशयः ।

गमनं वा परस्त्रीणां हरणं संप्रमथ्य वा ॥ [वा. रा. ५. २०. ५]

यही कारण है कि न केवल श्रीराम, हनुमान, अंगद आदि रावण के शत्रु-पक्षीय व्यक्ति ही उसे 'पापात्मा' कहकर तिरस्कृत करते हैं, अपितु उसका सहोदर विभीषण भी उसे 'त्यक्तधर्मव्रत' [वा. रा. ६. १११. ९३] कहकर लांछित करता है और स्वयं उसकी पट्टमहिषी मंदोदरी भी उसे 'धर्म-मर्यादाओं को तोड़ने वाला' [धर्मव्यवस्थाभेत्तारं, वा. रा. ६. १११. ५२] कहकर उसकी दुराचार-वृत्ति को प्रकट करती है।

किसी पतिपरायणा, शीलवती, साध्वी महिला का अपहरण करना, उसे कारागार में डालकर डराना-धमकाना आदि क्रियाएं श्री नारंग की दृष्टि में चाहे पाप न हों, परंतु विभीषण तथा मंदोदरी तो रावण के इन दुष्कृत्यों को ही उसके सर्वनाश का कारण मानते

हैं। विभीषण तो उस 'परदारभिमर्शी' का अंतिम संस्कार तक करने को प्रस्तुत नहीं था [वा. रा. ६. १११. ९३]। और मंदोदरी ने यहां तक कह डाला :

अरुन्धत्या विशिष्टां तां रोहिण्याश्चापि दुर्मते। सीतां धर्षयता मान्यां त्वया ह्यसदृशं कृतम्॥
पतिव्रतायास्तपसा नूनं दग्धोऽसि मे प्रभो। प्रवादः सत्यमेवायं त्वां प्रति प्रायशो नृप।

पतिव्रतानां नाऽकस्मात् पतन्त्यश्रूणि भूतले॥ [वा. रा. ६. १११. २१, २२, ६६]

—हे दुर्बुद्धि, तुमने अर्धघटी तथा रोहिणी से भी अधिक माननीय पतिव्रता सीता का अपमान करके अत्यंत अनुचित कार्य कर डाला था। उस पतिव्रता के तेज से ही तुम्हारा सर्वनाश हुआ है। हे राजन्, तुम्हारी दुर्गति देखकर मुझे यह बात सर्वथा सत्य जान पड़ती है कि भूमि पर गिरे हुए पतिव्रताओं के आंसू कभी निष्फल नहीं होते।

लेख में दूसरी विसंगति यह है कि श्री नारंग एक ओर तो श्रीराम को आदर्श और मर्यादावान पुरुष मानते हैं, दूसरी ओर रावण-वध को उनका 'परम-प्रयोजन' बताते हैं। वास्तव में लेखक द्वारा उद्धृत, श्रीराम के कथन 'मरणान्तानि वैराणि निर्वृत्तं नः प्रयोजनम्' [वा. रा. ६. १०९. २५] का 'मरण के साथ वैर का अंत हो जाता है, हमारा प्रयोजन सिद्ध हो चुका है' यह अर्थ संगत नहीं है। क्योंकि यदि श्रीराम का 'प्रयोजन' रावण-वध में ही होता, तो युद्ध में जब अपने प्रधान सेनापति प्रहस्त के मारे जाने पर रावण अन्य सेनानायकों-सहित रणभूमि में आया और श्रीराम की अविच्छिन्न बाण वर्षा ने उसे व्याकुल कर डाला, उसका रथ टूट गया और सारथि मारा गया तथा त्रस्त होकर उसने धनुष फेंक दिया [वा. रा. ६. ५९. १४१], उस समय यदि वे (श्रीराम) चाहते तो अपने चंगुल में फंसे हुए असहाय, निरस्त्र तथा भयविह्वल रावण को मारकर अपना 'प्रयोजन' पूरा कर सकते थे। परंतु श्रीराम ने उसे उस समय मारा नहीं, अपितु क्षमा दान देते हुए कहा :

तस्मात्परिश्रान्त इति व्यवस्य न त्वां शरैर्मृत्युवंशं नयामि।

गच्छानुजानामि रणादितस्त्वं प्रविश्य रात्रिचरराजं लंकाम्॥

[वा. रा. ६. ५९. १४४-४५]

—हे राक्षसराज, इस समय तुम अत्यंत परिश्रान्त हो। इसलिए मैं तुम्हें अपने बाणों से मौत के घाट नहीं उतार रहा हूँ। तुम युद्ध में पराभूत हो गये हो। मेरा परामर्श है कि तुम लंका लौट जाओ।

ऐसी स्थिति में रावण के मरण को श्रीराम की प्रयोजन-सिद्धि बताना सर्वथा असंगत है। वेशक बादशाह अकबर ने जयमल और पत्ता को तथा अंग्रेजों ने बलभद्र थापा को उनके मरणोपरांत शत्रु न मानकर वीर प्रतिद्वंद्वी रूप में स्वीकार किया था। परंतु श्रीराम का आदर्श और व्यक्तित्व इससे कहीं अधिक ऊंचा था। उन्होंने तो रावण को जीवन-काल में भी कभी शत्रु नहीं माना था। अपने प्रति वैरभाव रखने वाले का भी हित चाहने वाले एक

सच्चे महामानव के नाते उन्होंने रावण पर भी सदा उपकार-दृष्टि ही रखी। यद्यपि रावण एक के बाद एक अनेक वैर बढ़ाने वाले कार्य करता आ रहा था, फिर भी श्रीराम उन सबको भुलाकर उसे अभय प्रदान करने तथा भ्रातृभाव से उसे स्वीकार करने को प्रस्तुत थे। विभीषण की शरणागति के समय श्रीराम ने सुग्रीव से कहा था:

आनयैनं हरिश्चेष्ट दत्तमस्याभयं मया ।

विभीषणो वा सुग्रीव यदि वा रावणः स्वयम् ॥ [वा. रा. ६.१८.३४]

—हे वानरश्चेष्ट सुग्रीव, इसे मेरे पास ले आओ। मैं इसे अभय प्रदान करता हूँ—यह विभीषण हो अथवा रावण ही क्यों न हो।

इस प्रकार, श्रीराम का रावण-वध 'प्रयोजन' किसी भी प्रकार नहीं हो सकता था। इसलिए 'राम ने रावण से वैर को मरणांत कहा था' लेखक का यह कथन निस्सार है।

वास्तव में 'मरणान्तानि वैराणि' का तात्पर्य भिन्न ही है जो श्री नम्पिळ्ळै प्रभृति सुधी वैष्णवाचार्यों ने प्रकट किया है। उसके अनुसार, यहाँ श्रीराम का हार्दिक यह है:

हे विभीषण, रावण प्रारंभ से ही मेरे प्रति वैरकार्य करता आ रहा है। अब उसके मर जाने के साथ ही मेरे प्रति उसके द्वारा किये जाने वाले वैरकार्यों का सिलसिला भी समाप्त हो गया है। अब यह और वैरकार्य नहीं कर पायेगा—मरणान्तानि वैराणि। और मैं जो सदा इसके प्रति हितभाव रखता रहा था किंतु इसके दुष्टस्वभाव के कारण इसका कुछ भी हित कर नहीं पा रहा था, अब कुछ हित कर पाऊंगा। मेरा प्रयोजन अब सिद्ध हुआ है—निर्वृत्तं नः प्रयोजनम्। इस समय इसका अंतिम हित यही होगा कि इसके शव को गीघ, कुत्ते और गीदड़ नोच-नोचकर अपमानित न कर पायें, इसलिए तुम विधिवत् इसका संस्कार करो—क्रियतामस्य संस्कारः। यदि कदाचित् आक्रोश-वश तुम इसका संस्कार नहीं करोगे तो मैं करूंगा। क्योंकि जिस प्रकार यह तुम्हारा भाई है, उसी प्रकार मेरा भी इसमें भ्रातृभाव है—ममाप्येष यथा तव।

अंत में एक बात और। रामलीलाओं का चलन कराने वाले गोस्वामी तुलसीदास के ऊपर रावण-दाह का संपूर्ण दोष आरोपित करना भी समीचीन नहीं। रामलीलाएं प्रारंभ कराना कोई पापकर्म नहीं था। उन्होंने 'रामचरित-मानस' अथवा अपने अन्य किसी भी ग्रंथ में रावण-दाह की प्रेरणा देना तो दूर उसका संकेत मात्र भी नहीं किया है। रावण-दाह होलिका-दाह की भांति ही परंपरागत है। जिस प्रकार होलिका-दाह हिरण्यकशिपु की बहन होलिका के प्रति विद्वेष-भावना का द्योतक न होकर एक दुर्नीति के प्रति सामाजिक आक्रोश की अभिव्यक्ति है, उसी प्रकार रावण-दाह भी व्यक्ति विशेष के प्रति घृणा-का प्रदर्शन नहीं है, अपितु लोक-विरुद्ध अन्यायाचरण के प्रति जन-मानस का ज्वलंत ओभ है।

—१०३ ए, कमला नगर, दिल्ली-११०००७



शैतान की चकमा

जर्मन लोककथा : सागरिका द्वारा प्रस्तुत

एक बहुत बड़ा जमींदार था। उसके एक ही बेटा था। उसका नाम था— ग्रेस्चेन। वह था बहुत ही सलोनी, सयानी और भली। दूर-दूर से राजा, सेनापति और व्यापारी आते रहते थे ग्रेस्चेन से शादी करने की आशा लेकर। मगर जमींदार उन सबसे यही कहता कि मैं तो अपनी बिटिया की शादी उससे करूंगा, जो दुनिया का सबसे बड़ा निशानेबाज हो। राजा, सेनापति और व्यापारी मुंह लटकाकर चले जाते।

जमींदार की गद्दी के पास के एक गांव में एक लड़का रहता था हान्स—बहुत सुंदर

और बहुत भोला और बिल्कुल अण्ड। पता नहीं कैसे, उसके सिर पर यह धुन सवार हो गयी कि मैं तो ग्रेस्चेन से ही शादी करूंगा। उसकी मां ने उसे बहुत समझाया कि ग्रेस्चेन की शादी तो संसार के सबसे बड़े निशानेबाज से ही होगी। पर हान्स अड़ गया। बोला—‘मां, अपनी ओर से कोशिश करने में क्या बुराई है!’ और कंधे पर बंदूक रखकर चल पड़ा जमींदार की गद्दी की ओर।

चलते-चलते एक चौराहे पर उसे मिला एक आदमी। बड़ा ही अजीब था उसका हुलिया। उसके सारे कपड़े लाल थे और

टांगें बकरी जैसी थीं। आते ही उसने ऊंची आवाज में पूछा—‘तुम कहां जा रहे हो हान्स? और इतने निराश क्यों दिख रहे हो?’

यह सुनकर हान्स को काफी आश्चर्य हुआ कि इस आदमी को मेरा नाम कैसे मालूम हुआ! उसने



उत्तर दिया—‘मैं जमींदार की गद्दी पर जा रहा हूँ और वहाँ जमींदार से कहूँगा कि ग्रेस्चेन से मेरी शादी कर दो। पर मुझे नहीं लगता है कि ग्रेस्चेन मुझे मिलेगी; क्योंकि उसके पिता ने कह रखा है कि मैं अपनी बेटे की शादी दुनिया के सबसे बड़े निशानेबाज से करूँगा।’

‘बस, इतनी-सी बात! इस कागज पर तुम हस्ताक्षर कर दो, मैं तुम्हें दुनिया का सबसे बड़ा निशानेबाज बना दूँगा।’ अजीब आदमी ने कहा।

हान्स ने पूछा कि इस कागज पर लिखा क्या है? अजीब आदमी ने बताया—‘यही कि आज से ठीक सात साल के बाद तुम हमेशा के लिए मेरे नौकर बनकर मेरे साथ चल दोगे। हाँ, अगर तुम मुझसे ऐसा सवाल पूछ लो कि जिसका उत्तर मैं न दे सकूँ, तो और बात है।’

हान्स ने कागज पर अपना अंगूठा लगा दिया। पढ़ा-लिखा तो वह था नहीं। तब अजीब आदमी ने हान्स की बंदूक लेकर उसकी नली में फूँक मारी और कहा कि तुम दुनिया के सबसे बड़े निशानेबाज बन गये हो, अब जाओ।

हान्स गद्दी में पहुँचा। पहरेदारों ने उससे पूछा कि तुम यहाँ क्यों आये हो? हान्स बोला—‘ग्रेस्चेन से शादी करने।’ पर पहरेदारों

ने उसे अंदर नहीं जाने दिया। तभी ग्रेस्चेन ने गद्दी की खिड़की में से उसे देखा और पहरेदारों से सारी बात पूछकर उसे अंदर बुलवा लिया। देखकर जमींदार बोला—‘अच्छा तुम अपने को दुनिया का सबसे बड़ा निशानेबाज मानते हो? ठीक है, मेरी गद्दी की मीनार पर वह जो गौरैया उड़ रही है न, उसकी पूँछ का एक पंख गोली मारकर गिराओ—मगर सिर्फ एक पंख ही गिराना।’

हान्स ने बंदूक उठाकर ठाँय से गोली दाग दी। मीनार पर उड़ती गौरैया की पूँछ का एक पर टूटकर जमींदार के पास आ गिरा।

‘शाबाश!’ ग्रेस्चेन बोल उठी।

पर जमींदार ने हान्स से कहा—‘उस खेत में वह खरगोश दौड़ रहा है न, काट सकते हो उसकी पूँछ गोली मारकर?’

हान्स ने बंदूक उठाकर गोली दाग दी। फौरन खरगोश की पूँछ कटकर गिरी।

‘शाबाश!’ ग्रेस्चेन बोल उठी।



जमींदार ने गुस्से से अपनी बेटी को देखा और हान्स से कहा—‘देखो, वहाँ पहाड़ की ढलवान पर मेरे नौकर बगीचे में काम कर रहे हैं। उनके मुखिया के मुँह में जो पाइप है, उसे तुम गोली मारकर गिरा सकते हो?’

हान्स ने बंदूक उठायी और ठाँय से गोली दाग दी। थोड़ी देर में सारे नौकर बगीचे से दौड़े-दौड़े आये और जमींदार से बोले—‘सरकार गजब हो गया। किसी ने गोली मारकर मुखिया की पाइप तोड़ दी।’

ग्रेस्चेन बोल पड़ी—‘पिताजी, अब तो आपने देख लिया न कि हान्स दुनिया का सबसे बड़ा निशानेबाज है। आप मेरी शादी उससे करके अपना वचन पूरा कीजिये।’

जमींदार को मानना ही पड़ा। हान्स और ग्रेस्चेन की शादी हो गयी और वे सुख से रहने लगे। सुख में समय बहुत जल्दी कट जाता है। सात साल पूरे होने में सिर्फ एक दिन रह गया। हान्स एकाएक बहुत उदास हो गया। ग्रेस्चेन ने उसकी उदासी का कारण पूछा, तो उसने अजीब आदमी की सारी बात उसे बतायी। चतुर ग्रेस्चेन बोली—‘अरे, वह तो शैतान था।...पर कोई बात नहीं।’ फिर उसने हान्स के कान पर मुँह रखकर उसे कुछ बताया। फिर वे दोनों खा-पीकर निश्चित हो गये।

अगले दिन ग्रेस्चेन ने अपने शरीर और कपड़ों पर गाढ़ा शहद चुपड़ा और चिड़ियों के पंखों से बना हुआ अपना तकिया उधेड़कर उन पंखों पर लोट गयी। फिर जंगल में जाकर छिप गयी।

थोड़ी देर में अजीब आदमी गढ़ी के दरवाजे पर आ पहुँचा। हान्स अपनी बंदूक लेकर वहीं खड़ा था। अजीब आदमी ने पूछा कि तैयार हो मेरे साथ चलने को? हान्स बोला—‘हां चलिये। पर क्या आप मुझे अपनी बंदूक से अंतिम बार शिकार करने देंगे?’ अजीब आदमी ने हाँ कहा और दोनों चल पड़े।

थोड़ा आगे चलने पर उन्हें जुता हुआ खाली खेत मिला। उसमें उन्हें विचित्र-सी आवाज के साथ उछलती-कूदती हुई अजीब चीज दिखाई दी जो देखने में बहुत बड़ी चिड़िया लगती थी। असल में वह थी ग्रेस्चेन। शहद पर चिड़ियों के पंख चिपक जाने से वह चिड़िया-जैसी लग रही थी। अजीब आदमी ने कहा—‘चलाओ उस पर गोली।’ इस पर हान्स ने कहा—‘मगर पहले यह बताओ कि वह क्या है?’

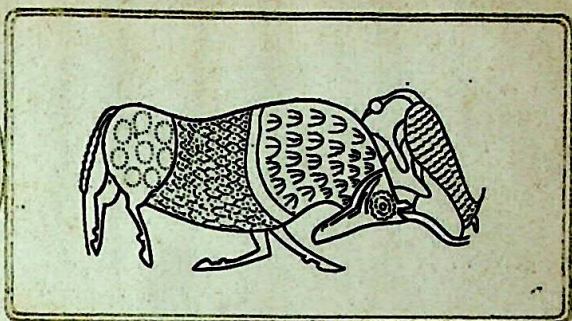
अजीब आदमी खीजकर बोला—‘जो भी होगा, होगा। तुम उस पर गोली चलाओ।’ ‘पर पहले यह बताओ कि वह है क्या?’

‘जहन्नुम में जाओ, मुझे नहीं मालूम कि वह क्या है।’ अजीब आदमी झल्लाया।

इस पर हान्स तनकर खड़ा हो गया और बोला—‘जहन्नुम में जाओ तुम, क्योंकि मेरे सवाल का जवाब तुम नहीं दे सके। अब मैं तुम्हारे साथ नहीं चलूँगा।’

अजीब आदमी, जो कि शैतान था, बड़बड़ाता हुआ और अपने खुरों से धूल उड़ाता हुआ वहाँ से भाग गया। हान्स और ग्रेस्चेन निश्चित होकर आनंद से रहने लगे।





माँ के आगे मृत्यु नतमस्तक

उस दिन मेरे मित्र डा. गुप्त का हर्निया का आपरेशन था। अन्य मित्रों के साथ मैं अस्पताल के आपरेशन-थियेटर के बाहर प्रतीक्षा कर रहा था। रह-रहकर मेरी दृष्टि सामने की बेंच पर बैठी ग्रामीण मुस्लिम युवती पर अटक जाती थी। तांबई रंग का उसका आकर्षक सुडौल शरीर इस समय भयग्रस्त मेमने की तरह थरथरा रहा था और वदहवास-सी वह थियेटर के बंद दरवाजे को एकटक देखे जा रही थी, जैसे थियेटर के अंदर उसके जीवन और मृत्यु का फैसला हो रहा हो। मैंने उसके पास बैठी उसकी माँ से पूछा, तो उसने बताया कि पिछले साल जब युवती की बच्ची पैदा हुई थी तो उसकी जीभ बड़ी हुई थी। बच्ची घर पर ही पैदा हुई थी। किसी ने इस ओर विशेष ध्यान नहीं दिया। अब अचानक एक दिन बच्ची की तबीयत खराब हुई और अस्पताल में दिखाया। आज उसका आपरेशन हो रहा है।

इतने में थियेटर का दरवाजा खुला और

जैसे ही डाक्टर साहब बाहर निकले, युवती उचककर खड़ी हो गयी। उसका चेहरा पसीने से नहा गया। ओठ कांप उठे, पर बोल नहीं फूटे। आंसुओं से भरी बड़ी-बड़ी आंखों में प्रश्न तैर गया—‘मेरी बच्ची कैसी है?’ मैं लपककर डाक्टर के पास गया और अपने मित्र की कुशल पूछना भूल युवती की बच्ची के हाल पूछ बैठा। वे एक उड़ती नजर युवती पर डालकर धीरे-से बोले—‘बच्ची की हालत काफी सीरियस है। आज की रात भी शायद ही निकाले।’

युवती हमसे इतनी दूरी पर थी कि डाक्टर के शब्द बिलकुल सुन नहीं सकती थी। किंतु पता नहीं, उसके अंतर्मन ने कैसे आभास पा लिया। युवती की सांस तेजी से फूलने लगी और दिल के जोरों से धड़कने के कारण उसका उन्नत वक्ष तेजी से ऊपर-नीचे होने लगा। और यह क्या! उसकी अंगिया भी भीगने लगी। मुझे रोमांच हो आया, मेरी पलकें भीग गयीं। सहसा मुंह से निकल पड़ा—‘नहीं, यह नहीं हो सकता।’ डाक्टर साहब कुछ बोले नहीं और सिर झटकते हुए अंदर चले गये। मैं भी जब

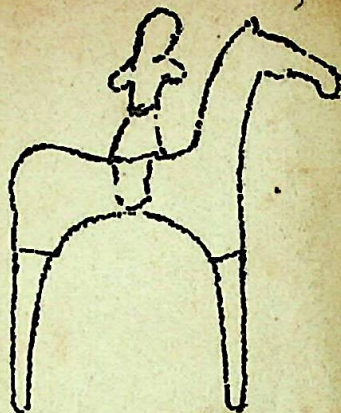
स्थिर हुआ तो सकुचा गया; परंतु मुझे यह दृढ़ विश्वास हो गया कि वच्ची अवश्य ही बच जायेगी।

मेरे मित्र का आपरेशन ठीक हो गया था और उन्हें काटेज वार्ड में भरती करवा दिया गया। कुछ कारणों से मैं अगले दो-तीन दिन मित्र से मिलने अस्पताल नहीं जा सका था। चौथे दिन जब जनरल वार्ड की गैलरी पार करके काटेज वार्ड की ओर जा रहा था, तो अचानक ठिठककर खड़ा हो गया। गैलरी में वही युवती पास ही किल-कारियां भरती अपनी वच्ची से प्रसन्न-चित्त बतिया रही थी। मारे खुशी के मेरा रोम-रोम पुलकित हो उठा। आंखों से आस्था और प्रसन्नता के मिले-जुले आंसू बह निकले। मातृशक्ति के सामने यमराज परास्त हो चुके थे। —शिवजी, बीकानेर, राजस्थान

०००

चिट्ठी नहीं आती

शोध कार्य कई महीनों से संतोषजनक नहीं चल रहा था। विभिन्न परिणामों में कोई ताल-मेल ही न बैठता था। तिस पर उस शोध के लिए मिला अनुदान भी समाप्त होने को आ गया था। उस विषादपूर्ण मनः-स्थिति में मैं दो माह से घर कोई पत्र न डाल सका था। इस पर मां ने रुदन-भरे शब्दों में लिखा—'सुना था, विदेश जाकर लड़के मां-बाप को भूल जाते हैं। बेटे तुमने उसे सच करके दिखा दिया। हर दिन हम लोग डाकिये की प्रतीक्षा करते हैं कि आज चिट्ठी नवनीत



आयेगी, आज चिट्ठी आयेगी; पर तुम्हारी चिट्ठी आती नहीं। खाने-पीने में मन नहीं लगता। हर समय चिंता बनी रहती है....! पत्र पढ़कर मैंने अपने को अपराधी-सा अनुभव किया।

मां के पत्र के साथ ही एक मित्र का भी पत्र था। उसे पढ़ा तो अनेक परिचित परिवारों का खयाल हो आया। किसी घर में खासे पढ़े-लिखे नौजवान लड़के नौकरी के अभाव में बेकार बैठे हैं तो किसी में अनव्याही लड़कियां अधेड़ हुई जा रही हैं। सब जगह चिट्ठियों का इंतजार हो रहा है। कहीं नियुक्ति की चिट्ठी का, तो कहीं लड़के वालों की 'हां' की चिट्ठी का।

मेरा अपराध-भाव कम हो गया, दुःख बढ़ गया। —अजय कु. कुलशेखर

कैलिफोर्निया, सं. रा. अमरीता

०००

भीतर का आदमी

हम नागालैंड की यात्रा पर थे। सुन रहा था कि भारत के पूर्वी छोर का

जनता

पहाड़ी प्रदेश कई छोटे-छोटे कबीलों में बंटा है और नागा हमारे जैसे सभ्य नहीं हैं। पूरी यात्रा में हमारी कार का ड्राइवर था हितोवी सेमा, जो कि नागा था। असल में वह हमारा ड्राइवर ही नहीं गाइड, सहायक, मित्र सब कुछ था। उसने अभिभावक की तरह हमारा ध्यान रखा। कठिन से कठिन रास्ते पर भी वह बड़े धैर्य से गाड़ी चलाता रहा। पंद्रह-पंद्रह घंटे लगातार गाड़ी चलाने के बाद भी उसने कभी थकान की शिकायत नहीं की। न कभी क्रोध ही दर्शाया। वह बातें कम और काम अधिक करता। उसके नम्र और परिश्रमी स्वभाव ने नागाओं के प्रति हमारे पूर्वग्रहों को मिटा डाला।

एक संकरे रास्ते पर हमारी कार के आगे एक बड़ी सवारी-बस थी। हितोवी उसे रास्ता देने के लिए बार-बार हार्न बजाता रहा। लगभग १५-२० किलोमीटर चलने के बाद एक गांव के पास बस रुकी। हितोवी ने झटके से गाड़ी रोक दी, दरवाजा खोला, लपककर बस के पास पहुंचा और बस के ड्राइवर का हाथ पकड़कर बाहर खींचते हुए बोला—‘नीचे उतर ! घंटे-भर से रास्ता मांग रहा हूं। नीचे उतर, बताता हूं।’

हितोवी क्रोध से कांप रहा था। इस समय यदि उसके पास कुल्हाड़ी या तलवार होती, तो वह उस ड्राइवर का सिर ही काट लेता।

हमने हितोवी को समझाकर वापस कार में बुला लिया। कार में बैठते-बैठते भी उसने बस-ड्राइवर को धमकी दी—‘दीमापुर में देखूंगा।’

उस शांत-विनम्र नागा का यह रौद्र रूप देख हम चकित रह गये थे। मगर कुछ ही देर में वह विलकुल शांत हो गया। उसके मन में न बदले की भावना रही, न क्रोध की।

नागालैंड से लौटते समय हमने हितोवी को पुरस्कार के रूप में कुछ रुपये देने चाहे। पर उसने बड़ी नम्रता से इन्कार करते हुए कहा—‘नहीं साव, हम कुछ नहीं लेगा। आप लोगों को अभी वहीत दूर जाने का है। अपने पास रुपया रखो, रास्ते में काम आयेगा।’

हितोवी में मैं देख रही थी आदमी के भीतर का आदमी, जो हर जगह एक-सा ही है—वही क्रोध, वही संवेदना, वही भावनाएं। अंतर शायद इतना ही था कि यहां वह सहज ही प्रकट हो जाता था, क्योंकि हितोवी ने सभ्यता के लबादे नहीं ओढ़ रखे थे। — उमि कृष्ण, अंबा लाछावती



नया उपनाम

वे समय के अनुसार चलने लगे हैं—

पुराना उपनाम ‘दीप’ छोड़कर

स्वयं को ‘नियोन बल्ब’ कहने लगे हैं।

—सत्य स्वरूप दत्त



अजीज ने सिन का तुकों व्यंग्य

रविवार का दिन। मौसम बेहद खूब-सूरत था। सवेरे जी चाहा कि घर से बाहर निकलें, घूमें-फिरें और दुनिया का तमाशा देखें। पहले शहर के फैशनेबल इलाकों का चक्कर लगाने की तबीयत हुई। फिर सोचा, ये इलाके तो अमीरों की निजी संपत्ति हैं, क्यों न आज फकीरों की झुगियाँ की ओर चला जायें। सो शहर से बाहर खेतों-खेत फकीरों के इलाके की ओर निकल पड़ा। एक खेत से गुजर रहा था कि आवाज आयी—‘भाई साहब! भाई साहब!’

मुड़कर देखा तो खेत में छड़ियों का बना एक इंसान खूपी ढांचा नजर आया, जिसके दोनों हाथ ट्रैफिक के सिपाही की तरह दायें-बायें फैले हुए थे। सिर पर फटी-पुरानी टोपी और शरीर पर चिथड़े लटक रहे थे। दूर से लगता था, जैसे कोई किसान खड़ा हो। कौयों को डराने-भगाने के लिए देहाती ऐसे पुतले खेत में खड़े कर देते हैं। वे इसे बिजूबा कहते हैं।

मैंने निकट जाकर गौर-से देखा, तो यों महसूस हुआ कि बिजूबा सचमुच हरकत

कर रहा है। मेरे अचरज की सीमा न रही। इतने में फिर आवाज आयी—‘डरो मत बरखुरदार! डरो मत!’

बिजूबा को बोलते देखकर मैं घबरा गया, डर से कांपने लगा और हकलाते हुए इतना ही कह सका—‘असलाम अलैकुम! मियां बिजूबा!’

‘वालेकुम सलाम!’ बिजूबा बोला—‘कहो, मेरे रिश्तेदारों का क्या हाल है?’

‘हैं! क्या तुम्हारे रिश्तेदार भी होते हैं?’ मैंने विस्मय से पूछा।

इस पर बिजूबा ने इतने जोर से कहा लगाया कि उसकी टहनियां दोहरी हो गयीं। फिर बोला—‘क्यों, मेरे रिश्तेदार नहीं हो सकते क्या? क्या समझ रहा है मुझे?’

‘आश्चर्य है। मैं तो यह पहली बार ही सुन रहा हूँ।’

‘तो क्या आज तक तुम इतना भी नहीं जान सके कि बड़े लोगों की बड़ी तादाद का संबंध मेरी ही जाति से है?’

‘सच कहता हूँ मियां बिजूबा, मुझे आज

अनुवाद : सुरजीत

तक इस बात का विलकुल पता न था।'

'कोई बात नहीं बरखुरदार, अब जान लो कि अगर हम न होते तो दुनिया का इतिहास ही कुछ और होता। आज तक दुनिया में न जाने कितने बादशाह, राष्ट्र-पति, प्रधान-मंत्री और मंत्री हुए हैं, जो हमारे खानदान से संबंध रखते थे।'

'जैसे उदाहरण के लिए?' मैंने पूछा।

'नहीं-नहीं, यह मत पूछो!' विजूखे ने उत्तर दिया—'नाम नहीं गिनाऊंगा। किस-किसका नाम लूं? अगर एक-दो का नाम बताता हूं तो बाकी गिला-शिकवा करेंगे।'

'अच्छा, अगर ज्यादातर बड़े-बड़े लांग तुम्हारे खान-दान से संबंधित रहे हैं, तो फिर तुम यहां खेतों की मिट्टी क्यों फांक रहे हो?'

विजूखे ने ठंडी सांस भरी और कहा—'यह तो जमाने का इंकलाव है बर-खुरदार! वरना कोई वक्त था कि मेरे नीचे भी एक गदद ऊंची-मजबूत कुर्सी हुआ करती थी। अपनी स्टाफ-कारें थीं। अपने इर्द-गिर्द भी सुबह-शाम खुशा-मदियों का जमघट लगा रहता था।'

'फिर क्या हुआ?'

'होना क्या था। मैं अपनी असलियत यानी बिजूखापन भूलकर हर बात में अपनी टांग अड़ाने लगा था।'

'मसलन, किस बात में?'

'भई, हर बात में। जैसे यही कि चीनी की कीमत कम करो; गोश्त महंगा भी है और दुर्लभ भी—उसकी सप्लाई बढ़ाओ और कीमतें घटाओ। हुकूमत लोगों के सोशल-वीमा का प्रबंध करे। बेरोजगारी का हो खात्मा और कमरतोड़ टैक्सों में कमी करके



चित्र : डा. विष्णु भट्टनागर

62.67 रु. कैसे 100 रु. बन सकते हैं?

**बैंक ऑफ बड़ौदा के
जनता केश सर्टिफिकेट खरीद कर.**

जरा इस तालिका पर नजर डालिए:

जनता केश सर्टिफिकेट का अंकित मूल्य रु.	विभिन्न अवधियों के लिए खरीदने का मूल्य		
	36 महीने रु.	39 महीने रु.	63 महीने रु.
10	8.36	7.85	6.27
50	41.82	39.27	31.34
100	83.64	78.55	62.67
500	418.19	392.73	313.36

**इसी तरह 75 रु., 250/- रु. और
1000/- रु. के जनता केश सर्टिफिकेट
भी उपलब्ध हैं.**

थोड़ी सी बचत खूब फूले फले.



**अधिक जानकारी के लिए बैंक ऑफ
बड़ौदा की निकटतम शाखा में पधारिए.**



बैंक ऑफ बड़ौदा

(भारत सरकार उपक्रम)

**भारत और विदेशों में 1300 से अधिक शाखाओं का विस्तृत जाल.
70 वर्ष से बेकिंग सुविधा 26 वर्ष से विदेशों में उसा**

U-BOB-JCC-1/8 HIN

जनता का बोझ हल्का किया जाये, वगैरह-
वगैरह।'

'ये सब तो बड़ी अच्छी बातें थीं। आपके
इन प्रस्तावों का परिणाम क्या निकला?'

'परिणाम वहीं निकला जनाव, जो आप
देख रहे हैं। हमारे लीडर को ये प्रस्ताव
फूटी आंखों नहीं सुहाये। वह इन्हें अपने
निजी हितों के विरुद्ध समझता था। आखिर-
कार एक दिन उसने मुझे कान से पकड़ा
और यहां लाकर गाड़ दिया। भई, सयानों
ने यों ही तो नहीं कहा कि अगर बातचीत
चांदी है तो खामोशी सोना है।'

'अच्छा तो, अब क्या होगा?'

'मैं अभी अपने भविष्य से निराश नहीं
हुआ हूं।'

'वह कैसे? मैं समझा नहीं।'

'इसमें समझने की क्या बात है मित्रों ?
लगता है, तुम इस दुनिया की व्यवस्था से
बिल्कुल अपरिचित हो। तुम्हें पता होना
चाहिये कि हम विजूखे कभी-कभी तो
यों ही किसी वीराने में फेंक दिये जाते हैं।
फिर एक वक्त आता है और हमारे भी
दिन फिरते हैं। सत्ताधारी विजूखों में से
एक-आध विजूखा जब गलती से मुंह
खोलता है और कोई हितकारी सलाह
देने की मूर्खता कर बैठता है, तो उसे फौरन
कुर्सी से हटाकर एक तरफ फेंक दिया जाता
है, और तब उसकी जगह फिर हम-जैसे
दंडित विजूखों को दुवारा सत्ता की कुर्सी

पर बैठने का मौका मिल जाता है।'

यह कहकर विजूखा बड़े लोगों के विशिष्ट
अंदाज में यों खांसा, जैसे सचमुच सत्ता के
सिंहासन पर विराजमान हो। फिर बोला—
'और जब अधिकारों की बागडोर हमारे
हाथ में आती है तो कोई शख्स खुदा का
नाम पढ़े बिना हमारी सेवा में आने का
साहस नहीं कर सकता, चाहे वह जनता में
से ही क्यों न हो।...अच्छा, बरखुरदार!
यह तो बताओ, क्या तुम भी बड़ा आदमी
बनना पसंद करोगे?'

मैंने उत्तर दिया—'कौन बड़ा आदमी
बनना नहीं चाहता मित्रों विजूखे ! मैं भी
तो बड़ा आदमी बनने के ही सपने देखता
रहता हूं।'

'तो फिर आओ और मेरी बगल में
खड़े हो जाओ। हम विजूखों की संगति में
बैठा करो। किसी न किसी दिन अवश्य
तुम्हें कुर्सी मिलेगी।'

मैंने फौरन अपने उस परम हितैषी के
परामर्श पर अमल किया। अपना कोट
उतारा और उलटा करके पहन लिया,
अपनी दोनों बांहें दायें-बायें फैला दीं और
विजूखा बनकर खेत में खड़ा हो गया। अब
मैं भी अपनी बारी की प्रतीक्षा में हूं। खुदा
की मेहरबानी से आजकल में ही अपनी
किस्मत का सितारा चमकने वाला है। फिर
देखिये, हम किस तरह आप लोगों के सिरों
पर एक नया प्रलय बनकर छा जाते हैं।



एका बहुत जरूरी है; मगर सिर्फ सत्ता बनाये रखने के लिए एका बेमानी है। —चंद्रशेखर



भारतीय भाषा का पहला सचित्र मासिक

वेंकटलाल ओझा

‘पत्रों का उद्देश्य होना चाहिये—मनोरंजन के साथ-साथ ज्ञानवृद्धि। लोग काम-काज से थककर आराम के लिए पत्र पढ़ने के लिए हाथ में लेते हैं, तब उन्हें क्या मिलता है? नीरस उपदेश का भंडार। लोगों को उससे ऊब होती है। बहुत-से संपादक अपनी पसंद के गंभीर विषयों से अपने पत्र को भर देते हैं। जो विषय उन्हें रुचिकर हैं वे दूसरे लोगों को कितने पसंद हैं, इसका वे ध्यान नहीं रखते। अंत में ग्राहक-संख्या धीरे-धीरे कम हो जाती है और फिर पत्र बंद हो जाता है। जैसे लेख लोग पसंद करते हैं, या जिस तरह के लेखों की पाठकों को जरूरत है, वैसे ही विषयों पर आकर्षक व सचित्र लेख “वीसमी सदी” में दिये जाते हैं।’

यह दावा था गुजराती के ही नहीं भारतीय भाषाओं के सर्वप्रथम सचित्र मासिक ‘वीसमी सदी’ के प्रवर्तक स्व. हाजी महम्मद अलारखिया शिवजी का, जिन्होंने अपने पत्र का आवरण-पृष्ठ ब्रिटेन से छपाकर मंगाया

था। ‘वीसमी सदी’ का पहला अंक वर्ष १९१६ को बंबई से प्रकाशित हुआ था। समूचा यूरोप उस समय प्रथम महायुद्ध की ज्वाला में धाय-धाय जल रहा था। ऐसे समय ब्रिटेन से आवरण-पृष्ठ छपाकर मंगवाना विशेष साहस ही कहा जायेगा।

‘वीसमी सदी’ का प्रत्येक लेख बीस कविता तक सचित्र रहती थी। इसके लिए एक ओर लेखकों और कवियों की फौज उनके साथ थी, तो दूसरी ओर चित्रकारों की। कौन-सा लेखक किस विषय पर अच्छा लिख सकता है, इसका उन्हें खूब अंदाज था। हर लेखक से वे उसके अनुरूप विषय पर ही लिखवाते। जब वे लिखने की फाइल माइश लेकर लेखक पास पहुंचते थे, तो ‘इंडिपेंडेंट’ जैसा बहुमूल्य फाउन्टन पेन और सुंदर कागजों का पैड उसे भेंट करते थे। लेखक भला ना कैसे करता! प्रायः तुरंत लिखने बैठ जाता और वे उससे रक्त लेकर प्रस्थान करते।

नवनीत

१०४

जनक

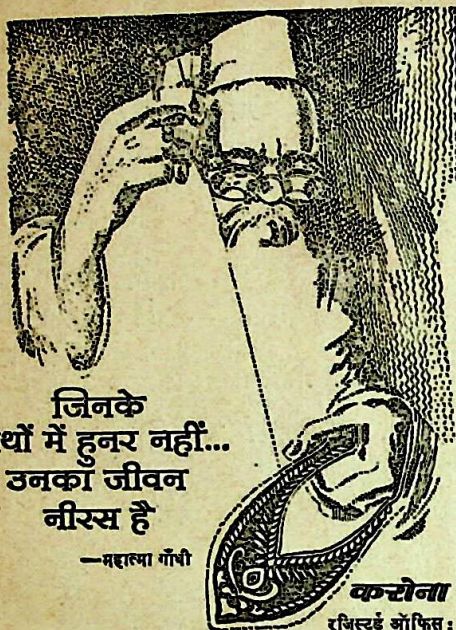
कवि खवरदार, नरसिंहराव भोलानाथ, गौरीशंकर गोवर्द्धनराम जोशी, कृष्णलाल श्रवरी, धूमकेतु, जुगताराम दवे, शयदा, मस्तफकीर, साधुचरित पढियारजी, मावजी गोविंदजी शेठ, नूरमहम्मद प्रभृति विज्ञ कृतिकार उनके दरबार के नवरत्न थे। जब उनके यहां मजलिस जमती, तो दिन के ११ वजे से रात के आठ वजे तक साहित्य-चर्चा चलती रहती। इन मजलिसों में हिंदी के चतुरसेन शास्त्री और विश्वम्भरप्रसाद जीजा भी कभी-कभी आ जमते थे। जीजाजी हिंदी में कहानी सुनाने में सिद्ध-हस्त थे। वे हिंदी में कहानी कहते और हाजी उसे गुजराती में लिखते जाते। 'धूँधट वाली' कहानी इसी तरह तैयार हुई थी। 'हिंदी पंच' के लिए हरिश्चंद्र तालचरकर मराठी में लिखवाते जाते और हाजी गुजराती में लिखते। यह लेखमाला 'जालंधरनाथ' के नाम से छपी।

चित्रकारों में धुरंधर और मुलर तो आवरण के लिए सुरक्षित थे और प्राचीन ऋषियों की वाणी, ऐतिहासिक पात्रों आदि के सजीव चित्रण के लिए रविशंकर रावल। पश्चिम के चित्रों को भारतीय वेशभूषा में तैयार करने के लिए दत्तात्रेय और गोरक्षकर तैयार थे। मनमोहक आर्यललना के चित्रण के लिए वे

श्रीमंत चित्रकार पुरुषोत्तम को पकड़ते। माली और पटेल को भला वे कैसे छोड़ते! इस तरह उस युग के नामी कलावंतों का सहकार उन्होंने 'बीसवीं सदी' के लिए प्राप्त किया।

इसी तरह संस्कृत, हिंदी, गुजराती, मराठी, फारसी, अरबी, उर्दू, बंगला, अंग्रेजी साहित्य के लिए भी व्यक्ति निश्चित थे, जो उस-उस साहित्य के मर्मज्ञ थे। 'मस्तफकीर' से वे हास्य-विनोद की रचनाएं लिखवाते थे। कविता के अनुरूप एक-एक पंक्ति के भाव को प्रकट करने वाले





जिनके
हाथों में हुनर नहीं...
उनका जीवन
नीरस है

—महात्मा गांधी

किसी भी कला में महारत हासिल करने
के लिए ज़रूरी है— मेहनत और तपस्या...
उद्देश्य के प्रति समर्पित भावना ही कुशल
कारीगर को जन्म देती है.

करोना साहू कं. लि.

रजिस्टर्ड ऑफिस : २२१, दादाभाई नौरोजी रोड, फोर्ट, बम्बई ४०० ००६.

बोरो क्रीम



अेन्टीसेप्टिक परफ्युम्ड क्रीम
हर दिन सुबह और शाम
त्वचा को मुलायम बनानेवाले
रोगाणुनाशक-बोरोक्रीम के प्रयोग
से आपकी त्वचा मुलायम और
चिकनी रहेगी। बोरोक्रीम से
आपकी त्वचा दाग धब्बों तथा
त्वचा रोगसे मुक्त रहेगी।
आपकी त्वचा को दिनभर
भीनी-भीनी महक से शराबोर
और फुलसा ताजा रखेगा।



फार्मा मेडीको (इ.) प्रा. ली. बंबई-६०

हासिक कहानियां चित्र समेत 'वीसमी सदी' के पृष्ठों की शोभा बढ़ाती थीं। यहां तक कि बिहारी की 'सतसई' को भी अपने पत्र में दिया। अपने युग की अप्रतिम सुंदरी श्रीमती झीणा के चित्र उनके पत्र की शोभा बढ़ाते थे। उमरखैयाम की रूबाइयों के सस्ते से सस्ते और महंगे से महंगे संस्करण उनके पास थे। फिर भी चित्रकार धुरंधर से उन्होंने रूबाइयों पर ठेठ ईरानी परंपरा के चित्र बनवाये थे। बाद में उन्होंने ये चित्र सर फजलअली के विशेष आग्रह पर उन्हें ३ हजार रुपयों में दे दिये।

तब तक गुजराती के ही क्या किसी भी भारतीय भाषा के पत्रों में लेखकों को पुरस्कार या पारिश्रमिक देने की परिपाटी नहीं थी। पर हाजी 'वीसमी सदी' के लेखकों को पुरस्कृत करते थे। उनका मत था कि कागज, छपाई, चित्रकारी, ब्लाक के लिए तो रुपया दिया जाता है; फिर लेखकों



स्व. अलारखिया शिवजी

नवनीत

को क्यों मुफ्त घसीटा जाये।

'वीसमी सदी' के उस जमाने में चार हजार ग्राहक थे। समूचे गुजरात में और विशेषतः बंबई में उसकी बड़ी धूम थी। पाठकों की सुविधा की दृष्टि से उन्होंने ह्वीलर कंपनी को लिखा कि अपने रेलवे बुक स्टालों पर 'वीसमी सदी' बेचने के लिए रखें। उत्तर आया कि हम देशी भाषा के पत्र नहीं रखते। मगर कुछ समय बाद उसी ह्वीलर कंपनी से मांग आयी कि अपना पत्र बेचने के लिए हमारे यहां रखने की कृपा करें। सरकार की ओर से ब्रिटिश म्यूजियम और इंडिया आफिस पुस्तकालय के लिए 'वीसमी सदी' भेजने का अनुरोध आया।

'वीसमी सदी' अपने समय की सच्ची सचित्र पत्रिका थी—केवल नाम के लिए एक-आध चित्र छापकर अपने को 'सचित्र' कहने वाली पत्रिका नहीं। उसके प्रकाशन के पीछे आर्थिक लाभ का कोई उद्देश्य नहीं था। अन्यथा हाजी इस तरह दिल खोलकर पैसा क्यों खर्च करते! न उन्हें अपने स्वास्थ्य की चिंता थी, न अपने कुटुंब की। उन पर तो बस एक ही धुन सवार थी—'वीसमी सदी' को देश की सर्वश्रेष्ठ पत्रिका बनाने की। कभी वे लेखक के पास भागे जाते हैं, तो कभी कागज या स्याही वाले के पास और कभी प्रेस में बैठे प्रूफ-संशोधन करते हैं। प्रेस बंबई के फोर्ट इलाके में था, जिस भायखला में बंधती थी और खोजा मोहल्ले के कार्यालय से पत्रिका डाक में रवाना

होती थी। जिस दिन नया अंक आता, कार्यालय में शिशुजन्म का-सा उत्साह छा जाता।

सब कुछ सर्वश्रेष्ठ देने के आग्रह के कारण हाजी अंततः आर्थिक संकट में फँस गये। कम से कम ४०-५० हजार रुपये का घाटा उन्हें हुआ होगा। सबसे बुरा असर उनके स्वास्थ्य पर पड़ा। अंत में २१ जनवरी १९२१ को वे अनंत निद्रा में लीन हो गये। उस समय के गुजराती, मराठी, हिंदी, उर्दू के मूर्धन्य पत्रों ने उन्हें भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित की।

इस तरह हाजी केवल पांच वर्ष 'वीसमी सदी' का प्रकाशन कर पाये। उस युग को देखते हुए वह एक साहस ही था। हाजी के गुण को कलावंत रविशंकर रावल ने ग्रहण किया। हाजी के पदचिह्नों पर चलकर उन्होंने १९२४ में अहमदाबाद से 'कुमार' (मासिक) का प्रकाशन आरंभ किया, जो आज अपने ५५ वें वर्ष में चल रहा है। मासिक क्या है, चित्रों से भरपूर विश्वकोष का अंक है।

हाजी महम्मद अलारखिया शिवजी जाति से खोजा मुसलमान थे। १३ दिसंबर १८७८ को उनका जन्म हुआ। उनके पूर्वज कच्छ से बंबई आये थे। खूब धन कमाया। पेडर रोड पर बंगला और खोजा मुहल्ले में मकान, और भरा-पूरा कारोबार छोड़ गये। पर हाजी ने अपने पैतृक धंधे पर विशेष ध्यान नहीं दिया। मजतू की तरह वे पत्रकारिता पर फिदा हो गये और उसी पर

हाजी महम्मद अलारखिया शिवजी

एक तुम्हारे उठ जाने से
बिकल यहां दो-दो बैठे
कला और साहित्य आज हा !
जी-सा अपना खो बैठे ॥
और 'वीसमी सदी' ? हाय ! वह
खो बैठी अपने को ही
बैठ गयी, उठ गयी, क्या करें
हम अबोध-से हो बैठे ॥

-मैथिलीशरण गुप्त

मिटें। उनका घर का नाम सलीम था। वर्तमान सदी के पहले दशक में उन्होंने गुजराती में 'गुलशन' नामक मासिक का संपादन-प्रकाशन किया। यह आकार में छोटा था और केवल खोजा-समाज के लिए था।

गुजराती साहित्य और गुजरात की कला-चेतना पर हाजी का बड़ा उपकार है। रविशंकर रावल को कलाक्षेत्र में लाने वाले वही थे। रावलजी ने १९२२ में उनकी स्मृति में 'हाजी महम्मद स्मारक ग्रंथ' का प्रकाशन किया, जिसमें उन्होंने 'पीरबबरची भिष्ती खर' की तरह काम किया। यह ग्रंथ छोटा, पर अनूठा है। इसमें १० कला-त्मक चित्र तो स्वयं रावलजी के बनाये हुए हैं। यह रावलजी का पहला प्रकाशन था; परंतु उन्होंने हाजी की स्मृतिरक्षा अपूर्व सुंदरता से की। इसी सिलसिले में श्री बचुभाई पो. रावत से उनका परिचय हुआ,

छात्रों व अध्यापकों
को
10 प्रतिशत
की विशेष छूट।

आजकल

आजकल

'साहित्यिक एवं सांस्कृतिक मासिक'
साहित्य, कला, नाटक, फिल्म तथा
अन्य समसामयिक महत्व के विषयों
पर खोजपूर्ण एवं विचारोत्तेजक साप्ताहिक
व विभिन्न भारतीय भाषाओं के साहित्यिक
व सांस्कृतिक जगत में हो रही हलचलों
की विषद जानकारी के लिए आवश्यक—
तथा प्रबुद्ध पाठकों की एकमात्र
हिंदी पत्रिका।



एक प्रति - 75 पैसे
वार्षिक मूल्य - पाठ रुपये
द्विवार्षिक - चौदह रुपये
त्रिवार्षिक - दोसठ रुपये।

विस्तृत जानकारी के लिए लिखें :
व्यापार व्यवस्थापक,
प्रकाशन विभाग,
पटियाला हाउस, नई दिल्ली-110001

स्थानीय समाचारपत्र विक्रेता तथा रेलवे पुस्तक स्टालों पर उपलब्ध। Govt 78/371

जो 'कुमार' के प्रकाशन में सहायक हुआ। हाजी के ज्येष्ठ पुत्र श्री गुलामहुसैन हाजी महम्मद शिवजी ने १९२६ में 'बीसमी सदी' का पुनः प्रकाशन साप्ताहिक के रूप में किया। उसका दोरंगी आवरण गोरक्ष-कर बनाते थे और वह लिथो पर छपता था। अंदर कई लेख सचित्र रहते थे, जो

मनोरंजक के साथ ज्ञानवर्द्धक भी होते थे। वार्षिक मूल्य ७ रु. और एक अंक का २ आने था। ३० पृष्ठ रहते थे और आकार २८ × २१ सेंटीमिटर था। परंतु यह पुनरुज्जी-वित रूप भी ज्यादा दिन चल नहीं सका।
—हिंदी समाचारपत्र संग्रहालय,
कसारट्टा रोड, हैदराबाद-५००००२



यशस्वी पत्रकार स्व. मेहता लज्जाराम शर्मा के बारे में एक धटना उनके पौत्र श्री हरिलाल जी ठाकौर ने इस तरह से प्रस्तुत की है :

'बात उन दिनों की है कि जब मेहताजी देवली में बूंदी रियासत के प्रतिनिधि (वकील) थे। वर्ष में एक-दो बार रियासत से पोलिटिकल एजेंट को डाली जाया करती थी। डाली में तरह-तरह के मेवे और फल हुआ करते थे। उन दिनों बूंदी के अनार प्रसिद्ध थे। डाली का सामान हमारे घर से जाता था। एक बार किसी नौकर ने डाली के अनार में से कुछ दाने मुझे खाने को दे दिये। इसे मेहताजी ने देख लिया। डांटकर बोले—“खबर-दार, इसमें से कुछ दिया तो। घर में पैसा है—बच्चे को अनार देना है तो खरीदकर ला दो। पैसा नहीं रहेगा तो चने खा लेगा। मगर परायी चीज में से बालक को मत दो।” सब चुप। मैंने वे दाने भी जिसने दिये थे, उसे वापस दे दिये।

'यह घटना मेरे हृदय पर आज भी स्पष्ट अंकित है जिसने मेरे जीवन को बड़ा प्रभावित किया है, और सारी सरकारी नौकरी में यह घटना बराबर मेरे सामने रही है।'

—दिनेश विजयवर्गीय



एक संपादक को मकान-मालिक से छह माह के बकाया किराये की नोटिस मिली। कुछ दिनों बाद नोटिस मकान-मालिक के पास वापस लौट आयी। उस पर एक पुर्जा नत्थी था, जिस पर छपा था—'अस्वीकृत, खेद-सहित सधन्यवाद वापस।'

मकान-मालिक बहुत बौखलाया। उसने फिर एक नोटिस भेजी और उसके पीछे बड़े कठोर शब्दों में यह मजमून लिखा—'महाशय, यह प्रकाशनार्थ प्रेषित रचना नहीं, बल्कि छह माह के बकाया मकान-किराये की नोटिस है।'

इस दफा भी वह नोटिस मकान-मालिक के पास लौट आयी और इस बार उस पर जो पुर्जा नत्थी था, उस पर संपादक की लिखावट में यह लिखा था—'कृपया पर्याप्त हाशिया छोड़कर कागज के एक ही ओर लिखें।'

—राजकुमार अनिल



ग़ज़ल

आखिर इक बात बनी हो जैसे,
करवट एहसास ने ली हो जैसे ।
'हां, चलो और चलो' गुनते हैं,
अपनी तकमील' यही हो जैसे ।
हौसले देखिये इन्सानों के,
यही अजमत' की घड़ी हो जैसे ।
हर कोई सिर पे कफ़न बांधे है,
इक नयी रीत चली हो जैसे ।
आज जीने का मजा दुना है,
आज का ग़म भी खुशी हो जैसे ।
किस क़दर चुप हैं मिरे देस के लोग,
राज की बात सुनी हो जैसे ।
हां ग़ज़ल खूब है रहबर, तो भी
फ़िक्र' में अब भी कमी हो जैसे ।

—हंसराज रहबर

एस १६, नवीन शाहदरा, दिल्ली-११००३२

१. परिपूर्णता, २. महानता, ३. चितन।

रंग भव साकते हैं जीवन में रंग

ज्ञानचंद्र

बहुधा हम रंगों को बहुत महत्त्व नहीं देते; मगर निश्चय ही उनका बड़ा गहरा प्रभाव हमारे जीवन पर पड़ता है। उनसे हमारे मानसिक तथा शारीरिक स्वास्थ्य को जहां उत्तेजन मिल सकता है, वहीं वे हममें विषाद उत्पन्न करने में भी समर्थ हैं।

हम अपने कमरों को रंगते हैं; पर प्रायः उस रंग के परिणाम पर ध्यान नहीं देते। एक सज्जन की पत्नी स्नायु-विकार से पीड़ित होकर इतनी चिड़चिड़ी हो गयी थी कि वे उसे तलाक देने की बात सोचने लगे। संयोग से उसी बीच उन्होंने अपने एक मित्र को भोजन के लिए आमंत्रित किया। मित्र ने कमरा देखते ही कहा— 'तुमने अपने कमरे को लाल रंग से रंगवा रखा है। अगर इस कमरे में तुम्हें दिन-भर रहना पड़े तो कुछ ही दिनों में तुम स्नायु-विकार से पीड़ित हो जाओगे। अगर तुम अपनी पत्नी को तलाक नहीं देना चाहते, तो कमरे का रंग बदल दो।' जब कमरा नीले और भूरे रंगों से रंग दिया गया, तो

उन सज्जन को यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि उनकी पत्नी का चिड़चिड़ापन काफूर हो गया है।

एक फैक्टरी की कैटीन जब नीले रंग से रंग दी गयी तो वहां बैठकर भोजन करने वाले श्रमिक ठंड महसूस करने लगे और इसी कष्ट के कारण ग्राहकों का आना कम हो गया। कैटीन के उसी कमरे को जब मालिक ने नारंगी रंग से रंगवा दिया और रंग मिलाने के लिए कुर्सियों पर भी नारंगी रंग के खोल चढ़ा दिये, तो सभी उस कमरे को उचित से अधिक गरम बताने लगे। मालिक ने कुर्सियों के नारंगी रंग के खोल हटा दिये, तब ग्राहकों को कमरा पसंद आ गया। उतने से ही उसकी गरमी कम हो गयी थी।

एक कारखाने का मालिक इस बात से परेशान था कि उसके कर्मचारी बार-बार उस कमरे में जाते थे, जहां पीने के पानी की व्यवस्था थी। मालिक श्रमिकों के आंदोलन के भय से उन्हें कुछ कहता नहीं था। उसी बीच उसका 'इन्टीरियर डेको-

दि इंडियन स्मेल्टिंग एंड रिफाइनिंग कंपनी लिमिटेड

रजिस्टर्ड कार्यालय :

लालबहादुर शास्त्री मार्ग, भांडुप, बंबई-४०० ०७८

केबल : 'लकी' भांडुप

फोन : ५८४३८१

१. नानफेरस यूनिट

सेमिस रोलिंग विभाग :

नानफेरस शीत, स्ट्रिप और फाइल,
नानफेरस प्लेट और सर्कल



एलाय और कार्स्टिंग विभाग :

एंटीफ्रिक्शन बेयरिंग मेटल्स

गनमैटल्स और ब्रोन्जेस, रैजिंग सोल्डर्स और टिन सोल्डर्स
फाइन जिक डाइकार्स्टिंग एलाय्स 'इस्माक ३' अल्युमिनिय,
बेस्ड डाइकार्स्टिंग एलाय्स, ब्रास और ब्रोन्ज राइड्स सालिड
कोर्ड, फिनिशड कार्स्टिंग रफ और मशीन्ड ।

२. फेरस यूनिट :

फाउंड्री डिविजन

एस० जी० आयर्न और स्पेशल स्टील कार्स्टिंग्स

मेलिएबल आयर्न कार्स्टिंग्स

आइ० एस० एस०, बी० एस० एस०, एस० एस० आइ०

एम० के पेसिफिकेशन तथा ग्राहकों की विशेष आवश्यकता
के अनुसार सप्लाई किये जाते हैं ।

रेटर' आया। उसने उस कमरे को देखा और उसकी प्रशंसा मालिक से की। जब मालिक ने श्रमिकों के काम छोड़कर बार-बार वहां जाने की बात उससे कही, तो उसने उस कमरे को प्रिय लगने वाले रंग के स्थान पर हरे रंग से रंगवा दिया। मालिक की समस्या हल हो गयी। श्रमिकों का काम छोड़कर उस कमरे में बार-बार जाना मात्र रंग बदल देने से कम हो गया।

रंग आपकी कल्पनाओं को भी धोखा दे सकते हैं। रंग के कारण चीजें यथार्थ से काफी भिन्न लग सकती हैं। एक फैक्टरी से वक्सों में सामान भरकर आया करता था। फैक्टरी इन वक्सों को काले रंग में रंगा करती थी। मजदूर वक्सों को उठाने में शिकायत करते कि वे बड़े वजनी हैं। कुछ समय बाद फैक्टरी ने वक्सों को हल्के हरे रंग में रंगना शुरू किया। सामान वही, वजन वही, वक्सों के माप भी वही; मगर अब कोई श्रमिक उनमें वजनी होने की शिकायत नहीं करता था।

एक बार अमरीका में मक्खन की विक्री बेतरह घटने लगी। गृहिणियां मक्खन के स्थान पर मार्गरीन खरीदने लगीं। कारण, मार्गरीन का रंग उन्हें बेतरह पसंद था। बाद में कानून बनाकर अमरीकी सरकार ने मार्गरीन में पीला रंग मिलाने पर रोक लगा दी। अब प्रायः ग्राहक कहते-फिरते कि मार्गरीन का स्तर अब पहले जैसा नहीं रहा है। लोग फिर मक्खन की ओर आकृष्ट होने लगे और उसकी खूब मांग होने लगी।



जर्मन साहित्यकार हेस रचित जलरंग-चित्र डब्बाबंद मटर का हरा रंग जरूर आपको आकर्षित करता होगा। यह हरा रंग प्राकृतिक नहीं होता। यह रंग का करिश्मा है कि वह मटर आपको अच्छी लगती है। इसी प्रकार जैम और अन्य सभी डब्बाबंद चीजों में रंग मिलाकर उन्हें मनभावन रूप दिया जाता है। इसकी तुलना में असली चीज कम आकर्षक लगती है।

दुकान की प्रकाश-व्यवस्था में भी रंग का अपना महत्त्व है और विशेषज्ञ बतलाते हैं कि कौन-सी चीज किस रंग के प्रकाश में विशेष आकर्षक बन जाती है।

जूतों की एक दुकान में पुराना कालीन हटाकर अंगूरी और लाल रंग का एक नया कालीन बिछा दिया गया। विक्री तेजी से घटने लगी। दुकानदार ने सज्जाकार (इन्टीरियर डेकोरेटर) से परामर्श किया, तो उसने कहा कि कालीन के शोख रंगों के कारण जूते घटिया दिखने लगते हैं। तब भूरे और नीले रंगों का कालीन बिछाया गया और व्यापार फिर चमक उठा।

रोगियों पर भी रंगों का जवर्दस्त प्रभाव पड़ता है। मानसिक तनाव के रोगी को यदि सही अनुपात के हरे और नीले रंग के कमरे में रखा जाये, तो उसमें शिथिलन जल्दी होता है और रोगी शीघ्र स्वास्थ्य लाभ करता है।

एक बार ऐसा हुआ कि लंदन में टेम्स नदी के पुल से कूदकर आत्महत्या करने वालों की संख्या बेतरह बढ़ गयी। उस पुल की रेलिंग काले रंग से रंगी गयी थी, जो स्वतः दुःख और मृत्यु का प्रतीक है। जब अधिकारियों का ध्यान उस ओर गया, उन्होंने उसे काले के स्थान पर हरा रंगवा

दिया। प्रतिफल तुरंत देखने को मिला। आत्महत्याएं घट गयीं।

सूर्य के प्रकाश में यद्यपि केवल सात रंग हैं, परंतु उनके मिश्रण से लगभग १० लाख रंग बन सकते हैं। इनमें से हमारे नेत्र केवल ३७८ रंगों का अंतर कर सकते हैं।

सही ढंग के हल्के रंग आपकी भूख बढ़ा सकते हैं, थकान दूर कर सकते हैं, मन में मोद भर सकते हैं, आंखों में नींद ला सकते हैं और आपको मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य प्रदान कर सकते हैं।

—न्यू क्वार्टर्स, नंदन भवन,
गोरखपुर-२७३००१



अंग्रेजी है कहां ?

जब कभी अंतरराष्ट्रीय सम्मेलनों में भाग लेने का मौका मिलता है, यह देखकर हंसी आती है कि भारत में समझ कहा जाने वाला बुर्जुआ समाज अंतरराष्ट्रीयता के अंग्रेजों के लबादे से भरा रहता है, लेकिन वह अंग्रेजी है कहां ?

अलजीरिया में, भूमि और कृषि सुधार के त्वरित कार्यक्रम द्वारा ग्रामीण जगत को कायापलट के संबंध में एक अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन में भाग ले रहा हूं। इसमें दुनिया के लगभग एक सौ देशों के प्रतिनिधि भाग ले रहे हैं। पर उनमें से केवल आठ देशों के प्रतिनिधि अंग्रेजी में भाषण करते हैं, पंद्रह देशों के प्रतिनिधि फ्रेंच में और उतने ही अरबी में। जिनके प्रतिनिधि यहां जमा हैं, उनमें आठवां-दसवां हिस्सा भी अंग्रेजी नहीं समझ पाता। अल्जीरिया में कहीं भी अंग्रेजी से काम चला पाना असंभव है। होटल हो या बाजार, कहीं अंग्रेजी काम नहीं देती। ड्राइवर हो या होटल के बैरे, कोई अंग्रेजी का क-ख-ग नहीं जानते।

चिंता होती है और दुःख होता है कि जब सारी दुनिया अंग्रेजी के बिना चल सकती है, तो हम क्यों नहीं चल सकते ? अनेक बार बाहर अंग्रेजी बोलने या अंग्रेजी में भाषण करने पर यह प्रश्न पुनः को मिला है—'क्या आपके देश की कोई अपनी भाषा नहीं है ?' और हर बार जी में आया है कि इस चांटे का एक ही जबाब दूं—'है, लेकिन वह अभी तक दासी है और पता नहीं कभी उसे पटरानी का भी स्थान मिल पायेगा या नहीं।'।

—शंकर दयाल मि



वाल्टर बोवार्ट

हत्यारे 'जीवित शव'



वाल्टर बोवार्ट की पुस्तक 'आपरेशन माइंड कंट्रोल' से विश्वनाथ द्वारा प्रस्तुत

‘साहित्य जीवन का पूर्वानुमान होता है।’.....यदि आरकर वाइल्ड का यह कथन सत्य है, तो रिचार्ड कान्डन का उपन्यास ‘द मंचूरियन कैन्डिडेट’ निश्चित रूप से साहित्य है। सन १९५८ में प्रकाशित इस उपन्यास में अमरीकी सेना के एक साजेंट की कहानी है। उसे कोरिया-युद्ध के दौरान दुश्मनों ने गिरफ्तार कर लिया और नौ दिन में ही सम्मोहन के द्वारा ऐसा बदल दिया कि एक खास संकेत पर वह किसी की भी हत्या कर सकता था। जब यह सैनिक अमरीका लौटा तो उसका मस्तिष्क इस तरह से ‘बनाया’ जा चुका था कि ताश की गड्डी में ईंट की वेगम को देखते ही वह किसी की भी हत्या कर देता। इस साजेंट ने यंत्रचालित ढंग से कई व्यक्तियों की हत्या की, जिनमें अमरीका के राष्ट्रपति-पद का एक उम्मीदवार भी शामिल था। हत्या के बाद हत्यारे के मन से इन घटनाओं की याद को स्मृतिलोप द्वारा हमेशा के लिए मिटा दिया गया था।

जब यह पुस्तक प्रकाशित हुई थी, तो लेखक रिचार्ड कान्डन को भी नहीं पता था कि किसी के मस्तिष्क पर इस तरह पूर्ण-नियंत्रण किया जा सकता है। कान्डन ने तो अपनी कल्पना से एक उपन्यास लिखा

नवनीत

था; उन्हें क्या पता था कि अमरीकी सरकार की कई गुप्त एजेंसियां पिछले अठारह साल से मस्तिष्क-नियंत्रण के प्रयोग कर रही थीं। मस्तिष्क-नियंत्रण के जिन तरीकों का उन्होंने अपनी कल्पना से वर्णन किया था, उनका वाद में राजनैतिक हत्याएं करने वालों ने अक्षरशः उपयोग किया।

कान्डन के उपन्यास में मस्तिष्क-नियंत्रण अर्थात् किसी एक के मस्तिष्क पर दूसरे के कब्जा जमा लेने का प्रयोग एक चीनी मनोविज्ञानी करता है। यह विडंबना ही तो है कि लेखक की कल्पना को साकार करने का काम न तो चीनियों ने किया बल्कि न अन्य किसी कम्युनिस्ट देश ने, बल्कि वह काम किया उनके अपने देश अमरीका ने। ऐसा लगता है, जैसे इस उपन्यास को आधार बनाकर ही सब-कुछ किया गया।

कहा जाता है कि किसी जमाने में जाहू टोने से शवों का संचालन किया जाता था। पता नहीं वह सच है या झूठ। परंतु यह सच है कि कान्डन ने अपने उपन्यास में कि जीवित शवों (जोम्बी) की कल्पना की थी, उस तरह के अनेक जोम्बी तैयार कर लिये गये—कुछ हत्यारे जो इशारा पाकर हत्या करते, कुछ ऐसे जो सम्मोहित अवस्था में बारीक से बारीक विवरण याद रख

सकते, ऐसे संदेशवाहक जिनके मस्तिष्क के किसी भाग में संदेश रहता था और उन्हें उसका पता तक नहीं होता था और जब वह जानकारी वहां रखने की आवश्यकता न रह जाये तो उसे उनके मस्तिष्क से निकाल लिया जाता था।

वियतनाम में लड़ने वाले सामान्य अमरीकी सैनिकों को तो योंही नागरिक जीवन में लौट जाने दिया गया; परंतु जिन सैनिकों को अत्याचार और उत्पीड़न की तकनीकों में पारंगत बनाया गया था, उनके मस्तिष्क से वह सारी जानकारी वापस निकाल ली गयी। उन्हें सेना से अलग करने से पहले उनकी स्मृति को इस तरह समाप्त कर दिया गया कि उन्हें याद भी नहीं रहा कि वे कौन थे और वियतनाम में वे क्या कर रहे थे।

मस्तिष्क-नियंत्रण की इस तकनीक को मुकम्मिल बनाने में अनेक मनोविज्ञानियों और वैज्ञानिकों ने सहयोग दिया। मगर उनमें से प्रत्येक को सिर्फ अपने जिम्मे सौंपे गये काम के बारे में पता था। उन्हें कभी यह नहीं पता चल पाया कि उनके कार्य का उद्देश्य क्या है और मूलतः कौन उनसे यह सब काम करवा रहा है।

हालांकि इस कार्य में सबसे अधिक पैसा लग रहा था सी. आइ. ए. के माध्यम से, पर सचार्ड यह थी कि हर सरकारी एजेंसी जाने-अनजाने, चाहे-अनचाहे इससे जुड़ी हुई थी। यह सारा कार्य अदृश्य नन्ही सरकारों, अलिखित कानूनों, अलिखित योजनाओं और अलिखित निष्ठाओं से संचालित

हो रहा था। यह सब योजना थी उस नौकरशाही की, जिसे 'क्रिप्टोक्रेसी' कहा जा सकता है—'क्रिप्टो' अर्थात् गुप्त और 'क्रेसी' अर्थात् तंत्र। सी. आइ. ए. के नेतृत्व में चल रही इस क्रिप्टोक्रेसी की शाखाएं सेना के खुफिया संघटनों, न्याय-विभाग, स्वास्थ्य-विभाग, जेल व्यूरो, मादक द्रव्य व्यूरो, परमाणु ऊर्जा आयोग, सामान्य प्रशासन, नेशनल सायंस फाउंडेशन और यहां तक कि बड़े अमरीकी निगमों—विशेषतः एयरलाइन्स, तेल-कंपनियों आदि—में भी फैली हुई है।

यह क्रिप्टोक्रेसी व्यक्तियों और संस्थाओं की गोपनीयता का हनन करती है; विदेशों की आंतरिक राजनीति में दखलंदाजी करती है। इसने राज्यों के अध्यक्षों की हत्या के लिए मस्तिष्क-नियंत्रित हत्यारों को पैसे देकर तैयार किया है, प्रशिक्षित किया है और उन्हें हथियार मुहैया किये हैं।

कान्डन के उपन्यास 'द मंचूरियन कैन्डिडेट' का एक पात्र बार-बार उसे आने वाले एक सपने का जिक्र करता है, जो स्मृति का अवदमन किये जाने का परिणाम था। इसमें वह पात्र किसी खास इशारे पर हत्या करता है, कम्युनिस्ट मस्तिष्क-नियंत्रकों के सामने वह स्टेज पर अपने एक साथी के गले में रुमाल बांधकर उसका गला घोट देता है, एक अन्य साथी को पिस्तौल से उड़ा देता है। मैंने भी अपनी इस खोज में जिन लोगों से बातचीत की है, उनमें से बहुतों को ऐसे ही सपने आते हैं।

०००

टेक्स अमरीकी सेना में साजेंट था। जब उसे सेना से बर्खास्त किया गया, उसकी स्मृति को समाप्त कर दिया गया था। पर वह एक सपना बार-बार देखता था। वह बताता है:

‘सपने में मेरे दोस्त के हाथ पीठ के पीछे बंधे होते हैं। मैं अन्य साथी सैनिकों के साथ लाइन में खड़ा होता हूँ। मैं सोचता रहता हूँ कि मैं अपने दोस्त पर गोली नहीं चलाऊंगा, मैं अपनी राइफल कमांडर को दे दूंगा। पर हमारे पास राइफलें हैं नहीं।

‘मेरे साथी को हमारे सामने के खुले मैदान में ले जाया जाता है, उसके हाथ पीछे बंधे हुए हैं, उसकी आंखों पर पट्टी बांध दी गयी है, और कोई अरब उससे बातें कर रहा है। दूसरा अरब आता है, उसके घुटनों पर पीछे से राइफल मारता है। वह घुटनों के बल गिर जाता है।

‘तभी एक अरब एक लंबी तलवार से उसका गला काट देता है..... उसका सिर मैदान में लोटने लगता है..... उसका शरीर सिर कटे मुर्गे की तरह तड़पता है। तभी मेरी नींद खुल जाती है.....’

कान्डन ने ठीक ही लिखा था। मस्तिष्क-नियंत्रण के शिकार नींद में सपने में खुद अपने पर हुए अत्याचारों को देखते हैं। हर रात वे भयंकर आकृतियाँ, जिन्हें नियंत्रण की अनेक परतों में दबा दिया गया था, सपनों में उभरकर आती हैं। क्या ये आकृतियाँ मात्र सपने हैं, या स्मृतियाँ हैं? टेक्स का सपना उन सपनों में से एक है, जिन्हें मैंने

नवनीत

१,२०० पृष्ठों में लिपिबद्ध किया है।

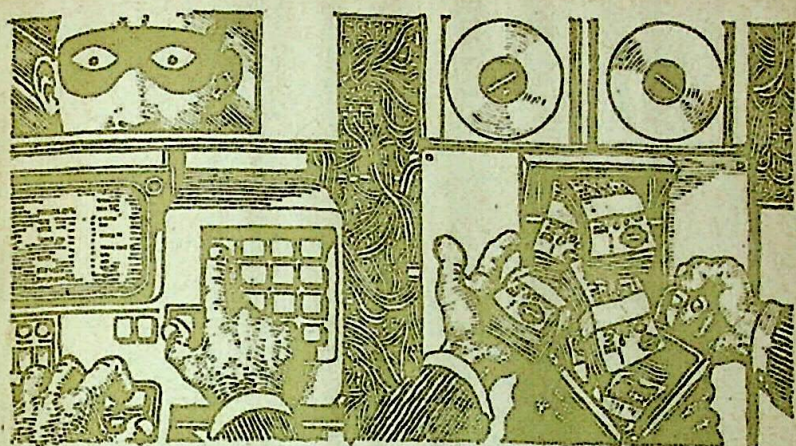
× × ×

सैनिक अस्पताल में जब डेविड की आंख खुली, तो उसे बताया गया कि उसने नींद की गोलियाँ खाकर आत्महत्या करने की कोशिश की थी। पर डेविड तो ऐसा युवक था, जिसने कभी किसी प्रकार का नशा नहीं किया था। देशभक्ति से प्रेरित होकर वह सेना में भरती हुआ था। सबसे पहले उसे छह सप्ताह के बुनियादी प्रशिक्षण के लिए लेकलैंड एयरफोर्स अड्डे भेजा गया, फिर छह सप्ताह के विशेष प्रशिक्षण के लिए एक तकनीकी स्कूल में। लेकिन जब काम सौंपने का मौका आया, तो उसे यह जानकर बहुत निराशा हुई कि उसे मेडिकल कोर के बजाय सप्लाइ कोर में भेजा जा रहा है।

डेविड को लगा कि वायुसेना ने उसके साथ सरासर विश्वासघात किया है। तभी एक व्यक्ति उससे मिलने आया और उसने एकांत में डेविड से कहा कि निराश होने की आवश्यकता नहीं—सप्लाइ कोर तो वहाना मात्र है, असल में तुम्हें गुप्तचर-सेवा के लिए चुना गया है। तब उससे कहा गया कि सुरक्षा-जांच पूरी होने तक तुम्हें कम्प्यूटर का विशेष प्रशिक्षण दिया जायेगा।

कुछ ही सप्ताह में डेविड को मिनीट भेज दिया गया। यहां पर वह कम्प्यूटर की सहायता से अपनी स्मरण-शक्ति बढ़ाता रहा। उसे साजेंट बना दिया गया। पर वह अपनी स्थिति में संतुष्ट नहीं था। उसके भीतर

जनवरी



ही भीतर एक असंतोष पनप रहा था ।..... पर उस दिन जब अस्पताल में उसे होश आया, उसका असंतोष समाप्त हो गया था । वह शांत था । पिछली बातों को वह याद करना चाहता था, पर कुछ याद नहीं आ रहा था । उसे लगा, जैसे उस क्षण तक वह सारी जिंदगी सोता ही रहा है ।

कांफी अरसे बाद उसे कुछ-कुछ याद आया । ऐसा लगा, जैसे कोई उसके 'मस्तिष्क के साथ बलात्कार कर रहा था' ।

डेविड ने सोचा कि मैंने तो आत्महत्या का प्रयास किया है, इसलिए मुझे सेना से निकाल दिया जायेगा । पर ऐसा कुछ नहीं हुआ । उलटे, सादे लिवास में आये एक व्यक्ति ने उसे बताया कि तुम्हें एक विशेष खुफिया काम के लिए चुना गया है ।

फिर उसे दो सप्ताह की छुट्टी दे दी गयी । दो सप्ताह बीतने पर एक तार मिला । उसे समुद्र-पार सुदूर पूर्व में जाने का आदेश

था । सामान्यतः ऐसा आदेश तार द्वारा भेजा नहीं जाता । पर उस तार पर एक कोड-नंबर था, और शायद यही उसकी विशेषता थी । विमान से कैलिफोर्निया पहुंचते ही उसे एक और विमान में बैठकर गुआम भेज दिया गया ।

यहां डेविड को मिनोट का अपना एक साथी मिला—मैक्स । वह भी डेविड की तरह सप्लाई कोर में ही था । पर डेविड जानता था उसकी विशेषताएं कुछ और हैं—जैसे, वह कराते में माहिर था । पर मैक्स के काम की अधिक जानकारी वह कभी नहीं पा सका ।

वहां से डेविड और मैक्स को एक बस में बैठाकर आठ मील दूर एक एकांत स्थल पर पहुंचाया गया । बिजली के तारों से घिरे उस अहाते में छह बैरकें थीं और कई सौ सैनिक वहां रहते थे । उस जगह का नाम था मारबो । डेविड के शब्दों में, 'यहां के

सैनिकों में से कई उत्तर डकोटा राज्य में सप्लाई विभाग में काम कर चुके थे। मगर यहां मारवों में सब दूसरे ही काम कर रहे थे।..... मुझे लगता है, हम सब यह मानकर चल रहे थे कि हमें विशेष काम पर तैनात किया गया है। कोई अपने काम के बारे में दूसरे को नहीं बताता था। कोई किसी से पूछता भी नहीं था।'

ड्यूटी पूरी होने के बाद मैक्स और डेविड एक ही विमान से घर लौटे थे। हवाई-अड्डे पर इंटरकाम पर मैक्स का नाम पुकारा गया और वह चला गया। फिर कभी लौटा नहीं।

कुछ महीने बाद वह डेविड को अचानक ही मिल गया। डेविड बताता है—'मैक्स ने मुझसे हाथ तो मिलाया, पर मुझे लगा कि उसे मुझसे मिलकर कोई खुशी नहीं हुई। मैं चाहता था कि कहीं बैठकर उसे सब-कुछ बताऊं। पर वह तो मुझसे बात ही नहीं करना चाहता था। वह मुझे नमस्ते करके चला गया।

'यह बात कभी मेरी समझ नहीं आयी कि एक आदमी जो महीनों दिन-रात मेरे साथ रहा, मेरे लिए लड़ा, अब मुझसे क्यों बात नहीं करना चाहता है !

'जब मैं सेना से बाहर आया तो शुरू में मुझे बस इतना-सा याद था कि उन चार बरसों में मैंने बहुत मौज की है। यह बात तो बहुत बाद में मेरे जेहन में आयी कि सेना में मैंने मौज-मस्ती के अलावा भी कुछ तो किया होगा। पर मुझे याद यही

नबनीत

रहा कि मैक्स और पैट के साथ मैं मजा ही करता रहा।'

पैट थी डेविड की सेक्रेटरी। गुआम में पहली बार मिलते ही दोनों एक-दूसरे को प्यार करने लगे थे।

अब डेविड को यह आश्चर्यजनक लगता है कि वे तीनों—डेविड, मैक्स और पैट—पहली ही मुलाकात में एक-दूसरे को क्यों और कैसे चाहने लगे थे ! उसे विश्वास है कि उन तीनों को किसी कम्प्यूटर की सहायता से एक-दूसरे की पसंद का बनाया गया था।

'हम तीनों की रचियां एक-सी थीं, एक-सी चीजों से हम बेचैन होते थे, एक-ने मजाक सुनकर हम हंसते थे। हम ऐसे तीन व्यक्ति थे जो एक-दूसरे के बहुत निकट थे, और एक-दूसरे के प्रीक थे।'

गुआम में ड्यूटी समाप्त होने के दो माह पूर्व ही डेविड और मैक्स को घर भेज दिया गया। पैट वहीं पर रह गयी थी। डेविड और पैट ने परस्पर वादा किया था कि हम लिखते और मिलते रहेंगे। डेविड ने पैट का पता भी लिया था। लेकिन वह पता कहीं खो गया (!) और आश्चर्य की बात है कि डेविड को पैट का पूरा नाम भी याद न रहा। उसके शहर का नाम भी उसे कभी याद न आया। वह पैट से फिर कभी नहीं मिला।

तेरह घंटे की वापसी उड़ान में डेविड टेप-रिकार्डर में लगातार बोलता रहा था। उसके दोनों ओर वायुसेना के पुलिसमैन बैठे हुए थे। कोई उससे कुछ पूछ नहीं रहा

जनवरी

था; वह स्वयं ही बोले जा रहा था। मगर अब उसे कुछ भी याद नहीं है कि वह बोलता क्या रहा।

कैलिफोर्निया लौटने के बाद उसे टेलिफोन आपरेटर का काम दिया गया और सेना में अपना आखिरी वर्ष उसने इसी हैसियत से बिताया।

सेना से अलग होते समय जब उसे उसकी सर्विस-फाइल दिखायी गयी, तो उसमें सब-कुछ बदला हुआ था। जब उसने कारण पूछा, तो उसे बताया गया कि गोपनीयता के लिए यह जरूरी है और उसकी वास्तविक फाइल गुप्त रखी जायेगी।

फिर डेविड घर आ गया था।

घर में सवने महसूस किया वह कुछ बदल-सा गया है। खुद डेविड को कुछ समय तक तो ऐसा कुछ नहीं लगा; लेकिन बाद में जब उसने नौकरी के लिए कोशिश शुरू की, तब उसे अजीब अनुभव हुए। वह प्रार्थनापत्र तक नहीं भर पा रहा था। उसने अपना नाम लिखा, और उसकी हथेलियों में पसीना आने लगा। पता लिखा, और दिल जोरों से धड़कने लगा। उसे महसूस हुआ कि उसका दम घुट रहा है, कमरे की दीवारें उसके पास सिमटती आ रही हैं। घबराकर वह बाहर भाग आया। सवने कहा कि उत्तेजनावश ऐसा हुआ होगा।

डेविड एक और जगह नौकरी के लिए गया। इस बार उसने नाम, पता, जन्मतिथि सब भर दीं। मगर जब पिछले चार वर्षों

के कार्यों का विवरण लिखने की वारी आयी तो उसके कान भारी तो हो गये, दिल जोरों से धड़कने लगा। इस बार भी उसे लगा कि दीवारें उसका घेराव कर रही हैं। वह बाहर आ गया। कुचला हुआ फार्म उसकी मुट्ठी में था।

यही अनुभव उसे बार-बार हुआ। जब भी कोई उससे सेना में बताये चार वरसों के बारे में पूछता, वह आतंकित हो उठता था। एक दिन मां-बाप ने उसे समझाया कि तुम कम्प्यूटर की सहायता से नौकरी पाने की कोशिश क्यों नहीं करते? कम्प्यूटर का नाम सुनते ही उसे गुस्सा आ गया। वह बताता है—‘आज भी मैं कम्प्यूटर के बारे में नहीं सोच सकता। मैं चाहता हूँ, सारे ही कम्प्यूटरों को तोड़ डालूँ। पर मैं यह भी समझता हूँ कि यह बात विवेकपूर्ण नहीं है।’

आखिर डेविड को मनश्चिकित्सक के पास जाना ही पड़ा।

पहले वह एक पुरुष मनश्चिकित्सक के पास गया, जिसने सम्मोहन-चिकित्सा का सहारा लिया। मगर जब भी चिकित्सक कहता कि ‘अब मैं चाहता हूँ कि तुम अपनी पिछली जिंदगी की ओर जाओ’, एकाएक सम्मोहन-अवस्था समाप्त हो जाती और डेविड उठकर बैठ जाता।

इसके बाद डेविड ने एक महिला मनश्चिकित्सक की शरण ली, जिसका नाम एलिस था। यहाँ भी वही बात होती थी। एलिस कहती कि ‘अब हम पीछे चलते हैं,’ और डेविड की सम्मोहन-अवस्था समाप्त हो

जाती। मगर एलिस ने हिम्मत नहीं हारी। प्रति सप्ताह उनकी तीन बैठकें होती थीं। सोलह महीने गुजर गये। तब एलिस ने डेविड से कहा—‘शायद हम वायुसेना में तुम्हारी सेवा के चार सालों पर पड़ा परदा उठा सकेंगे और यह पता लगा सकेंगे कि किसने यह सब किया और क्यों किया। पर इसमें काफी समय लगेगा। दूसरी ओर, यह भी हो सकता है कि मैं तुम्हें सामान्य जीवन जीने लायक बना सकूँ। अब यह फैसला तुम्हें करना है कि तुम सामान्य जीवन जीना चाहते हो, या यह रहस्य जानना चाहते हो कि किसने तुम्हारे जीवन के चार वर्षों पर परदा डाला, क्यों डाला और वह क्या चीज थी जिसे तुम्हारे मस्तिष्क से गायब कर दिया गया है।’

स्वाभाविक था कि डेविड पहले विकल्प को चुने।

किंतु एलिस की चिकित्सा ने आगे चलकर डेविड को धीरे-धीरे वह सब याद दिलाना शुरू किया, जिसे वह स्वयं याद नहीं कर पा रहा था। अब डेविड कुछ-कुछ याद कर सकता है कि ‘सम्मोहन-सेवा’ के उन चार बरसों में उसने अपने देश के लिए क्या किया था। वह बताता है :

‘एक दिन मैंने एक सपना देखा। फिर मुझे लगा जैसे मेरे मस्तिष्क में स्मृति के कोशाणु फूट रहे हैं। मुझे कुछ घटनाएं याद आने लगीं। मुझे पता नहीं कि यह सब सच है या नहीं, पर यह सब इतना स्पष्ट है कि मुझे सच लगता है।

नवनीत

‘मुझे सबसे स्पष्ट याद वियतनाम की है। मैं समुद्र के किनारे एक लंबी मेज के पास खड़ा था। एक तरफ उत्तर वियतनाम के अधिकारी बैठे थे और दूसरी ओर अमरीकी अधिकारी। सब वर्दी में थे।

‘पर मैं सबसे अधिक भयभीत था समुद्र में खड़े जहाजों से। एक जहाज हमारा था, दूसरा शायद वियतनाम का या रूस का था। इस दूसरे जहाज पर तोपें लगी हुई थीं और उनका मुंह हमारी ओर था।.... मैं समझता हूँ, किनारे पर कुछ भी गड़बड़ होते ही तोपों के गोले हमें भून डालते।

‘दुभाषियों के माध्यम से काफी ग़रब बहस हो रही थी। पर कोई भी किसी बात को लिपिबद्ध नहीं कर रहा था। शायद इसीलिए मेज के एक किनारे पर मैं खड़ा था। मुझे याद पड़ता है कि वे कोशिश कर रहे थे कि मैं सब कुछ याद करके बताऊँ। पर मुझे उसका विवरण याद नहीं आ रहा।

‘मुझे पता है कि मुझे स्मरण-प्रशिक्षण दिया गया था। मारबो में पता नहीं क्यों, मैं रोज ही बाकी लोगों से तीन घंटे पहले जग जाता था और फिर कहीं जाता था। फिर ८.३० बजे मैं काम पर जाता था। मुझे याद है कि मारबो से मैं बस में बैठकर गुआम के सैनिक अड्डे तक अकेला जाया करता था। पर मुझे यह याद नहीं आ रहा है कि ड्यूटी पर जाने से पहले मैं अकेले कहां जाता था।

‘मुझे संदेह है कि वह कम्प्यूटर वाला काम भी स्मृति-प्रशिक्षण का ही अंग था।

१२४

जनवरी

पर मैं यह नहीं बता सकता कि वह था क्या। मगर मुझे लगता है, मुझे मानवीय टेप-रेकार्डर की तरह काम में लाया जा रहा था।

‘समुद्र-तट का वह दृश्य तो मुझे याद है, पर वह स्थान कहां था, उस दिन कौन-सी तारीख थी—कुछ भी मैं बता नहीं सकता। मैं यह भी नहीं याद कर पाता कि सेना में चार साल मैं क्या करता रहा।’

‘कुछ लोग इसे “ब्रेन वॉशिंग” कह सकते हैं। मगर “ब्रेन वॉशिंग” में बड़ी क्रूरता वरती जाती है। मेरे साथ तो ऐसा कोई व्यवहार नहीं किया गया।’

‘मुझे विश्वास है कि मैं जो कुछ कह रहा हूँ, सच कह रहा हूँ। पर अगर मैं यह सब वायुसेना में जाकर कहूंगा, तो वे मेरी फाइल दिखाकर कहेंगे “यह आदमी पागल है। इसने नींद की गोलिएं खाकर आत्म-हत्या करने की कोशिश की थी।”’

‘लेकिन मुझे लगता है, मुझे साधन की तरह इस्तेमाल किया गया है। सप्लाई-विभाग में मेरी नियुक्ति तो एक दिखावा-भर थी।’

‘मैंने अपने बलिदान के बारे में कभी सोचा नहीं है। लेकिन संभव है कि मैंने देश की खातिर शरीर से भी कुछ अधिक गंवाया है—अपनी आत्मा।’ ०००

जून १९७५ में पहली बार यह सार्वजनिक रूप से प्रकट किया गया कि सी. आइ. ए. और उसके निर्देश पर काम करने वाली कई एजेंसियां पिछले बीस वर्ष से भी

अधिक समय से अमरीकी नागरिकों पर ऐसी दवाओं के प्रयोग कर रही थीं, जो मनुष्य के व्यवहार को गहरा प्रभावित करती हैं।

(ज्ञातव्य है कि १९५३ में सी. आइ. ए. ने जानवरों और मनुष्यों पर प्रयोग करने के लिए १० किलोग्राम एल. एस. डी. खरीदने की योजना बनायी थी। एक ग्राम एल. एस. डी. में १०,००० ‘खुराकें’ होती हैं; इस हिसाब से सी. आइ. ए. दस करोड़ खुराकें चाहती थी। उसका उद्देश्य था एल. एस. डी. को कब्जे में करना, ताकि ‘एल. एस. डी. —युद्ध, में कोई और देश उससे आगे न निकल पाये।)

तभी सी. आइ. ए. की गतिविधियों के बारे में ‘राकफेलर-रिपोर्ट’ प्रकाश में आयी। उसमें कहा गया था—‘सन ४० वाले दशक में सी. आइ. ए. ने मानव-व्यवहार को प्रभावित करने वाले मादक द्रव्यों (जैसे एल. एस. डी.) का इस दृष्टि से अध्ययन शुरू किया था कि गुप्त कार्यों में उनका क्या और कैसे उपयोग किया जा सकता है..... इस कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य शत्रु द्वारा ऐसे द्रव्यों के प्रयोग से बचाव के तरीके खोजना था।..... पर यह कार्यक्रम वस्तुतः मानवीय व्यवहार को नियंत्रित करने के संभावित तरीके खोजने के सी. आइ. ए. के बृहत्तर कार्यक्रम का एक हिस्सा था।’

दो वर्ष बाद समाचारपत्रों ने ‘राकफेलर-रिपोर्ट’ के मादक द्रव्य वाले हिस्से को तो काफी उछाला, पर अन्य प्रयोगों की उपेक्षा

ही की। किसी ने भी इस बात पर सोचने की आवश्यकता नहीं समझी कि सी. आइ. ए. के इस कार्यक्रम के अधिकांश दस्तावेज क्यों और कैसे नष्ट हो गये और १९७३ में इस कार्यक्रम से संबद्ध सारी फाइलें जला देने का आदेश क्यों दिया गया ?

मगर राकफेलर-रिपोर्ट प्रकाशित होने के बाद सार्वजनिक असंतोष उभरने के कारण उपस्थित हो गये थे। सबसे पहले तो डा. फ्रैंक ओल्सन के बच्चों ने अपने पिता की कथित आत्महत्या को हत्या बताया। सेना में काम करने वाले डा. ओल्सन को, बिना उन्हें बताये, एल. एस. डी. दी गयी थी और तब उन्होंने न्यूयार्क के एक होटल की बारहवीं मंजिल से कूदकर आत्महत्या (!) कर ली थी। पूरे बाईस वर्ष तक उनके बच्चों को यही भ्रम था कि उनके पिता ने आत्महत्या की थी। डा. ओल्सन की मृत्यु के कई मास पूर्व पेशेवर टेनिस-खिलाड़ी हेराल्ड ब्लाउर की मृत्यु भी न्यूयार्क राज्य मनश्चिकित्सा संस्थान में 'प्रयोगात्मक दवाओं' से हुई थी। 'राष्ट्रीय सुरक्षा' के नाम पर यह बात गुप्त ही रखी गयी कि हेराल्ड को कौन-सी 'दवाएं' दी गयी थीं।

इन तथ्यों के प्रकाश में आने पर सरकारी एजेंसियों को बाधित होकर अपने अपराध स्वीकार करने पड़े। सेना ने घोषणा की कि १९५६ से लेकर उस समय तक सेना के १,५०० अनजान व्यक्तियों और ५,५०० स्वयंसेवकों पर एल. एस. डी. के परीक्षण किये गये थे।

नवनीत

सेना की इस स्वीकारोक्ति के कुछ ही दिन बाद स्वास्थ्य, शिक्षा तथा समाज-कल्याण विभाग ने भी इस तरह के प्रयोगों का इकवाल करते हुए घोषणा की कि १९५४ से १९६८ के बीच लगभग २,५०० कैदियों, मनोरोगियों और सवेतन स्वयंसेवकों पर मादक द्रव्यों से संबंधित प्रयोग किये गये थे। साथ ही यह भी बताया गया कि उस विभाग ने मानव-व्यवहार पर एल. एस. डी. के प्रभावों के बारे में अनुसंधान करने के लिए तीस से अधिक विश्वविद्यालयों को ७५ करोड़ डालर का अनुदान दिया था।

परंतु बहुत बाद तक यह बात नहीं बतायी गयी कि एल. एस. डी. तथा अन्य मादक द्रव्यों और मानव-मस्तिष्क को नियंत्रित करने के सभी संभव साधनों के बारे में अनुसंधान करने के लिए सी. आइ. ए. ने सरकार की सभी संभव सैनिक तथा असैनिक एजेंसियों एवं विश्वविद्यालयों व निजी अनुसंधान-दलों का उपयोग किया था।

इन सारे प्रयोगों के परिणामों का फायदा उस मनोवैज्ञानिक युद्ध में उठाया गया जो दूसरे विश्वयुद्ध के बाद छिड़ा था। इन 'तीसरे विश्वयुद्ध' (शीतयुद्ध) की शुरूआत प्रचार के रूप में हुई थी। फिर धीरे-धीरे प्रचार का स्थान लिया तोड़फोड़, हत्या, गुप्त अर्धसैनिक कार्रवाई और सीमित 'पुलिस कार्रवाई' ने।

दूसरे विश्वयुद्ध के बाद से ही अमरीकी नेताओं को अपने राष्ट्र की तकनीकी श्रेष्ठता का बल प्राप्त था। हालांकि नयी तकनीकी

से, विशेषतः न्यूक्लीय ऊर्जा से, नेताओं को प्यार था; मगर इस पर से अपना एकाधिकार छिनने का भय भी उन्हें सताने लगा था। इस भय ने इस धारणा को बल दिया कि विदेशी सरकारों द्वारा करायी जाने वाली तकनीकी चोरियों से बचने के लिए नवीन गुप्त एजेंसियों और गतिविधियों की अत्यधिक आवश्यकता है।

मूलतः यह युद्ध 'शत्रु' राष्ट्रों से लड़ा जाना था; मगर इसकी शुरूआत घर में ही हुई। अमरीका के भीतर ही सैद्धांतिक आस्थाओं और स्वतंत्र विचार के खिलाफ इसका उपयोग एक ऐसी गुप्त नौकरशाही ने किया, जिसे संघीय सरकार का पूरा समर्थन प्राप्त है पर जो सरकारी कमान की शृंखलाओं में बंधी हुई नहीं है। यह गुप्त नौकरशाही—क्रिप्टोक्रेसी—अपनी ताकत से बौरा गयी है।

यों तो राष्ट्रीय सुरक्षा के नाम पर अत्याचार करने वालों के लिए सी. आइ. ए. की टट्टी की ओट लंबे अरसे से बहुत उपयोगी रही है, परंतु इस क्रिप्टोक्रेसी में सिर्फ सी. आइ. ए. ही नहीं है। इसमें और भी अनेक सरकारी एजेंसियों के कर्मचारियों की व्यापक मिलीभगत है, जो सामान्यतः गुप्त कार्यों से संबंधित नहीं समझी जाती।

क्रिप्टोक्रेसी को अपने काम के लिए संविधान के प्रत्येक सिद्धांत का उल्लंघन करना पड़ता है और 'राष्ट्रीय सुरक्षा' के नाम पर वह ऐसा प्रत्येक अपराध करती है जो कि मनुष्य को विदित है। इसलिए वह

इसकी आशा नहीं कर सकती कि उसके एजेंट मात्र देशभक्ति के बल पर उसकी गोपनीयता को बनाये रख सकेंगे। इसलिए किसी भी एक व्यक्ति को उससे अधिक नहीं बताया जाता कि 'जितना जानना उसके लिए जरूरी है।'

यह एक ऐसा टेक्नोक्रेटिक संघटन है, जिसका कोई आदर्श नहीं है और जिसकी निष्ठा एक अनुच्चारित और अपरिभाषित राष्ट्रवाद में ही है। इसके सदस्य अज्ञात हैं। इसके आर्थिक साधन गुप्त हैं। इसकी गतिविधियों का इतिहास रहस्यमय है। यहां तक कि इसके लक्ष्य भी गोपनीय हैं। यह अमरीका की राजनीति में लगी एक गुप्त बीमारी है, जो इतनी चुपचाप फैल रही है कि चार दशकों के अस्तित्व के बावजूद इसकी वास्तविकता निर्णायकताओं के अतिरिक्त किसी को कुछ पता नहीं है।

यह क्रिप्टोक्रेसी मशीन की तरह काम करती है। मशीन की तरह ही यह भावना-शून्य है। पर मशीन के विपरीत, यह महत्वाकांक्षी अवश्य है। इसकी नजरों में मनुष्य सस्ते पुर्जे मात्र हैं।

इसके एजेंट को राष्ट्रवाद का वास्ता देकर भरती नहीं किया जाता। उसे रिश्तत दी जाती है। यदि वह रिश्तत नहीं लेता, तो उसे 'ब्लैकमेल' किया जाता है। यदि उसे 'ब्लैकमेल' करना संभव नहीं है, तो उसे एक निश्चित तरीके से निश्चित काम के लिए 'संचालित' किया जाता है। यदि इनमें से कोई भी तरीका काम नहीं करता है, तो

उसे मार डाला जाता है; क्योंकि यह बात कभी प्रकट नहीं होनी चाहिये कि उसे किसी काम के लिए कहा गया था। 'राष्ट्रीय सुरक्षा' कोई ऐसी-वैसी चीज तो नहीं!

यह निश्चित करना कभी-कभी मुश्किल हो जाता है कि यह क्रिस्टोक्रेसी अमरीकी राष्ट्रपति के लिए काम करती है, या उसके विरुद्ध। इसके अनेक अपराध, जिनका पता चल चुका है, यह स्पष्ट संकेत देते हैं कि इसने अक्सर राष्ट्रपति के विरुद्ध ही कार्य किया है। अब हम जानते हैं कि इसने अमरीकी संविधान और अमरीकी जनता के खिलाफ काम किये हैं। इसने अपने रास्ते में आने वालों को तो सताया और समाप्त किया ही है, यह ऐसे निरीह लोगों की मृत्यु का कारण भी बनी है, जो इसके लिए ही काम कर रहे थे। अमरीकी कांग्रेस की समितियों द्वारा की गयी कई जांचों में इसके अत्याचारों के प्रमाण पाये गये हैं, पर कभी किसी को सजा नहीं दी गयी। (हां सी. आइ. ए. के निदेशक रिचर्ड हेल्म्स को चिली सरकार का तख्ता पलटने में सी. आइ. ए. की भूमिका के बारे में गलत जानकारी देने के अपराध में अवश्य दंडित किया।)

क्रिस्टोक्रेसी बड़े-बड़े उद्योगों की सहायता करती है। वह अमरीकी व्यावसायिक निगमों को विदेशी उद्योगों से संबंधित गुप्त जानकारी देती है। इसके बदले में ये निगम उन उम्मीदवारों के राजनैतिक अभियानों में आर्थिक सहायता देते हैं, जिनका संबंध क्रिस्टोक्रेसी से हो। यह कार्य राष्ट्रीय और

नवनीत

अंतरराष्ट्रीय दोनों स्तरों पर होता है। क्रिस्टोक्रेसी के कई अवकाश-प्राप्त अफसर इन निगमों में काम करते हैं। और क्रिस्टोक्रेसी के अंतरराष्ट्रीय प्रभाव के पीछे इन लोगों का हाथ है। सरकार की एक एजेंसी से दूसरी एजेंसी में तो गुप्त धन जाता है, इन निगमों को भी गुप्त धन मिलता है और फिर निगमों की अपनी व्यापारिक गतिविधियों के नाम पर यह पैसा विश्व में जहां आवश्यकता होती है, वहां पहुंचा जाता है।

वस्तुतः अमरीकी सरकार पर इस क्रिस्टोक्रेसी का नियंत्रण है। यह कार्यपालिका के केवल ऐसी गोपनीय सूचनाएं तोड़-भरोस कर देती है, जिनके आधार पर केवल ऊंचे फैसलों पर पहुंचा जा सकता है, जो इस (क्रिस्टोक्रेसी की) योजना के अनुरूप हैं।

क्रिस्टोक्रेसी ने बड़े योजनाबद्ध तरीके से अमरीकी चेतना को अपने अनुरूप बना दिया है। साम्यवाद के बढ़ते हुए खतरे का नज़र लेकर इसने अपने अस्तित्व का आंकड़ जताया है और अपनी निरंकुशता के सपने में देश के प्रमुख राजनेताओं से यह बात मनवा ली है कि आग का मुकाबला करने से किया जाना चाहिये।

क्रिस्टोक्रेसी अच्छी तरह जानती थी कि सत्ता के खेल में अपनी टांग ऊंची रखने का एक ही रास्ता है—तकनीकी क्षेत्र में सर्वोपरि आगे रहना। इसके लिए इसने हर तरह का प्रयत्न किया है।

दूसरे विश्वयुद्ध से भी क्रिस्टोक्रेसी

अपने देशवासियों और विदेशियों दोनों को भरमाने के लिए इलेक्ट्रानिक तकनीक का प्रयोग किया। इसका अस्तित्व ही गलत सूचनाओं और प्रचार द्वारा जनता के विचारों को प्रभावित करने पर निर्भर है। चूंकि क्रिप्टोकेसी खुलेआम काम नहीं कर सकती, इसलिए अपने लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए वह लोगों को मनाने और मनवाने के तरीके काम में लाती है। साथ ही क्रिप्टो-केसी के अस्तित्व के लिए पूर्ण गुप्तता भी आवश्यक है। इसके बिना यह शक्तिहीन हो जाये। इसलिए क्रिप्टोकेसी सूचनाओं के स्रोत पर ही नियंत्रण करती है और समस्त सूचनाओं का स्रोत है—मानव-मस्तिष्क!

मस्तिष्क-नियंत्रण का प्रारंभिक अनु-संधान सी. आइ. ए. ने शुरू कराया था। चुपचाप वह प्रत्येक विज्ञानी या वैज्ञानिक-समूह को काम वांटता था। किसी को यह न पता होता था कि दूसरा क्या कर रहा है। कोई यह भी नहीं जानता था कि वह जो कर रहा है, किसलिए कर रहा है। उन सबकी संगति बैठती थी सी. आइ. ए.।

यह मस्तिष्क-नियंत्रण का अभियान कुछ गुप्तचरों की ही योजना नहीं थी और न यह कार्य गुप्त सूचनाएं एकत्र करने तक ही सीमित था। यह सच है कि शुरू में इसके शिकार वही लोग हुए, जिनका व्यक्तित्व शिकार होने लायक ही था। पर अंततः शायद कुछ ही लोग बच सकेंगे इसका शिकार होने से।

×

×

×

१९७९

हत्यारों के रूप में क्रिप्टोकेसी ऐसे ही व्यक्तियों को चुनती है, जिनकी प्रकृति हिंसक हो और जिन्हें किसी की जान लेने में बहुत सोचना नहीं पड़ता हो। उसे ऐसे हत्यारों की आवश्यकता रहती है, जो अपनी इच्छा से नहीं, दूसरे के आदेश से हत्या कर सकें।

जुलाई १९७५ में लंदन के 'संडे टाइम्स' ने अमरीकी नौसेना के एक मनोविज्ञानी लेफ्टिनेंट कमांडर डा. नरत का हवाला देते हुए एक खबर छपी थी। इस मनो-विज्ञानी ने बड़े घमंड के साथ यह प्रकट किया था कि अमरीकी नौसेना के खुफिया विभाग ने सैनिक जेलों से सजायाप्राप्त हत्यारों को चुनकर उन्हें मस्तिष्क-नियंत्रण की विधियों से राजनैतिक हत्यारों के रूप में प्रशिक्षित करके सारे विश्व में अमरीकी दूतावासों में नियुक्त किया है। यह बात उन्होंने ओस्लो में मनोविज्ञानियों के एक सम्मेलन में कही थी और बाद में उन्होंने पत्र-प्रतिनिधियों के समक्ष भी बताया कि उन्होंने ऐसे प्रशिक्षण-कार्यक्रम में हिस्सा लिया है, जिसमें ऐसे हत्यारे तैयार किये गये थे, जो आवश्यकता पड़ने पर किसी भी देश में किसी की भी हत्या कर सकें।

कुछ चुनिंदा व्यक्तियों को इस तरह से तैयार किया जाता था। उन्हें ऐसी फिल्में दिखायी जाती थीं, जिनमें हत्या और उत्पीडन के अलग-अलग तरीके दिखाये गये हों। क्रमेण क्रूर, क्रूरतर और क्रूरतम फिल्में दिखाकर उनका मस्तिष्क खास ढंग से

१२९

हिंदी डाइजेस्ट

तैयार किया जाता था। दूसरा चरण था—संभावित शत्रुओं को उनसे नीचा जताना। इस चरण तक आते-आते यह तय हो जाता था कि किस व्यक्ति को किस देश में काम करना है। तब उन्हें उन देशों के जन-जीवन का परिचय इस ढंग से दिया जाता, जिससे उन्हें यही एहसास हो कि उस देश के बाशिंदे हमसे बहुत घटिया और नीचे दर्जे के हैं। उन्हें अमरीका का शत्रु भी बताया जाता था। डा. नरत के अनुसार, कुछ ही सप्ताह में यह प्रशिक्षण पूरा हो जाता था।

इसके कुछ सप्ताह बाद जब 'संडे टाइम्स' के एक पत्रकार ने डा. नरत से संपर्क करने का यत्न किया, तो वे उसे कहीं नहीं मिले। फिर पेंटागन (अमरीकी सेना मुख्यालय) से यह खंडन जारी हुआ कि अमरीकी नौसेना ने कभी किसी को मनोवैज्ञानिक प्रशिक्षण या हत्या-प्रशिक्षण नहीं दिया। कुछ दिन बाद डा. नरत अचानक लंदन में प्रकट हुए और एक प्रेस-कान्फरेन्स में उन्होंने यह घोषणा की कि 'मैंने सारी बातें थ्योरी के स्तर पर कही थीं, व्यावहारिक स्तर पर नहीं।'

पर डा. नरत के प्रतिवाद के बावजूद 'हत्यारों के प्रशिक्षण' वाली बात लोगों के दिमाग से निकली नहीं। साथ ही यह भी सामने आ गया कि हत्या करने के अनिच्छुक व्यक्तियों को भी सम्मोहन द्वारा हत्याकार्य के लिए प्रेरित किया जा सकता है और उसके बाद सम्मोहन द्वारा ही उनके मस्तिष्क से अपराध की स्मृति को समाप्त कर दिया

नवनीत

जा सकता है।

केनेडी-बंधुओं और मार्टिन लूथर किंग की हत्याओं में प्राप्त प्रमाणों से जो लोच चौंक गये थे, उनमें वर्जीनिया पालिटिकल इंस्टिट्यूट के डा. जोसेफ बन्ड भी थे। उन्होंने यह पता लगाना चाहा कि सम्मोहन द्वारा किसी के मन में राजनैतिक पसंद-नापसंद पैदा की जा सकती है और क्या मनुष्य को सम्मोहन द्वारा इस तरह तैयार किया जा सकता है कि वह अपने अनजाने में ही हत्याकार्य इस तरह कर डाले कि वह उसका स्वैच्छिक काम प्रतीत हो? विशेषज्ञों ने बन्ड के इन प्रश्नों के उत्तर 'हां' में दिये थे। लेकिन उनके रिपोर्ट 'हत्या और सम्मोहन : राजनैतिक प्रभाव अथवा षड्यंत्र' (एसैसिनेशन एंड हिप्नॉसिस : पोलिटिकल इम्प्लुएन्स एंड कान्स्पिरेसी) कभी प्रकाशित नहीं हो पाया। शायद क्रिप्टोक्रेसी घबरा उठी थी।

लेकिन क्रिप्टोक्रेसी के सारे प्रयासों के बावजूद मस्तिष्क-नियंत्रण का रहस्य धीरे धीरे खुलने लगा। 'सम्मोहित हत्यारों' का अस्तित्व के प्रमाण सामने आने लगे। ही एक हत्यारे का समाचार फिलिपाइन्स अखबारों की सुर्खी बना था।

× × ×

२ मार्च १९६७ को लुइ एंजिल कासिना नाम के चौबीस वर्षीय युवक को मनीला (फिलिपाइन्स) में राष्ट्रपति मार्कोस की हत्या के षड्यंत्र के संदेह में गिरफ्तार किया गया। उसी के अनुरोध पर उसे

सीरम' का इंजेक्शन दिया गया, उस पर सम्मोहन-क्रिया का प्रयोग किया गया। तब कास्तिलो ने यह बताया कि चार वर्ष पूर्व हुई एक हत्या में उसका हाथ था। उसने बताया कि सम्मोहन द्वारा उसे इसके लिए तैयार किया गया था कि वह खुली कार में जा रहे एक व्यक्ति की हत्या कर दे। उसे यह तो पता नहीं था कि उसका यह भावी शिकार कौन है, पर उसके प्रस्तावित हमले का स्थान था डलास (टेक्सास, अमरीका) और तारीख थी २२ नवंबर १९६३।

उसने संवाददाताओं को बताया था— 'मैं नहीं जानता कि मैं डलास कैसे पहुंचा और कैसे वहां से बाहर निकला। मगर एक बात तय है कि मेरे पास बंदूक नहीं थी।'

जांच के दौरान कास्तिलो ने बताया कि डलास में एक औरत ने उसे प्रारंभिक निर्देश दिये थे। उसने यह भी बताया कि वह क्यूबा की नागरिक-सेना में था और तभी उसे गुप्तचरी के काम के प्रशिक्षण के लिए चुना गया था। प्रशिक्षण देने वालों में क्यूबा और अमरीका दोनों जगह के लोग थे।

तीन साल बाद कास्तिलो को सही लाइसेन्स आदि के बिना कार चलाने के अपराध में गिरफ्तार किया गया। उस वक्त उसके पास मिले कागजात के अनुसार उसका नाम एलोरियेगा था। उसे चार दिन की कैद की सजा मिली। न्यायाधीश ने लिखा था— 'मैंने उसे इसलिए सजा दी कि जब आदमी को अपना नाम तक याद करने में कठिनाई हो रही हो, तो निश्चित रूप से कुछ गड़बड़

होती है।'

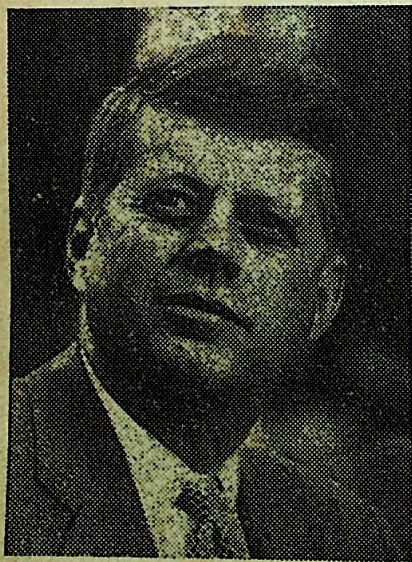
किसी को कास्तिलो की बातों पर विश्वास नहीं हो रहा था। मगर बाद में अमरीका के फेडरल व्यूरो आफ इन्वेस्टिगेशन (एफ. बी. आइ.) के सहयोग से हुई जांच में बहुत कुछ सामने आया। लेकिन फिलिपाइन्स के अधिकारियों को तब आश्चर्य हुआ, जब एफ. बी. आइ. ने पूछ-ताछ के दौरान कास्तिलो से हवाना से आठ मील दूर स्थित एक हवाई अड्डे के बारे में भी जानकारी मांगी। कास्तिलो और क्यूबा के आपसी संबंधों के बारे में एफ. बी. आइ. को कुछ भी बताया नहीं गया था।

सम्मोहन की सहायता से हो रही इस पूछताछ में एक बार कास्तिलो से साढ़े तीन घंटे तक सवाल-जबाब होते रहे। इस पूरी अवधि में उसके पेट में मरोड़ पड़ते रहे। कई बार तो वह पीडा से चिल्ला उठा था। पूछताछ के कई-कई दौर हो जाने के बाद सम्मोहनकर्ता ने यह पाया कि कास्तिलो को सम्मोहन के चार पृथक् स्तरों पर ले जाया जा सकता है। उसने इन चार स्थितियों को ज़ोम्बी-१, ज़ोम्बी-२, ज़ोम्बी-३ और ज़ोम्बी-४ की संज्ञा दी। (ज़ोम्बी का अर्थ है—जीवित शव।)

ज़ोम्बी-१ स्थिति में कास्तिलो यह मानता था कि वह एलोरियेगा है और इस स्थिति में उसने अमरीका-विरोधी जासूसी के किस्से सुनाये। ज़ोम्बी-२ स्थिति में वह कठिनाई में फंसा एक सी. आइ. ए. एजेंट बन गया। ज़ोम्बी-३ स्थिति में वह एक

ऐसे एजेंट के रूप में सामने आया, जिसका भेद खुल चुका था। इस स्तर पर उसने आत्महत्या करने की आवश्यकता महसूस की। जिस दिन उसे मारकोस की हत्या करनी थी, उस दिन कास्तिलो ने जेल में आत्महत्या की कोशिश की—इस कार्यक्रम का कच्चा चिट्ठा वह पिछली एक सुनवाई में खोल चुका था।

जोम्बी-४ की स्थिति में पता चला कि कास्तिलो का असली नाम मान्युएल आन्जेल रेमिरेज है। उसकी उम्र २९ वर्ष की है और वह ब्रोन्क्स, न्यूयार्क का निवासी है। इस स्थिति में उसे अपने बचपन की कोई याद नहीं थी। वस इतना-भर याद



राष्ट्रपति जान एफ. केनेडी

नवनीत

था कि शायद उसके पिता 'एजेंसी' (सी. आइ. ए.) में उच्च अधिकारी थे। रेमिरेज के रूप में कास्तिलो ने बताया कि उसका अधिकांश समय सी. आइ. ए. के विशेष मिशन और प्रशिक्षण में ही बीता। सारी बातचीत से पूर्व-निर्धारित कार्य करने वाले एक एजेंट की 'थीम' उभरकर सामने आयी। सम्मोहन के अधीन पूछताछ करने पर कास्तिलो एक ऐसे व्यक्ति के रूप में सामने आया, जिसके व्यक्तित्व को कई बार पूरी तरह मिटाकर नया रूप दिया गया था।

एक से पांच घंटे तक चलने वाली चालीस से अधिक सम्मोहन-बैठकों के बाद सम्मोहनकर्ता ने अपनी रिपोर्ट दी। उसके अनुसार, कास्तिलो न केवल राष्ट्रपति जान एफ. केनेडी की हत्या से संबंधित था, बल्कि वह एक ऐसा पूर्व-निर्धारित कार्यक्रम वाला (प्रीप्रोग्राम्ड) 'जोम्बी' था, जो सकंभ मिलते ही हत्या कर सकता था।

अपनी रिपोर्ट में सम्मोहनकर्ता ने बताया कि उसने इस रहस्य की गुत्थी को सुलझायी। कास्तिलो की गिरफ्तारी के समय तलाशी लेने पर उसकी घड़ी के पिछले हिस्से में सिगरेट की डिब्बी का एक टुकड़ा पाया गया था, जिस पर रोमन लिपि में xbgumidutxbx ये बारह अक्षर लिखे हुए थे। कास्तिलो ने बताया कि यह कागज और पैसे उसे लुई माशिसियो नामक व्यक्ति ने दिये थे, जो एक गेरिल्ला संघटन का सदस्य था।

कास्तिलो को सम्मोहन द्वारा बेहोश

जनता

करके वे अक्षर बोले गये। उस पर इसकी कोई प्रतिक्रिया नहीं हुई। फिर सम्मोहनकर्ता ने उन अक्षरों को बीच-बीच में व्यवधान देकर पढ़ा। उसने पाया कि जब वह तीसरे अक्षर 'जी' और चौथे अक्षर 'यू' के बीच रुकता था तो कास्तिलो कहता था—'मुझे स्वयं ही हत्या करनी है।'

सम्मोहनकर्ता के 'जी' कहने पर कास्तिलो तत्काल बोला 'माशिसियो'; 'बी जी यू' कहने पर 'मुझे स्वयं,' और 'एम आइ' कहने पर 'हत्या करनी है'।

इसी तरह सम्मोहन की स्थिति में जब-जब उसे 'लुई कास्तिलो' कहकर पुकारा गया, एक दर्दनाक दृश्य सामने आया। कास्तिलो पिस्तौल अपनी कनपटी पर रखकर घोड़ा दवा देता था। जब-जब सम्मोहनकर्ता ने '१२ जून १९६७, बारह बजे', '२२ जून १९६७', '४ जुलाई १९६७' या '१ जनवरी १९६८' कहा, कास्तिलो ने पिस्तौल से निशाना साधकर घोड़ा दबा दिया।

सम्मोहन की अवस्था में कास्तिलो ने एक और रहस्य भी खोला। उसने बताया कि हत्या 'दोपहर से पहले' हुई थी। उसे याद आता था कि वह एक लंबे आदमी के साथ था, जिसका वजन लगभग १९० पाँड था, जिसकी नाक बाज जैसी थी, बाल काले थे और मुँह लंबोतरा था। उसका अंग्रेजी उच्चारण विदेशी का-सा था, पर किस देश के आदमी का-सा, यह कास्तिलो नहीं बता पाया। उसने बताया कि वह उस



हत्या का अभियुक्त—ली हार्वे ओस्वाल्ड

व्यक्ति से तीन-चार अन्य व्यक्तियों के साथ एक हवाई अड्डे पर मिला था। बकौल कास्तिलो, उन व्यक्तियों में अमरीकी और विदेशी दोनों थे। इनमें से एक स्पेनी था। फिर वे सब एक काली कार में बैठकर एक इमारत तक गये थे।

कास्तिलो ने बताया कि उस इमारत पर पहुंचकर वे लोग तीसरी मंजिल के एक कमरे में गये। कुछ अनिश्चितता के साथ उसने बताया कि वह कमरा भूरे रंग का था। उसमें पैकिंग के डिब्बे, एक छोटी मेज और एक टाइप-मशीन थी और सड़क की ओर दो खिड़कियां थीं, जिनके कांच के पल्ले ऊपर चढ़ाये जा सकते थे।

पहले व्यक्ति ने जिप और ताले वाला एक काला सूटकेस खोलकर एक राइफल के

खंडों को निकाला और जोड़ा। टेलिस्कोप को ५०० गज पर 'सेट' करके उसने वह राइफल कास्तिलो को दे दी। उससे कहा गया कि उसे जुलूस के मध्य में जा रही एक खुली कार की पिछली सीट पर बैठे व्यक्ति को गोली मारनी है। उसे यह भी बताया गया कि वह व्यक्ति एक महिला या दूसरे पुरुष के साथ बैठा होगा। सड़क के दूसरी ओर सामने के मकान से दर्पण हिलाकर दो बार रोशनी फेंककर बताया जायेगा कि उसे कब गोली चलानी है। यह संकेत होने के फौरन बाद जो कार आये, उस पर उसे फायर करना होगा। परंतु पूछताछ करने पर कास्तिलो यह नहीं बता पाया कि खुली कार में बैठा हुआ वह व्यक्ति कौन था।

ये सब निर्देश कास्तिलो को देकर वह व्यक्ति नीचे चला गया था। बाद में वह दौड़ता हुआ कमरे में आया और उसने बताया—'उसके गोली लग गयी। अब यहां से निकल चलें।' फिर उसने कास्तिलो के हाथ से राइफल छीनकर खोल डाली और उसके खंड और टेलिस्कोप काले सूटकेस में भर लिये।

अब कास्तिलो और वह आदमी दौड़कर नीचे आये और अन्य दो व्यक्तियों के साथ कार में बैठकर वहां से खाना हों गये। पहले ही मोड़ पर उन्होंने एक गंजे आदमी को कार में बैठाया। फिर दो-चार ब्लाक बाद एक और व्यक्ति को। कास्तिलो का कहना था कि वह कार की पिछली सीट पर इन दो व्यक्तियों के बीच बैठा था। कुछ

दूर जाने पर जब कास्तिलो इधर-उधर देख रहा था, उस दूसरे व्यक्ति ने उसे एक इन्वेंक्शन लगा दिया। उसे तत्काल नींद आ गयी। जब वह उठा, तो शिकागो के एक होटल के एक कमरे में था। उसके साथ वह सम्मोहन करने वाली महिला थी, जिसे कास्तिलो कभी 'अच्छी' बताता था और कभी उससे 'घृणा करने' की बात कहता था। (जांच-रिपोर्ट के अनुसार, कास्तिलो की चेष्टाओं और चेतना पर इस महिला का पूर्ण नियंत्रण था।)

कास्तिलो ने बताया कि उस महिला के साथ एक नीली कार में बैठकर वह मिलावाकी गया था। रास्ते में ही कार के रैडियो पर उन्होंने राष्ट्रपति केनेडी की हत्या का समाचार सुना था।

सम्मोहनकर्ता की अंतिम रिपोर्ट प्रस्तुत किये जाने के कुछ दिन बाद ही कास्तिलो को फिलिपाइन्स के नेशनल ब्यूरो ऑफ इन्वेस्टिगेशन की जेल से रिहा कर दिया गया और वह किसी अज्ञात स्थान पर चला गया। बाद में पता चला कि १९६७ में उसे बफरीका भेज दिया गया था और एफ. बी. आई ने उससे पूछताछ की थी। एफ. बी. आई के प्रवक्ता के अनुसार, 'हमने कास्तिलो की बातचीत की थी और उसने हमें बताया कि केनेडी की हत्या के बारे में सारा किस्सा उसने मनीला में गढ़ा था।'

सरकारी कागजात के अनुसार कास्तिलो को जून १९७१ में एक डाके के अपराध में छह वर्ष की सजा दी गयी और ३७ वर्ष

की सजा भुगतने के बाद रिहा कर दिया गया। रिहाई के शीघ्र बाद वह अपनी मां से मिला था। यही उसका अंतिम ज्ञात संपर्क है। फिर वह न जाने कहां खो गया!

यदि एफ. बी. आइ. के प्रवक्ता के इस दावे को सही मान लिया जाये कि कास्तिलो ने 'मनीला में किस्सा गढ़ा था' तो मानना पड़ेगा कि उसकी स्मरण-शक्ति अद्भुत थी और सोडियम एमाइटल और अलकोहल को सहने की गजब की क्षमता उसमें रही होगी। परंतु उसकी मनोवैज्ञानिक रूपरेखा और उसका जीवन दोनों इस बात को झुठलाते हैं कि उसमें ये योग्यताएं थीं।

× × ×

लुई कास्तिलो को जब 'कार्यक्रम के लिए तैयार' किया गया था, तब मस्तिष्क-नियंत्रण से संबंधित एजेंसियां सक्रिय थीं। और ये एजेंसियां उस वक्त भी सक्रिय थीं, जब जान केनेडी, मार्टिन लूथर किंग और राबर्ट केनेडी की हत्याएं हुईं।

जनता को बार-बार यह बताया और विश्वास दिलाया गया है कि इन तीनों नेताओं की हत्या तीन परस्पर असंबद्ध हत्यारों ने अपने निजी निर्णय से की। मगर ८० प्रतिशत अमरीकी जनता का विश्वास है कि इन हत्याओं के पीछे कोई षड्यंत्र था।

तीनों मामलों में हत्या का साधन एक ही था—गोली। तीनों मामलों में परिस्थिति एक-सी थी—हत्या अनेक लोगों की आंखों के सामने सार्वजनिक जगह पर हुई थी। तीनों हत्यारे डायरियों आदि के रूप में इस

बात के सबूत छोड़ गये थे कि हत्या उन्होंने की है। और तीनों हत्यारों का जीवन बताता है कि उनका मन-मस्तिष्क संतुलित नहीं था। और प्रमाण इस बात का भी पता देते हैं कि उन तीनों को कभी न कभी सम्मोहित किया गया था।

परंतु पता नहीं क्यों, जांच करने वालों को इन सब समानताओं में कोई आपसी संबंध नजर नहीं आया! कोई भी अच्छा जासूस बता सकता है कि तीनों मामलों में तरीके की समानता इस बात का संकेत है कि किसी सुक्स टोली ने भुलावे के लिए यह जाल फैलाया है।

के. जी.बी. और सी. आइ. ए. दोनों के पेशेवर जासूसों को इस बात का प्रशिक्षण दिया जाता है कि अपना भंडा फूट जाने के बावजूद वे भुलावे के जाल पर अड़े रहें और यदि आवश्यकता पड़े तो मर जायें, मगर ओंठ न खोलें।

किसी भी अपराध की छानबीन का आधार दो बातें होती हैं—१. अपराध का तरीका और २. हत्या का उद्देश्य। ये हत्याएं 'एकाकी पागलों' ने की थीं, इस मान्यता के हिमायतियों का कहना है कि इन तीनों ही हत्याओं का कोई राजनैतिक उद्देश्य बता पाना कठिन है। मगर हाल के इतिहास का कोई भी विद्यार्थी जानता है कि इन तीनों हत्याओं से घोर दक्षिण-पंथियों को राजनैतिक लाभ पहुंचा है। केनेडी-बंधु और किंग तीनों ही स्वतंत्र विचारक थे, जिन्हें खरीदा नहीं जा सकता था।

नागरिक अधिकारों को व्यापकतर बनाने के लिए वे तीनों जिस तरह प्रयास कर रहे थे, उसे दक्षिणपंथी लोग 'कम्युनिस्ट' तरीके मानते थे।

यह एक खुला सत्य है कि एफ. बी. आइ. के अध्यक्ष हूवर को मार्टिन लूथर किंग से चिढ़ थी और केनेडी-बंघु सी. आइ. ए. और एफ. बी. आइ. दोनों की कार्यविधियों से संतुष्ट नहीं थे। राष्ट्रपति केनेडी ने गुप्त-चर-सेवा के अनेक अधिकारियों को हटाया था और जब उनकी हत्या हुई, उस समय वे अमरीका की समूची गुप्तचर-व्यवस्था के पुनर्गठन के बारे में विचार कर रहे थे। एटार्नी जनरल के रूप में राबर्ट केनेडी संघटित अपराधों के विरुद्ध अभियान चलाये हुए थे।

इन तीनों हत्याओं का सीधा लाभ घोर दक्षिणपंथियों को मिला—नागरिक अधिकारों का आंदोलन दब-सा गया, वियतनाम का संघर्ष तीव्र हुआ और क्रिस्टोक्रेसी के भ्रष्ट नेता सत्ता में बने रह सके।

राष्ट्रपति केनेडी की हत्या के बाद बैठायें गये वारेन जांच-आयोग की रिपोर्ट के अनुसार, राष्ट्रपति की हत्या ली हार्वे ओस्वाल्ड ने अकेले ही की थी। आश्चर्य ही है कि जैक रुबी द्वारा ओस्वाल्ड के कत्ल किये जाने और इसकी जानकारी मिलने के बाद भी कि जैक रुबी का संबंध संघटित अपराध और कास्त्रो-विरोधी आंदोलन से था, वारेन-आयोग को षड्यंत्र का कोई प्रमाण या संकेत नहीं मिला!

नवनीत

गवाहों ने ओस्वाल्ड के इतने परस्पर-विरोधी वर्णन किये थे कि हत्या की स्वतंत्र रूप से जांच करने वाले लोगों ने यही निष्कर्ष निकाला कि कम से कम दो ओस्वाल्ड रहे होंगे—एक 'असली' और दूसरा उसका कोई गुप्तचर प्रतिरूप। लेकिन यदि इस ढर्रे पर सोचा जाये कि लुई कास्तिगो की तरह ओस्वाल्ड के व्यक्तित्व को भी विभिन्न व्यक्तियों में विभाजित करके नियंत्रित किया गया था, तो हत्यारे-संबंधी परस्पर-विरोधी वर्णनों का सच होना समझ में आ सकता है। संभव है, किसी ज़ोम्बी-अवस्था में वह बहुत अच्छा निशानेबाज हो और दूसरी ज़ोम्बी-अवस्था में उसे निशाना साधना भी न आता हो। फिर, यदि किसी को सम्मोहन से इस प्रकार 'तैयार' (श्री-ग्राम्ब) किया जाये कि उसे हत्या से संबंधित होने की कोई बात याद ही न रहे, तो सच-झूठ का पता लगाने वाले आधुनिकतम यंत्र भी उसे निर्दोष ही बतायेंगे, क्योंकि वह अपने को निर्दोष मान रहा होगा।

जो प्रमाण जांच-आयोग से छिपाये गये, उनमें एक यह भी था कि सी. आइ. ए. के अधिकारियों ने १९६० वाले दशक के आरंभ में गुप्तचरी के उद्देश्य से ओस्वाल्ड से बात की थी। सी. आइ. ए. का इनसे संबंधित दस्तावेज १९७६ के 'फ्रीडम ऑफ इन्फॉर्मेशन एक्ट' के तहत अब सामने आया है। इस दस्तावेज से यह भी स्पष्ट होता है कि किस तरह एलेन डलस ने सी. आइ. ए. को यह पट्टी पढ़ायी थी कि ओस्वाल्ड ने

१३६

जनवरी

उसका किसी भी प्रकार का संबंध था, इस बात से उसे सरासर इन्कार करना चाहिये। बाद में यह बात सामने आयी कि सी. आइ. ए. की 'फाइल २०१' ओस्वाल्ड पर है।

एक और बात की वारेन-आयोग ने उपेक्षा कर दी। वह यह है कि क्रिप्टोक्रेसी ने फीदेल कास्त्रो की हत्या कराने के कई असफल प्रयास किये थे। सी. आइ. ए. की ओर से जांच-आयोग को सब जानकारीयां दे रहे रिचर्ड हेल्म्स ने आयोग का ध्यान इस ओर नहीं खींचा; क्योंकि तब यह पता चल जाता न कि क्रिप्टोक्रेसी को हत्या की योजना बनाने का व्यावहारिक अनुभव है।

इस सबके बावजूद यह अफवाह फैलती ही गयी कि सी. आइ. ए. के निर्देश पर ओस्वाल्ड ने रूस में जाकर शरण ली थी। कुछ लोग यह भी मानते हैं कि रूस के बुफिया संघटन के जी. बी. पर ओस्वाल्ड का भेद खुल गया था और बाद में उसने उसे 'मंचूरियन कैडिडेट' की तरह ही एक कार्य-विशेष के लिए 'तैयार' (प्रोग्राम्ड) करके अमरीका वापस भेजा था।

इन अफवाहों के आधार पर वारेन-आयोग के वकील ने सी. आइ. ए. के निदेशक हेल्म्स को एक पत्र लिखकर रूस की 'ब्रेन वाशिंग' क्षमताओं के बारे में जानकारी मांगी थी।

उत्तर में हेल्म्स ने 'ब्रेन वाशिंग' के लिए रूस द्वारा अपनाये जाने वाले तरीके तो बताये ही, साथ ही यह दावा भी किया कि 'मादक द्रव्यों के बारे में रूस में व्यापक

अनुसंधान भी हुआ है, मगर वह पश्चिमी अनुसंधान से लगातार पांच साल पिछड़ा रहा है।' फिर हेल्म्स ने एक ऐसी बात लिख दी, जिससे क्रिप्टोक्रेसी की अपनी अकांक्षाओं का उद्घाटन होता था। हेल्म्स ने लिखा था— 'इस बात का कोई प्रमाण नहीं है कि रूस के पास कोई ऐसी तकनीक या एजेंट है, जो विशेष प्रकार का व्यवहार उत्पन्न कर सके और जो पश्चिम के पास नहीं है।'

केनेडी-हत्याकांड पर से परदा उठाने के लिए स्वतंत्र रूप से प्रयत्नशील जिम गैरिसन ने डेविड विलियम फेरी नामक एक व्यक्ति का पता चलाया था। जो सम्मोहनकर्ता भी था और सी. आइ. ए. का एजेंट भी। १९५० वाले दशक में फेरी न्यू ओर्लिन्स के सिविल एयर पेट्रोल ग्रुप में ओस्वाल्ड के साथ था। एक गवाह ने बताया था कि ओस्वाल्ड को निशानेबाजी का प्रशिक्षण फेरी ने ही दिया था। फेरी के घर की तलाशी में पुलिस को कई हथियार, मादक द्रव्य और तीन कोरे अमरीकी पास-पोर्ट मिले थे। साथ ही सम्मोहन-विद्या से संबंधित किताबों की एक अच्छी-खासी लाइब्रेरी भी मिली थी।

एक गवाह पैरी रेमंड रूसो ने न्यू ओर्लिन्स में एक ग्रैंड ज्यूरी को बताया कि वह १९६३ में एक दिन फेरी, लियोन ओस्वाल्ड नामक व्यक्ति और एक अन्य व्यक्ति क्लेम बर्ट्रेड के साथ फेरी के मकान में था और तब ये तीनों व्यक्ति एक ऐसी हत्या के प्रयास के बारे में बातचीत कर रहे थे,

जिसमें ध्यान बंटाने के तरीके काम में लाये जाने वाले थे। फेरी को उद्धृत करते हुए रूसो ने कहा था—'इसमें कम से कम तीन व्यक्ति जरूरी हैं। दो ध्यान बंटाने के लिए गोली चलायेंगे और तीसरा..... असली निशाना साधेगा।' फेरी ने यह भी कहा था कि इन तीन में से एक 'बलि का बकरा' होगा, और वह शेष दो को भागने का समय देगा।

..... और २३ फरवरी १९६७ को लुई कास्तिलो की गिरफ्तारी के कुछ ही दिन पूर्व डेविड फेरी अपने घर में मृत पाया गया। आत्महत्या-संबंधी एक नोट भी घर में मिला, परंतु शव-परीक्षा में पाया गया कि उसकी मृत्यु मस्तिष्क की एक नस फट जाने



डा. माटिन लूथर किंग
नवनीत

के कारण हुई थी। विशेषज्ञ इस निष्कर्ष पर पहुंचे थे कि यह नस पीठ-पीछे से किसी कराते-विशेषज्ञ द्वारा सिर पर वार किए जाने से फटी हो सकती है।

यानी डेविड फेरी ऐसा व्यक्ति था कि राष्ट्रपति की हत्या के बाद उससे पूछताछ की जाये। पर इस बात का कोई प्रमाण नहीं है कि एफ. बी. आइ. ने फेरी से कोई पूछताछ की। आखिर क्यों ?

जैक रबी एक और व्यक्ति था, जिसे केनेडी-हत्याकांड के संबंध में डलास जेल में रखा गया था। अर्ल वारेन और जेराल्ड फोर्ड ने उससे जेल में ही पूछताछ की थी और वह उस सारी बातचीत के दौरान कहता रहा था कि मुझे वाशिंगटन ले जाया जाये, मैं राष्ट्रपति को एक रहस्य बतला चाहता हूं और यह रहस्य मेरे मरने पर रहस्य ही बना रहेगा। उसने यह भी कहा था कि 'अंततः एक बिलकुल नयी तरह की सरकार हमारे देश को हथिया लेगी।'

डलास जेल में रबी से भेंट करने वाली एकमात्र प्रमुख पत्रकार डोरोथी किलगैलन ने अपने कुछ दोस्तों को बताया था कि रबी ने उसे ऐसी बातें बतायी हैं, जिनसे केनेडी-कांड का पासा ही पलट जायेगा..... और कुछ ही दिन बाद डोरोथी किलगैलन मृत पायी गयी। उसके मकान की बुरी तरह तलाशी ली गयी लगती थी और रबी के साथ उसकी बातचीत के सारे नोट्स गायब थे।

सन १९६७ के प्रारंभ में रबी ने शिका

जनवरी

यत की कि मुझे जहर दिया जा रहा है। डाक्टरों ने कहा उसे कैंसर है। परंतु कुछ दिन बाद वह कैंसर से नहीं, बल्कि मस्तिष्क की नस फटने से मरा, जैसे कि डेविड फेरी मरा था।

रुबी जो बात वारेन-आयोग को बताना चाहता था, उसकी पुष्टि मृत्युशय्या पर किये गये एक और इकवाल से भी होती है। प्रो. मोरेनशिल्ड जासूस रह चुका था और ओस्वाल्ड का मित्र था। पेट्रोलियम-संबंधी भूगर्भशास्त्र में डाक्टरेट प्राप्त इस प्रोफेसर का एक दक्षिणपंथी पेट्रोल-कुवेर एच: एल. हंट से गहरा परिचय था और १९७६ में एफ. बी. आइ. ने यह रहस्य खोला था कि ली हार्वे ओस्वाल्ड भी हंट और मोरेनशिल्ड से अच्छी तरह परिचित था।

वारेन-आयोग ने तो अपनी रिपोर्ट में यही कहा है कि इसका कोई प्रमाण नहीं मिला है कि मोरेनशिल्ड का अतिवादी-संघटनों से संबंध था। लेकिन बाद में यह स्पष्ट हो गया कि मोरेनशिल्ड बरसों से विभिन्न गुप्त कारवाइयों से संबंधित था। १९७७ में हत्याओं की जांच करने वाली अमरीकी लोकसभा (हाउस आफ रिप्रेजेन्टेटिव्स) की हाउस सलेक्ट कमेटी के समक्ष बयान देते हुए विलेम ओल्टमान्स ने बताया कि केनेडी-हत्याकांड की कुंजी मोरेनशिल्ड के हाथ में थी और उसने स्वयं स्वीकार किया था कि उसे हत्या के षड्यंत्र का पहले से ज्ञान था।

कमेटी के एक प्रवक्ता ने कहा था कि यदि ओल्टमान्स के दावे में कुछ सचाई

पायी गयी, तो मोरेनशिल्ड की तलाश की जायेगी। एक सप्ताह बाद उसे पाम बीच (फ्लोरिडा) में खोज भी लिया गया। परंतु उससे पूछताछ नहीं हो सकी। वह मृत पाया गया। उसके सिर में एक गोली लगी थी। स्थानीय अधिकारियों ने इसे आत्म-हत्या का मामला बताया था।

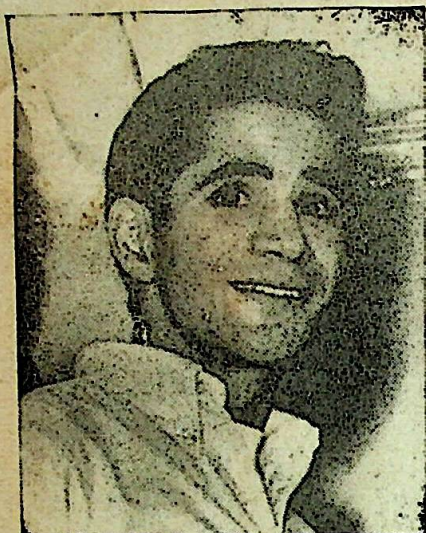
मोरेनशिल्ड की बेटी एलेग्ज़ांड्रा को विश्वास है कि टेलिफोन पर कोई सम्मोहन-संकेत सुनने के बाद ही उसके पिता ने आत्म-हत्या की थी।

मोरेनशिल्ड के जीवन के आखिरी दिन



वंडित 'हत्यारा' जेम्स अर्ल रे

हिंदी डाइजेस्ट



‘कातिल’ सिरहन-सिरहन

मस्तिष्क-नियंत्रण के शिकारों के आखिरी दिनों से आश्चर्यजनक रूप में मेल खाते हैं। कहीं ऐसा तो नहीं कि जब मादक दवाएं और ‘इलेक्ट्रिक शॉक’ स्मृति को मिटाने में विफल रही, तो अंतिम हल अपनाया गया ? अथवा क्या उसे आत्महत्या करने के लिए ‘तैयार’ (प्रोग्राम्ड) किया गया था ?

× × ×

मार्टिन लूथर किंग की हत्या का मामला भी कुछ ऐसा ही है। एफ. बी. आइ. के ६,००० एजेंटों में से आधों को किंग के हत्यारे की खोज में लगाया गया था। हत्यारा बहुत-से निशान छोड़ गया था और एफ. बी. आइ. को यह पता लगाने देर नहीं लगी कि राइफल पर बने उंगलियों के निशान एरिक एस. गाल्ट नामक व्यक्ति के हैं,

नबनीत

जिसका असली नाम जेम्स अर्ल रे है।

रावर्ट केनेडी की हत्या के एक दिन बाद इस व्यक्ति को लंदन में किसी कनाडावासी का पासपोर्ट दिखाकर ब्रिटेन से बाहर जाने की कोशिश करते हुए पकड़ा गया था। और विश्व-इतिहास की इस ‘सबसे मुकम्मिल खोज’ के बाद १० मार्च १९६९ को इतिहास का सबसे अल्पकालीन मुकद्दमा चला। उसमें रे के वकील ने न्यायालय से सौदा पटा लिया कि रे अपराध कबूल करेगा, बशर्ते न्यायालय उसे मृत्युदंड के बजाय ९९ वर्ष की कैद की सजा दे। तीस घंटे में सारी सुनवाई पूरी हो गयी और खोले की छुट्टी के बाद न्यायालय ने ९९ वर्ष की सजा सुना दी।

परंतु जेल में पहुंचते ही रे ने यह कहना शुरू कर दिया कि मेरे साथ अन्याय हुआ है। उसने अपने वकीलों को बर्खास्त कर दिया। उसका कहना था कि उसे ऐसे अपराध में फंसा दिया गया है, जो उसने किया नहीं है। नयी सुनवाई हुई, उसमें उसे न्यायालय में शपथ लेकर कहा—‘मैंने हकिंग पर गोली नहीं चलायी थी; मगर मैं कह सकता हूँ कि अपने अनजाने में मैं आँकड़ों के रूप से उत्तरदायी रहा हूँ।’

यदि जेम्स अर्ल रे ने डा. किंग की हत्या की थी, तो क्यों की थी ? इसके उत्तर के सिर्फ एक चश्मदीद गवाह का बयान है जिसने यह कहा था कि मैंने लास एंजेलिस के एक शराबखाने में रे को अश्वेतों के विरुद्ध घृणा व्यक्त करते हुए सुना था।

जनक

परंतु रे को सजा सुनाने के कुछ ही दिन बाद ऐसे प्रमाण मिले थे, जो बताते हैं कि यह अधिक संभव है, रे के वजाय एफ. बी. आइ. ने किंग की हत्या की हो। १९७५ में गुप्तचरी से संबंधित सेनेट कमेटी ने यह रहस्योद्घाटन किया है कि १९६४ में एफ. बी. आइ. ने मार्टिन लूथर किंग को एक गुमनाम पत्र के साथ एक टेप भेजा था। इस टेप के जरिये उसने किंग को 'ब्लैकमेल' करने की कोशिश की थी। डा. किंग का खयाल था कि यह टेप भेजने का उद्देश्य यह था कि इसे सुनकर वे आत्महत्या कर लें।

टेप में डा. किंग और एक युवती के कथित यौनसंबंधों का 'प्रमाण' था और उसके साथ भेजे गये पत्र में कहा गया था—'किंग, अब तुम्हारे लिए एक ही रास्ता बचा है, और तुम जानते हो वह क्या है। फैसला करने के लिए तुम्हारे पास सिर्फ ३४ दिन हैं।' यह उल्लेखनीय है कि उस पत्र के आने के ठीक ३४ दिन बाद मार्टिन लूथर किंग को ओस्लो में विश्वशांति का नोबेल पुरस्कार लेना था।

सेनेट कमेटी ने यह रहस्योद्घाटन भी किया है कि डा. किंग की हत्या से छह वर्ष पूर्व से ही एफ. बी. आइ. उनके टेलिफोन 'टैप' कर रही थी और आठ बार डा. किंग के कमरों में गैरकानूनी रूप से यंत्र लगाये गये थे, ताकि वहां होने वाली बात-चीत सुनी जा सके। उद्देश्य था डा. किंग को ब्लैकमेल करने का कोई मसाला खोजना।

सेनेट द्वारा ये सब तथ्य प्रकाश में लाये जाने के बाद श्रीमती किंग ने ऐसी बात कही,



सेनेटर राबर्ट केनेडी

जिसे कहते थे तब तक डरती रही थी; उन्होंने कहा कि उन्हें विश्वास है, किंग की हत्या किसी सरकारी षड्यंत्र में हुई है।

इसके बाद एफ. बी. आइ. के गुप्त कागजात से यह भी पता चला कि जिस राइफल पर रे की उंगलियों की छाप मिली, वह सचमुच चलायी गयी थी इस बात का कोई सबूत एफ. बी. आइ. न राइफल पर पा सकी थी, न तीसरी मंजिल के उस कमरे में। डा. किंग के शरीर में घंसी गोलियों का उस राइफल से संबंध भी सिद्ध नहीं किया गया। इससे यह संकेत मिलता है कि राइफल पर रे की उंगलियों की छाप चाहे किसी प्रकार भी दर्ज की गयी हो, वह राइफल रे को फंसाने और असली हत्यारे को भागने देने के लिए वहां रखी गयी थी।

ओह माँ... !
मैं स्टेज पर कैसे जाऊँ!
सर फटा जा रहा है।

मेरी मानो तो
एनासिन ले लो।

जल्द आराम पाने के लिए तेज़ असर और विश्वसनीय एनासिन लीजिए

तेज़ असर-एनासिन में वह दर्द-निवारक दवा ज्यादा है, जिस की दुनिया-भर के डॉक्टर सिफ़ारिश करते हैं। इसी लिए एनासिन दर्द से जल्द आराम दिलाती है।

विश्वसनीय-एनासिन आपके डॉक्टर की दवाई की तरह दवाओं का नपा-तुल्य सम्मिश्रण है। इसी लिए एनासिन पर लाखों लोगों को पूरा भरोसा है।

एनासिन बदन के दर्द, दाँत के दर्द, सर्दी-जुकाम और फ़्लू की पीड़ा से भी जल्द आराम दिलाती है।



®Regd. TM

भारत की सब से लोकप्रिय दर्द-निवारक दवा
जेफ़ी मॅनर्स के एनासिन विभाग की ओर से

A 23-777

नवनीत

१४२

जनवरी

वाद में 'न्यूज डे' नामक एक पत्र ने यह कापीराइट समाचार छापा कि किंग के अंगरक्षक के रूप में सरकार द्वारा नियुक्त एक अश्वेत खुफिया एड. रेडिट को मेम्फिस के एक उच्च अधिकारी ने ड्यूटी पर से हटा दिया था और जब किंग की हत्या हुई, तब किंग की रक्षा का भार जिन व्यक्तियों के सुपुर्द था, वे सब किंग-विरोधी आंदोलन में भाग ले चुके थे।

किंग की हत्या के एक वर्ष पूर्व की जेम्स अर्ल रे की गतिविधियों से यह संकेत मिलता है कि ओस्वाल्ड की तरह ही वह भी एक 'पेंटसी' था। इस दौरान वह मेक्सिको, न्यू ऑर्लियन्स और लास एंजेलस गया था। ओस्वाल्ड की गतिविधियों से भी इन जगहों का गहरा रिश्ता रहा था।

सम्मोहन-विद्या से भी रे का नाता था। लंदन में जब उसे गिरफ्तार किया गया, तो उसके पास इस विषय की तीन पुस्तकें पायी गयी थीं और रे ने स्वयं भी कहा था—'लास एंजेलस में मैंने सम्मोहन का कोर्स किया था।' जिस डाक्टर ने रे को यह कोर्स दिया था, उसका कहना है कि रे एक बहुत ही 'सरल' केस था। सम्मोहन की भाषा में 'सरल' उसे कहते हैं, जो डाक्टर या सम्मोहनकर्ता के साथ सहयोग करे। संभव है, डाक्टर को रे इसलिए 'सरल' लगा हो कि पहले उसे सम्मोहित किया जा चुका था।

× × ×

.... और राबर्ट केनेडी का 'हत्यारा' सिरहन ?

सिरहन को रंगे हाथों पकड़ा गया था। उसके घर एक डायरी भी मिली थी, जिसमें उसने लिखा था—'राबर्ट केनेडी को मार दिया जाना चाहिये।'।

मगर सिरहन का व्यवहार अस्वाभाविक था। उसकी मानसिक जांच भी करायी गयी। पर सुनवाई के दौरान न्यायाधीश ने 'दृश्य सीरम' का उपयोग कराने से इन्कार कर दिया और रे की तरह ही उसे भी चटपट सजा सुना दी गयी।

सन १९७३ में सान क्वेंटिन जेल के मन-श्चिकित्सक डा. एडवर्ड सिम्सन ने राबर्ट केनेडी के मामले की फिर से सुनवाई का आग्रह किया। उन्होंने कहा—'सिरहन के मामले की सुनवाई इस शताब्दी की सबसे बड़ी मनश्चिकित्साशास्त्रीय भूल मानी जायेगी।'।

जब १९७५ में राबर्ट केनेडी की हत्या के मामले पर फिर से संक्षिप्त विचार हुआ, तो यह पता चला कि छत की खपरैलों के टुकड़े और गोलियों के अंश जैसे महत्त्वपूर्ण साक्ष्य खो दिये गये और ओस्वाल्ड के मामले की तरह ही महत्त्वपूर्ण गवाहों के बयानों की अवहेलना की गयी। (डा. सिम्सन के बयान में इस संभावना की ओर संकेत किया गया था कि सिरहन सम्मोहन द्वारा हत्या के लिए तैयार किया गया हिप्नो-प्रोग्रैम्ड हत्यारा हो सकता है।)

तभी अमरीता एक ऊंचे भूतपूर्व खुफिया-अफसर चार्ल्स मैक्विस्टन ने सान क्वेंटिन के मनश्चिकित्सकों के साथ मिलकर

सिरहन के बयानों का विश्लेषण किया था। मैक्विस्टन का कहना है—‘बयानों की टेपों की जांच और विश्लेषण करने के बाद हम इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि सिरहन को यह पता नहीं था कि वह क्या कर रहा है। जब उसने गोली चलायी, तो वह सम्मोहन की अवस्था में था। निश्चित रूप से इस हत्या के साथ कोई और भी जुड़ा था और सिरहन को सम्मोहन द्वारा (रावर्ट) केनेडी की हत्या के लिए तैयार किया गया था। यह एक जीवंत “मंचूरियन कैडिडेट” है।’

डा. डाइमंड ने भी अपने निष्कर्ष में लिखा था कि सिरहन को सम्मोहन का पूर्वा-नुभव था। सम्मोहन की अवस्था में सिरहन

बोलने में हिचकिचाता तो था, पर लिख आसानी से सकता था। उसकी डायरी का एक पृष्ठ दिखाकर डा. डाइमंड ने पूछा था: ‘क्या यह पागलपन है?’

‘हां, हां, हां।’ सिरहन ने लिखकर जवाब दिया।

‘क्या तुम पागल हो?’

‘नहीं, नहीं।’ सिरहन ने लिखा।

‘तुम पागलों—जैसी बातें क्यों लिख रहे हो?’

‘अभ्यास, अभ्यास, अभ्यास।’

‘किसका अभ्यास?’

‘मस्तिष्क-नियंत्रण, मस्तिष्क-नियंत्रण, मस्तिष्क-नियंत्रण।’ सिरहन ने लिखा था।



हिंदीसेवा का सही रूप देखने का अवसर मुझे प्रयाग के पिछले कुंभ मेले में मिला। मैं अमेरिकन ब्राडकास्टिंग कॉर्पोरेशन में अनुवादक का कार्य कर रहा था और बयोब साहित्यकार पं. श्रीनारायण चतुर्वेदी के यहां ठहरा था।

रोज शाम को मैं मेले की दिन-भर की घटनाएं पंडितजी को सुनाया करता था। एक दिन मैंने मेले के समाचार सुनाने के साथ ही मेले का एक नक्शा भी उन्हें दिया, जिसे मेले का संपूर्ण विवरण सिर्फ अंग्रेजी में था। उन्होंने मुझसे उसकी हिंदी प्रति मांगी। मैं बतایा कि हिंदी का नक्शा तो मुझे दिया नहीं गया है।

अगले ही दिन हिंदी नक्शे के लिए उन्होंने मेला-अधिकारी के पास मेरे हाथों पर भेजा। मैं भी देख रहा था कि हिंदी में नक्शों के न होने से लाखों तीर्थयात्रियों को मीलों चक्कर लगाना पड़ता है, तब जाकर कहीं वे गंतव्य स्थान पर पहुंच पाते हैं। शाम को मैं उनके पत्र का उत्तर उन्हें दिया, जिसमें मेला-अधिकारी ने लिखा था कि हिंदी में नक्शा छपा ही नहीं है। यह उत्तर पढ़कर पंडितजी काफी नाराज हुए और तत्काल उन्होंने उसकी शिकायत सरकार को भेज दी। परिणामतः कुछ ही दिनों के भीतर हिंदी में नक्शा छपकर आ गया और मेले में आयी जनता उससे लाभान्वित हुई।

बाद में मेला-अधिकारी ने व्यक्तिगत रूप से पंडितजी से क्षमा मांगी और सुझाव के लिए उन्हें धन्यवाद दिया।

—अशोक तोषा



[पृष्ठ ५१ का शेष]

के रूप में पहचाना। उसे वहाँ संत सोफिया के गिरजे में रखा गया। बाद में एदेसा पर मुसलमानों की हुकूमत हो गयी।

सन ९४४ में कुस्तुंतुनिया की ईसाई सेना ने एदेसा पर हमला किया। सेनापति ने एदेसा के मुसलमान अमीर से कहा कि अगर 'मेन्डिलियन' हमें दे दिया जाये तो तुम्हें भारी रकम दी जायेगी, गिरफ्तार हुए २०० मुसलमान युद्धबंदी रिहा कर दिये जायेंगे और शहर पर फिर कभी चढ़ाई नहीं की जायेगी। अंततः अमीर ने ईसाई नागरिकों के विरोध के बावजूद 'मेन्डिलियन' कुस्तुंतुनिया के सेनापति को सौंप दिया। तब से बारहवीं सदी के अंत तक 'मेन्डिलियन' कुस्तुंतुनिया के सम्राट के पास रहा। सन १२०४ में चौथे धर्मयुद्ध (क्रूसेड) के समय कुस्तुंतुनिया लूटा गया। तभी 'मेन्डिलियन' गायब हो गया।

यह सब किस्सा इतने विस्तार से बताने का प्रयोजन यह है कि इयन विलिस का मत है कि 'मेन्डिलियन' ही 'पवित्र कफन' है।

ऐसा मानने में कुछ दिक्कतें हैं। पुराने विवरणों के अनुसार 'मेन्डिलियन' पर ईसा मसीह की केवल मुखाकृति थी। 'मेन्डिलियन' की अनुकृतियों में भी ऐसा ही है। जबकि 'कफन' पर पूरे शरीर के अग्रभाग और पृष्ठभाग की दोहरी आकृति है। इयन विलिस इसका समाधान यों करते हैं कि 'मेन्डिलियन' इस तरह तह करके रखा गया था कि केवल मुखाकृति दिखे, और उस पर

जाली भी मढ़ दी गयी थी। इसलिए कोई उसे पूरा खोलकर देख नहीं सकता था। उन्होंने बारहवीं सदी के ऐसे कुछ लिखित प्रमाण ढूँढ़ निकाले हैं, जिनमें 'मेन्डिलियन' पर मसीह की पूरी आकृति होने का जिक्र मिलता है।

यदि 'मेन्डिलियन' ही 'कफन' है, तो ईसा मसीह के देहोत्सर्ग से लेकर कुस्तुंतुनिया की लूट तक का सिलसिला मिल जाता है। यही नहीं, डा. फ्राई को 'कफन' पर फिलस्तीन और तुर्की के पौधों के जा पराग-कण मिले, उनकी भी संगति बैठ जाती है। तब केवल १२०४ ई. से १३५६ तक डेढ़ सदी की खाई बाकी रहती है। इयन विलिस ने खोज निकाला है कि चौदहवीं सदी में फ्रांस में जो लोग मूर्तिपूजा का आरोप लगाकर जीवित जलाये गये थे उनमें एक था ज्योफ्री दे शार्नी, जो कि टेम्पलर था। उसने मूर्तिपूजक होने के आरोप का खंडन भी किया था। संभव है, वास्तव में 'कफन' टेम्पलरों के पास रहा हो और वे गुप्त रूप से उसकी आराधना करते रहे हों। उसी को भ्रमवश मूर्ति समझ लिया गया हो। इयान विलिस का अनुमान है कि 'टेम्पलर' दे शार्नी अपने वंशजों को चुपचाप यह 'पवित्र कफन' दे गया और वही १३५६ में ज्योफ्री दे शार्नी के पास था। ये दोनों ज्योफ्री दे शार्नी एक ही घराने के थे, यह सिद्ध होना बाकी है।

मगर असली चीज तो यह है कि विज्ञान क्या सिद्ध करता है।.... क्या सचमुच यह 'पवित्र कफन' ईसा मसीह का है ?



पैसे आपके कि आप पैसे के ?



आपके पास पैसे हैं या नहीं, यह जितना महत्त्वपूर्ण है, उतना ही महत्त्वपूर्ण यह है कि पैसे के बारे में आपका सही दृष्टिकोण है या गलत दृष्टिकोण। नीचे के प्रश्नों से आपने आपको जांचिये। ये प्रश्न अमरीकी पत्रिका 'टुडेज हेल्थ' से लिये गये हैं।

१. क्या आप पैसे को जीवन की अन्य सब चीजों—स्वास्थ्य, प्यार, परिवार, मनो-विनोद, मित्रता, संतोष आदि—से पहले रखते हैं?

२. क्या आप जरूरत न होने पर भी चीजें सिर्फ इसलिए खरीद लेते हैं कि वे रियायती दाम पर बिक रही हैं?

३. क्या आप गैरजरूरी चीजें इसलिए खरीद लेते हैं कि आजकल उन्हें रखना दूसरों को प्रभावित करने के लिए जरूरी है?

४. क्या पास में पर्याप्त पैसा होते हुए भी भोजे-जैसी जरूरत की चीजों पर खर्च करते हुए भी आप अपने को कसूरवार-सा महसूस करते हैं?

५. क्या कोई भी बड़ी चीज खरीदते

समय आपको यही अनुभव होता है, आपको ठगा जा रहा है?

६. क्या आप दूसरों पर तो खुले हाथों और यहां तक कि कुछ अविवेकपूर्ण खर्च करते हैं, और खुद अपने ऊपर खर्च करते समय पैसें को दांतों से पकड़ते हैं?

७. क्या आपके मुंह से सहसानिकल जाता है कि मुझे यह पुसायेगा नहीं, भले असल में ऐसी बात हो या नहीं?

८. क्या हरदम आपको ठीक-ठीक याद रहता है कि इस समय आपकी जेब में बटुए में कितने रुपये और पैसे हैं?

९. क्या खर्च करने का फैसला करने में आपको कठिनाई होती है—चाहे रकम छोटी हो या बड़ी?

१०. क्या खरीदारी करते समय आपके मुंह से हरदम यही निकलता है कि चीजें कितनी महंगी हो गयी हैं?

११. क्या होटल आदि स्थानों में मित्रों के बीच बिल आने पर आप हमेशा अपने वाजिब हिस्से से ज्यादा चुकाते हैं—

नबनीत

दिखाने के लिए कि आप किसी के कर्जदार नहीं रहना चाहते?

१२. क्या महीने के अंत में सब खर्चा काटकर कुछ पैसा पास बच जाने पर आपको अजीब-सा महसूस होता है और आप उससे छुटकारा पाने की कोशिश करते हैं?

१३. क्या आप अपने वशवर्ती लोगों को डराने और उन पर अपना अधिकार बनाये रखने के लिए पैसे का उपयोग करते हैं?

१४. क्या अपने से अधिक पैसे वाले के आगे आप तब भी अपने को हीन अनुभव करते हैं, जब आपको मालूम है कि उसने पैसा अपनी योग्यता से अर्जित नहीं किया है?

१५. क्या अपने से कम पैसे वालों के सामने आप अपने को अधिक श्रेष्ठ अनुभव करते हैं—भले ही वे कितने ही योग्य और कर्तृत्वशाली क्यों न हों?

१६. क्या आपका यह दृढ़ विश्वास है कि पैसा तमाम समस्याओं को सुलझा सकता है?

१७. क्या जब आपकी आर्थिक हालत के बारे में आपसे पूछा जाता है, तो आप बेचैनी महसूस करते हैं?

१८. किसी भी मतलब से कोई भी चीज खरीदते समय क्या सबसे पहले उसकी कीमत की बात आपके ध्यान में आती है?

१९. क्या यह पता लगने पर कि जो चीज आपने खरीदी, वही आपके पड़ोसी ने आपसे कम दाम में खरीदी है, आप अनुभव करते हैं कि लो, हम बुद्ध बने?

२०. क्या आप पैसे को तुच्छ मानते हैं और पैसे वालों से नफरत करते हैं?

२१. क्या आप उद्योग आदि में पैसा लगाने के बजाय बैंक में जमा रखना पसंद करते हैं कि कौन जाने कब उद्योग चौपट हो जाये और आप हाथ मलते रह जायें?

२२. क्या आपको हमेशा यही लगता है कि जितना पैसा आपने बचाया-जोड़ा है, वह काफी नहीं है?

२३. क्या आपको अनुभव होता है कि अंततः सिर्फ पैसा ही काम देता है?

ईमानदारी के साथ इन प्रश्नों के उत्तर हां या न में दीजिये। उत्तरों की बहुसंख्या हां में है या न में, इसके आधार पर स्वयं फैसला कीजिये कि आप अपने पैसों के मालिक हैं या पैसे आपके मालिक हैं।



लोकसभा में बहस चल रही थी। विरोधी पक्ष के एक सदस्य ने श्री फखरुद्दीन अली अहमद से यह पूछा था कि क्या यह सही है कि उन्होंने सोलह वर्ष की कन्या से विवाह किया है? और भी प्रश्न पूछे गये थे, जो इसी तरह के चिढ़ाने वाले थे। श्री फखरुद्दीन अली अहमद जवाब देने के लिए खड़े हुए। अपनी समरस आवाज में जब उन्होंने कहा कि 'जी हां, मैंने सोलह वर्ष की एक कन्या से विवाह किया है', तो क्या कांग्रेसी और क्या विरोधी, सभी सदस्यों के कान खड़े हो गये। इसके बाद श्री फखरुद्दीन अली अहमद ने धीरे-से कहा—'चालीस वर्ष पहले।' और सदन की गंभीरता हंसी में प्रस्फुटित हो गयी।

—ज. प्र. च.



[पृष्ठ ६० का शेष]

था ? उन्होंने याद करने की बहुत कोशिश की, पर कुछ भी याद नहीं आ रहा था। 'शायद मैंने बहुत पी ली है', उन्होंने फिर सोचा। एक अरसे तक वे गुमसुम खड़े रहे, जैसे उन्हें होश ही न हो।

यकायक उन्हें पूर्वी पार्कवे पर हुई दुर्घटना याद आ गयी। एक विचित्र संदेह उन्हें होने लगा—शायद वे उस दुर्घटना के केवल दर्शक ही नहीं थे। शायद उस दुर्घटना के शिकार वे खुद ही थे। स्ट्रेचर पर जाता वह आदमी उन्हें जाना-पहचाना लगा। वे अपना निरीक्षण कुछ इस तरह करने लगे, जैसे वे अपने मरीजों का करते थे। उन्होंने पाया कि न तो उनकी नब्ज चल रही है, न सांस। और वे अपने आपको बड़ा हल्का-फुल्का महसूस कर रहे हैं, जैसे कि शरीर हो ही नहीं। यह कैसे संभव है ? वे बुदबुदाये। क्या कोई आदमी बिना जाने मर सकता है ? और अब ग्रेटल का क्या होगा ? वे यकायक बोल उठे—'तुम वही रैजेल नहीं हो !'

'नहीं ? तो फिर मैं कौन हूँ ?'

'रैजेल को तो मार डाला गया था ।'

'मार डाला गया था ? तुम्हें किसने बताया ?'

वह काफी घबरायी हुई लग रही थी। उसने अपना सिर नीचे झुका लिया था, जैसे

कि कोई बड़ी खराब खबर सुन ली हो। शायद उसे अपनी स्थिति का सही-सही ज्ञान नहीं था—डा. मार्गोलिन ने सोचा। उन्होंने सुन रखा था कि जीव किस तरह एक घुंघलके की दुनिया में रहता है। शरीर से अलग होकर भी आत्मा अर्धचेतन अवस्था में इधर-उधर भटकती रहती है, पिछले जीवन के भ्रमों से जुड़ी हुई, और अपने निर्दिष्ट स्थान पर नहीं पहुंच पाती। पर यह सब अंधविश्वास तो नहीं था ? 'शायद मैं शराब के नशे में हूँ,' डा. मार्गोलिन ने सोचा—'और मैं जो कुछ देख रहा हूँ, वह एक भ्रमजाल है...'

उन्होंने सामने देखा—वह अभी भी वहां पर थी। 'जब तक हम दोनों साथ हैं, इससे क्या फर्क पड़ता है ?' उन्होंने धीरे-धीरे रैजेल के कान में कहा।

'मैं इस क्षण का वर्षों से इंतजार कर रही थी ।'

'तुम अब तक कहां थीं ?'

उसने कोई जवाब नहीं दिया और सोलोमन ने दुबारा पूछा। वे चारों तरफ देखने लगे। खाली कक्ष अब भर गया था। सब कुर्सियों पर लोग बैठ चुके थे। कक्ष में शांति थी, और संगीत धीमे-धीमे बज रहा था। पादरी ने आशीर्वाचन बोले। अब्राहम मेखल अपनी लड़की को साथ लेकर नए तुले कदमों से आगे बढ़ रहा था।



- * सार्त्रवाद और मार्क्सवाद
- * कोहरे
- * वन्य जीवों का संसार
- * एक डिण्टी की डायरी



ग्रंथलोक

सार्त्रवाद और मार्क्सवाद संपत ठाकुर;
नंदिता प्रकाशन, ११ नंदिता, १५ वांरास्ता,
बंबई-५०; १० रुपये; ७२ पृष्ठ।

डा. संपत ठाकुर की यह कृति, जिसमें उन्होंने पाश्चात्य जीवन-चिंतन की दो धाराओं का विश्लेषण करने का प्रयास किया है, निश्चित रूप से स्तुत्य है; क्योंकि हिंदी में इस प्रकार की पुस्तकें बहुत कम हैं।

पुस्तक छह अध्यायों में विभक्त है, जिनमें सार्त्रीय अस्तित्ववाद, सार्त्रवाद की समर्थक और विरोधी मान्यताओं का विश्लेषण तथा सार्त्रवाद और मार्क्सवाद का तुलनात्मक अध्ययन है।

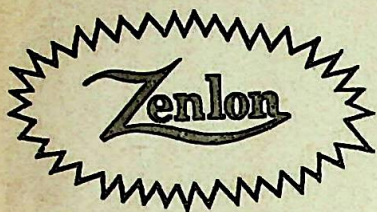
कीएफ़गार्ड और नीत्शे से चले अस्तित्ववाद को सार्त्र के चिंतन ने नयी दिशा दी। सार्त्र ने अपनी विचारधारा में अस्तित्ववाद और मार्क्सवाद की कुछ विशेष मान्यताओं

को स्वीकार करके एक नया जीवन-दर्शन प्रस्तुत किया। उसी को लेखक ने अपनी पुस्तक में 'सार्त्रवाद' नाम दिया है और एक नयी विचारधारा के रूप में पाठकों के सामने रखा है।

लेखक की विशेषता यह है कि उसने न नया 'जार्गन' गढ़ा है और न पुराने 'जार्गन' को दोहराया है, बल्कि सीधे-सरल शब्दों सार्त्रीय मान्यताओं को प्रस्तुत किया है। इसलिए सार्त्र-चिंतन को समझने के इच्छुक हिंदी पाठकों के लिए पुस्तक उपयोगी है। हां, मूल्य जरा कम रहता तो यह अधिक लोगों तक पहुंच सकती थी।

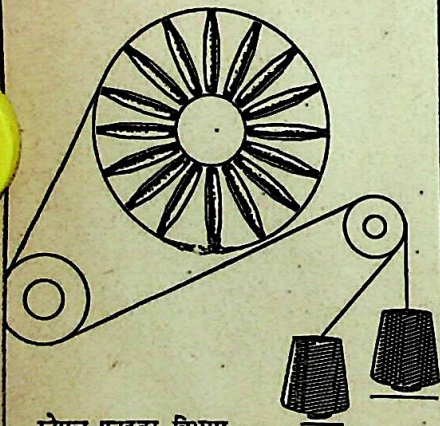
०००

* कोहरे * दीप्ति खंडेलवाल; राजपाल
एंड सन, कश्मीरी गेट, दिल्ली; ८ रुपये;
१०२ पृष्ठ।



विविध किस्मों के
प्राकृतिक, रासायनिक व
मानव निर्मित
बुनाई के सूत

परदे, गार्दियां व कवर बनाने के लिए
मुलायम और बहुरंगी • क्रोशेसेटों के
लिए सुंदर और चमकदार • वसन्त
में लचीले और नमीसोख



स्टेपल फाइबर विभाग

बिरला ज्यूट मैनुफैक्चरिंग
कं. लि.

९/१ आर. एन. मुकजी रोड
कलकत्ता-७०० ००१

सिरपुर- उत्तम कागज के लिये

- बैंक पेपर
- बॉन्ड पेपर
- ग्लेज़्ड एंडर ग्रेल पेपर
- एज्युरलेड पेपर
- सुपर वाइटलेड पेपर
- सुपर वाइट मैगलियो पेपर
- क्रोमो पेपर
- एम. एफ. रैपिंग पेपर
- आर्ट पेपर
- क्रोमो बोर्ड
- आर्ट बोर्ड

दि सिरपुर पेपर मिल्स लि.
सिरपुर - कागज नगर, आन्ध्र प्रदेश

जीवन की मर्मस्पर्शी व्यथा से घड़कते इस उपन्यास में दीप्ति खंडेलवाल ने दांपत्य-संबंधों पर छाये हुए कुहासे और उससे उपजी घुटन का चित्रण करते हुए इसके माध्यम से नयी और पुरानी पीढ़ी की दांपत्य - संबंधी मान्यताओं का अंतर भी दिखाया है। एक तरफ है आधुनिकास्मिता, जो अपने समर्पण के प्रतिदान में पति का पूर्ण समर्पण चाहती है। दूसरी ओर है स्मिता की ममी, जो जिदगी-भर मेजर पति की प्रताड़ना भोगती रही है, पर मौन समर्पण करती रही है।

स्मिता को एक ऐसी पत्नी के रूप में चित्रित किया गया है, जिसे पति हमेशा अपनी बंदिनी बनाकर रखना चाहता है। आधुनिक पुरुष नारी की व्यक्तिस्त्ता की बात तो करता है; परंतु उस व्यक्तिस्त्ता को भी अपनी अधिकार-सीमाओं में बंदी बना लेना चाहता है। स्मिता का पति सुनील इसी तरह का पुरुष है। वह स्वयं तो अमर्यादित, उच्छृंखल जीवन जीता है, पर स्मिता अपनी प्रतिभा का विकास करे, यह उसे पसंद नहीं। स्मिता के टोकने पर वह तलाक तो दे देता है, पर अपने अहं को सीमित करने को तैयार नहीं हो पाता। पति से अलग होकर स्मिता अपने मेजर पापा के पास लौट आती है; परंतु भावनात्मक संतोष तो उसे अपने पूर्वप्रेमी प्रशांत में ही मिल पाता है।

दांपत्य-संबंध बहुत नाजुक चीज है। सामंजस्य, समर्पण और समझदारी इस

संबंध की आधारशिला हैं। परंतु क्या ये चीजें एकतरफा हो सकती हैं? सहयोग दोनों तरफ से होना चाहिये। इसीलिए स्मिता के मम्मी-पापा का परिवार बचा रहता है, और सहयोग के अभाव में स्मिता का परिवार बिखर जाता है।

‘कोहरे’ नायिका-प्रधान उपन्यास है और नायिका स्मिता इतनी अधिक भावुक बना दी गयी है कि वह आज की नारी की प्रतिनिधि नहीं बन पाती। यथार्थपरक वर्तमान युग में लिजलिजी भावुकता का कोई महत्त्व नहीं है। यों भी जीवन की सार्थकता चुनौतियों को झेलने में है, टालने में नहीं।

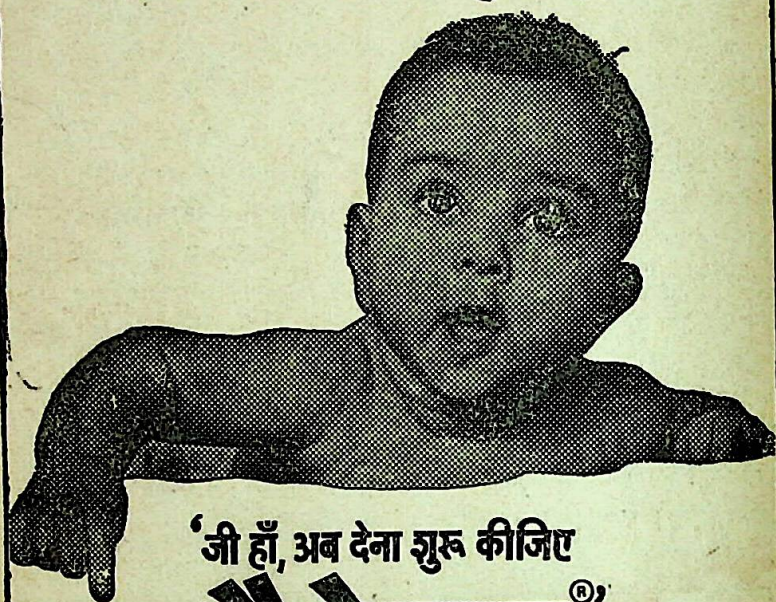
तो भी उपन्यास के तौर पर ‘कोहरे’ सफल है। नारी के अंतर्मन को अभिव्यक्त करना लेखिका का उद्देश्य है और उसमें वह सफल हुई है। —डा. उषा मंत्री

०००

* वन्य जीवों का संसार * रामेश बेदी;
राजपाल एंड सन; दिल्ली-६; ११ रुपये;
२५१ पृष्ठ।

हिंदी में सच्चे या मनगढ़ंत शिकार-प्रसंग प्रायः छपते रहते हैं। लेकिन वन्य-प्राणियों के जीवन की जानकारी देने वाली पुस्तकों की खलने वाली कमी है। ‘वन्यजीवों का संसार’ इसी उद्देश्य को ध्यान में रखकर लिखा गया है। इसमें लेखक ने सिंह, हाथी, गैंडा, चीतल, सांभर, भालू, सूअर, लकड़-वाघा, ऊदबिलाव और जंगली कुत्तों के बारे में जानकारी दी है। देश के अनेक महत्त्वपूर्ण वन्य पशुओं का पुस्तक में समावेश नहीं

‘मम्मी!
मैं ३ महीने का हो चुका हूँ!’



‘जी हाँ, अब देना शुरू कीजिए
फ़ैरेक्स®)

मुझे के ठोस आहार की शुरुआत के लिए
डॉक्टरों की सिफ़ारिश है **फ़ैरेक्स**®

मुझे का आदर्श ठोस आहार
जल्द और सर्वांगीण
विकास के लिए



विदास-GLF.62-1510 M

हुआ है, शायद पृष्ठसंख्या की सीमा के कारण। परंतु हिरन की पांच जुदा नस्लों का अलग-अलग विस्तार से वर्णन किया गया है।

वेदीजी वन्य-जीवों का नजदीक से दर्शन और अध्ययन करने के लिए वनों में खूब भटकें हैं, सो उन्होंने बीच-बीच में उनके संस्मरण पियरोये हैं, जिससे रोचकता और रोमांचकता साथ-साथ चलती है। व्याकरण की भूलें रसभंग करती हैं। केंद्रीय हिंदी निदेशालय और पुस्तक के पुनरीक्षक इसके लिए अधिक दोषी हैं।

०००

* एक डिप्टी की डायरी (दो भागों में) *
* छोटी-बड़ी कहानियां * निशीथकुमार राय; इंडियन प्रेस (पब्लिकेशन्स) प्रा. लि. इलाहाबाद; मूल्य क्रमशः १२ और १० रुपये।

डायरी-शैली की अन्य हिंदी पुस्तकों से भिन्न 'एक डिप्टी की डायरी' में वस्तुतः एक सरकारी अफसर के संस्मरण हैं। इनमें एक निवृत्त डिप्टी कलक्टर आजादी से पहले और बाद अपने इर्द-गिर्द घटित घटनाओं के जरिये भ्रष्ट सरकारी तंत्र की रीतियों के वास्तविक चित्र खींचता है। कहीं-कहीं कल्पना का पुट जरूर है, पर इतना ज्यादा नहीं कि वर्णन अस्वाभाविक लगने लगे।

भाषा-शैली पुराने ढंग की होते हुए भी रोचक और विचारोत्तेजक है। सरकारी अफसरों द्वारा अपने पद के दुरुपयोग के प्रकरण इसके प्रमाण हैं कि आजादी के आगमन से अफसरशाही के रवैये में कोई परिवर्तन नहीं आया। शायद अभी आये भी नहीं। हां, लेखक ने इस दुस्साहस द्वारा अपनी अफसर-विरादरी में 'घर का भेदी' का दर्जा जरूर हासिल किया होगा।

'छोटी-बड़ी कहानियां' साधारण और विशिष्ट दोनों ही हैं—कहानी-शैली या तकनीक की कमी के कारण साधारण, कहानियों में उद्धाटित सत्यों के कारण विशिष्ट। शैली ज्यादातर पुरानी ही है; ज्यादातर कहानियां काफी पहले लिखी गयी थीं और 'सरस्वती' आदि पत्रिकाओं में छप चुकी हैं। 'बोझ', 'यादें', 'नारी मन', 'छुट-कारा', 'ब्रह्मशाप' आदि सामाजिक संदर्भ में आज भी अर्थ रखती हैं। कुछ कहानियां ग्रामीण परिप्रेक्ष्य की स्थितियों को स्पष्ट करने में सफल रही हैं।

आज की कहानी में मनःस्थितियां मुख्य होती हैं, जबकि श्री राय की कहानियों में कथा या प्लॉट है, मनःस्थितियां नहीं हैं। वर्णनात्मकता भी इनमें पुरानापन ला देती है। फिर भी मूल तथ्य और स्थितियां पाठक को बांधें रखती हैं। —हरमन चौहान



* दुनिया की प्रथम महिला ड्राइवर थीं जेनेवेरा डेलफिन मज, जिन्होंने १८९८ में न्यूयार्क में वेवरली इलेक्ट्रिक कार चलायी थी। बाद में काररेस में कार चलाते हुए वे 'स्किड' कर गयीं और पांच दर्शकों को घराशायी कर बैठीं।

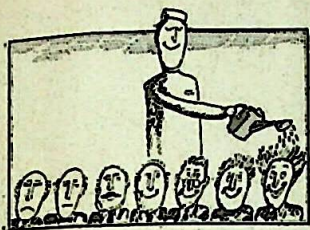


अपने लेखकों से

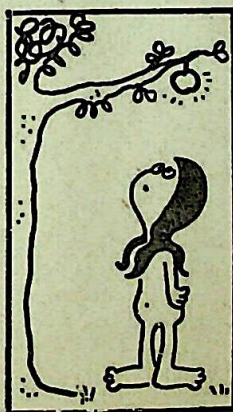
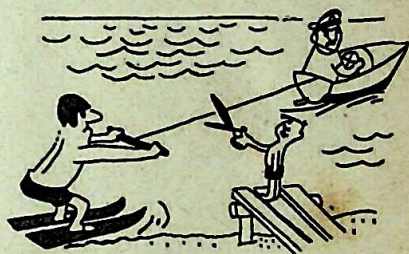
- श्री** संपादकजी, कृपया मुझे बतायें कि नवनीत में आप कैसी रचनाएं लेते हैं ? इस आशय के अनेक पत्र हमें प्रतिदिन मिलते हैं। नवनीत के कुछ अंक देखने से भी इस प्रश्न का उत्तर मिल जायेगा; फिर भी यदि आप हमसे ही जानना चाहें, तो हम कहेंगे कि निम्नलिखित ढंग की रचनाएं हमें नहीं चाहिये : क. जो जीवन में अनास्था जगायें, देश के विभिन्न समुदायों में स्नेहसूत्र तोड़ें, व्यक्तिगत आक्षेप करें, सहज-स्वस्थ सुरचि को ठेस पहुंचायें; या जो कलें-डर देखकर पर्वों, जयंतियों और पुण्यतिथियों के उपलक्ष्य में लिखी गयी हों। ख. आपके अन्यत्र प्रकाशित लेख का नया संस्करण, कश्मीरी कविता का वाया तमिल उल्हा, अल्बर्तो मोराविया के 'रोम की औरत' का भारतीय रूपांतर 'कौशांबी की कामकन्या', सर्वविदित हास्योक्तियों का श्रेय आपके जिला-महाकवि या तहसील-राजनेता को देने वाले विनोद-प्रसंग। ग. इन विषयों से हमें परहेज है—वेदों में हृदय-प्रतिरोपण, कोसी कला के जंगल में जिराफ और बबरशेर की मुठभेड़, कामायनी में क अक्षर का प्रयोग, महावानर पुराण में मिर्जापुर का उल्लेख, कड़वी लौकी के रस से सर्वरोगों का उपचार, इत्यादि-इत्यादि।
- * लेखमालाएं या मास-भविष्य लिखने के आश्वासन कृपया हमें न दें; न एक साथ सवा सत्ताईस कविताएं भेजें।
 - * रचना पर्याप्त हाशिया और पंक्तियों के बीच पर्याप्त स्थान छोड़कर सघे अक्षरों में कागज के एक ओर लिखकर या टाइप करवाकर भेजें। भेजने से पहले उसे एक बार पूरे मनोयोग से अवश्य पढ़ लें, भले उस दिन के बजाय अगले दिन की डाक में भेजनी पड़े। कार्बन-कापी न भेजें। लेख के आरंभ या अंत में अपना पूरा डाक-पता दें।
 - * रचना के साथ टिकट लगा और पूरा पता लिखा लिफाफा अवश्य रखें। अन्यथा रचना लौटायी नहीं जायेगी, न उसके बारे में पत्र-व्यवहार होगा।
 - * रचनाएं किसी व्यक्ति के नाम पर नहीं, निम्नलिखित पते पर भेजें:

संपादक—नवनीत हिंदी डाइजेस्ट

नवनीत प्रकाशन लिमिटेड, ३४१, ताडदेव, बंबई-३४



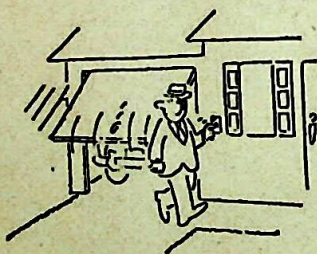
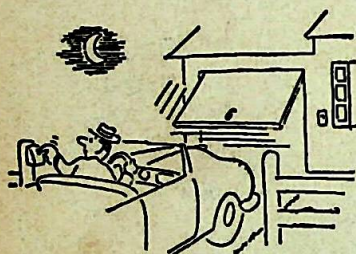
शब्दातीत



दो क्षण तो हँस लें

‘सुनता हूँ कि तुम्हारी फर्में के मालिक बड़े मिलनसार हैं। मालिक-मजदूर का फर्क तक नहीं मानते और तुम लोगों के साथ ताश तक खेलते हैं?’

पुशबटन घर-दृश्य १



वर्षनीत

‘बिल्कुल सच है। पर सिर्फ पहली तारीख को खेलते हैं।’

‘पहली तारीख को ही क्यों?’

‘इसलिए कि उसी दिन हमें वेतन मिलता है। दांव में उनसे हम पैसा हार जाते हैं, तो अगले वेतन तक प्रतीक्षा करनी पड़ती है।’

०

प्रेमी : फिल्मों में तुम्हारे प्यार-भरे जानदार संवाद सुनकर ही मैंने तुम पर अपना लि वार दिया था। पर मेरे सामने वैसे संवाद बोलने में तुम्हारी नानी क्यों मरती है?

सिने-तारिका : व्यर्थ के आक्षेप मत लगाइये। आपने वैसे संवाद मुझे लिखकर कहां दिये?

०

मार्क ट्वेन ने अपने मित्र से कहा—‘बेनादान ! अपनी पत्नी की बातों को काटने में अपना समय व्यर्थ क्यों कर रहे हो? क्विंमिन्ट चुप रहो, वह खुद अपनी बातों को काटने लग जायेगी।’ —रा. वीलिनाम

०

मित्र-१ : भाभीजी की खांसी एकदम खिल गयी है। किस डाक्टर से इलाज कराया?

मित्र-२ : इलाज ? मैंने खुद ही किया। मैंने तुम्हारी भाभी से कहा, यह खांसी जल्दी ठहरने का लक्षण है। उसी दिन से खांसी

जन्म

बंद हो गयी ।

—गोविंद स्वामी

‘कैसे दिये केले ?’

‘डेढ़ रुपया दर्जन ।’

‘बहुत ज्यादा है । कुछ कम करो न ?’

‘ठीक है, ग्यारह ले जाओ ।’

बार-भविष्य पढ़ते हुए नववधू ने वर से कहा—‘आप अगर दो दिन पहले पैदा हुए होते, तो बहुत उदार और प्रेमल स्वभाव के होते ।’

‘हां, तब मुझे पत्नी भी दूसरी मिली होती ।’ वर ने कहा ।

—विशाल

पत्नी : इस लेख में लिखा है, स्त्रियों की तुलना में पुरुष ज्यादा संख्या में पागल होते हैं ।

पति : किस के कारण पागल होते हैं, यह भी लेख में लिखा है कि नहीं ?

घबराये हुए स्वर में पत्नी ने अपने पति से कहा—‘जल्दी आओ । देखो, नौकर तुम्हारे कोट की जेब टटोल रहा है ।’

पति ने निर्विकार भाव से कहा—‘तुम स्वयं जाकर उससे फैसला कर लो । यह तुम दोनों का मामला है । मुझे बीच में न घसीटो ।’

उम्र को स्त्रियां पांच अवस्थाओं में बांटा करती हैं—बचपन, किशोरावस्था, जवानी, जवानी, जवानी ।

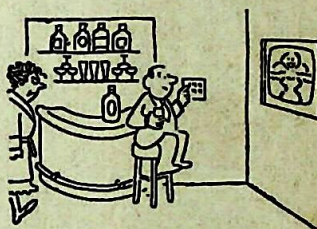
—सुरजीत

पिता : पप्पू ! तुम टामी को बहुत तंग करते हो । तुम्हें इस पिल्ले से जरा भी प्यार नहीं है । सारे दिन बेचारे को हैरान करते रहते हो । अब से तुम इसे मारोगे तो मैं भी तुम्हें मारूंगा । तुम इसके कान खींचोगे तो मैं भी तुम्हारे कान खींचूंगा ।

पप्पू : अगर मैं इसकी पूंछ खींचू तो ?

—नरेंद्र कुमार गहलोत

पुशबटन घर—दृश्य १ जारी



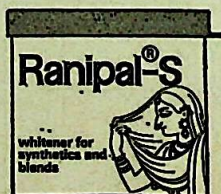
देखिए...

सर्वोत्तम सफ़ेदी के लिए

रानीपाल®



बलों को आखरी बार खंगालने से पहले पानी में थोड़ा सा रानीपाल मिलाइए और फिर देखिए... बलों पर चमकती सफ़ेदी! रानीपाल की सफ़ेदी! सफ़ेद बल कैसे भी हों—सूती, सिन्थेटिक और ब्लेंडिड—रानीपाल से चमक उठते हैं। नियमित रानीपाल लगाइए... और सफ़ेदी देखिए, दिखाइए!



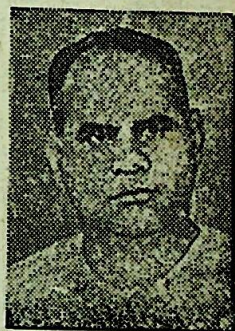
सूती बलों के लिए रानीपाल®
सिन्थेटिक और ब्लेंडिड
बलों के लिए रानीपाल®-एस

जब उत्साह नहीं, तो कुछ नहीं !

दुर्भाग्य
निरन्तर चिन्ता
कार्स्मधिक्य
जीर्ण अपचन
स्नायुदौर्बल्य के सामान्य लक्षण हैं
विस्मृति
भय
मिथ्या भावना
आत्महत्या के विचार
मतिभ्रम
इसके भयंकर परिणाम हैं

यदि आप स्नायुदौर्बल्य से ग्रसित हैं, तो
परामर्श करें :

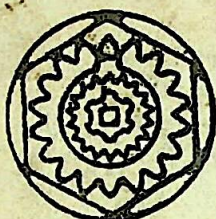
कविराज पं. दुर्गादत्त शर्मा, वैद्य-वाचस्पति



**KALPA
PHARMACY**
NAVRATNA CHOWK
JULLUNDUR CITY. Pb.
PHONE: 2401 GRAMS: KALPAPHAR

(कृपया अंग्रेजी अथवा हिन्दी में पत्र-व्यवहार कीजिये।)

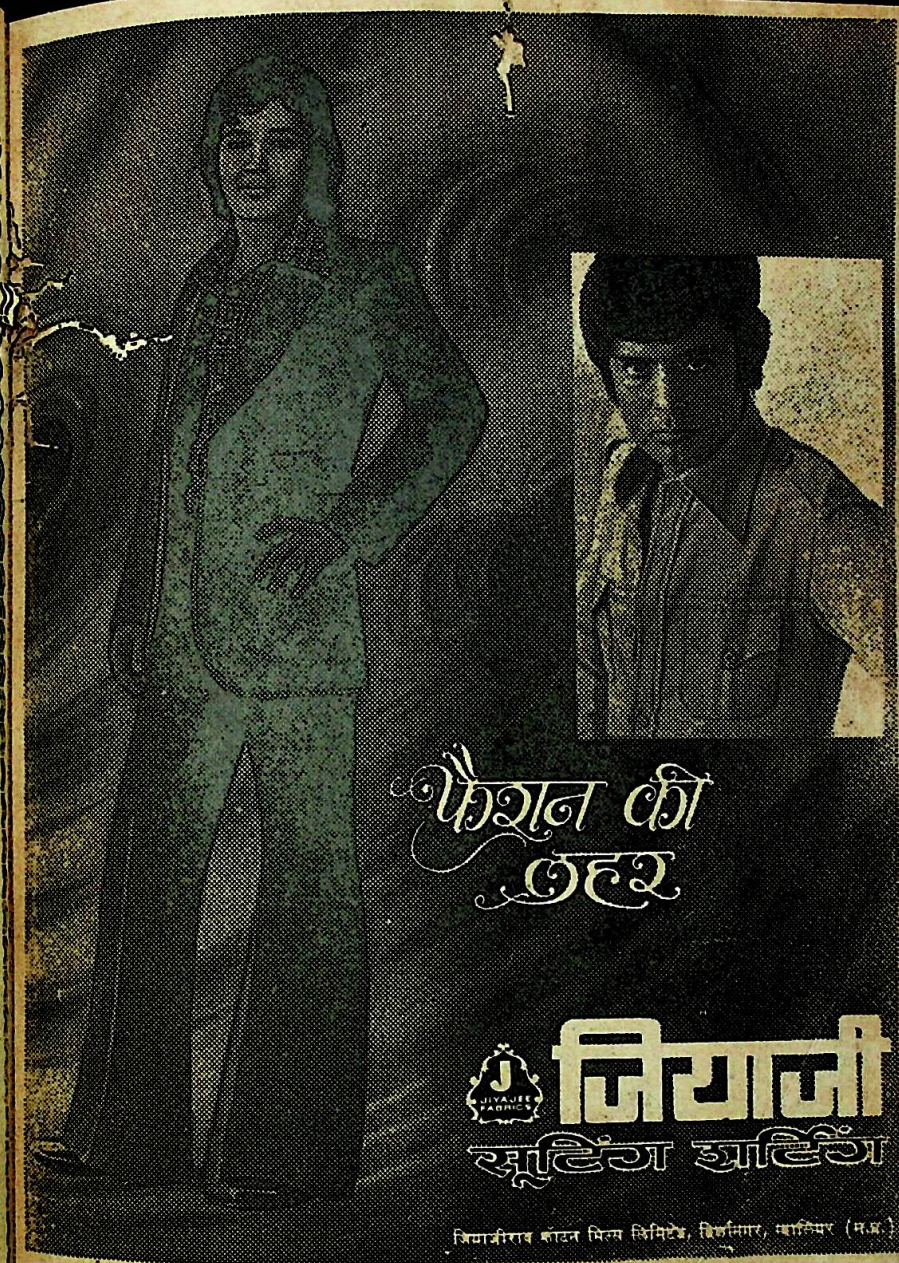
यांत्रिक प्रगति का अनुपम प्रतीक



लोहे में गोल छेद बनाना आसान है, पर उसे विभिन्न प्रकार का बनाने के लिए विशेष प्रकार के टूल 'ब्रोच' की जरूरत होती है। जिन-जिन देशों में मोटर, लारी, स्कूटर, मशीन टूल, इत्यादि इंजीनियरिंग उत्पादन होते हैं, वहां 'ब्रोच' उत्पादन परमावश्यक होता है। डेंगर-फोर्स्ट टूल लिमिटेड ने इस आवश्यकता की पूर्ति की है। उनके बनाये 'ब्रोच' से लोहे या अन्य धातु के भीतर व बाहर के भाग को आसानी से विविध स्वरूप दीजिये।



डेंगर-फोर्स्ट टूल्स लि.,
पहला पोखरण रास्ता,
थाना (बंबई)



वार्षिक मूल्य रु. २४

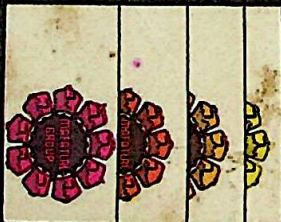
मूल्य रु. २-२५

सबका आगम है
 पूजन में: अर्चना में:
 आत्म चित्तन
 भवन में:
 अंधेरे में, एकता में,
 जीवन की धिरणा में,
 हब सभी के मूल में
 सूर्य है,
 सूर्य चक्र चल रहा,
 सूर्य ही चल रहा।



अपकानना

सृष्टि, शक्ति,
 साहियो,
 इस मंदिरियलस
 व हेनिम



नवनीत

[हिन्दी डाइजेस्ट]

संस्करण १९७९

मूल्य : रु. २.२५

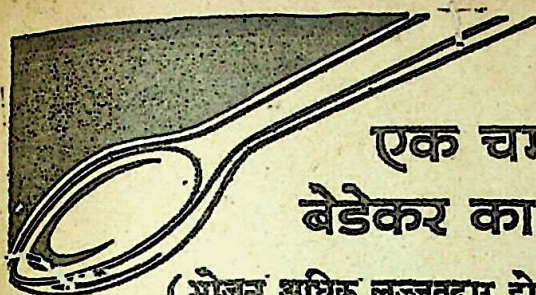
मुमुक्षु भवन वेद वेदान्त पुस्तकालय,
अस्सी, वाराणसी।

सेन्चुरी के अनुपम वस्त्र



१००% सूती कपड़ों के लिये
दि सेन्चुरी स्पिनिंग एण्ड मैनुफेक्चरिंग कंपनी लिमिटेड, बम्बई

उत्तु भवन वेद वेदाङ्ग पुस्तकालय
अस्सी, वाराणसी



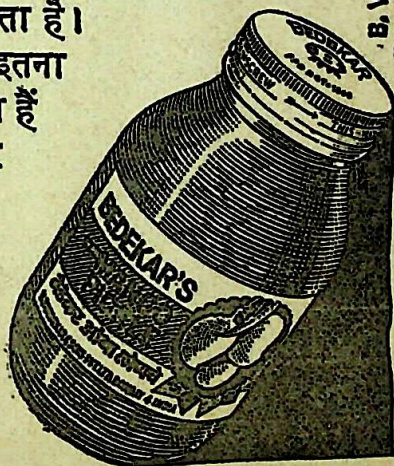
एक चम्मचभर बेडेकर का अचार...

(भोजन अधिक लज्जतदार हो जाता है)

आपका भोजन शाकाहारी हो अथवा मांसाहारी
बेडेकर का अचार आपके भोजन को
अत्यधिक लज्जतदार बनाता है।

दाल-भात के साथ आम्र का अचार, दही-भात के साथ
नींबू का अचार, मांसाहारी भोजन के साथ मिश्रित
या मिर्ची का अचार और बच्चों व बड़ों के लिए
नींबू के रस का अचार (इस शीशी को बच्चों से
दूर रखिये नहीं तो वे दिन भर अचारही खाते
रहेंगे।) बेडेकर का अचार आपके भोजन को
स्वादिल व रुचिकर बनाता है।

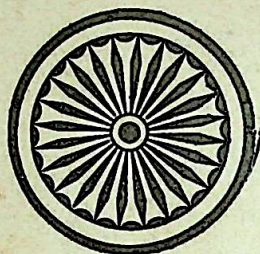
केवल बेडेकर ही आपको इतना
जायकेदार अचार दे सकते हैं
क्योंकि बेडेकर का अचार
बनाने का वर्षों-वर्षों का
अनुभव है।



B. Vasant/VPB/4-77

बेडेकर

बम्बई ४



२६ जनवरी

तीन वरदानों वाली — यह पावन वर्षगांठ आज के दिन, ४९ वर्ष पहले, हमने पूर्ण स्वराज्य प्राप्त करने का संकल्प लिया । आज के ही दिन, १९५० में, हमने भारत को एक गणराज्य घोषित किया और अपने लिए एक संविधान स्वीकार किया जिसमें न्याय, स्वतंत्रता, समता और बन्धुता के आदर्शों को शामिल किया गया था । दो वर्ष पहले, लगभग इसी समय, हमने संविधान द्वारा गारंटी किये गये लोकतंत्र के रास्ते पर अपनी यात्रा फिर से प्रारम्भ की । इस पावन वर्षगांठ के शुभ अवसर पर — आइये ! हम सब अपनी स्वतंत्रता फिर से कायम करने के लिए भारत की जनता को धन्यावाद दें । आइये ! हम उन लोगों के सपनों को साकार करने का प्रयत्न करें, जिन्होंने स्वतंत्रता और समानता के लिए अपने प्राणों की आहुति दी । आइये ! हम सब पुनः संकल्प करें कि सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय प्राप्त करने के लिए तेजी से प्रयत्न करेंगे ।

DAVP 78/394

- * सुन्दर व मनमोहक 'फिगर' के लिए;
- * आकर्षक व्यक्तित्व व युवा शरीर के लिए;
- * शारीरिक व मानसिक रोगों से छुटकारा पाने के लिए;

हर घर में रखने योग्य महिलाओं के लिए अत्यन्त उपयोगी पुस्तक

लेडीज हेल्थ गाइड

आपकी इन सभी समस्याओं का समाधान है

सौन्दर्य समस्याएं

- * मोटापा अर्थात् बेडोलपन
- * वक्ष सौन्दर्य में कमी
- * बालों में रूसी व झड़ना
- * चेहरे के दाग-धब्बे व झुर्रियां

ग्राम सिंक्राएते व बीमारियाँ

- * कमर व पैरों में दर्द
- * दुबलापन व सामान्य कमजोरी
- * बेजा तनाव व थकान
- * अनिद्रा व बेचैनी * हिस्टीरिया
- * हीन भावना * ल्युकोरिया
- * मासिक धर्म की गड़बड़ियां
- * गर्भपात * यौन रोग

इनकी पहचान कैसे करें—इनसे बचाव के उपाय क्या हैं—चिकित्सा कब, कैसे व कहाँ से ले—विशेषज्ञों की राय।

सिपा जन्म की प्रक्रिया

- * गर्भाधान सम्बन्धी पूरी सचित्र जानकारी
- * गर्भावस्था, प्रसव व प्रसवोपरान्त व्यायाम, भोजन एवं सतर्कता
- * गर्भकाल की जटिलताओं व समस्याओं के समाधान

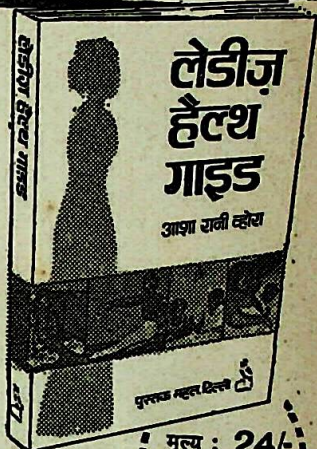
सामान्य स्वास्थ्य

- * नारी-शरीर-रचना की सचित्र जानकारी
- * कब क्या खाये व कितना खाएं
- * बीमारी में भोजन व रोगी की परिचर्या
- * प्लास्टिक सर्जरी
- * प्राथमिक चिकित्सा
- * घरेलू दुर्घटनाओं से बचाव
- * स्त्रियों के मेजर आपरेशन
- * दलली उम्र की समस्याएं
- * बांझपन व मीनूपाज की स्थितियां * प्रोलेप्स
- * रोगों व चिकित्सा सम्बन्धी आम भ्रांतियों का निवारण

असाध्य रोग

- * रक्त चाप * हृदय रोग * मधुमेह
- * तपेदिक * दमा * हड्डी विकार
- * गठिया * मानसिक रोग
- * वक्ष कैंसर * गर्भाशय कैंसर

इन बीमारियों के साथ कैसे जीये—कैसे धिक्रमा ले—कैसे दूत के रोग से दूसरों का बचाव करें और क्या-क्या डाक्टरों निर्देश हैं।



मूल्य : 24/-

डाकखर्च : 3/-

पृष्ठ संख्या : 410 | चित्र : 300

साइज : 19 x 25 सेंमी 0

प्लास्टिक लेमीनेटेड टाइटल

प्रामाणिकता का आधार है

- इसकी लेखिका आशारानी व्होरा जो महिला विषयों की विशेषज्ञ एवं सुप्रसिद्ध लेखिका हैं।
- इसमें लिए गए 25 से अधिक डाक्टरों के इण्टरव्यू जो अपने विषयों के विशेषज्ञ हैं तथा सरकारी व गैर सरकारी क्लिनिकों में कार्यरत हैं।



पुस्तकें वी० पी० पी० द्वारा संग्रहित का पता -

फोन 529314, 265403, 264191

पुस्तक महल (ए) खारी बावली, दिल्ली - 110006

ध्रांगध्रा केमिकल वर्क्स लिमिटेड

‘निर्मल,’ तीसरी मंजिल, २४१ बैकबे रिक्लेमेशन

नरीमन पाइंट, बंबई ४०० ०२१

सार : SODACHEM

फोन : २३०७४३-२३४२७८

२३४३३०-२३४४२७

भारत में हैवी केमिकल्स के क्षेत्र में अग्रणी

अब अंतरराष्ट्रीय बाजार में भी प्रस्तुत :

* अपग्रेडेड इलमनाइट *

(सिथेटिक रूटाइल ९०-९२ TiO_2)

हमारे बनाये हुए रसायन :

* कास्टिक सोडा

* सोडियम बाइकार्बोनेट

* कैल्शियम क्लोराइड

* लिक्विड क्लोरीन

* सोडा एश

* अमोनियम बाइकार्बोनेट

* ट्राइक्लोरो एथिलीन

* हाइड्रोक्लोरिक एसिड

* साल्ट *

दि हिंदुस्तान शुगर मिल्स लिमिटेड

गोला गोकर्णनाथ, जिला-खीरी, (उत्तर प्रदेश)

शुद्ध श्वेत दानेदार शक्कर, रेफिटफाइड और डिनेचर्ड स्पिरिट,

शुद्ध अल्कोहल और औद्योगिक उपयोग में आनेवाली अल्कोहल

के उत्पादक

रजिस्टर्ड कार्यालय :

बजाज भवन, नरीमन पाइंट,

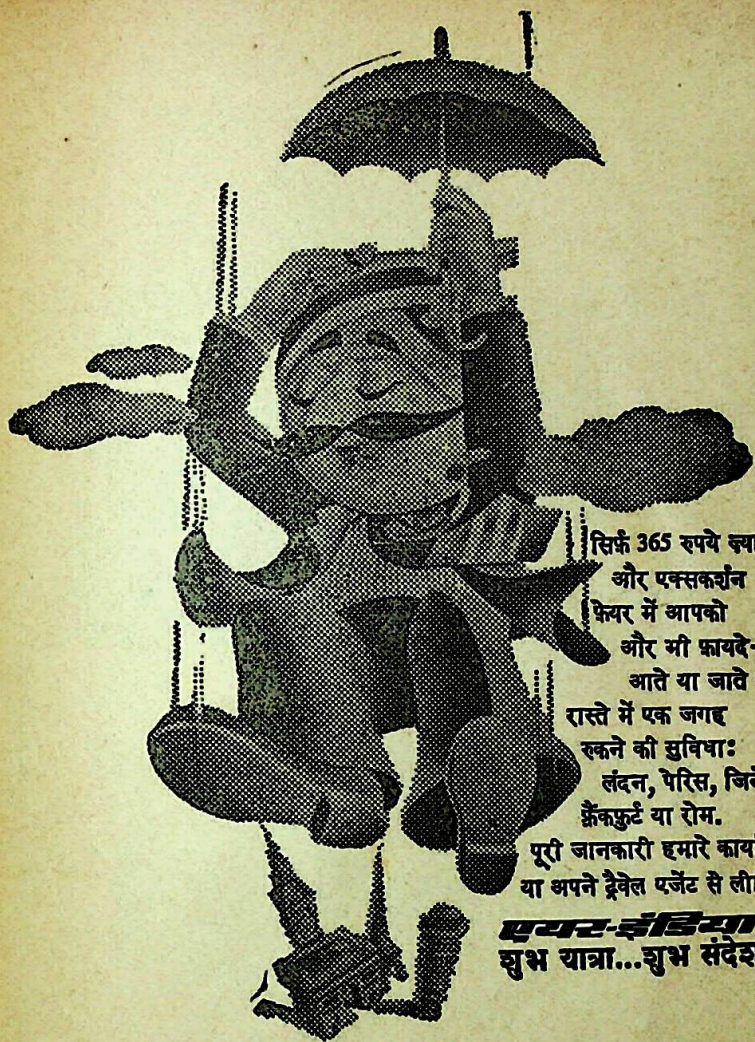
बंबई-४०००२१

टेलिफोन : २३३६२६

टेलेक्स : ०११-२५६३

टेलिग्राम : श्री (SHREE)

उचित व्यापार संबन्धन के सदस्य



सिर्फ 365 रुपये ब्यादा
और एक्सकर्सन
फ़ेयर में आपको
और भी फ़ायदे—
आते या जाते कब
रास्ते में एक जगह
रुकने की सुविधा:
लंदन, पेरिस, जिनेवा,
क्रैंकफ़र्ट या रोम.

पूरी जानकारी हमारे कार्यालय
या अपने ट्रेवल एजेंट से लीजिए

एयर-इंडिया
शुभ यात्रा...शुभ संदेश

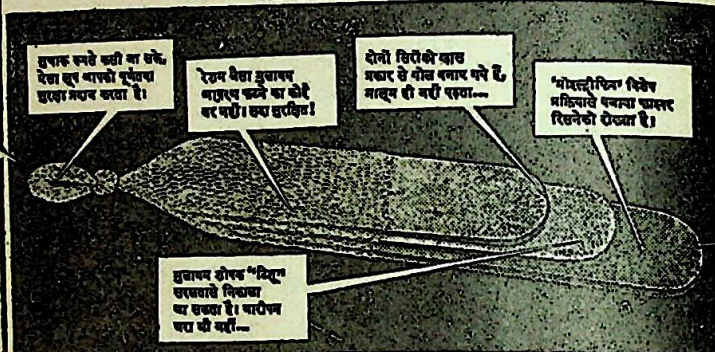
AL-1508

**अमेरिका जाते समय
यूरोप में ठहरते हुए जाइए.**

[आप जैसा चाहती हैं वैसा ही सामान्य]

‘क्लिन’

सेनिटरी नेपकिन



APC

- छिरी रखने वाले क्लिन क्लिन में अपना रोनाना बीरन सुरक्षा से बाव करने के लिए बास्ती कावते निश्चय साबनी की बाव कली का रही हैं। क्लिन बाव के निश्चय इन सभी साबनी का एकमात्र बनाव है।
- सर्वेन से अधिकारी निश्चय का ही प्रत्येक कर रही हैं।



एच.डी. बाव से निश्चय प्रदान

क्लिन
मॉडर्न
(मॉडर्न) एच.डी.
बोली २५५२२२

‘क्लिन’ सुखदायी और किफायती

आपने मुन्ने से जैसा बर्ताव करें ...
 वैसे ही बर्ताव करें उसकी सर्दी से भी.
 प्यार-दुलार के साथ कुछ सख्ती भी.



रबेक्स

क्या आप जैसा ही है. सर्दी के साथ सख्ती से
 प्यार करता है. आपके मुन्ने को आराम दिलाता है.

रबेक्स

सर्दी से राहत दिलानेवाली...

जलन व चिपचिपाहट रहित तेज़ासर दवा.

क्वायकोडिन के निर्माता (Mundie) प्लेस्मिक की ओर से
 जो अनेक प्रकार की आधुनिक दवाएं बनाते हैं.

everest/665/ACW-100

१९७९

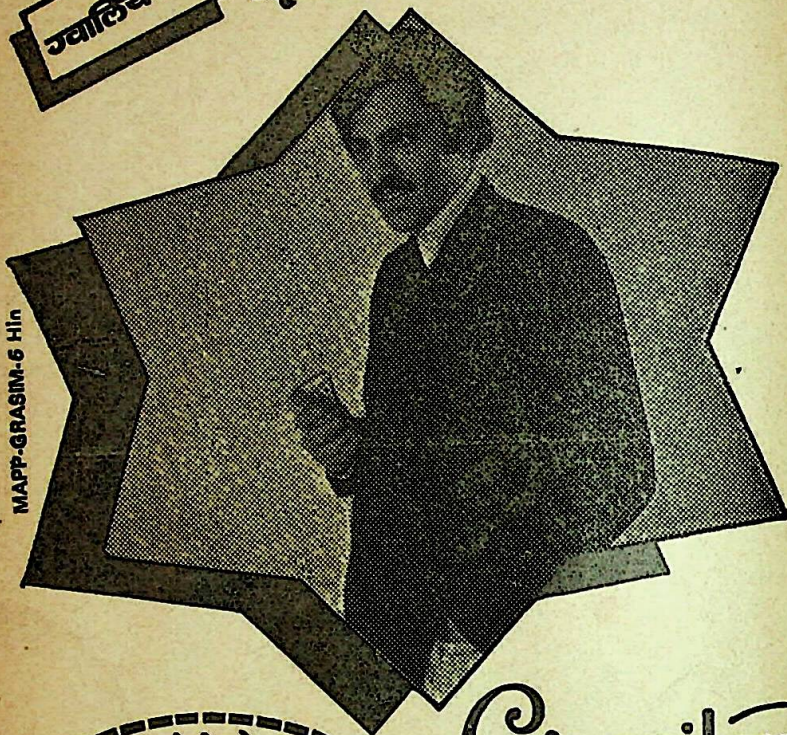
७

हिंदी डाइजेस्ट

ग्वालियर के

क्षितिज पर नया सिताच...

MAPP-GRASIM-6 Hin



ग्रासीलीन से
बने कपड़े शीघ्र ही
सभी प्रमुख स्टोर्स पर
उपलब्ध



दि ग्वालियर रेयन सिल्क मेन्युफैक्चरिंग
(वीर्विंग) कम्पनी लिमिटेड
स्टेपल फ्राइबर डिवीजन
विरलाग्राम, नागदा (एम.पी.)

Grasilene

सूटिंग्स/शर्टिंग्स
तथा अन्य कपड़े
वैज्ञानिक मिश्रित धागे ग्रासीलीन के बने।

Grasilene

कृत्रिम सामान्य विस्कोज
तथा अन्य प्राकृतिक रेशों से बना एक
आश्चर्यजनक उच्च कार्यकारिता वाला
मिश्रित धागा !



संस्थापक
स्व. श्रीगोपाल नेवटिया
प्रबंध-संचालक
हरिप्रसाद नेवटिया

संपादक
नारायण दत्त
सहसंपादक
सुरेश सिन्हा
उपसंपादक
गिरिजाशंकर त्रिवेदी

व्यापार-व्यवस्थापक महेंद्र महेता

वर्ष २८ : अंक २

इस अंक में

फरवरी १९७९

पद्म-वृष्टि	संपादक की डाक से	११
जापानी एन्सिक्लोपिडिया	डा. बी. शंकरन्	१७
गणों से दूर हटता चीन	अवधनंदन	२०
उड़न-सस्तूरियां	जयंत वि. नारळीकर	२६
तुम एक सिसकती शबनम को.....	जानकीवल्लभ शास्त्री	३३
स्मृतियों में जीना ही बुढ़ापा है	जेम्स कैलागैन	३४
महान भारतीय	जयप्रकाश नारायण	३६
बिंदु (कविता)	पद्मा सचदेव	४०
वर्षनों और साम्यवादियों से जूझ चुके पोप	मनुगुप्त	४१
मैं माताहारियों की माया	सुरेश सिन्हा	४५
लेख-प्रतियोगिता का परिणाम	४८
विज्ञान-विदु	केजिता	४९
रूसी राष्ट्रपति के साथ एक रात	मुहम्मद हैकल	५४
विष्णु : तीन कविताएं	इंदु जैन	५६
विकल्प (मराठी कहानी)	शरु रांगणेकर	५७
दिव्य प्रेम	श्रीमाताजी	६०
कितने-कितने कुकुरमुत्ते	देवेन्द्र मेवाड़ी	६४

औरत क्लक मर्दों की नजर में
 बूढ़ो, अपने को बदलो
 विद्युत्गति जीव-जंतुओं में
 अपनी-अपनी अंतर्हित आग (कविता)
 महामौन की गोद में
 रेखांकित हास्य
 जालसाजों का दुश्मन
 स्वामी ब्रह्मानंद
 स्मृति के अंकुर
 एक अस्पताल का जन्म (बंगला कहानी)
 काला ताजमहल
 बंटवारा करने में आप कितने कुशल हैं
 मनुष्य छोटा है, छोटा ही सुंदर है
 व्यसन
 हत्या के बावजूद (हिंदी कहानी)
 बचपन की यादें
 फूल कैसे खिलते हैं
 स्वर्गादिपि गरीयसी
 दो क्षण तो हंस लें

डा. अरुण कुमार मिश्र	७४
बाबा पृथ्वीसिंह आजाद	७८
सुरेश सिंह	८१
पृथ्वीनाथ शास्त्री	८५
कुमार प्रशांत	८६
.....	९०
बलवीर सिंह	९१
प्यारेलाल श्रीमाल	९४
दत्त, त्रिवेदी, चौरसिया	९७
रमापद चौधुरी	१००
धीरेन्द्र कुमार दीक्षित	१०९
.....	११६
नेमिशरण मित्तल	१२०
प्रफुल्लचंद्र ओझा 'मुक्त'	१२९
मनहर चौहान	१३०
जान रोवान	१३४
मुकुलचंद पांडेय	१४२
भवानीदत्त जोशी 'पारखी'	१४८
व्यास, गुप्ता, शर्मा	१५९



चित्रसज्जा : अबू, डा. जगदीश गुप्त, ओके, शेणै, सतीश चन्हाण, प्रह्लाद बेहेरा,
 दत्तप्रसन्न राणे, टी. ए. राणा ।



श्री हरिप्रसाद नेवटिया द्वारा नवनीत प्रकाशन लिमिटेड, ३४१, ताडदेव, बंबई-३४ के लिए
 प्रकाशित तथा श्री बेंकटेश्वर प्रेस, ३६/४८ खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग, बंबई-४ में मुद्रित।



पत्र-वृष्टि

हिंदी के वयोवृद्ध और प्रमुख पत्रकार-संपादक श्री बनारसीदास चतुर्वेदी के लेख 'महान पत्रकार संत निहालसिंह' (जनवरी अंक) के माध्यम से इस भूले-बिसरे पत्रकार की स्मृति को आज की पीढ़ी के पत्रकारों के सम्मुख रखकर नवनीत ने बड़ा उपकार किया है। उस लेख से मेरी भी शाल्यकाल की कुछ स्मृतियां उभर आयीं।

शायद इस शती के द्वितीय शतक की बात है। मैं हरिद्वार में गंगा-पार शिवालक की तराई में घने वनों में नील धारा के तट पर गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी का छात्र था। हमारे आचार्य प्रा. रामदेवजी की संत निहालसिंहजी से घनिष्ठता थी। उनके संपादकत्व में आर्यसमाज की ओर से अंग्रेजी में मासिक 'वैदिक मैगजीन' गुरुदत्त भवन, लहौर से प्रकाशित होती थी; उसमें संतजी के लेख भी कभी-कभी छपा करते थे।

देहरादून से वे सपत्नीक दो-तीन बार गुरुकुल भी आये थे। हम बालकों से वे खूब प्रेम करते और हमारी दिनचर्या के कई कार्यों में शामिल होते थे। छात्रों की सभा में उनके भाषण भी हुए। उनसे यह सुनकर हम बच्चों को तब आश्चर्य हुआ था कि अमरीका में सवारी का साधन इक्के और तांगे नहीं हैं; वहां मोटर-गाड़ियां हैं, जो तेल से चलती हैं और पीछे धुआं छोड़ती हैं।

परंतु मैं समझता हूं, श्री चतुर्वेदीजी ने हिंदी पत्रकारों और लेखकों द्वारा संत निहालसिंह की उपेक्षा की जाने की जो शिकायत की है, वह उचित नहीं है। कारण, निहालसिंहजी का हिंदी लेखन व पत्रकारिता से कोई संबंध नहीं था। उनके समस्त लेख अंग्रेजी में और अंग्रेजी पत्रों के लिए ही होते थे—भले उनमें से कुछ का अनुवाद श्री चतुर्वेदीजी के 'विशाल भारत' तथा अन्य किसी पत्र में प्रकाशित हुआ हो। वे अंग्रेजी के ही अंतरराष्ट्रीय लेखक थे और प्रायः विदेशों के बारे में ही लिखते थे। उनका समूचा जीवन, रहन-सहन अंग्रेजी ढंग का ही था। किसी हिंदी-संस्था से वे अपना तादात्म्य नहीं जोड़ सके। देहरादून में रहते हुए भी वे वहां की जनता और संस्थाओं से प्रायः कटे हुए ही थे। इसमें मैं उनका विशेष दोष नहीं मानता; क्योंकि उस युग का बुद्धिजीवी और शिक्षित व्यक्ति प्रायः 'सुपीरियॉरिटी कॉम्प्लेक्स' से ग्रस्त होकर विदेशोन्मुखता में ही गौस्व समझता था।

इसी कारण, संत निहालसिंह का मृत्यु-

चंदे की दरें

(भारत में) एक वर्ष : २४ रु., दो वर्ष ४६ रु.,
तीन वर्ष : ६६ रु.। विदेशों में समुद्री डाक से :
एक वर्ष : ६० रु.; दो वर्ष : १०५ रु.; तीन
वर्ष : १५० रु.। विदेशों में हवाई डाक से :
एशियाई देशों के लिए एक वर्ष का १२० रु.,
दो वर्ष का २१० रु., तीन वर्ष का ३०० रु.,
एशिया के अलावा अन्य देशों के लिए एक
वर्ष १५० रु., दो वर्ष : २७५ रु. और तीन
वर्ष : ४१० रु.।

समाचार हिंदी के—और संभवतः अंग्रेजी के
भी—पत्रों द्वारा उपेक्षित रहा। आज के तो
बहुत कम पत्रकार उनका नाम भी जानते
होंगे। —दीनानाथ सिद्धांतालंकार, जयपुर
* हमें खेद है कि श्री चतुर्वेदीजी के लेख के
अंत में उनके पते में फीरोजाबाद की जगह
फीरोजपुर छप गया। कई पाठकों ने इस
ओर हमारा ध्यान खींचा है। —संपादक

[२]

श्री चतुर्वेदीजी के लेख में संत निहाल-
सिंहजी के चित्र के स्थान पर श्री चतुर्वेदीजी
का चित्र देखकर विस्मय हुआ। आशा है,
भविष्य में जिस व्यक्ति के विषय में लेख हो,
उसी का चित्र भी प्रकाशित करेंगे।

—अविनाशचंद्र श्रीवास्तव, इलाहाबाद
* बहुत प्रयत्न करके भी हम संतजी का चित्र
प्राप्त न कर सके। यदि आप या अन्य कोई
पाठक उनका चित्र भेज सकें, तो हम कृतज्ञ
होंगे। श्री चतुर्वेदी का चित्र उस लेख के
लेखक के नाते छपा गया है। —संपादक
नवनीत

जनवरी के नवनीत में शिल्पिन थानकी
की रचना बहुत उत्कृष्ट थी। उसमें मीर
और नज़ीर की सादगी और हाली और
गालिब के दर्शन का बड़े ही कौशल के साथ
समन्वय हुआ है। इस वाग्वैदग्ध्य के लिए
कवि को बधाई। हरमन चौहान के 'कफन
ईसा मसीह का?', 'रावणदाह' पर श्री
प्रेमाचार्य की सटीक टिप्पणी, ओझाजी के
'भारतीय भाषा का पहला सचित्र मासिक'
ने मेरी ज्ञानवृद्धि की। विश्वनाथ द्वारा
प्रस्तुत 'आपरेशन माइंड-कंट्रोल' का सार
पढ़कर चकित हुआ। वैसे हमारे यहां प्रशा-
सन मस्तिष्क-नियंत्रण तकनीक में इतना
आगे बढ़ गया है कि सरकारी कर्मचारी में
सत्य को सुनने कहने का साहस ही नहीं रहता
और जो कर्मचारी जितना ही कायर होता
है, उतना ही उच्च पद प्राप्त करता है।

—विश्वप्रकाश दीक्षित बटुक, नयी दिल्ली

०००

'कफन ईसा मसीह का?' বেশকি रोचক
था। यदि कोई मठ श्री शंकराचार्यजी अथवा
श्री रामानुजाचार्यजी की चादर का प्रदर्शन
आरंभ कर दे और आप उस पर सचित्र लेख
छापें, तो वह भी रोचक ही होगा। शायद
आपको ज्ञात हो, तूरीन के कफन की 'वैज्ञा-
निक जांच' १९६९ में भी हुई थी; मगर
उसका परिणाम कभी छपा नहीं। देखना
है, इस बार की जांच का परिणाम क्या
है या नहीं। —आनंद माधव, लखनऊ

०००

इसी अंक में श्री धीरेन्द्र कुमार दीक्षित

करवी

कालेख 'काला ताजमहल' छपा है। उसके छपने के बाद लेखक ने कुछ और जानकारी श्रेणी है, जिसमें से कुछ यहां प्रस्तुत है :

१. मथुरा रिफाइनरी यमुना नदी में प्रति-
दिन ३ करोड़ लिटर अपशिष्ट द्रव छोड़ेगी;
इस प्रकार दूषित हुआ यमुना-जल स्वास्थ्य
के लिए खतरा पैदा करेगा।

२. रिफाइनरी को मथुरा से हटाकर ताज के दक्षिण-पूर्व में इटावा के पास लगाने से ताज प्रदूषणकारी तत्वों और धुएँ से बच सकेगा।

३. प्रदूषण के असर से बचाने के लिए ताज पर संरक्षक-पुताई (प्रोटेक्टिव कोटिंग) करने या मिलान (इटली) के मशहूर गिरजे पर की गयी रासायनिक क्रिया करने का सुझाव कुछ ने दिया है। एक तो यह सब समय खाऊ और खर्चीला है, दूसरे इससे ताज के सौंदर्य को क्षति पहुंचेगी।

• • •

बहुत समय बाद जनवरी अंक के सबके हव चुटकुले पसंद आये। नोबेल-पुरस्कृत लेखक सिगर की 'एक शादी ब्राउन्सविल में' पढ़कर वैसी ही आंतरिक प्रसन्नता हुई, जैसी 'गोल्डमंड और नार्सिस' पढ़कर हुई थी।

—चंद्रकांत पारिख, इलाहाबाद

• • •

कार्टून-पृष्ठ हर बार दें । साथ ही कार्टून-
निष्ठों के नाम भी । —मणि, बेंगलूर

—मणि, बेंगलूर

• • •

श्री फकीरचंद तुली की कृति 'आज'
(जनवरी अंक) में मुझ जैसे उन लाखों-

११७९

कृपया रचना भेजते समय उसके साथ पर्याप्त टिकट लगा लिफाफा अवश्य भेजा करें। अन्यथा रचना को न तो वापस किया जायेगा, न उसके विषय में पत्र-व्यवहार किया जायेगा। कृपया यह आशा भी न करें कि रचना हमारे यहां रखी रहेगी और बाद में कभी डाक-टिकट भेजकर मंगवायी जा सकेगी। —संपादक

करोड़ों बदकिस्मत विस्थापितों के दुःख को अत्यंत रम्य अभिव्यक्ति मिली है, जिन्हें देश के विभाजन के फलस्वरूप स्वर्गादिपि गरी-यसी जन्मभूमि को जन्मभूमि कहने के अधि-कार से वंचित कर दिया गया है, जिनसे आशा की जाती है कि अपनी जन्मभूमि के सपूतों को भाई न कहें, दुश्मन मानें। इसमें ननकाना साहब का उल्लेख मेरी भाव-नाओं को और अधिक कुरेदता है; क्योंकि यदि मैं कभी अपनी जन्मभूमि को 'मत्था टेकने' जाने का सौभाग्य पा सकूँ, तो मुझे पवित्र ननकाना साहब लांघकर जाना होगा।

—इंद्रचंद्र भारंग, इलाहाबाद

...

मैंने देखा है कि अंग्रेजी से अनुवाद करते समय 'मिलियन' में दिये गये आंकड़ों को लाख-करोड़ के भारतीय क्रम में बदलने में लोग अक्सर गड़बड़ कर जाते हैं। संस्कृत में 'मिलियन' (दस लाख) के अर्थ में 'प्रयुत' शब्द है, जो आप्टे के संस्कृत-अंग्रेजी कोश में

हिंदी डाइजैस्ट



राष्ट्रपति केनेडी के 'हत्यारे' ओस्वाल्ड पर गोली दागते हुए जैक रबी का यह चित्र हमारे पाठक श्री क्रांतिचंद्र, नागपुर ने जन-वरी अंक का पुस्तक-संक्षेप पढ़कर हमें भेजा है। उन्हें धन्यवाद।

ही नहीं, प्रायः प्रत्येक भारतीय भाषा के बड़े कोश में मिलता है। उसे अपनाने से अनुवाद में गलती से बचा जा सकता है। इसी-तरह दस हजार के लिए संस्कृत का 'अयुत' शब्द भी ग्रहणीय है।

—कृष्णलाल कोटडावाला, बंबई

* जैसा पहले किसी टिप्पणी में भी हमने लिखा था, कन्नड में 'मिलियन' को 'मिलिय' बनाकर पचा लिया गया है। —संपादक

०-०

'पत्र-वृष्टि' स्तंभ में अवश्य पढ़ता हूँ;

नवनीत

इसमें प्रबुद्ध पाठकों के विचार और संपादक की ज्ञानवर्धक टिप्पणियां रहती हैं। किंतु दिसंबर अंक की 'पत्र-वृष्टि' में केवल नामी-गिरामी लेखकों के पत्र थे। क्या ये पत्रे भी नामी लेखकों के लिए आरक्षित हो जायेंगे और प्रबुद्ध किंतु अप्रसिद्ध पाठकों के विचार छपने से रह जायेंगे?

श्री सुंदरलाल बहुगुणा के उद्धृत लेख 'यूकेलिप्टस कितना घातक' ने महत्त्वपूर्ण नयी जानकारी दी।

* इस पत्र के लेखक के हस्ताक्षर पढ़ने में हम असमर्थ रहे। —संपादक

०००

श्री बहुगुणाजी ने यूकेलिप्टस में जो अनेक दुर्गुण दर्शाये हैं, वे सही हो सकते हैं। मगर जब तक ऐसा कोई वृक्ष न सुझाया जाये जो यूकेलिप्टस की तरह जल्दी और भरपूर ईंधन देता हो, गांवों में उसके प्रचार-प्रसार को रोकना शायद संभव न होगा।

—ज्ञानवती कपूर, लुधियाना

०००

दिसंबर अंक का प्रथम लेख 'हमारी रेलों का आधुनिकीकरण' दिलचस्पी से पढ़ा। उसमें पृष्ठ २८ पर एक्सल-काउंटर का जिक्र इन शब्दों में किया गया है—'लखनऊ की मानक संस्था ने इसका विकास किया है।' इससे ऐसा लगता है, जैसे एक्सल-काउंटर को स्वतंत्र रूप से प्रथम बार इस संस्था ने ईजाद किया है। वस्तुतः ऐसी बात नहीं है। आगे पृष्ठ २९ पर १,५०० 'वाट' तथा २५,००० 'वाट' नहीं, 'वोल्ट' होना चाहिये। क्या

‘सितल गिरेगा’ (पृष्ठ २७) के वजाय
 ‘सितल शुकेंगा’ नहीं होना चाहिये ?
 ‘स्मृति के अंकुर’ स्तंभ में छपा ‘वे कातर
 वे’ पता नहीं कितने शिकारियों को शिकार
 से विरत करा पायेगा । परन्तु मेरी आंखों के
 सामने तो श्री मनुभाई, मृत हिरनी और
 कातर नेत्रों वाले छाने का चित्र घूम रहा है ।

—र. च. निगम, वाराणसी

* ‘सितल गिरना’ तो लगभग मुहावरा बन
 गया है । —संपादक

०००

श्री ज. प्र. चतुर्वेदी ने ‘हमारी रेलों का
 बाधुनिकीकरण’ में पृष्ठ ३२ पर ‘शान-ए-
 बदन’ को लखनऊ को दिल्ली से जोड़ने
 वाली गाड़ी बताया है । वास्तव में वह गोरख-
 पुर को लखनऊ से जोड़ती है ।

‘भारत का प्रथम पितृहंता राजवंश’
 (डा. अ. ला. श्रीवास्तव) के संदर्भ में, यह
 जानकारी पाठकों को दिलचस्प लगेगी कि
 मगध-सम्राट बिंबिसार जिस कारागार में
 कैद था, वह आज भी राजगीर (जि. नालंदा,
 बिहार) में रेल्वे स्टेशन से ‘रोप-वे’ जाने
 वाली मुख्य सड़क के बायीं ओर लगभग एक
 किलोमीटर की दूरी पर मौजूद है । वह
 लगभग २०० फुट लंबा और उतना ही
 चौड़ा है । कहते हैं, इस कारागार से बिंबि-
 सार गृध्रकूट पर स्थित भगवान बुद्ध को
 देख सकता था ।

—सूर्यकांत त्रिपाठी,
 शेरपुर (मिर्जापुर), उ. प्र.

०००

श्री रमेशदत्त शर्मा का ‘अव दालों की

१९७९

कुछ पाठकों से हमें पत्र मिले हैं कि जनवरी
 अंक में छपी कविता ‘आज’ से उनकी धार्मिक
 भावनाओं को ठेस पहुंची है । यह जानकर
 हमें बहुत दुःख हुआ ; क्योंकि सब धर्मों और
 उनके महापुरुषों का समादर करना नवनीत
 का नियम है ।

पंजाबी में छप चुकी इस छोटी कविता
 को हमने इसलिए चुना था कि देश-विभाजन
 में अरना जन्मस्थान गंवा बैठने वालों का
 गहरा दर्द इसमें मुखरित हुआ है—खासकर
 सिक्खों का, जिनके लिए उनके कई पवित्र
 धर्मस्थान ‘विदेश’ हो गये । कवि ने इसी की
 शिकायत व्यंग्यशैली में सीधे गुरु नानक-
 देवजी से की है ।

हमारे अनजाने में हमारे पाठकों की
 धार्मिक भावनाओं को ठेस पहुंची, इसके
 लिए हम क्षमाप्रार्थी हैं । —संपादक

वारी है’ (दिसंबर अंक) बहुत ही अच्छा
 लगा । कितना अच्छा हो कि इस प्रकार की
 कृषि-संबंधी जानकारी नवनीत में प्रत्येक
 अंक में हो । साथ ही यह भी बताया जाये
 कि नये विकसित बीज कहां, किस मूल्य पर
 मिल सकते हैं ; इससे कृषकों को लाभ होगा ।

—महावीर प्रसाद शर्मा,
 सरवाड (अजमेर), राजस्थान

०००

नवनीत में जो कविताएं आप प्रकाशित
 करते हैं, वे पत्रिका के स्तर को देखते हुए
 घटिया और उथली होती हैं । पत्रिका का
 कलेवर ऐसी ओछी कविताओं से न भरकर

हिंदी डाइजेस्ट

उच्च कोटि की भावपूर्ण, सरस तथा सुंदर कविताओं से सजायें, तो सोने में सुगंध होगी। —भगवतीप्रसाद, अलीगढ़, उ. प्र.

०००

सितंबर अंक में पृष्ठ ३५ पर आचार्य कृपलानी की उक्ति पढ़ी। वास्तव में यह शब्द 'कृपलानी' न होकर 'कृपालानी' है। रोमन लिपि में लिखते समय हमें 'ण' के लिए भी 'एन' का ही उपयोग करना पड़ता है; क्योंकि उस लिपि में 'ण' के लिए कोई अक्षर नहीं है। लेकिन हिंदी पत्र-पत्रिकाओं को तो 'कृपालानी' लिखने में कोई दिक्कत नहीं होनी चाहिये।

हमारे सूचना व प्रसारण मंत्री का नाम भी बहुधा अशुद्ध लिखा जाता है; उनका नाम वास्तव में 'लालकृष्ण आडवाणी' है, न कि 'लालकृष्ण आडवानी'। सिंधी शब्द

'आडवाणी' में 'ड' अक्षर के स्थान पर जो सिंधी अक्षर है, वह हिंदी भाषा में होता ही नहीं है। इसलिए नागरी में सिंधी लिखते समय प्रायः नागरी के 'द' अथवा 'ड' को रेखांकित करके काम चलाया जाता है।

—अनंत कृपालानी, आदिपुर—कल

०००

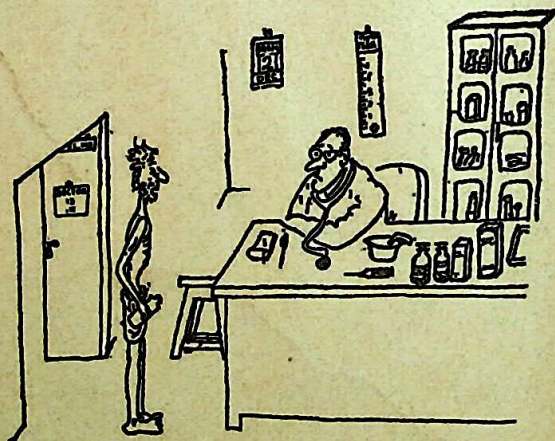
पेशे से किसान हूं। कृपया हम किसानों के लिए भी थोड़ी-बहुत सामग्री दिया करें। कुछ महीने आपने 'हरा कोना' स्तंभ चलाया था, वह उपयोगी था। बंद क्यों कर दिया?

—अनिल कुमार गुप्ता, पूर्णिमा-८५४३११

०००

अब नवनीत में 'वाक्यदीप' प्रकाशित नहीं हो रहा है; उस पृष्ठ से मुझे आत्मिक शांति और ज्ञान-दीप्ति मिलती थी।

—नारायणराव टकले, महू (कैट), म. प्र.



डाक्टर साहब, आपका बताया टानिक तो मैंने लिया; पर उसे खरीदने के लिए मुझे पांच दिन भूखे रहना पड़ा।

(अवू : इंडियन एक्सप्रेस)

संपादकीय पत्र-व्यवहार का पता: नवनीत हिंदी डाइजेस्ट, ३४१, ताडदेव, बंबई-४०००१

देश के कुछ हिस्सों में फैल रहे रोग जापानी एन्सिफेलाइटिस से निश्चय ही आप लोग भी चिंतित होंगे।

जापानी एन्सिफेलाइटिस ऐसा रोग है, जो मुख्यतः मस्तिष्क को और उसके चारों ओर की झिल्लों को प्रभावित करता है। यह रोग पैदा होता है एक विषाणु से जो तंत्रिकाओं से विशेष रूप से संलग्न हो जाता है। तंत्रिकाओं से संलग्न होने वाले एक अन्य विषाणु से ही पोलियो (पोलियोमाइलाइटिस) होता है; वह विषाणु सुषुम्णा (स्पाइनल कार्ड) से संलग्न हो जाता है।

एन्सिफेलाइटिस के विषाणु को मनुष्य के शरीर में पहुंचाता है उसका वाहक मच्छर। क्यूलेक्स मच्छरों की सात किस्में हमारे यहां इस विषाणु के वाहक के रूप में पहचानी गयी हैं। एनोफेलिस मच्छर की एक किस्म को भी यह विषाणु फैलाते पाया गया है।

विषाणु जब मस्तिष्क में पहुंच जाता है तो वहां सूजन पैदा करता है। यह सूजन शरीर का रक्षण और संचालन करने वाली महत्वपूर्ण क्रियाओं में बाधा डालती है। अंततः जब बीमारी प्रबल हो जाती है और महत्वपूर्ण क्रियाएं रुक जाती हैं, तब रोगी की मृत्यु हो जाती है।

इसलिए इस रोग-संक्रमण की बुनियादी चिकित्सा यह है कि दवा देकर सूजन उतारी जाये, जिसके लिए मैनिटाल और डेकाड्रोन जैसी दवाइयां दी जाती हैं। इस चिकित्सा से सूजन घट जाती है, खास करके अगर

जापानी एन्सिफेलाइटिस

डा. बी. शंकरन्

महानिदेशक-स्वास्थ्यसेवा, भारत सरकार

चिकित्सा आरंभिक अवस्था में ही शुरू कर दी जाये तो।

यह रोग जैसा कि आप भी जानते होंगे, दक्षिण पूर्व एशिया के और भी कई देशों में देखा गया है—विशेषतः फिलिपाइन्स, इंदो-नेसिया, थाइलैंड, मलेशिया और जापान में। इसके विषाणु को जापान में पृथक् किया गया था, इसलिए उसे 'जापान-बी एन्सिफेलाइटिस' कहा गया। इससे यह स्पष्ट है कि इस रोग की दूसरी कई किस्मों के विषाणु भी पृथक् किये जा चुके हैं।

यों एन्सिफेलाइटिस कोई नया रोग नहीं है। पहले भी दूसरे विषाणुओं की मेहरबानी से इस रोग की वारदातें होती रही हैं। मच्छरों के उन्मूलन का उद्देश्य यह है कि यह एन्सिफेलाइटिस फैले नहीं। इसलिए इस रोग की रोकथाम के कार्यक्रम का सबसे महत्वपूर्ण पहलू है मच्छरों का उन्मूलन—विशेषतः क्यूलेक्स मच्छरों का उन्मूलन।

● 'आकाशवाणी' से सामार ●

पिछले पांच वर्षों में जापानी एन्सिफेलाइटिस ११ हजार भारतीयों की जान ले चुका है। पिछले साल (मध्य दिसंबर तक) देश के सोलह राज्यों से ६,६०० नागरिकों को यह रोग होने की सूचना मिली; उनमें से २,३५९ की मृत्यु हो गयी। कविराज बृहस्पतिदेव त्रिगुण तथा अन्य कई आयुर्वेदिक चिकित्सकों ने दावा किया है कि आयुर्वेद द्वारा सभी प्रकार के एन्सिफेलाइटिस का उपचार संभव है, और सफलतापूर्वक किया भी जा रहा है।

क्युलेक्स मच्छरों की जो किस्में यह रोग फैलाती हैं, वे प्रायः धान के खेतों में और शहरों में गंदे पानी के जमावों में रहती हैं। बड़े शहरों की गंदी बस्तियों, गंदे नालों और चहबच्चों में भी वे पनपती हैं। मच्छरों की आवादी बहुत बढ़ने न देने के लिए इन स्थलों पर दवा का छिड़काव करना चाहिये। छिड़काव पी-एक्स-ई, मेलाफियोन, पाइरेथ्रान या डी. डी. टी. में से किसी का भी किया जा सकता है।

घर के भीतर और बाहर की दीवारों पर छिड़काव करना भी बहुत जरूरी है। इससे मच्छरों की आवादी काफी हद तक घटेगी। अगर छिड़काव करके मच्छरों की आवादी घटा दी जाये तो बीमारी की वारदातें भी कम होती जायेंगी। छिड़काव की कार्रवाई बड़ी हद तक उन सभी इलाकों में शुरू हो चुकी है, जहां से रोग के संक्रमण की खबरें आयी हैं। इसलिए हमें आशा है नवनीत

कि कुछ समय बाद वक्त के साथ-साथ इसकी वारदातें कम होती जायेंगी। मगर एक दिन में दूर नहीं हो जायेगा यह रोग।

दुर्भाग्य से इस रोग में मृत्युदर बहुत ऊंची है। लेकिन बीमारी अगर शुरू में पहचान ली जाये तो मृत्युदर निश्चय ही नीची की जा सकती है। फिर भी जो लोग मरने से बच जाते हैं, उनमें रोग के कुछ परिणाम या अवशेष रह जाते हैं। बहुधा वे बोलने में असमर्थ हो जाते हैं; या उन्हें मतिभ्रंश हो जाता है, जिससे उन्हें आसपास की चीजों का बोध नहीं होता। उन्हें आधे शरीर का पक्षाघात (अरधंग) हो सकता है या हाथों और पैरों का पक्षाघात। इसलिए भी जरूरी है कि इस रोग का बहुत गंभीरता से उपाय किया जाये।

यह तो मैं विस्तार से कह ही चुका हूँ कि मच्छर इस रोग के विषाणु का वाहक है और उसका उन्मूलन आवश्यक है। वर्षों पहले जब हमारे देश में इस विषाणु को पृथक् किया गया था तब यह भी पता चला था कि इसके दूसरे भी 'मध्यवर्ती मेजबान' (इन्टर मीडियरी होस्ट हैं)—विशेषतः सूअर और बत्तख। चौपायों में सूअर के सिवा और कोई 'मेजबान' नहीं देखने में आया है। ये 'मध्यवर्ती मेजबान' विषाणु के स्टोर का काम करते हैं और रोग फैलाते हैं। इसलिए जरूरी है कि विशेषतः रोगाक्रांत इलाकों में सूअरों को दूर रखा जाये और उनके बाड़ों में दवा का छिड़काव किया जाता रहे।

मच्छर जब सूअर को काटता है, विषाणु

सूअर के शरीर में पहुंच जाता है और वहां से वह मनुष्य में पहुंच सकता है, हालांकि सूअर को रोग नहीं भी हो सकता। सौभाग्य से हमारे यहां सूअर उतनी बड़ी संख्या में पाले नहीं जाते, जितने कि दक्षिण-पूर्व एशिया के कई देशों में पाले जाते हैं। इसलिए हमारे यहां वे उतना बड़ा सिरदर्द नहीं हैं। जापानी एन्सिफेलाइटिस की रोकथाम का दूसरा साधन है टीका (वैक्सीन)। अभी तो यह टीका दुनिया-भर में सिर्फ जापान में बनता है। इसलिए बहुत सीमित मात्रा में उपलब्ध होता है। चूंकि वे मरिक्का में विषाणु का इंजेक्शन देकर यह टीका तैयार किया जाता है। सामान्यतः चार से दस दिन के अंतर से दो बार टीका लगाया जाता है। अटलांटा (अमरीका) के सेंटर फॉर कम्युनिकेबल डिजीजेस के अनुसार, इस टीके से प्राप्त होने वाली सुरक्षा औसत से लेकर अच्छी तक पायी गयी है।

जापान में इस टीके का उपयोग मुख्यतः पांच वर्ष के या उससे छोटे बच्चों पर किया जा रहा है; क्योंकि इससे बड़ी उम्र वालों को इस रोग के विषाणु का संक्रमण हो चुका होगा और उनमें इसके प्रति अवरोध पैदा हो चुका होगा।

यह टीका बेहद महंगा है; इसलिए नहीं कि इसे बनाने में बहुत खर्चा आता है, बल्कि इसलिए कि इसे बहुत निम्न तापमान पर बर्फी सादधानी से रखना पड़ता है। विशेष-

तः एक स्थान से दूसरे स्थान पर लाते-ले जाते हुए इसे ऋण ६ से ऋण ३० अंश के तापमान पर रखना पड़ता है। परिणामतः इसकी एक खुराक २० रुपये की पड़ती है।

मगर बड़े पैमाने पर टीके का सहारा लेने से जो हमें चीज रोक रही है, वह खर्च की चिंता नहीं है। टीके का अत्यंत सीमित मात्रा में प्राप्त होना और उसे सुदूर रोग-स्थल तक पहुंचाने की कठिनाइयां इसमें अड़चन डाल रही हैं। साथ ही आबादी के इतने बड़े वर्ग पर इसके इस्तेमाल के लाभ भी अभी पक्के तौर पर सिद्ध नहीं हुए हैं।

मगर हमें अंततः अपने ही देश में टीके का निर्माण शुरू करना ही होगा; क्योंकि ऐसा नहीं लगता कि इसी साल यह रोग पूरी तरह थम जायेगा। मगर टीके का निर्माण आरंभ करने से पहले विशेषज्ञों से बहुत सलाह-मशवरा करना होगा, बहुत-सी जांच-पड़ताल करनी होगी, उसकी क्षमता और आम जनता को उसकी प्राप्ति का हिसाब लगाना होगा, उत्पादन व भंडारण और इतने बड़े देश में सर्वत्र उसके वितरण की समस्याओं को समझना होगा।

मेरी अपील तो यह है कि गंदे पानी के तलैयाँ और मच्छरों के उन्मूलन में और दवा के छिड़काव में सारा समाज हिस्सा ले, जहां तक संभव हो मच्छरदानियों का उपयोग किया जाये और मच्छरों को मुसीबत बनने से रोक जाये।



जापानी अधिकारी इन दिनों चीन के भविष्य को लेकर एक विचित्र पहली बूझने में व्यस्त हैं। गत वर्ष के आरंभ में जापान और चीन के बीच संधि-वार्ता चल रही थी, तब दोनों देशों के बीच क्षेत्रीय विवाद का प्रश्न भी सामने आया था। इस पर चीन के उपप्रधान-मंत्री तेंग स्याओ-पिंग ने सुझाव दिया कि क्षेत्रीय विवाद पर दस-बीस वर्षों तक विचार नहीं करना चाहिये। 'उसके बाद कौन जाने चीन में कैसी व्यवस्था रहे' उन्होंने कहा था।

तब तो तेंग की उस बात पर किसी ने ज्यादा ध्यान नहीं दिया था। पर चीन की हाल की घटनाओं को देखते हुए उनकी उस छोटी-सी उक्ति के अनेक अर्थ लगाये जा रहे हैं। दूर की कौड़ी लाने वाले कुछ प्रेक्षकों का तो यह भी कहना है कि चीन में वस्तुतः गैर माओवादी व्यवस्था की स्थापना के प्रयास आरंभ भी हो गये हैं; और यह भी कि इन प्रयासों का नेतृत्व तेंग स्याओ-पिंग ही कर रहे हैं।

नवंबर १९७८ में चीन में जो कुछ हुआ, उसकी कुछ समय पहले कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। प्रदर्शनों और पोस्टरों की बाढ़ तो वहां पहले भी अनेक बार आयी है; परंतु पहले ये सब माओ त्से-तुंग के विचारों के समर्थन में होते थे। इस बार उनमें जनतांत्रिक अधिकारों की मांग की गयी और सामंती फासिस्ट तानाशाही को समाप्त करने का आह्वान दिया गया। इतना ही नहीं, इस बार प्रदर्शनकारियों ने 'जनतंत्र जिंदाबाद!' के नारे लगाये और गुप्त मतदान से चुनाव कराने की मांग की।

प्रदर्शनकारियों का आरोप था कि चंद नेताओं के दकियानूसीपन के कारण ही चीन आर्थिक रूप से पिछड़ा हुआ है। एक पोस्टर में चुनौतीपूर्ण शब्दों में पूछा गया था—'हम ताइवान से पीछे क्यों रह गये? हमारी अर्थव्यवस्था उनके मुकाबले आगे क्यों नहीं बढ़ रही?' एक अन्य पोस्टर में सीधी चोट की गयी थी—'मुट्ठी-भर लोगों की बदनाम चौकड़ी दस साल तक देश में मनमानी कैसे करती रही?'

साफ बात थी कि चीनी क्रांति के बाद स्थापित व्यवस्था के आधारभूत सिद्धांतों को ही ये लोग चुनौती दे रहे थे। राजनैतिक विसहमति का यह अभियान एकाएक नहीं भड़क उठा था। पिछले कितने ही महीनों से माओ त्से-तुंग के विचारों की सार्थकता

को लेकर चीनी नेताओं में जमकर बहस चल रही है। माओ ने स्वयं गलतियाँ सुधारते रहने पर जोर दिया था; यह दीगर बात है कि उन्होंने स्वयं शायद ही कभी कोई गलती स्वीकार की हो। लेकिन माओ के कथनों का ही हवाला देकर अब तेंग स्याओ-पिंग व उनके समर्थक कह रहे हैं कि माओ ने भी अपने जीवन-काल में अनेक गलतियाँ की हैं। 'वे कुशल रणनीतिज्ञ थे। उनके ७० प्रतिशत काम सही थे, तो ३० प्रतिशत गलत भी थे।' दूसरे शब्दों में, माओ मसीहा नहीं, बल्कि साधारण मनुष्य थे।

तीस वर्षों तक सुबह से लेकर आधी रात तक, जीवन के प्रत्येक क्षेत्र और प्रत्येक क्रिया-कलाप के लिए माओ-विचार को दिव्यदाणी से भी अधिक पवित्र और प्रभावी मानने वाले देश के लिए माओ की यह मानव-छवि सचमुच अनजानी है। १९४५ से चीनी साम्यवादी माओ-विचार को शास्त्र-सिद्धांत का सर्वोत्तम सार मानते रहे हैं। सन पचास वाले दशक में थोड़े समय चले वैचारिक उदारता के दौर में जब 'सौ फूलों को साथ-साथ खिलने दो' के नारे का जोर था, तब भी माओ-विचार को सीधी चुनौती नहीं दी गयी थी। और सांस्कृतिक क्रांति के दौरान तो माओ की लाल किताब चीन के युवा क्रांतिकारियों की नजरों में, जीवन और जगत की सभी समस्याओं का नैकालिक समाधान प्रस्तुत करने वाली धर्म-पुस्तक बन गयी थी। लेकिन अब माओ के उत्तराधिकारी ही कह रहे हैं कि वे समा-

धान गलत थे।

बात कहां तक पहुंच गयी है, इसका अंदाज कराता है चीन के 'क्वांगमिंग दैनिक' में प्रकाशित एक लेख, जिसमें सन साठ वाले दशक में चली सांस्कृतिक क्रांति को राष्ट्र के लिए अपव्ययकारी कहा गया है। यह लेख माओ के एक भूतपूर्व सचिव ने लिखा है, जिसे सांस्कृतिक क्रांति के दौर में पदच्युत किया गया था। उसने सुझाव दिया है कि चीन की वर्तमान सरकार-नियंत्रित अर्थ-व्यवस्था समाप्त की जाये और उसकी जगह पश्चिमी ढंग की अर्थव्यवस्था स्थापित हो।

अवधनंदन

इतना ही नहीं, विवादों का फैंसला पार्टी के अफसरों पर न छोड़कर न्यायाधीशों को सौंपा जाये।

'पीपल्स डेली' के ७ नवंबर १९७८ के अंक में छपा काओ चैन-तुंग नाम के एक सैनिक का पत्र भी चीन में चल रहे सैद्धांतिक विवाद का स्पष्ट संकेत देता है। इस पत्र में काओ ने पूछा है—'जनता अपने लिए प्रबंध करने वाले और अपने हितों तथा मांगों को व्यक्त करने वाले अधिकारियों का चुनाव क्यों नहीं कर सकती?' अपने पत्र में काओ ने इस मान्यता को चुनौती दी है कि पार्टी या सरकार द्वारा नियुक्त अधिकारी जनता के हितों और अपेक्षाओं को समझते हैं। उसका कहना है—'चुनाव कराने से जनता को सचमुच लगेगा कि वह स्वामिनी है। आप ही विचार कीजिये कि जब किसी

अफसर का भाग्य-निर्णय जनता के हाथ में रहेगा, तो क्या वह (अफसर) लोगों को आतंकित कर सकेगा, या व्यक्तिगत फायदा उठा सकेगा, या धोखाधड़ी कर सकेगा ?

जनतंत्र में भी नौकरशाही के भ्रष्टाचार और मनमानी भुगत चुके हम लोगों को काओ चैन-तुंग का पत्र खामखयालियों से भरा लग सकता है; किंतु परिवर्तन की जिस कामना ने उसे पत्र लिखने को प्रेरित किया, उसे कैसे कम आंका जा सकता है?

वस्तुतः 'क्वांगमिंग दैनिक' और 'पीपुल्स डेली' में प्रकाशित इस तरह की सामग्री के पीछे सबसे बड़ी प्रेरणा काम कर रही है तेंग स्याओ-पिंग की। तेंग को १९७६ में 'पूँजी-वादी मार्ग का राहगीर' कहकर अपने पद से बर्खास्त कर दिया गया था। अपने जीवन के अंतिम वर्षों में माओ ने स्पष्ट रूप से

जान लिया था कि तेंग का समूचा दृष्टिकोण माओ-विचारधारा के प्रतिकूल है। इस खतरे को समझ-कर ही उन्होंने १९७६ में पीकिंग के तिएन आन मीन चौराहे पर चाउ-स्मृति को लेकर हुए प्रदर्शनों के दो दिन बाद ही तेंग को सत्ताच्युत करा दिया था। लेकिन माओ की मृत्यु के बाद तेंग न सिर्फ वापस अपने पद पर आ गये, बल्कि उन्होंने सन २००० में अमरीका की बराबरी कहने की जरूरत नहीं कि नवनीत

माओ-विचार को दरगुजर करके चीन के तेजी से आधुनिकीकरण का अभियान भी शुरू कर दिया।

माओ ने पिछले बीस वर्षों में स्वावलंबन पर लगातार जोर दिया था, किंतु अब चीन को विदेशी सहायता से कोई परहेज नहीं रह गया है। १९७८ के आरंभ में चीन के केंद्रीय अधिकारियों ने प्रांतीय और उपप्रांतीय अधिकारियों को विदेशी व्यापारिक प्रतिष्ठानों से सौदे तय करने के भी कुछ अधिकार दे दिये। साथ ही साथ स्थानीय कारखानों के लिए विदेशी उपकरण खरीदने के लिए विदेशी मुद्रा की मात्रा भी दो गुना कर दी गयी। इसी बीच चीन में विदेशी वस्तुओं के आयात की भी छूट दे दी गयी, ताकि लोगों को विश्वास हो जाये कि वर्तमान नेता चीनियों का जीवन-रापन स्तर ऊंचा उठाना चाहते हैं।



तेंग स्याओ-पिंग

तेंग की इन आर्थिक नीतियों के अंतर्गत ही चीन के ५० प्रतिशत काम-गारों के वेतन में वृद्धि की गयी जो कि १९६२ के बाद पहली वेतन-वृद्धि है, और अनेक कारखानों में निश्चित परिमाण से अधिक उत्पादन करने पर नकद बोनस देने की योजना शुरू की गयी।

फरवरी

कट्टर माओवादी नकदबोनस के सुझाव को 'पूँजीवादी प्रोत्साहन' मानते रहे हैं। उनकी मान्यता है कि श्रमिक लोग मुनाफे के लालच से नहीं, बल्कि सैद्धांतिक शिक्षण और प्रेरणा से ही अधिक उत्पादन करते हैं। इसके विपरीत, तेंग का कहना है कि सैद्धांतिक विवाद के चक्कर में चीन का काफी नुकसान हो चुका; अब हमें तेजी से अपनी अव्यवस्था को २१ वीं सदी के लिए तैयार करने और देशवासियों का जीवन-यापन-स्तर ऊंचा उठाने के काम में जुटना चाहिये।

तेंग सैद्धांतिक चर्चा को कितना कम महत्व देते हैं, यह उनकी एक उक्ति से बड़े पैनेरूप में प्रकट होता है—'विल्ली चाहे काली हो या सफेद, अगर वह मूसे भारती है तो कामकी है। चीन के त्वरित आर्थिक-विकास में तेंग पूँजीवादी विल्ली के उपयोग के लिए भी तैयार हैं।

अब तो चीन में स्पष्टतः स्वीकार किया जाने लगा है कि 'औद्योगिक-आर्थिक विकास की हमारी तेजी से बढ़ती प्यास को बुझाने के लिए यदि पूँजीवादी स्रोतों का भी कुछ पानी चुराना पड़े, तो क्या हर्ज है !' किंतु क्या चोरी का पानी चीनियों की साम्यवादी मनोरचना को भी प्रभावित नहीं करेगा ? पूँजीवादी चावों का चस्का एक बार लग गया, तो उसे छुड़ाया कैसे जायेगा ?

चीन के वर्तमान नेताओं में इसकी सबसे अधिक चिंता शायद पार्टी चैयरमैन एवं प्रधान-मंत्री हुआ कुओ-फेंग और उनके अनुयायियों को है। हुआ जरूरी परिवर्तन के

पक्षपाती तो हैं, परंतु माओवाद को पूरी तरह तिलांजलि देने के हक में नहीं हैं। चीनी मामलों के कुछ विशेषज्ञों का तो कहना है कि हुआ और तेंग वस्तुतः चीन के शासक-वर्ग में दो जुदा गुटों के प्रतिनिधि हैं। हुआ के मुख्य समर्थक हैं कट्टर माओवादी, जबकि तेंग की शक्ति का आधार है औद्योगिक विकास के साथ पनप रहा आधुनिक प्रबंधकों-व्यवस्थापकों का वर्ग। वर्षों तक माओ-विचारधारा के एकछत्र प्रभाव के कारण दबे हुए बुद्धिजीवियों का भी समर्थन तेंग को प्राप्त है। जैसे-जैसे विदेशों से चीन का संपर्क बढ़ रहा है, वैसे-वैसे चीनी राजनयिकों, वैज्ञानिकों, तकनीकी विशेषज्ञों में भी तेंग का प्रभाव बढ़ रहा है।

नवंबर १९७८ के पोस्टर-प्रदर्शन अभियान के दिनों में तो अनेक प्रेक्षकों ने कहा भी था कि इस अभियान की ओट में तेंग-हुआ का ही शक्ति-संघर्ष है और इस अभियान को तेंग का आशीर्वाद प्राप्त है। अनुमान शायद निराधार न रहा हो; परंतु दिसंबर १९७८ के आरंभ तक यह बात स्पष्ट हो गयी कि तेंग भी इस संघर्ष को निर्णायक परिणाम तक पहुंचाने की स्थिति में नहीं हैं। मामले को हाथ से निकलता देखकर ही उन्होंने एक वाक्य में सारे अभियान को रफा-दफा कर दिया। उन्होंने कहा— 'माओ ७० प्रतिशत सही और ३० प्रतिशत गलत थे, मैं तो ६० प्रतिशत ही सही और ४० प्रतिशत गलत हूं।' मतलब बिलकुल सीधा था कि तेंग माओवादी नीतियों को

पूरी तरह से बदलकर भी माओ के मिथक को नष्ट नहीं करना चाहते।

माओ का मिथक आज भी चीन के शासक वर्ग को जोड़े रखने में सहायक है। उसे पूर्णतया नष्ट करने का अर्थ होगा चीनी नेताओं में खुला आपसी संघर्ष। ऐसा संघर्ष अगर छिड़ गया तो चीन का त्वरित आर्थिक विकास करने की तेंग की तमन्ना पूरी होने के वजाय कुछ ज्यादा ही पिछड़ जायेगी। इस खतरे को समझकर ही तेंग तथा उनके समर्थकों ने हुआ-विरोधी संघर्ष को धीमा करने का निश्चय किया हो, तो आश्चर्य नहीं होना चाहिये। कुछ आर्थिक प्रेक्षकों ने तो यह भी कहा है कि तेंग इस समय संघर्ष को तेज करके विदेशी पूंजी के विनियोजकों को पसोपेश में नहीं डालना चाहते। स्थायित्व और आंतरिक शांति की तस्वीर प्रस्तुत करके ही वे विदेशी पूंजी को आकृष्ट कर सकते हैं।

तेंग के वक्तव्य के बाद चीन के उथल-पुथल-भरे वातावरण में बदलाव आया। चीनी अधिकारी माओ-विरोधियों की शक्ति को सुरक्षित और कम जोखिम वाली दिशा में मोड़ने का प्रयत्न करने लगे। सरकारी इशारे पर चैयरमैन हुआ के समर्थन में भी प्रदर्शन होने लगे, जिनमें 'अनुशासन-सहित जनतंत्र' के नारे लगाये गये। प्रदर्शन के दौरान एक वक्ता ने माओ की गलतियों को सुधारने की बात कहने के साथ ही प्रदर्शनकारियों को चेतावनी दी कि वे शरारती तत्त्वों से सावधान रहें और कानून तथा नवनीत

व्यवस्था का पालन करें। इसी बीच एक पोस्टर में माओ-विरोधियों को चेतावनी दी गयी कि वे अपनी हरकतों से वाच आये। चेतावनी बेअसर न रहे, इसलिए स्वयं तेंग ने कनाडा के एक पत्रकार से बातचीत में कहा—'दीवार पर जनतंत्र की बात अच्छी है। परंतु इन पोस्टरों में कई बातें गलत भी थीं। हर चीनी जानता है कि चैयरमैन माओ के बिना आज का नया चीन अस्तित्व में भी नहीं आता।'

हो सकता है, माओ के प्रति तेंग की यह श्रद्धापूर्ण उक्ति केवल तात्कालिक राज-नैतिक स्वार्थ से प्रेरित हो। किंतु यह बशी भी संदिग्ध है कि इस तरह की उक्तियां चीन में भीतर ही भीतर चल रहे संघर्ष को अधिक समय तक दबा रख पायेंगी। कारण, यह संघर्ष जितना सत्ता-शक्ति का है, उतना ही विचारों का भी है। वर्षों तक सारी दुनिया से अलग-थलग रहने के बाद एक विशाल राष्ट्र सर्वथा अपरिचित परिस्थितियों और पूर्णतया अनजानी व्यवस्थाओं के संपर्क में आ रहा है। दिसंबर १९७८ के आरंभ में चीनियों ने तेंग स्याबो-पिंग की जापान-यात्रा की फिल्म दूरदर्शन पर देखी, उसी के माध्यम से ही उन्हें उन्नत जापान के वैभवपूर्ण जीवन का पहली बार परिचय मिला।

अब १ जनवरी १९७९ से संयुक्त राज्य अमरीका ने भी चीन को मान्यता दे दी है। इस मान्यता के साथ ही चीन के संपर्कों में और वृद्धि होगी। ऐसी स्थिति में चीनियों

के मन में अपनी व्यवस्था के संबंध में उठ रही शंकाएं यदि विस्फोटक रूप लें, तो आश्चर्य नहीं होना चाहिये। वस्तुतः प्रद-
र्शनों के पहले दौर के बाद उन्हें नियंत्रित करने का सरकारी प्रयत्न शुरू होते ही

चीन में एक पोस्टर लगा था—‘तुम लोग जनता पर एक बार फिर खामोशी थोप सकते हो। लेकिन इससे कोई समस्या हल नहीं होगी।’ कौन कह सकता है कि पोस्टर की चेतावनी गलत है ?



नानी की दुकान

दुकान का नाम है—‘नानी की दुकान’। मगर वह भारत के किसी शहर में नहीं बल्कि बेल्जियम के एंटवर्प नगर में है और उसे चलाती भी एक बेल्जियन महिला ही हैं। एंटवर्प में शायद ही कोई भारतीय प्रवासी होगा। पर भारतीय वहां काफी संख्या में आते रहते हैं—खासकर भारतीय व्यापारी जहाजों के खलासी। एंटवर्प करमुक्त बंदरगाह (फ्रीपोर्ट) है, इसलिए वहां कई चीजें काफी सस्ती मिलती हैं और नानी की दुकान बंदरगाह जाने वाली सड़क पर ही है।

यह दुकान वैसे है काफी पुरानी—शायद दो-तीन बरस में इसकी स्वर्ण-जयंती मनायी जाये। उसका मूल नाम ‘क्लेरियस मार्टिंस’ था। तीस साल पहले नया नामकरण हुआ—‘नानी की दुकान’। यह हिंदी नाम क्यों ? भारतीय खलासियों को आकृष्ट करने के लिए। बाप जानते हैं, हमारे व्यापारी जहाजों के खलासी विभिन्न प्रांतों के होते हुए भी हिंदी में काम चलाते हैं। दुकान की सफलता का राज यह है कि इसकी मालकिन ‘नानी’ अकयास हिंदी बोलती हैं। हास-परिहास से भरी उनकी हिंदी सुनकर भारतीय खलासी दांतों तले उंगली दवाते हैं। वे ही ‘नानी’ के भाषागुरु हैं और ‘नानी’ खिताब भी उन्हीं का दिया हुआ है। ‘पहले पैसा, बाद में भगवान’, ‘नानी की दुकान में एक ही दाम, नहीं दूसरा दाम’, ‘बच्चा, मेरे दोस्त !’ जैसे वाक्य नानी के मुख से ऐसे निकलते हैं कि कोई भारतीय ग्राहक धाली हाथ नहीं लौटता। आधी रात के बाद भी, ‘नानी’ कहकर आवाज देने पर दुकान खुल जाती है और ग्राहक घड़ी, रेडियो जैसे चीजें खरीद ले जाता है। अगर माल पसंद नहीं आया, तो एक साल बाद भी लौटाकर दूसरा माल लिया जा सकता है।

बलती उम्र की नानी ऐसी चुस्त और चुलबुली हैं, मानो चढ़ती जवानी की हों। इनके पति उम्र में इनसे दस साल छोटे हैं। इनका असली नाम इवान डी मिंक है। नानी सिर्फ हिंदी ही नहीं, तमिल, मलयालम, गुजराती, बंगला आदि कई अन्य भारतीय भाषाओं का भी कामचलाऊ ज्ञान रखती हैं। इन भाषाओं का शुद्ध उच्चारण खलासियों से सीखने के लिए वे खास-खास वाक्य ‘टेप रिकार्डर’ पर अंकित कर लेती हैं।

—रा. वीलिनाथन् [आइसक रोडरिको के एक लेख पर से]



उड़न - तश्तरियां

उड़न-तश्तरियां फिर चर्चा का विषय बन गयी हैं और इस बार केवल उड़ती चर्चा नहीं है। न्यूजीलैंड में एक टेलिविजन-टोली ने उसके चित्र खींचे हैं। क्या सचमुच उड़न-तश्तरियों का अस्तित्व है? देश के एक विख्यात विज्ञानी की राय पढ़िये।

जयंत वि. नारळीकर

२४ जून १९४७ के दिन ३२-वर्षीय अमरीकी व्यापारी केनेथ आर्नल्ड अपना विमान स्वयं चला रहा था। विमान से ही उसने उथली थाली जैसी कुछ वस्तुएं आकाश में उड़ती देखीं। उसने बताया कि वे वाशिंग्टन राज्य में माउंट रेनियर के पास से उत्तर से दक्षिण की ओर जा रही थीं। उसके इस अनुभव को समाचारपत्रों ने खूब उछाला और 'उड़न-तश्तरियां' शब्द प्रचार में आया।

उसके बाद बहुतों ने कहा कि हमने भी वैसी ही चीजें देखी हैं। कोई बाहरी शक्ति पृथ्वी पर नजर रखे हुए है, उसके यान हमारे वायुमंडल में चक्कर काट रहे हैं, ऐसी घटनाएं हमारे चारों ओर घट रही हैं जिन्हें आधुनिक विज्ञान कूत नहीं पा रहा है—आदि तरह-तरह की बातें जब बड़े पैमाने पर कही जाने लगीं, तो अमरीकी सरकार के लिए यह जरूरी हो गया कि वह इन उड़न-तश्तरियों

नवनीत

के मामले में दखल दे।

सन १९४८ में अमरीकी वायुसेना ने 'प्रोजेक्ट साइन' नाम से इस मामले की खोजबीन शुरू की। १९४९ में 'प्रोजेक्ट ग्रज' और १९५२ में 'प्रोजेक्ट ब्लूबुक' प्रकल्प भी इसी उद्देश्य के लिए हाथ में लिये गये। इनमें से ब्लूबुक प्रकल्प १९६९ में बंद कर दिया गया। इसके अलावा, अमरीकी वायुसेना ने रैंड कारपोरेशन नामक निजी कंपनी को भी उड़न-तश्तरियों की खोज का काम सौंपा। इन सब जांच-पड़तालों का परिणाम जो निकला, वह यों था:

१. उड़न-तश्तरियों से पृथ्वी को किसी प्रकार का खतरा नहीं है।

२. उड़न-तश्तरियों अथवा वैसी चीजों के देखे जाने के ज्यादातर समाचार दृष्टिभ्रम अथवा गलत गवाही पर आधारित हैं।

३. उगते और अस्त होते हुए गुरु, शुक्र

मंगल आदि ग्रहों को अथवा पृथ्वी पर ही बने आकाशयानों को देखकर अनेक लोगों को यह भ्रम हो गया कि उन्होंने दूसरे ग्रह पर से आयी उड़न-तश्तरियां देखी हैं।

‘यू. एफ. ओ.’ (अन्-आइडेन्टिफाइड फ्लाईंग आब्जेक्ट) यह नाम प्रायः आकाश में दिखने वाली अनचीन्ही वस्तुओं को दिया जाता है। जब यह पता चल जाये कि वह वस्तु क्या है, तो फिर वह यू. एफ. ओ. नहीं रह जाती। इस प्रकार, यू. एफ. ओ. मानी गयी ९० प्रतिशत चीजों की सही पहचान हो जाने से वे यू. एफ. ओ. नहीं रह गयीं। तथापि सामान्य जन यू. एफ. ओ. का मत-सब उड़न-तश्तरियां ही लगाते हैं।

मगर बहुधा पूछा जाता है, जिन यू. एफ. ओ. की पहचान अभी तक नहीं हो सकी, उनकी क्या व्याख्या है? इसी तरह यह भी आक्षेप किया जाता है कि इन सब जांचों की रिपोर्टें पूरी की पूरी छापी नहीं जातीं; उनके कुछ अंश सुरक्षा की दृष्टि से दबा दिये जाते हैं। यह भी आक्षेप कतिपय उड़न-तश्तरी-समर्थक करते रहे हैं कि यह सिद्ध हो जाने पर भी कि ये उड़न-तश्तरियां हैं, वायुसेना ने इस बात को छिपा दिया। परंतु हाल में ही ‘डि-क्लासिफाइ’ किये गये यानी अध्ययन के लिए खोल दिये गये गुप्त कागज-पत्रों से यह स्पष्ट हो जाता है कि इन संदेहों एवं आक्षेपों में कोई दम नहीं है।

उलटे, पिछले कुछ वर्षों में विशेषज्ञों ने यू. एफ. ओ. के व्योरो की जांच शुरू की, तो ऐसे कई ‘केस’ हल हो गये, जो अब तक हल

नहीं हो पाये थे। वातावरण के तापमान में व्युत्क्रम (टेम्परेचर इन्वर्शन) होने से आकाश में मृग-मरीचिका दिख सकती है। केनेथ आर्नल्ड कांड में ऐसा ही हुआ होगा।

७ जनवरी १९४८ को अमरीकी वायु-सेना के कैप्टन टामस मेंटल की आकाश में ऊंचाई पर दिखने वाले यू. एफ. ओ. का पीछा करते हुए संदेहास्पद स्थिति में मृत्यु हो गयी। बाद में पता चला कि जो यू. एफ. ओ. उन्होंने देखे, वे शुक्र ग्रह की दिशा में थे। परंतु उसी समय अमरीकी नौसेना के स्काइहुक गुब्बारे भी वहीं ६० हजार फुट की ऊंचाई पर छोड़े गये थे। चूंकि मेंटल के विमान को इतनी ऊंचाई पर जाने की आवश्यकता नहीं थी, इसके कारण उनके पास आक्सिजन-उपकरण नहीं थे। इसलिए इतनी अधिक ऊंचाई पर जाते हुए वे बेहोश हो गये होंगे और उनका विमान नीचे गिर पड़ा होगा—विशेषज्ञों का ऐसा अनुमान है।

परंतु इस घटना के कारण अमरीकी गुप्तचर संस्था सी. आइ. ए. को उड़न-तश्तरियों में दिलचस्पी हुई। उन स्काइ-हुक गुब्बारों का उपयोग रूस की जासूसी करने के लिए किया जाना था। अगर वैसे ही गुब्बारे रूस भी काम में ला रहा हो तो? संक्षेप में कहें तो कुछ यू. एफ. ओ. गुप्तचरी के लिए छोड़े गये मानव-निर्मित अंतरिक्ष-यान ही हों, इस संभावना से इन्कार नहीं किया जा सकता। ऐसी यू. एफ. ओ. की जानकारी उसे छोड़ने वाले देश से मिलने की अपेक्षा तो की ही नहीं जा सकती।

उड़न-तश्तरियां विलकुल गप्प हैं ऐसी कहें, तो भी उसका यह अर्थ नहीं कि पृथ्वी से परे जीव नहीं है। उलटे, पिछले कुछ वर्षों में अनेक विशेषज्ञों ने यह तर्क रखा है कि हमारी ही आकाशगंगा में ऐसी दस लाख सभ्यताएं हो सकती हैं, जो तकनीकी में हमसे आगे बढ़ी हुई हों। इस मामले में फ्रैंक ड्रेक नामक खगोल-विज्ञानी के नाम पर प्रसिद्ध ड्रेक-सूत्रों का उपयोग किया जाता है। उसवे: मुख्य अंश ये हैं:

क. आकाशगंगा में तारों के निर्माण की रफ्तार;

ख. तारों के गिर्द ग्रह-मंडल का निर्माण होने की संभावना।

ग. ग्रह-मंडल बन जाने पर उसमें जीव को धारण करने में समर्थ ग्रह के अस्तित्व की संभावना।

घ. ग्रह में जीव का उद्भव होने की संभावना।

ड. जीव के समुन्नत स्थिति में पहुंचने की संभावना।

च. अत्यंत समुन्नत सभ्यता की आयु-मर्यादा।

इस सभी घटकों को गुणा करने पर आकाशगंगा में अत्यंत समुन्नत जीवसृष्टि की संख्या प्राप्त होगी। मगर घटक 'क' को छोड़कर बाकी घटकों की जानकारी अभी हमें बहुत कम है। इसलिए ऐसा न समझें कि दस लाख सभ्यताओं की बात अचूक है। फिर भी मोटे तौर पर यह संख्या मान लेने में कोई हर्ज नहीं।

नवनीत

इतनी सब सभ्यताओं के रहते उनसे हमारे अंतरिक्ष में आने वाली तश्तरियों का प्रमाण क्या मिले बिना रहता? एक छोटा-सा हिसाब लगायें तो इसका उत्तर 'नहीं' में मिलेगा। वह हिसाब यों है:

आकाशगंगा में लगभग १०० अरब तारे हैं। मान लें कि इनमें से हमारा सूर्य उन १० प्रतिशत तारों में है, जिनके बारे में किसी समुन्नत सभ्यता को ऐसा लगे कि इसमें कुछ विशेष देखने को मिल सकता है। १० अरब की संख्या को १० लाख से भाग दें तो उत्तर आयेगा १०,०००। इसका अर्थ यह हुआ कि ऐसी प्रत्येक सभ्यता यदि प्रतिवर्ष १०,००० अंतरिक्ष-यान इन तारों की ओर भेजे, तो प्रतिवर्ष औसतन एक 'उड़न-तश्तरी' हमें दिखाई देगी। 'वर्ष' रूपी काल-खंड अति समुन्नत सभ्यता की काल-गणना में बहुत ही छोटा होता है, इसलिए एक वर्ष में १०,००० यान छोड़ना—सो भी बिना मानकर—क्या असंभव-सा नहीं है? इसलिए आजकल आये साल उड़न-तश्तरियों के देखे जाने के जो वाक्य छपते रहते हैं, वे बहुत विश्वसनीय तो नहीं ही माने जा सकते।

उड़न-तश्तरियों के समर्थक शायद यह दावा करेंगे कि ये तश्तरियां विशेषतः पृथ्वी की ओर ही भेजी गयी होती हैं—वे योगायोग से इधर नहीं आ जातीं। यदि ऐसी बात है, तब तो हमारी मानव-सभ्यता आकाशगंगा में विशेष महत्त्व की होगी। ऐसी महत्त्वपूर्ण सभ्यताएं १० लाख से बहुत

तथाकथित 'उड़न-तश्तरी' के चित्र, जो न्यूजीलैंड की एक टी. वी. कैमरा-टोली ने साउथ आइलैंड के कैकूरा प्रदेश पर से उड़ते विमान से लिये हैं। बाद में न्यूजीलैंड की वायुसेना ने स्काइहाक युद्ध-विमान उड़न-तश्तरी की टोह लेने को तैनात किये। उधर जिनोवा (इटली) के पुलिस सिपाही फार्चुनाटो जानफ्रेट्टा ने दावा किया है कि हाल में उसे दो बार उड़न-तश्तरियां 'उड़ा' ले गयी थीं। उड़न-तश्तरियों द्वारा 'उड़ा' ले जाये गये लोगों के लंबे-चौड़े लेख अमरीकी पत्रिकाएं छाप चुकी हैं।

ही कम होंगी। इस आधार पर भी, प्रति-वर्ष इतनी सारी उड़न-तश्तरियां आयें, यह सही नहीं लगता।

एक और बात पर भी विचार करना आवश्यक है। अंतरिक्ष-युग के प्रारंभ हो जाने के बाद से मानव चंद्रमा तक यात्रा कर आया; सौर मंडल के पार भी यान पहुंच गये। यदि यह सब हो सका है, तो कोई अतिसमुन्नत सभ्यता पृथ्वी पर यान क्यों नहीं भेज पायी?

पहले हम यही कल्पना करें कि ऐसी अतिसमुन्नत सभ्यता मंगल पर अथवा हमारे सौर मंडल के किसी दूरवर्ती ग्रह पर विद्यमान है। हमारे इतने पास रहने वाली और हमसे भिन्न सभ्यता अपनी प्रगति का कोई चिह्न हमें नहीं दर्शाती, क्या यह आश्चर्य की बात नहीं है? सीधे प्लेटो (ग्रह) से लेकर पृथ्वी तक दौरा करना ही नहीं, पृथ्वी

पर से संदेशों का आदान-प्रदान करना भी ऐसी सभ्यता के लिए संभव हो गया होता। पर आज तक वैसा हुआ नहीं है। इसलिए यह सभ्यता इतना पास नहीं हो सकती।

जरा दूर चले तो पृथ्वी से सबसे निकट का तारा लगभग ४ प्रकाश-वर्ष के अंतर पर है। इस दूरी को लांघना ऊर्जा की दृष्टि से, समय की दृष्टि से अथवा इलेक्ट्रानिकनियंत्रणों की दृष्टि से आज की हमारी तकनीकी के लिए संभव नहीं है। मान लें कि किसी अतिसमुन्नत सभ्यता के लिए यह संभव है, तो उस सभ्यता के द्वारा उपयोग किये जाने वाले वाहन यानी अंतरिक्ष-यान निश्चय ही हमारे यानों से अधिक वेगवान होंगे। बैल-गाड़ी और चंद्रमा पर जाने वाले अपोलो-११ यान—इन दोनों की तकनीकी में जो अंतर है, उससे कितने ही गुना अधिक अंतर हमारी अंतरिक्ष-तकनीकी में और तारों के बीच के

अपने लेखकों से

- श्री** संपादकजी, कृपया मुझे बतायें कि नवनीत में आप कौसी रचनाएं लेते हैं ? इस आशय के अनेक पत्र हमें प्रतिदिन मिलते हैं। नवनीत के कुछ अंक देखने से भी इस प्रश्न का उत्तर मिल जायेगा; फिर भी यदि आप हमसे ही जानना चाहें, तो हम कहेंगे कि निम्नलिखित ढंग की रचनाएं हमें नहीं चाहिये:
- क. जो जीवन में अनास्था जगायें, देश के विभिन्न समुदायों में स्नेहसूत्र तोड़ें, व्यक्तिगत आक्षेप करें, सहज-स्वस्थ सुख को ठेस पहुंचायें; या जो कैलेंडर देखकर पर्वों, जयंतियों और पुण्यतिथियों के उपलक्ष्य में लिखी गयी हों।
 - ख. आपके अन्यत्र प्रकाशित लेख का नया संस्करण, कश्मीरी कविता का वाया तमिल उल्था, अल्बतों मोराविया के 'रोम की औरत' का भारतीय रूपांतर 'कौशांबी की कामकन्या', सर्वविदित हास्योक्तियों का श्रेय आपके जिला-महाकवि या तहसील-राजनेता को देने वाले विनोद-प्रसंग।
 - ग. इन विषयों से हमें परहेज है—वेदों में हृदय-प्रतिरोपण, कोसी कला के जंगल में जिराफ और बबरशेर की मुठभेड़, कामायनी में क अक्षर का प्रयोग, महावानर पुराण में मिर्जापुर का उल्लेख, कड़वी लौकी के रस से सर्वरोगों का उपचार, इत्यादि-इत्यादि।
 - * लेखमालाएं या मास-भविष्य लिखने के आश्वासन कृपया हमें न दें; न एक साथ सवा सत्ताईस कविताएं भेजें।
 - * रचना पर्याप्त हाशिया और पंक्तियों के बीच पर्याप्त स्थान छोड़कर सघे अक्षरों में कागज के एक ओर लिखकर या टाइप करवाकर भेजें। भेजने से पहले उसे एक बार पुरे मनोयोग से अवश्य पढ़ लें, भले उस दिन के बजाय अगले दिन की डाक में भेजनी पड़े। कार्बन-कापी न भेजें। लेख के आरंभ या अंत में अपना पूरा डाल-पता दें।
 - * रचना के साथ टिकट लगा और पूरा पता लिखा लिफाफा अवश्य रखें। अन्यथा रचना लौटायी नहीं जायेगी, न उसके बारे में पत्र-व्यवहार होगा।
 - * रचनाएं किसी व्यक्ति के नाम पर नहीं, निम्नलिखित पते पर भेजें:

संपादक—नवनीत हिंदी डाइजेस्ट

नवनीत प्रकाशन लिमिटेड, ३४१, ताडदेव, बंबई-३४

अंतर को लांघ सकने वाली अतिसमुन्नत तकनीकी में होगा। उस अतिसमुन्नत तकनीकी द्वारा निर्मित अंतरिक्ष-यान में और हमारे वर्तमान अंतरिक्ष-यान में अक्षरशः जमीन-आसमान का अंतर होना चाहिये। परंतु उड़न-तश्तरियों देखने का दावा करने वालों द्वारा वर्णित अंतरिक्ष-यान और हमारे अंतरिक्ष-यान में अंतर दिखाई नहीं देता।

इससे दो ही वैकल्पिक निष्कर्ष निकल सकते हैं। एक यह कि जिन्होंने इन यू. एफ. ओ. के दर्शन किये, वे वस्तुतः मानव-निर्मित यान ही देख रहे थे। अथवा उड़न-तश्तरियों का संपूर्ण चित्र ही कल्पनारंजित है। हमें यह भी कहना होगा कि यह चित्र खींचने वालों की कल्पना-शक्ति बहुत मर्यादित थी।

इतना सब कह लेने पर एक प्रश्न उठता है। उड़न-तश्तरियों या ऐसी ही वस्तुओं के प्रति जन-साधारण में इतना आकर्षण क्यों है? इसका उत्तर देने के लिए भौतिक-शास्त्र के वजाय मनोविज्ञान का आश्रय लेना होगा।

अद्भुत, अकस्मात् दिखने वाली, अगम्य, चमत्कारी चीजों और घटनाओं के प्रति मनुष्य में मूलतः ही आकर्षण है। ऐसी चीज या घटना के दृष्टिगोचर होने पर उसका उत्तर खोजने के दो रास्ते हैं। पहला रास्ता वैज्ञानिक दृष्टिकोण से बंधा हुआ है। वह कहता है कि वैज्ञानिक प्रयोगों द्वारा सिद्ध जानकारी अथवा उस पर आधारित सिद्धांत द्वारा ऐसी घटना का कारण-विवेचन किया जाये, या करने की कोशिश की जाये।

हालांकि मनुष्य अपने को 'विचारवान', 'बुद्धिवादी' आदि विशेषज्ञों से विभूषित करता है, पर इस मार्ग का अवलंबन करने वाले मनुष्य बहुत कम हैं।

उलटे, कोई विचित्र वस्तु नजर आते ही ज्यादातर लोग यह मानते हैं कि इसके पीछे कोई (हितकारी या अहितकारी) शक्ति जरूर है और यह चीज हमारे प्रस्थापित विज्ञान की कक्षा से भी बाहर की है। तस्वीर में से राख झड़ने, इम्पोटेंड घड़ी हवा में से प्रकट होने, अथवा मन के प्रश्न को जान लेने आदि घटनाओं से जिन भोले-भाले जीवों को (यदि वे 'विशेषज्ञ' कहे जाते हैं तो 'विशेषज्ञ' शब्द का अर्थ हमें बदलना पड़ेगा!) दिव्यत्व की प्रतीति होती है, वे अगर यह समीकरण लगायें कि यू. एफ. ओ. के साथ, उड़न-तश्तरियों के साथ कोई अतिसमुन्नत जीव जुड़ा हुआ है, तो क्या आश्चर्य।

इस भोलेपन का कैसे लाभ उठाया जाता है और वैज्ञानिक जांचकर्ता किस तरह उसकी कलाई खोलते हैं, इसके दो ताजे उदाहरण मैं दूंगा।

गत कुछ वर्षों में यूरी गेलर के 'पराक्रमों' के कारण जनसामान्य में ऐसा भ्रम प्रचलित हो गया कि मानसिक शक्ति के जरिये बहुत कुछ 'नया' करके दिखाया जा सकता है। दूर बैठकर केवल मानसिक शक्ति के जरिये चम्मच को मोड़ देना अथवा ऐसे दूसरे काम मानसिक शक्ति से किये जा सकते हैं, ऐसा दावा गेलर ने और कुछ हद तक दूसरों ने भी किया था। परंतु शुद्ध

हिंदी डाइजेस्ट

वैज्ञानिक पद्धति से जांचने पर यह स्पष्ट हो गया कि इस दावे में कोई दम नहीं है।

‘वर्म्यूंडा ट्रायंगल’ ऐसा ही एक और मामला है। फ्लोरिडा, पोर्टो रिको और वर्म्यूंडा इन तीन बिंदुओं को जोड़ने वाला समुद्री त्रिकोण ही ‘वर्म्यूंडा ट्रायंगल’ नाम से जाना जाता है। अटलांटिक महासागर का यह भाग और इसके ऊपर का आकाश-खंड अनेक जलयानों और विमानों के अदृश्य हो जाने की वारदातों के लिए बदनाम हो गया है। चार्ल्स वॉलिज नामक लेखक ने एक पुस्तक लिखकर इस त्रिकोण के बारे में रहस्य का जाल रच डाला। इस त्रिकोण के बारे में कही गयी बातें पढ़कर पाठक सोचने लगते हैं—क्या यहां लोकांतरीय जीव हस्तक्षेप करते हैं? विज्ञान द्वारा न हल हो पायी घटनाएं यहां घटती रहती हैं। यहां पर अंतरिक्ष और काल का व्यवहार रहस्यमय है, वगैरह-वगैरह।

परंतु ‘कही गयी’ बातों और वास्तव में घटित अथवा यंत्रों पर रेकार्ड की गयी हकीकतों में कितना अंतर होता है, यह पिछले एक-दो वर्षों में स्पष्ट हुआ है। लारेंस कुश ने अपनी पुस्तक में दिखाया है कि वैज्ञानिक जांच में वॉलिज की बातें कैसी झूठी एवं परस्पर विरुद्ध सिद्ध हुई हैं। वास्तव में पृथ्वी पर अथवा अंतरिक्ष में जैसी दुर्घटनाएं सब कहीं घटती रहती हैं, उनकी तुलना में वर्म्यूंडा त्रिकोण में कोई खास बात है, देखने में नहीं आया है।

उड़न-तश्तरियां भी ऐसे ही ‘तथाकथित

विज्ञान’ की परिधि में आती हैं। आकाश में उड़ती पतंग को देखकर कोई बच्चा पूछे कि ‘पिताजी यह क्या है?’, तब पतंग उसके लिए यू. एफ. ओ. ही होती है। जब पिता सही जानकारी उसे दे देता है, तब वह पतंग यू. एफ. ओ. नहीं रह जाती। आकाश में किसी विचित्र वस्तु को देखने पर हम जब तक जान न लें कि वह क्या है, तब तक उसे यू. एफ. ओ. कहने में कोई हर्ज नहीं। परंतु यू. एफ. ओ. उड़न-तश्तरी ही है, ऐसा मान लेने का कोई आधार नहीं।

केनेथ आर्नल्ड वाले वाक्ये को हुए तीन दशक गुजर चुके हैं, फिर भी अभी तक उड़न-तश्तरियों का कोई वैज्ञानिक आधार नहीं प्राप्त हुआ है। अमरीकी अखबार ‘नेशनल एन्क्वायरर’ ने इसका आधार प्रस्तुत करने के लिए दस लाख डालर का पारितोषिक घोषित कर रखा है। फिलिप क्लास बहुतों से वाजी लगा चुके हैं—‘उड़न-तश्तरियों का अस्तित्व सिद्ध करो, १०,००० डालर दूंगा।’ अभी तक यह पारितोषिक श यह वाजी जीतने कोई सामने नहीं आया। इसका अर्थ आप ही लगा लें।

परंतु बहुत-से साधुओं के ढोंग की कल्पना खुल जाने के बाद भी ढोंगवाजी चलती ही रहती है। इसी तरह वैज्ञानिक जांच में टिक न पाने के उदाहरण लगातार सामने आते रहने पर भी उड़न-तश्तरियों जैसे ‘तथाकथित विज्ञान’ का प्रचार चल ही रहा है। यह अपने को ‘विज्ञाननिष्ठ’ कहने वाले आज के मानव-समाज की शोकांतिका है।



बलबल

नूतन-पुरातन ज्ञान-विज्ञान और मनोरंजन

तुम एक सिसकती शबनम को
अंगार बना दो तो जानूँ !

तीखे कांटों को फूलों का शृंगार बना दो तो जानूँ !
वीरान जिंदगी की खातिर कोई न कभी मरता होगा;
झुलसी सांसों के लिए नहीं यौवन-मरु तप करता होगा;
फैली-फैली यह रेत ! जिंदगी है या निर्जल उज्ज्वलता ?
निर्जल उज्ज्वलता को जलधर, जलधार बना दो तो जानूँ !
में छांह-छांह चलता आया पैने प्रकाश की आशा में;
गुमसुम-गुमसुम जलता आया : उजलूँ तो लौ की भाषा में !
औंधा आकाश टंगा सिर पर, डाला पड़ाव सन्नाटे ने,
ठहरे गहरे सन्नाटे को झंकार बना दो तो जानूँ !

गिर पड़ी अचानक धरती पर, थी नील झील में तैर रही
पहचान हवा का रुख न सकी अंबर में थी कर सैर रही
आते-जाते सूरज, सब दिन संध्या-प्रभात को सुलगाता
तुम एक सिसकती शबनम को अंगार बना दो तो जानूँ !

निराला-निकेतन, मुजफ्फरपुर-१

—जानकीवल्लभ शास्त्री

‘यदि मुझे दूसरा ही जीवन जीना पड़ता तो मैं चाहता कि मैंने बीठोफन की सिम्फनी रची होती.....या चाहता कि मैं बेल्स की फुटबाल की कप्तानी करता....’

ब्रिटिश प्रधान-मंत्री जेम्स कैलागैन

✱

प्रश्न : जब आपको फुरसत होती है, आप ‘रिलैक्स’ कैसे करते हैं?

उत्तर : मेरा तो खयाल है, मैं ज्यादातर ‘रिलैक्स्ड’ ही रहता हूँ। यह चौबीस घंटे की नौकरी है, और मैं बजाय इसके कोई और नौकरी नहीं करना चाहता। मैंने कहा न यह २४ घंटे की नौकरी है, जब इसमें आनंद आता हो तो दूसरी नौकरी करना कोई चाहेगा ही क्यों? ऐसा दिन कोई नहीं होता, जब मुझे कोई काम नहीं रहता। मैं खूब टहलता हूँ। मुझे शतरंज और स्क्रैवल खेलना पसंद है। मुझे जीवन-चरित पढ़ने का शौक है; मैं देखना चाहता हूँ कि दूसरों ने मेरी समस्याओं से मिलती-जुलती समस्याओं को कैसे सुलझाया। अपने खेत में टहलना मुझे अच्छा लगता है—मेरा खयाल है, लोग (मेरे खेत के कर्मचारी) उस दिन की कल्पना करके डर रहे होंगे, जब मैं रिटायर होकर वहां बसूंगा। फिलहाल मुझे खेत में घूमना, वहां क्या हो रहा है, यह देखना और मौसम की प्रगति देखना अच्छा लगता है।

प्रश्न : क्या आपका खयाल है कि एक उम्र है, जिसमें पहुंचकर प्रधान-मंत्री को सोचना चाहिये कि वह उम्र हो गयी।

उत्तर : ऐसी कोई उम्र नहीं। यही वजह है कि अतीत के बारे में आपके सवालों का जवाब देने में मुझे दुविधा हुई। जब आदमी अतीत को याद करते लगता है, इसका मतलब है कि वह बूढ़ा हो चला है। मैं तो १९८० वाले दशक की उत्साह से राह दे रहा हूँ। मेरा खयाल है, यह हमारी मानसिक दृष्टि पर निर्भर है। राबर्ट मेयर जैसे आदमी का उदाहरण लीजिये। वे १०० वर्ष के हैं, और अब भी संगीत-सभाओं की योजनाएं बनाते रहते हैं, विशेषतः बच्चों के लिए। हेनरी मूर को लीजिये, जो अब भी सोचते रहते हैं कि अब आगे क्या चीज सिरजूं। अलग स्तर पर, अर्थशास्त्री निकलस डेवनपोर्ट का उदाहरण



नवनीत

३४

करवी

तीजिये; जीवन के नौवें दशक में व अपने साप्ताहिक पत्र के लिए प्रति सप्ताह नया लेख लिखते हैं। ये लोग आत्मिक और मानसिक-बौद्धिक दृष्टि से तरुण हैं। मगर जब हम उस स्तर पर पहुंच जायें जहां से पीछे की बातें सोचने लगे, जब हममें अपना कर्तव्य कार्य करने के लिए शारीरिक शक्ति न रह जाये, मेरा खयाल है, तब हम बूढ़े होने लगते हैं। यह अलग-अलग लोगों में अलग-अलग उम्र में होता है।

प्रश्न : अगर आप यह सार्वजनिक जीवन न जी पाते और आपको कोई भिन्न जीवन जीना होता तो उसे आप किस रूप में जीना चाहते ?

उत्तर : तब मैं चाहता कि मैंने सेंट पाल गिरजे का गुंबद बनाया होता। मैं चाहता कि मैंने बीथोफेन की सिम्फोनियां रची होतीं। मैं चाहता कि मैं सर्बिन डेवीस होता और फावर्ड के रूप में खेलते हुए वेल्स की फुटबाल-टीम की कप्तानी करता।

● 'अब्जर्वर' में छपे केनेथ हैरिस के इंटरव्यू में से साभार उद्धृत ●



श्रद्धांजलि

नये वर्ष के प्रथम दो सप्ताहों में हिंदी-जगत तीन विशिष्ट व्यक्तियों से वंचित हो गया।

संत-साहित्य के प्रकांड विद्वान और व्याख्याकार श्री परशुराम चतुर्वेदी (८४ वर्ष) का ५ जनवरी को लखनऊ में देहावसान हो गया।

मराठी-भाषी होते हुए हिंदी को अनेक लोकप्रिय उपन्यास देने वाले श्री अनंत गोपाल शेवड़े (६७ वर्ष) का १० जनवरी को कलकत्ता में दिल के दौरों से अकस्मात् निधन हो गया। वे १९७५ में नागपुर में हुए प्रथम विश्व हिंदी सम्मेलन के संयोजक थे।

हिंदी साहित्य सम्मेलन के भूतपूर्व प्रधान-मंत्री एवं भारतीय जनसंघ के भूतपूर्व अध्यक्ष श्री मौलिकचंद्र शर्मा (७८ वर्ष) १२ जनवरी को नयी दिल्ली में दिवंगत हुए। वे कुशल राजनीतिज्ञ, कई भाषाओं के ज्ञाता थे।

दिवंगत आत्माओं को नवनीत-परिवार की श्रद्धांजलि।



महान भारतीय

जयप्रकाश नारायण

जाहुई व्यक्तित्व और जो ीली वक्तृता राजाजी की खूबियों में से नहीं थी। मेरी राय में उनकी महानता की निशानी थी—सादा जीवन और उच्च विचार, दूर-दृष्टि और शांत गरिमा जो केवल उन्हीं लोगों में पायी जाती है जिनका अपने अंतः-करण से कोई झगड़ा न हो।

एमसन ने कहा था—‘दुनिया सत्पुरुषों की सचाई से टिकी हुई है; वे धरती को स्वास्थ्यकर बनाते हैं।’ राजाजी भगवान के उन नेक वंदों में से थे।

आज हमारा राष्ट्र कृतज्ञता के साथ प्रणाम कर रहा है भारतीय राजनीति के इस पितामह को, जिसने आज से सौ वर्ष पूर्व (१० दिसंबर को) परतंत्र राष्ट्र में जन्म लिया था और जिसने परस्पर-विरोधी लगने वाले दो गुण अपने पिता से विरसे में पाये थे—विद्वत्ता और समाज-सेवा।

और जब सन १९७२ में क्रिस्मस के दिन राजाजी इस लोक से विदा हुए, तो उदात्तता-पूर्वक जिये हुए महान और नेक जीवन की स्मृति अपने पीछे छोड़ गये—एक स्मृति जो पूरे राष्ट्र की याती बन चुकी है और जो नवनीत

अनजनमी पीढ़ियों को हस्तांतरित करने योग्य है।

गांधीजी ने कहा था, राजाजी मेरे ‘अंतः-करण के रखवाले’ हैं। जो लोग गांधीजी को समझते थे, उनके लिए इसमें सभी कुछ आ जाता है। स्वातंत्र्य-संग्राम में राजाजी की भूमिका, वे पद जिन्हें उन्होंने अपूर्व विशिष्टता के साथ अलंकृत किया, प्रजातंत्र तथा मानव-अधिकारों के प्रति उनकी प्रतिबद्धता, नैतिक नियमों की प्रभुता में उनकी अडिग आस्था—ये सब हाल के इतिहास का हिस्सा हैं।

राजाजी ने कभी इसकी छूट नहीं दी कि सत्ता उन्हें बिगाड़े और राजनीति उन्हें कलंकित करे। उन्होंने हमें सिखाया कि राजनीति में रहते हुए भी उससे ऊपर उठ कर रहा जा सकता है, जैसे कि कहावत ही है—पद्मपत्रमिवाम्भसा।

तार्किक बुद्धि, तलवार-सी पैनी मेधा, प्रत्युत्पन्नमत्तित्व और इन सबसे बढ़कर उद्वेग-रहित स्वभाव एवं विनम्रता—ये उनके विशिष्ट गुणों के रूप में जाने जाते थे।

मगर तर्कत्रियता ने उन्हें आम जनता से

परे नहीं रखा। उनकी सरल भाषा जिसमें बोधकथाएं, कहावतें और पौराणिक आख्यान बुंधे रहते थे, आम जनता के साथ उनके संवाद का साधन थी। संस्कृति में समृद्ध मगर 'सर्वसत्ता-संपन्न प्रजातांत्रिक गणतंत्र' जैसी संघारणाओं को समझने में असमर्थ हमारी आम जनता को वे बीते दिनों के स्कूल-मास्टर्स की तरह बड़े सन्न से और अपने सुकरात-सरीखे सयानेपन का पूरा उपयोग करते हुए सब बातें समझाया करते थे।

आम जनता के लिए उन्होंने लिखा भी। पुराण-काव्यों को उनके सारानुवाद 'रामायण' और 'महाभारत', गीता और उपनिषदों की उनकी व्याख्याएं ऐसी कृतियां हैं, जो आगे चलकर निश्चय ही कालजयी कहलायेंगी। वे जानते थे कि हमारी जनता को सर्वोपरि शिक्षा तो हमारे पुराणों में और पुराण-काव्यों में भरी हुई नसीहतों से ही हासिल हो सकती है। आखिर हमारे पुराण और पुराण-काव्य, जो कि हमारे राष्ट्र का अवचेतन मस्तिष्क हैं, त्रैकालिक सनातन नैतिक नियमों को यथार्थ जीवन में जीने के हमारे पुरखों के प्रयत्नों का वर्णन ही तो हैं। धर्म ने राजाजी में दुनिया से भागने और

जीवन की समस्याओं से कन्नी काटने की इच्छा उत्पन्न नहीं की। उलटे, धर्म में उनकी गहरी निष्ठा ने ९३ वर्ष की वय में भी उन्हें मानव-जाति की सेवा में नियोजित किये रखा।

प्रजातंत्र के प्रति राजाजी की प्रतिबद्धता संपूर्ण थी। सो उनके प्रति और स्वयं अपने प्रति हमारा यह कर्तव्य है कि हम ऐसे कदम उठायें, जिनसे ६२ करोड़ की आवादी वाले अपने इस देश में प्रजातंत्र का सम्यक् संचालन होने लगे।

राजाजी का यह विश्वास था कि आम मताधिकार पर आश्रित प्रजातंत्र में समर्थ प्रतिपक्ष बहुत ही आवश्यक चीज है। जब जवाहरलाल नेहरू ने बड़े निश्चयपूर्वक कहा कि प्रतिपक्ष के निर्माण में मदद करना सरकार का काम हर्गिज नहीं है, तब राजाजी ने उसका यह जवाब दिया था :

'समर्थ प्रतिपक्ष के बिना प्रजातंत्र वैसा ही होगा, जैसे गधे की पीठ पर सारा का सारा बोझ एक ही गठरी में रखकर गधे को हांका जाये। द्विदलीय व्यवस्था बोझ को दो झाबों में लगभग समान बांटकर चाल को स्थिर बनाती है।



स्व. राजाजी

‘मानव-शरीर में दो आंखें और दो कान देखी व सुनी वस्तुओं का सही स्थान पहचानने में मदद देते हैं। एकदलीय प्रजातंत्र जल्दी ही तारतम्य-बुद्धि खो बैठता है। उसे दिखाई तो देता है, मगर वह देखी हुई वस्तुओं को सही परिप्रेक्ष्य में नहीं रख पाता, या प्रश्न के सब पहलुओं को समझ नहीं पाता।’

वे महान पृथक्चेता (डिसेन्टर) थे और उन प्रथम व्यक्तियों में से थे, जिन्होंने स्वतंत्र भारत में सुस्पष्ट व्यक्तित्व वाले प्रतिपक्ष के निर्माण के लिए प्रयास किया।

बोलने व लिखने में एक-एक शब्द को तोलकर काम में लाने वाले राजाजी सार्वजनिक जीवन में पवित्रता तथा साफ-सुथरे सुदक्ष प्रशासन के लिए और प्रजातंत्र को सत्ता, संपदा एवं इनकी पापिष्ठ संतान के क्षयकारी दुष्प्रभावों से बचाने के लिए अनवरत संघर्ष करते रहे।

उन्होंने बार-बार बलपूर्वक कहा कि ‘अगर हम चाहते हैं कि राजनैतिक महत्त्वाकांक्षा के क्षेत्र में निरंकुश तानाशाही की जगह स्वतंत्रता पदासीन हो, अगर हम चाहते हैं कि योग्यता पार्टी-फंड के चंगुल से छुटकारा पाये, तो हमें इसकी जांच-परख करनी होगी कि चुनावों को आज की तुलना में काफी कम खर्चीला कैसे बनाया जाये।’

सुकरात-सरीखे राजाजी ने संकेत किया था — ‘जो नर या नारी नयी दिल्ली में सर्वोच्च सत्ता पर पहुंच जाये और सत्ता को हाथ में बनाये रखने में किसी प्रकार का नैतिक संकोच न रखे, उसका निहित स्वार्थ

नवनीत



में मानता हूं कि मेरे मत का खंडन करने का आपको पूरा-पूरा हक है। लेकिन एक बात यह याद रखिये कि मुझे भी अपना मत आपके सामने रखने का पूरा हक है।

—स्व. ई. वे. रामस्वामी नायकर

[प्रेषक : रा. वीलिनाथन]

चुनाव को खूब खर्चीला बना देने में है।’

राजाजी की यह जगजाहिर राय थी कि ‘छह महीनों तक पार्टी-शासन की छुट्टी करके चुनाव-काल में पूरे राष्ट्र में राष्ट्रपति का और राज्यों में राज्यपालों का निर्दलीय शासन होना चाहिये।’

राजनैतिक विवेक और परिपक्वता में राजाजी सिर्फ गांधीजी से घटकर थे और आधुनिक भारत के नेस्टर माने जाते थे। वे उन विरले महान राजनीतिज्ञों में से थे, जिनके बारे में कहा जा सकता था कि हालांकि वे राजनीति में गहरे डूबे हुए थे,

१. यूनानी पुराणों में वर्णित एक विवेकी राजा।

उनकी नजरें युद्धपंक्ति से बहुत ऊपर टिकी हुई थीं। मानव-प्रकृति को वे बड़ी गहराई से समझते थे और तमाम राष्ट्रीय और अंतर-राष्ट्रीय मसलों का आवेश-रहित और तटस्थ दृष्टि से विश्लेषण करने की विस्मयकारी क्षमता रखते थे।

बृह्म आस्थाओं वाले और उन आस्थाओं के निर्वाह के लिए कोई भी त्याग करने को सदा तैयार रहने वाले राजाजी अपने व्यस्त और सफलताओं से लदे जीवन का संध्या-काल आराम में बिताने के बजाय राज-नीति एवं सार्वजनिक जीवन में नैतिक मूल्यों की पुनःप्रतिष्ठा के लिए जी-जान से जूझते रहे। साथ ही वे स्वयं नैतिक दिग्गज थे।

● संत इब्राहीम बिन अदम एक बार कहीं जा रहे थे। उन्होंने देखा कि रास्ते में एक शराबी पड़ा हुआ है, उसके कपड़े मिट्टी से सथपथ हैं और मुंह कीचड़ से सना है। यह देखकर संत बोले—‘जिस मुंह से खुदा का नाम लिया जाता है, उसे इस हालत में नहीं रहना चाहिये।’ और उन्होंने पास ही कहीं से पानी लाकर शराबी का मुंह धो दिया। जब शराबी को इस बात का पता चला, उस पर बड़ा असर पड़ा। उसने शराब न पीने की प्रतिज्ञा की और सुधर गया।

● इब्राहीम बिन अदम बल्ख के बाद-शाह थे। वैराग्य हुआ तो राजपाट छोड़कर जंगल की ओर चल दिये। अब वे जंगल से बनी हुई लकड़ियां बेचकर या खेतों की

कहां जाता है कि महापुरुष वह है, जो तात्कालिक घपले के पार देख सके और पह-चान सके कि कौन-से नैतिक प्रश्न इसमें उलझे हुए हैं; जो परीक्षा व खतरे की घड़ियों में अपनी न्यायबुद्धि को विकृत न होने दे; जो अपनी अंतरात्मा की आवाज को सुने और उसकी अंतरात्मा उसी के ढंग से सोचने वाले सब लोगों के लिए शंखनाद बन जाये, ताकि वे सब उसके ईर्दगिर्द आ जुटें और साझे ध्येय और पारस्परिक सहायता द्वारा अंततः इतिहास में एक नये युग का निर्माण कर दें।

राजाजी इस सदी के ऐसे ही एक महान भारतीय थे।

★

रखवाली करके रोजी कमाते। जो मिलता, उसमें से कुछ हिस्सा फकीरों को बांट देते और बाकी से अपनी गुजर चलाते। वे कहा करते थे—‘मर्दों का दर्जा हलाल की रोटी से मिलता है।’

● संत राबिया बसरी ने एक सूफी संत के पास तीन चीजें भेजीं—मोम, सूई और बाल। साथ में यह संदेश भी :

‘मोम की तरह जलकर दूसरों को रोशनी दो।

‘सूई खुद नंगी रहती है, मगर दूसरों को कपड़े सीकर पहनाती है। उसी तरह तुम भी जनता की निःस्वार्थ सेवा करो।

‘तब तुम बाल की तरह लचीले, हलीम और बेखतरा हो जाओगे।’

—गफूर तायब

★

‘मानव-शरीर में दो आंखें और दो कान देखी व सुनी वस्तुओं का सही स्थान पहचानने में मदद देते हैं। एकदलीय प्रजातंत्र जल्दी ही तारतम्य-बुद्धि खो बैठता है। उसे दिखाई तो देता है, मगर वह देखी हुई वस्तुओं को सही परिप्रेक्ष्य में नहीं रख पाता, या प्रश्न के सब पहलुओं को समझ नहीं पाता।’

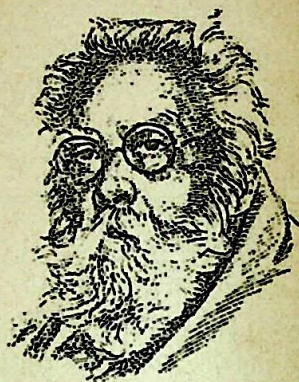
वे महान पृथक्चेता (डिसेन्टर) थे और उन प्रथम व्यक्तियों में से थे, जिन्होंने स्वतंत्र भारत में सुस्पष्ट व्यक्तित्व वाले प्रतिपक्ष के निर्माण के लिए प्रयास किया।

बोलने व लिखने में एक-एक शब्द को तोलकर काम में लाने वाले राजाजी सार्वजनिक जीवन में पवित्रता तथा साफ-सुथरे सुदक्ष प्रशासन के लिए और प्रजातंत्र को सत्ता, संपदा एवं इनकी पापिष्ठ संतान के क्षयकारी दुष्प्रभावों से बचाने के लिए अनवरत संघर्ष करते रहे।

उन्होंने बार-बार बलपूर्वक कहा कि ‘अगर हम चाहते हैं कि राजनैतिक महत्त्वाकांक्षा के क्षेत्र में निरंकुश तानाशाही की जगह स्वतंत्रता पदासीन हो, अगर हम चाहते हैं कि योग्यता पार्टी-फंड के चंगुल से छुटकारा पाये, तो हमें इसकी जांच-परख करनी होगी कि चुनावों को आज की तुलना में काफी कम खर्चीला कैसे बनाया जाये।’

सुकरात-सरीखे राजाजी ने संकेत किया था - ‘जो नर या नारी नयी दिल्ली में सर्वोच्च सत्ता पर पहुंच जाये और सत्ता को हाथ में बनाये रखने में किसी प्रकार का नैतिक संकोच न रखे, उसका निहित स्वार्थ

नवनीत



में मानता हूं कि मेरे मत का खंडन करने का आपको पूरा-पूरा हक है। लेकिन एक बात यह याद रखिये कि मुझे भी अपना मत आपके सामने रखने का पूरा हक है।

—स्व. ई. वे. रामस्वामी नायकर

[प्रेषक : रा. वीलिनाथन्]

चुनाव को खूब खर्चीला बना देने में है।’

राजाजी की यह जगजाहिर राय थी कि ‘छह महीनों तक पार्टी-शासन की छुट्टी करके चुनाव-काल में पूरे राष्ट्र में राष्ट्रपति का और राज्यों में राज्यपालों का निर्दलीय शासन होना चाहिये।’

राजनैतिक विवेक और परिपक्वता में राजाजी सिर्फ गांधीजी से घटकर थे और आधुनिक भारत के नेस्टर माने जाते थे। वे उन विरले महान राजनीतिज्ञों में से थे, जिनके बारे में कहा जा सकता था कि हालांकि वे राजनीति में गहरे डूबे हुए थे,

१. यूनानी पुराणों में वर्णित एक विवेकी राजा।

उनकी नजरें युद्धपंक्ति से बहुत ऊपर टिकी हुई थीं। मानव-प्रकृति को वे बड़ी गहराई से समझते थे और तमाम राष्ट्रीय और अंतर-राष्ट्रीय मसलों का आवेश-रहित और तटस्थ दृष्टि से विश्लेषण करने की विस्मयकारी क्षमता रखते थे।

बृढ़ आस्थाओं वाले और उन आस्थाओं के निर्वाह के लिए कोई भी त्याग करने को सदा तैयार रहने वाले राजाजी अपने व्यस्त और सफलताओं से लदे जीवन का संध्या-काल आराम में बिताने के बजाय राज-नीति एवं सार्वजनिक जीवन में नैतिक मूल्यों की पुनःप्रतिष्ठा के लिए जी-जान से जूझते रहे। साथ ही वे स्वयं नैतिक दिग्गज थे।

● संत इब्राहीम बिन अदम एक बार कहीं जा रहे थे। उन्होंने देखा कि रास्ते में एक शराबी पड़ा हुआ है, उसके कपड़े मिट्टी से लथपथ हैं और मुंह कीचड़ से सना है। यह देखकर संत बोले—‘जिस मुंह से खुदा का नाम लिया जाता है, उसे इस हालत में नहीं रहना चाहिये।’ और उन्होंने पास ही कहीं से पानी लाकर शराबी का मुंह धो दिया। जब शराबी को इस बात का पता चला, उस पर बड़ा असर पड़ा। उसने शराब न पीने की प्रतिज्ञा की और सुधर गया।

● इब्राहीम बिन अदम बल्ख के बाद-शाह थे। वैराग्य हुआ तो राजपाट छोड़कर जंगल की ओर चल दिये। अब वे जंगल से बीनी हुई लकड़ियां बेचकर या खेतों की

कहा जाता है कि महापुरुष वह है, जो तात्कालिक घपले के पार देख सके और पह-चान सके कि कौन-से नैतिक प्रश्न इसमें उलझे हुए हैं; जो परीक्षा व खतरे की घड़ियों में अपनी न्यायबुद्धि को विकृत न होने दे; जो अपनी अंतरात्मा की आवाज को सुने और उसकी अंतरात्मा उसी के ढंग से सोचने वाले सब लोगों के लिए शंखनाद बन जाये, ताकि वे सब उसके इर्दगिर्द आ जुटें और साझे ध्येय और पारस्परिक सहायता द्वारा अंततः इतिहास में एक नये युग का निर्माण कर दें।

राजाजी इस सदी के ऐसे ही एक महान भारतीय थे।



रखवाली करके रोजी कमाते। जो मिलता, उसमें से कुछ हिस्सा फकीरों को बांट देते और बाकी से अपनी गुजर चलाते। वे कहा करते थे—‘मर्दों का दर्जा हलाल की रोटी से मिलता है।’

● संत राबिया बसरी ने एक सूफी संत के पास तीन चीजें भेजीं—मोम, सूई और बाल। साथ में यह संदेश भी :

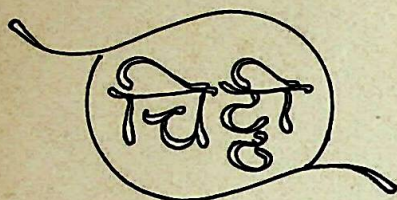
‘मोम की तरह जलकर दूसरों को रोशनी दो।

‘सूई खुद नंगी रहती है, मगर दूसरों को कपड़े सीकर पहनाती है। उसी तरह तुम भी जनता की निःस्वार्थ सेवा करो।

‘तब तुम बाल की तरह लचीले, हलीम और बेखतरा हो जाओगे।’

—गफूर तायब





—पद्मा सचदेव—

नगर के चारों ओर बादल घिर आये हैं
सिर धोकर बदली दालान में आने लगी है
या दोहरी प्रथा से ब्याही कोई मुटियार आज
समुराल से पहली बार मँके जाने लगी है

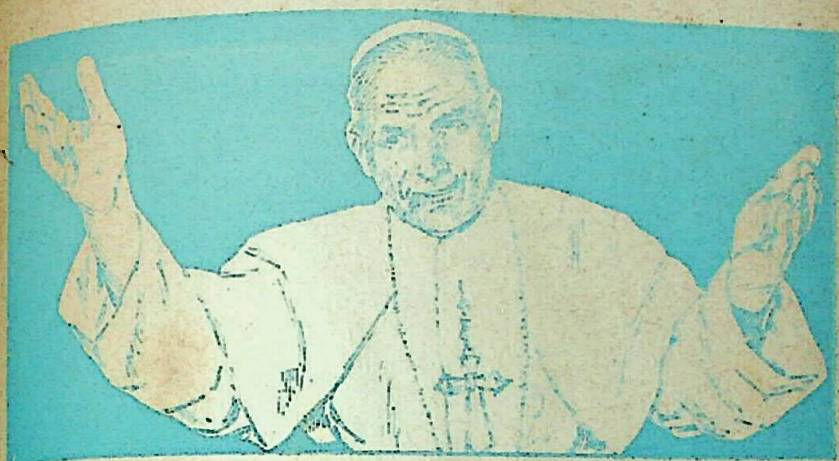
बादल घिर आये हैं, पास-पास आ जुड़े हैं
सांस सत्ता रोककर धरती पर झुके हैं
कड़वी बात पीते ही ये घिर आये थे आँखों में
अकेली को घेरने के लिए ये आंसू रुके हैं

एक-एक बूंद कोई, मोतियों के मोल मुई
नगरी के घर-बाहर आंगन धुला जाये
कौन जाने समुराल की लकड़ी की दहलीज ही
बल इसका कसा हुआ खुलवा के रत्ता जाये

बादल ये फौजियों के झुंड की तरह घिरे हुए हैं
डाकिये को देखकर प्रतीक्षा नहीं कर पा रहे
कागज की एक चिट मोतियों की एक मुट्ठी
किसके हिस्से आयेगी घोरज नहीं धर पा रहे ।

० मे फ्लावर, एम. एल. दहाणुकर मार्ग, बंबई-२६ ०





जर्मनों और साम्यवादियों से जूझ चुके पोप

मनुगुप्त

बीता साल सन १९७८ ईसाई इतिहास में इसलिए स्मरणीय रहेगा कि इसने तीन पोप देखे और उससे भी बढ़कर इसलिए कि उसमें पूरे ४५५ वर्ष बाद एक गैर-इतालवी को पोप चुना गया। पोप जान पाल द्वितीय न केवल गैर-इतालवी हैं, बल्कि पोलिश हैं, यानी एक साम्यवादी देश के हैं।

उनके निर्वाचन से सबसे ज्यादा अचरज तो पोलैंड के धार्मिक विषयों के मंत्री काजी-मीज काकोज्ज को हुआ होगा, जिन्हें अपने देश की साम्यवादी सरकार और रोम के काथलिक चर्च के तनाव-भरे संबंधों की देखभाल करनी पड़ती है। जिस दिन नये पोप का निर्वाचन घोषित होने वाला था, उसी दिन भेंट के लिए आये हुए कुछ पत्र-

कारों से उन्होंने मजाक में कहा भी था कि अगर कोई पोलैंड-निवासी पोप बन जाये, तो मैं आप सबको शैम्पेन पिलाऊंगा।

उस वक्त इस असंभव बात पर सभी जोर से हंस पड़े थे; लेकिन दस मिनट बाद ही मंत्री महोदय के एक सहायक ने उन्हें इस खबर की चिट्ठी दी कि फ्रांक्वा के कार्डिनल कारोल वायतिला पोप चुन लिये गये हैं; और उन्हें सब पत्रकारों को शैम्पेन पिलानी पड़ी।

फ्रांक्वा के ये कार्डिनल जो अब पोप जान पाल द्वितीय नाम से जाने जाते हैं, कैसे व्यक्ति हैं, यह इससे प्रकट होता है कि कार्डिनलों की कन्क्लेव (पोप-निर्वाचक मंडली) को उन्हें मनाने में काफी मुश्किल

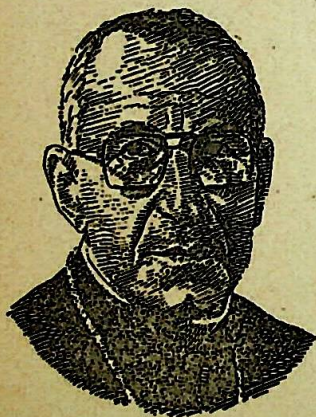
१९७९

४१

हिंदी डाइजेस्ट

हुई। वे तो फ्रांक्का के कार्डिनल ही बने रहना पसंद करते थे। उन्नीसवीं सदी के पायस नवम के बाद सबसे कम उम्र (५८ वर्ष) में पोप-पद संभालने वाले वे बैटिकन की राजनीति से सर्वथा अछूते रहे हैं और पूर्वी यूरोप की घमं-विरोधी एवं सर्वसत्तावादी व्यवस्थाओं से जीवन-भर चलते संघर्ष के अनुभवी हैं। वे कभी किसी की पृष्ठ-पोषकता के आसरे नहीं रहे।

बैटिकन के आडंबरों को तोड़ने में तो उन्हें दो दिन भी नहीं लगे। पोप बनने के अड़तालीस घंटे बाद ही वे एक खुली कार में रोम की सड़कों पर दिखाई पड़ गये—एक बीमार पोलिश विशप से मिलने अस्पताल जाते वक्त ! उन्होंने पोपों की ताजपोशी की परंपरागत रस्म भी खारिज कर दी।



स्व. पोप जान पाल प्रथम, जिन्होंने पाल षष्ठ के देहांत के बाद काथलिक जगत का अल्पकालीन किंतु उदार नेतृत्व किया।
नवनीत

वे किसी के भी दबाव में आने वाले या 'पालतू' होने वाले जीव नहीं। उन्होंने रोमन काथलिक गिरजे को एक नयी तीर्थयात्रा पर निकल पड़ने को कहा है। पद-ग्रहण करते समय का उनका संदेश है :

‘हम इस अवसर पर समस्त हार्दिकता के साथ उन सब लोगों की ओर अपने हाथ बढ़ाना चाहते हैं, जो किसी भी तरह के अन्याय या भेदभाव की नीति और वस्ताव से पीड़ित हैं। चाहे यह पीड़ा आर्थिक हो या सामाजिक, राजनैतिक हो या विवेक-स्वातंत्र्य से संबंधित, हमें उनके पास अपने सारे साधनों से पहुंचना है। वर्तमान युग के सारे अन्यायों से हमें जनमत के बल पर ही निवटना है। हम चाहते हैं कि उन सबकी तकलीफें दूर हों और सब लोग जीने योग्य जिंदगी जियें।’ [यह संदेश इसका सूचक है कि वे पोप जान २३ वें एवं पोप पाल षष्ठ की विश्वशांति व मानव-अधिकार-समर्थक उदार नीति को जारी रखेंगे। पोप जॉन पाल द्वितीय नाम भी उन्होंने इसीलिए चुना है।]

नये पोप में यह स्वतंत्र मनोवृत्ति यों ही नहीं आ गयी; वह उन्हें जीवन के कठिन पथ से मिली है।

दूसरे विश्वयुद्ध से पहले वे भाषातत्त्व के छात्र थे। (शायद इसीलिए वे अंग्रेजी, जर्मन, फ्रेंच और इतालवी भाषाओं पर इतना अच्छा अधिकार कर सके।) उन्हीं दिनों उन्होंने पोलिश साहित्य पढ़ा और कविताएं भी लिखीं। उनका एक छोटा-सा प्रगतिशील समुदाय था, जिसे ‘चारण गीति-

मंच' कह सकते हैं। ये लोग पोलैंड के इति-
हास की वीरगाथाओं पर गीति-नाटक रचते
और उन्हें कभी-कभी तो आधुनिकवेशभूषा
में ही प्रस्तुत भी करते थे।

सन १९४० में जब जर्मन आधिपत्य ने
पोलैंड का सांस्कृतिक जीवन समाप्त कर
दिया, तब यह युवामंच भूमिगत हो गया
और बीस-बीस, तीस-तीस दर्शकों के समक्ष
निजी घरों में ही प्रदर्शन करता रहा। भावी
पोप कारोल वायतिला भी जर्मनों के खिलाफ
इस सांस्कृतिक प्रतिरोध में हिस्सेदार थे।

यह कैसा सुखद आश्चर्य है कि उनके
पोप चुने जाने में सबसे अधिक सहयोग जर्मन
कार्डिनलों का ही रहा। पश्चिम जर्मनी में
यों भी उन्हें बहुत लोग मानते हैं, यद्यपि एक
बार वहां की यात्रा में उन्होंने हठ ठानकर
झांचु युद्धबंदी शिविर में जाकर धर्मोप-
देश दिया था।

बचपन में ही वायतिला अनाथ हो गये
थे। उम्र में उनसे बहुत बड़े उनके अग्रज, जो
एक अस्पताल में डाक्टर थे, लड़ाई शुरू
होने से पहले ही छूत की बीमारी से चल
बसे थे। २१ वें साल से ही वायतिला पूर्णतः
स्वावलंबी हो गये। ज़िंदा रहने के लिए उन्हें
नाम बदलकर क्राक्वा में ही एक बेल्जियम
मालिक की रासायनिक फैक्टरी में काम
करना पड़ा। इससे उन्हें एक और भी लाभ
हुआ—कामगार-कार्ड मिल जाने से वे गुलाम
श्रम-शिविर में जाने से बच गये।

सन १९४२ में वे इस कारखाने से गायब
हो गये और विश्वयुद्ध के बाद ही प्रकट हुए।

वास्तव में वे अन्य तीन छात्रों के साथ
क्राक्वा के आर्च बिशप के प्रासाद में गुप्त
रूप से रहने लगे थे और कार्डिनल सापीहा
के अंतर्वासी बनकर दर्शन और धर्म-विज्ञान
पढ़ते रहे थे। सुरक्षा के लिए, वे कभी इस
प्रासाद से बाहर नहीं निकले। (तभी किसी
ने यह झूठी कहानी उछाल दी कि उनकी
शादी हुई थी, फिर वे विधुर भी हो गये थे।)

सन १९४६ में दीक्षित पादरी बनकर, वे
किसी तरह रोम आ गये, जहां उन्होंने आंजे-
लिकम विश्वविद्यालय में क्रास वाले संत



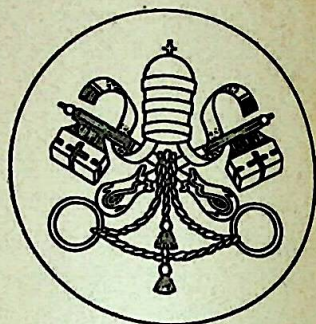
स्व. पोप पाल षष्ठ जिन्होंने बड़ी संख्या में
एशियाई, अफ्रीकी और दक्षिण अमरीकी
कार्डिनलों की नियुक्ति करके गैर-इतालवी
पोप का निर्वाचन संभव बनाया।

जान पर प्रबंध प्रस्तुत किया। वहां उनके निदेशक थे फट्टर परंपरा-भक्ति के लिए प्रसिद्ध फ्रांसीसी डोमिनिकन रेजिनाल्ड गारिगु-लाग्रांज। वायतिला में धर्म-विज्ञान विषयक रूढ़िवाद उन्हीं से आया। यह उनमें आज भी मौजूद है, यद्यपि इसके साथ ही उनमें पर्याप्त बौद्धिक संतुलन भी है। इसलिए पूर्वी पोलैंड के लूबलिन नगर में पहुंचने पर उन्होंने माक्स स्कैलर पर और ही तरह का प्रबंध प्रस्तुत किया। माक्स काथलिक दर्शनवेत्ता तो हैं, पर अस्तित्ववाद की ओर उनका जबर्दस्त झुकाव है।

वायतिला न केवल सच्चे बुद्धिवादी हैं, बल्कि दृढ़निश्चयी व्यक्ति भी हैं। क्राकवा विश्वविद्यालय में जब स्तालिन-युगीन दमन-चक्र में धर्म-विज्ञान-का अध्यापन बंद कर दिया गया था, तब भी वायतिला पहले सहकारी पुरोहित और फिर पल्ली-पुरोहित के रूप में गुप्तरूप से धर्म-विज्ञान पढ़ाते रहे। तभी से वे सारस्वत-स्वातंत्र्य के हामी हो गये। आज उनकी यही विशेषता दुनिया को सर्वाधिक प्रभावित करती है। कार्डिनल की हैसियत से भी वे पोलैंड के उन तूफानी विश्वविद्यालयों की मदद करते रहे, जो सरकार द्वारा निषिद्ध विषयों को भी पढ़ाते हैं।

लेकिन वे गैरजरूरी जोखिम उठाने के आग्रही नहीं थे। वे अपनी मुक्तछंद की कविताएं, जिनमें धर्म एवं पुण्य की जगह नैतिक और दार्शनिक विषय अधिक हैं, 'आंद्रेय योविन' के छद्म नाम से लिखते रहे

नवनीत



पोप की राजमुद्रा

और उन्हें पोलैंड के बुद्धिवादी काथलिकों ने छापा भी। १९५८ में क्राकवा में सहायक बिशप बनने पर भी उन्होंने अपना सिर्फ दो कमरे वाला घर नहीं बदला। १९६४ में आर्च बिशप बनने पर भी जब वे उसी घर में डटे रहे, तब विकार-जनरल ने चार हफ्ते बाद एक दिन मौका पाकर उनकी गैर-हाजिरी में सारा सामान आर्च बिशप प्रासाद में रखवा दिया।

मगर उन्होंने प्रासाद को भी मानो कर्म-शाला बना दिया। हर महीने वहां युवकों की द्वि-दिवसीय विचार-गोष्ठियां जपने लगीं, जिनमें युवा कामगार, अभिनेता और पादरी सभी शामिल होते थे। वे इनमें खुद भी शामिल होते थे, यद्यपि उनके सहकारी चाहते थे कि वे यह समय दूसरे कामों को दें। यहीं वे हर सुबह मुलाकातियों से भी मिलते थे—जो जिस क्रम से आता, उसी

[शेष पृष्ठ १५७ पर]

मर्द माताहरियों की माया

सुरेश सिन्हा

सुजान सुंदरियां शृंगारपूर्ण हावभावों से चुनिंदा पुरुषों को मुग्ध करें और महत्त्वपूर्ण राजनैतिक एवं सैनिक जानकारी उनसे उगलवा लें—यह बहुत घिसी-भिटी बात हो गयी है जासूसी में। नारी-स्वातंत्र्य के आज के युग में नया ढंग यह है कि आकर्षक पुरुष चुनिंदा नारियों के साथ प्रेम और दांपत्य का नाटक रचें और उनके जरिये महत्त्वपूर्ण सरकारी और सैनिक सूचनाएं एकत्र करके अपने आकाओं को दें। पश्चिम जर्मनी में ऐसी जासूसी बड़े पैमाने पर चल रही है।

तीस वर्ष पार कर चुकी रूपसी रेनात लुत्स पश्चिम जर्मनी के रक्षा-मंत्रालय के एक उच्च अधिकारी की विश्वस्त और चुस्त सेक्रेटरी थी। काम में इतनी मुस्तैद कि रोज शाम को बाकी सबके घर चले जाने के बाद भी देर तक दफ्तर में काम करती रहती थी। इतना काम क्या रहता था उसे रोज-रोज? सुनिये।

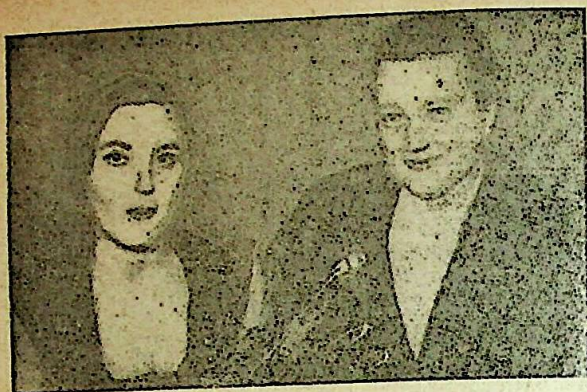
वह महत्त्वपूर्ण गुप्त कागज अपने अफसर की अलमारी से निकाल लेती या मंत्रालय के रेकार्ड-रूम से अपने अफसर के नाम पर निकलवा लेती और उनकी फोटो-

कापियां बना लती और अपने पति लोत्हर के सुपुर्द कर देती थी। पति लोत्हर पूर्व जर्मनी की ओर से जासूसी करता था।

इस तरह लुत्स की मेहरबानी से एक हजार से भी ज्यादा दस्तावेज पूर्व जर्मनी पहुंच गये। इनमें से सबसे महत्त्वपूर्ण थे युद्धकाल में नाटो की सेनाओं को पेट्रोल पहुंचाने के लिए नाटो देशों में बिछायी गयी गुप्त जमींदोज पाइप-लाइन के नक्शे। नतीजा यह है कि आज वार्सा-संधि संघटन को अच्छी तरह मालूम है कि पाइप-लाइन कहां-कहां से काटी जा सकती है और आक्रमण के बाद कितने समय में नाटो-सेनाओं को पेट्रोल के लाले पड़ जायेंगे। और पाइप-लाइन ऐसी चीज तो है नहीं कि आज यहां से उखाड़ी और कल वहां बिछा दी।

पर रेनात लुत्स ने अपने देश की सुरक्षा को इस तरह खतरे में क्यों डाला? इस-लिए कि उसे अपने पति से गहरा प्यार था। और उसका पति लोत्हर रेनात से शादी करने से बहुत साल पहले से ही पूर्व जर्मनी का जासूस-एजेंट था।

मगर इससे भी अधिक नाटकीय किस्सा है आकर्षक नैन-नक्श वाली जेर्डा ओस्टेन-



मंत्रालय के एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण अंश में पहुंच गयी। यह था समाचार-कक्ष। वॉल्टे विश्व के सब पश्चिम जर्मन दूतावासों को जाने वाले और वहां से आने वाले तमाम तार इस कक्ष से आते जाते हैं। अब जेर्डा पांचों उंगलियां भी

जेर्डा और उससे जासूसी कराने वाला पति श्राय्टर।

राइडर का, जिसकी उम्र अब तीस से दो-तीन साल ज्यादा होगी। वह बताती है:

‘तब मैं तरुणी थी, निरी उन्नीस वर्ष की। मैं दुनिया को बेहतर बनाना चाहती थी, समाजवाद की हिमायती थी; मगर मुझे किसी भी चीज का गहरा ज्ञान नहीं था। फिर मेरे जीवन में यह शख्स आया जो उम्र में मुझसे पूरे सत्रह साल बड़ा था। उसने बताया कि वह “दूसरे” जर्मनी के लिए काम करता है और यह विश्वशांति के लिए बहुत जरूरी है। मैंने उस पर विश्वास कर लिया।’

इस तरह जेर्डा जासूसी के चक्कर में फंस गयी। हर्बर्ट श्राय्टर, जिससे उसने प्यार और विवाह किया, पूर्व जर्मनी का एजेंट था। उसके फुसलाने से जेर्डा ने पश्चिम जर्मनी के विदेश-मंत्रालय में नौकरी प्राप्त कर ली। सरकार ने जेर्डा और उसके पति के पूर्वचरित का पता लगाने की कोई आद-श्यकता नहीं समझी।

कार्यदक्ष जेर्डा कुछ ही समय में विदेश-नवनीत

थीं। वह सब महत्त्वपूर्ण तारों की नकलें अपने ब्रीफकेस के चोर-खाने में छिपाकर घर ले आती और अपने पति को सौंप देती। दफ्तर से कागजात चुराकर लाने में उसे कभी कोई अड़चन नहीं हुई। कभी किसी पहरेदार ने उसके शोले की तलाशी नहीं ली।

हर्बर्ट ये कागजात पूर्व बर्लिन जाने वाली ट्रेन के गुसलखाने में वाश-वेसिन के पीछे छिपा दिया करता था और वे पूर्व बर्लिन में निकाल लिये जाते थे।

लंबे अरसे तक यह सिलसिला चल रहा। जेर्डा की सेवा से पूर्व जर्मनी इतना प्रसन्न हुआ कि उसने दो बार उसे गुप्तता से स्वर्ण-पदक दिये। मगर धीरे-धीरे जेर्डा अनुभव करने लगी कि वह अपने देश के साथ द्रोह कर रही है। उसे महसूस होने लगा कि हर्बर्ट ने जासूसी कराने के लिए उससे शादी की थी। हर्बर्ट के संग रहने उसे कष्टप्रद लगने लगा। उसे तो इसकी भी भरोसा न रहा कि हर्बर्ट श्राय्टर उसकी

फरमा

पति का असली नाम है, नकली नाम नहीं। सन १९७२ में जेर्डी की नियुक्ति वार्सा के पश्चिम जर्मन दूतावास में हुई। वहां उसे साहस जुटाकर राजदूत से सारी बात कह दी। मगर अपने पति से वह बेवफाई नहीं करना नहीं चाहती थी। वार्सा से फोन करके उसने हर्बर्ट को बता दिया कि मैं अपनी व तुम्हारी कलई खोल रही हूं, तुम्हारी गिरफ्तारी होने वाली है। श्राय्टर पूर्व बर्लिन खिसक गया। जेर्डी पर मुकद्दमा चला और उसे तीन साल की जेल हुई।

आखिर ये युवतियां जासूसों के चक्कर में फंसी ही क्यों हैं? मामला जरा उलझा हुआ है। छोटी आबादी वाला छोटा-सा शहर है बॉन। मगर सरकारी दफ्तर वहां बड़ी संख्या में हैं; आखिर वह है देश की राजधानी। दफ्तरों में काम करने के लिए वहां पर्याप्त संख्या में पुरुष नहीं मिलते। इसलिए लड़कियों को आसानी से नौकरी मिल जाती है। नौकरी करके स्वतंत्र रहने की चाहिश से देश-भर से लड़कियां बॉन जाती हैं। शीघ्र ही यहां उन्हें अकेलापन खताने लगता है, पुरुषों के साहचर्य और प्यार के लिए तरसने लगती हैं वे; और

इसका फायदा उठाते हैं जासूस।

असल में इस समय पश्चिम जर्मनी साम्यवादी देशों के जासूसों से पटा पड़ा है—विशेषतः पूर्व जर्मनी के जासूसों से। दुनिया मई १९७४ में चौंक उठी थी जब यह बात प्रकट हुई कि पश्चिम जर्मनी के प्रधान-मंत्री विली ब्रांट का विश्वासपात्र सहायक गुंटर गिलामे पूर्व जर्मनी का जासूस है। विली ब्रांट को त्यागपत्र देना पड़ा था। कैसी विडंबना की बात कि साम्यवादी देशों से—विशेषतः पूर्व जर्मनी से—तनाव-रहित और मधुर संबंध बनाने की साहसपूर्ण नीति अपनाने का यह मूल्य विली ब्रांट को चुकाना पड़ा!

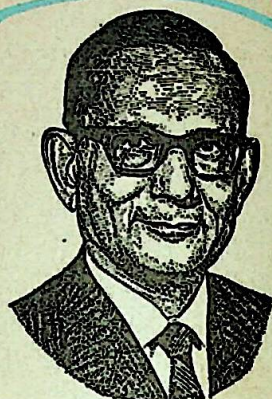
पूर्व जर्मनी का जासूस-संघटन एच. वी. ए. दुनिया के सबसे चतुर और कार्यक्षम जासूस-तंत्रों में गिना जाता है। पश्चिम जर्मनी में काम करने में उसके गुप्तचरों को विशेष सुविधा है। आखिर भाषा और संस्कृति तो एक ही है इन दोनों देशों की और कुछ नहीं तो लाख-दो लाख जर्मन परिवार ऐसे हैं, जिनके कुछ सदस्य पूर्व जर्मनी में हैं तो कुछ पश्चिम जर्मनी में। सो पूर्व जर्मन जासूसों को पश्चिम जर्मनी में छिपने व खपने में कुछ भी कठिनाई नहीं होती।



पुरातन काल की बात है। समुद्र पार से एक किश्ती जापान के तट पर आ लगी और विचित्र वेश वाला एक विदेशी यात्री उसमें से उतरा। वह अपने साथ कपास के बीज लाया था। वह उसी देश में बस गया और कपास की खेती करने लगा। धीरे-धीरे उसने जापानी भाषा सीखी और तब लोगों को पता चला कि वह भारतीय है। इस प्रकार जापान में कपास लाने और उसकी खेती शुरू करने का श्रेय भारत को है। यह बात एक जापानी दस्तेबोश कंपनी के अधिकारी श्री ए.ए. नोदा ने सूरत में बतायी।



श्रीगोपाल नेवटिया लेख-प्रतियोगिता का परिणाम



प्रथम पुरस्कार : ५०० रु.

सब निर्णायक इसमें एकमत थे कि कोई भी प्रविष्टि इस पुरस्कार के योग्य नहीं थी। इसलिए यह पुरस्कार नहीं दिया गया है।

द्वितीय पुरस्कार : ३०० रु.

डा. विष्णु प्रसाद (कानपुर)

[क्या भारत आर्थिक विकास की दौड़ में पिछड़ता जा रहा है, और क्यों?]

तृतीय पुरस्कार : २०० रु.

श्रीमती मणि आनंद (अलीगढ़)

[क्या औद्योगिक विकास की बलि चढ़ाये बिना ग्राम-विकास संभव है, और कैसे?]

निर्णायक :

श्री गणेश मंत्री, मुख्य उपसंपादक : धर्मयुग, बंबई।

श्री पृथ्वीनाथ शास्त्री, भूतपूर्व सह-संपादक : क्वार्टरली इको-नामिक रिपोर्ट, नयी दिल्ली।

श्री नारायण दत्त, संपादक : नवनीत, बंबई।

● पुरस्कार-राशि विजेताओं को चेक द्वारा प्रेषित की जायेगी। ● प्रति-योगिता में भाग लेने वाले समस्त बंधुओं को हमारा धन्यवाद।

—प्रबंध-संचालक : नवनीत



विज्ञान-चिंतु

केजिता

वैचारिक हठवादिता का जोर घटने से जो चीजें धर्मास्था या अंधविश्वास का ही विषय न रहकर वैज्ञानिक शोध के क्षेत्र में आती जा रही हैं, उनमें से एक है—पुनर्जन्म।

अमरीका की वर्जीनिया यूनिवर्सिटी के परामनोविज्ञान-विभाग के अध्यक्ष डा. इयन स्टिवेन्सन पिछले तीस वर्षों से इस क्षेत्र में कार्यरत हैं। अभी पिछले दिनों उन्होंने अपनी भारत-यात्रा के दौरान यह बताया है कि विस्तृत सर्वेक्षण से संसार के कुछ ऐसे भौगोलिक क्षेत्रों का पता लगा है, जहां पूर्वजन्म की स्मृतियों वाले बच्चे अपेक्षाकृत अधिक संख्या में पैदा होते हैं। ये

क्षेत्र हैं—श्रीलंका, उत्तर भारत, बर्मा, थाइलैंड, तुर्की, इंदोनेशिया के सैयद मुस्लिम आबादी वाले इलाके और उत्तर-पश्चिम अमरीका आदि। ऐसा क्यों है? यह अभी बता पाना कठिन है।

पुनर्जन्म के मामलों के अध्ययन की विधियों पर प्रकाश डालते हुए डा. स्टिवेन्सन ने बताया कि बच्चे की प्रवृत्ति, वात-चीत और कभी-कभी शारीरिक रचना से भी उपयोगी बातों का पता लग सकता है। उनके पास ऐसे कुछ बच्चों के रेकार्ड हैं, जो पानी, कुत्ते या ट्रक वगैरह को देखकर चीखने-चिल्लाने लगते थे, और जिन्होंने कुछ बड़े होने पर बताया कि पूर्वजन्म में यही चीजें उनकी मृत्यु का कारण बनी थीं। छानबीन करने पर कई मामलों में उनके बयान सही पाये गये।

ऐसे मामलों में पूरे परिवार का अध्ययन करना होता है। यह पता लगाना होता है कि उस परिवार में किसी और व्यक्ति में तो इसी प्रकार की प्रवृत्ति नहीं है, या कभी कोई ऐसी घटना तो इस जीवन में नहीं हुई है, जिसके प्रभाव से वह ऐसी बातें कहता हो।

डा. स्टिवेन्सन के अनुसार, पिछले तीस वर्षों में यह पाया गया है कि कई बच्चों के व्यवहार की अपसामान्यताओं का कारण उनके पूर्वजन्म से संबद्ध होता है। उन्होंने एक सिंहली-भाषी बच्चे के विषय में बताया, जो अपने वर्तमान माता-पिता के लिए मम्मी-डैडी शब्दों का उपयोग करता था और पूर्वजन्म के माता-पिता के लिए इनके

हिंदी डाइजेस्ट

सिंहली पर्यायों का ।

शारीरिक लक्षणों से पूर्वजन्म की पुष्टि के भी प्रकरण उन्होंने सुनाये । वे एक तुर्की युवक को जानते हैं, जो कहता है कि पूर्व-जन्म में वह डाकू था और एक बार फ्रांसीसी पुलिस के घेरे में आ जाने पर उसने अपनी बंदूक कनपटी पर रखकर घोड़ा दबा दिया और आत्महत्या कर ली । कनपटी पर जिस स्थान पर उसने बंदूक की नली टिकायी थी, ठीक उसी स्थान पर इस जन्म में उसके शरीर पर एक निशान है ।

डा. स्टिवेन्सन ने युवक के बताये विवरणों के आधार पर गुप्त रूप से इस मामले की पूरी परीक्षा की । उन्होंने उस पुलिस-दल का पता लगाया, जिसने उस डाकू का घेराव किया था । दल के सदस्यों ने बताया कि उन्होंने भी एक गोली दागी थी, जो डाकू की खोपड़ी में लगी थी ।

डा. स्टिवेन्सन ने पुलिस के इस बयान के आधार पर सरकारी अस्पताल के कागजात देखे और डाकू की खोपड़ी में गोली ठीक कहां लगी थी और उससे कितना बड़ा और कैसा घाव बना, इसका व्योरा प्राप्त किया । फिर उन्होंने उस तुर्की युवक को इस विषय में कुछ बताया बिना उसकी खोपड़ी की जांच की । उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा जब उन्होंने पाया कि उसकी खोपड़ी में भी ठीक उसी स्थान पर, ठीक उसी आकार का एक निशान मौजूद है !

अपने अध्ययन और अनुभव का सार डा. स्टिवेन्सन ने बेंगलूर विश्वविद्यालय की नवनीत

एक सभा में इन शब्दों में प्रकट किया— 'पुनर्जन्म की संभावना को एकदम नकारा नहीं जा सकता; परंतु अभी उसकी घोषणा भी असंदिग्ध रूप से नहीं की जा सकती। जो परिणाम अब तक सामने आये हैं, वे उत्साहवर्धक हैं।'

खून की जरूरत है

यों तो अब जगह-जगह रक्त-वैंक खुल गये हैं । मगर वैंकों में रक्त पैदा तो होता नहीं; लोग वहां जितना रक्त जमा कराये, उतना ही रक्त रहता है वैंकों में । जमा करने वाले भी सीमित संख्या में ही आते हैं । फिर लड़ाई के मैदानों में, जहां रक्त-वैंक नहीं होते, वहां भी जीवन-रक्षा के लिए रक्त की आवश्यकता पड़ती है । इसलिए रक्त की जगह किसी अन्य पदार्थ को इस्तेमाल किया जा सके, यह कोशिश पिछले कई वर्षों से विज्ञानी करते आ रहे हैं ।

इसी स्तंभ में पहले आप पढ़ चुके हैं कि अमरीकी वैज्ञानिक इस प्रयास में सफल होने की घोषणा कुछ वर्ष पूर्व कर ही चुके हैं और उनके द्वारा तैयार किये गये कृत्रिम रक्त के सहारे चूहों को काफी लंबे समय तक जीवित रखा जा सकता था । अब वही वैज्ञानिकों ने दावा किया है कि उन्होंने इस क्षेत्र में एक बिल्कुल नयी खोज की है और अपने बनाये नकली रक्त के सहारे वे एक बिल्ली को आठ घंटे तक जिंदा रखने में कामयाब हुए हैं ।

शरीर में रक्त जो अनेक कार्य करता है उनमें सबसे महत्त्वपूर्ण काम है श्वासक्रिया

फरवरी

में फेफड़े में पहुंची हवा में से आक्सिजन का अवशोषण करके उसे शरीर के अवशेषों के स्थान पर ले जाकर विमुक्त करता है। रक्त की इस जिम्मेदारी को निभाता है। उसकी कोशिकाओं में पाया जाने वाला लाल रक्त का वर्णक हीमोग्लोबिन।

इसलिए नकली रक्त बनाने के प्रयत्नों की सफलता की पहली शर्त यह है कि ऐसे किसी पदार्थ की खोज की जा सके, जो फेफड़े में आक्सिजन का अवशोषण करके उसे शरीर के अन्य भागों में विमुक्त कर सके। इसी से जुड़ी हुई दूसरी शर्त यह है कि जिन शरीरक्रियात्मक अवस्थाओं में रक्त यह काम करता है, उन्हीं हालात में यह नया पदार्थ भी यह काम कर सके। रूसी वैज्ञानिकों की नयी खोज इन्हीं बुनियादी बातों पर टिकी है।

रूसी समाचार के मुताबिक, फ्लुओरो-कार्बन नामक रसायन इन गुणों में हीमोग्लोबिन से मिलते-जुलते हैं। रूसी प्रयोगों में विल्ली के शरीर में से वास्तविक रक्त निकालकर फ्लुओरोकार्बन ही भरे गये थे।

नकली रक्त प्राकृतिक रक्त का स्थान पूरी तरह ले सके, उस स्थिति तक पहुंचने में अभी कुछ और समय लग सकता है। परंतु फिलहाल प्रतिरोध के लिए अंगों के परिरक्षण आदि के लिए फ्लुओरोकार्बनों से रक्त का काम लिया जा सके तो उससे भी मानव का काफी भला हो सकेगा।

उत्तरी विक्षिप्ति

मानसिक अवसाद (मेन्टल डिप्रेशन) का

रोग लगातार बढ़ोतरी पर है। इस रोग को लेकर एक सर्वेक्षण पटियाला के मेडिकल कॉलेज के मनश्चिकित्सा-विभाग के प्रो. गुरमीत सिंह ने किया है। देश के विभिन्न विविद्यालयों से प्राप्त आँकड़ों के आधार पर वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि यह रोग देश के उत्तरी क्षेत्रों में दक्षिणी प्रदेशों की अपेक्षा अधिक व्याप्त है।

उदाहरणार्थ, दक्षिणी प्रदेशों में मानसिक चिकित्सालयों में उपचार के लिए आने वाले रोगियों में मानसिक अवसाद वाले व्यक्तियों का प्रतिशत सामान्यतः ४ और ९ के बीच होता है और अधिक से अधिक अनुमानतः १२। इसके विपरीत उत्तर में यह संख्या २० से लेकर ३५ प्रतिशत तक पायी गयी है। पटियाला और चंडीगढ़ में यह रोग सबसे अधिक व्याप्त है। वहां इसके रोगियों का प्रतिशत २९.२ से लेकर ३४.९ तक है।

मानसिक अवसाद के मुख्य लक्षण हैं— लगातार थकावट, सिरदर्द, नींद और भूख की गड़बड़ी, काम-काज में अरुचि, समाज से विलगाव की प्रवृत्ति, तेजी से बदलने वाला मूड, हर समय घेरे रहने वाली उदासी और निराशा। चरम अवस्था में रोगी आत्महत्या भी कर सकता है।

इस रोग की कई किस्में हैं। इनमें से जो सबसे अधिक ज्ञात है, उसे 'एन्डोजीनस' यानी अंतर्जनित कहते हैं और मनुष्य की जीन-संरचना और उसमें होने वाले परिवर्तनों को उसका कारण समझा जाता है।

हिंदी डाइजेस्ट

१९७९

५१

मुमुक्षु भवन वेद वेदाङ्ग पुस्तकालय,
अरुणाचल प्रदेश, Gangotri

अगला नवनीत

खुश्चोव की जीवन-सांझ
रूस के पदच्युत कर्णधार निकिता
खुश्चोव ने अपने अंतिम वर्ष कैसे
गुजारे—एक मार्मिक चित्र ।

होली है.....

कन्हैयालाल कपूर, रवींद्रनाथ त्यागी आदि की हास्य रचनाएं और उपेन्द्रनाथ
अशक का संस्मरण ।

ऋषीकेश में प्रेरणा-गोमुख

सामाजिक न्याय की तीव्र चेतना से दीप्त संन्यासी स्वामी चिदानंद सरस्वती
(अध्यक्ष : शिवानंद मिशन) का व्यक्तित्व-सौरभ ।

नक्षत्र

कुंआरे-कवि स्व. पंतजी के गृहमोह की हृदयस्पर्शी झांकी ।

जासूसी उपग्रह बिकाऊ हैं

पश्चिम जर्मनी की एक व्यापार-संस्था जैरे के राष्ट्रपति मोबुटु को जासूसी उपग्रह
बेच रही है । कीमत ? लेख में पढ़िये और चौंक पड़िये ।

कहानियां

पहाड़ों की बर्फ (उर्दू)—अहमद नदीम कासमी; छह बच्चे (जर्मन)—जूलियस
फूचिक; अभिशप्ता (हिंदी)—शीतांशु भारद्वाज ।

कविताएं—संस्मरण—विज्ञान—अन्य स्थायी स्तंभ ।

एक सूचना

श्री विश्वेश्वर प्रसाद कोइराला नेपाल के राजनेता ही नहीं नेपाली के सर्वमान्य
उपन्यासकार भी हैं । उनका उपन्यास 'सुम्निमा' परंपरागत मूल्यों का पुनर्मूल्यांकन
करता है । उसका धारावाहिक प्रकाशन नवनीत में अप्रैल अंक से शुरू होगा ।

तो क्या भारत के उत्तरी और दक्षिणी प्रदेशों के निवासियों के 'जेनेटिक पूल' में कोई छोटा या मोटा अंतर है और उसी के कारण मानसिक अवसाद उत्तरी क्षेत्रों में अधिक और दक्षिणी क्षेत्रों में कम है ? और क्या इसके आधार पर यह मानना ठीक होगा कि पंजाबियों की जीन-संरचना शेष भारत के निवासियों से बहुत अलग होती है ?

डा. सिंह स्वयं भी किसी निर्णय पर नहीं पहुँचे हैं। हाँ, इस तरह अनुसंधान के लिए एक नये क्षेत्र का पता लगा है। समुद्री उर्वरक

विकास-योजनाओं में कृषि को सर्वाधिक महत्त्व देने का संकल्प राष्ट्र ने किया है। कृषि-विकास का गहरा संबंध है खाद (रासायनिक और जैविक दोनों) की भरपूर उपलब्धि से। इस सिलसिले में एक नयी सफलता भावनगर (गुजरात) के सेंट्रल साटल एंड मैरीन केमिकल्स रिसर्च इंस्टिट्यूट को प्राप्त हुई है। हाल में उसकी एक विज्ञप्ति में बताया गया है कि उसने समुद्री घास-पात से एक ऐसे द्रव पदार्थ का निर्माण किया है, जो फसलों के लिए आवश्यक पोषक तत्वों से संपन्न है और उर्वरक के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है।

इस शोध में मुख्य मुद्दा यह था कि समुद्री घास-पात से पोषक तत्वों के निष्कर्षण की विधि विकसित की जाये और जो पदार्थ इस प्रकार तैयार किया जाये वह स्थिर हो और आसानी से काम में लाया जा सके। शोधदल का कहना है कि उनका शोधकार्य

इन दोनों दृष्टियों से सफल रहा है। बताया गया है कि प्रयोगशाला के स्तर पर इस समुद्री उर्वरक का परीक्षण किया जा चुका है और क्षेत्र-परीक्षण के लिए इसे सारे देश के विभिन्न भागों में भेजा जा रहा है।

इसी शोधदल के अनुसार, समुद्री काई से घरेलू ईंधन के रूप में काम में लायी जाने वाली मीथेन गैस तैयार करने का भी प्रयत्न किया जा रहा है।

मूत्र-चिकित्सा: नया आयाम

सारे देश में जंगल की आग की तरह फैल रही और तरह-तरह की एलर्जी फैला रही गाजर घास (पार्थेनियम) का उन्मूलन विकट समस्या बन गया है। अब एक दिल-चस्प बात इस बारे में सुनिये।

एक सज्जन के घर के आहूते में पार्थेनियम ने गहरी जड़ें जमा ली थीं और उसे समूल नष्ट करने की उनकी सारी कोशिशें विफल हो चुकी थीं। गुस्से में आकर उन्होंने उस झाड़ी पर पेशाब करना शुरू कर दिया। कुछ समय में वे भूल ही गये कि उस झाड़ी को खत्म भी किया जाना है।

कुछ दिनों बाद उन्होंने अचानक देखा कि झाड़ी कुछ-कुछ मुरझाने लगी है और उसका फैलाव भी कुछ कम होने लगा है। कुतूहलवश उन्होंने पौधे का मूत्रोपचार जारी रखा। फिर एक दिन उन्होंने देखा कि पौधा सचमुच दम तोड़ चुका है। बेशक वे सज्जन कोई वैज्ञानिक परीक्षण नहीं कर रहे थे; मगर वैज्ञानिक जहाँ पर नाकाम हो चुके थे, वहाँ उन्हें सफलता मिल गयी।



रूसी राष्ट्रपति के साथ एक रात

मुहम्मद हैकल

खुश्चोव को पदच्युत कर दिये जाने के दस महीने बाद अगस्त १९६५ में कर्नल नासिर रुस के नये भाग्य-विधाताओं को देखने-परखने के इरादे से मास्को गये। उनके मित्र-सलाहकार तथा 'अल अहराम' के संपादक मुहम्मद हैकल भी उनके साथ थे। इस यात्रा में हैकल के साथ एक मजेदार घटना घटी। उसका वर्णन नीचे उन्हीं के शब्दों में प्रस्तुत है।



रूस के नये नेताओं ने हमारी यात्रा को सफल बनाने की ठान ली थी। २७ अगस्त को तमाम रूसी नेता हवाई अड्डे पर हाजिर थे मिस्त्री मेहमानों की अगवानी करने। जयकारे लगाने के लिए सड़कें पार्टी-कार्यकर्ताओं से भर दी गयी थीं।

रूसी त्रिमूर्ति (पोदगोर्नी, ब्रेजनेव और कोसीगिन) इस बात को खूब समझते थे कि अंतरराष्ट्रीय जगत में मध्यपूर्व का कितना महत्त्व है और वे नासर को यह दर्शाने को व्यग्र थे कि मध्यपूर्व-संबंधी रूसी नीति रूसी कम्युनिस्ट पार्टी की नीति थी, खुश्चोव का निजी मामला नहीं। लिहाजा दो औपचारिक बैठकों के बाद ब्रेजनेव नासर से बोले— 'आप तो सोवियत रूस पहले भी देख चुके हैं। इस भेंट-यात्रा में जरूरत इस बात की है कि मिल-बैठकर बातें करने के लिए वक्त निकाला जाये। हमारे-आपके बीच में हरी चादर बिछी मेज न हो और मनुष्य-मनुष्य के नवनीत

रूप में हम एक-दूसरे को जान-समझ सकें। सो उस सप्ताहांत-गोष्ठी के लिए जाफर दोवा नाम का शिकार-कुटीर चुना गया, जहां मास्को से कार द्वारा थोड़ी ही देर में पहुंचा जा सकता था। कुटीर में दीवारों पर शिकार में मारे गये एल्क और अन्य पशुओं के सिर टंगे हुए थे। जब हम वहां पहुंचे, त्रिमूर्ति पहले से वहां मौजूद थी बोर शेलेपिन, मिकोयान, ग्रोमीको और पोल्यान्स्की भी हाजिर थे।

दोपहर का वक्त था। ब्रेजनेव ने प्रस्ताव रखा कि हम लोग या तो शिकार पर जाएं या मछली पकड़ने। नदी-बांध से निर्मित एक विशाल झील पास ही थी, जहां बत्खों का शिकार किया जा सकता था; साथ ही एक छोटी झील भी थी, जिसमें मछली पकड़ी जा सकती थी।

हमारे विदेश-मंत्री डा. फावजी को बोर मुझे छोड़कर सभी लोगों ने शिकार पर

जाना पसंद किया। डा. फावजी को और मुझे मल्लाह, बंसी और डोरी के साथ एक-एक छोटी किश्ती दे दी गयी। कुछ ही मिनटों में मैंने पाया कि मैं उससे कहीं अच्छा गड्ढा हूँ, जितना कि मैं अपने को समझता था। लगभग हर तीन मिनट में मैं एक मछली झील से निकालकर किश्ती में डालता गया।

सूरज डूबने को हुआ। डा. फावजी झील के दूसरे किनारे अपनी किश्ती में थे। मैंने विलाकर उनसे कहा—‘मैंने डेरो मछलियाँ पकड़ डाली हैं—पूरी ११०।’ मगर डा. फावजी भी बहुत पीछे नहीं रहे थे, हालांकि उन्होंने इससे पहले कभी बंसी-डोरी को हाथ नहीं लगाया था। उनका योगफल ६० रहा। वे बोले—‘या तो यह पार्टी-झील है, या जनसंघर्ष-झील। इसमें मछलियाँ खुद-ब-खुद हमारे पास चली आती हैं!’

कुछ देर बाद शिकारी भी लौट आये। बेबनेव ने अठारह वत्तखें मारी थीं, नासर ने बारह, कोसीगिन ने दस, सादत और बकरिया मोहिद्दीन और मिकोयान ने तीन-तीन, और प्रोमीको ने दो। मार्शल मेलि-रोव्स्की अपना झोला खोलने को तैयार नहीं हो रहे थे। मगर ब्रेजनेव ने दवाव डाला तो पता चला कि एक भी वत्तख मार्शल के हाथ नहीं लगी थी। वे उदास आवाज में बोले—‘अगली बार मैं अपने कर्मचारियों को हिदायत दूंगा कि वे मेरे लिए “जमीन से वत्तख प्रक्षेपास्त्र” ईजाद करें।’

फिर हुआ रात्रिभोज। मूड जरा तनावपूर्ण था। किसी ने भी खुश्चोव का जिक्र

नहीं किया; मगर हर कोई वैसा वातावरण सिरजने की कोशिश कर रहा था, जैसा खुश्चोव के अधिकार-काल में ऐसे अवसरों पर होता था। मानो अनुपस्थित खुश्चोव की प्रतिभा भोज की अध्यक्षता कर रही थी।

भोज के बाद ज्यादातर मेजवान और मेहमान जल्दी ही सोने चले गये। मगर मैं मिकोयान के साथ बातें करता बैठा रहा या कहना चाहिये कि उनकी बातें सुनता बैठा रहा। वे बड़ी बढ़िया अंग्रेजी बोलते थे और किस्से सुनाने में तो कमाल ही हासिल था उन्हें। मुझे उनके संस्मरण बड़े ही दिलचस्प लग रहे थे।

जब हमने गणशय समाप्त की, तो आधी रात हो चुकी थी। मैं जीना चढ़कर अपने सोने के कमरे को ओर चला। सब कमरों पर नंबर लिखे हुए थे और मैं उस कमरे के द्वार पर पहुंचा, जिसे मैं अपना कमरा समझता था।

दरवाजा तो खुल गया, मगर भीतर अंधेरे में मैं न रोशनी का स्विच ढूँढ़ पाया, न अपना सूटकेस। मैं लौटकर बाहर गलियारे में आया। मगर वहां कोई भी नहीं था। सभी लोग सो चुके थे। पहरेदार सब नीचे की मंजिल पर थे। मैंने सोचा—ठीक है, यही कपड़े पहनकर सो रहूंगा। मैं बिस्तर पर जा लेटा! मगर पता चला कि उस पर पहले से ही कोई लेटा हुआ है। तो क्या दो-दो मेहमानों के लिए एक पलंग का इंतजाम था?

पर पता लगाने का कोई उपाय न था ।
 यों भी अब मैं कर ही क्या सकता था ?
 सो करवट बदलकर लेट गया और लगा सोने
 की कोशिश करने । लेकिन मेरा हमविस्तर
 बेचैन था । वह खरटे भरने लगा और उसने
 समूचा कंबल अपने ऊपर खींच लिया । इस
 तरह मुझे कुछ भी आराम नहीं मिल सका ।

आखिरकार सवेरा हुआ । मैंने आँखें
 खोलीं और देखा कि रात-भर का मेरा हम-
 विस्तर मुझ पर झुककर बहुत गौर से मुझे
 देख रहा है और उसके मुखड़े पर अपार
 आश्चर्य फैला हुआ है ।

मेरे वे हमविस्तर थे—निकोलाई पोट-
 गोर्नी, सोवियत संघ के राष्ट्रपति ।



?

इंद्रजाली

इतनी गुम्फा
 इतने कंगूरे
 इतने झंडे
 चाहिये
 इंसान को
 जीने के लिए
 यहां
 हरियाली
 कैसे जीती है ?
 पेड़ कैसे
 डरते ही नहीं
 मरते ही नहीं ?
 ०००

न

गहरे डूब
 न अब ।

०००

मीलों लंबी घाटियों के
 गलियारों में निःशब्द
 गौर-चरण चलते
 घतूरे के घंटों का
 नशीला नाद सुनते
 शीशम के थाल में
 परोसे कृतार्थते
 सिन्कोना की लाल
 प्रतियों की नीरोग
 मेंहदी रचाते
 तिस्ता को
 बांहों में बुलारते
 शिरीष की सहकती
 छाया में चाय—
 बगान सिहराते



थिम्पू : तीन कविताएं

—इंदु जैन—

बादल
 इंद्रजाली
 कहां छूट गये बीच रास्ते
 धुएं की सुरंग से उतारकर नरक में
 स्वयं
 स्वर्ग के द्वार ठिठक लिये !

—एफ-१८, प. निजामुद्दीन, नयी दिल्ली-१३



विकल्प



—शरु रांगणेकर

तब चलती कार की रफ्तार धीमी हो जाती है। मैं होश में आता हूँ और कार से बाहर झांकने लगता हूँ। कार शहर के बड़े पार्क में आ रही है।

मैं घड़ी की ओर निगाह डालता हूँ—तील बज चुके हैं। अब अगला अपाइंटमेंट चार बजे है। पार्क से वहाँ पहुँचने में ज्यादा से ज्यादा आधा घंटा लग सकता है। मत-लब आधा घंटा मैं यों ही टहल सकता हूँ।

मैं दुबारा कार से बाहर देखता हूँ और बाहर का दृश्य पहचाना-सा लगता है। कालेज में था तब मौसी के घर छुट्टियाँ बिताने आया करता था—तब मैं और उमा इधर ही घूमने आया करते थे। करीब-करीब रोजाना ही। कितने साल बीत चुके हैं—छह.....सात.....या करीबन आठ।

अगले मोड़ पर दायीं ओर हम दोनों की मनपसंद जगह थी। 'इस मोड़ पर दायीं

मराठी से अनुवाद : डा. विजय नायड

तरफ घुमाकर गाड़ी खड़ी कर दो', मैं ड्राइवर से कहता हूँ। कार रुकती है और मैं उतर जाता हूँ।

अभी-अभी बारिश हो चुकने की वजह से हवा में ठंडक है। सूरज की किरणों की वजह से अब दरख्तों में कई-कई हरे रंग चमक रहे हैं। हरा-यानी उमा का मन-पसंद रंग।

मैं कुछ कदम और चलता हूँ और मुझे वही बेंच नजर आती है।

उस बेंच पर एक औरत बैठी है। हरी साड़ी, हरा ब्लाउज और गले के इर्द-गिर्द हरा मफलर। करीब ही एक बाबागाड़ी खड़ी है और उस पर मसहरीनुमा एक जालीदार कपड़ा पड़ा हुआ है, ताकि मक्खियां बच्चे को परेशान न करें।

उस मां और बच्चे को तकलीफ होगी, इस खयाल से मैं रुक जाता हूँ। पर मेरी आइट पाते ही वह औरत मुड़कर मेरे सम्मुख हो जाती है।

चार आंखें मिल जाती हैं और पल-दो पल में ही पहचान उभर आती है। वह उमा है।

मैं उसी तरह खड़ा रहता हूँ। उमा खड़ी रहती है और ताजगी के साथ कहती है—'हलो...हलो...हलो...कितनी अजीब बात है मैं रोज ही दोपहर के वक्त, अगर बारिश न हो तो बच्चे को यहां लाती हूँ। पर तुमसे मुलाकात आज हो रही है—सो भी यों अचानक !'

मैं तिस पर भी उसी तरह खड़ा रहता

नवनीत

हूँ, उमा की ओर देखते हुए। उमा ऊंची और गोरी प्रतीत होती है, पर कमजोर हो जाने की वजह से रंग हल्का हो गया होगा। उम्र में काफी बड़ी लगने लगी है—कितने साल बाद मिल रही है। आंखों के नीचे कासे निशान हैं—पर आंखों में चमक बही है।

'अरे, कितनी कमजोर हो गयी हो तुम !' उसकी बातों के जवाब में मैं कहता हूँ।

'और तुम कितने मोटे हो गये हो !' वह हंसती हुई कहती है—'कम से कम बीस किलो वजन तो बढ़ ही गया होगा तुम्हारा !'

'नहीं—इतना तो नहीं', मैं जवाब देता हूँ—'पिछले दो-तीन साल में वजन बढ़ गया है। दोपहर का खाना, शाम की काकटेल्स... इस तरह सब बढ़ ही रहा है।'

'हां...मैंने सुना है कि तुम बड़े मँनेर हो गये हो। दो-चार जगह तुम्हारे फोटो भी देखे—अखबारों में और पत्रिकाओं में भी। परसों तो टेलिविजन पर भी देखा—दिल्ली के किसी सेमिनार में हिस्सा ले रहे थे तुम।'

'ऐसा उलझ गया हूँ बस ! पर तुम्हारे क्या हाल हैं ?'

उसकी आंखें पथरा जाती हैं। वह बाबागाड़ी की ओर देखती हुई कहती है—'औरतों के और क्या हाल होंगे—शादी... बच्चे.... घर-बार !'

'अगली बार आऊंगा तो तुम्हारे जरूर आऊंगा। पिछली बार मिला था न..... उसके बाद आज इस शहर में रहा हूँ।'

हैं, मुझे हमारी आखिरी मुलाकात याद है। कलेज के आखिरी साल की छुट्टियों में तुम आये थे। बाद में तुम्हारी मौसी ने बताया था कि तुम अब्बल नंबर से पास हुए..... नौकरी पाते-पाते बीवी भी पाते और तुम्हारे अमीर ससुर ने तुम्हें विदेश भी भेज दिया।'

'हुँ! वह बात सही नहीं है। मुझे क्लेश में पढ़ाई के लिए फेलोशिप मिली थी और उसी वक्त शादी का प्रस्ताव आया। ससुर साहब ने कहा कि वापस आने तक रुकने के बजाय शादी करके दोनों ही रहे जाओ, कुछ मदद मैं भी कर दूंगा—तुम्हारी कुछ मदद जरूर हुई, बस !'

'शादी करके गये यह ठीक ही हुआ, नहीं तो वहाँ तुम्हें कोई अपने जाल में उलझा लेती।'

उसकी बातों में व्यंग्य था—पता नहीं। पर मैं बेचैन था।

'मुझे गलती हो गयी उमा' मैंने खीब अटकाव के साथ कहा—'मुझे तुम्हें एक खत तो जरूर लिख देना चाहिये था। पर खत लिखना कितना मुश्किल था—तुम खुद समझ सकती हो। शब्द ही नहीं मिल पाते। तब से मेरा मन खुद मुझे परेशान किये बा रहा है।'

'हूँ..... सच ही है..... वचन देते वक्त शब्दों की जो गति होती है, वह वचन तोड़ते वक्त लड़खड़ा ही जाती है। पर इतना बुरा मानने की जरूरत नहीं है। उस उम्र में यही

लगता है—सब कुछ यही है, और अगर यह खो गया तो दुनिया वीरान हो जायेगी। पर वैसा होता नहीं है। जिंदगी में कई विकल्प हुआ करते हैं। अब मुझे ही देखो—खुश हूँ..... घर-बार..... पति, बच्चा..... सब कुछ।'

'आज सचमुच मुझे राहत महसूस हो रही है....' मैं कहता हूँ—'मुझे हमेशा यही खयाल तंग करता रहा कि मैंने तुम्हें दुःखी बना दिया। पर आज तुम्हें खुश देखकर अजीब तसल्ली हो रही है।'

इस पर वह हंसने लगी, और उसका हंसना रुकता ही नहीं। यों तो उसकी पुरानी आदत है। आंखों में पानी आ जाये, पर हंसी रुकती ही नहीं—उस वक्त मैं उसकी पीठ पर घूँसा जमा दिया करता था।

'अब अगर हंसी रुकी नहीं तो घूँसा जमाऊंगा।' मैं धमकाता हूँ।

शब्द उसके कानों तक पहुंचते ही उसकी हंसी रुक जाती है और रोना शुरू हो जाता है। अजीब पागलों की तरह का रोना। कलेजा फट जाये ऐसा रोना। मुझे हड़-बड़ाया—सा देखकर वह गले का मफलर निकालकर अपना मुँह ढांप लेती है।

... और तभी दूसरा झटका लगता है। उसके गले में मंगलसूत्र नहीं है।

मैं नीचे झुककर बाबागाड़ी का मसहरी-नुमा जालीदार कपड़ा हटाता हूँ।

बाबागाड़ी में लेटे-लेटे मेरी ओर बेजान आंखों से देखती रहती है—एक गुड़िया।





दिव्य प्रेम*

श्रीमाताजी

प्रेम विश्व की महान शक्तियों में से एक है। यह शक्ति स्वनिर्भर है, और यह जिन पदार्थों में तथा जिन व्यक्तियों के माध्यम से आविर्भाव प्राप्त करती है, उनसे स्वतंत्र रूप में काम करती है। जहां-जहां संभव हो तथा जहां-जहां इसके प्रति उन्मुखता हो, वहां-वहां यह आविर्भाव प्राप्त करती है। परंतु मनुष्य इस मनोभाव को महज अपनी निजी अनुभूति समझता है; यह एक भ्रम है। वास्तव में प्रेम तो विश्वव्यापी सनातन प्रेमसागर की ही एक लहर है जो बहकर उस मनुष्य में आयी है।

प्रेम एक विश्वव्यापी और सनातन तत्त्व है। वह सदा-सर्वदा अपना आविर्भाव करता ही रहता है। और इस आविर्भाव में उसका मूल तत्त्व हमेशा एक ही प्रकार का होता है। यह एक दिव्य शक्ति है। इसके बाह्य व्यापारों में जो विकृतियां दिखाई देती हैं, वे उसके करणों यानी साधनों के कारण होती हैं। प्रेम के मूल सनातन तत्त्व में आसक्ति, रासना, स्वामित्व की भूख, स्वकेंद्रित लोलुपता इनमें से एक भी नहीं होती। विशुद्ध रूप में प्रेम, मनुष्य की अंतरात्मा की भगवान के साथ मिलन की आकुलता होती है।

ज्ञानमार्ग के अनुयायी भी एक ऐसी भूमिका पर आकर अटक जाते हैं कि जिससे बागे प्रगति करने के लिए उन्हें प्रेम की भूमिका में भी प्रवेश करना पड़ता है। इस भूमिका में ज्ञान दिव्यप्रेम के साक्षात्कार का आलोक बन जाता है और प्रेम ज्ञान का साक्षात् हृदय बन जाता है। आत्मा की प्रगति में एक ऐसी भूमिका आती है, जहां ये दोनों-ज्ञान और प्रेम-एक हो जाते हैं।

प्रेमशक्ति की क्रिया केवल मानव-जाति में ही सीमित नहीं है। मनुष्येतर जीवों में इसकी क्रिया शायद कम विकृत भी है। प्रकृति में पुष्पों की ओर, वृक्षों की ओर दृष्टि फेरिये। सूर्यास्त हो रहा हो, सब ओर गंभीर नीरवता छा रही हो, तब घड़ी-भर के लिए किसी वृक्ष के नीचे जाकर बैठिये और प्रकृति के साथ अपनी अंतरात्मा को एक करने का प्रयत्न कीजिये। आपको अनुभव होगा कि प्रेम की एक आर्त व्याकुलता पृथ्वी में से, वृक्षों की गहरी जड़ों में से निकलकर वृक्ष के रेशों में से होती हुई ऊंची से ऊंची टहनी तक आरोहण कर रही है, समूची पृथ्वी मानो अस्तमित प्रकाश को वापस मांग रही है, किसी

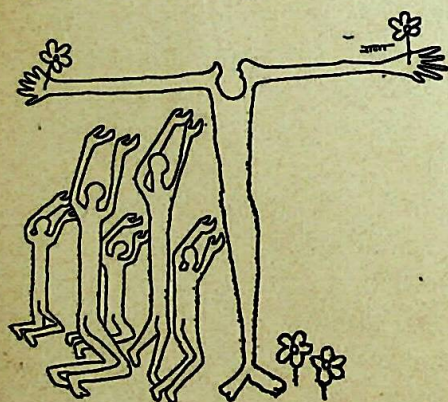
बायीं ओर : श्रीमाताजी [पोद्द : बी. एन. ओके]

कल्याणकारक ज्योतिर्मय वस्तु के लिए तड़प रही है। यह आकुलता इतनी विशुद्ध और तीव्र होती है कि यदि आप वृक्षों की आंतर चेतना के साथ अद्वैत अनुभव कर सकते हों, तो आपकी अंतरात्मा भी प्रभु की दिव्यशक्ति, दिव्यज्योति और उसके प्रेम के लिए आर्तभाव से प्रार्थना करने लगेगी, जो इस संसार में अभी अप्रकट रूप से विद्यमान है।

यदि आप एक बार भी इस विशाल, विशुद्ध और सच्चे दिव्यप्रेम का स्पर्श पा सकें, इसके किसी अंश को एक क्षण के लिए भी अनुभव कर सकें, तो आपको पता चलेगा कि मनुष्य की वासना ने इसकी कैसी दुर्दशा कर डाली है। मानव-प्रकृति में आकर यह प्रेम अधम, पाशविक, स्वार्थी, आवेशपूर्ण और कुरूप हो गया है, अथवा वह नितांत निर्बल और भावुक, क्षणिक, छोटे-छोटे क्षुद्र मनोभावों से भरा, छिछला और कृपण बन गया है।

मानव-प्रेम की कथा में जहाँ कहीं शुद्ध प्रेम का एक भी परमाणु प्रकट हो पाया है और बिना किसी विकार के उसका आविर्भाव हो सका है, वहाँ हमें सत्य और सौंदर्य के दर्शन होते हैं। और यदि प्राण की यह सुंदर और भव्य क्रिया अल्पायु सिद्ध होती है तो उसका कारण यह है कि उसे अपने लक्ष्य का, अपनी आकुलता के स्वरूप का ज्ञान नहीं होता। प्राणतत्त्व की गतिविधि मनुष्य मनुष्य के बीच संयोग करने के लिए नहीं, अपितु भूतमात्र का परमात्मा के साथ योग है। परंतु प्राण को इसका ज्ञान नहीं है।

इस क्लेशमय, अंधकार-भरे जगत में सनातन चेतना ने जगत को और प्राणियों को वापस भगवान की ओर ले जाने के निमित्त जिस परम शक्ति का अवतरण किया है, उसका नाम 'प्रेम' है। अंधकार और अज्ञान में डूबा हुआ पार्थिव जगत प्रभु को विसार बैठा था। उस अज्ञान में प्रभु का दिव्यप्रेम अवतरित हुआ और जो भी अंधकार में सुषुप्त



चित्र : टी. ए. राणा

नवनीत

६२

थे, उन सभी को उसने जागृत कर दिया। बहरे हो चुके कानों में उसने हीले-से कहा—'जिसे जगकर देखा जाये, जिसके लिए ही जिया जाये ऐसी एक वस्तु जीवन में है। वह है दिव्यप्रेम।' और प्रेमभाव के जाग्रत होते ही पुनः भगवान की ओर गति करने की संभावना पृथ्वी में उद्भूत हो गयी। संसार प्रेम के जखिर भगवान की ओर गति करता है, और उसके प्रत्युत्तर में प्रभु का प्रेम और करुणा जगत से मिलने के लिए आ

फरवरी

के लोक से नीचे उतरते हैं। जब तक पृथ्वी और परमात्मा के बीच यह परस्पर विनि-
मय और संयोग न सधे, तब तक प्रेम अपना विशुद्ध सौंदर्य धारण नहीं कर सकता, उस-
में उसका नैसर्गिक सामर्थ्य और परिपूर्णता का तीव्र घन आनंद प्रकट नहीं होता।

सृष्टि में आज पर्यंत प्रेम की यह गति अधिक से अधिक जिस कक्षा तक पहुंची है,
मनुष्य उसी में प्रेम के उच्च से उच्च, अधिक से अधिक विशुद्ध और सर्वाधिक निःस्वार्थ
रूप को देखता है। उदाहरणार्थ, बच्चे के प्रति मां का प्रेम। परंतु मनुष्य में काम कर रहे इस
प्रेम की निगूढ़ आतुरता तो कुछ और ही है। जिस क्षण मनुष्य की चेतना, प्रेम के समस्त
मानवीय आविर्भावों से पूरी तरह निराले और स्वतंत्र विशुद्ध दिव्यप्रेम का स्पर्श पाती
है, उस क्षण ही उसे भान होता है कि वस्तुतः उसका हृदय अब तक किस वस्तु के लिए
बाकुल था। अंतरात्मा की अभीप्सा का आरंभ इसी क्षण होता है। उसमें भगवान से
मिलन की तमन्ना जागती है। उसी क्षण से सभी अज्ञानजन्य विकार और दूसरे आविर्भाव
पुंछने लगते हैं।

अनेक महान आत्माएं इस जगत में प्रभु के दिव्यप्रेम की विशुद्धताओं का अवतरण
करने के लिए जन्म लेती रही हैं। ऐसे व्यक्तिगत आविर्भावों के माध्यम से भागवत प्रेम
का साक्षात्कार बहुत सुगम बन जाता है। भागवत प्रेम को अपने में धारण किये व्यक्ति
के प्रति मनुष्य तीव्र भावना अनुभव कर सकता है और ऐसा भावानुभव उसे प्रभु के प्रेम
के प्रति जागृत कर देता है। उसके बाद व्यक्ति को लगता है कि अपने को बदलने का काम
सहल हो गया है।



मौक्तिक

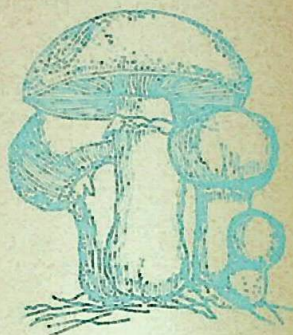
यहां यह सभा बैठी है, अभी अगर इसके बीच कोई सांप आ निकले
और वह किसी को काटे नहीं तो भी सबके दिल में भय होगा। इसी तरह
गांव की सीमा पर आकर कोई बाघ गर्जना करे और किसी को मारे नहीं
तो भी सब घबरा जायेंगे और घर के भीतर दुबक जायेंगे। इसी प्रकार
तनिक-सा भी क्रोध उपजे, तो वह दुःखदायी होता है।

किसी-किसी को भांग की, अफीम की, शराब या गांजे की लत होती
है और वह उसकी तृप्ति किया करता है। यह प्रारब्ध के कारण नहीं होता।
अगर वह व्यसन से छूटने के लिए श्रद्धा-सहित आग्रह करे, उसमें हिम्मत हो
तो वह व्यसन से मुक्त हो जाता है। परंतु श्रद्धा न हो, हिम्मत न हो, तो
व्यसन टलता नहीं।

—श्रीस्वामिनारायण



निकले-निकले कुकुरमुत्ते



आषाढ़ का एक दिन। ऊँचे आसमान में सहसा बदली घिर आयी। घन-गर्जन के साथ शुरु हो गयी वर्षा की फुहार। दामिनी दमकी और फिर लग गयी वर्षा की झड़ी। अगली सुबह आप निकले मैदान की सैर पर। यह क्या ! कल जहां कुछ नहीं था, वहां रात-भर में नन्ही रंग-बिरंगी छतरियां कहां से उभर आयीं ! जंगल में पेड़ों की घनी छांव में भी कुकुरमुत्तों की छतरियां तनी हुई हैं !

दूसरा दृश्य। ऊँचे शैल-शिखर। चीड़-देवदार के सघन वन वर्ष से ढंके हुए हैं। हिमवर्षी हवा धीरे-धीरे वासंती बयार में बदलने लगती है। बर्फ पिघलने लगती है। वृक्षों पर नयी कोंपलों की ताकझांक और पंछियों के कलरव के साथ वसंत का आरंभ हो जाता है। और सहसा चीड़-देवदार के वन गुच्छियों से भर उठते हैं।

नवनीत

सड़ी-गली चीजों पर सहसा पैदा होकर गायब हो जाने वाले खूबसूरत, नरम-नायक कुकुरमुत्ते सदियों से भारी कुतूहल का विषय रहे हैं। हिंदी में इनके अनेक नाम हैं- कुकुरमुत्ता, खुंभ, खुंभी, धिंगरी, झिंगरी, गुच्छी, छत्रक और अब तो अंग्रेजी से आया 'मशरूम' शब्द भी लोगों की जवान पर चढ़ गया है। इनके कुल और गोत्र तो हजारों में हैं।

बहुत पुरानी है कुकुरमुत्तों से मनुष्य के प्रेम की कहानी। प्राचीन रोम और यूनान में यह मान्यता थी कि आसमान में घुमड़ते बादलों के बीच कड़कती दामिनी के कारण ये धरती के दामन में उभर आते हैं। प्राचीन मेक्सिको इन्हें बादलों की विजयी और धरती के समागम से उपजी संतान मानकर पूजते थे। उनके धार्मिक उत्सवों में इनका उपयोग जादू-टोने के लिए होता था

६४

करवी

और विभ्रमकारी एवं पौषवर्धक औषध के रूप में भी। पत्थर की बनी कुकुरमुत्तों की प्रतिमां अब भी वहां बहुतायत से मिलती हैं।

पश्चिम में चिकित्सा-विज्ञान के जनक ग्रे जाने वाले यूनानी चिकित्सक हिप्पोक्रेटस (४६०-३७७ ई. पू.) ने आहार और औषध के रूप में कुकुरमुत्ते का वर्णन किया है। यूनानी दार्शनिक और प्रकृति-विज्ञानी विथोक्रेटस (ई. पू. ३७१-२८७) ने घोषित किया कि हरे रंग के न होते हुए भी कुकुरमुत्ते और भूमिगत फफूंद 'ट्राफल' निश्चित रूप से वनस्पति हैं। फिर भी इनकी उत्पत्ति के बारे में भ्रम बने ही रहे। ठेठ सोलहवीं सदी में एक यूरोपीय जीव-विज्ञानी ने लिखा कि ये कामक्रीडा में रत मृगों के शुक्र से बनते हैं।

कुकुरमुत्तों के असली कद्रदान थे रोम-वासी। 'अमेनिटा सीजेरिया' नामक कुकुरमुत्ता घनी रोमनों का प्रिय आहार था। उसे 'देवताओं का भोजन' कहा जाता था। शब्दांत रोमन व्यंग्य-लेखक मार्शियलिस (४०-१०२ ई.) का कहना था—'सोने-चांदी की उपेक्षा करना आसान है, लेकिन कुकुरमुत्तों की रकाबी को बिना छुए छोड़ देना बहुत कठिन है।' पाकशास्त्र पर यूरोप की सबसे पुरानी उपलब्ध पुस्तक, जो केलिअस ने तीसरी सदी ई. में लिखी थी, कुकुरमुत्तों के व्यंजन बनाने की विधियों से भरी पड़ी है। कलम और तलवार दोनों के धनी प्लिनी ने कुकुरमुत्तों की पूरी कहानी लिखी। उसने इनके जीवन-काल, प्राकृतिक आवास

और किस्मों का विवरण देने के साथ उन्हें पहचानने के गुर भी बताये।

प्राचीन मिस्र के शासक फैराओ मानते थे कि कुकुरमुत्ते आम आदमियों के लिए जरूरत से ज्यादा अच्छी चीज हैं। अरब भी कुकुर-

मुत्तों के गुणग्राहक मूर्ति (मेक्सिको)। रहे। महान अरब विचारक और चिकित्सक अविसेना या अबू इब्न सिना (९८०-१०३७ ई.) ने खाने योग्य कुकुरमुत्तों और विषैले कुकुरमुत्तों की पहचान के लिए पत्ते की बातें बतायीं।

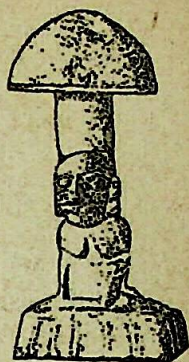
कहते हैं, रोम के खूनी और खूनी सम्राट नीरो (ई. पू. ४२ से ३७ ई.) ने कुकुरमुत्ते की स्तुति में सर्वोत्तम कविता के लिए भारी इनाम घोषित किया था। पता नहीं, वह इनाम किसी ने जीता या नहीं। परंतु हमारे यहां महाप्राण निराला ने अपने ही बलबूते पर कूड़े-कचरे में पलने-बढ़ने वाले कुकुरमुत्ते को सर्वहारा वर्ग का प्रतिनिधि मानकर उसे अपना प्यार दिया और उसके मुंह से पुष्पराज गुलाब को चुनौती दिलवायी :

वहीं गंदे में देता हुआ बुत्ता

पहाड़ी से उठा सिर ऎठकर बोला

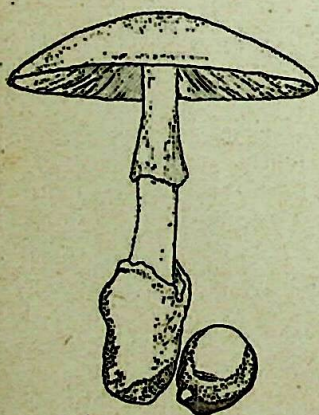
कुकुरमुत्ता—

हिंदी डाइजस्ट



अबे, सुन बे, गुलाब,
भूल मत अगर पायी खुशबू, रंगोआब
खून चूसा तूने खाद का अशिष्ट
डाल पर उतरा रहा कर्पिटलिस्ट ।

प्रकृति की यह खूबसूरत रचना सहसा
कहाँ से आ टपकती है ? असल में ये भी
पाँघे हैं और सड़ी-गली चीजों से आहार पाते
हैं । सभी कुकुरमुत्ते फफूंदियां हैं और पतले
घागे के रूप में जमीन में सड़ी-गली खादया
लकड़ियों में बढ़ते रहते हैं । जब बीज पैदा
करने का समय आता है, तो वर्षा की एक
हल्की फुहार पड़ते ही इनके फल बाहर फूट
आते हैं । रंग-बिरंगे, गोल-मटोल या छत-
रियों-से खुले सभी कुकुरमुत्ते वास्तव में
फफूंदी के फल हैं और उनमें एक-एक में
लाखों बीज बनते हैं । बीज बिखरने के साथ
ही छतरी गिरकर नष्ट हो जाती है ।



अमेनिटा सीजेरिया : शाही कुकुरमुत्ता
(खाने योग्य)

नवनीत

कभी-कभी भूमि में फफूंदी फैलती जाती
है । फिर एक घेरे में कुकुरमुत्ते उभर आते
हैं । आस-पास के पोषक तत्वों का उपयोग
कर लेने पर फफूंदी और आगे फैलती है
और दूसरे वर्ष बड़े घेरे में कुकुरमुत्ते प्रकट
होते हैं । ये घेरे अंग्रेजी में 'फेयरी रिंग'
(परी-वृत्त) कहे जाते हैं । कभी ऐसा माना
जाता था कि इन पर चांदनी रातों में परियां
नाचती हैं ।

डच प्रकृति-प्रेमी डा. थिजसे ने इस सदी
के आरंभ में लगातार तीन वर्ष तक परी-
वृत्तों का अध्ययन किया । उन्होंने ७ नवंबर
१९०९ को एक मैदान में 'ग्रेट वायलेट
राइडर' जाति (वैज्ञानिक नाम-ट्राइको-
लोमा न्यूडा) के कुकुरमुत्तों का एक घेरा
देखा, जो ९४.५ इंच लंबा और ७४.८ इंच
चौड़ा था । अगले वर्ष ४ नवंबर १९१० को
वहीं उन्हें ११५.३ इंच लंबा और १४४.४
चौड़ा घेरा दिखाई दिया । तीसरे वर्ष
सन १९११ की १ नवंबर को उसी जगह
२१८.२ इंच लंबे और २०८ इंच चौड़े परी-
वृत्त के दर्शन हुए । इसमें २३२ कुकुरमुत्ते
हवा में सिर उठाये हुए खड़े थे ।

कुकुरमुत्तों का शिकार

कुकुरमुत्ता सदा ही गरीबों का बेदाम
भोजन रहा है । साथ ही न जाने कितनी
बार वन-बीहड़ों और पहाड़ों में भूले-भटके
पथिकों, शिकारियों और सैनिकों के प्राण
उसने बचाये हैं । उन्नीसवीं सदी में महान
प्रकृति-विज्ञानी चार्ल्स डार्विन दक्षिण अम-
रीका के टिअरा-डेल-फ्यूगो द्वीप में यह

देखकर चकित रह गये कि वहाँ के नग्नप्राय निवासी मांस-मछली के अलावा केवल दो ही प्रकार का वानस्पतिक भोजन करते थे—सूबेरी और कुकुरमुत्ता। आज यह कुकुरमुत्ता 'डार्विन की स्मृति में साइटेरिया बर्बिनाइ' कहलाता है। विश्व के अन्य भागों में भी आदिवासी बड़े शौक से कुकुरमुत्ते खाते-उगाते रहे हैं।

जंगलों में जमीन के भीतर कंद की तरह पाये जाने वाले 'ट्रफल' और कुकुरमुत्ते एकत्र करना शौकीन लोगों के लिए आखेट की तरह मनोविनोद बन गया था। ट्रफल खोजने के लिए सूअरों और कुत्तों को प्रशिक्षित किया जाता था। शिकार-कुशल 'ग्रे हाउंड' कुत्तों की तरह 'ट्रफल हाउंड' तैयार किये जाते थे, जो गंध के आधार पर भूमिगत कुकुरमुत्तों का पता लगाते थे।

कुकुरमुत्तों के बीनने-वटोरने का काम हमारे देश में भी होता है। बाजार में विकने वाला 'खुंभ' हरियाणा, पंजाब और राजस्थान के कुछ भागों में रेतीली जगहों पर उगता है और प्रायः सुखाकर बेचा जाता है। ये खुंभ वस्तुतः फेलोरिना इन्क्विनेरा तथा पोडाक्सिसपिस्टिलेरिस नामक दो जातियों के होते हैं। इनमें दूसरा ऐसी भूमि में ज्यादा उगता है, जिसमें सड़ी-गली चीजों का अंश अधिक होता है। यह हरियाणा और उसके आस-पास पंजाब, राजस्थान तथा उत्तर प्रदेश के कुछ भागों में वर्षा शुरू हो जाने के बाद जुलाई-अगस्त में अधिक उगता है।

खुंभ के अलावा काला ट्रफल भी हमारे



और अपने से उगा में,
बिना दाने का चुगा में,
कलम मेरा नहीं लगता,
मेरा जीवन आप जगता।

—निराला ('कुकुरमुत्ता' से)

यहाँ बाँज के जंगलों में भूमिगत कंद की तरह पाया जाता है। विदेशों में सर्वाधिक स्वादिष्ट माना जाने वाला यह कुकुरमुत्ता हमारे देश में अभी अनजाना ही है। बाँज-वनों से घिरी ऊंची पहाड़ियों में इसे बहुतायत से पैदा किया जा सकता है।

मगर गुच्छी में हमारी साख अच्छी है। दुनिया में आज तक इसकी खेती करने में सफलता नहीं मिली है। जम्मू-कश्मीर, हिमाचल प्रदेश और उत्तर प्रदेश की सुरम्य घाटियों में चीड़-देवदार के वन वसंत में बर्फ पिघलने पर और वर्षा ऋतु की विदाई के बाद बंद मट्टियों—सी भूरी-मटमैली गुच्छियों से भरने लगते हैं। जिस वर्ष हिमपात अधिक होता है, गुच्छियाँ भी अधिक निक-

लती हैं। इन्हें अत्यंत स्वादिष्ट माना जाता है और ग्रामवासी इन्हें जंगल से बटोरते हैं। जम्मू-कश्मीर और हिमाचल प्रदेश के वन-विभाग हर साल गुच्छियां एकत्र करने का ठेका देते हैं।

मौस्केला (गुच्छी) और फ्यूरोटस आस्ट्रिएटस तथा चौतरविले (घिगरी) को सुखाकर निर्यात भी किया जाता है। अनुमान है कि हर साल जम्मू-कश्मीर में लगभग २१ टन और हिमाचल प्रदेश में करीब ९ टन गुच्छी सुखायी जाती है, जिसका अधिकांश भाग स्विट्जरलैंड, फ्रांस, बल्गारिया, जर्मनी, जापान आदि अनेक देशों को निर्यात किया जाता है।

पौष्टिक आहार

गरीबों की पत्तल से अमीरों की प्लेटों तक यों ही नहीं पहुंच गया कुरुरमुत्ता। पोषण-विज्ञानियों का कहना है कि यह कूड़े में पैदा हुआ कंचन है। कहते हैं, १०० ग्राम कुरुरमुत्ते से हमें औसतन ५ ग्राम ऐसी



बोल्वेरिया : छतरियां फूटने से पहले

नवनीत

प्रोटीन मिलती है, जो पूरी तरह शरीर में पच जाती है। इससे अलावा उससे हमारी दैनिक जरूरत से अधिक फास्फोरस तथा पोटेशियम, दैनिक जरूरत के बराबर जिक, दैनिक आवश्यकता का एक तिहाई लोहा और उससे कुछ कम मात्रा में कई अन्य महत्वपूर्ण खनिज भी मिलते हैं। इतना ही नहीं, लगभग १० ग्राम कार्बोहाइड्रेट भी प्राप्त होता है।

ताजा कुरुरमुत्ते में विटामिनों की प्रचुर मात्रा होती है। बी समूह के बहुमूल्य विटामिन इसमें काफी मात्रा में होते हैं। अमेनिटा सीजेरिया और कैन्थरेलस सिबेरिया में विटामिन-ए बहुत होता है। मांस की तरह कुरुरमुत्तों में भी विटामिन-सी कम होता है; लेकिन अपवाद है फिस्टुलिना हीपेटिका किस्म, जिसमें १५० मिलिग्राम तक विटामिन-सी होता है। विटामिन-बी भी ताजे कुरुरमुत्तों में काफी होता है— १०० ग्राम कुरुरमुत्ते में १०० से ५०० अंतरराष्ट्रीय इकाई तक, जो कि हमारे दैनिक आवश्यकता से कहीं अधिक है। इस मामले में यह मक्खन और अंडे की जर्दी से कुछ ही घटकर है। इसमें विटामिन-बी भी पाया जाता है और कई ऐसे कार्बनिक अम्ल भी मिलते हैं, जो श्वसन क्रिया में मदद देते हैं।

बाकायदा खेती

अपनी विशिष्ट खुशबू और स्वाद के कारण कुरुरमुत्ते भूख बढ़ाते हैं और अन्न खाद्य पदार्थों के साथ पकाने पर व्यंजनों को

फरवरी



वोल्वेरिया : धान के पुआल पर खेती ।

स्वादिष्ट और सुगंधित बना देते हैं। इसी-
लिए तो आज दुनिया के कोने-कोने में कुकुर-
मुत्तों की खेती की जा रही है। घर-आंगन
और झोपड़ियों से लेकर तापनियंत्रित
कक्षों तक में कुकुरमुत्तों की सैकड़ों जातियां
उगायी जा रही हैं।

जापानी लोग कम से कम दो हजार वर्षों
से पेड़ों के तने के टुकड़ों पर अपना मन-
पसंद कुकुरमुत्ता 'शिताके' उगाते आ रहे
हैं। चीन में भी एक खास जाति के कुकुर-
मुत्ते 'ज्यूज इयर' की खेती पूर्वकाल से चल
रही है। मगर कुकुरमुत्तों की विधिवत्
खेती आरंभ करने का श्रेय फ्रांसीसियों को
है। उन्होंने सत्रहवीं सदी में पेरिस के
निर्माण के लिए जो चूना-पत्थर खोदा गया
उसकी वेकार पड़ी ठंडी-अंधेरी खानों में
और गुफाओं में छोड़े की लीद पर कुकुर-

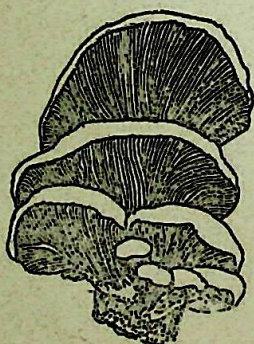
मुत्तों की खेती शुरू की। वहां से इसका
चलन सारे यूरोप में और सं. रा. अमरीका
में हुआ।

वाद में छोड़े की लीद का स्थान कंपोस्ट
खाद ने ले लिया। गेहूं व धान के पुआल की
कुट्टी की कंपोस्ट खाद बनाकर उस पर
कुकुरमुत्ते पनपाये जाने लगे। कई किस्में
पेड़ों के तनों के टुकड़ों पर उगायी जाने
लगीं। आज सारे विश्व में इनकी वैज्ञानिक
खेती चल रही है। मांग इनकी इतनी है कि
बड़े शहरों में ताजे कुकुरमुत्ते ३० से ५०
रुपये किलोग्राम और सुखाये हुए १००
रुपये किलोग्राम तक बिक रहे हैं।

कहते हैं, सेलिओटा (एंगेरिकस) वंश
के कुकुरमुत्तों की सर्वाधिक खेती हो रही
है। हमारे देश में कृषि-विश्वविद्यालय,
कृषक और अन्य शौकीन लोग एंगेरिकस

(बटन मशरूम), बोल्वेरिया, प्लूरोटस आदि जातियों की खेती कर रहे हैं। बटन मशरूम को कंपोस्ट खाद पर अक्टूबर से लेकर फरवरी तक सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है। यह कंपोस्ट खाद गोहूँ के भूसे में रासायनिक खाद, चोकर, लकड़ी का बुरादा और कीटनाशक दवाइयाँ मिलाकर बनायी जाती है। जम्मू-कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, उत्तर प्रदेश और तमिलनाडु में इसकी खेती की जा रही है।

प्लूरोटस को भी अक्टूबर-फरवरी की अवधि में ही धान के पुआल की कुट्टी पर लकड़ी की पेटियों में उगाया जाता है। बोल्वेरिया की खेती धान के पुआल पर अप्रैल से सितंबर तक की जा सकती है। इस प्रकार साल-भर ताजे कुकुरमुत्ते प्राप्त किये जा सकते हैं। पर्वतीय क्षेत्र में कटे पेड़ों के तने के टुकड़ों पर शिताके किस्म के कुकुरमुत्ते की खेती के परीक्षण किये जा रहे हैं। शिताके की फसल दो साल बाद



प्लूरोटस : स्वादिष्ट और खाने योग्य

नवनीत

मिलती है; मगर फिर लगातार छह साल तक वर्ष में दो फसलें मिलती रहती हैं।

विभिन्न प्रकार के कुकुरमुत्तों की खेती के लिए हमारे देश की जलवायु बहुत अनुकूल है। इसके लिए आवश्यक साधन-सामग्री भी हमारे यहाँ प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। इसलिए बड़े पैमाने पर इनकी विभिन्न किस्मों की खेती करके इनका निर्यात करना संभव है। अभी तो हम सालाना छह-सात टन (बटन मशरूम) ऊँचे दाम पर विदेशों से आयात कर रहे हैं।

बोल्वेरिया, रुसुला, प्लूरोटस, बोलेटस, सेलिओटा, पेजाइजा, हेल्विला आदि वंशों के कुकुरमुत्ते सर्वाधिक स्वादिष्ट और सुगंधित माने जाते हैं। कई प्रकार के कुकुरमुत्ते कच्चे भी खाये जाते हैं, जैसे कि प्राचीन रोम का शाही कुकुरमुत्ता अमेनिटा सीबेरिया और बोलेटस, आरिकुलेरिया, फिस्टुलिना, सेलिओटा (एंगेरिकस), लाइकोपडॉन आदि।

खूबसूरत जहर

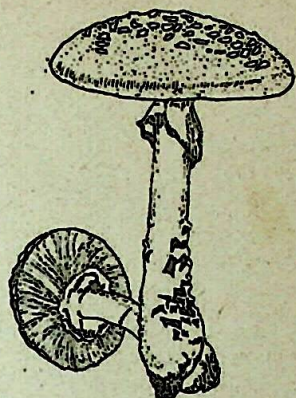
लेकिन बला के खूबसूरत और बिलकुल मासूम दिखने वाले कुछ जंगली कुकुरमुत्तों से कभी-कभी दिल हिला देने वाले हावले भी हो जाते हैं। इनकी हजारों जातियों में चंद जातियाँ जहरीली भी हैं। जंगल के किसी नम कोने में उगे सुर्ख लाल, चित्तीदार अमेनिटा मस्केरिया (फ्लाई अगेरिक) को देखकर भला कौन सोच सकता है कि इसका रसपान करने वाली मक्खियों को अपनी जान गंवानी पड़ती है !

फरवरी

बहुत पहले एक बार फ्रांस में मजदूर वंशहीन सदी की कुछ 'ममियों' को स्थानांतरित कर रहे थे। एक ही परिवार की बात ममियों के चेहरों पर अंकित असह-निक पीड़ा के भावों को देखकर वे कांप उठे। बात डाक्टरों के कानों तक जा पहुंची। और ममियों के चेहरे देखते ही डाक्टर कह उठे—'डेथ कैप!' सैकड़ों वर्ष पहले कभी वह पूरा परिवार डेथ कैप अर्थात् अमेनिटा फैलो-इडीज की भेंट चढ़ गया था। यों हत्यारों ने भी कई बार जहरीले कुकुरमुत्तों का उप-योग किया है।

कुकुरमुत्तों के जहर की खासियत यह है कि उसका असर अक्सर बहुत देर में होता है। खाते समय इनके स्वाद का गुण-गान करने और फिर-फिर थाली आगे बढ़ाने वाले लोग प्रायः आठ से लेकर गालीस घंटे बाद ही यह जान पाते हैं कि उन पर जहर का असर हो गया है। कई विषैले कुकुरमुत्ते खाने में कड़वे-कसैले नहीं बल्कि बेहद स्वादिष्ट होते हैं। वस गनीमत इसी है कि जान लेने वाले कुकुरमुत्ते कम ही हैं। अधिकांश तो मतिभ्रम कराते हैं बबबा पाचन-तंत्र व स्नायु-प्रणाली पर बुरा प्रभाव डालते हैं।

अमेनिटा वंश के कुकुरमुत्ते सर्वाधिक विषैले होते हैं। इसकी कुछ जातियां पकाते समय गरमी से निर्विष हो जाती हैं; लेकिन बाकी विषैली ही बनी रहती हैं। इनका जहर बहुत धीरे-धीरे असर करता है। लगभग बारह घंटे तक कोई लक्षण नहीं



जहरीला कुकुरमुत्ता अमेनिटा मस्केलिया-
अनुमान है कि सोमरस इसी से बनाया
जाता होगा।

उभरता। लेकिन उसके बाद जहर बहुत तेजी से जिगर और गुदों को वरबाद कर देता है। दिल की घड़कन बंद हो सकती है और भीतरी रक्तस्राव शुरू हो सकता है।

इसी वंश के कुकुरमुत्तों में से एक है—अमेनिटा फैलोइडीज। यह सबसे विषैला और घातक कुकुरमुत्ता माना जाता है और 'डेथ कैप' (मौत की टोपी) कहलाता है। इसकी मात्र २० ग्राम की खूराक आदमी की जान लेने के लिए काफी है। इसके अलावा अमेनिटा बाइस्पोरिफेरा, अमेनिटा विरोसा, अमेनिटा वर्ना, लेपिओटा हैल्वि-ओला तथा कौटिनेरिक्स ओरेलेनस भी बेहद विषैले और घातक कुकुरमुत्ते हैं।

अमेनिटा वंश के कुकुरमुत्तों का विषैला पन ८ से ४० घंटे बाद के, दस्त, बेहद पसीना और न बुझने वाली प्यास के रूप में प्रकट

महामशरूम

क्या आप कल्पना कर सकते हैं ऐसे कुकुर-मुत्ते की, जिसका व्यास इंचों में नहीं, फुटों में नापा जाये? लंदन के 'संडे टाइम्स' की खबर के अनुसार पिछले साल ऐसा एक 'पफबाल' कुकुरमुत्ता पाया गया, जिसका व्यास 1५ फुट और वजन २४ पौंड था। आपको आश्चर्य नहीं होना चाहिये कि वह मिला सोवियत संघ के किरगिजिया गण-तंत्र में। आखिर सर्वहारा का प्रतीक ऐसा कीर्तिमान साम्यवादी देश में ही तो स्थापित कर सकता है।

होता है। हाथ-पैर ठंडे पड़ने लगते हैं, पिंडलियों में मरोड़ पैदा होने लगती है, आंखें गहराई तक धंसी हुई-सी और चेहरा पीला व बुझा हुआ दिखाई देता है। फिर चिंता और विषाद का दौर शुरू होता है। नाड़ी की गति बहुत बढ़ जाती है, पक्षाघात हो जाता है, शरीर एंठने लगता है और अंत में प्राण-पखेरू उड़ जाते हैं। यह सारी प्रक्रिया १० से लेकर २० दिन तक चल सकती है। जहर से जिगर और गुदों को वचाने के लिए कोलाइन और थायोपेटिक अम्ल लाभकारी पाये गये हैं। कई कुकुर-मुत्ते स्नायुतंत्र को नुकसान पहुंचाते हैं। इनमें प्रमुख हैं—अमेनिटा मस्केरिया, इनोसाइबे पेटोइलार्डी और क्लाइटोसाइबे डीलबाटा।

कुछ कुकुरमुत्ते पेट के लिए हानिकारक हैं। ये प्रायः जान तो नहीं लेते, लेकिन

नवनीत

गहरा नशा पैदा करने के साथ-साथ कैं, पेटदर्द, दस्त और वेहोशी ला देते हैं। इन्टोलोमा लिविडम वेहद नशीला और घातक कुकुरमुत्ता है, मगर सौभाग्य से दुर्लभ भी है। ट्राइकोलोमा पांडितम, ट्राइकोलोमा विर्गेटम, ट्राइकोलोमा प्रोआवेन्से, क्लिटोसाइबे ओलीएरिया, वोलेटस सेटानस, वोलेटस पुरपुरियस और क्लेवेरिया फोर्मोसा भी गहरा उन्माद पैदा करते हैं।

सच तो यह है कि विश्व के कई भागों में नशे के लिए ही कुकुरमुत्तों का सेवन किया जाता है। यह भी कहा जाता है कि वेतों में वर्णित सोमरस भी अमेनिटा मस्केरिया कुकुरमुत्ते की ही देन था। मेक्सिको के प्राचीन निवासी एजटेक लोग लोकोत्तर आनंद के लिए कुकुरमुत्ते का सेवन करते थे। किसी भी वाहरी आदमी को इस 'पवित्र' कुकुरमुत्ते के बारे में जानकारी देना निषिद्ध था।

अगर पेजाइजा, मौस्केला, हेल्बेला, अमेनिटा रुविसेन्स और रोडोपेक्सिलस न्यूडस को कच्चा खाया जाये, तो विषैला असर हो सकता है। कोप्रिनस एट्रामेन्टे-रियस यों तो खाने लायक कुकुरमुत्ता है, लेकिन इसके साथ या इसे खाने के बाद शराब और कभी-कभी तो चाय-काफी भी पीने से यह बहुत विषैला असर करता है। चेहरा लाल पड़ने लगता है, नाड़ी की गति धीमी पड़ जाती है और हाथ-पैर ठंडे पड़ जाते हैं। लेकिन धीरे-धीरे हालत में स्वर्ण सुधार होने लगता है।

कुकुरमुत्तों के बारे में तरह-तरह के
 बंधविश्वास भी फैले हुए हैं। उनमें से एक
 यह है कि वसंत ऋतु में उगने वाले सभी
 कुकुरमुत्ते खाये जा सकते हैं। लेकिन वेहद
 बहरीला और घातक अमेनिटा वर्ना वसंत
 में ही उगता है। अमेनिटा मस्केरिया और
 अमेनिटा फैलोइडीज जैसे जहरीले कुकुर-
 मुत्तों को घोंघे बहुत चाब से खाते हैं; परंतु
 मनुष्यों के लिए ये बड़े खतरनाक हैं।
 मान्यता है, बैंगनी रंग के सभी कुकुरमुत्ते
 विषैले होते हैं; मगर लकाविया अमेथि-
 रिटा भाइसीना पुरा और कार्टिनेरियस
 बायोलेसियस बैंगनी रंग की होने पर भी
 खाने लायक जातियां हैं। यह भी सही नहीं
 है कि काटने के बाद जो कुकुरमुत्ते रंग बदल
 देते हैं, वे विषैले होते हैं। वोलेटस साइने-
 सेन्स काटने पर स्याही की तरह नीला पड़
 जाता है, मगर सर्वाधिक स्वादिष्ट कुकुर-
 मुत्ता माना जाता है। दूसरी ओर अमेनिटा
 वंश के विषैले कुकुरमुत्तों का रंग काटने
 पर नहीं बदलता। यह खयाल भी गलत है
 कि सिरका या नमक मिले पानी में उवालेने
 पर विषैले कुकुरमुत्तों का विषैलापन नष्ट
 हो जाता है। चाहे कितना ही उबाल लें,

अमेनिटा वंश के विषैले कुकुरमुत्ते अपना
 विष नहीं खोते।

जहरीले कुकुरमुत्ते की पहचान यह
 बतायी जाती है कि उनसे अंडे की सफेदी
 या दूध फट जाता है। मगर अमेनिटा सीजे-
 रिया और वोलेटस इडुलिस निविष हैं, फिर
 भी वे विषैले कुकुरमुत्तों की तरह दूध या
 अंडे की सफेदी को फाड़ देते हैं। सबसे प्रच-
 लित अंध विश्वास यह है कि विषैले कुकुर-
 मुत्ते चांदी की चीजों का और कुछ लोगों की
 राय में सोना, टिन, प्याज और लहसुन तक
 का रंग बदल देते हैं। असलियत यह है कि
 जहरीले अमेनिटा कुकुरमुत्ते इनमें से किसी
 भी चीज का रंग नहीं बदलते।

इसलिए कुकुरमुत्तों को अच्छी तरह
 पहचान कर ही खाइये और अंधविश्वासों
 पर कतई कान न दीजिये। तभी आप विष
 से बचते हुए इनके अतुलनीय स्वाद का आनंद
 उठा सकेंगे। बाजार में बिकने वाले कुकुर-
 मुत्ते तो खाने योग्य ही होते हैं। हां, अगर
 कभी कुकुरमुत्तों के आखेट पर निकलें तो
 यह बात जरूर याद रखें कि हर कुकुरमुत्ता
 खाने लायक नहीं होता।—सेक्टर ५/१३९१,

कृषि विश्वविद्यालय, पंतनगर-२६३ १४५



आशुलिपि (शार्टहैंड) की कक्षा में अध्यापक ने कहा—‘आशुलिपि का आज के व्यस्त
 जीवन में बहुत महत्त्व है। सब जानते हैं कि अंग्रेज कवि ग्रे अपनी कविता ‘एलिजी इन ए
 कंट्री चर्चयांडे’ सात वर्ष में लिख पाये थे। अगर उन्हें आशुलिपि का अच्छा ज्ञान होता, तो
 यह कविता लिखने में उन्हें सात मिनट से अधिक नहीं लगता। मुझे यह बताते हुए गर्व होता
 है कि इस स्कूल में कई ऐसे छात्र थे, जिन्होंने सात मिनट में यह कविता लिख ली थी।’

—डा. गोपालप्रसाद ‘वंशी’





डा. अरुण कुमार मिश्र

पश्चिम जर्मनी में एक संस्था है—महिला स्वातंत्र्य क्लब । उसका कार्यालय राजधानी बॉन में है । सन १९७३ में उसने कामकाजी महिलाओं (वर्किंग विमेन) के बारे में सुनी जाने वाली फक्तियों का यह संकलन 'औरत वर्क' शीर्षक से प्रकाशित किया था।

वह वच्चों को दूसरों के घर छोड़ आती है—
राक्षसी होगी ।

या उन्हें घर ही रहने देती है—
शायद रसोईघर में बंद कर आती होगी ।

क्या उसके पास काफी पैसे रहते हैं—
तब तो उससे डरना चाहिये ।
या सारे पैसे पति-वच्चों पर खर्च कर आती है—
फिर बेकार में क्यों खटती है !

खूब मेक-अप करती है—
एक पति काफी है और फितनों को फंसायेगी ?
बिना मेक-अप के चली आती है—
फूहड़ है ।

ठीक से काम नहीं करती—
प्रमोशन की चिंता करे बेचारा पति ।
बहुत अच्छा काम करती है—
घर की तो चिंता ही नहीं ।

बहुत पढ़ी-लिखी है—
लाज-शरम की आशा करना ही बेकार ।
पति पढ़ा-लिखा है—
बेकार ही की इतनी पढ़ाई ।

सहकर्मियों से बातें करती है—
पति को घर पर परेशान कर डालती ११ ।
कम बोलती है—
पत्थरदिल होगी ।

पचीस बरस की है और कुंवारी है—
आगे भी शादी की कोई उम्मीद नहीं ।
उन्नीस बरस में ही शादी हो गयी—
इसके मजेदार होने का पता लोगों ने जल्दी लगा लिया ।

दूसरों की मदद को तत्पर रहती है—
अपने रजिस्टर भी उसी से भरवा लो ।
बस, अपने काम से मतलब रखती है—
बहुत घमंडी है ।

क्या बहुत ही आकर्षक है ?
सब तो उसे घूरने में ही लगे रहते होंगे ।
देखने में साधारण है—
इससे तो मर्द ही अच्छा ।

हमेशा हंसती-बोलती रहती है—



इसका भरोसा न करना ।
शांत, चुपचाप रहती है—
रोनी सूरतें मुझे पसंद नहीं ।

क्या तेज है ?
मर्दों को न दिखाये, अपनी तेजी ।
भोंदू है—
चलो सुंदर तो है ।

तबीयत खराब होने पर भी दफ्तर चली आती है—
दूसरों को भी छूत लगायेगी ।
बीमार पड़ने पर छुट्टी ले लेती है—
तब तो घर पर बड़े नखरे करती होगी ।

मिनी पहन कर आती है—
किसी को काम नहीं करने देगी ।
मैकसी पहनती है—



टांगें थुलथुल, मोटी होंगी ।
सोमवार को थकी हुई आती है—
रविवार को बहुतों को परेशान किया होगा ।
सोमवार को चुस्त, दुस्त आती—
कोई होगा ही नहीं ।

आसानी से दोस्तों के साथ चली जाती है—
छिनाल होगी ।
किसी के साथ नहीं जाती—
बड़ी कुलवधू बनती है ।

शराब पीती है—
मर्दों को भी मात कर दिया ।

सिगरेट, शराब छूती तक नहीं—
इसके साथ निबाह भी कठिन है ।

कब ने इसका बड़ा प्रचार किया—ग्रह जतान को कि समाज में औरतों को हमेशा
यदि के कहे के अनुसार चलना होता है और मर्द हर बात में औरतों की नुक्ताचीनी करते
हैं। मर्द स्त्रियों का स्वतंत्र व्यक्तित्व बनने नहीं देना चाहते—न घर में, न बाहर।

जर्मन संसद ने १८९६ में परिवार-व्यवस्था के संबंध में एक बिल पारित किया था।
उसके अनुसार स्त्री का काम था घर पर रहकर भोजन पकाना, परिवार का प्रबंध तथा
बच्चों का पालन-पोषण करना और पुरुष की जिम्मेदारी थी बाहर रहकर धंधा-रोजगार
करके पूरे परिवार के भरण-पोषण के लिए पैसे जुटाना ।

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद जापान की तरह पश्चिम जर्मनी का भी बड़ी तेजी से विकास
हुआ। १९६५ तक वह धन तथा सुख-सुविधा से परिपूर्ण हो गया, कई मामलों में अमरीका
से भी आगे निकल गया। तथापि जर्मन संसद ने पिछली सदी में पास किये विधेयक को जरा
भी नहीं बदला और १९७७ तक वह अधिनियम स्त्रियों को घर में ही रहने का उपदेश
देता रहा। हालांकि उस अधिनियम पर पूरा अमल नहीं होता था, फिर भी स्त्रियों को
हीनता का बोध होता रहा। अब पिछले साल वह अधिनियम बदल दिया गया है। पति-
पत्नी में जो भी चाहे घर पर रहे या बाहर काम करे। हमारे देश में 'जहां नारियों का
सत्कार होता है वहां देवता निवास करते हैं' कहने वाले मनु महाराज ही यह भी कह गये
हैं—स्त्री (किसी भी हालत में) स्वतंत्रता की अधिकारिणी नहीं है।'

असाधारण व्यक्तित्व वाली स्त्रियां हमारे यहां भी हुई हैं और अनेक क्षेत्रों में
असाधारण रूप से सफल हुई हैं। परंतु साधारण स्त्रियों का जीवन, साधारण मर्दों की
तुलना में अभी भी ज्यादा कष्टमय है। मानवीय गरिमा और देश की प्रगति दोनों के लिए
इस पर विचार होना आवश्यक है ।

[वाॉन विश्वविद्यालय के जर्मन भाषा विभाग की (श्रीमती) डा. लेहफेल्ड के दिये
हुए तथ्यों पर आधारित ।]

—बेला रोड, दरभंगा-८४६ ००४



मेरी मां, मैं जब अभी निरा बच्चा था, तभी विधवा हो गयी। स्वेच्छा से उसने वैधव्य
सहा; मुझे दुनिया में अपना सब कुछ मानकर वह मुझमें खोयी रही। अपने भाई का सहारा
पाकर वह मेरे लिए खटती रही। वह निरक्षर थी और मेरे लिए प्रेम की मूर्ति थी। पर
मुझ पर उसने दृढ़ अंकुश रखा और आस-पास के दुष्टभावों से मेरी रक्षा की। उस जमाने
के पूर्वग्रहों का सामना करके उसने स्त्री-शिक्षा तथा समाज-सुधार के अन्य कार्यों में पूरे
दिल से मेरी मदद की। मैं जो कुछ हूं, उसी का बनाया हुआ हूं। —डा. दादासाई नौरोजी



वृद्धो, अपत्न को बदलो

बाबा पृथ्वीसिंह आजाद

आज के समाज के अधःपतन का कारण यह है कि बुजुर्गों और युवकों के बीच प्रेम और विश्वास का संबंध नहीं रह गया है।

जिन लोगों के हाथों में स्वतंत्र भारत की पतवार सौंपी गयी थी, वे शीघ्र ही हमारे बीच से विदा हो गये। उनके बाद जो भारत के भाग्यविधाता बने उन्होंने, हम सबके दुर्भाग्य से, देश को भयंकर गर्त में ढकेल दिया।

जो भारत के भावी भाग्यविधाता हैं यानी आज के हमारे युवक, वे स्वयं अपने भविष्य के संबंध में भी सोचते नहीं। या उनमें उस विषय में सोचने की शक्ति ही नहीं है।

आज हम अनुशासनहीनता के शिकार हो गये हैं। अनुशासन-स्वानुशासन-के बिना जीवन-विकास असंभव है। जो व्रतधारी संयम से और नियमपूर्वक जीवन स्वीकार कर तपस्वी जीवन जीते हैं, वे ही युवा पीढ़ी को अनुशासन का पाठ सिखा सकते हैं।

ऐसा भी वक्त था जब देशवांधवों को जीवन से मुंह फेरकर मृत्यु को गले लगाना सिखाने की जरूरत थी—गोलियों की वर्षा

में सीना तानकर खड़े रहने, फांसी के तख्ते पर चढ़कर उसकी रस्सी को चूमने, तमाम मुश्किलों को ठोकर मारकर आगे बढ़ने, हंसते-हंसते जेल की यातनाएं झेलने का पाठ सिखाने की जरूरत थी। ईश्वर की कृपा से, मैंने यह सब सीखा।

पर आज के युवकों को उस शिक्षा की आवश्यकता नहीं है। आज यह सिखाने की आवश्यकता है कि सन्मार्ग पर चलकर किस प्रकार जियें। स्वयं तपस्वी बनकर ही उन्हें इस तरह की शिक्षा दी जा सकती है।

कोई धर्मगुरु अथवा समाज-सेवक बाब के युवक को बरवादी की राह पर चलने से रोक नहीं सकता। हाथ में मशाल लेकर खोजने निकलें, तो भी ऐसा योगी पुख मिलना मुश्किल है। आज का युवक-समाज अपने में से ही कोई व्रतधारी युवा नेता पैदा कर सके, तो वह नेता अवश्य युवकों का पथ-प्रदर्शक बन सकेगा।

यदि इस देश के नवयुवकों को हर प्रकार के बंधनों से मुक्त रहना है, तो उन्हें संयत और नियमबद्ध जीवन जीना सीखना पड़ेगा।

● अनुवादक : गिरिजाशंकर त्रिवेदी ●

जो व्यक्ति ऐसा जीवन जीना पसंद करे, वही अपने साथियों का प्रेमपात्र और विश्वासपात्र बन सकता है और अपने मित्रों को प्रेमपाश में बांधकर उनकी जीवन-दिशा बदल सकता है।

प्रत्येक मनुष्य दो शक्तियों की मदद से ही अपनी जीवन-यात्रा पूर्ण कर सकता है— १. बलवान शरीर, २. निश्चल एवं पवित्र मन। जिस व्यक्ति के पास नीरोग शरीर और स्वच्छ मन नहीं है, वह जीवन-यात्रा में हमेशा ठोकरें ही खाता रहेगा। वह कभी अपनी जीवन-यात्रा पूर्ण नहीं कर सकेगा।

अगर हमें देश का नवनिर्माण करना है, तो देश के युवकों को व्रतधारी, क्रांतिकारी और तपस्वी बनाये बिना चारा नहीं।

आज देश का युवक भंवर में फंसा हुआ है। वह निर्णय नहीं कर पा रहा है कि क्या करे। वह जो कुछ देखता और सुनता है, उसका चित्र उसके मानस-पटल पर उतर आता है। वह दिवास्वप्नों में रमता है, मदमस्त होता है। परंतु सचेत होकर देखता है, तो उसे कुछ भी जमता नहीं है।

देश के लिए बलिदान की बातें सुनकर वह आवेश में आ जाता है; परंतु दूसरे ही क्षण वह देखता है कि ऐसी बातें करने वाले नेता और देशभक्त तो स्वार्थसिद्धि के लिए प्रतिस्पर्धा में पड़े हुए हैं।

स्वतंत्रता की लड़ाई जब चल रही थी, प्रत्येक युवक अपने नेता के कदमों पर चलने के लिए हरदम तत्पर रहता था। तब युवकों के सामने कोई उपदेशक नहीं था। वे देश की स्वतंत्रता के लिए सिर पर कफन बांधकर फिरने वालों के हमराही बनना चाहते थे और बनते भी थे। आज उनके सामने ऐसा कोई व्यक्ति नहीं है।

आज वे क्या देखते हैं? आज उनकी नजर विलासी जीवन जीने वाले चतुर-सुजान और धनवान नेताओं पर जाती है, जो एक दूसरे की टांग घसीटने और सिर फोड़ने में लगे हुए हैं। आज का युवक इन कथित नेताओं का अनुकरण कर रहा है। और कितनी कुशलता से वह अनुकरण करता है, इसके कितने ही नमूने हमने देखे हैं। अगर ऐसा ही चलता रहा, तो कल इसका कैसा अनिष्टकारी परिणाम भोगना पड़ेगा, उसे भी हमें देखना होगा।



क्रांतिकारी पृथ्वीसिंहजी
[स्केच : वी. एन. ओके]

मनुष्य अनुकरणशील प्राणी है। वह जैसा देखता है, वैसा आचरण करता है। वह देखकर ही सीखता है, सुनकर नहीं। देखकर काम करने की इच्छा होती है; सुनकर तो केवल बोलने की ही शक्ति आती है। आज देश के लाखों और करोड़ों बालक गीता का पाठ करते हैं, गायत्री का जप करते हैं और संध्यावंदन करते हैं। बुजुर्गों

हिंदी डाइजेस्ट

मैं अपनी मां की कोख में नाचती रही— अपने दुःख-भरे परिवेश और आत्मा की विवशता को प्रकट करने के लिए। फिर जब मैं छोटी-सी लड़की थी तब मैं नाचती रही, क्योंकि शरीर के अंगों के विकास में एक खुशी भरी हुई थी। फिर जब मैं जवान हुई, तो मैंने जीवन की तहों में छिपे दुःखों को जाना और उन दुःखों को झुठलाने के लिए मैं नाचती रही। उसके बाद मैं जीवन से संघर्ष करती हुई नाचती रही। उस नाच की तुलना दर्शक मौत के साथ करते थे। सचमुच, मौत के साथ संघर्ष करना बहुत बड़ी खुशी होती है। —इसाडोरा डंकन

को वे यह सब करते सुनते हैं। परंतु अपनी आंखों से वे क्या देखते हैं?

घर की चहारदीवारी के बीच, मंदिरों में, शिक्षासंस्थाओं में, विधानसभा, लोक-सभा तथा राज्यसभा में, आज के समाज के तथाकथित सूत्रधार कैसा व्यवहार करते हैं? जो कुछ वे देखते हैं, उसी का अनुकरण करते हैं; उसमें लेशमात्र भी फर्क नहीं पड़ने देते। ऐसा विषचक्र कब तक चलता रहेगा, इसका कोई उत्तर क्या हमारे पास है?

आज की शिक्षासंस्थाएं हमारे लिए किसी काम की नहीं रह गयी हैं। धर्मगुरु, साधु-संत और नेता केवल उपदेश ही दे सकते हैं। आदर्श नेता आज मिलना मुश्किल है। तो इसका क्या उपाय है? निराश होने की जरूरत नहीं, उपाय है।

देश की वागडोर वृद्धों और जवानों के

हाथ में है। वे एक दूसरे के विश्वासपात्र और प्रेमपात्र बनें तो राष्ट्र की ज्यादातर समस्याएं हल हो जायें। जो लोग ५०-६० साल की उम्र पार कर चुके हैं, वे ही युवकों को कल्याणकारी मार्ग बता सकते हैं। परंतु यह कार्य वे तभी कर सकेंगे, जब वे स्वयं विलासी जीवन से विमुख बनें। उन्हें समाज के समस्त चरित्रवान बनकर, युवा पीढ़ी का उपासक बनकर जीना पड़ेगा। अगर वे इतना कर सकें, तो आज का युवक-जगत आदरपूर्वक अपना मस्तक उनके चरणों में झुका देगा।

हे समाज के बुजुर्गों! युवा-वर्ग आप सबका अनुकरण ही कर रहा है। आप अपने व्यक्तिगत जीवन की दिशा बदलिये और फिर देखिये कि आज का युवक संपूर्ण समाज का रूप-रंग बदल डालता है कि नहीं।

जो लोग आज समाज के सूत्रधार बनकर बैठे हैं, वे जान लें—डंडे के जोर से युवकों पर काबू नहीं पाया जा सकेगा। किसी के उपदेश का भी उन पर असर नहीं होगा।

किसी भी प्रकार की कठिनाई में से छूटने के दो ही रास्ते हैं—बलिदान और तपस्या। इन दोनों में से जिसे जो स्वीकार हो वह जो स्वीकारे तो भी बहुत कुछ हो सकेगा।

अंत में, एक क्रांतिकारी के नाते देश से और देश के बुजुर्गों से मुझे स्पष्ट रूप से कहना होगा कि यदि वे सदाचार-भरा जीवन-मार्ग नहीं अपनायेंगे, तो वे बुरे हाथ में मरेंगे। और युवक अगर बुजुर्गों के आज्ञाकारी नहीं बनेंगे, तो उन्हें दीवारों से खिटाकर मरना पड़ेगा।





विद्युतगति जीव-जंतुओं में

सुरेश सिंह

विजली की रफ्तार बहुत ही तेज होती है—एक सेकंड में १ लाख ८६ हजार मील। फिर भी किसी की तेज रफ्तार को देखकर उसकी तुलना हम विजली से ही करते हैं और उसकी चाल को 'विद्युतगति' कहते हैं। वास्तव में 'विजली' तेजी और फुरती का प्रतीक बन गयी है।

प्रकृति पर विजय प्राप्त करके मनुष्य बड़ा काहिल हो गया है। उसे अब न तो अपनी रक्षा के लिए हरदम चौकन्ना रहना पड़ता है और न पेट भरने के लिए शिकारही पकड़ना पड़ता है। इससे उसकी फुरती में काफी कमी आ गयी है। लेकिन पशु-पक्षी तथा कीड़े-मकोड़े यदि फुरती से काम न लें, तो पृथ्वी पर उनका कोई नामलेवा ही न रह जाये। अपना अस्तित्व कायम रखने के लिए उन्हें सदा चौकन्ना रहना पड़ता है और आत्मरक्षा, शिकार और अन्य कार्यों में जब की फुरती से काम लेना पड़ता है।

मनुष्य भी खेलकूद, धूँसेवाजी, कुश्ती और नृत्य आदि में कभी-कभी फुरती का काफी अच्छा परिचय देता है। इसी तरह सितार, हारमोनियम, पिपानो व टाइप-राइटर पर उसकी उंगलियों की तेज थिरकन कई बार हमें चकित कर देती है। लेकिन अन्य जीव-जंतुओं की तेजी और फुरती से तुलना करने पर हमें इनमें कुछ भी चमत्कार नजर नहीं आता। बहुत तेज टाइप करने वाली लड़की की उंगलियां टाइप-राइटर पर एक सेकंड में १६ बार से ज्यादा नहीं पड़तीं, जबकि मामूली फुलचुही चिड़िया अपने पर एक सेकंड में ७० बार चला लेती है। भौरों और मधुमक्खियों का ता कहना हो! क्या! उनके पर एक सेकंड में ३०० बार तक चलते हैं।

अपनी नंगी आंखों से हम इस तेजी तो को देख भी नहीं सकते। लेकिन फिल्मों कैमरा की आंख उसे देख सकती है। ऐसी फिल्में बनायी गयी हैं, जिनसे बहुत तेज

१९७९



सील

रफ्तार वाली चीजों को आसानी से देखा जा सकता है। लेकिन इस तरीके से देखने पर हमें अपने फुरतीले कार्य भी बहुत सुस्त और अटपटे प्रतीत होने लगते हैं। उदाहरण के लिए, जब हम एकाएक टार्च जलाकर किसी की आंखें चौंधिया देते हैं, तो वास्तव में उसकी पलकें टार्च के जलने और बुझने के बाद बंद होती हैं; और यह शायद आप न जानते होंगे कि एक बार पलक भांजने में एक सेकंड का चालीसवां भाग लगता है। इसी प्रकार जब हम किसी के हाथ पर जलती हुई सिगरेट रख देते हैं, तो वह आदमी हाथ ऐसे झटकता है जैसे कि बदन में सिगरेट के छूने से पहले ही उसकी गरमी से उसने अपना हाथ हटा लिया हो; लेकिन असल में सिगरेट छुआकर हटा लेने के बाद कहीं जाकर उसका हाथ खिसकना शुरू होता है।

लेकिन जब इसी तरीके से जीव-जंतुओं की फुरती की परीक्षा की गयी, तो कुछ बड़ी आश्चर्यजनक बातों का पता चला। यद्यपि नवनीत

जानवरों के साथ परीक्षण करते समय मनुष्यों जैसी सहूलियत तो नहीं थी, फिर भी कुछ अनूठी बातें आसानी से जान ली गयीं।

मेंढक जिस तेजी से अपनी लंबी और दोहरी जबान को बाहर फेंककर उसमें कीड़े-मकोड़े चिपकाता और जबान को भीतर वापस खींच लेता है, वह क्या किसी मशीन से कम है! आपको सुनकर ताज्जुब होना कि यह सारा काम वह एक सेकंड के पांचवें हिस्से में कर डालता है।

गिरगिट भी कीड़ों को पकड़ने के लिए अपनी लंबी और चिपचिपी जीभ को तेजी से तीर की तरह बाहर निकालता और उसे जीभ की नोक में चिपकाकर उदरस्थ कर लेता है। उसके इस फुरतीले शिकार को विद्युत्गति कहना उचित ही है।

सांप का डसना भी बहुत फुरती से होता है। फन का बार करने, बदन में दांत गड़ाकर विष छोड़ने और दंशस्थल से दांत को निकालकर फन को अपने स्थान पर वापस लाने में सांप को आधे सेकंड से भी कम समय लगता है। कितनी तेज रफ्तार है! अब जरा नेबले की फुरती के बारे में सोचिये, वो विद्युत्गति वाले सांप के फन पर हावी हो जाता है!

स्तनधारी प्राणियों में चीता और तेंदुवा सबसे फुरतीले माने जाते हैं। लेकिन उनकी तुलना में स्थूल शरीर वाले शेर में भी कम फुरती नहीं होती। शेर को गाय, बैल, भैंस या बाहरसिंघे को मारने में आधे सेकंड से

अधिक समय नहीं लगता। और तेंदुआ तो शिकार को इससे भी कम समय में मार लेता है।

तेंदुआ अपने फुरतीले आक्रमण के लिए प्रसिद्ध है तो चीता आक्रमण की रफ्तार में सबसे आगे है। जब वह शिकार के लिए दौड़ता है, तो दो ही सेकंड में उसकी रफ्तार ७० मील प्रति घंटे तक पहुंच जाती है।

इस दृष्टि से चिड़ियों भी पिछड़ी नहीं रही जा सकतीं। बाज, वहरी, शिकरा आदि शिकारी पक्षी अपने तेज आक्रमण के लिए प्रसिद्ध हैं। शिकार पर वे इस तेजी से झपट्टा मारते हैं कि हम सहज में उसका अंदाजा नहीं लगा सकते। बाज जाति के एक शिकारी पक्षी ने एक बटेर पर बड़े वेग से आक्रमण किया। बटेर ने, जो डर से अघ-मरीहो रही थी, अपने पंख समेट लिये ताकि वह नीचे की झाड़ी में गिर सके और किसी तरह अपनी जान बचा सके। लेकिन इससे पहले कि बटेर का शरीर झाड़ी में गिरे, बाज विद्युत्गति से नीचे की ओर झपट्टा और अपने शरीर को बटेर के नीचे करके उलट गया और शिकार को ऊपर ही लोककर हवा में तेजी से उड़ गया। आक्रमण में ऐसी तेजी और फुरती की मिसाल मिलना मुश्किल है।

लेकिन चिड़ियों के शिकार के शौकीनों को शिकारी पक्षियों के आक्रमण की फुरती देखने का मौका प्रायः मिलता रहता है। अक्सर नदियों और झीलों पर बंदूक दगते ही शिकारी पक्षी घायल, मरी हुई चिड़ियों को इस तेजी से उठा ले जाते हैं कि बंदूक-



शिकरा

धारी देखता ही रह जाता है। वह उन पर बंदूक चलाये, तब तक लूटेरे पक्षी बंदूक की मार से बाहर हो जाते हैं। यही नहीं, बाज, वहरी आदि शिकारी पक्षी जब लग-भग १०० मील प्रति घंटे की रफ्तार से उड़ते हुए वत्तखों की गोल पर हमला करते हैं, तो वत्तखें मारे डर के आँखें बंद करके अपने पर समेट लेती हैं और इंट-पत्थर की तरह ऊपर से तालाब में गिरती हैं।

कीड़े-मकोड़ों में हम और भी अधिक तेजी देखते हैं। मक्खी, भौंरे और मधुमक्खियां इस तेजी से अपने पर चलाती हैं कि हमारी आँखें उरते देखने में समर्थ नहीं हैं। उनके पर एक सेकंड में लगभग ३०० बार घूमते हैं, जिसका चित्र मामूली कैमरा नहीं खींच सकता। कीड़े-मकोड़ों के फुरतीले कामों को देखने के लिए वैज्ञानिकों ने तरह-तरह के

दूसरे यंत्रों का प्रयोग किया है, जिनसे उनकी फुरती आसानी से पकड़ में आ जाती है।

एक वैज्ञानिक ने प्रति सेकंड ३,००० चित्र खींचने में समर्थ चलचित्र-कैमरे से चिड़ियों की उड़ान के चित्र खींचे। चित्रों के प्रिंट तैयार करने पर पता चला कि मक्खी को उड़ते-उड़ते हवा में उलट जाने में एक सेकंड का हजारवां हिस्सा लगता है। इसी प्रकार अन्य कीड़े जब मक्खियों पर आक्रमण करते हैं, तो हमला करने और शिकार को पकड़ने में उन्हें एक सेकंड का हजारवां हिस्सा लगता है।

सैकड़ों प्रयोगों से यह सिद्ध हुआ है कि ऐसे भी कुछ जीव-जंतु हैं, जिनकी फुरती के आगे बंदूक की गोली कुछ भी नहीं है।

छर्रें वाली बंदूक दागने पर उसके छर्रे एक सेकंड के सातवें हिस्से में लगभग ४० फुट की दूरी तक जाते हैं और राइफल की गोली इतनी ही दूरी एक सेकंड के बीसवें हिस्से में तय कर लेती है। मगर कुछ जीव-जंतु इससे भी अधिक तेजी दिखाकर बंदूक की गोली से अपनी जान बचा लेते हैं। उनकी मांसपेशियां क्या बिजली से कम तेजी से काम करती हैं?

सील का शिकार करने वालों का अनुभव है कि अगर सील ने आपको बंदूक साधते देख लिया है, तो आपकी बंदूक का घोड़ा गिरे और गोली निशाने पर पहुंचे, इससे पहले ही वह मजे से पानी के भीतर चली जायेगी।

ऊदबिलाव भी कम फुरतीला नहीं होता। वह भी अगर शिकारी को देख रहा है, तो बंदूक की गोली से अधिक फुरती दिखाकर पानी में गुम हो जाता है और शिकारी का वार खाली जाता है। एक बार मैंने एक ऊदबिलाव पर पूरे १७ बार बंदूक चलायी; लेकिन हर बार छर्रे पहुंचने से पहले ही ऊदबिलाव पानी के भीतर चला जाता था।

घड़ियाल और मगर को भी उसकी जानकारी में मार पाना बहुत कठिन है। धोखे में तो ये मारे जाते हैं; लेकिन शिकारी को देख लेने पर ये बड़ी तेजी दिखाते हैं और बंदूक का घोड़ा गिरने के बाद और गोली पहुंचने के पहले ही पानी के भीतर चले जाते हैं।

बंदूक को बेकार कर देने वाली इसी तरह की फुरती कुछ चिड़ियों में भी पायी जाती है। छोटी पनडुब्बी वत्तख, जो हमारे यहां के तालाबों में बारहों महीने दिखाई पड़ती है, बंदूक चलने पर इस तेजी से पानी में डुबकी मारती है कि अक्सर शिकारियों का निशाना खाली जाता है। दूसरी भी कुछ वत्तखें हैं जो अनुभव से इतनी होशियार हो गयी हैं कि अब बंदूक से भी अधिक फुरती दिखाकर बंदूक को बेकार कर देती हैं।

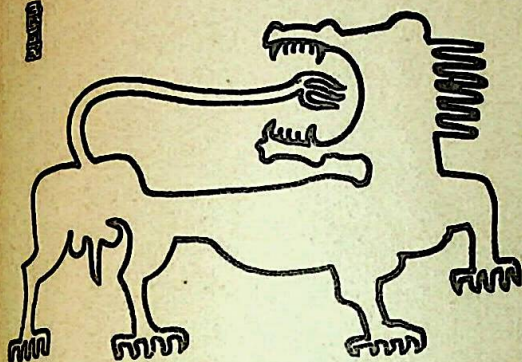
जीव-जंतुओं की ऐसी अद्भुत फुरती को देखकर मैं तो मानने लगा हूं कि उसके लिए 'विद्युत-गति' शब्द का इस्तेमाल किया जाता है, तो वह आक्षेपयोग्य नहीं है।

—कालाकांकर, प्रतापगढ़, उ. प्र.



चित्र :

डा. जगदीश गुप्त



अपनी-अपनी अंतर्हित आग

आज
अचानक
यादों के घेरे
कसते गये
तन-मन में
जीवन का विष-अमृत
जठर की आग भी
नहीं जला पाती !
यह क्या है
जो
हममें
सभी में
कण-कण में
कभी बुझता नहीं,
राख नहीं बनती,
इसकी कभी
तुषाग्नि-सा
सुलगता ही रहता है !

जलकर
भस्म होते
शवों और अन्य
सारे पदार्थों के
शून्य परिणति से
पहले ही
यह
सारी चेतना में
विश्व वेदना में
समा जाता है !

—पृथ्वीनाथ शास्त्री

१४/१६ डा. विल्सन पथ,
बंबई-४०० ०८४



आन्दोलन की गाँधी

कुमार प्रशांत

विश्व के रंगमंच पर अपनी भूमिका निभाकर बहुत निःशब्द चले जाना आसान नहीं होता है। इस प्रदर्शन-प्रिय दुनिया में मृत्यु भी आडंबर का अवसर है। लेकिन जो समाज के प्रवाह के विपरीत जीने का संकल्प करके आते हैं, उनकी मृत्यु भी उनके जीवन की तरह ही आडंबरहीन होती है।

७८-वर्षीय श्री धीरेंद्र मजुमदार ऐसा ही जीवन जीकर २१ नवंबर १९७८ को ऐसी ही मृत्यु को प्राप्त हुए। कहीं शोर नहीं हुआ, 'बड़े लोगों' के शोक-संदेश नहीं आये, अखबारों में काली पट्टियाँ नहीं लगीं और गांधी के बाद उसकी क्रांति के महल बनाने वाले मिस्त्रियों में से प्रमुख मिस्त्री चला गया। धीरेन दा अपने को 'मिस्त्री' ही कहते थे; क्योंकि 'शास्त्री' वे नहीं थे।

धीरेंद्र मजुमदार गांधी की रचनात्मक सेना के कुशल सिपाहियों में एक थे। और गांधी जब तक रहे, अपने रचनात्मक कार्यकर्ताओं को राजनैतिक संघर्ष से अलग रखते रहे। जब गांधी से उन्होंने इसका कारण पूछा तो गांधी बोले—'तुम लोग बैरक में रखी गयी फौज हो। जब परिस्थिति बिगड़ती है तभी तो बैरक से फौज निकलती है।' नवनीत

जब गांधी नहीं रहे, धीरेन दा (सब उन्हें स्नेहपूर्वक यही कहते थे) अखिल भारत चरखा संघ के अध्यक्ष बने। परंतु खादी और गादी (गद्दी) की लड़ाई में उन्होंने खादी की गांधी-कल्पित भूमिका समझी और चरखा संघ के नवसंस्करण का सवाल उपस्थित किया। खादी के व्यापारीकरण और सरकारीकरण का खतरा उन्होंने भाँप लिया था, इसलिए संस्था के रूप में 'या-स्थिति' की ताकतों को बढ़ते देखकर उन्होंने चरखा संघ छोड़ दिया और उस आंदोलन में कूद पड़े, जिसे उन्होंने अहिंसक क्रांति का अगला कदम कहा था।

आचार्य विनोबा का भूदान आंदोलन अहिंसक क्रांति के जिस नये आयाम को लेकर आगे बढ़ा, उसने समाज-परिवर्तन के हिमायती विभिन्न लोगों को सम्मोहित किया। भूदान-आंदोलन का श्रीगणेश करके विनोबा ने और जो कुछ भी किया हो या न किया हो, गांधी-विचार के उस बीज को निश्चय ही बोधा लिया और एक हद तक विकसित भी किया, जो आज भी विकल्प बनकर विश्व के सामने खड़ा है।

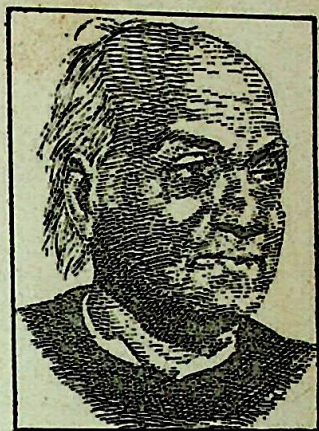
धीरेंद्र मजुमदार भूदान-आंदोलन में

आये, तो नेता बनकर नहीं—कार्यकर्ता बनकर। वे इंजीनियरी के छात्र रहे थे और पढ़ाई छोड़कर एकदम अनजाने ही स्वतंत्रता-संग्राम में आ गये थे। आचार्य कृपालानी से मुलाकात होने पर उनके शिष्य बन गये थे। फिर जब उनकी वहन सुचेताजी का विवाह गुरु कृपालानी से हो गया, तो यह संबंध गाढ़ा हो गया।

किंतु समाज-परिवर्तन के आंदोलन के मामले में गुरु-शिष्य-वहन कभी एकमत नहीं हो पाये। गुरु और वहन ने आजादी के बाद लोकसभा-विधानसभा को समाज-परिवर्तन का हथियार बनाने की कोशिश की; शिष्य ने समाज-परिवर्तन के लिए सिवा 'लोक' के किसी शक्ति को स्वीकार ही नहीं किया।

अपने विचारों की कसौटी पर अपने को बैसी निर्ममता से कसने वाला व्यक्ति मैंने दूसरा नहीं देखा। एक अजीब रूढ़ता और औघड़ता थी उनके व्यक्तित्व में। जब से मैंने उन्हें जाना, वे वृद्ध हो चले थे और कमर की तकलीफ के कारण आराम-कुर्सी पर लेंटे-लेंटे ही सभा आदि में बोलते थे। वह कुर्सी, उनके कपड़े, उनकी चप्पलें, उनका भोजन, उनके वरतन सब निराले थे—इतने सामान्य कि विशिष्ट हो जाते थे। सब उनकी इंजीनियर-बुद्धि के स्पर्श से अलंकृत रहते थे। एक भी चीज एकदम बेकार होने से पहले हटायी या फेंकी न जाये, इसका उन्हें बहुत खयाल रहता था। मुंह साफ कर दातुन का बूँबी वाला सिरा काटकर बाकी हिस्सा आग के दिन के लिए रखते मैंने उन्हें देखा था।

१९७९



स्व. धीरेंद्र मजुमदार

सर्वोदय की कल्पना को मूर्त करने के लिए प्रयोग-क्षेत्र लेकर काम करना चाहिये, इसके वे आग्रही थे, और दूसरों की फिक्र न करके स्वयं प्रतिकूल से प्रतिकूल क्षेत्र में जाकर बैठते रहे। काम के नये-नये प्रयोग ही जैसे उन्हें जीवन-शक्ति देते थे; और अंतिम दिनों में डाक्टरों के अनुसार इन्हीं प्रयोगों ने उनकी जीवन-शक्ति सोख डाली थी। लेकिन ऐसे प्रयोगों को वे अहिंसक क्रांति की दिशा खोजने के लिए आवश्यक मानते थे। 'मार्गदर्शन' शब्द को वे अहिंसक क्रांतिकारी के लिए व्यर्थ मानते थे; 'मार्ग-खोजन' उनके लिए अर्थपूर्ण था।

अहिंसक रीति से समाज-परिवर्तन का कोई बना-बनाया रास्ता नहीं है, कोई उदाहरण भी नहीं है; इसीलिए वे कहते थे—'हमारी क्रांति की तकनीक इतिहास की पुरानी क्रांतियों की तकनीक को तोड़ या

हिंदी डाइजेस्ट

जोड़कर बनायी नहीं जा सकेगी; उसकी नयी सिरे से खोज करनी होगी।' जय-प्रकाशजी ने इसे ही अपनी तरह से 'क्लीन स्लेट पर लिखना' कहा है।

इस नयी तकनीक की खोज में धीरेनभाई का पल-पल बीता। न परिवार, न रिश्तेदार; न कोई शौक, न कोई आकर्षण—सिर्फ अहिंसक क्रांति का चिंतन और प्रयोग! विफलताएं मिलीं, अव्यावहारिकता उजागर हुई, स्वास्थ्य गिरा, मित्रों ने छोड़ा; पर धीरेनभाई सबसे कुछ सीखते आगे चलते रहे। 'क्रांति की व्यूह-रचना सांप' के जीवन-जैसी होती है। सांप अपने शरीर का केंचुल लगातार बदलता रहता है। उसी तरह क्रांति की व्यूह-रचना भी समय-समय पर बदलती रहनी चाहिये।'

जनाधार पर रहने के प्रयोग उन्होंने किये; धान-कटाई यात्राएं चलायीं, जिसमें धान-कटाई के वक्त गांव-गांव घूमकर खेतिहर मजदूरों के साथ मिलकर धान काटना और उनसे चर्चा करना चलता था। कई आश्रम बनाये जहां आज भी रचनात्मक कार्यों का सिलसिला चल रहा है। किंतु संस्थाएं बनाने और उनमें से निकल आने में उन्हें कभी देर नहीं हुई। वे कहते थे कि क्रांतिकारी को बदन में तेल लगाकर रहना चाहिये, जैसे पहलवान बदन में तेल लगाकर कुश्ती लड़ते हैं। संस्था खड़ी की और जैसे ही देखा कि वह हम पर हावी हो रही है, फिसलकर निकल गये। क्रांतिकारी संस्था में बंधकर रहेगा, तो क्रांति रुक जायेगी।

नवनीत

जीवन के अंतिम वर्षों में उन्होंने एक लोमहर्षक प्रयोग शुरू किया—लोकगंगा-यात्रा। बिहार के सहरसा जिले को आचार्य विनोबा ने सर्वोदय-आंदोलन का सघन क्षेत्र घोषित किया, और सबको सहरसा में 'धंसने और गड़ने' का संकेत दिया। 'अहिंसक सेनापति आदेश नहीं संकेत करता है', कहने वाले धीरेनभाई तुरंत सहरसा पहुंच गये। उनके शरीर, स्वास्थ्य और आयु सबकी दृष्टि से यह एकदम प्रतिकूल निर्णय था। शारीरिक अस्वस्थता को मात देने के लिए उन्होंने लोकगंगा-यात्रा शुरू की।

लोगों के जीवन के समवाय में समस्याओं के हल बताने की उनकी शैली बड़ी आसानी से दिल में उतर जाती थी। विचार लेकर लोगों के दरवाजे तक पहुंचना वे आवश्यक मानते थे। विचार फैलाना यानी खेतों में बीज छिड़कना। वैचारिक जगत में हल चलाना, निराई करना और फिर बीज डालना—ऐसे मुहावरे में अहिंसक क्रांतिकारी की भूमिका समझाते थे वे।

'हमारी परंपरा में जीवन के अंतिम दिनों में गंगावास की प्रथा है। जिसे लोक-क्रांति की खोज करनी है, उसके लिए तो लोक ही गंगा है। इसलिए मैंने अपने अंतिम दिन लोकगंगा के किनारे ही गुजारना तय किया है। मैं चाहता हूं, आज सुबह यात्रा पर निकलूं और अगले पड़ाव पर जब आप मुझे उतारें, तो मैं मृत मिलूं।' प्रवाह में चलते हुए ही विलीन हो जाने की उनकी अभिलाषा थी।

लोकगंगा-यात्रा का प्रारंभ साइकल के
 बैरपर बैठकर गांव-गांव जाने से हुआ।
 बेंत की मेड़ पर से चलना, कहीं बैठ जाना
 और मजदूरों से बात करना। फिर एक
 बैलगाड़ी ली। उससे गांव-गांव जाना, सबसे
 निधन के यहां ठहरना, कई घरों से मांगकर
 खाना और 'गप्प' करना। उनकी गप्प-
 गोष्ठी अहिंसक क्रांति की अद्भुत प्रशिक्षण-
 शाळा थी। बैलगाड़ी भी कई गांवों से
 लाइन इकट्ठा करके बनायी गयी थी और
 बेंत भी हर गांव को देना पड़ता था अगले
 गांव तक पहुंचाने के लिए।

लोकगंगा-यात्रालोगों के सहयोग से अटूट
 चलती रही। उन्हें देखकर याद आते थे तब
 मुझे सांप्रदायिक दंगों के वक्त के गांधीजी,
 जिन्हें माउंटबैटन ने 'वन-मैन आर्मी' कहा
 था। सहरसा में दूसरे लोगों ने भी काम
 किया, पर धीरेनभाई विनोबा की 'वन-मैन
 आर्मी' की तरह अंत तक रहे।



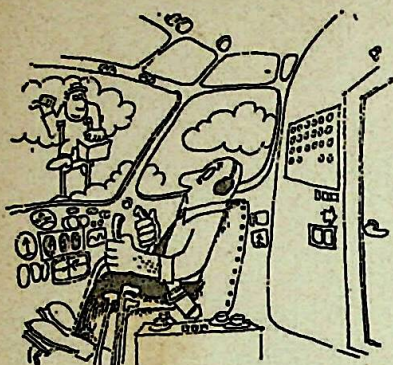
शायद नेहरूजी को छोड़कर जो सबसे प्रभावशाली व्यक्तित्व मैंने देखा, वह डा. एस.
 एम. कृष्णन् का था। बहुत बरस पहले एक बार वे कलकत्ता में हमारे रिश्तेदार श्री सतीश
 मजुमदार के यहां ठहरे थे, जो उनके घनिष्ठ मित्र और नामी वकील थे। एक बार डा.
 एम. कृष्णन् बंबई आये तो श्री मजुमदार के बेटे विजय मजुमदार ने बंबई में उनसे मेरा
 परिचय कराया, देर तक उनसे मेरी बातें हुईं। उसी बातचीत में मैंने प्रसंगवश उन्हें
 बताया कि मैं एक मुकद्दमे में फंस गयी हूं।

कुछ वर्ष बाद एक बार दिल्ली में उनसे मिलने राष्ट्रपति भवन गयी तो उन्होंने मुझे
 चिंतित कर दिया यह पूछकर कि तुम्हारे मुकद्दमे का क्या हुआ। बड़ी गजब की याददाश्त
 थी उनकी। जिससे भी मिल लेते, उसे याद रखते थे। उनसे बातचीत करना बड़ा आनंद-
 दायक होता था; क्योंकि हर चीज में वे गहरी दिलचस्पी लेते थे।

—अरुणा मुखर्जी ['फ्री प्रेस जर्नल' में]



रेखांकित हास्य



'लिफ्ट मिलेगा ?'



बेचारा जहाँ सी जाता है, दुर्भाग्य
उसके साथ-साथ चलता है।

यह तुम्हें खानी नहीं है। इसे सुबह-शाम कंधे
पर उठाकर दस मिनट घूमो, ताकत आयेगी।



लो, यहाँ भी आ पहुँचीं सासजी !



जूलियस ग्रांट की गणना जालसाजियों का पता लगाने वाले संसार के सर्व-श्रेष्ठ विशेषज्ञों में होती है। इस क्षेत्र में जाने के लिए उसने खुद ५,००० पाँड का जाली चेक बनाकर बैंक वालों की आंखों में धूल झाँकी थी।

सन १९३५ में उसे एक बैंक को खास क्रिम का कागज दिखाने के लिए आम्स्टर्-डाम भेजा गया। कागज बनाने की किसी बड़ी कंपनी में वह उन दिनों नौकरी करता था। जब बैंक-अधिकारियों ने उसे बताया कि जो कागज वे इस्तेमाल कर रहे हैं, वह काफी संतोषप्रद है, तो ग्रांट उनसे असह-यति जताते हुए बोला—‘आपके कागज पर लिबी इवारत मिटायी जा सकती है, जबकि हमारे कागज पर लिखे को मिटाना असंभव है। और अगर इसका सबूत चाहें, तो एक छोटी रकम का चेक लिखकर मुझे दीजिये।’

बैंक-अधिकारियों को भी दिलचस्पी हुई और उन्होंने एक चेक लिखकर उसे दे दिया। अपने होटल में आकर रासायनिक पदार्थों की मदद से उसने चेक पर लिखी रकम मिटाकर उसकी जगह ५,००० पाँड की रकम लिख ली। ग्रांट ने रसायनशास्त्र में डॉक्टरेट की थी और पदार्थों के गुणों से अच्छी तरह परिचित था। जब वह जाली चेक लेकर बैंक गया, तो अधिकारी चेक देखकर हैरान रह गये। उनके विशेषज्ञ भी चेक में की गयी तब्दीली को पकड़ न पाये।

फिर ग्रांट ने उनसे कहा—‘लेकिन यह जालसाजी हमारे कागज पर संभव नहीं है।’



जालसाजों का दुश्मन

बलवीर सिंह

क्योंकि उस पर कोई भी तब्दीली की जाये, तो वह दिखाई दे जाती है।’

बैंक की ओर से ग्रांट को उस कागज का आर्डर मिल गया। बाद में ग्रांट ने उस कंपनी की नौकरी छोड़ दी और बड़े-बड़े जालसाजों की जालसाजियों का अध्ययन करने में दिलचस्पी लेने लगा। इस क्षेत्र में वह कुछ कर दिखाना चाहता था। उस समय उसकी उम्र चौतीस साल की थी।

सबसे पहले उसने कागज, स्याही और रासायनिक पदार्थों का और गहरा अध्ययन किया, और कुछ ही समय में जालसाजियों का पता लगाने वाले विशेषज्ञ के रूप में वह विदेशों में भी प्रसिद्ध हो गया।

ग्रांट का दफ्तर लंदन में है। कई कमरों वाला बहुत बड़ा दफ्तर है, वह और उसमें विभिन्न प्रकार के यंत्र और प्रयोगशालाएं हैं, जहां कागज, स्याही, खून, उंगलियों के

हिंदी डाइजेस्ट

निशानों आदि का अध्ययन जालसाजियों का पता लगाने के लिए किया जाता है।

ग्रांट की राय में, कुछ जालसाज सचमुच कलाकार होते हैं। वे हस्ताक्षरों की हवहू नकल से लेकर चेक, पासपोर्ट, सर्टिफिकेट आदि किसी भी चीज में मनचाही तब्दीली कर सकते हैं। मगर समाज का सौभाग्य है कि संसार में ऐसे विशेषज्ञ जालसाज बहुत कम हैं, जो कागज, स्याही आदि वै भौतिक गुणों से परिचित हों। आज सैकड़ों जालसाज जेलों में सड़ रहे हैं; क्योंकि उन्होंने गलत किस्म का कागज इस्तेमाल किया था।

ग्रांट अपनी खोजवीन कागज की परख से शुरू करता है। उसके ही शब्दों में, 'जो खोजवीन में अंतिम सीमा तक जाने को तैयार हो, उसे कागज का एक टुकड़ा किसी एक्स-रे फोटोग्राफ की तरह बहुत कुछ बता सकता है।'

कुछ साल पहले लंदन के साप्ताहिक 'द संडे टाइम्स' के प्रकाशन-संस्थान ने मुसोलिनी की एक निजी डायरी की प्रामाणिकता के बारे में ग्रांट से राय ली। उसे मुसोलिनी के पुत्र और हस्तलेख-विशेषज्ञों ने मुसोलिनी की डायरी सिद्ध किया था। मगर डायरी देखते ही ग्रांट को महसूस हुआ कि उस कागज में कुछ गड़बड़ है। उसने उसके एक पृष्ठ के कोने से छोटा-सा टुकड़ा काटा और जांच के लिए प्रयोगशाला में भेजा। जांच से पता लगा कि वह कागज एक विशेष प्रकार की घास से बना हुआ है और सन

नवनीत

१९३६ से पहले इटली में नहीं बनता था। सो, मुसोलिनी सन १९२५ में उस कागज पर लिख ही कैसे सकता था। ग्रांट ने डायरी को जाली करार दिया।

ग्रांट अब अपनी आयु के आठवें दशक में है और अब भी बहुत स्वस्थ, चुस्त और मेहनती है। जब वह किसी समस्या को हल करने में जुट जाता है, उसे समय का विलकुल ही खयाल नहीं रहता। हफ्ते में औसतन चार बड़ी समस्याओं से उलझना पड़ता है उसे। पर शनि और इतवार को वह दफ्तर से दूर कहीं चला जाता है और पूरा आराम करता है।

लगभग ८५ देशों की विभिन्न संस्थाओं, सरकारों और नागरिकों की समस्याएं उसे हल की हैं। नवस्वतंत्र अफ्रीकी राष्ट्रों के नये नोटों की छपाई के संदर्भ में ग्रांट के सलाह-मशविरे की जरूरत हमेशा महसूस होती है। कोई कागज बनाने की समस्या के बारे में उसे बुलाता है, तो कोई सही किस्म की स्याही के इस्तेमाल के बारे में। बात किस्म का कागज बनाने के लिए सही किस्म की लकड़ी का चुनाव करने के लिए बार-बार वह खुद भी किसी देश के जंगलों में जाता है। इस तरह उसे साल में लगभग पांच महीने विदेशों में रहना पड़ता है।

इतना बड़ा विशेषज्ञ किसी भी काम की मुंहमांगी फीस ले सकता है। मगर ग्रांट अपनी फीस तय करता है—काम पर लगे होने वाले समय के आधार पर। बहुत पहले उसने कहा था—'मुझे मालदार बनने

जन्म

के वजाय ईमानदार बनना ज्यादा पसंद है। और ईमानदारी के कारण ही वह बहुत मालदार नहीं बन सका है। उसका रहना है—'मैं एक अच्छे खाते-पीते देहाती कबील से ज्यादा नहीं कमाता। निश्चय ही मैं सखपति कभी नहीं बन सकूंगा।'

ग्रांट के दफ्तर में दीवार पर एक छोटा-सा कागज फ्रेम में लगा हुआ है। यह उसकी एक बहुत ही महत्वपूर्ण खोजबीन की याद-गार है। इंग्लैंड की नेशनल गैलरी ने तियोनादोंद विंची का एक चित्र ८ लाख पाँड (लगभग १ करोड़ ६० लाख रुपये) में खरीदा था। चित्र की प्रामाणिकता बहुत पहले सिद्ध हो चुकी थी; परंतु यह पता नहीं लग रहा था कि पाँच सौ साल पुराने उस चित्र के फटे हुए भागों पर कागज के टुकड़े कब चिपकाये गये थे। सो, यह पता लगाने के लिए ग्रांट को कहा गया।

ग्रांट ने चिपकाये हुए कागज में से एक जेदा-सा टुकड़ा काटा। (वही अब उसवे: शतर में फ्रेम में लगा हुआ है।) उसे सूक्ष्म-संस्क द्वारा परखा गया, तो उस पर उसे 'वाटर मार्क' दिखाई दिये। अब यह कैसे तय किया जाये कि ये वाटर मार्क कब के थे? इसके लिए ग्रांट ने पाँच हजार कागजों के टुकड़ों को परखा। उन पर बने वाटर मार्क की परस्पर तुलना करके वह इस नतीजे पर पहुँचा कि चित्र पर कागज के टुकड़े सन १९४० में चिपकाये गये थे।

ग्रांट ने अपने अनुभवों और खोजों पर एक दर्जन से अधिक पुस्तकें लिखी हैं। द्वितीय

विश्वयुद्ध में एक विशेषज्ञ के रूप में ग्रांट ने बहुत-से काम किये थे। ब्रिटिश सरकार के लिए की गयी उसकी कुछ खोजें आज भी गुप्त रखी गयी हैं। पर उसके कुछ कामों से सभी परिचित हैं। उसने एक ऐसा कागज बनाने में सरकार की मदद की थी, जिस पर गुप्त समाचार लिखकर जासूसों के हाथ भेजे जाते थे। पकड़े जाने का खतरा होने पर जासूस कागज को आसानी से निगल सकता था।

एक और किस्म का विशेष कागज भी ग्रांट ने बनाया था, जो जर्मन कैदियों को पत्र लिखने के लिए दिया जाता था। उस पर लिखी गयी किसी भी प्रकार की 'अदृश्य लिखावट' पढ़ी जा सकती थी। इस तरह जर्मन कैदियों द्वारा लिखी गयी ऐसी किसी भी बात का पता लग सकता था, जिससे इंग्लैंड को खतरा हो।

ग्रांट ने राशन-कार्डों के लिए भी ऐसा कागज बनवाया, जिसमें गायक बाल होते थे। शक होने पर कार्ड में से एक बाल निकालकर जलाया जाता था। अगर उसका धुआं दुर्गंधमय न होता, तो वह राशन-कार्ड जाली साबित होता।

ग्रांट ने एक बार कहा था—'जालसाज शायद यह भूल जाता है कि विज्ञान उससे हमेशा कुछ कदम आगे रहता है। जो नयी बातें वह जानता है, उनका ज्ञान विशेषज्ञों को भी होता है। इसीलिए जालसाज बुनियादी तौर पर मूर्ख होता है और अंततः उसे हार खानी पड़ती है।'



स्वामी ब्रह्मानंद

प्यारेलाल श्रीमाल

हिंदीभाषी प्रदेश में भक्ति-संगीत का कोई कार्यक्रम हो और उसमें ब्रह्मानंद का एक न एक गीत गाया न जाये, इसकी कल्पना नहीं की जा सकती।

सुमधुर भक्तिगीतों के रचयिता श्री ब्रह्मानंदजी महाराज का जन्म संवत् १८२९ में एक भक्त परिवार में हुआ। आपका मूल नाम 'लाडू' था। काव्य-प्रतिभा का प्रमाण वे बाल्यावस्था से ही देने लगे थे। कंठ भी बड़ा सुरीला था। लोग उनसे गीत-भजन सुनकर मुग्ध हो जाते थे। एक बार उन्हें अपने पिता के साथ उदयपुर दरबार में कविता गाने का अवसर मिला। महाराजा उनकी कविता से इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने काव्य-कला के विशेष अध्ययन के लिए आपको कच्छ भेज दिया। कच्छ में पूरे आठ वर्ष अध्ययन करके ब्रह्मानंदजी ने काव्यांगों पर पूर्ण अधिकार प्राप्त किया।

आपकी कवित्व-शक्ति की प्रखरता के बारे में किस्सा है कि वे ओंठों में सूई दबाकर बैठते थे और पवर्ग-रहित आशु कविता बोलकर लिखवा देते थे।

क्रमेण उनके काव्य-चमत्कार की ख्याति

दूर-दूर तक फैल गयी और बड़े-बड़े दरबारों से उन्हें बुलावे आने लगे। तत्कालीन वडाई नरेश तो उनके अनन्य अनुरागी बन गये और उन्होंने अपने दरबार में उन्हें बड़े सम्मानपूर्वक रखा। पर्याप्त द्रव्य भी प्रदान किया। किंतु लौकिक सुख-संपदा के प्रति ब्रह्मानंदजी में आरंभ से अनासक्ति थी। हजारों रुपये की वार्षिक आय तथा राजसम्मान के तिलांजलि देकर वे वहां से चले पड़े।

देश-भ्रमण करते हुए अकस्मात् उनकी भेंट भगवान श्रीस्वामिनारायण से हुई। जिस गुरु की उन्हें तलाश थी, वे गुरु मिल गये। उन्होंने श्रीस्वामिनारायण से दीक्षा लेकर अपना नाम 'लाडू' से बदलकर रंगनाथ रख लिया। कुछ समय बाद उनकी आध्यात्मिक अवस्था को देखकर स्वयं श्रीस्वामिनारायणजी ने उन्हें 'ब्रह्मानंद' नाम दिया। अब वे भगवान की भक्ति और सद्गुरु की सेवा करते और वचे समय में 'ब्रह्मानंद' नाम से भजन रचते।

गुरुजी श्रीस्वामिनारायण महाराज ने गोलोकवासी होने पर आप पुनः देश-भ्रमण पर निकल पड़े। भगवद्भजन का प्रचार

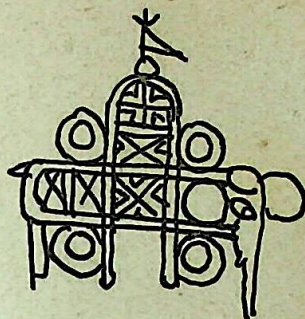
प्रसार करते हुए उन्होंने अहमदाबाद, मूली
जदि अनेक स्थानों पर मंदिरों का निर्माण
की करवाया। आबू पर्वत पर तपस्या
करके वाक्सिद्धि प्राप्त की। वहां से चलकर
विभिन्न नगरों में घर्मोपदेश करते हुए वे
पुष्कर पहुंचे। पुष्कर तीर्थ में आपका मन
रहा रमा कि वहीं 'ब्रह्मानंद आश्रम' बना-
कर रहने लगे। वहां वे नित्य अनुष्ठानादि
कराते तथा स्वयं घर-घर जाकर मंत्रशक्ति
से तथा औषधों से रोगियों का उपचार
करते। इस सेवा में वे किसी प्रकार का वर्ग-
रत्न का भेद नहीं करते थे।

पुष्कर में रहते हुए ब्रह्मानंदजी ने दस
सौ की रचना की, जिनमें 'ब्रह्मानंद-काव्य',
'विलास', 'छंद-रत्नावली' विशेष प्रसिद्ध
हैं। उनके कुछ ग्रंथ वेदांत तथा योगाभ्यास-
विषयक भी हैं। पर 'ब्रह्मानंद-भजनमाला'
उनकी अत्यधिक लोकप्रिय पुस्तक है।
इसमें उनके ५०० भजन संगृहीत हैं। ये
भजन वृष्णव मंदिरों में तो गाये ही जाते
हैं, बाकाशवाणी केंद्रों से भी प्रायः प्रसारित
होते रहते हैं। ये भजन आध्यात्मिकता से
परिपूर्ण होते हुए भी चुटीले एवं मार्मिक
हैं। अलंकारों के बोझ से मुक्त सहज भाषा
में होने से उन्होंने जन-सामान्य के हृदय
में स्थान बना लिया है। एक उदाहरण :

[रेखता-ताल दादरा]

ब्रह्मको नहीं है बोध तो गुरु ज्ञान क्या करे
निब रूप को जाना नहीं, पुराण क्या करे
॥ टेक ॥

सह-यत् में ब्रह्म जोत का परकाश हो रहा



मिट्टा न द्वैतभाव तो फिर ध्यान क्या करे
॥ १ ॥

रचना प्रभु की देख के ज्ञानी बड़े-बड़े
पावे न कोई पार तो नादान क्या करे ॥ २ ॥
करके दया दयाल ने मानुष-जन्म दिया
बंदा न करे भजन तो भगवान क्या करे ॥ ३ ॥
सब जीव-जंतुओं में जिसे है नहीं दया
ब्रह्मानंद बरत-नेम-पुण्य-दान क्या करे ॥ ४ ॥

एक और उदाहरण :

[राग जंगला-तीन ताल]

क्या पानी में मल-मल न्हावे, मन की मैल
उतार पियारे ॥ टेक ॥
हाड़-मांस की देह बनी है, झरे सदा नवद्वार
पियारे ॥ १ ॥
पाप कर्म तन के नहि छोड़े, कैसे होय सुधार
पियारे ॥ २ ॥
सतसंगत तीरथ-जल निरमल, नित उठगोता
मार पियारे ॥ ३ ॥

ब्रह्मानंद भजन कर हरि का, जो चाहे
निस्तार पियारे ॥ ४ ॥

इन भजनों पर पीलू, काफी, बिहाग,
मल्हार, श्यामकल्याण, देस, आसावरी,

हिंदी डाइजेस्ट

खमाज, पहाड़ी, मांड, तोड़ी, सोरठ, भैरवी आदि रागों के अलावा मंगल, पंजाबी काफी, बरहंस, बंजारा धुन, प्रभाती, कसूरी रासड़ा, मारवाड़ी आदि अप्रचलित रागों के नाम भी दिये हैं। साथ में धमार, चौताल, तीन ताल, एक ताल, दादरा, कहरवा आदि तालों का निर्देश है। कुछ भजन धमार तथा तीन ताल में गजल की तर्ज पर हैं। कुछ भजनों पर गजल-कव्वाली, सावनी-कव्वाली, लावनी-कव्वाली लिखा है; मगर वहां कव्वाली से अभिप्राय कव्वाली ताल से है। राग खमाज, झिझोटी तथा जिला में ठुमरी की तर्ज पर कुछ भजन हैं, जो तीन ताल में निबद्ध हैं। कुछ भजनों पर 'राग धुन ताल धीमा' लिखा है।

यह सब सिद्ध करता है कि स्वामी ब्रह्मानंदजी केवल कवि ही नहीं, अपितु सफल वाग्गेयकार (कवि और स्वरकार) थे। रागों एवं तालों के अतिरिक्त ध्रुपद, धमार, ठुमरी, गजल, लावनी आदि गीत शैलियों की भी उन्हें पूर्ण जानकारी थी। वस्तुतः आपके तमाम भजनों की भाषा तथा विषय-वस्तु इन गीतशैलियों के सर्वथा अनुकूल है। 'दया की नजर से देख मुझको 'मुखड़ा गजल का है, तो 'हरिदर्शन की मैं प्यासी रे' मुखड़ा ठुमरी का है। लावणी सरल और लावणी लंगड़ी में रंभा-शुक-संवाद, प्रह्लाद-हिरण्य-कश्यप-संवाद जैसी विषय-वस्तु का चयन किया गया है। होरी-धमार में कृष्ण की रासलीला का वर्णन किया है, तो ध्रुपद में गणेश, महेश, आदिदेव आदि की स्तुति की

गयी है। एक ध्रुपद देखिये :

[ध्रुपद-चौताल]

जय महेश जटाजूट कंठ सोहे कालकूट
जन्म-मरण जाय छूट नाम लेते जाके ॥१॥
तीन नयन चंद्र भाल मुंडन की गले माल
शोभित तन मिरग-छाल कटि में नाग बाँके ॥२॥

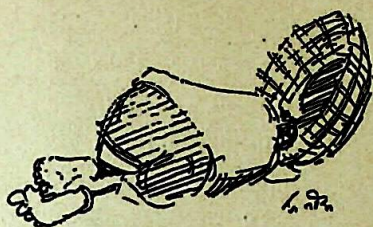
गौर बसत सदा संग, भस्म लसत अंग-अंग
शीश गंग के तरंग वाहन वृषभ के ॥३॥
कर त्रिशूल अरु कुठार ब्रह्मानंद निर्विकार
जाकी महिमा अपार कहत वेद थाके ॥४॥

इस प्रकार विनय, नाम-स्मरण, गुरु-भक्ति, हितोपदेश, कथा-प्रसंग आदि विषयक भजनों का रसपान कर पाठक एवं श्रोता आत्मविभोर हो उठते हैं।

भजनों के माध्यम से समाज को संगीतात्मक पिलाकर आध्यात्म के रंग में रंगने वाले परम-हंस स्वामी ब्रह्मानंदजी ने पुष्कर में ही मर सर सुदी २, १९८२ वि. को प्रातःकाल गोलोक-प्रयाण किया। ब्रह्मानंद आश्रम में आज भी आपकी गादी विद्यमान है। कहा जाता है कि महाप्रयाण से पूर्व आप सगंधिस्थ होकर गादी से कुछ ऊपर उठ गये थे तथा आपके मुखारविंद से यह वाणी निःसृत हुई थी—'इस स्थान पर शंख-चक्र-गदा-पद्मधारी भगवान श्री आदिनारायण की प्रतिमा स्थापित की जाये। लाओ, मेरी माला ले आओ।' माला धारण करते ही आपके श्रीमुख से 'नारायण नारायण' शब्दोच्चार हुआ और तत्क्षण आपने प्राण त्याग दिये।

—रंगमहल, नयी पैठ, उज्जैन, म.प्र.





हंसता चेहरा

निश्चय ही उस सांझ मेरे चेहरे पर चिंता की रेखाएं कुछ ज्यादा ही गहरी रही होती। क्योंकि जब मैं कार्यवश मित्रवर श्री तपस्वी (बचुभाई) कीरी की दुकान पर पहुंचा तो ग्राहकों के छंट जाने के बाद उन्होंने अपनी नरम आवाज को और नरम बनाते हुए पूछा—'क्या बात है, कुछ परेशान नजर आते हैं?' मैंने उन्हें बताया कि कैसी समस्याओं में फंसा हुआ हूँ। उन्होंने हाल पूरा और कुछ व्यावहारिक सुझाव दिये। फिर एक पते की बात कही :

'जब समस्याएं आती हैं, चिंता होना स्वाभाविक है। पर मेरा कुछ दूसरा ढंग है सोचने का। चिंताएं दो तरह की होती हैं। एक वे जो सुलझायी जा सकती हैं; दूसरी वे जो सुलझायी नहीं जा सकतीं। जिन्हें सुलझाया जा सकता है, वे सही उपाय सोचने और करने से सुलझती हैं, चिंता करने से नहीं। बल्कि बहुत चिंता करने से तो राह सुझाना भी बंद हो जाता है। और

जो समस्याएं सुलझायी नहीं जा सकतीं, उनमें चिंता करने से फायदा ही क्या! सुनने में बात विचित्र लगेगी—जिस रोज मुझे व्यापार में घाटा होता है, चाय मंगवाकर दुकान के सब कर्मचारियों को पिलाता हूँ। मैं तो समझता हूँ, हंसते-हंसाते हुए चीजों को झेल लेना ही जीवन है।'

श्री वलमजी हंसते भी थे, हंसाते भी थे—बड़ा मीठा और सहज होता था उनका हास्य। कुछ महीने पूर्व उनका गैंग्रीन का आपरेशन हुआ था। लोकल एनेस्थीसिया दिया गया था, और वे होश में थे। आपरेशन टेबल पर उनके दोनों हाथ फैला दिये गये थे। लेटे-लेटे वे बोले—'देखो, ईसा को सलीब पर चढ़ा दिया गया है।' आपरेशन के बाद जब टेबल से उतारकर विस्तर पर लिटाया गया तो कहने लगे—'अब ईसा को सूली पर से उतार लिया गया है।' डाक्टर विस्मित रह गये थे इस रोगी की जिंदा-दिली पर।

अभी कुछ ही सप्ताह पूर्व एक रात श्री वलमजी हार्ट-एटैक से एकाएक गुजर गये।

● शीर्षक के साथ सतीश चव्हाण रचित चित्र ●

सत्ताईस वर्ष पूर्व ग्राहक के रूप में पहली बार उनकी दुकान में गया था और जब दुकान से निकला तो उनका मित्र बनकर निकला था। मुझे लगता है, प्राणों का ग्राहक बनकर आये यमराज को भी उन्होंने मित्र बना लिया होगा। —नारायण दत्त

०००

सार्थक कविता

काव्य-पंक्तियों से कभी-कभी जीवन-दृष्टि ही बदल जाती है। कविता की इस शक्ति की अनुभूति मुझे पिछले दिनों हुई।

जनवरी १९७८ के नवनीत में श्रीमती पुष्पा राही का गेयगीत छपा था। शीर्षक था—‘क्षमा-गीत।’ मुझे वह बहुत पसंद आया। फुरसत के क्षणों में मैं उसे अक्सर गुनगुनाने लगता। नाइट ड्यूटी पर रात में प्रेस में पेज बनवाते समय कभी जोर से गाने भी लगता।

पर जून ७८ की २६ तारीख को तो मैं आश्चर्यचकित रह गया, जब एक नवदंपति ने, जो पास ही रहते थे, आकर मुझे धन्यवाद दिया। पति महोदय वताने लगे कि हमारे दांपत्य-जीवन में मूर्खतावश आयी कटुता आपने मिटा दी है। मैंने पूछा—कैसे? तब वे शरमाते-सकुचाते बोले—‘यह सब उस गीत की कृपा है, जिसे आप कभी-कभी रात को जोर से गाने लगते हैं।’

‘कौन-सा गीत?’ मैंने पूछा।

उन सज्जन ने अपनी पत्नी की ओर गौर से देखा और शरास्त-भरी मुस्कान बिखेरते नवनीत

हुए बोले—‘उसकी पंक्तियां हैं :

आज से तय हो गया है

यह हमारे बीच

आपसी मतभेद पर

लो शीघ्र आंखें मींच।’

मैं मुस्करा पड़ा। पर वे बताते रहे—

‘बार-बार सुन-सुनकर ये पंक्तियां हम दोनों को याद हो गयी हैं। बात यों है कि कुछ मतभेदों के कारण हम निरंतर झगड़ते रहते थे। फिर हमारी बोलचाल बंद हो गयी। कई महीने चुप्पी में निकल गये। दोनों नौकरी करके घर लौटते और खाना खाकर अंदर ही अंदर कुड़ते हुए सो जाते। तभी यह कविता सुनाई पड़ने लगी। आपके कार्यालय और हमारे घर के बीच एक ही दीवार है और ऊपर रोशनदान है ही। कविता मेरी जवान पर चढ़ गयी। एक दिन मैं उसी को गुनगुना रहा था, तो वह बोली—“बात की किश्ती कभी आगे न बढ़ने दो तोते की तरह रटते हो... कब तक रटते रहोगे!” और मैं उसी दिन समझाते के सूत्रों में उलझ गया। दोनों सिर्फ अपनी-अपनी कुंठाओं में जी रहे थे। इस गीत ने हमें नयी दृष्टि दी है।’

मैंने उनसे कहा—‘भई, धन्यवाद तो आप पुष्पाजी को भेजें। नवनीत के संपादक और संचालक को दें।’ वे मुस्करादिये—‘हमने तो इसे आपकी आवाज से पकड़ा है।’

काव्य के प्रयोजन गिनाते हुए हमारे पुराने काव्यशास्त्रियों ने गलत नहीं कहा है—‘काव्य व्यवहारज्ञान कराता है, अमंगल

फरवरी

का नाश करता है, तुरंत परम आनंद देता है और कांतासम्मिति द्वारा उपदेश देता है।'
—दुर्गाशंकर त्रिवेदी, कोटा-३२४००६

०००

अनोखा पुरस्कार

तब मैं वी. ए. का छात्र था। उम्र कोई सोलह की रही होगी। शुरू से मैं गंभीर और अल्पभाषी रहा हूं। फिर अपनी मुफ्तिसी का संकोच। पचास सहपाठियों में अधिकांश संपन्न घरों के फैशनपरस्त युवक थे। मैं ही एक गरीब पिता का पुत्र था। हमारी अंग्रेजी की व्याख्याता मेडम उमा दीवरा कद और शरीर में तो छोटी व दुबली-पतली थीं, लेकिन बुद्धि से बहुत प्रखर और स्वभाव से सचमुच शांत और विनीत।

एक दिन तिमाही परीक्षा की कापियां दिखायी जा रही थीं। प्रोत्साहन के लिए मेरिट के हिसाब से प्रथम, द्वितीय और तृतीय नंबर वाले छात्रों को मेडम ने पुरस्कार के रूप में पुस्तकें दीं। मेरा परिणाम

शून्य था। वैसे भी मैं सबसे पीछे बैठता था। शरम से और दोहरा होकर छिप-सा गया। पर सबसे अंत में अचानक ही मेरा नाम पुकारा गया। मुझे एकदम झटका लगा। सोचा, डांट पड़ेगी। किंतु नहीं। मेडम ने मेरी ओर पुस्तक बढ़ाते हुए सब छात्रों से कहा—‘तुम्हारे इस साथी को इसके सरल व्यवहार के लिए मैं पुरस्कार दे रही हूं।’

सिर झुकाये मैं शरम से गड़ा जा रहा था। मैं आगे नहीं बढ़ा, तो मेडम खुद मेरे पास आयीं। इतने में घंटी बज गयी और सभी छात्र चले गये। पुस्तक थमाते हुए वे बोलीं—‘कोई बात नहीं..... मुझे मालूम है.....तुम्हारे अंदर बहुत पासिविलिटीज़ (संभावनाएं) हैं। लेकिन थोड़ा-सा साहस करो.....।’ यह सुनकर मैं पूरा भर आया। कुछ बोल न सका। लेकिन उस छोटे-से व्यक्तित्व के उन शब्दों से मैंने पिछले आठ वर्षों में अनेक बार बल प्राप्त किया है और सफलता पायी है।

—गोपाल चौरसिया, खालियर-१



श्री माखनलाल चतुर्वेदी अस्वस्थ अवस्था में चारपाई पर थे और मध्यप्रदेशीय शासन-साहित्य-परिषद् की ओर से उनके सम्मान का आयोजन किया गया था। समारोह में पहले अनेक साहित्यकार चतुर्वेदीजी के दर्शनार्थ उनके निवास-स्थान पर भी गये। जब ‘सरस्वती’ के संवादक पं. श्रीनारायण चतुर्वेदी उनसे मिलने पहुंचे, दोनों में यह वार्तालाप हुआ।

‘आप कहां ठहरे हैं महाराज?’

‘हमारे ठहरने की व्यवस्था एक “लाज” में की गयी है।’

‘अरे! आप कब से लाज करने लगे?’

‘आज तो सारा देश ही “सरमदान” कर रहा है।’

और ठहाकों से कमरा गूंज गया।

—डा. गोपाल प्रसाद ‘वंशी’



एक अस्पताल का जन्म - कारण

रमापद चौधरी

प्रिय अनंत,

तुम्हारा पत्र समय पर मिला था, पर बहुत सारे झमेलों की वजह से जवाब न दे सका। तुम लोग जानते ही हो मैं ठेकेदारी करता हूँ, सुर्खी-चूना ही मेरी रोजी-रोटी है। लेकिन अपना गांव मैं कभी नहीं भूला। हालांकि मेरा धंधा शहरों में बड़ी-बड़ी इमारतें बनाना है, फिर भी खेलाई गांव के उस कच्चे मकान से जुड़ी यादों को भूल पाना मेरे लिए कतई मुमकिन नहीं है। थोड़ी-सी फुरसत मिलते ही मन वहां पहुंचने के लिए बेचैन हो जाता है।

तुम्हारे दूसरे पत्र से मालूम हुआ कि एक अस्पताल बनवाने के काम में तुम लोग काफी दूर तक बढ़े हो। तुमने मुझसे दस हजार रुपये मांगे हैं। पर शायद तुम्हें यकीन नहीं होगा कि खर्चने के लिए दस पैसे हम ठेकेदारों की जेबों में नहीं रह पाते। फिर भी मैं अपनी हैसियत के मुताबिक जरूर मदद करूंगा। गांव और आस-पास के बड़े जोतदारों या कारोबारियों के दान से कोई बड़ा काम कराने का जमाना अब कहां रह गया है। आज तो सरकार इस ओर ध्यान नवनीत

दे तभी कुछ हो सकता है। सो बेहतर होगा तुम लोग किसी मंत्री को पकड़ो, आस-पास के गांव वालों से दरखास्त करवाओ। कोशिश करने पर सरकारी पैसे से एक बड़ा-सा अस्पताल वहां बन सकता है। उसके बाद तो मैं हूँ ही। —गुणमय ग्रैश

०
नटू भैयाजी,

वारासत वाले मामले में फोन पर आपसे बातचीत होने के बाद सोचकर भी आपसे मिल नहीं पाया। फिलहाल खेलाई गांव के इन लड़कों को आपसे पास भेज रहा हूँ। वे लोग वहां एक अस्पताल बनवाने की कोशिश में हैं। मैंने अपनी हैसियत के मुताबिक मदद करने को कहा है। स्वतंत्रता आने के बाद अनेक जगहों पर स्कूल, कालेज, अस्पताल खोले गये। पर आपके गांव कालिकापुर में कुछ भी नहीं हुआ। आप हमारे श्रद्धेय हैं, उस पर मंत्री। आपने कहा था कि अपने गांव में कुछ करने से पसपास जैसा लगेगा, सो आपने इस ओर ध्यान नहीं दिया। पर गांव वालों के भी तो कुछ दावे हैं। आशा है, आप इनकी बातें ध्यान

से बुकेंगे। मेरा अर्द्धपूर्ण नमस्कार स्वीकारें।
आपका—गुणमय

अनंत,
 नटू भैयाजी से तुम लोगों की मुलाकात
 के बाद मेरी उनसे बातचीत हुई थी। तुम
 लोग यदि पंद्रह हजार का चंदा जमा कर
 तो तो शायद काफी सुविधा हो जाये।
 बीच-बीच में समाचार देते रहना।

—गुणमय भैया

अनंत,
 तब अरसे तक तुम लोगों का कोई पत्र न
 मिलने पर मैंने सोच लिया था कि तुम लोगों
 ने उम्मीद छोड़ दी है। खैर, चंदे के रुपयों
 का इंतजाम हो गया है तो अब वाकी
 रुपये सरकार से लेने की कोशिश करनी
 होगी। नटू भैयाजी के कालिकापुर से हमारे
 बंदाई तक बारह मील के भीतर कोई अस्प-
 ताल नहीं है। गांव के लोगों के दुःख-कष्ट,
 बहुविधाओं की चर्चा वाले कुछ पत्र समा-
 चारपत्रों में छपवाने का इंतजाम करो।
 रमेश नंदी का लड़का अखबार का आदमी
 है, उसको जाकर पकड़ सकते हो।

—गुणमय भैया

अनंत,
 समाचारपत्रों की कतरने मिलीं। मेरे
 पास भेजने की जरूरत नहीं थी। मैं उन्हें
 पहले ही देख चुका हूँ, इसलिए लौटा रहा
 हूँ। इन्हें लेकर जगतपुर के निशा भट्टाचार्य

बंगला से अनुवाद : सोमनाथ द्विवेदी

से मिलो। वे हमारे पड़ोस के चुनाव-क्षेत्र
 से विधानसभा में आये हैं, तब भी खेलाई
 के पड़ोसी गांव के ही आदमी हैं न। इसके
 अलावा विरोधी पक्ष के सदस्य की हैसियत
 से अस्पताल की कमी की बात उठाना उनके
 लिए आसान होगा। निशा बाबू को भी
 मैं पत्र लिख रहा हूँ। —गुणमय भैया

अनंत,

कल फोन पर नटू भैयाजी से बातचीत
 हुई। निशा बाबू ने विधानसभा में बड़ी
 चतुराई से बात उठायी है। नटू भैयाजी का
 जवाब भी आशाजनक है। तुम एक-दो जने
 उनसे तुरंत मुलाकात करो और निशा बाबू
 को धन्यवाद दे आओ। मैंने भी फोन पर
 उन्हें आभार जताया है। —गुणमय भैया

नटू भैयाजी,

आखिरकार बंदोबस्त हो ही गया, सो



मेरा धन्यवाद। हम लोग सचमुच ही अब तक आप पर गर्व करते आये हैं। अब और ज्यादा कृतज्ञ हुए। मेरा आदमी शिवेन पत्र लेकर जा रहा है, उसकी जवानी सब सुनियेगा। आपके लिवर का दर्द घटा है या नहीं, मालूम करायेंगे। रोजाना एक चम्मच कालमेघ का रस पीकर देखें। मुझे फायदा पहुंचा था। यदि न मिले तो मुझे लिखें, रोज ताजे कालमेघ के पत्ते भिजवाने का इंतजाम कर दूंगा। अगले ही सप्ताह मैं आपसे भेंट करूंगा।

—गुणमय

प्रिय शिवेन,

मैं इस सप्ताह रांची से लौट न सकूंगा। बारासत का काम कितना आगे बढ़ा है, सीमेंट रखवाने का क्या इंतजाम किया है तुमने, यतीन बाबू ने स्कूल-बिल्डिंग का प्लान सबमिट किया या नहीं, लिखना। और नटू भैयाजी के सेक्रेटरी, नाम भूल रहा हूं उनका, उनसे मिलकर खेलाई के अस्पताल का आर्डर इशू कराने के लिए तकादा करना। उनकी तनिक खातिर-तवज्जोह भी करना।

—गुणमय सेन

यतीन बाबू,

मुझे लौटने में और तीन-चार दिन लगेंगे। यहां का बिल वसूल होते ही मैं लौटूंगा। काम करके रुपये वसूलना भी एक समस्या है। कभी-कभी तो कारोबार समेट लेने की तबीयत होती है। खैर, सुना है आपका स्कूल वाला प्लान उन्हें बहुत

नबनीत

पसंद आया है। हमारे खेलाई गांव की परती जमीन पर बड़ी सड़क के किनारे एक बड़े अस्पताल के बनने की संभावना है। सरकारी दफ्तरों के काम से तो आप वाकिफ हैं। इसमें कितने रुपये लगेंगे, इसका निर्णय लेने में ही उन्हें महीनों लग जायेंगे। सो आप एक प्लान बनाकर तैयार रखें। इसमें मैं डेढ़-एक लाख रुपये खर्च करवाना चाहता हूं। समूचा प्लान जमा करके आर्डर इशू कराने में सुविधा होगी।

आज सुबह शिवेन ने ट्रंककाल किया था, उसे भी मैंने समझा दिया है। फिलहाल इतना ही।

—गुणमय सेन

नटू भैयाजी,

अस्पताल के प्लान के साथ शिवेन को आपके पास भेज रहा हूं। आप जरा देख लीजियेगा। आप लोगों के इंजीनियरों द्वारा प्लान बनवाने पर शायद हम लोग अपने जीवन में अस्पताल न देख सकें। सो अपने ही खर्च से बनवा लिया है। जब लगभग पचास गांवों का भला होता हो और प्लान का खर्च मुझे ही देना पड़ जाये तो क्या फर्क पड़ता है।

मैं कल रांची से लौटा हूं। आज रिसड़ा जा रहा हूं। दो दिन वहां रहूंगा।

फाइनान्स डिपार्टमेंट वालों से आप तनिक कह देंगे, इसका मुझे यकीन है। मेरा सख्त नमस्कार स्वीकारें। आपका—गुणमय

पुनश्च : आपके आदेशानुसार शंकर की नौकरी की बात मैंने कॉलिन साहब से

फरवरी

चलायी है। आशा है, हो जायेगी।

शिवने,

हमारा जमा किया हुआ अस्पताल का
ज्ञान तनिक हेरफेर के साथ मंजूर हो गया
है, जानकर खुशी हुई। टेंडर के लिए विज्ञा-
पन कब तक निकलेगा, यह पहले से पता
कर रखना। हेरफेर की वजह से पूरे एस्टि-
मेट में क्या फर्क आयेगा, यतीन बाबू से
हिासाब करवा लेना। यह बात उसे याद
रखने के लिए कहना कि आजकल सबका
युह फैलता जा रहा है। वसंत बाबू का
दोसफर कराये बगैर काम नहीं चलेगा।
इतने-से काम के लिए इतने ज्यादा रुपये !
बाज बस इतना ही।

—गुणमय

वसंत बाबू,

शिवने बाबू को आपके पास भेज रहा
हूँ। सारी बातें सुनियेगा। आप हमेशा ही
मेरा उपकार करते रहे हैं, यह मैं कभी न
भूलूंगा। कौन-कौन-सी पार्टी टेंडर देंगी,
इसका पता लगाकर मेहरवानी करके मालूम
करा दियेगा। हां, चीनी की जरूरत है क्या ?

आपका—गुणमय

शिवने,

आशा है, परसों मैं दुर्गापुर से लौट
आऊंगा, पर इससे पहले ही खेलाई के अस्प-
ताल का टेंडर सबमिट करना होगा। वसंत
बाबू से भीतरी बातें जानकर यतीन बाबू
को फ्रेम एस्टिमेट बनाने के लिए कहना।

१९७९

रिसड़ा का विल पास करवाने के लिए
तुम्हें एक बार जाना पड़ेगा। मैं पिछली बार
टू परसेंट से ज्यादा परराजी नहीं हुआ था।
जरूरत पड़ने पर तुम थोड़ा बढ़ा देना।

—गुणमय सेन

०

अनंत,

लंबे अरसे से तुम लोगों की कोई खबर
नहीं मिली। क्या तुम लोगों ने मुझे भुला
दिया है? तुम लोगों का उत्साह देखकर ही
मैंने अस्पताल के लिए इन नौ महीनों में जो
मेहनत की है, उसके बारे में तुम सोच ही
नहीं सकते। आखिरकार अब अस्पताल बन
ही जायेगा। वैसे गांव के अस्पताल का काम
हाथ में लेने पर कोई खास फायदा नहीं होगा
मुझे, फिर भी यह काम मैंने अपने हाथों में
ले लिया है। तुम्हें तो पता ही है कि ठेके-
दारों पर यकीन नहीं किया जा सकता।
इतनी कोशिशों के बाद एक अस्पताल
संव्कशन हुआ है। वह भी दो दिनों में ढह
जाये, ऐसा मैं नहीं चाहता। इसी वजह से
यह काम मैंने अपने हाथ में ले लिया है।
आज बस इतना ही।

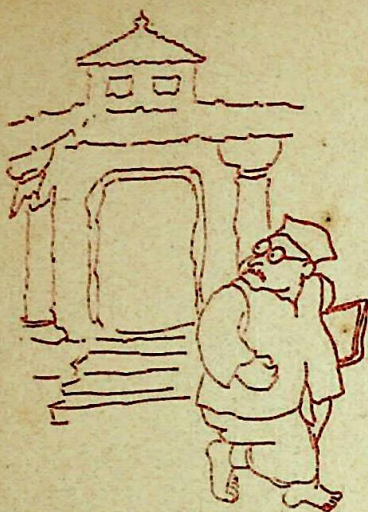
—गुणमय त्रैया

०

श्रद्धेय निशा बाबू,

बहुत दिनों से आप से मिल नहीं पा रहा
हूँ। विभिन्न कामों में ऐसा उलझे रहना
पड़ता है कि वक्त ही नहीं निकलता। आज
कल कंट्राक्टरों का हाल तो जानते ही हूँ।
सरकारी दफ्तर के दरबान से मंत्री तक
सभी डपटते रहते हैं। और फिर कदम-

हिंदी डाइजेस्ट



कदम पर फैले हुए हाथ ही मिलते हैं। आप लोग तो फिर भी बीच-बीच में एक-दो सच बात मुंह पर कह देते हैं।

खेलाई के अस्पताल का काम मैंने लिया है। फायदा तो होगा नहीं। फायदा सिर्फ यही होगा कि उस इलाके में एक बड़ा अस्पताल बन जायेगा। मेरी बड़ी इच्छा है कि बुढ़ापे में वहीं जाकर रहूं, इसलिए अस्पताल जरा अच्छी तरह बने, इसी कोशिश में हूं। फिर भी आप जानते ही हैं कि मैं हर वक्त सब काम खुद नहीं देख पाता हूं, ओवरसियरों के भरोसे रहना पड़ता है। यदि अस्पताल के काम में कोई गड़बड़ देखें तो कृपया कोई झमेला न करके मुझे खबर दें, मैं ठीक करवा दूंगा।

उस दिन अचानक थोड़ी-सी झींगा मछली मिल गयी थी, सो आपको भिजवा दी थी। पहुंचते-पहुंचते खराब तो नहीं हुई नबनीत

थी न?

आपका—गुणमय सेब

०

शिवेन,

डिस्ट्रिक्ट इंजीनियर दासगुप्त कुछ दिन कलकत्ता में रहेंगे। उनके लिए कराना मेशन का फ्लैट खुलवा देना। उन्हें किसी चीज की जरूरत न खले। —गुणमय सेब

०

अनंत,

तुम खेलाई वाले हो और मैं भी। तुम्हारे और मेरे पिता के जो आपसी संबंध थे, उन्हें मैं आज भी नहीं भूला हूं। इसके अलावा मुझे इस अस्पताल के लिए कितने पापड़ बेलने पड़े हैं, यह शायद तुम नहीं जानते। सरकारी दफ्तरों में एक मेज से दूसरी मेज पर एक फाइल को खिसकने में तीन महीने लगते हैं। हम कंट्राक्टरों की कोशिशों से ही वे आगे बढ़ती हैं। इस देश में यदि कोई काम होता है, तो वह हमारी ही कोशिशों से। इसके लिए इसी बीच कितने रुपये पानी में गये, इसका हिसाब मेरे पास नहीं है। फिर भी मैं समझता हूं कि वे रुपये पानी में नहीं गये क्योंकि अपने गांव में इतना बड़ा अस्पताल बन रहा है, इसकी मुझे खुशी है। पचास गांवों को तो इससे फायदा होगा ही।

सुना है, गांव के लड़कों मेरे राज-मिस्त्रियों और ओवरसियर को तरह-तरह से परेशान कर रहे हैं। तुम लोग यह सब बंद करवाओ। वैसे भी ईंटों की क्वालिटी, दरवाजे-खिड़की की लकड़ी वगैरह के बारे में उनके बेवबह सवाल करने का कोई मतलब नहीं होता।

फरवरी

क्या अच्छा है और क्या खराब, यह बात यदि मिस्त्रियों को मालूम होती, तो वे ही स्क्राक्टर नहीं बन जाते ! मुझ पर यकीन रखो, कम से कम अपने गांव को तो मैं नहीं भूंगा। इसके अलावा इंजीनियर दासगुप्त रोबाना दौरे पर जाया करते हैं।
 तुम लोगों के सहयोग की कामना करता हूँ।
 —गुणमय भैया

पुनश्च—अस्पताल पूरा बन जाने दो। तब देवकर तुम लोग खुश होगे। अभी छोटी-छोटी बातों पर रुकावट डालने से अंत में वहीं अस्पताल बनना बंद न हो जाये।

शिवेन,
 इंजीनियर दासगुप्त के लिए क्रिकेट मैच के चार टिकट चाहे जैसे भी इंतजाम करके उन्हें पहुंचा दो।
 —गुणमय सेन

अंत,
 तुम्हारा पत्र मिला। तुमने मेरी बात समझ ली है, जानकर खुशी हुई। क्या मैंने अपने पत्र में तुम पर दोष लगाये थे ? दर-असल, मुझे शक है कि विरोधी पक्ष के सदस्य निशा भट्टाचार्य के इशारे पर कुछ लड़के नाच रहे थे। सरकार कोई अच्छा काम करे, यह उन्हें सहन नहीं होता। वे किसी भी तरह इसमें रुकावट डालना चाहते हैं। तुम लोग उन्हें समझाओ।
 —गुणमय भैया

मदये निशा बाबू,
 कल आपके यहां से लौटते वक्त आपकी

बातों ने मुझे सोच में डाल दिया था। सच-मुच यदि ऐसे ही चलता रहा तो इस देश की भलाई नहीं होगी। अपने पार्टी-फंड में पांच सौ रुपये देने को आपने कहा था। मैं शिवेन के हाथों एक हजार रुपये भेज रहा हूँ। अपनी हैसियत के मुताबिक मैं क्यों न मदद करूं ! शायद आप लोग समझते हैं कि हमें काफी फायदा होता है। पर यह अंदाज गलत है। एक तरफ बीसियों किस्म के टैक्स और दूसरी ओर पग-पग पर रिश्वत। कारोबार करने की तबीयत ही नहीं होती। और देशी चीजों का हाल भी बुरा है आजकल; हमारे पास और कोई चारा नहीं है सो उनका इस्तेमाल करना पड़ता है। लोग-बाग हमारे ही सिर दोष मढ़ते हैं।

आपने अगले चुनाव में न खड़े होने की बात कही थी। पर हजारों आंखें आपकी ओर लगी हुई हैं, यह न भूलें। श्रद्धापूर्ण नमस्कार स्वीकारें।

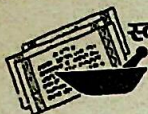
आपका—गुणमय सेन

माइ डियर दासगुप्त,
 कुछ-एक दिनों के लिए लांच पर सुंदर-वन की ओर तफरीह पर जा रहा हूँ। चिड़ियों का शिकार किया जा सकेगा। ईंट-पत्थरों की दुनिया न आपको अच्छी लगती है और न मुझे ही। मिसेज और बच्चों को लेकर चलिये न, घूम आयें। सुहावना लगेगा।

मिसेज को मेरा श्रद्धा-सहित नमस्कार और बच्चों को स्नेह।
 —सेन

पुनश्च :— बनारसी साड़ी मिसेज को पसंद

हिंदी डाइजेस्ट



स्वास्थ्य तथा दीर्घ जीवन के लिये 3000 वर्ष पुराना नुस्खा

डाबर च्यवनप्राश पूरे परिवार के लिये 8 सूत्री आयुर्वेदिक टॉनिक



विटामिन सो
से भरपूर,
स्वार्टिष्ट
सद्गन्धी मिश्रण
अपने प्राकृतिक
रूप में

१. शरीर के तंतुओं को जवान रखता है
डाबर च्यवनप्राश से शरीर के तंतुओं का क्षय
धीमा पड़ जाता है।

२. शरीर की प्रतिरक्षा शक्ति को
बढ़ाता है

डाबर च्यवनप्राश शरीर की संपूर्ण प्रतिरोधक
शक्ति का विकास करता है तथा सर्दी और
जुकाम में भी लाभदायक है।

३. स्फूर्ति प्रदान करता है

डाबर च्यवनप्राश वृद्धों में स्फूर्ति बनाए रखता
है और बुढ़ापे में कार्यशक्ति विकसित
करता है।

४. इसमें संचय और वृद्धि करने के गुण हैं
डाबर च्यवनप्राश शरीर के विकास में मदद
देता है।

देवताओं का नुस्खा

च्यवनप्राश का नुस्खा ३००० वर्षों से भी पहले
का है, जैसा कि कहा जाता है कि देवताओं के
चिकित्सकों ने महर्षि च्यवन को उनका योग्य
फिर से प्रदान करने के लिए तैयार किया था।
यद्यपि च्यवनप्राश सम्भवतः विद्वान् प्राचीन
स्वास्थ्य-प्रद टॉनिक है, तथापि डाबर में इसके
बनाने का तरीका पूर्ण प्राधुनिक एवं वैज्ञानिक है।

मुफ्त चम्मच एक किलो डिब्बों के साथ

एक शक्तिदायक आयुर्वेदिक टॉनिक

डाबर च्यवनप्राश

सभी दवा विक्रेताओं के यहाँ मिलता है।

आयी नहीं, मालूम कराइयेगा ।

०
बूढ़े भैयाजी,

खेलाई-कालिकापुर अस्पताल का काफी काम हो चुका है, पर अब लगता है काम बंद रखना पड़ेगा । पहली किस्त के बिल का मुझे अब तक पेमेंट नहीं हुआ है । मुखर्जी साहब को दया करके फोन पर कह दीजिये न ।

उस दिन आपके यहां से लौटने के बाद सर्दी-जुकाम से काफी परेशान हो गया था । आप कैसे हैं ?

—गुणमय पुनर्वचः—जमीन खरीद लीजिये, मकान की फिक्र न कीजिये ।

०
शिवेन,

मुखर्जी साहब क्या चाहते हैं, तुम उनके क्लर्क से साफ-साफ जान लो । इसीलिए तो मैंने यतीन बाबू को जरा बढ़ा-चढ़ाकर एस्टिमेट बनाने के लिए कहा था ।

रांची वाले मामले में आइ.टी. ओ. मूर्ति ने यह क्या किया ? गला कटना ही बाकी रह गया है ।

—गुणमय सेन

०
शिवेन,

पहली किस्त के रुपयों का पेमेंट हो गया है, जानकर खुशी हुई । दासगुप्त फिर पर-सेंटेंज बढ़वाना चाहता है । दे देना, कोई चारा नहीं है । सारे झमेले हम उठाते हैं और मुनाफा इन चींटों के पेट में चला जाता है । अस्पताल के एकाउंट से एक सौ टन कपूर को दे देना । नगद ।

—गुणमय सेन

नवनीत

०
शिवेन,

अस्पताल का काम जल्दी ही खत्म कर देना पड़ेगा । थोड़े और मिस्त्री लगा लो । दुर्गापुर में एक और टेंडर मंजूर हो गया है । आदमी नहीं मिल रहे हैं । एक तरफ तो बेकारी की चीख-पुकार मची है और दूसरी तरफ कोई काम ही नहीं करना चाहता । आदमी मिलते ही लगा लेना ।

अस्पताल के दरवाजे, खिड़कियां जल्दी रंगवा देना और कमरों की पुताई भी करवा देना । न जाने कब, कौन आकर देख जाये और लकड़ी की क्वालिटी पर झमेला खड़ा कर दे ।

—गुणमय सेन

०
अनंत,

तुम्हारा पत्र मिला । आस-पास के गांव के लोग अस्पताल देखकर खुश हुए हैं, जानकर मुझे भी खुशी हुई ।

मेरा जो फर्ज था, मैंने पूरा कर दिया । शुभेच्छा रही ।

—गुणमय भैया

०
शिवेन,

बशीरहाट का टेंडर देने का इंतजाम करो । यतीन बाबू से माजिन ज्यादा रखने के लिए कहना । खेलाई के मामले में तो तुमने देखा ही है कि कितना ज्यादा 'ऊपरी' खर्च हो गया । अब इधर इन्कमटैक्स की तलवार भी झूल रही है । उनका तो खयाल है कि हमें जितना मिलता है, वह पूरा का पूरा फायदा ही है ।

खैर, तसल्ली है कि खेलाई के दूसरे बिल का पेमेंट हो गया है। —गुणमय सेन

भाई अनंत,

तुम्हारे तीनों पत्र मुझे मिले थे। इधर महीने-भर विभिन्न कामों में इतना उलझा रहा कि जवाब नहीं दे पाया। खेलाई के अस्पताल के बारे में जो कुछ तुमने लिखा है, पढ़कर सचमुच ही खराब लगता है। पर मैं इससे ज्यादा और क्या करूँ, बताओ। मैंने जितनी जिम्मेदारी ली थी, उसे पूरा कर दिया है। तुम्हें जानकर अचरज होगा कि उसके पूरे रुपये मुझे अब तक नहीं मिले हैं। तुम लोग नटू भैयाजी को पकड़ो। वे शायद कुछ कर सकें। वैसे वे भी क्या करेंगे? सरकारी काम ही ऐसा है। कंट्राक्टरों को सभी कोसते हैं, कहते हैं सरकार स्वयं करवाये तो काम काफी अच्छा होगा। सरकारी दफ्तरों का हाल तो तुम जानते ही हो। मैंने अस्पताल की इमारत बनवाने की जिम्मेदारी ली थी, उसे मैंने पूरा करवा दिया है। डाक्टर-नर्स, दवा-औजार-मशीनें—यह सब तो मेरे काम नहीं हैं। दवा-औजार-मशीनें अंत में यदि आ भी जायें तो वे भी किसी कंट्राक्टर की मेहरबानी से ही आयेंगी। अब तो मुझे लगता है कि डाक्टर-नर्स के लिए भी यदि टेंडर इन्वाइट किये जायें, तभी काम पूरा होगा।

इस देश में जितने भी काम हुए हैं, वे सब हमारी ही कोशिशों से हुए हैं। जहाँ कंट्राक्टर नहीं हैं, वहीं काम पड़ा रह जाता

है। तुम लोग नटू भैयाजी से मिलो।
—गुणमय भैया

शिवेन,

खेलाई के अस्पताल का पूरा पेमेंट मिल गया है, जानकर खुशी हुई। वशीरहाट का टेंडर मंजूर हुआ या नहीं, मालूम कराओ। मैं अभी दुर्गापुर ही रहूँगा। —गुणमय सेन

अनंत,

तुम्हारे कुछ पत्र लगातार मुझे मिलते रहे हैं। मुझे जो कहना था, मैंने तुम्हें पहले ही कह दिया है। डाक्टर-नर्स के मामले में मैं कुछ नहीं कर सकता।

तुमने लिखा है, अस्पताल की एक दीवार बह गयी है। इस मामले में भी हमारे करते लायक कुछ नहीं है। नियमित इंस्पेक्शन हुआ था; तब किसी ने कोई कमी नहीं दिखायी थी। इमारत की देखरेख न करने पर वह तो बहेगी ही। —गुणमय भैया

अनंत,

मेरी समझ में नहीं आता कि तुम बार-बार मुझे क्यों तंग कर रहे हो। इस मामले में मेरे करने लायक कुछ भी नहीं है।

—गुणमय भैया

शिवेन,

अनंत के पत्र आयें तो फाड़कर फेंक देता रिडाइरेक्ट करके मेरे पास भिजवाने की कोई जरूरत नहीं। —गुणमय





धीरेन्द्र कुमार दीक्षित

कहते हैं, मुगल सम्राट शाहजहाने आगरा में यमुना के दूसरे तट पर काले संगमरमर का एक मकबरा हूबहू सफेद ताजमहल के समान खुद अपने लिए बनवाने का सपना १६३७ ई. में देखा था। उसका वह शाही बरतान कभी पूरा न हो सका। किंतु लगता है, अब हम उस प्रेमी बादशाह के संगमरमरी सपने को ही कालिख से पोत देंगे।

मथुरा में यमुना नदी के ऊपर ४० किलोमीटर पर निर्माणाधीन ६० लाख टन क्षमता वाले विशाल तेलशोधक कारखाने (आइल रिफाइनरी) के चालू होने पर ताज के लिए खतरा पैदा हो जायेगा। कारखाना सोवियत रूस की सहायता से बन रहा है तथा १९८० तक उत्पादन शुरू कर देगा। वह जो धुआं और रासायनिक गैसों हवा में उगलेगा,

उससे भविष्य में न केवल ताज का संगमरमरी बदन स्याह होगा, बल्कि भय है कि उसका और आस-पास की अन्य भव्य इमारतों का संगमरमर क्षरित हो जायेगा।

भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण विभाग, जो कि देश के प्राचीन स्मारकों व पुरातत्त्वीय महत्त्व की इमारतों की रक्षा व रखरखाव के लिए उत्तरदायी है, मथुरा तेलशोधक कारखाने से उत्पन्न होने वाले खतरे से चिंतित है। उसे आशंका है कि रिफाइनरी से निकलने वाले प्रदूषणकारी तत्त्व ताज के संगमरमरी ढांचे को तो विरूप तथा विकृत करेंगे ही, इत्मादुद्दौला की कब्र, फतहपुर सीकरी, सिकंदरा और आगरा किले में प्रयुक्त लाल बलुए पत्थर (सैंडस्टोन) को भी प्रभावित करेंगे। मथुरा के प्राचीन मंदिर भी रिफा-

इनरी के स्थान से पास होने के कारण प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकेंगे। और उसका भय निराधार नहीं है।

मथुरा तेलशोधक कारखाना जिन प्रदूषक पदार्थों को जन्म देगा, उनमें से पेट्रोलियम वाष्प, फ्लू गैस (चिमनी से छोड़ी जाने वाली गैस) तथा कैटेलिस्ट कण (वारीक कण) प्रमुख होंगे। 'फ्लोटिंग रूफ स्टोरेज टैंकों' के उपयोग के बाद पेट्रोलियम वाष्पों का परिमाण न्यूनतम होगा। कम सांद्रता में इन वाष्पों की उपस्थिति पर्यावरण के लिए खतरा नहीं है। जो वारीक कण महीन चूर्ण के रूप में निकलेंगे, वे रासायनिक दृष्टि से मिट्टी की भांति निष्क्रिय पदार्थ होते हैं, सो वे प्रतिकूल प्रभाव नहीं डाल सकेंगे। सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण एवं खतरनाक प्रदूषक है चिमनी गैस, जो भट्ठियों से निकलेंगी व वायुमंडल को दूषित करेंगी।

जब कच्चे तेल (क्रूड आइल) का परिशोधन किया जाता है, तब सल्फर डाइ आक्साइड नामक घातक गैस भारी मात्रा में उत्पन्न होती है। कोयले के जलने से भी यह गैस पैदा होती है। वायुमंडल में उपस्थित नमी से मिलकर यह गैस सल्फ्यूरिक एसिड (गंधकाम्ल) में परिवर्तित हो जाती है और गंधकाम्ल संगमरमरी इमारतों का भयंकर दुश्मन है। वेनिस के राजप्रासाद, मूर्तियां व मूल्यवान कलाकृतियां गंधकाम्ल से युक्त हवा के कारण क्षरित हो रही हैं। वेनिस-वासी इसे 'पत्थर का कैंसर' कहते हैं। प्रदूषण की इस माया ने पेरिस के नोत्र-

नवनीत

दाम के मकरमुख परनालों से लेकर वाशिंगटन के लिंकन मेमोरियल तक मानव की अनेक उदात्ततम सृष्टियों को विनाश की कगार पर पहुंचा दिया है।

ई. पू. पांचवीं शताब्दी में एथेन्स में एक्रोपोलिस पर निर्मित पार्थेनॉन के देवालभ को बचाने के लिए यूनान सरकार ने आसपास की इमारतों को गरम करने के लिए काम में लाये जाने वाले ज्यादा गंधक की मात्रा वाले तेल के उपयोग पर हाल में प्रतिबंध लगा दिया है। अगर यह कदम कारगर न हुआ तो उस क्षेत्र में बसों-कारों के यातायात पर पाबंदी लगा दी जायेगी।

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद यूनान में जिस रफ्तार से कारखाने बने हैं और मोटरगाड़ियों का यातायात बढ़ा है, उससे पार्थेनॉन के संगमरमर का बिखरना अपरिहार्य ही था। १९७३ के बाद अरब देशों द्वारा तेल की कीमतें बढ़ायी जाने पर लोगों ने कम ग्रेड का, सस्ता तेल इस्तेमाल करना शुरू किया। उससे वायुमंडल में सल्फर डाइ आक्साइड गैस का परिमाण तीन गुना बढ़ गया है। एथेन्स के एक प्राध्यापक के शब्दों में 'पत्थर ऐसे पिघल रहे हैं, जैसे गरम फर्श पर बर्फ।' यूनान सरकार तो यहां तक सोच रही है कि यदि वायु-प्रदूषण पर नियंत्रण न पाया जा सका, तो सभी कलाशिल्पों व मूर्तियों को उठाकर एक्रोपोलिस के तल पर एक संग्रहालय में सुरक्षित रख दिया जाये तथा खाली जगहों पर फाइबर-ग्लास की बनी प्रतिकृतियां स्थापित कर दी जायें।

करवी

इस सबसे आप अनुमान कर सकते हैं कि 'संगमरमर' के 'कैन्सर' से ताज के लिए किताबतारा है।

मगर यह 'कैन्सर' होता कैसे है? इटली के प्रसिद्ध पाषाण-परिरक्षण-विशेषज्ञ डा. क्रिोर्गियो तोराका के शब्दों में, 'संगमरमर' बहुत ही सछिद्र होता है तथा कैल्शियम कार्बोनेट के बड़े-बड़े स्फटिकों (क्रिस्टल) से बना होता है। ये स्फटिक उसी पदार्थ के एक प्रकार के सीमेंट से जुड़े रहते हैं, जिसके इन चीनी के दानों से भी बारीक रहते हैं। प्रदूषणकारी रासायनिक तरब-विशेषतः सल्फर डाइ आक्साइड—हवा में स्थित नमी से मिलकर एक प्रकार का हल्का अम्ल तैयार करते हैं। यह गंधकाम्ल संगमरमर के छिद्रों में धीरे-से प्रवेश करता है और "सीमेंट" के लघु स्फटिकों को विघटित कर देता है, जिसके फलस्वरूप बड़े स्फटिक भी बिखर जाते हैं। विघटन या बिखराव की यह प्रक्रिया बहुत तेजी के साथ घटित होती है तथा इससे हुई क्षति अपूरणीय है।

संगमरमर की इस भेद्यता व संवेदन-शीलता के कारण ताजमहल के संदर्भ में, मयुरा पेट्रो-केमिकल कारखाना विवादास्पद तथा गहन चिंता का विषय बन गया है।

प्रदूषण की मात्रा तथा राष्ट्रीय स्मारकों पर उससे होने वाले प्रभाव का पता लगाने के लिए भारत में अनेक वैज्ञानिक अध्ययन-दलों ने अनुशीलन तथा विश्लेषण किया है। मयुरा रिफाइनरी परियोजना से संबद्ध पेट्रो-लियम मंत्रालय एवं भारतीय तेल निगम

(इंडियन आइल कापोरेशन) ने भी इस समस्या का करीब से अध्ययन किया है। निगम ने जुलाई १९७४ में डा. एस. वरद-राजन् की अध्यक्षता में एक विशेषज्ञ-समिति 'प्रदूषण से होने वाले प्रभाव को न्यूनातिन्यून रखने के लिए किये जाने वाले उपायों' का सर्वांगीण अध्ययन करने एवं इस विषय में सरकार को सुझाव देने के लिए गठित की थी। भारत सरकार का मौसम-विज्ञान विभाग, विज्ञान एवं टेक्नॉलाजी विभाग, नागपुर का राष्ट्रीय पर्यावरण अभियांत्रिकी अनुसंधान संस्थान (नीरी), देहरादून का इंडियन इंस्टिट्यूट ऑफ पेट्रो-लियम तथा उत्तर प्रदेश शासन भी इसमें शामिल थे।

भारतीय तेल निगम ने रिफायनरी से निकलने वाले सल्फर आक्साइड की मात्रा कम करने के लिए कुछ कदम उठाये हैं। मयुरा रिफाइनरी में अंकलेश्वर (गुजरात) के कच्चे तेल के स्थान पर बाम्बे हाइ के कच्चे तेल का इस्तेमाल किया जायेगा, जिससे सल्फर डाइ आक्साइड ६ टन प्रति घंटे के बजाय १ टन प्रतिघंटा उत्पन्न होगी। दग्ध गैसों को चिमनियों से निकलने के पूर्व 'स्कॉबिंग' (मार्जनिंग) प्रक्रिया द्वारा सल्फर डाइ आक्साइड से विरहित किया जायेगा। चिमनियों की ऊंचाई भी बढ़ाकर ८० मीटर कर दी जायेगी, ताकि प्रदूषणकारी गैस वायुमंडल में आसानी से बिखरे।

मौसम-विज्ञान विभाग ने मौसम-संबंधी आंकड़े एकत्र करने के लिए तथा यह देखने

हिंदी डाइजेस्ट

के लिए कि आगरा क्षेत्र में रिफाइनरी से निकलने वाली प्रदूषणकारी सल्फर डाइ आक्साइड गैस का कितना भूमितल-जमाव (ग्राउंड-लेवल कंसंट्रेशन) होगा, उस भाग में इलेक्ट्रानिक उपकरणों की सहायता से गहन अनुसंधान किया है। लगभग यह सारा शोध अन्य देशों में विकसित 'गणितीय ढांचों' (मैथेमैटिकल माडल) तथा स्थिरांकों (कान्स्टेन्ट) के उपयोग पर आधारित है। स्थानीय तापक्रम तथा जल-वायु-संबंधी स्थितियों को ध्यान में रखकर इन अनुसंधानों की सत्यता प्रमाणित करने की दृष्टि से भी शोधकार्य किया जा रहा है, ताकि शोध-परिणाम भारतीय परिस्थितियों में लागू हो सकें।

पुरातत्त्व सर्वेक्षण तथा मौसम-विज्ञान विभागों द्वारा की गयी खोजों से पता चला है कि ताज को फिलहाल खतरा १३ मेगा-वाट क्षमता के दो ताप-विजलीघरों, रेल्वे शंटिंग यार्ड तथा लगभग २५० फाउंड्रियों (ढलाई-कारखानों) से है, जो इस भव्य स्मारक के समीप स्थित हैं। ढलाई-कारखाने कोयला इस्तेमाल करते हैं, जो भारी मात्रा में सल्फर डाइ आक्साइड गैस उगलता है। मोटर-वाहनों व घरेलू चूल्हों से होने वाले प्रदूषण ने समस्या को और जटिल बना दिया है। आगरा शहर के वायुमंडल में एक घन मीटर में ८.५ मिलिग्राम सल्फर-डाइ आक्साइड जमा हो गयी है, जबकि स्वीकृत मानदंड के अनुसार २.५ मिलिग्राम से ज्यादा नहीं होनी चाहिये।

नवनीत

फाउंड्रियों की चिमनियों से निकलने वाली कालिख भी संगमरमर का रंग बदल रही है।

इन तथ्यों के आधार पर उत्तर प्रदेश सरकार ने ढलाई-कारखानों को शहर के बाहर काफी दूरी पर हटा देने के लिए आवश्यक आदेश दिया है। फाउंड्रियों को हटाने का खर्चा तथा मालिकों की नुकसान-भरपाई का भार राज्य-सरकार वहन करेगी।

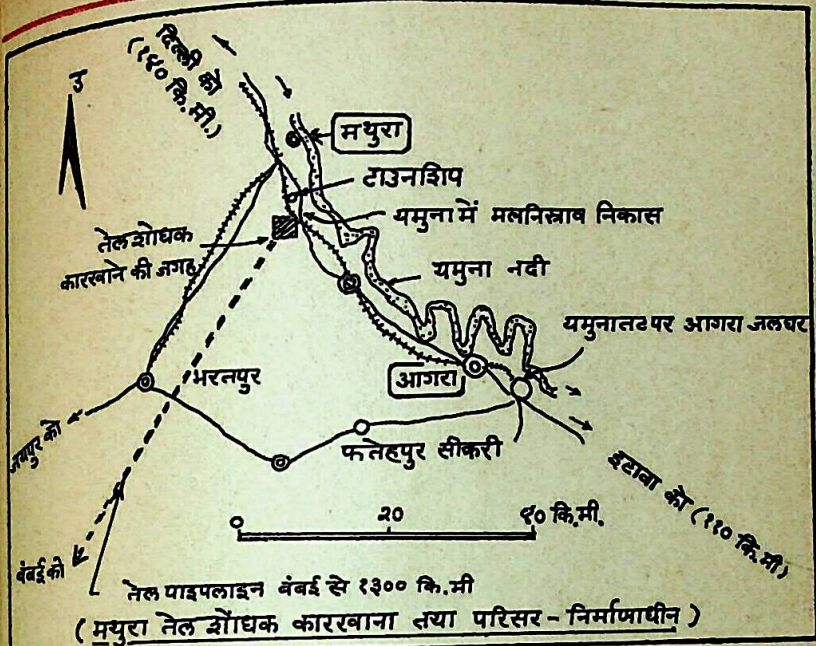
सल्फर डाइ आक्साइड व उसके उत्पन्न यौगिकों से संगमरमरी स्मारकों पर होने वाले दुष्प्रभावों के बारे में पर्याप्त तकनीकी जानकारी इटली को है। इसलिए भारत सरकार ने दो वर्ष पूर्व इटली की टेक्नेको नामक अर्ध-सरकारी पर्यावरण-इंजीनियरी फर्म के साथ समझौता किया। टेक्नेको को आगरा आकर मामले का स्थलीय अध्ययन (आन द स्पॉट स्टडी) करने को कहा गया। उसके कार्यक्षेत्र में निम्नलिखित बातें समाविष्ट की गयीं :

१. प्रारूपिक (टिपिकल) मौसम-स्थितियों का वातावरण प्रदूषण की दृष्टि से निर्धारण तथा खासकर आगरे में प्रदूषण (उत्सर्जनों) के भूमितल पर जमाव (ग्राउंड लेवल कंसंट्रेशन) का आकलन;

२. आगरा-क्षेत्र में वर्तमान प्रदूषण-स्तर का निर्धारण तथा स्मारकों के परिरक्षण की वर्तमान स्थिति।

टेक्नेको के विशेषज्ञों ने आगरा आकर हवा के नमूने लिये और ताजमहल के संगमरमर के टुकड़े व लाल बलुआ पत्थर इकट्ठे किये। इन पत्थर के नमूनों की

फरवरी



तुलना उन खदानों के ताजा पत्थरों से की गयी, जहाँ से ये लाये गये थे।

अपने अंतिम प्रतिवेदन में टेक्नेको ने कहा है कि प्रस्तावित रिफाइनरी से होने वाले प्रदूषण से ताज व आगरा-मथुरा क्षेत्र के अन्य ऐतिहासिक स्मारकों को खतरों की कोई संभावना नहीं है। परंतु उससे इन निष्कर्षों पर कई संघटनों के विशेषज्ञों का विश्वास नहीं है।

असल बात यह है कि भारत सरकार के मौसम-विभाग ने और टेक्नेको ने अलग-अलग मौसम-स्थितियों में सल्फर डाइ आक्साइड की मात्रा की गणना रिफाइनरी-

स्थल से भिन्न दूरियों पर की है। मौसम-विभाग ने इससे लिए मौसम-परिवर्तन का भी प्रभाव ध्यान में रखा है। इसके अनुसार, ५ टन प्रति घंटा सल्फर डाइ आक्साइड उत्सर्जन-दर पर आगरा में अल्पकालिक जमाव अनुमानतः १०० ग्राम से अधिक प्रति घन मीटर तथा दीर्घकालिक जमाव ४० माइक्रोग्राम प्रति घन मीटर होगा। ये आंकड़े सामान्य सर्दियों के दिनों के लिए हैं। बाद में जाने किन रहस्यमय कारणों से सुविधाजनक कल्पनाओं के आधार पर उपर्युक्त अंकों के दसवें भाग जितने या उससे भी न्यून आंकड़े पेश किये गये।

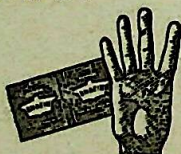
ओह माँ... !
मैं स्टेज पर कैसे जाऊँ!
सर फटा जा रहा है।

मेरी मानो तो
एनासिन ले लो।



जल्द आराम पाने के लिए तेज़ असर और विश्वसनीय एनासिन लीजिए

तेज़ असर-एनासिन में वह दर्द-निवारक दवा ज्यादा है, जिस की दुनिया-भर के डॉक्टर सिफ़ारिश करते हैं। इसी लिए एनासिन दर्द से जल्द आराम दिलाती है। विश्वसनीय-एनासिन आपके डॉक्टर की दवाई की तरह दवाओं का नपा-तुला सम्मिश्रण है। इसी लिए एनासिन पर लाखों लोगों को पूरा भरोसा है। एनासिन बदन के दर्द, दाँत के दर्द, सर्दी-जुकाम और फ़्लू की पीड़ा से भी जल्द आराम दिलाती है।



भारत की सब से लोकप्रिय दर्द-निवारक दवा
जेफ़्री मैन्स के एनासिन विभाग की ओर से

Regd. TM

A 23-1111

मौसम-विभाग व टेक्नेको दोनों की बोंबें दिल्ली के दस वर्ष के वायु-आंकड़ों पर आधारित हैं। टेक्नेको ने पाया कि अपेक्षा-कृत कम कालावधियों के लिए भी अव-लोकित आगरा के हवा के आंकड़े दिल्ली के आंकड़ों से नितांत भिन्न हैं। लंबे अरसे के दौरान जब हवा की गति ६ किलोमीटर प्रति घंटा से कम हो, गंधक के आक्साइडों का कम प्रभाव होता है, इसकी टेक्नेको ने ज़ेखा कर दी। विशेषज्ञों ने यमुना-घाटी में हवाओं के सरणि-प्रभाव (चैनलिंग इफेक्ट) तथा ताज पर उसके परिणाम की भी अव-हेतना की। प्रदूषकों के जमावों का सही आकलन करने के लिए आवश्यक उत्क्रमण-आंकड़ों (इन्वर्शन डेटा) की आवश्यकता, बर्धन व परिमाण का भी उन्होंने विचार नहीं किया। ऐसी दशा में मौसम-विभाग व टेक्नेको के प्रतिवेदनों को संदिग्ध तथा वृत्त्युष्ण ही मानना पड़ता है।

मथुरा-आगरा रोड पर अभी से कार-वानों का बहुत जमाव हो गया है। मथुरा का तेलशोधक कारखाना आने के बाद सह-गोनी छोटे उद्योग और बढ़ेंगे। इसका दूर-गामी परिणाम होगा यातायात, नगरीकरण तथा औद्योगीकरण की समस्याओं में वृद्धि। ऐसा कि स्वाभाविक है, उससे पर्यावरण-प्रदूषण की दर बेतहाशा बढ़ेगी। विमानों और गुब्बारों पर किये गये प्रयोगों से सिद्ध हुआ है कि प्रदूषणकारी गैसों सैकड़ों मील लंबी यात्रा कर सकती हैं तथा चिमनी की ऊंचाई बढ़ाने से विशेष फर्क नहीं पड़ता।

१९७९

बल्कि इससे अम्ल-वृष्टि (एसिड रेन) की समस्या बढ़ जाती है, विशेषतः वर्षाऋतु में।

लगभग सभी प्रमुख पर्यावरण-विशेषज्ञ इस बारे में एकमत हैं। डा. जी. टोराका यूनेस्को के इंटरनेशनल सेंटर फार कंजर्वेशन, रोम (इटली) से संबद्ध हैं। उनका दृढ़ मत है—‘संगमरमर के मामले में सुरक्षित सहन-सीमा जैसी कोई चीज नहीं है; क्योंकि सल्फर डाइ आक्साइड की अत्यल्प मात्रा भी संक्षरण के लिए पर्याप्त है।’

आंध्र विश्वविद्यालय (वाल्टेयर) के पर्यावरण अभियांत्रिकी विभाग के प्रमुख प्रो. टी. शिवाजी राव का कहना है—‘सल्फर डाइ आक्साइड के संभावित प्रभावों के बारे में जो मानक विदेशों में विकसित किये गये हैं, वे भारतीय परिस्थितियों में लागू नहीं हो सकते। सरकार को यह भ्रम है कि १०-२० करोड़ रुपये की लागत से प्रदूषण-नियंत्रक-संयंत्र या उपकरण बैठाकर इस समस्या से छुटकारा पाया जा सकता है। सर्वथा निर्दोष उपकरण भी आकस्मिक दुर्घटनाओं, यांत्रिक गड़बड़ियों या मानवीय त्रुटियों-उपेक्षाओं के शिकार हो सकते हैं। तेलशोधक कार-खानों में ऐसी घटनाएं या विस्फोट असा-मान्य बात नहीं हैं। ताज-जैसे स्मारक के लिए यह खतरा मौल लेना बेहद महंगा पड़ सकता है।’

नागपुर के राष्ट्रीय पर्यावरण अभि-यांत्रिकी अनुसंधान संस्थान (नीरी) के निदेशक डा. बी. वी. सुंदरेशन, जो सरकारी

[शेष पृष्ठ ११८ पर]

आइये, देखें कि आप बंटवारा

प्रिय पाठक

पहले यह इश्तहार था और अक्ल व सूझ-बूझ का इम्तहान भी। अब यह इश्तहार तो नहीं है, मगर अक्ल और सूझबूझ का इम्तहान जरूर है।

इन दो पृष्ठों पर आप कुछ आकृतियां देख रहे हैं। मान लीजिये, ये खेतों के नक्शे हैं। इन खेतों का बंटवारा आपको इस तर्क करना है कि प्रत्येक खेत एक-से क्षेत्रफल और एक-सी आकृति वाले दो हिस्सों में बंट जाये।

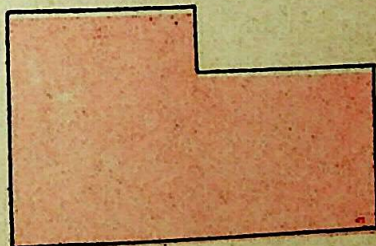
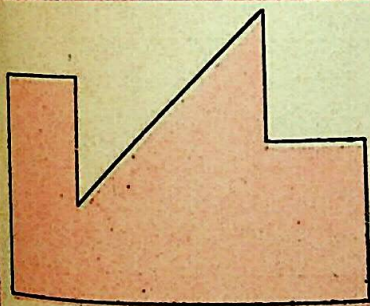
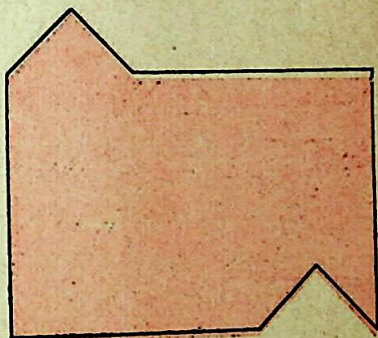
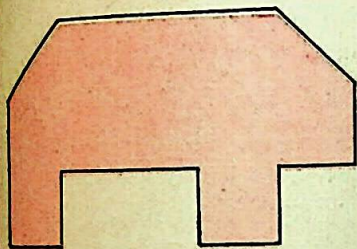
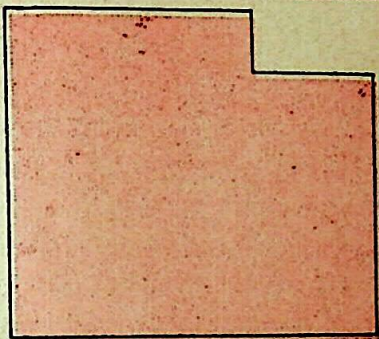
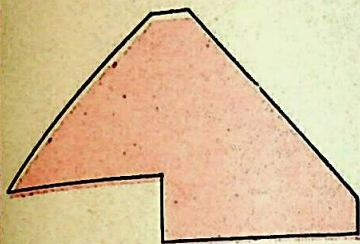
इस पृष्ठ के पहले कालम में ऊपर से पहली व दूसरी आकृतियां उदाहरण के रूप में हैं—पहली आकृति को दूसरी आकृति में कटावदार रेखा द्वारा समविभक्त किया गया है।

क्या शेष सात आकृतियों को आप सम-विभक्त करेंगे? प्रयत्न कीजिये। एक महीने का समय आपके पास है।

उत्तर मार्च १९७९ के नवनीत में देखें।

यह प्रश्न हमने ६,००० पदार्थों का उत्पादन करने वाली ब्रिटिश कंपनी बायर के एक इश्तहार से लिये हैं; इसीलिए हमने आरंभ में ही कहा कि पहले यह इश्तहार था।

करने में कितने कुशल हैं....



[पृष्ठ ११५ का शेष]

विशेषज्ञ-समिति के सदस्य भी हैं, अधिक आशावान नहीं हैं। उनके अनुसार—‘निर्माणाधीन रिफाइनरी को ताज की पवनाभिमुख दिशा में स्थित मथुरा से हटाकर फीरोजाबाद-इटावा क्षेत्र में अन्य किसी ऐसे स्थान पर जो हवा-ओट दिशा में हो, स्थापित करना अभी भी समझदारी की बात होगी। विशेषज्ञ-समिति ने सरकार से यह सिफारिश इसलिए नहीं की, क्योंकि समिति के कार्यक्षेत्र में इसका उल्लेख नहीं था।’ डा. सुंदरेशन का विचार है कि रिफाइनरी बनने की प्रारंभिक अवस्था में ही यदि उनकी संस्था के वैज्ञानिकों ने सरकार को वस्तु-स्थिति से अवगत कराया होता, तो शायद आज यह नाबत न आती।

कुल ३०० करोड़ रु. की लागत से बनने वाले इस तेलशोधक कारखाने पर सरकार अभी तक कुछ राशि खर्च कर चुकी है तथा रिफाइनरी को अब मथुरा से हटाने का उसका इरादा नहीं दीखता है। इसलिए एक अंतरराष्ट्रीय कार्रवाई समिति बनायी गयी है, जो दूसरा स्थल चुनने व वर्तमान स्थान से रिफाइनरी हटाने के लिए सरकार पर दबाव डालेगी। अलीगढ़ की ‘नेचर कंजर्वेशन सोसायटी’ ने करीब एक हजार गवेषकों व बुद्धिजीवियों के हस्ताक्षरों सहित एक स्मरण-पत्र राष्ट्रपति एवं पेट्रोलियम मंत्री को देने का निश्चय किया है। यह आपको राजनैतिक कार्रवाई प्रतीत हो सकती है, मगर वाम्बे हाइड्रो कच्चे तेल को १,३००

नवनीत

किलो मीटर दूर मथुरा ले जाकर शोधने का फैसला भी तो राजनैतिक फैसला ही है।

सुप्रसिद्ध पक्षी-विशेषज्ञ डा. सालिम अली के अनुसार—‘ताज को निकट भविष्य में जिन खतरों का सामना करना पड़ सकता है, उनकी विकट गंभीरता को ध्यान में रखकर प्रदूषण-संबंधी प्रश्न पर पुनर्विचार आवश्यक है। प्रदूषण-नियामक-यंत्रों में भी मानवीय उपादान का योगदान है ही तथा इस यंत्र-मालिका के न विगड़ने की गारंटी तो मैं ही क्या, कोई भविष्यवक्ता या ज्योतिषी भी नहीं दे सकता।’ डा. अली का यह भी कहना है—‘इस कारखाने से भरतपुर पक्षी अभयारण्य पर बहुत बुरा असर पड़ेगा और साइबेरियन क्रेन (साय पक्षी) के लगभग लोप हो जाने की संभावना है। घाना झील (भरतपुर के पास) प्रदूषित हो रही है। प्रकृति-प्रेमियों, पक्षी-दर्शकों तथा सौंदर्य-बोध रखने वाले सभी व्यक्तियों के लिए यह चिंता का विषय है।’

दिसंबर १९७६ में ‘सांस्कृतिक वस्तुओं के परिरक्षण से संबंधित राष्ट्रीय सेमिनार’ उस्मानिया विश्वविद्यालय में हुआ था और दिसंबर १९७७ में हैदराबाद के इंस्टिट्यूट ऑफ इंजीनियर्स में ‘पर्यावरण पर विकास-कार्यों के प्रभाव विषयक अखिल भारतीय सेमिनार’ हुआ था। इनमें भाग लेने वाले सभी वैज्ञानिकों ने रिफाइनरी को मथुरा से हटाकर अन्यत्र स्थापित करने की जोरदार प्रार्थना सरकार से की।

प्रो. शिवाजी राव का कहना है—‘पर्या-

फरवरी

बलीय पुरखा के लिए व्यापक कानून के जगह में प्रदूषण-नियंत्रण की सफलता की जाशा दुराशा मात्र है।' उन्होंने इस पर भी हेंद प्रकट किया है कि विशेषज्ञ-समिति ने नष्टोद्भनआक्साइडों, कार्बनमोनोआक्साइड, कार्बनिक अम्ल, सड़न के जैविक अभि-र्जा व सूक्ष्मकणों से होने वाले प्रभाव का विस्लेषण नहीं किया। विशेषज्ञ-समिति की रिपोर्ट में ताज के परिसर में हरियाली (ग्रीन बेल्ट) लगाने, एक प्रदूषण-मापक वायुनिक मॉनिटरिंग नेटवर्क दिन-रात चलाने, पावर स्टेशनों एवं फाउंड्रियों में कोयले की जगह तेल इस्तेमाल करने तथा १ टन प्रति घंटा सल्फर डाइआक्साइड वाले कूड़ तेल का उपयोग करने की कानूनी बाधता लागू करने की सिफारिशें हैं।

सारांश यह कि ताज को अक्षुण्ण रखने के लिए रिफानइरी का मथुरा से हटाया जाना वांछनीय ही नहीं, नितांत आवश्यक

है। पिछले दिनों अमरीका के मेरीलैंड में व स्काटलैंड में नागरिकों ने वहां पेट्रोलियम-उद्योगों की स्थापना का सफल प्रतिकार किया। हाल ही में, रेवासा उर्वरक कार-खाने के विरोध में अलीबाग (महाराष्ट्र) के १४ गांवों ने सफल संघर्ष किया। भविष्य में जब ताज के सौंदर्यभ्रष्ट होने के साथ ही पीने का पानी भी प्रदूषित हो जायेगा, तब आगरा-वासी भी ऐसा कदम उठाने को मजबूर होंगे।

अगर समय रहते ताज की रक्षा न की गयी तो इस स्मारक-सम्राट् का नूर बिखर जायेगा। वारेन हार्स्टिस् एवं विलियम बेंटिक ताज को नीलाम करना चाहते थे; पर ब्रिटिश शासन के हस्तक्षेप की बदौलत ताज तब बच गया था। अब क्या यह कलंक स्वतंत्र भारत अपने माथे पर लगायेगा?

—विश्वेश्वरय्या रीजनल इंजी. कालेज,

नागपुर-४४० ०११



जन्मजात लेखक

पुस्तकों के बारे में बातें करते हुए एडगर ब्रुक, बर्ट्रेण्ड रसल से कहने लगे—'जब मैं आठ साल का था, तो मैंने पाया कि पढ़ने में कितना बड़ा आनंद है। तब मुझे यह नहीं पता था कि पुस्तकों के लिखने वाले भी होते हैं। फिर जब मैं दस साल का हुआ, तो मैंने जाना कि पुस्तक के पहले पृष्ठ पर जो नाम छपा होता है, वह उसके लिखने वाले का होता है।

रसल ने उत्तर दिया—'बहुत दिलचस्प बात बतायी आपने। और क्या आपको पता है कि जब मैं दस साल का था, तो मुझे एक ऐसे आदमी का परिचय मिला, जिसने कोई भी पुस्तक नहीं लिखी थी और वह हमारा माली था! मुझे बड़ी हैरानी हुई। शायद आपने सुना होगा कि मैंने अपनी पहली पुस्तक छह साल की उम्र में लिखी थी। यद्यपि वह बहुत अच्छी नहीं थी, फिर भी पुस्तक तो थी।'।



मेमिस्ट्राटण मित्तल

मनुष्य छोटा है
छोटा ही सुंदर है

‘आजकल यह विश्वास जोरों से चल पड़ा है कि सार्वत्रिक समृद्धि ही शांति की मजबूत बुनियाद बन सकती है। शांति की दिशा में बढ़ने के लिए संपत्ति की सड़क पकड़नी होगी। इस धारणा में दोहरा आकर्षण है—एक तो यह कि इसने शांति की तलाश के लिए नैतिकता अथवा त्याग-बलिदान को अनावश्यक घोषित कर दिया है; और दूसरा यह कि जिस विज्ञान और प्रौद्योगिकी का विकास आज हमने कर लिया है, उसके सहारे हम शांति और समृद्धि के मार्ग पर बढ़ सकते हैं। यह धारणा गरीबों को यह संदेश देती है कि उस मुर्गी का पेट चीरने के लिए अधीर न होओ जो समय आने पर निश्चय ही तुम्हारे लिए सोने के अंडे देगी; और अमीरों को यह संदेश कि यदि तुम समय-समय पर गरीबों की नवनीत

मदद करते रहने की बुद्धिमत्ता दिखाते रहे तो और भी अधिक मालदार हो जाओगे।’

आधुनिक अर्थ-व्यवस्था पर यह करार व्यंग्य किया है स्वर्गीय ई. एफ. शूमाकर ने अपनी विश्वविख्यात पुस्तक ‘स्माल इव ब्यूटिफुल’ में। वे यह कहना चाहते हैं कि शांति के लिए मनुष्य की मूलभूत अच्छाई और नैतिक मूल्य अनिवार्य हैं, इस तथ्य पर परदा डालकर आधुनिक अर्थशास्त्र ने मनुष्य को वैज्ञानिक तर्कबद्धता और तकनीकी क्षमता के जाल में उलझा दिया है।

वे कहते हैं—‘गांधी इन तथाकथित स्वयंपूर्ण व्यवस्थाओं का खंडन किया करते थे, जिनमें मनुष्य को भला मनुष्य होने की आवश्यकता ही नहीं रहेगी।’ उन्हें इस कारण है कि गांधी की बात पर ध्यान देने के बजाय हमारा झुकाव इस शताब्दी के सर्वाधिक

प्रभावशाली अर्थशास्त्री लार्ड मेनार्ड केन्स की ओर है, जिन्होंने कहा था—‘वह दिन दूर नहीं, जब प्रत्येक व्यक्ति मालदार हो जायेगा, और..... तब एक बार फिर हम साधनों की अपेक्षा साध्यों को और उपयोगिता की अपेक्षा अच्छाई को महत्त्व प्रदान करेंगे। लेकिन सावधान ! अभी वह समय नहीं आया है। अगले सी साल तक हमें स्वयं इस मुताबे में रहना और दूसरों को रखना होगा कि जो उचित है वह अनुचित है, और जो अनुचित है वह उचित है; क्योंकि अनुचित उपयोगी है तथा उचित में उपयोगिता नहीं है। अभी और कुछ समय हमें ईर्ष्या, सूद-बोरी तथा सतर्कता की उपासना करनी होगी; क्योंकि वे ही हमें आर्थिक अनि-सर्वाता की सुरंग में से प्रकाश की ओर ले जा सकते हैं।’

इस धारणा को शूमाकर तीन पहलुओं से परखते हैं :

१. क्या सार्वत्रिक समृद्धि संभव है?
 २. क्या ‘खुद मालदार बनने’ के भौति-ज्ञावादी दर्शन के आधार पर सार्वत्रिक समृद्धि की प्राप्ति संभव है?
 ३. क्या यही एक मार्ग शांति की ओर जाता है?
- प्रत्येक व्यक्ति अंततः दौलत में डूब जाये, इस सीमा तक असीम आर्थिक वृद्धि हो पाना शूमाकर की दृष्टि में दो कारणों से संदिग्ध है :
१. बुनियादी साधनों की उपलब्धि की एक सीमा है;
 २. उस वृद्धि की प्रक्रिया में प्रकृति के

साथ भारी मात्रा में जो जोर-जबर्दस्ती होती है, उसे सहने में पर्यावरण असमर्थ है।

यह तो हुआ भौतिक पहलू। इसके अलावा, समृद्धि के नाम पर खड़ी की गयी आधुनिक अर्थ-व्यवस्था के नैतिक पहलू की भी आलोचना शूमाकर करते हैं :

‘आधुनिक व्यवस्था लोभ की प्रबल वासना से संचालित है तथा ईर्ष्या में ओत-प्रोत है। ये उसके आनुवंशिक लक्षण नहीं हैं, बल्कि उसकी विस्तारमूलक सफलता के मूल कारण हैं। प्रश्न यह है कि क्या ये कारण देर तक प्रभावकारी बने रह सकेंगे, अथवा क्या इनके भीतर आत्मविनाश के बीज विद्यमान हैं? यदि लोभ और ईर्ष्या सरीखे मान-वीय विकारों का व्यवस्थित रीति से विकास किया गया, तो उसका अपरिहार्य परिणाम होगा—बुद्धि का विनाश।’

यहां हम देखते हैं कि शूमाकर श्रीकृष्ण की ‘सम्मोहात् स्मृतिविभ्रमः, स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात् प्रणश्यति’ वाली भाषा का इस्तेमाल करते हैं :

‘लोभ और ईर्ष्या से परिचालित मनुष्य वस्तुओं को उनके मूल रूप में अर्थात् उनके बहुपक्षीय और संपूर्ण स्वरूप में नहीं देख पाता और उसकी सफलता विफलता में पलट जाती है।’

यह बात प्रतिदिन कही जाती है कि यदि लोग अपने वास्तविक हितों को पहचान सकें, तो हमारी सब समस्याएं हल हो सकती हैं। शूमाकर पूछते हैं—‘आखिर लोग वास्तविक हितों को पहचान क्यों नहीं पाते?’ और

हिंदी डाइजेस्ट

स्वयं ही उत्तर देते हैं—‘या तो लोगों की बुद्धि लोभ-ईर्ष्या के कारण मंद पड़ गयी है, या उन्हें यह विश्वास है कि उनके असली हित कहीं अन्यत्र हैं और एकदम भिन्न हैं।’ अस्तित्व के खतरे की शंका

शूमाकर मानते हैं—‘एक सीमित प्रयोजन की दिशा में तो “वृद्धि” संभव है; किंतु असीम और अनिश्चित “वृद्धि” हो नहीं सकती।’ यहां वे गांधीजी का हवाला देते हैं—‘पृथ्वी प्रत्येक मनुष्य की आवश्यकता की पूर्ति के लिए तो सुपर्याप्त सामग्री प्रदान करती है; लेकिन वह प्रत्येक व्यक्ति के लोभ की पूर्ति नहीं कर सकती।’ आवश्यकताओं के विकास और विस्तार को शूमाकर अकल-मंदी की निशानी नहीं समझते; बल्कि उसे वे स्वतंत्रता और शांति के सर्वथा प्रतिकूल मानते हैं। उनका कहना है—‘आवश्यकता में होने वाली प्रत्येक वृद्धि से बाह्य शक्तियों पर मनुष्य की निर्भरता बढ़ जाती है। ये बाह्य शक्तियां उसके बस में तो होती नहीं, इसलिए उसके भीतर अस्तित्व के खतरे का भय उत्पन्न हो जाता है। आवश्यकताएं घटाने के द्वारा ही ये तनाव कम किये जा सकते हैं। अन्यथा ये तनाव संघर्ष और युद्ध को जन्म देते हैं।’

प्रथम मूर्धन्य गांधीवादी अर्थशास्त्री डा. जे. सी. कुमारप्पा की भांति शूमाकर भी ‘स्थिरता की अर्थनीति’ (इकॉनामी आफ़ परमानेन्स—कुमारप्पाजी की एक पुस्तक का शीर्षक) के हिमायती हैं। वे कहते हैं:

‘स्थिरता की अर्थनीति और शांति के नवनीत

लिए हमें विज्ञान और प्रौद्योगिकी को वह पैमाने पर सुसंस्कृत बनाना होगा, ताकि वे विवेक के लिए अपना द्वार खोल सकें और अपने ढांचे में विवेक को सचमुच स्थान दे सकें। नित्य विशाल से विशालतर होती जाने वाली मशीनें, उनसे जुड़ा हुआ आर्थिक शक्ति का विशालतर केंद्रीकरण, तथा वातावरण के प्रति निरंतर बढ़ती हुई हिंसा ये प्रगति के चिह्न नहीं हैं। ये विवेक के प्रतिपक्षी हैं। विवेक की मांग है कि विज्ञान और प्रौद्योगिकी को जैविक, शालीन, बहि-सक, गरिमाशाली और सुंदर (व्यवस्था) की दिशा दी जाये। हमें प्रौद्योगिकी में नयी क्रांति लानी होगी, ताकि वह खोनों और यंत्रों की विनाशकारी प्रवृत्ति को उबट सके, जो कि आज हम सबके अस्तित्व को चुनौती दे रही है।’

शूमाकर विज्ञानियों और प्रौद्योगिकी-विदों से ऐसी प्रविधियों और उपकरणों की मांग करते हैं, जो ‘इतने सस्ते हों कि सचमुच प्रत्येक व्यक्ति की पहुंच के भीतर हों, छोटे पैमाने पर संचालन के लिए उपयुक्त हों, तथा मनुष्य की सृजनशीलता की अपरि-हार्यता से मेल खाते हों। इन तीनों गुणों से अहिंसा और प्रकृति के साथ मनुष्य का वह संबंध उत्पन्न होगा, जिससे स्थिरता उपजती है।’

वे बताते हैं:

‘गांधी की चिंता का मूल विषय यही था (गांधी का कहना था कि) “मैं चाहता हूँ कि मेरे देश के कोटि-कोटि मूलजन स्वस

करवी

बौर प्रसन्न तथा आध्यात्मिक दृष्टि से
विकसित हों। यदि हमें मशीनों की
आवश्यकता हो, तो हम निश्चय ही उनका
निर्माण करें। ऐसी प्रत्येक मशीन के लिए
स्थान है, जो मनुष्य-मात्र के लिए सहायक
निष्ठ हो। लेकिन उन मशीनों के लिए
कोई स्थान नहीं होना चाहिये, जो शक्ति को
बंद हाथों में केंद्रित कर दें और जन-समाज
को बेकार बना डालें, अथवा मशीन की सार-
जबाल करने वाले कारीगर मात्र बना छोड़ें।”

‘आन्दुअस हक्सले ने कहा था कि यदि
अविष्कारक और इंजीनियर यह लक्ष्य
नीकार कर लें कि वे जन-साधारण को
ऐसी मशीनें बनाकर देंगे, जिनके द्वारा लोग
‘लाभकारी तथा वस्तुतः महत्त्वपूर्ण कार्य
कर सकें, अफसरशाही से छुटकारा पा
जें, स्वतंत्र रोजगार कर सकें अथवा किसी
लाभत सहकारी समूह के सदस्य बनकर
रोजगार और स्थानीय बाजार प्राप्त कर
जें..... तो इस अलग ढंग की प्रौद्योगिकी के
अन्तर्गत आवादी का उत्तरोत्तर विकेंद्री-
करण होगा, भूमि सुलभ हो जायेगी, उत्पा-
दन के साधनों पर तथा राजनैतिक-आर्थिक
प्रतापराम आदमी का स्वामित्व स्थापित
होगा..... अधिक मानवीय संतोष देने वाले
जीवन, सच्चे स्वशांसी लोकतंत्र और स्वतं-
त्रता का वरदान अधिक लोगों को प्राप्त
होगा.....।”

श्रमाकर चाहते हैं कि उत्पादन के उप-
करण (औजार व यंत्र) इतने सस्ते हों कि
जुं बरीदना आम आदमी के लिए संभव

हो, उनकी कीमत का समाज के आय-स्तर
के साथ एक निश्चित अनुपात हो। मशीन
की कीमत उससे (मशीन से) होने वाले
वार्षिक उत्पादन की आय से अधिक नहीं
होनी चाहिये। उनकी दृष्टि में, ‘यह बात
बहुत स्पष्ट है कि छोटी इकाइयों में संघटित
व्यक्ति भूमि के अपने टुकड़े की अथवा अन्य
नैसर्गिक संसाधनों की देखभाल अनाम कंप-
नियों या समूचे ब्रह्मांड को अपना जायज
अधिकार-क्षेत्र समझने वाली, सत्तादर्प से
पीड़ित सरकारों की अपेक्षा कहीं अच्छी
तरह करेंगे।’

इतना ही नहीं, उत्पादन के तरीके और
उपकरण ऐसे होने चाहिये कि ‘मानवीय
सृजनशीलता’ के लिए प्रर्यप्ति गुंजाइश रहे।
यदि काम के ढर्रे में ‘मानवीयता का कोई
स्थान ही न हो और काम महज यांत्रिक
क्रिया बन जाता हो, तो मनुष्य का क्या
होगा ? पोप पायस ग्यारहवें ने कहा था
कि “जिस शरीर-श्रम को ईश्वर ने मनुष्य
की काया और आत्मा के लिए हितकर कहा
था, उसे नाना रीतियों से विकृति का साधन
बना डाला गया है; कारखाने में से जड़
पदार्थ तो परिष्कृत होकर निकलता है, किंतु
मनुष्य भ्रष्ट और पतित हो जाता है।”

प्रश्न यह है कि हम मशीन की दासता में
फंस कैसे गये ? श्रमाकर का उत्तर है :

‘लोभ रूप पाप ने हमें मशीन की शक्ति
के हवाले कर दिया है। यदि आधुनिक
मनुष्य पर लोभ सवार न होता और यदि
ईर्ष्या लोभ को भरपूर सहारा न देती, तो

हिंदी डाइजेस्ट

यह कैसे संभव था कि उच्चतर "जीवन-स्तर" प्राप्त हो जाने पर भी अर्थ-परायणता की धुन कम न हो? वस्तुतः जो समाज समृद्धतम है, वे ही अपने आर्थिक लाभ के लिए सर्वाधिक हृदयहीनता अपनाते हैं। ऐसा क्यों है कि प्रायः सर्वत्र ही समृद्ध पूंजीवादी अथवा समाजवादी समाजों के शासक श्रम को मानवीय बनाने की दिशा में कार्य करने से इन्कार करते हैं? ज्यों ही यह दलील पेश हुई कि इससे "जीवन-यापन-स्तर" में कमी आ जायेगी, यह विषय समाप्त कर दिया जाता है। जब ये तथ्य पेश किये जाते हैं कि ऐसा आत्मनाशी, निरर्थक, यांत्रिक, नीरस और अबौद्धिक श्रम लाजमी तौर पर पलायनवाद अथवा आक्रामकता को जन्म देता है, तथा "रोटी और सर्कस" चाहे कितनी बड़ी मात्रा में उपलब्ध हों उनसे क्षतिपूर्ति नहीं होती, तब न तो इन तथ्यों से इन्कार किया जाता है न इन्हें स्वीकार ही किया जाता है, वरन् मौन का षड्यंत्र रच लिया जाता है.....।'

विवेक को तलाश

शूमाकर की दृष्टि में शांति और सुख के लिए मानवीय विवेक अनिवार्य है। वे प्रश्न करते हैं—'विवेक क्या है? कहां रहता है?' और स्वयं ही उत्तर देते हैं—'उसका एकमात्र निवास-स्थान व्यक्ति के भीतर है। उस विवेक को पाने के लिए लोभ-द्वेष सरीखे मालिकों के चंगुल से मुक्त होना अनिवार्य है।'

वे मानते हैं कि जो जीवन आध्यात्मिक लक्ष्यों से विमुख और मूलतः भौतिक प्रयों-नवनीत

जनों की पूर्ति को समर्पित होता है, वह खोखला और बुनियादी तौर पर असंतोषकारी होता है। 'ऐसा जीवन अनिवार्यतः मनुष्य को मनुष्य के विरुद्ध और राष्ट्र को राष्ट्र के विरुद्ध खड़ा कर देता है। इसका कारण यह है कि मनुष्य की आवश्यकताएं असीम होती हैं तथा असीम की प्राप्ति केवल आध्यात्मिक क्षेत्र में हो सकती है, भौतिक जगत में कदापि नहीं।'

शूमाकर की मान्यता है कि शांति की स्थापना आर्थिक बुनियाद पर नहीं हो सकती; क्योंकि आधुनिक अर्थ-व्यवस्था मनुष्य के चरित्र में लोभ और द्वेष के व्यवस्थित विकास पर आधारित है, और ये ही चीजें संघर्ष का मूल कारण हैं। इस संदर्भ में वे यह बुनियादी सवाल उठाते हैं—'मनुष्य को अपने भीतर लोभ, ईर्ष्या, घृणा और वासना की हिंसा पर विजय प्राप्त करने का सामर्थ्य कहां से प्राप्त होगा?' उनकी दृष्टि में इस प्रश्न का सबसे सही उत्तर गांधीजी ने दिया है, जिन्होंने कहा था :

'शरीर से भिन्न आत्मा के अस्तित्व को और उसकी स्थायी प्रकृति को स्वीकार किया जाना चाहिये तथा इस मान्यता को जीवंत आस्था का रूप लेना चाहिये। अंत में मैं तो कहूंगा कि जिन लोगों की प्रेम-परमेश्वर में जीवंत आस्था नहीं है, वे अहिंसा का साक्षात्कार नहीं कर सकते।'

प्रौद्योगिकी का इन्सानो चेहरा

आधुनिक जगत एक संकट से दूसरे संकट की दिशा में ठोकरें खाता फिर रहा है।

करवी

शायद और खतरे की भविष्य-वाणियां सुनाई पड़ रही हैं तथा विघटन के लक्षण उभर जा रहे हैं। कैसे टल सकता है यह खतरा ? यूँकर सीधे जड़ में उतरकर इस खतरे के कारणों को तलाशते और बताते हैं कि आधुनिक विश्व का स्वरूप प्रौद्योगिकी ने तब किया है और स्वयं प्रौद्योगिकी अमानवीय तथा मानव-निरपेक्ष चेहरा धारण कर रही है। यही है खतरे का मूल कारण। सो खतरे से बचने का एकमात्र उपाय यह है कि हम प्रौद्योगिकी को मानवीय या मानव-अपेक्ष चेहरा ढूँढ़ करके दें।

यूँकर इस ओर हमारा ध्यान खींचते हैं कि मनुष्य और प्रकृति दोनों में ही जैसे विकास और वृद्धि का नियम है, वैसे ही वृद्धि के समान का भी नियम है। प्रकृति में प्रत्येक तत्त्व और व्यक्ति का एक लगभग निश्चित आकार है और उसकी गति तथा हिंसा-क्षमता भी निश्चित है। 'परिणामतः प्रकृति की व्यवस्था, जिसका कि मनुष्य भी अंग है, आत्मसंतुलनकारी, आत्मानुकूलनकारी और आत्मशोधनकारी है। आज बुनियादी तौर पर यह आ गया कि प्रौद्योगिकी का अथवा यों कहें कि प्रौद्योगिकी और विशेषीकरण के प्रभुत्व में पड़े मनुष्य का रूप यह नहीं रह गया है।' आकार, गति और हिंसा के मामले में अपने को सीमित करने की शक्ति उसमें नहीं रह गयी है। तब आत्मसंतुलन, आत्मानुकूलन और आत्मशोधन की क्षमता का तो प्रश्न ही नहीं उठता।

यूँकर को लगता है कि आधुनिक जगत



स्वर्गीय यूँकर

की प्रौद्योगिकी और विशेषतः अधि-प्रौद्योगिकी (सुपर टेक्नॉलाजी) प्रकृति की सूक्ष्म व्यवस्था के भीतर एक विजातीय तत्त्व के रूप में कार्य करती है और वे कहते हैं कि इसके अनेक लक्षण स्पष्ट उभर रहे हैं कि प्रकृति इस विजातीय तत्त्व को अस्वीकृत कर रही है।

उनकी दृष्टि में, आधुनिक प्रौद्योगिकी द्वारा निर्मित दुनिया एक साथ तीन संकटों में फँस गयी है :

१. अमानवीय प्रौद्योगिकी एवं संघटन-मूलक तथा राजनैतिक ढाँचे के विरुद्ध मानव-प्रकृति विद्रोह करती है; उसे इनमें घुटन महसूस होती है, अपनी शक्ति के क्षय की अनुभूति होती है।

२. मानव-जीवन को पोषण देने वाला जीवनमूलक पर्यावरण दबाव महसूस कर रहा है, कराह रहा है और आंशिक टूटन (विखराव) के संकेत दे रहा है।

३. पृथ्वी के भरपाई न किये जा सकने वाले संसाधनों—विशेषतः जीवाश्म-ईंधनों (कोयला और पेट्रोल)—का क्षय इतनी तीव्रता से हो रहा है कि निकट भविष्य में सचमुच ही उनके समाप्त हो जाने का खतरा और गंभीर गतिरोध की स्थितियां साफ दिखाई दे रही हैं।

इससे यह स्पष्ट हो जाता है—‘पदार्थवाद अर्थात् सीमित पर्यावरण के भीतर स्थायी और असीम विस्तार देर तक नहीं चल सकता है; और विस्तार के प्रयोजन जितने ही अधिक सफल होंगे, इस पर्यावरण की जीवन-परिधि उतनी ही छोटी रह जायेगी।’

आधुनिक तकनीकी अपने ज्ञात स्वरूप के द्वारा विश्व की गरीबी मिटाने में मदद कर सकती है, इसमें शूमाकर को संदेह है। बेरोजगारी की समस्या का तो जिक्र ही फिजूल है; तथाकथित विकासशील देशों में बेरोजगारी ३० प्रतिशत तक जा पहुंची है तथा अनेक समृद्ध देशों में भी ‘उसने घातक आयाम ग्रहण कर लिये हैं।’

तब उपाय क्या है? वकौल शूमाकर, उपाय है ‘ऐसी तकनीकी जो इन्सानी चेहरे वाली हो और जो मनुष्यों के हाथों और दिमागों को निरुपयोगी बना देने के बजाय पहले की अपेक्षा अधिक उत्पादक बना सके।’ इस सिलसिले में वे गांधीजी को नबनीत

उद्धृत करते हैं—‘दुनिया की समस्या विशाल पैमाने के उत्पादन से हल नहीं होगी। वह हल होगी विशाल जनसाधारण द्वारा उत्पादन से।’ इसी को शूमाकर ‘मध्यम प्रौद्योगिकी’ (इंटरमीडिएट टेक्नालाजी) कहते हैं, जो आदिम प्रौद्योगिकी और अधि-प्रौद्योगिकी (सुपर टेक्नालाजी) के बीच में स्थित है। वे इसे लोकतंत्रीय प्रौद्योगिकी या जन-प्रौद्योगिकी कहते हैं, ‘जिसमें प्रत्येक व्यक्ति प्रवेश पा सकता है और जो समृद्ध एवं सशक्त (वर्ग) के लिए सुरक्षित नहीं है।’

शूमाकर प्रतिव्यक्ति उत्पादन को महत्त्वहीन चीज नहीं मानते, तथापि उनका मत है कि प्रतिव्यक्ति उत्पादन की निरंतर वृद्धि हमारा बुनियादी उद्देश्य नहीं है; बल्कि हमारा बुनियादी उद्देश्य है बेरोजगारों और अपर्याप्त रोजगार वाले लोगों के लिए रोजगार-प्राप्ति के अवसरों में अधिकतम वृद्धि। सो शूमाकर के नये अर्थशास्त्र का मूलसूत्र है—‘सबके लिए पर्याप्त काम’। चंद लोग ‘सब कुछ’ उत्पादन करें, इसके विपरीत वे इसके हिमायती हैं कि प्रत्येक व्यक्ति ‘कुछ न कुछ’ उत्पादन करे। उनकी दृष्टि में बेरोजगार आदमी हताशाग्रस्त होता है और उखड़ने व उजड़ने को लाचार हो जाता है।

भारत जैसे देश के आर्थिक नियोजन के लिए वे यह चार-सूत्री आधार पेश करते हैं—

१. कारखाने छोटी बस्तियों में लगाने जायें न कि नगरों में, जहां लोग बाहर से आकर बसने को मजबूर होते हैं।

२. इन कारखानों की लागत इतनी कम

करनी

हो कि ये बड़े पैमाने की पूंजी जुटाने और मशीन आदि के आयात के बिना ही बड़ी संख्या में लगाये जा सकें।

३. उत्पादन-विधियाँ अपेक्षाकृत सरल हों, जिससे कि उत्पादन-प्रक्रिया में ही नहीं बल्कि संवटन, कच्चे माल की पूर्ति, वित्तीय प्रबंध, विक्री-व्यवस्था आदि में भी अति-कुशल विशेषज्ञों की मांग कम से कम रहे।

४. उत्पादन मुख्यतः कच्चे माल से हो जायज्वादातर स्थानीय खपत के लिए हो।

इस सबके लिए आवश्यक होगी विकास क्षेत्रीय दृष्टि तथा 'मध्यम प्रौद्योगिकी'। भारत का उदाहरण देकर शूमाकर कहते हैं कि यदि सारे भारत को एक उत्पादन-इकाई मान लिया जाये, तो उससे उत्पादन-क्षमता के किसी एक क्षेत्र में केंद्रित हो जाने का भय है। पिछले तीस वर्ष के अनुभव ने इस भय को सही सिद्ध किया भी है। इसलिए उनका सुझाव है कि भारत में जिले को अधिक विकास की इकाई माना जाये; उससे क्षेत्रीय असंतुलन नहीं पैदा होगा।

शूमाकर पूंजी-प्रधान उद्योगों के वजाय श्रम-प्रधान उद्योगों को समग्र विकास का एकमात्र सही आधार मानते हैं। वे चाहते हैं कि उद्योगों का चयन कच्चे माल की उप-वृद्धि, खपत के बाजार आदि के आधार पर किया जाये। 'मध्यम प्रौद्योगिकी' को वे श्रम-प्रधान मानते हैं तथा उन्होंने उसका एक अत्यंत व्यावहारिक मानदंड तय किया है। उनका कहना है कि मध्यम प्रौद्योगिकी वाले कारखाने की लागत एक आदमी की

वारह महीनों की कमाई से अधिक नहीं होनी चाहिये, यानी आदमी प्रतिवर्ष एक महीने की कमाई बचाकर वारह वर्षों में उस कारखाने का स्वामित्व प्राप्त कर सके।

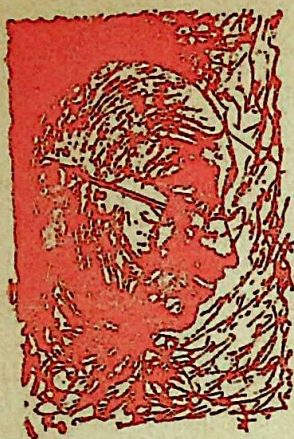
संपन्न लोग इस प्रौद्योगिकी का विरोध करेंगे; लेकिन हमें यह प्रौद्योगिकी उन लोगों के लिए चाहिये जो जीवन की बुनियादी आवश्यकताओं से भी वंचित हैं।

शूमाकर को लगता है कि मार्क्स को इस सत्य का तभी पूर्वाभास हो गया था जब उन्होंने लिखा—'पूंजीवादी अर्थशास्त्री उपयोगी वस्तुओं के उत्पादन की बात करते हैं, लेकिन यह भूल जाते हैं कि असंख्य उपयोगी वस्तुओं का उत्पादन असंख्य निरूपयोगी मनुष्यों का निर्माण कर देता है।'।

शूमाकर इसके सख्त विरोधी हैं कि प्रौद्योगिकी को मानवीय समस्या के संदर्भ से काटकर केवल वस्तुओं के उत्पादन के संदर्भ में देखा जाये।

जीवन-वृत्त

तकनीकी को मानवीय चेहरा प्रदान करने के हिमायती शूमाकर 'समृद्धि के सौदागर' अर्थशास्त्रियों की भीड़ में निपट अकेले थे। १९७३ में जब उनकी पुस्तक 'स्माल इज ब्यूटिफुल' प्रकाशित हुई, तो पहले तो उन्हें पश्चिमी पाठकों और समा-लोचकों से उपेक्षा और उपहास की ही सौगात मिली; लेकिन शीघ्र ही वह पुस्तक विश्व की सोलह भाषाओं में प्रकाशित हुई और उसकी गणना सर्वाधिक लोकप्रिय पुस्तकों में हुई। इस संबंध में उन्होंने कहा



गांधी : औद्योगिकोत्तर समाज में अर्थवृत्ता था—‘मैं लेखक नहीं हूँ; मैं कार्यकर्ता हूँ, संघटक हूँ। मेरी पुस्तक की सफलता का रहस्य यह है कि वह यथार्थ के रक्त से लिखी गयी है।’

शूमाकर का जन्म १९११ में जर्मनी में हुआ। उन्होंने रोड्स छात्रवृत्ति पाकर आक्सफर्ड (ब्रिटेन) में शिक्षा प्राप्त की, फिर कोलंबिया विश्वविद्यालय (अमरीका) से डाक्टरेट ली और वहीं पढ़ाने लगे। हिटलर की तानाशाही से बेचैन होकर उन्होंने स्वदेश छोड़ दिया। वे भारत में बसना चाहते थे; मगर यह संभव न हुआ। युद्ध के बाद वे मित्रराष्ट्रीय नियंत्रण-आयोग के आर्थिक सलाहकार के रूप में जर्मनी लौटे तथा युद्धोत्तर जर्मनी के पुनर्निर्माण में योग दिया। वे बर्मा के प्रधान-मंत्री के आर्थिक सलाहकार भी रहे। बर्मा में उन्हें मौलिक आर्थिक दृष्टि प्राप्त हुई

तथा सन १९६८ में उनकी पुस्तक ‘आर्थिक वृद्धि की जड़ें’ (रूट्स आफ इकॉनामिक ग्रोथ) प्रकाशित हुई, जिसमें उन्होंने बौद्ध अर्थशास्त्र का प्रतिपादन किया।

शूमाकर गांधीजी के चिंतन और आर्थिक दर्शन से बहुत प्रभावित थे। गांधीजी को वे ‘बीसवीं सदी का महानतम अर्थशास्त्री’ मानते थे। उन्होंने लंदन में ‘मध्यम प्रौद्योगिकी समूह’ की नींव डाली और तभी से उसके अध्यक्ष रहे। यह समूह छोटे उद्योगों के लिए आवश्यक प्रौद्योगिकी आदि के बारे में जानकारी इकट्ठी करके लोगों की मदद करता है।

वे दो बार भारत आये थे—१९६१ में तत्कालीन प्रधान-मंत्री जवाहरलाल नेहरू के निमंत्रण पर और दूसरी बार १९७३ में। दूसरी यात्रा में उन्होंने ‘मध्यम प्रौद्योगिकी समूह’ की भारतीय शाखा का उद्घाटन किया। उनके विचारों से प्रभावित होकर अमरीका की सरकार ने मध्यम प्रौद्योगिकी का एक राष्ट्रीय केंद्र स्थापित किया है।

६ सितंबर १९७७ को शूमाकर का निधन हुआ। उनका उठ जाना विशेषतः तृतीय विश्व के विकासशील देशों के लिए एक गहरी क्षति थी, जिनके लिए वे मध्यम प्रौद्योगिकी का महान विचार विरासत में छोड़ गये हैं। गांधीवादी अर्थशास्त्र को आधुनिक संदर्भ में प्रस्तुत करके उन्होंने मानव-जाति की महान सेवा की है।

—डॉ-३९३, डिफेंस कालोनी
नयी दिल्ली-११००१४



व्यसन

प्रफुल्लचंद्र ओझा 'मुक्त'

व्यसन मनुष्य को निकम्मा बना देता है, अनेक बार घृणा का पात्र भी। किंतु जब भी राजाजी के व्यसन की याद आती है, हृदय श्रद्धा और सम्मान से भर उठता है।

राजाजी गांव के बड़े जमींदार थे। लाखों के स्वामी, किंतु उन्हें दान का व्यसन था। पता नहीं, भगवान ने किस धातु से उनका हृदय बनाया था कि वे किसी का दुःख, किसी का अभाव सहन नहीं कर पाते थे। कभी कोई जरूरतमंद उनके दरवाजे से खाली हाथ नहीं लौटा। स्वयं पूछ-पूछकर भी लोगों की सहायता किया करते थे। आखिर एक दिन ऐसा आया, जब उनके पास देने को कुछ नहीं रह गया; और तब उन्होंने अपनी बड़ी-सी हवेली बेचकर धूम-धाम से एक गरीब की बेटी का विवाह कराया। धूम-धाम उनके रक्त में बों भी!

मैंने लगभग चालीस साल पहले उन्हें देखा था। तब वे अपनी रानी और दो राज-कुमारों के साथ एक टूटे-कच्चे मकान में रहते थे। किसी सीमा तक विक्षिप्त हो गये थे। शिक्षाटन से उनकी जीविका चलती थी। लेकिन भीख वे दीन बनकर नहीं, अधिकार से मांगते थे। गांव के लोग भी उनका समुचित सम्मान करते थे।

एक दिन सवेरे मैं एक मित्र के यहां बैठे बातें कर रहा था। राजाजी जाने किधर से आ पहुंचे। आते ही उन्होंने बताया कि राजकुमार को टाइफाइड हो गया है। डाक्टर ने पांच रुपये का इंजेक्शन बताया है। चार घरों से चार रुपये मिल गये हैं। एक रुपये की जख-त और है।

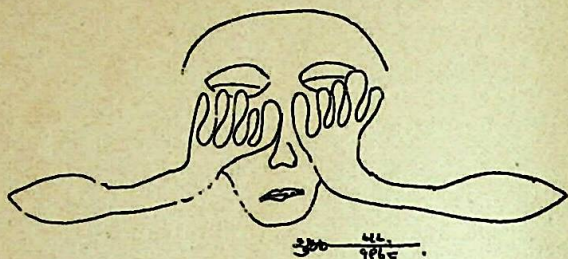
मित्र ने फौरन एक रुपया उनके हाथ पर रख दिया।

राजाजी के जाने के बाद ही मैं भी वहां से उठा। रास्ते में देखा, एक टूटे-फूटे मकान के दरवाजे की कुंडी पकड़कर राजाजी खटखटाते ही जा रहे थे कि सामने से जोर-जोर से रोता एक आदमी आता दीख पड़ा। राजाजी ने उसे पुकारकर रोने का कारण पूछा। उसने बताया कि रात को मां मर गयी है, कफन के लिए मेरे पास पैसे नहीं हैं।

राजाजी के चेहरे पर एक ऐसा तनाव आया, आंखों में एक ऐसी गहरी व्यथा चमकी, जिसे शब्दों में अभिव्यक्त नहीं किया जा सकता। जब मैं हाथ डालकर उन्होंने मांगकर लाये हुए पांच रुपये उस व्यक्ति को देते हुए भीगे स्वर में कहा—'मेरा बेटा तो मरने वाला है, तेरी मां मर गयी है। मुझसे बड़ी जरूरत तेरी है। रो मत, ले, भाग जा।' उस दिन पहली बार मैंने मानवता का जो विराट रूप देखा था, वह अविस्मरणीय है।



हिंदी कहानी :



हत्या के बावजूद

मनहर चौहान

यह जे. वी. पंड्या की अनुभव-कथा है।

यहां जे. वी. पंड्या का अर्थ केवल जे. वी. पंड्या नहीं। उसका अर्थ 'स्वयं आप' भी हो सकता है। कोई आश्चर्य नहीं, यदि जे. वी. पंड्या जैसा अनुभव स्वयं आप भी कई बार ले चुके हों। पूरी संभावना है कि उन अनुभवों को आपने अलग से पहचाना नहीं। यह कथा आपके भीतर उसी पहचान को अंकुरित करने के लिए है। कथा के अंत में जे. वी. पंड्या कुछ नहीं करता; निष्क्रिय रह जाता है। अब, यह आपको सोचना है कि वह जे. वी. पंड्या की भूल थी या नहीं। इसी प्रश्न को इस प्रकार भी लिखा जा सकता है कि जैसी स्थितियों में पंड्या था, वैसी ही स्थितियों में यदि आप हों, तो क्या आप भी पंड्या की तरह निष्क्रिय रह जायेंगे? यदि हां, तो इसे आप अपनी भूल

मानेंगे या नहीं?

पंड्या दाहोद का निवासी था। 'वा' की जगह 'है' भी लिखा जा सकता है। 'वा' को सही मानें या 'है' को, मैं फैसला नहीं कर सकता; क्योंकि पंड्या के साथ मेरा कोई नियमित संपर्क नहीं है।

एक दिन पंड्या राज्य-परिवहन की कार में बैठा। उसका ध्यान दो बुजुर्ग देहातियों की ओर सहसा चला गया। चेहरों से हीरे देहाती उतने भोले नहीं लग रहे थे, बित्तों मुंशी प्रेमचंद के उपन्यासों में चित्रित किए गये हैं। दोनों देहाती अगल-बगल बैठे थे और उनमें से एक ऐन खिड़की पर था। उनके हाव-भाव से स्पष्ट था कि दोनों के बीच गहरी दोस्ती है।

कंडक्टर ने घंटी और सीटी दोनों बजाकर भारी दुनिया में एलान किया कि वह

शीर्षक के साथ का चित्र : शुक्रदेव प्रसाद

झूठ का वक्त हो गया है। ड्राइवर ने तुरंत अपनी सीट पर आकर इंजन चालू कर दिया। चिचिर-बिचिर बस चल पड़ी। अड़्डे से निकलकर वह सड़क पर चली; चल क्या रही थी, बिसट रही थी। भीड़ ढिठाई से बापने डटी हुई थी। उसे काटकर बस झपट नहीं पा रही थी।

ऐन खिड़की पर बैठे देहाती ने अपनी पड़ोसी मुंडी अकस्मात् खिड़की से बाहर निकली और डांटने या ललकारने की तरह चिल्लाकर कहा—‘ऐ लड़के! लाना तो केले।’

धीमे-धीमे चलती बस के साथ एक लड़का तेजी से दौड़ने लगा। जे. बी. पंड्या ने दौड़ते लड़के को स्पष्ट देखा था। लड़के ने हाथ उठाया, ताकि देहाती को केले दे सके।

‘जंन-भर हैं। एक रुपये के।’

‘हां-हां, एक रुपये के।’ देहाती ने मंद-मंद मुस्कराकर कहा और हाथ नीचे की तरफ बढ़ाकर केले ले लिये।

केले गोद में रखकर उसने अपनी जेबों में टटोलना शुरू किया। जे. बी. पंड्या को तबकुल भी शक न हुआ कि देहाती झूठमूठ टोल रहा है।

रहसा बस को जरा खुला रास्ता मिला और उसने तेजी पकड़ना शुरू कर दिया। बस के साथ दौड़ रहा लड़का जोर से चिल्लाया—‘रुपया दो, बाबा!’

देहाती ने अपनी जेबों में ज्यादा तेजी से टटोलना शुरू किया। खुला नोट उसे मिल नहीं रहा था। बगल में बैठे अपने दोस्त की ओर देखकर, मंद-मंद मुस्कराते

हुए उसने कहा—‘देना, यार, खुला नोट है तुम्हारे पास?’

दोस्त ने भी मंद-मंद मुस्कराना शुरू कर दिया—‘मेरे पास? नहीं तो! मेरे पास कहां है खुला नोट? सब सौ-सौ के हैं?’

देहाती ने और भी ज्यादा तेजी से अपनी जेबों में टटोलना शुरू किया। वह बड़-बड़ाया—‘कमबख्त एक का नोट ...’ और उसकी मंद-मंद मुस्कान डूब नहीं रही थी।

जे. बी. पंड्या ने जब देखा कि एक नहीं, दोनों देहातियों के चेहरों पर ठीक एक-जैसी मंद-मंद मुस्कान खिली हुई है, तो उसका माथा ठनका। उसे तुरंत इलहाम हुआ कि कंडक्टर से कहकर बस रुकवा देनी चाहिये।

इलहाम के बावजूद, पंड्या अपनी सीट से एकाएक उठा नहीं। उसे भय था कि कहीं वह भूल न कर रहा हो। वह उन देहातियों पर ख्वाहमख्वाह आरोप नहीं लगाना चाहता था।

इस बीच बस की तेजी और बढ़ गयी। बाहर, साथ-साथ दौड़ रहा लड़का पूरी शक्ति से चिल्लाया—‘बाबा! नोट!’

जेबों में टटोलने का शुभ कार्य देहाती अभी तक पूरा नहीं कर सका था। बगल में बैठा उसका दोस्त बोला—‘अब रहने भी दो। लौटते में दे देंगे।’

पंड्या ने ये शब्द सुने और सुनते ही समझ लिया कि दोनों में से एक भी देहाती इस रूट से वापस लौटने वाला नहीं है। कंडक्टर से कहकर बस रुकवाने के लिए



पंड्या अपनी सीट से उठने वाला था कि...

बाहर एक विचित्र चीत्कार सुनाई पड़ा। शुरू होते ही वह शांत भी हो गया। फ्यूज उड़ने पर जिस तरह बिजली अचानक गुल होती है, उसी तरह वह चीत्कार शुरू हुआ कि खत्म हो गया।

बस उछल पड़ी, मानों उसका पहिया किसी मोटी चीज पर से एकाएक गुजर रहा हो।

[दत्तप्रसन्न राणे] पीछे की तरफ बैठी सवारियों ने पीछे की ही तरफ लगे शीशे के आर-पार देखना शुरू किया—कि पहिया आखिर कौन-सी मोटी चीज पर से गुजर रहा।

एकाएक पूरी बस में हड़कंप मच गया—‘रोको, रोको, छोकरा दब गया, रोको, हाय मर गया’

कंडक्टर ने सीटियों पर सीटियां मारीं, ठाक-ठाक घंटी बजाई, ड्राइवर को उसका नाम ले-लेकर पुकारा; और इस प्रकार बस आखिर रुक गयी। लोग ऐसे फटा-फट उतरने लगे, जैसे टोकरी उलटने पर अमरूद निकल पड़े हों। बस के पीछे जो धूल उड़ी हुई थी, उसके आर-पार लोगों ने सरपट दौड़ लगा दी। पंड्या उनमें शामिल था।

नवनीत

सब इस आशा में दौड़ रहे थे कि छोकरे के लिए शायद कुछ किया जा सके। किंतु अधिकांश को ऐसा खटका भी था कि देर हो चुकी है।

देर हो चुकी थी।

लाश का मुंह खुला था, आंखें खुलीं और हथेलियां भी खुलीं। मुंह, आंखों और हथेलियों को देखने ही से एहसास हो जाता था कि एक रुपये की वसूली की आशा लाश ने अभी तक नहीं छोड़ी है। जे. बी. पंड्या ऐसा स्तब्ध हुआ कि सब भूल गया। लाश का अस्तित्व, बस का अस्तित्व, दुनिया का अस्तित्व, खुद अपना अस्तित्व। लाश देखकर लोग जिस तरह सीत्कार और चीत्कार के साथ पीछे हट रहे थे, उस ओर से भीचे बी. पंड्या पूर्णतया अचेत था।

पंड्या को पता नहीं कि कुल कितने मिनटों बाद उसकी चेतना लौटी। सहसा उसने पाया कि चीत्कार और सीत्कार बत्त से हो गये हैं। औरतों और बच्चों की टोर्बा फासले पर खड़ी है। मदों ने लाश पर घेरा सा डाल दिया है। राह चलते लोग अभी भी दौड़ते और इकट्ठे होते जा रहे हैं। पुलिस आ गयी है। उसकी सीटियां बार-बार वज उठती हैं।

ठठ।

पंड्या की नजर सहसा एक गली में गयी। दो देहाती जल्दी-जल्दी गली पार कर रहे थे। उनकी पगड़ीमय मुंडियां झुकी हुई थीं। उनमें से एक के हाथ में दर्बन भर केले अब भी थसे हुए थे। उनके कपड़ों

फरवरी

की भीमता से ही जाहिर था कि वे डर रहे हैं और अब उसी बस से यात्रा नहीं कर सकते। पंड्या का मन हुआ कि खूब जोर लगावे, उन्हें घेर दबोचे और चिल्ला-चिल्ला-कर एगान करे—‘इन्होंने रुपया ले लिया, केते से लिये, और जान भी ले ली देखो, केते अभी तक इन्हीं के पास हैं, और ये और ये’

लेकिन निष्क्रिय कायरता ने पंड्या को रूखा था। उसका मुंह सूख रहा था,

गला अवरुद्ध था, आंखें सब देखकर भी कुछ नहीं देख रही थी। सिवा स्तब्ध खड़े रहने के, जे. बी. पंड्या ने कुछ नहीं किया।

अब, यह आपको सोचना है कि वह जे. बी. पंड्या की भूल थी या नहीं? क्या वह उस कांड को हत्याकांड साबित कर सकता था? इतना तो खैर आप बता ही सकते हैं कि पंड्या ने स्वयं को माफ किया होगा या नहीं? अथवा नहीं बता पायेंगे?

—४ डी, राजेंद्रप्रसाद कालनी, ग्वालियर-२



विदेश-मंत्री श्री अटलबिहारी वाजपेयी तब संसद में विपक्ष के महा-रथियों में से थे। एक दिन बिहार की स्थिति पर बहस होने वाली थी। स्पीकर महोदय ने घोषणा की कि बहस में सिर्फ ‘बिहारी’ बोलेंगे। उनके यह कहते ही वाजपेयीजी उठ खड़े हुए और धाराप्रवाह बोलने लगे।

स्पीकर महोदय ने हड़बड़ाकर कहा —‘न-न, आपको नहीं बोलना है।’

वाजपेयीजी ने जवाब दिया —‘क्यों, मैं क्यों न बोलूं? अभी तो आपने कहा कि आज सिर्फ बिहारी सदस्य ही बोलेंगे। मैं भी बिहारी हूं — अटल बिहारी। इसलिए मुझे बोलने का अधिकार है।’

संसद-भवन ठहाकों से गूंज उठा।

०००

वैज्ञानिक परिव्राजक स्वामी सत्यप्रकाशजी को कहीं व्याख्यान देने के लिए बुलाया गया था। वहां जो कुछ घटा, स्वामीजी से ही सुनिये :

उस समय मेरे पैर में एक फोड़ा था। आयोजक महोदय ने श्रोताओं को मेरे बारे में बताते हुए कहा कि स्वामीजी आजादी की लड़ाई के दौर में जेल भी जा चुके हैं, अंग्रजों की गोलियों के शिकार भी हुए हैं। अब यही देखिये, स्वामीजी के पैर में जो फोड़ा आप देख रहे हैं, वह आजादी की लड़ाई के दौर में लगी गोली का ही धाव है।



बचपन की यादें: कितनी सुखानी ?

क्या मनुष्य अपने जन्म के क्षण को याद कर सकता है ? कुछ मनोविश्लेषक इसका उत्तर 'हां' में देते हैं। कुछ अन्य मनोविश्लेषकों का दावा है कि मनुष्य मां के गर्भ में रहते समय की बातें भी याद कर सकता है। 'न्यू साइकालॉजिस्ट' में से जान रोवान के एक लेख का सार दिनेश लखनपाल द्वारा प्रस्तुत।



बचपन की कुचली हुई भावनाओं और अप्रिय अनुभूतियों की अवदमित स्मृतियां मन में घाव बना देती हैं; मनुष्य का अगला सारा जीवन उनसे प्रभावित रहता है और काफी हद तक उनसे परिचालित भी होता है। यह फ्रायडीय विचार आधुनिक मनोविज्ञान का अविभाज्य अंग बन गया है।

मगर बचपन यानी कितने पहले तक का बचपन ?

प्रचलित धारणा यह है कि ये घाव लगभग पांच वर्ष की वय में (मुख्यतः ईडिपस ग्रंथि के कारण) बनते हैं। इस मामले पर विशेष लिखने वाले आर्थर जैनोव ने भी अपनी प्रथम पुस्तक में ऐसा ही माना था।

मगर मेलनी क्लाइन ने तथा बाद में कई अन्य मनोविज्ञानियों ने भी दिखाया कि

नवनील

सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण घाव जीवन के प्रथम वर्ष में ही बन जाते हैं। बहुत-से मनो-विज्ञानी यह मानने को तैयार नहीं थे। उनका कहना था कि एक वर्ष के बच्चे का मस्तिष्क तो बहुत ही अविकसित होता है; वह इतने संश्लिष्ट और कल्पनात्मक निर्माण लेने में समर्थ नहीं होता।

क्लाइन ने यहां तक कहा था कि यदि माता अच्छी तरह देखभाल नहीं करती, तो छह मास से कम उम्र का बच्चा भी अनुभव कर सकता है कि उसे सताया जा रहा है और वह मां की यंत्रणा देने और मार डालने तक की कल्पना कर सकता है और छह मास के बाद, हो सकता है, वह अपने को अपराधी अनुभव करे और मायूस हो जाये।

क्या इतनी छोटी उम्र के बच्चे सचमुच इतने जटिल विचार मन में रख सकते हैं ?

जब तक जुदाये गये प्रमाणों से तो यही लगता है कि यह संभव है।

बच्चों पर किये गये विभिन्न प्रयोगों ने यह दर्शा दिया है कि नवजात शिशुओं को बिना अपरिपक्व समझा गया था, असल में जन्म अपरिपक्व वे होते नहीं हैं। पहले नष्ट माना जाता था (और पाठ्य पुस्तकों में अब भी लिखा मिलता है) कि नवजात शिशु को अपने आस-पास का सब कुछ गड़-गड़ और धुंधला-सा दिखाई देता है। मगर हाल में बवर के सूक्ष्मपूर्ण प्रयोग यह स्पष्ट दर्शा चुके हैं कि छह से आठ सप्ताह की उम्र के बच्चे भी स्थिर वस्तुओं को विविध-रूप में देख सकते हैं।

जो बच्चे आम अस्पतालों में जनमे थे और शुरू के दिनों में जिनकी देखरेख नर्सों ने की थी उनकी तुलना रिंगलर, ट्राउस और

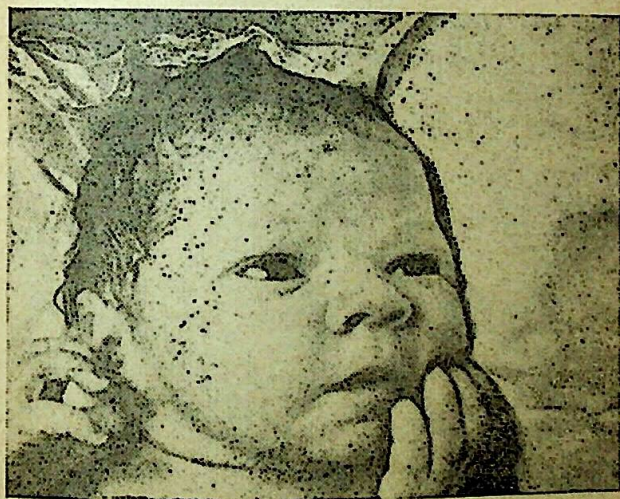
क्लास ने ऐसे बच्चों के की, जिन्हें उनकी माताओं ने जन्म के प्रथम दो घंटों में से छह से कम एक घंटा और अगले दिनों में माधारण देखरेख के बजावा कम से कम पांच घंटे तक हाथों में धरूँलाया था। पांच वर्ष की उम्र में जब इन दोनों वर्गों के बच्चों की भाषा और बुद्धिमत्ता संबंधी

योग्यता आंकी गयी, तो अपनी माता का ज्यादा सान्निध्य पाने वाले बच्चे दूसरों से कहीं अधिक सक्षम पाये गये।

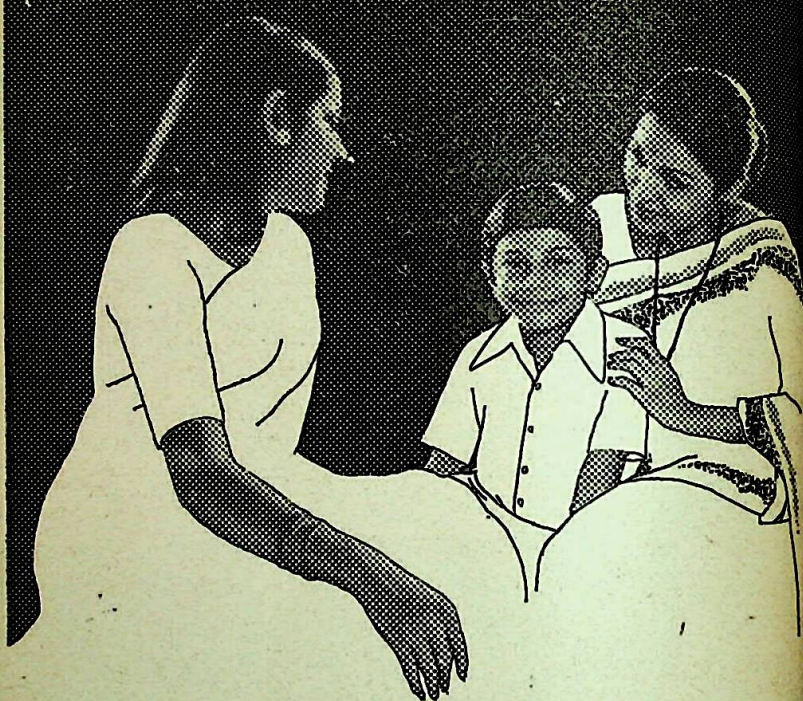
इस तरह डेनियल रैपोपोर्ट ने १२० नवजात शिशुओं पर शोधकार्य करके यह दिखाया है कि जिन बच्चों का जन्म बिना कठिनाई के; सहज-स्वाभाविक ढंग से हुआ वे और उनके माता-पिता मानसिक दृष्टि से अधिक सुखी व प्रसन्न रहे हैं।

इन सब बातों से स्पष्ट है कि जन्म के समय नवजात शिशु इतना चुस्त और सचेत अवश्य होता है कि अपने चारों ओर होने वाली घटनाओं पर प्रतिक्रिया कर सके। वेशक इन्हीं आरंभिक अनुभवों के साथ जुड़े मानसिक आघातों के कारण वह इन्हें भूल भी जाता है।

अब तो यहां तक कहा जाने लगा है कि



सफ़ेदी ऐसी चकाचौंध
कि जो भी देखे, वो बोले...



यह है

डेट

डिटर्जेंट
टिकिया की
धुलाई



Shilpi DM 35478

जन्म की स्मृति को भी बच्चा अव-
 विगत कर डालता है। इस मामले में एलि-
 जेबेन्स फ्रेंजर (अमरीका), फ्रैंक लेक (ब्रिटेन)
 ग्राफ (चेकोस्लोवाकिया) ने इस
 विषय में काफी प्रयोग किये हैं, जिनका अनु-
 रूप बाद में अन्यत्र भी किया गया है।
 मत तो कई प्रकार की मानस-चिकित्साओं
 परीक्ष को अपने जन्म के अनुभव को फिर
 जीने के लिए प्रेरित किया जाता है।

प्रजात मानस-चिकित्सक ग्राफ ने इन
 मन-कालीन अनुभवों को चार अवस्थाओं
 में विभाजित किया है।

अवस्था १: मां के साथ आदिम गठबंधन-
 संबंध में निश्चित निवास। ज्यादातर
 बच्चों के लिए यह परम आनंदमय अनुभूति
 होती है। जिनका मन इसी अवस्था पर
 रुक रह जाता है, वे जीवन-भर उसी में
 गैरचलने को प्रयत्नशील रहते हैं, हालांकि
 उन्हें यह पता नहीं होता कि उन्हें तलाश
 कि चीज की है।

अवस्था २: मां के प्रति विरोध—इसमें
 परिवर्तन का सिकुड़ना शुरू हो चुका होता
 है, मगर उसका मुंह अभी पूरी तरह खुला
 होता; इससे दबाव का और निकलने
 का यह न होने का एहसास होता है—खास
 तब जब प्रसव-वेदना लंबी चले। जो
 व्यक्ति मन से इस स्थिति पर अटक जाता
 है, वह ऐसी परिस्थितियों के प्रति अत्यंत
 संवेदनशील होता है, जिनमें दबाव बहुत
 हो और कोई हल दिखाई नहीं देता हो।

अवस्था ३: मां के साथ सहक्रिया—इस

स्थिति में जन्म-नली में नीचे सरकता हुआ
 बच्चा भारी दबाव के बावजूद गति का
 अनुभव करता है, जो सुख और दुःख का
 मिश्रित रूप होता है और जिसे आत्म-
 पीड़न-परपीड़न-सुख (सादो-मेज़किज़्म) भी
 कहा जा सकता है। मन से इस स्थिति पर
 अटके व्यक्ति हिंसा से बहुत प्रभावित होते
 हैं चाहे सकारात्मक ढंग से, चाहे नकारा-
 त्मक ढंग से।

अवस्था ४: मां से अलगाव—इसमें बच्चा
 मां के शरीर के बाहर निकल आता है। इस
 स्थिति पर जिसका मन अटका रहे, वह
 व्यक्ति मृत्यु और पुनर्जन्म की कल्पनाओं
 से अभिभूत रहता है।

देखा गया है कि जन्मकाल के छोटे-छोटे
 अनुभवों को पुनर्जागृत करके जन्मकाल में
 अनुभूत मानसिक आघातों से निवटकर
 मनोरोगी को स्वस्थ बनाया जा सकता है।
 इस तरह स्वास्थ्य लाभ तभी संभव है,
 जब ये स्मृतियां कोरी भ्रांतियां न हों।
 जन्मनाल गरदन में लिपट जाने, सिर पर
 शलाका (फारसेप्स) का दबाव, गर्भ में या
 नली में उलटी-सीधी स्थिति आदि की
 स्मृतियां लोगों ने सुनायी हैं और अस्पतालों
 के रेकाडों या डाक्टरों-दाइयों की बातों से
 इनकी पुष्टि हुई है।

हजारों बच्चों का प्रसव करा चुके डा.
 लेबोअर भी फ्रैंक लेक के कार्य-शिविरों में
 लोगों को जन्म-अनुभवों में से गुजरते हुए
 और भ्रूण की तरह की गतियां करते हुए
 देखकर हक्के-बक्के रह गये थे। वैसी हर-

कतों का प्रसूति-विशेषज्ञों के सिवा बहुत कम लोगों को पता होता है और बहुत कम लोग जागृतावस्था में वैसी हरकतें कर सकते हैं।

सहसा इस पर विश्वास नहीं होता कि नवजात शिशु ऐसी बातें अपने मन में सोच सके कि 'मां तो चाहती ही नहीं थी मुझे' या कि 'मुझे जीने का हक नहीं है'। ऐसी बातें सोचने के लिए वयस्क मनुष्य सेरिब्रल कार्टेक्स का उपयोग करता है, जिसका नवजात बच्चे में अभी विकास नहीं हुआ होता। इसका अर्थ यह हो सकता है कि ऐसी बातें सोचने के लिए सेरिब्रल कार्टेक्स की मदद की आवश्यकता नहीं होती। संभव है, मस्तिष्क के अन्य भाग—थैलामस, मध्य मस्तिष्क, सेरिबेलम, मेड्युला और मेरुरज्जु—आदि जो सेरिब्रल कार्टेक्स से अधिक आदिमावस्था के हैं, यह काम करते हों। या यह भी संभव है कि इसमें मस्तिष्क विलकुल भी भाग न लेता हो।

राइश ने बहुत पहले ही प्रतिपादित किया था कि बहुत-सी स्मृतियां मस्तिष्कीय नहीं होतीं, बल्कि वे मांसपेशियों या यहां तक कि कोशिकाओं में रहती हैं। इन क्षेत्रों में हो रहे अनुसंधानों के परिणामों से भी यही प्रतीत होता है। मानस-चिकित्सा की सर्वथा सामान्य बैठकों में लोग इतने पीछे तक की बातें याद करते पाये जा रहे हैं, जिसे पहले असंभव ही समझा जाता था।

उदाहरणार्थ, स्मृतियों में पीछे लौटते हुए एक रोगी ने मां के पेट में रहते समय सात माह की अवस्था में मां की असावधानी नवनीत

से चोट लगने की घटना को याद किया और चीखकर विरोध प्रकट किया। मरीज के सिर पर लाल निशान भी उभर आया।

यह कैसे संभव है? मगर बाद में मरीज की मां से पूछताछ करने पर पता चला कि जब मरीज गर्भ में सात महीने का था, तो एक दिन वह (मां) किसी परपुरुष के साथ कार में जा रही थी और कार दुर्घटना-ग्रस्त हो गयी थी। फौरन उसने जाकर अस्पताल में जांच करवायी थी; लेकिन डाक्टर ने चोट को मामूली बताया था। महिला ने अपने पति से इसका जिक्र नहीं किया। मगर गर्भस्थ बच्चे ने उस आघात को मां द्वारा बहिष्कार और प्रहार के रूप में याद रखा।

मानसिक आघात की दृष्टि से विचार करें तो गर्भपात के विफल प्रयत्न से बड़ा आघात क्या हो सकता है गर्भस्थ शिशु के लिए? यह तो उसके जीवन पर ही प्रहार है—सो भी अपनी मां का किया हुआ प्रहार! यह पूर्णतः संभव है कि भ्रूणावस्था में अनुभूत उस भय के क्षण की याद बनी रहे और उसे फिर से जगाया जा सके।

प्रो. लिले ने गर्भाशय के भीतर का अभ्यन कैमरा द्वारा करके इसके पक्के प्रमाण प्रस्तुत किये हैं कि वास्तव में गर्भस्थ भ्रूण बड़ा ही सतर्क होता है और प्रतिक्रियाएं कर सकता है। गर्भाधान के नौ सप्ताह बाद ही भ्रूण उंगलियां और पांव चूसने लगता है। वह देख, सुन व पी सकता है, हाथ-पांव फँसाकर धक्का दे सकता है, लुढ़क सकता है। मगर चूंकि गर्भाशय में तंत्रिकाओं के छोर नहीं

करती

सुखते, इसलिए मां भ्रूण की इस गतिशीलता और सक्रियता से अनभिज्ञ ही रहती है। उसे इसका पता तभी चलता है, जब भ्रूण इतना बड़ा हो जाये कि उससे हलचल करने से बेट की भीत पर दबाव पड़े। तात्पर्य यह कि बटनौ सप्ताह का भ्रूण भी-जीवन की अनेक क्षमताओं से युक्त सक्रिय जीव पिंड होता है।

मगर इससे भी पुरानी स्मृतियों में तोहना संभव है। मनोविज्ञानी आर. डी. लैंग ने अपनी नवीनतम पुस्तक 'द फैक्ट्स ऑफ लाइफ' (एलन लेन, १९७६) में गर्भ ठहरने और उससे संबद्ध आघातों की चर्चा की है। शुक्राणु से निषेचित होने के बाद तबतार विभाजित और विकसित होता हुआ डिब फेलोपियन नली में नीचे की ओर भाग करता हुआ गर्भाशय में आता है, जहां उसे गर्भाशय की दीवार से चिपकना होता है। यही गर्भ ठहरना है। इस अवस्था में उसे कोशिका-विब (ब्लास्टोसिस्ट) कहते हैं।

लैंग के अनुसार इस समय चार संभाव-गए होती हैं:

१. कोशिका-विब गर्भाशय की दीवार से चिपककर ठहरने को तैयार है और गर्भाशय उसे ठहराने को तैयार है—कोई समस्या नहीं उठती।

२. कोशिका-विब तो ठहरने को तैयार है, मगर गर्भाशय उसे ठहराने को तैयार नहीं। (शायद मां गर्भवती बनने को मन से तैयार नहीं है।) ऐसी हालत में संघर्ष हो सकता है, जिसमें जीत दोनों में से किसी की

भी हो सकती है। यदि कोशिका-विब ही जीत जाये, तो भी आगे चलकर बच्चे को मां द्वारा अंगीकार किये जाने के लिए जीवन-भर संघर्ष करते रहना पड़ेगा।

३. कोशिका-विब ठहरने के लिए तैयार नहीं, मगर गर्भाशय उसे ठहराने को तैयार है। इस हालत में भी दोनों में संघर्ष होगा।

४. दोनों की ही तैयारी नहीं है। ऐसी हालत में गर्भ ठहरता ही नहीं।

यह बात केवल लैंग ही नहीं कह रहे हैं। विल स्वटिली जैसे कई मानस-चिकित्सकों ने अपने मरीजों की गर्भ ठहरने के समय की स्मृतियों का वर्णन किया है। हालैंड के पिअर बोल्ट ने ऐसे मामलों का वर्णन किया है, जिनमें गर्भ ठहरने के बाद ऋतु स्राव हुआ और भ्रूण ने उसे 'मुझे निकाल फेंकने' की चेष्टा के रूप में याद रखा। ऐसे मामलों की सत्यता की जांच अस्पतालों के रेकाडों से की जा सकती है; क्योंकि ऐसी अवस्था में बच्चा समय से पहले पैदा होता है, मगर होता है परिपक्व।

फिर वही प्रश्न सामने आता है कि यह कैसे संभव है? कोशिका-विब के पास, याद रखने का साधन ही क्या है? पर जैसा कि मनोविज्ञानी ऑसगुड ने कहा है, यहां हमें याद रखना चाहिये कि यह प्रेम, क्रोध, भय जैसी बुनियादी अनुभूतियों और लगभग जैविक प्रतिक्रिया का मामला है, इसमें मस्तिष्कीय चिंतन का हाथ नहीं होता।

यही कारण है कि मानस-चिकित्सक पिअर बोल्ट ने अपनी तकनीक को 'गर्भा-

हिंदी डाइजेस्ट

kores

अच्छी छाप का प्रतीक

कोरेस परमैकलिन
सिल्क रिबन :
अधिक स्थायी के
कारण साफ
सुथरी छाप

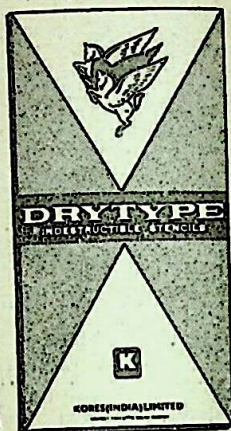
कोरेस इन्टरप्लास्टिक
कार्बन : दाग-धब्बों
से रहित, स्वच्छ
कापियों के लिये
वैक्स इंक की कोटिंग
और प्लास्टिक की
सुरक्षात्मक पर्त

कोरेस ड्राईटाइप
स्टेन्सिल : सही, साफ
छाप के लिये बिना
खामी के लंबे फाइबर
डिश्यू से बनी हुयी

जल्दी
सूखने वाली
सुपरइमेशन
डुप्लीकेटिंग इन्क
नं. के. ७२०
और ७२१



कोरेस (इंडिया) लि.
बम्बई ४०० ०१८
भारतभर में शाखाएँ



Gram 7/1

लिंक चेन

जिसकी एक-एक कड़ी मजबूत, परखी हुई और
पूर्णतः विश्वसनीय है।



सभी उद्योगों व वाहनों में उपयुक्त



एलोय स्टील चेन एक विशेषता

इण्डियन लिंक चेन मैन्फ. लि., भाण्डुप, बंबई-४०००७४

‘आन-विश्लेषण’ कहा है। व अपने मरीजों को गर्भाधानकाल तक की स्मृतियों में वापस लौटने को प्रेरित करते हैं और इसके ठोस एवं साधकारी परिणाम भी उन्होंने दर्शाये हैं। वे कहते हैं कि इस दशा में भी चार स्थितियाँ हो सकती हैं :

१. शुक्राणु एवं डिब दोनों गर्भाधान के अनुकूल हैं;
 २. शुक्राणु अनुकूल है, डिब प्रतिकूल;
 ३. शुक्राणु प्रतिकूल है, डिब अनुकूल;
 ४. शुक्राणु एवं डिब दोनों प्रतिकूल हैं।
- शारीरिक दृष्टि से ये स्थितियाँ निश्चय ही संभव हैं; क्योंकि गर्भाधान हो पाये, इसके लिए शुक्राणु और डिब में सूक्ष्म रासा-

यनिक संतुलन जरूरी है।

इसलिए ऐसा प्रतीत होता है कि माता द्वारा अस्वीकृति या बहिष्कार जैसे आघात चाहे कितने भी पुराने क्यों न हों, स्मरण किये जा सकते हैं।

यह एक नया और अत्यंत व्यापक क्षेत्र है, जिसमें अनेक आश्चर्यकारी बातों का पता लगने की संभावना है।

इससे यह सवाल भी उठता है कि क्या पूर्व जन्म के आघातों की भी इसी तरह याद बनी रह सकती है? यह जटिल मामला है। बहर-हाल यह मानना काफी है कि मनुष्य अपने तमाम मानसिक आघातों को याद रखता है और उनमें से कई बेहद पुराने हो सकते हैं।



रेडियो-वार्ता

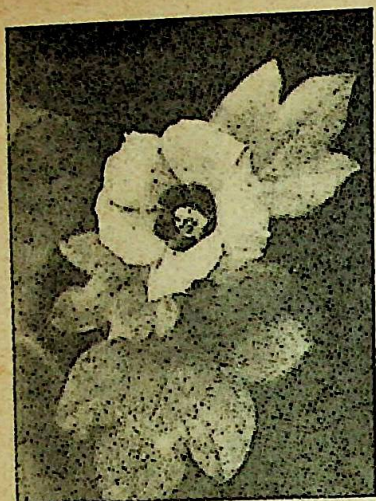
अर्वांग से पीड़ित, अर्धचेतना में डूबता-उतराता मैं अपने शहर और स्वजनों से बहुत दूर मणिपुर-इम्फाल में अस्पताल में पड़ा था। पत्नी डाक्टरों की सलाह से स्ट्रेचर पर लिटाकर वायुयान से बंबई के एक नर्सिंग होम में ले आयीं। उस समय मैं बिलकुल सूखा और दायें हाथ-पैर से निष्क्रिय था।

कुछ दिन बाद मुझे ‘आकाशवाणी’ का एक पत्र डाक से मिला, जिसमें मुझे रेडियो-वार्ता सुनाने का निमंत्रण था। मैंने प्रसन्न होकर पत्नी से कागज और पेन मांगा, किंतु लिखता कैसे? हाथ काम करने में असमर्थ जो था। खैर, पत्नी से लिखने के लिए कहा। बोलने की कोशिश की तो ब-ब-ब के सिवा मुख से कुछ निकला नहीं। पत्नी खूब हंसती रहीं, फिर समझाया कि अच्छे होने पर लिखवाइये। मन में उत्साह था, आत्मा भी पूरी तरह जागृत थी; लेकिन विवश होकर रह गया।

उसी रात स्वप्न देखा कि अपनी वार्ता रेडियो पर पढ़ रहा हूं और वार्ता समाप्त करके बुझी से घर की ओर जल्दी-जल्दी कदम बढ़ाते हुए लौट रहा हूं।

—जगदीश नारायण वर्मा





फूल कैसे खिलते हैं

मुकुलचंद पांडेय

फूलों से लदी डालियां और फूलों से भरी
क्यारियां किसका मन नहीं मोहतीं?
फूल प्रकृति की सौंदर्य-वृद्धि ही नहीं करते,
वरन पौधों की वंशवृद्धि का उत्तरदायित्व
भी ढोते हैं। फूलों से ही बीज बनते हैं, जिन्हें
बोकर नये पेड़-पौधे उगाये जाते हैं।

हम जानते हैं कि अलग-अलग मौसमों
की अलग-अलग फसलें होती हैं। वस्तुतः
प्रत्येक पौधा जीवन-पर्यंत वृद्धि करता है
और उसकी वृद्धि में सूर्य के प्रकाश का मुख्य
हाथ है। पौधे को कितना तीव्र प्रकाश
मिलता है और कितने समय तक मिलता है,
यह बहुत महत्त्वपूर्ण है। मंद प्रकाश में उग
रहे पौधों के तने प्रायः पतले, लंबे व निर्बल
होते हैं, उनकी पत्तियां गूदेदार हो जाती हैं
और उनका रंग पीला पड़ जाता है।
प्रकाश में रखने पर वृद्धि तो अवश्य कम
हो जाती है, पर पौधे स्वस्थ रहते हैं। पौधे
नवनीत

की सक्रियता प्रकाश पर निर्भर है।

सूर्य का बहुत तेज प्रकाश भी पौधों को
नुक्सान पहुंचाता है। परंतु प्रकाश की कुछ
ऐसी तरंग-लंबाइयां भी हैं, जो अधिक
पौधों की वृद्धि के लिए अनुकूल होती हैं।
वैसे अलग-अलग जाति के पौधों की सर्वो-
त्तम वृद्धि के लिए अलग-अलग प्रकार का
प्रकाश जरूरी होता है। उदाहरणार्थ, टमा-
टर, घास आदि को ठीक पनपने व फूलने के
लिए काफी तेज रोशनी चाहिये। प्रकाश
जितना तीव्र होगा, उनकी वृद्धि उतनी ही
अधिक होगी। इसके विपरीत फर्न-बैंगे
कुछ पौधे मंद प्रकाश में अधिक वृद्धि करते
हैं। मगर गुलाब-जैसे कुछ पौधे दोनों ही
स्थितियों में मजे से वृद्धि करते हैं।

विभिन्न तरंग-लंबाइयों वाली किरणों
का पौधों की वृद्धि पर अलग-अलग प्रभाव
पड़ता है, भले उनकी तीव्रता एक-जैसी ही

करती

सौंनहो। प्रयोगों से पता चला है कि नीले रंग के प्रकाश में रखे हुए पौधे प्रायः छोटे रह जाते हैं और लाल रंग के प्रकाश में बढ़ जाते हैं और लाल रंग के प्रकाश में लकी लंबाई बहुत अधिक बढ़ जाती है; मगर वर्णक्रम के मध्यभाग की किरणों, जो कि प्रायः हरे रंग की होती हैं, किसी भी प्रकार का अनुकूल या प्रतिकूल प्रभाव नहीं डालती।

एक प्रयोग में सेम और जौ जैसे पौधों को छोटी तरंग-लंबाई वाले प्रकाश में रखा गया तो उनके तने की वृद्धि रुक गयी। फिर जब उन्हें अधिक तरंग-लंबाई वाले प्रकाश में रख दिया गया, तो तनों की रुकी हुई वृद्धि फिर शुरू हो गयी। परंतु इस प्रकार के प्रकाश का असर पत्तियों पर उलटा पड़ता है।

दिन के प्रकाश की अवधि का भी पौधों में फूल व फल लगने की क्रिया पर असर होता है। किसी पौधे को जितने समय तक प्रकाश मिलता है, उसे विज्ञान में 'दीप्तिकाल' कहते हैं। यह अलग-अलग ऋतुओं में अलग-अलग होता है। 'दीप्तिकाल' के प्रति पौधों के संवेदन को 'दीप्तिकालिकता' कहते हैं और वह भिन्न-भिन्न जातियों के पौधों में भिन्न-भिन्न होती है।

सामान्यतया वृद्धि की कुछ निश्चित अवधि के बाद पौधे में प्रजनन होता है। कुछ जातियों के पौधे प्रतिदिन कम समय तक प्रकाश पाने पर ही फूल उत्पन्न कर देते हैं। इन्हें 'अल्पदीप्तिकाली' पौधे कहते हैं। चावल, छोटा गोखरू, स्ट्राबेरी, गुलदाउदी-

आदि अल्पदीप्तिकाली हैं। इन्हें प्रतिदिन १२ घंटे से कम समय प्रकाश मिले तो भी पर्याप्त होता है। विज्ञानी गार्नर और एलांड ने १९५० में देखा कि तंबाकू के पौधे गरमियों में १०-१५ फुट तक लंबे हो जाते हैं पर फूलते नहीं, जबकि सर्दियों में उनमें ५ फुट के पौधों में ही फूल आ जाते हैं।

कुछ पौधों में फूल लगने के लिए काफी लंबे दिनों की आवश्यकता होती है। इन्हें 'दीर्घदीप्तिकाली' पौधे कहते हैं। ऐसे पौधे गरमियों के लंबे दिनों में फूल उत्पन्न करते हैं। यदि उन्हें रात में कुछ देर तक कृत्रिम प्रकाश में रख दिया जाये, तो उनमें जल्दी फूल व फल आ जाते हैं। गेहूं, चुकंदर आदि ऐसे पौधे हैं।

तीसरे प्रकार के पौधों को फूलने के लिए किसी खास अवधि तक प्रकाश मिलने की आवश्यकता नहीं होती। टमाटर, घिया, कपास, सूर्यमुखी आदि इसके उदाहरण हैं।

अल्पदीप्तिकाली पौधों को यदि ऐसे मौसम में या ऐसे स्थान पर उगाया जाये जहां सूर्य का प्रकाश दिन में १२ घंटे से अधिक समय रहता है, तो उनमें फूल नहीं आते और अगर आते भी हैं तो बहुत धीरे। ठीक यही बात दीर्घदीप्तिकाली पौधों को अल्पदीप्तिकाल वाले स्थानों या मौसम में उगाने पर होती है।

शायद यही कारण है कि प्रकृति भिन्न-भिन्न मौसमों में अपना शृंगार भिन्न-भिन्न प्रकार की फसलों से करती है।

दिलचस्प बात यह है कि प्रतिकूल परि-

हिंदी डाइजेस्ट

तीन महीने बाद-सिर्फ दूध काफी नहीं है.



डॉक्टरों की सिफारिश है



फैरेक्स®

**आपके मुन्हे का
आदर्श ठोस आहार**

डाक्टर फैरेक्स की सिफारिश क्यों करते हैं? क्योंकि यह आपके मुन्हे की पहले ठोस आहार की जरूरत पूरी करने वाला पूर्णतया संतुलित आहार है. फैरेक्स में आपके मुन्हे के दिमाग और शरीर के विकास के लिए पचने में आसान सही प्रोटीन है. शक्ति देने वाले कार्बोहाइड्रेट्स हैं और दांतों तथा हड्डियों को मजबूत बनाने के लिए पर्याप्त कैल्शियम, फास्फोरस और विटामिन डी हैं. साथ ही फैरेक्स में सबसे अधिक महत्व की चीज़ है सही मात्रा में आयरन, जो आपके मुन्हे के रक्त को स्वस्थ बनाये रखता है.

फैरेक्स विशेष रूप से मुन्हे की पाचन शक्ति के अनुरूप बनाया जाता है.

क्योंकि तीन महीने का होने पर भी मुन्हे की कोमल पाचन शक्ति प्रचलित आहारों को पचा नहीं सकती. साथ ही फैरेक्स आपके मुन्हे में सही तरीके से चबाने की आदत डालने और भोजन को ठोक से पचाने में मदद देता है.

और जब, फैरेक्स का नया २०० ग्राम का पैक भी उपलब्ध है, छासी बचत... और गुणों का भंडार !



मुन्हे का आदर्श ठोस आहार जल्य और सर्वांगीण विकास के लिए

लिटोस-GLF. 60-1510 M

निति में भी यदि पौधों को कुछ समय के लिए उनका विशेष दीप्तिकाल प्राप्त होता है तो भी उनमें फूल लग जाते हैं। यदि बाद में वह दीप्तिकाल रहे या नहीं। इस प्रकार के कई प्रयोग छोटे गोखरू के पौधों पर किये गये हैं।

प्रकाश की दृष्टि से पौधे का सबसे संवेदी भाग होता है पत्तियां। जिस पौधे की उनकी सब पत्तियां तोड़ दी गयी हों, उसे अनुकूल दीप्तिकाल देकर भी फूल उगाने में प्रेरित नहीं किया जा सकता। लेकिन अगर पौधे में सिर्फ एक पत्ता भी बाकी रहे तो अनुकूल दीप्तिकाल प्राप्त होने पर उसमें फूल लगने की प्रक्रिया अपने आप शुरू हो जाती है।

अलग-अलग पौधों की पत्तियों की प्रकाश-संवेदन की क्षमता अलग-अलग होती है और वह पौधे के अन्य गुणों पर निर्भर होती है। आयु का भी पत्तियों के प्रकाश-संवेदन पर काफी प्रभाव पड़ता है। सामान्य-तया नये पत्ते प्रकाश-संवेदी नहीं होते और जैसे-जैसे वे बढ़ते जाते हैं, उनकी संवेदनशीलता बढ़ती जाती है। पर कुछ पौधों में अधिक उम्र वाली पत्तियां प्रकाश-संवेदी भी होती हैं।

पौधों में फूल लगने के लिए जितनी आवश्यकता दैनिक दीप्तिकाल की है, उनी ही आवश्यकता रात के अंधकार की भी है। अंधकार के बिना पौधों में फूल नहीं खिल सकते। अल्पदीप्तिकाली पौधे को दीर्घ रात्रिकाल की आवश्यकता होती है,

जबकि दीर्घदीप्तिकाली पौधे को रात का अंधकार थोड़ी ही देर चाहिये। इस प्रकार हम अल्पदीप्तिकाली पौधे को 'दीर्घरात्रिकाली' पौधा भी कह सकते हैं। यदि किसी भी कारण पौधों के अभीष्ट रात्रिकाल में व्यवधान हो जाये तो पौधे फूलों का उत्पादन नहीं कर पाते।

इसी तरह वातावरण में उपस्थित कार्बन डाइ आक्साइड की मात्रा का भी फूलों के उत्पादन में काफी महत्त्व है। वातावरण में यदि कार्बन डाइ आक्साइड की पर्याप्त मात्रा न हो, तो फूलों का उत्पादन कुछ समय के लिए रुक सकता है।

स्पष्ट है कि पौधों की पत्तियां वातावरण से कार्बन डाइ आक्साइड सोखती हैं। ऐसा समझा जाता है कि इस प्रक्रिया में पत्तियों में कुछ हार्मोन बनते हैं, जो स्थानांतरण द्वारा शाखाओं के सिरों पर पहुंचकर वहां फूलों के उत्पादन को प्रेरित करते हैं। प्रयोगों में इस प्रकार के एक पादप-हार्मोन 'फ्लोरीजिन' का पता लग चुका है।

एक प्रयोग में वैज्ञानिकों ने अल्पदीप्तिकाली छोटे गोखरू के दो पौधे लिये। उनमें से एक पौधे पर दिन में थोड़े समय सूर्य का प्रकाश डाला जाता था। उसमें फूल खिलने लगे। दूसरे पौधे को प्रतिदिन काफी देर तक सूर्य के प्रकाश में रखा जाता था। उसमें फूलों का उत्पादन रुक गया। फिर उन दोनों पौधों का आपस में संकरण कराया गया। कुछ समय बाद दूसरे पौधे में भी फूल खिलने लगे।



उच्च स्तर के प्रति अनन्य निष्ठा
के लिए सुविख्यात

जेनिथ स्टील पाइप्स एंड इंडस्ट्रीज लि.

१९५, चर्चगेट रिकलेमेशन
बंबई-४०० ०२०

फोन: २९४४४५, टेलीक्स: ०११-२४५८
ग्राम। ZENPIPES

अत्युत्तम स्टील पाइपों, औ गैसिक
छुरियों और विशेष फौलाद के।
निर्माता।

दि इंडियन टूल
मैन्यूफैक्चर्स लि.

१०१, सायन रोड, सायन,
बंबई-४०० ०२२

सुनिश्चित होकर चुनाव
कीजिये

'डेंगर' ट्विस्ट ड्रिल्स रीमर्स,
कटर्स, टैप्स, टूलबिट्स
और माइक्रोमीटर्स

डेंगेलाय कार्बाइड
टूल्स और टिप्स

डेंगर-साके गियरहाब्स
और गियरशेपिंग कटर्स



प्रिसिशन का प्रतीक

इस प्रयोग से इस बात की पुष्टि हुई कि पहले पौधे में एक हारमोन का निर्माण हुआ और संकरण के बाद वह दूसरे पौधे में रिस-कर चला गया, जिससे दूसरा पौधा भी प्रभावित हो गया। यह भी देखा गया कि यदि पौधे की पत्ती के डंठल को इस प्रकार काट दिया जाये कि हारमोन का स्थानांतरण न हो पाये तो फूलों का उत्पादन रुक जाता है।

पौधे को प्रतिदिन मिलने वाले प्रकाश

की अवधि पर नियंत्रण रखकर उसमें कभी भी फूल उत्पन्न किये जा सकते हैं। इस प्रकार से वर्ष में केवल एक बार फूलने वाले पौधों में दो बार फूल लाये जा सकते हैं। खेती में भी दीप्तिकालिकता का बहुत आर्थिक महत्त्व है। प्रकाश की अवधि को कृत्रिम रूप से नियंत्रित करके अलग-अलग ऋतुओं में फलने वाले दो पौधों में एक साथ फल प्राप्त किये जा सकते हैं।

-५३, छोटा चांदगंज, लखनऊ-२२६००७



थोड़ा-बहुत

एक दिन वीरवल अपनी पंचवर्षीय पुत्री को लेकर शाही दरबार में उपस्थित हुए। बादशाह ने बच्ची से प्यार से पूछा—‘तुम्हें बोलना आता है?’

‘थोड़ा-बहुत।’ लड़की ने कहा।

‘थोड़े-बहुत से क्या मलतव?’ बादशाह ने प्रश्न किया।

‘उत्तर मिला—‘मैं बड़ों से थोड़ा, और छोटों से बहुत बोला करती हूँ।’

—सूर्यकांत त्रिपाठी

०००

एक सज्जन की घोड़ी एक दिन बेकार हो गयी और उसकी लात लगने से उन सज्जन की मां मर गयीं। अगले दिन आसपास के मुहल्लों की तमाम नौजवान सुहागिनें उनके घर बसा हो गयीं। भीड़ को देखकर उन्होंने अपनी पत्नी से कहा—‘देखा, मेरी मां कितनी लोक-प्रिय थीं, एक तुम्हीं हो जिसे मां से शिकायत रहती रही। इतनी सारी औरतें उनकी मृत्यु पर शोक प्रकट करने आयी हैं।’

पत्नी बोली—‘ये तुम्हारी मां की मृत्यु पर शोक प्रकट करने नहीं आयी हैं। ये तो हमारी घोड़ी मांगने आयी हैं।’

—डा. गोपाल प्रसाद ‘वंशी’

०००

बच्चों से ‘दूध’ पर दो पृष्ठों का निबंध घर से लिखकर लाने को कहा गया था। बच्चे दिन जांचने पर एक बच्चे का निबंध सिर्फ आधे पेज का था। शीर्षक था—‘कंडेन्स मिल्क’।

—‘वंशी’

०००

स्वर्गादपि गरीयसी

भवानीदत्त जोशी 'पारखी'

मोटर से पहाड़ की यात्रा कष्टसाध्य तो होती है परंतु गंतव्य पर पहुंचकर मार्ग का सारा कष्ट वैसे ही विस्मृत हो जाता है, जैसे पुत्र की प्राप्ति के पश्चात् मां प्रसव-पीडा को भूल जाती है।

जीवन के प्रारंभिक वर्ष पर्वतों की गोद में ही बिताये थे। पर होश संभाला तो अपने को कलकत्ता के अथाह जन-समुद्र में पाया। भीड़ में जब भी दम घुटने लगता, मुझे याद हो आती अपनी जन्मस्थली बैतड़ी की सुंदर छटा, जो नेपाल की पश्चिमी सीमा महाकाली अंचल में है। बैतड़ी के पूर्व में सेती नदी, पश्चिम में महाकाली का कल कल निनाद, पांच हजार से नौ हजार फुट तक ऊँचे नयनाभिराम हरे-भरे गिरि-शिखर एवं सुंदर गगन के आधार-स्तंभ से दिखने वाले हिम-पर्वत किसी भी पर्यटक का मन मोह लेने के लिए पर्याप्त हैं, फिर मेरी तो वह जन्मस्थली है।

हजारों नेपाली किशोरों को मिलने वाला घोर दारिद्र्य-जनित निर्वासन मुझे भी मिला था। चौबीस वर्षों से जब भी जन्म-भूमि जाने का प्रयास किया, जीवन के संघर्ष नवनीत

छुट्टी नामंजूर करते रहे। लेकिन दो साल पूर्व चैत्र के नवरात्र में अपनी मां के साथ अपनी जन्मस्थली की यात्रा पर निकल ही पड़ा।

बैतड़ी पहुंचा जाता है उत्तर प्रदेश के पिथौरागढ़ होकर। पुराने जर्जर पिथौरागढ़ में आधुनिक ढंग के नवनिर्मित आवास किसी संपन्न पश्चिमी देश के रंगीन छायाचित्र सरीखे दिख रहे थे। पौड़ीहाट के मोटर-स्टेशन से ही मां ने तर्जनी से दिखाया—'वह देखो बैतड़ी। तुम तो सब रास्ते-गांव भूल गये होगे!'

हम भारत के उत्तराखंड की पर्वत-मालाओं के अंतिम छोर पर पहुंच रहे थे। नीचे बल खाती महाकाली नदी दिख रही थी। ज्यों-ज्यों झूलाघाट निकट आ रहा था महाकाली का अनुपम सौंदर्य निखरता जा रहा था। झूलाघाट पहुंचते ही डोटियाल कहे जाने वाले नेपाली कुलियों ने हमारी मोटर घेर ली। मैंने बचपन में भी उन गिरिवासियों को ठीक इसी रूप में देखा था—तन ढंकने के लिए एक टाटनुमा स्त-निर्मित कपड़ा, राजमुकुट की भांति सिर

पर नेपाली टोपी और पीठ पर ढाई-तीन मन का ढोका । जैसे बोझ ढोने के लिए ही पैदा हुए हों ।

उस रात थकान के कारण जल्दी ही आंख सब गयी । अगली सुबह मुंह अंधेरे नींद टूटी । महाकाली के प्रवाह की गंभीर ध्वनि सुनाई दे रही थी । नेपाली कुलियों की 'हे-हो' की आवाजें आ रही थीं । संभवतः वे ट्रकों पर सामान लाद या उतार रहे थे । चौबीस वर्षों से जन्मस्थली के दर्शन के लिए लालायित मन यह सोचकर डूबा जा रहा था कि आज मैं अपने ही क्षेत्र में विदेशी बन गया हूं । बंगला कथाकार विभूतिभूषण वंद्योपाध्याय की 'पेवर पांचाली' का 'अपू' मुझे याद आ रहा था । मैं सोच रहा था, मैं भी 'अपू' की ही भांति विस्थापित हो गया हूं ।

साढ़े पांच बजे मां उठ गयी । दोनों महाकाली में स्नान करने गये । नदी तीव्र वेग से बह रही थी । नदी के इस तट पर भारतीय नहा रहे थे, सामने के तट पर नेपाली । बने ही भारत और नेपाल मानचित्र पर दो देश हों परंतु नेपाली जनता के लिए भारत कभी विदेश नहीं रहा ।

मां ने मुझे महाकाली की वह भंवर दिखायी जिसे स्थानीय भाषा में घोपट्या कहते हैं । इस शब्द का मूल अर्थ है—औंधा ।

उस पार की नेपाल की पगडंडी की ओर संकेत करते हुए मां ने कहा—'वहां से जाने-अनजाने कोई फिसल गया तो औंधा होकर घोपट्या में गिरता है ।'

'जाने-अनजाने ! क्या मतलब ? जान-

बूझकर कोई क्यों गिरेगा ?' मैं बोल उठा ।
'गृह-कलह से ऊबे, जिंदगी से निराश बहुत-से लोगों ने इसी घोपट्या में कूदकर जान गंवायी है ।'

स्नान आदि करके हम नेपाल जाने के लिए आगे बढ़े । उन दिनों झूलाघाट पुल की मरम्मत हो रही थी । पुल का द्वार सवेरे, दोपहर और सांझ को एक-एक घंटे के लिए इस पार से उस पार आने-जाने वालों के लिए खुलता था । शेष समय पुराने तख्तों के स्थान पर नये तख्ते लगाने का काम चलता था । पुल के दोनों ओर की जाली खुली हुई थी । नये-पुराने तख्तों के बीच की खाली जगह में तिरछे तख्ते बिछाकर थोड़ी देर के लिए मार्ग बना दिया जाता था ।

इस पार भारत का झूलाघाट है और उस पार नेपाल का । दोनों के बीच की दूरी सिर्फ कुछ हाथ की है, किंतु दोनों में जैसे जमीन-आसमान का अंतर है । यातायात की सुव्यवस्था से एक ओर का जीवन उज्ज्वल भविष्य की ओर कुलांचें भर रहा है; दूसरी ओर का निबिड अंधकार में रेंग रहा है । जिन्होंने देखा-सुना नहीं, वे विश्वास नहीं कर पायेंगे कि डोटी, डंडेलघूरा, बंझाग, अछाम, बाजुरा, जुम्ला एवं हुम्ला से ग्रामीण नेपाली नमक जैसी मामूली चीज खरीदने के लिए पंद्रह-पंद्रह, बीस-बीस दिन दुर्गम पर्वत-घाटियों की कष्टसाध्य यात्रा करके झूलाघाट आते हैं !

हमेशा की भांति उस दिन भी सवर्ण नेपाली झूलाघाट बाजार के इर्द-गिर्द एवं

उसे देखिये

- * उसकी नाक में खुजलाहट रहती है और गला सर्दी से जकड़ा रहता है ।
- * वह बिस्तर पर उठ बैठता है, या सीधे खिड़की की ओर भागता है ।
- * उसे घुटन महसूस होती है और सांस लेने में हांफता है ।
- * उसकी श्वास थोड़ी और जल्दी-जल्दी चलती है ।
- * उसकी उच्छ्वास भारी और लंबी होती है ।
- * खांसते समय वह पसीने से तरबतर हो जाता है ।
- * उसके होंठ पीले पड़ गये हैं ।
- * उसका चेहरा बहुत-कुछ कहता है ।

यह दमा है!

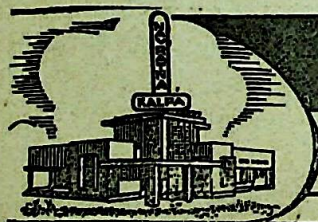
चिंता और दयनीयता की साकार मूर्ति

आंसू बहाने मात्र से क्या होगा ?

इस मूर्ति को आनंद और आशा की मूर्ति में बदल डालिये ।

सलाह लीजिये :

कविराज पं. दुर्गादत्त शर्मा वैद्य-वाचस्पति



**KALPA
PHARMACY**

NAVRATNA CHOWK
JULLUNDUR CITY. Pb.

PHONE: 2401 @ GRAMS: KALPAPHAR

(कृपया अंग्रेजी अथवा हिन्दी में पत्र-व्यवहार कीजिये ।)

महाकाली के तट पर अपना भोजन अलग-अलग बना रहे थे। भारत के किसी महा-नगर में जाकर वे भले ही आपद्धर्म में जहां उहां खाना खा लें, किंतु अपनी भूमि की वीथी में वे अपने ही हाथ का बनाया भोजन करते हैं। वैसे छुआछूत की इस जकड़न के बावजूद उनके दिलों में घृणा जैसी कोई चीज नहीं होती।

झूलाघाट से ही बैतड़ी सदर मुकाम के लिए दुर्गम चढ़ाई शुरू हो जाती है। हम तो बिना बोझ के भी कचछप-गति से चल पा रहे थे, जबकि भारवाही नेपाली दो-झाई मन का बोझ लादकर खरगोश की-सी तेजी से ऊपर-नीचे आ-जा रहे थे। लगभग दो घंटे की चढ़ाई के बाद हम सांगड़ी पीपल के चबूतरे पर विश्राम करने बैठे। स्थानीय लोगों का विश्वास है कि वह पीपल-वृक्ष सतयुग का है। वहां कुछ मिनट सुस्ताकर नदी-मयंतों की शोभा देखते और अपने सुख-दुःख की कथा कहते-सुनते हुए हम उस दुर्गम चढ़ाई पर आगे बढ़े।

ऊंचाई से झूलाघाट के घर घरों-दे-से दिख रहे थे। महाकाली के तट के खेतों में गेहूं और जौ की कटाई हो रही थी। मार्ग बहुत संकरा था, फिर भी भारवाही घोड़े पूरी रफ्तार से आ-जा रहे थे। पैर फिसलने से नीचे गिरने का भय था; ऊपर भूस्खलन या पत्थर लुढ़क आने का खतरा!

रहन-सहन की दृष्टि से बैतड़ी उत्तर प्रदेश के पिथौरागढ़ से काफी मिलता-जुलता है। एक अंतर यह था कि यहां नेपाली

राष्ट्रीयता का प्रतीक नेपाली टोपी प्रायः सब पुरुषों के सिर पर थी। मध्याह्न तक हम लोग घामीगांव के रैन्यासैनी त्रिपुरा सुंदरी के मंदिर पहुंचे। मुझे याद आया कि उस मंदिर में 'वोगाली' नामक प्रसिद्ध मेला लगता है, जिसमें नेपाल के डोटी और डंडेलधूरा के लोग ग्रामोद्योग की वस्तुएं बेचने आते हैं और भारत के पीलीभीत व वरेली तक के व्यवसायी अपनी दुकानें लगाते हैं।

गांव, खेत, चरागाह पार करते हुए हम शाम के करीब पिपला गांव पहुंचे। महा-काली अंचल में मंदिरों का सर्वोपरि स्थान है और मानो देवी-देवताओं का ही शासन है। ६० प्रतिशत मुकद्दमे वहां देवताओं की अदालत में पेश होते हैं। 'पीड़ित' व्यक्ति किसी भी देवी या देवता के मंदिर में जाकर 'फरियाद' कर आता है। कुछ ही दिनों में 'उत्पीड़क' के घर रोग-शोक, अशान्ति आदि का दौरा शुरू हो जाता है। ज्यों-ज्यों वह दवा करता है, बीमारी बढ़ती जाती है। हार कर वह 'घामी' (देवता के प्रवक्ता), से उपाय पूछता है। देवता जब घामी के सिर आते हैं, वह थर-थर कांपने लगता है, गेंद की भांति उछलने लगता है। कभी-कभी तो वह जलती धूनी में कूद पड़ता है; लोगों की मान्यता है कि देवता की शक्ति के कारण अंगारे उसे जला नहीं पाते।

घामी बताता है कि तुमने अमुक का हक मारा है.....। तब उत्पीड़क फरियादी की शिकायत दूर करता है और साथ ही

हिंदी डाइजेस्ट

प्रायश्चित्त के रूप में मंदिर में भी 'स्या' (पूजा-पाठ आदि) करवाता है। अनेक मंदिरों में बलिप्रथा भी है।

उस रात नवरात्र का प्रथम जागरण था। रिचपला गांव के बच्चे-बूढ़े सब एकत्र हुए थे। रात में देवता ने धामी के सिर आकर सबको आशीर्वाद दिया। थोड़ी देर को मुझे लगा कि मैंने आज तक जो कुछ स्वाध्याय किया है—कुरान, बाइबल, स्वामी दयानंद का सत्याथं प्रकाश एवं कार्ल मार्क्स की किताबें—वह सब भूल गया हूं। मुझे यह भी स्मरण नहीं रहा कि वैज्ञानिक चंद्रमा से लौटकर अब मंगल को 'प्रोब' (टोहपान) भेज रहे हैं। रात-भर महिलाएं सामूहिक स्वर में तैंतीस कोटि देवताओं का स्तुति-गान करती रहीं।

दूसरी सुबह हम लोग देवलहाट पहुंचे। स्थानीय भाषा में हाट का अर्थ बाजार नहीं, अपितु राजधानी होता है और 'देवल' कहते हैं देवालयों के स्थान को। बैतडी के देवल-हाट गांव में अति प्राचीन काल के सात देवालय हैं।

इन देवालयों को मैंने वचपन में सैकड़ों बार देखा था। कोई नहीं जानता कि वे कब किसने बनवाये। देवल के आंगन में महाकाली अंचल का प्रमुख त्योहार 'गौरा' (गौरीपूजन) मनाया जाता है। गौरा-पूजन उस इलाके के प्रत्येक गांव में होता है। भाद्र पूर्वाष्टमी के दिन धान के पौधों को एकत्र कर और सुंदर रेशमी वस्त्रों से सजाकर 'गौरा' बनायी जाती है और लकड़ी नबनीत

के 'महादेव' बनाकर महिलाएं सिर पर उल्टे रखकर सामूहिक गीत गाते हुए खेलती हैं।

फिर 'गौरा-महादेव' को जमीन पर रखकर सैकड़ों स्त्रियां एक दूसरी की कोहनी में कोहनी फंसाकर बड़ा-सा गोल घेरा बनाती हैं। घेरा एक-एक कदम बढ़ाकर गीत गाता गौरा-महादेव के चारों ओर हुआ घूमने लगता है। इसी प्रकार का दूसरा बड़ा घेरा पुरुषों का होता है। पुरुषों का घेरा बिना कोहनी जोड़ भी होता है; जिसमें अधिकांश लोगों के हाथों में मंजीरे होते हैं।

घेरे के अंदर ढोलक बजाने वाले भी नाचते रहते हैं। वे जो गीत गाते हैं, उनमें रामायण, महाभारत एवं पौराणिक कथाएं होती हैं। ये कथाएं ही उनके लिए श्रुति एवं स्मृति हैं। उन सुंदर, शिक्षाप्रद, काव्य-मय आख्यानों के रचयिता न जाने कौन थे।

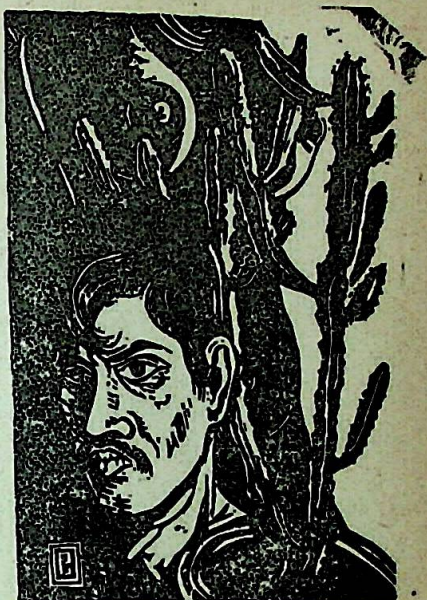
मैंने मां से कहा—'मां जिंदगी रही तो कभी गौरापूजन के समय भादों के महीने में हम यहां आयेंगे।' मां ने कहा—'क्यों नहीं बेटे, जब यह जन्मभूमि माता बुलायेगी तो जरूर आयेंगे।'।

थोड़ी देर में, गांव के लोग-विशेषतया महिलाएं—हमारे आने की सूचना पाकर हमारे पास आने लगे। अधिकांश की आंखों में स्नेह के आंसू छलक आये थे। दशकों बाद हमारे इस प्रकार अचानक आने की कल्पना किसी ने नहीं की थी।

मैंने उन सात देवालयों को बड़े ध्यान से देखा, यद्यपि मुझे मंदिर-स्थापत्य और

प्रतिमा-विधान के बारे में कुछ भी जानकारी नहीं है। उनमें से छह देवालय बहुत पास-पास बने हैं। सातवां अपेक्षाकृत छोटा एवं कुछ दूर हटकर है। पूरब से पहला देवालय छोटा है। दूसरे की छत में चार बड़ी मूर्तियां तेज दौड़ने की मुद्रा में खुदी हैं। प्रत्येक के एक हाथ में ढाल व दूसरे में कटार है। चार अन्य मूर्तियां दूसरी मुद्रा में हैं। मूर्तियों के बीच कमल बना है। इसी प्रकार सभी मंदिरों की छतों में भिन्न-भिन्न कलाकृतियां दिखायी गयी हैं। एक देवालय के द्वार बंद थे। उसमें शिवलिंग स्थापित है; किंतु कहा नहीं जा सकता कि शिवलिंग पर मंदिर बनाया गया है या मंदिर बनाकर उसमें शिवलिंग स्थापित किया गया है। देवालयों के समय का एक नौला (वावड़ी) भी है।

मैं गांव के एक वृद्ध सज्जन के पास गया जो देवालय से कुछ ही कदम की दूरी पर रहते थे। उन्हें मैंने अपना परिचय दिया तो वे रो पड़े। बोले—‘आदमी जिंदा रहे तो कभी न कभी मिलने की संभावना रहती है। अब मुझे देखो, सौ वर्ष से कुछ कम या ज्यादा का हो गया हूं। मैं तुम्हारे दादा के जमाने का हूं पता नहीं, मौत कहां भटक गयी है।’ आंसू पोंछकर वे पुनः बोले—‘हां, तो तुम क्या पूछ रहे थे इन देवालयों के विषय में..... ये कब बने ? ... कोई कुछ नहीं जानता। हम, हमारा बाप-दादा, परदादा सभी यही सुनते आये हैं कि ये सातों एक ही रात में बने थे। शाम को



प्रह्लाद बेहेरा का वुडकट

यहां कुछ नहीं था, पौ फटने तक छह देवालय तैयार हो चुके थे। सातवां अधूरा ही था कि ग्रामवासी जग गये और निर्माणकर्ता भाग गये। उन्हें किसी ने नहीं देखा। देवालयों में जिन पत्थरों का उपयोग हुआ है, उन्हें “शिला-पत्थर” कहते हैं। इस प्रकार का पत्थर इस देश में नहीं पाता जाता। पता नहीं, कहां से लाया गया। एक देवालय को पुराने जमाने में ही लुटेरों ने तोड़ डाला था। एक का गुंबद इधर पांच-सात वर्ष पहले टूटा है। टूटे गुंबद में बहुत सामान निकला।

मैंने पुजारीजी के घर में रखे उस सामान को देखा—दो साबुत तलवारें, एक खंडित

हिंदी डाइजेस्ट



भरपूर जिंदगी के लिए ताक़त

जीवन की खुशियाँ हैं ताक़त और तंदुरुस्ती इनके लिए ओकासा में शामिल हैं ६ बायो केमिकल्स, ६ खनिजद्रव्य, १० ज़रूरी विटामिन तथा अश्वगंधा और योहिम्बाइन जैसी अनमोल जड़ीबूटियाँ। जीवन को स्फूर्ति और उत्साह से भर दीजिए—ओकासा की मशहूर चांदी चढ़ी टॉनिक टिकियाँ लीजिए.

अब नया पॅकेट, इस्तेमाल में आसान

ओकासा

सभी बड़े-बड़े केमिस्टों के यहाँ मिलती है ओकासा की मुफ्त पुस्तिका के लिए लिखिए:

OKASA CO. PVT. LTD.,
P. B. No. 396, Bombay 400 001.

‘औरमो’ छाप अमोनिया कागज़

(पेंस-डाइजो टाइप)

- चमकदार और सुन्दर छपाई
- बरतने और रखने में टिकाऊ
- जल्दी और अच्छे परिणाम
- कम खर्च और सस्ता

स्टैंडर्ड साइज के रोल और शीट्स हर प्रकार के प्रिंटिंग फास्ट और सुपर फास्ट की स्पीड्स में मिलते हैं. रोशनी और नमी से बचाव के लिये पोलिथीन के ट्यूब और रैपरों में पैक किया हुआ होता है. यह देर तक खराब न होने वाला अच्छा क्वालिटी की छपाई के लिये गारंटी किया हुआ है, क्योंकि औरमो का बेस पेपर भी ओरिजेंट पेपर मिल्स का बनाया हुआ है।

ओरिजेंट पेपर मिल्स लिमिटेड

ब्रजराज नगर, उड़ीसा

तलवार, एक छुरी, तांबे की गोल पती-
वियां, करछुल, सरौता, नक्काशीदार
उकना, टोंटीदार लोटे एवं और बहुत-सी
वस्तुएं थीं।

बहुत तलाशने पर नेपाल सरकार के
गृह-मंत्रालय की प्रचार-उपशाखा द्वारा
काशित एक छोटी-सी पुस्तिका 'जिल्ला
वैतडी परिचय' पढ़ने को मिली। उसमें
उन देवालियों के विषय में इतना ही लिखा
था-देवलहाट के मंदिर वैतडी सदर मुकाम
के निकट ही हैं। प्राचीन युग में एक ही रात
में बने हैं, ऐसा सुना जाता है।

देवलहाट के बाद अपने जन्मगृह वनोंला
के खंडहरों में घंटों अपना वचपन ढूंढता
रहा। देखने को बहुत-कुछ बाकी था-
खलंगा जहां सरकारी कार्यालय हैं, जग-
नाथ मंदिर, ईश्वरीगंगा के तट पर बनी
शक्ति गुफा, कुल्लू कोट आदि।

फिर हम देहीमांडौ के प्रसिद्ध देवी-मंदिर
के दर्शन के लिए चल पड़े। मार्ग में भार-
वाही डोटियाल, भेड़वाले 'सौका' आ-जा
रहे थे। मां मुझे एक-एक गांव-पहाड़ आदि
का परिचय देती जा रही थीं। उन्होंने

मुझे वह पहाड़ दिखाया, जहां 'धज्याढूंगा'
(आवाज देने वाला पत्थर) है। सुनते हैं,
एक बार उस पत्थर ने आवाज देकर वैतडी
के राजा को लुटेरों के आने की सूचना दी
थी। लुटेरों ने पलटकर आवाज देने वाले
को ढूंढा तो उन्हें एक पत्थर मिला जो
निरंतर आवाज दे रहा था। उन्होंने भाले-
बल्लमों से उस पर प्रहार किया, तो उससे
खून की धारा बहने लगी। पत्थर पर बने
'धाव' आज भी देखे जा सकते हैं।

रास्ते-भर असंख्य छोटी-बड़ी पर्वत-
मालाओं के उस पार हिमालय का दृश्य
देख-देखकर मैं आनंदमग्न होता रहा।
देहीमांडौ से कुछ पहले पढ़ने वाले उच्च
स्थान से हिमालय अर्धवृत्त के आकार में
दिखता है।

वह अनुपम गिरि-दृश्य मैंने वचपन में
भी देखा था। दृश्य तो तब भी यही था;
परंतु दृष्टि कहां थी तब? दारिद्र्य एवं
अशिक्षा के निविड अंधकार में जी रहे
स्थानीय गिरिवासियों ने भला उस स्वर्गिक
दृश्य को देखा ही कब है!

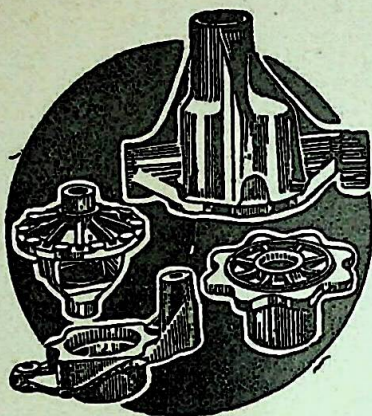
-१६२ नेहरू रोड, सदर बाजार, लखनऊ-२



पहला व्यक्ति : मैं पहाड़ पर इसलिए आया हूं कि मुझे खतरों से जूझने का शौक है,
बौर नयी चीजें देखने-जानने की कभी न खत्म होने वाली उत्सुकता है। मैं नित्य नये
स्थानों से सूर्योदय देखना चाहता हूं, और ऐसी जगहों पर घूमना चाहता हूं, जहां मनुष्य
ने कभी कदम न रखा हो। मैं पहाड़ों के शिखरों की नीरवता और अंचाई पर से ब्रह्मांड
को बांहों में भर लेना चाहता हूं और प्रकृति की सुंदरता को एकटक निहारता हुआ
अपने अंदर समो लेना चाहता हूं। और आप?

दूसरा व्यक्ति : और मैं इसलिए कि मेरी पत्नी रोज पक्के गाने का अभ्यास करती है।





दि इंडियन स्मेल्टिंग एंड रिफाईनिंग कंपनी लिमिटेड

का आपको निर्माण है, आयात प्रतिस्थापन को सफल बनाइये

एस० जी० आइरन के कार्स्टिंग

कांसा, पीतल, गनमेटल या लौहेतर धातुओं तथा इस्पात के पुजों व हिस्सों का स्थान ले सकते हैं।

मैलिएबल आइरन के कार्स्टिंग

अनेक प्रकार की चीजों में इस्पात के कार्स्टिंग का काम दे सकते हैं।

एस.जी. आइरन और मैलिएबल आइरन के कार्स्टिंगों में उच्च भौतिक गुण होते हैं, वे खरीदने में सुगम, दृढ़ एवं तन्यतायुक्त होते हैं, उनमें घिसाव कम होता है।



संपर्क कीजिये :

फेरसफाउंड्री, पंचपाखाड़ी, पहला पोखरनलेन, थाना (महाराष्ट्र)
उच्च श्रेणी के कार्स्टिंग्स व बचत के लिए डबल हैमर ब्रांड का
आग्रह कीजिये।

[पृष्ठ ४४ का शेष]

वे क्रमशः उसे मिलने बुलाते। वे अपने क्षेत्र में धर्मसभाएं भी आयोजित करते रहे। ये आज भी नियमित रूप से बुझी हैं। इनमें १५-२० भक्तों की ५०० धर्मियां विचार-विनिमय करती हैं, चूंकि पोलिश सरकार बड़ी धर्म-जमातों पर संद नहीं करती। इनमें लोग प्रार्थना और धार्मिक गानों पर चर्चा करते हैं।

वायतिला के घनिष्ठतम मित्र वे हैं जिन्हें वे क्राक्वा में पढ़ाते थे। इनमें से कुछ स्त्री-पुरुष तो अब तीसियों-चालीसियों में हैं, कुछ की शादियां भी वायतिल ने ही संपन्न करायीं और उनके बच्चों को बप्तिस्मा भी उन्होंने ने दिया। उन्हें कोई नाम कभी नहीं भूलता। ये सब लोग उन्हें 'बू-येक' (छोटे काका या चाचा) कहते हैं, जो कि पोलिश भाषा में प्रेम और आदर का सूचक है। बाज के क्राक्वा के बहुत-से साहसी स्वतंत्रचेता छात्रों के लिए वे 'कारोलेक' (कारोल वायतिला का प्यार-भरा लघु-ग्राम) हैं, जो उनके हर तरह से मददगार थे।

गिरजे-संबंधी प्रसंगों में वायतिला का दृष्टिकोण सुविदित है। द्वितीय वैटिकन काउन्सिल में भी उन्होंने गिरजा, विवाह और धार्मिक स्वातंत्र्य पर मौलिक वक्तव्य दिये थे। उनका यह सुदृढ़ विचार है कि पोप की एकछत्रता के बजाय अब कतिपय महत्त्वपूर्ण विषयों में बिशपों की राय लेकर निर्णय किया जाना चाहिये। साथ ही विशिष्ट के सभी संप्रदायों (काथलिक,

१९७९

प्रोटेस्टेंट, आर्थोडॉक्स चर्च) में एकता भी संस्थापित हो जाये तो अच्छा होगा।

पोलैंड के बाहर भी बहुत-से लोग उन्हें व्यक्तिगत रूप से जानते हैं। पिछले दस वर्षों में लगातार वे गिरजे की बड़ी-बड़ी धर्मसभाओं में पोलैंड के प्रतिनिधि चुने जाते रहे हैं। १९७० में उन्हें पोलैंड से बाहर जाने की अनुमति मिली थी तो वे अमरीका, कनाडा, आस्ट्रेलिया और पोलिनेसिया घूम आये थे।

किंतु वे उन काथलिक पादरियों से सहानुभूति नहीं रखते, जो धर्म में अविश्वास या संदेह रखते हैं या ब्रह्मचर्य-व्रत छोड़कर विवाह-बंधन में पड़ना चाहते हैं। स्त्रियों के प्रति भी उनका वही परंपरावादी पोलिश रुख है, जिसमें उन्हें अबला मानकर हर तरह से संरक्षित रखा जाता है। यों उनके मित्रों का यह कहना भी काफी वजनदार है कि अतीत के आचरण से ही किसी के भावी कार्यों का अनुमान नहीं किया जा सकता, विशेषतः जब कोई व्यक्ति उनके जैसा शक्त, विचारशील और मनस्वी हो। यों भी अब उन्हें पोलैंड में निरंतर चलते राज्य और गिरजे के दैनंदिन संघर्ष की तबालत नहीं है। अब तो पोप के रूप में उनसे यही आशा की जाती है कि वे सारी दुनिया की जरूरतों को दृष्टि में रखकर अपनी नीतियां और कार्यक्रम निर्धारित करेंगे।

देखना यह है कि तान्त्रा पर्वत के आरोहण, बर्फ पर फिसलने के खेल (स्कीइंग), मनोरम माजुरिखन झील की सैर, फुटबाल

हिंदी डाइजेस्ट

क्रीड़ा एवं लोकगीतों के सस्वर गायन के शौक की पूर्ति वे रोम में कैसे करेंगे। वे उस पोलैंड को कैसे भूल पायेंगे, जिसमें युवकों के झुंड के झुंड उन्हें अक्सर घेरे रहते थे ?”

आगामी मई १९७९ को क्राक्वा में संत स्तानिस्लाव के निधन की तौवीं शती मनायी जायेगी। संत टामस ए बेकेट की तरह

संत स्तानिस्लाव का भी लगभग वैसी ही स्थितियों में खून किया गया था। नये पोप ने घोषित किया है कि इस अवसर पर वे क्राक्वा अवश्य जायेंगे।

देखना है, तब धर्मविमुख साम्यवादी पोलिश सरकार की और उनकी आपस में निभती है या नहीं।

★ एक टंग से सही

वयोवृद्ध पत्रकार श्री ज्ञानचंदजी ने अपने स्कूली जीवन की यह दिलचस्प घटना मुझे सुनायी थी।

एक बार अंग्रेजी के पर्चे में सवाल आया कि पोर्शिया का चरित्र-निरूपण करो। (पोर्शिया शेक्सपियर के नाटक 'मर्बैट आफ वेनिस' की नायिका है; नायक है वसानियो।) एक लड़के ने उत्तर कुछ इस प्रकार लिखा—'पोर्शिया वाँज दि मदर ऑफ वसानियो'।

दूसरे दिन कक्षा में कापी दिखाते समय अध्यापक महोदय श्री अली अमीर साहब ने (जो बाद में हाइस्कूल बोर्ड के सचिव भी रहे) उस लड़के को बुलाकर उसका लिखा हुआ उत्तर सबको सुना दिया। सभी लड़के हंसने लगे। तभी अली अमीर साहब ने कहा—'क यू वर राइट इन ए सेन्स', क्योंकि.....

'माशूक न होते गर, आशिक न होते पैदा।

दर अस्ल हसीनो, तुम आशिकों की मां हो।'

—शुकदेव प्रसाद

०००

हिंदी के शुभचिंतक

दो मास पूर्व काका हाथरसी हमारे शहर आये। साहित्य-प्रेमियों ने उन्हें घेर लिया; फिर हास्थ-विनोद होने लगा। इन महानुभावों के बीच एक युवक प्रोफेसर अपना उत्सव हिंदी प्रेम प्रदर्शित कर रहे थे। तभी उनका बेटा कान्वेंट का यूनिफार्म पहन वहां आ पहुंचा। उसे देखकर काकाजी ने प्रोफेसर साहब को मुखातिब करके ये पंक्तियां कहीं:

शुभचिंतक श्रीमान राष्ट्रभाषा के सच्चे,

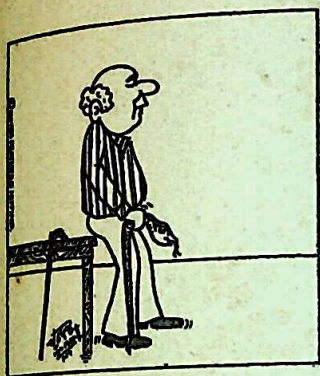
कान्वेंट में दाखिल करा दिये हैं बच्चे।

बाह-बाह ! सब हंस पड़े। बेचारे प्रोफेसर साहब एकदम झेंप गये।

—प्रेम शीला गुप्ता

★

दो क्षण तो हँस लें



कार्टून : मायरा फीचर्स

शिक्षक : शेक्सपियर और नेपोलियन
रोनापार्ट के बारे में क्या जानते हो ?

छात्र : सर, नेपोलियन शेक्सपियर के
नाटकों में बौने का पार्ट किया करता था ।

—श्याममनोहर व्यास

पिता ने पुत्र को आठ आने दिये और
गली के कोने की दुकान से सिगरेट का एक
पैकेट लाने को कहा । पुत्र पैसे लेकर घर से
भाग गया । बंबई पहुँचा और उसका भाग्य
चमका । वह खासा मालदार बन गया ।

दस वर्ष बाद पिता के घर के सामने एक
शानदार कार आकर खड़ी हुई । उसमें से
चमचमाते सूट में पुत्र उतरा और आकर
पिता के पैरों में झुक गया ।

पिता ने छूटते ही पूछा—‘सिगरेट का
पैकेट ले आया ?’

पुत्र ने जेब से पैकेट निकालकर पिता
की ओर बढ़ाया और कहा—‘इसका दाम अब
डेढ़ रुपया हो गया है, सो एक रुपया मुझे
और दीजिये।’

—अनुराग शर्मा

पत्नी : आप खुद तो दिन-
र रापण देते रहते हैं।
मैं बोझा भी बोलती हूँ तो
चुप रहने को कहते हैं !
मेराजी : मेरा भाषण
हजारों कानों में बंटकर
हल्का हो जाता है । पर
बुढ़ारा भाषण सिर्फ मुझे
ही सुनना पड़ता है ।

—बृजमोहन गुप्ता



पिकनिक है तो एक-आध चींटी तो आयेंगी ही ।



यांत्रिक प्रगति का अनुपम प्रतीक



लोहे में गोल छेद बनाना आसान है, पर उसे विभिन्न प्रकार का बनाने के लिए विशेष प्रकार के टूल 'ब्रोच' की जरूरत होती है। जिन-जिन देशों में मोटर, लारी, स्कूटर, मशीन टूल, इत्यादि इंजीनियरिंग उत्पादन होते हैं, वहां 'ब्रोच' उत्पादन परमावश्यक होता है। डेंगर-फोर्स्ट टूल लिमिटेड ने इस आवश्यकता की पूर्ति की है। उनके बनाये 'ब्रोच' से लोहे या अन्य धातु के भीतर व बाहर के भाग को आसानी से विविध स्वरूप दीजिये।



मुमुक्षु भवन वेद वेदाङ्ग पुस्तकालय
वाराणसी, चाराणसी।

डेंगर-फोर्स्ट टूल लि.,
पहला पोखरण रास्ता,
थाना (बंबई)



फैशन की
छहर



जियाजी
स्मूथिंग आर्टिंग

जियाजीराव हाउस प्रिन्स लिमिटेड, बिक्रानगर, बंगलूर (म.प्र.)

वार्षिक मूल्य रु. २४

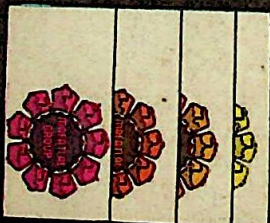
मूल्य रु. २-२५

सूर्य की
जीवनदाता
सबका आराध्य है
पूजन में अर्चन में
आत्म चिन्तन
मनन में
अंधे में, पकाया में,
जीवन की धेरणा में,
इन सभी के मूल में
सूर्य है,
सूर्य चम्क चले रहें,
सूर्य ही जल रहें



अपना ज्ञान

सूर्य, राति,
साधियां,
हैस मेटिरियल्स
व डेलिम



नवनीत

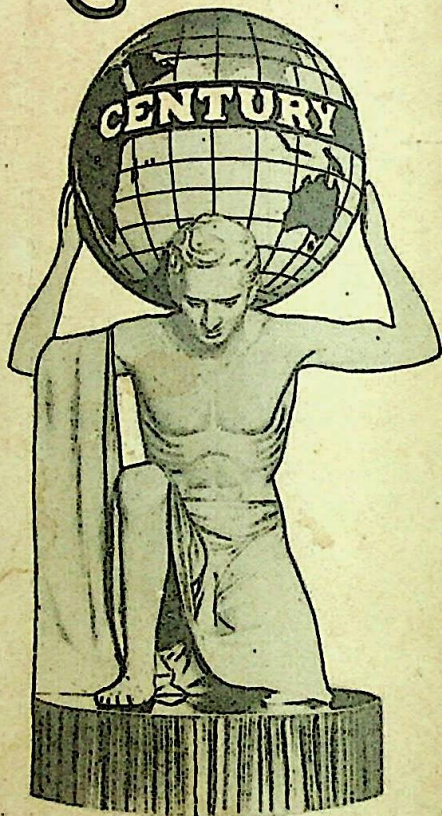
[हिन्दी डाइजैस्ट]

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय । न वेद वेदाङ्गं दुःखं मलय,
जस्सी, वाराणसी ।

माचं १९७९ मूल्य रु. २-२५ पं.



सेन्चुरी के अनुपम वस्त्र



१००% सूती कपड़ों के लिये
दि सेन्चुरी स्पिनिंग एण्ड मैनुफेक्चरिंग कंपनी लिमिटेड, बम्बई

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय
 भगवद् गीता, वाराणसी ।



एक चम्मचभर बेडेकर का अचार...

(भोजन अधिक लज्जतदार हो जाता है)

आपका भोजन साफ़ाहारी हो अथवा मांसाहारी
 बेडेकर का अचार आपके भोजन को
 अत्यधिक लज्जतदार बनाता है।

दाल-भात के साथ आम का अचार, दही-भात के साथ
 नींबू का अचार, मांसाहारी भोजन के साथ मिश्रित
 या मिर्ची का अचार और बच्चों व बड़ों के लिए
 नींबू के रस का अचार (इस बीबी को बच्चों से
 दूर रखिये नहीं तो वे दिन भर अचारही खाते
 रहेंगे।) बेडेकर का अचार आपके भोजन को
 स्वादिष्ट व रुचिकर बनाता है।

केवल बेडेकर ही आपको इतना
 जायकेदार अचार दे सकते हैं
 क्योंकि बेडेकर का अचार
 बनाने का वर्षों-वर्षों का
 अनुभव है।



B. Vasant/VPB/4-77

बेडेकर

बम्बई ४

रजिस्ट्रेशन ऑफ न्यूजपेपर्स (सेण्ट्रल) नियम, १९५६, के ८ वें नियम के अंतर्गत
 “नवनीत हिंदी डाइजेस्ट” नामक मासिक-पत्र के स्वामित्व तथा अन्य विषयों के संबंध में
 प्रकाशित किया जाने वाला विवरण :

फॉर्म ४

१. प्रकाशन का स्थान :-	३४१, तारदेव, बंबई-३४.
२. प्रकाशन का अवधिक्रम	प्रत्येक मास
३. मुद्रक का नाम :-	श्री. हरिप्रसाद नेवटिया
राष्ट्रीयता :-	भारतीय
पता :-	३४१, तारदेव, बंबई-३४.
४. प्रकाशक का नाम :-	श्री. हरिप्रसाद नेवटिया निमित्त स्वत्वाधिकारी, नवनीत प्रकाशन लिमिटेड
राष्ट्रीयता :-	भारतीय
पता :-	३४१, तारदेव, बंबई-३४.
५. संपादक का नाम :-	श्री. नारायण दत्त
राष्ट्रीयता :-	भारतीय
पता :-	३४१, तारदेव, बंबई-३४.
६. उन शेयर होल्डरों के नाम और पते, जिनके पास कुल पूंजी के १ प्रतिशत से अधिक शेयर हैं :-	श्री. ए. के. नेवटिया, माउंट यूनिट, बंबई-२६; श्री. हरिप्रसाद नेवटिया, माउंट यूनिट, बंबई-२६; श्री. कमलनयन नेवटिया, रत्नाकर, बंबई-६;
श्री. विमलनयन नेवटिया, माधुरी नेवटिया, विधुवदन नेवटिया, कमल महल, कारमाइकल रोड, बंबई-२६; प्रवीणकुमार नेवटिया, माउंट यूनिट, बंबई-२६; मालतीदेवी नेवटिया, रत्नाकर, बंबई-६; मालतीदेवी जालान कलकत्ता-९; सुधा नेवटिया, माउंट यूनिट, बंबई-२६; टी. एस्. गोखले, ३२४ बी. पी. रोड, बंबई-४.	

मैं, हरिप्रसाद नेवटिया, यह घोषित करता हूँ कि ऊपर दिये गये सब विवरण, जब तक मैं जानता हूँ तथा मेरा विश्वास है, सत्य हैं।

मार्च १९७९

नवनीत

प्रकाशक के हस्ताक्षर (हरिप्रसाद नेवटिया)

२

रु. 6650 में लंदन बस पर सैर का मज़ा.

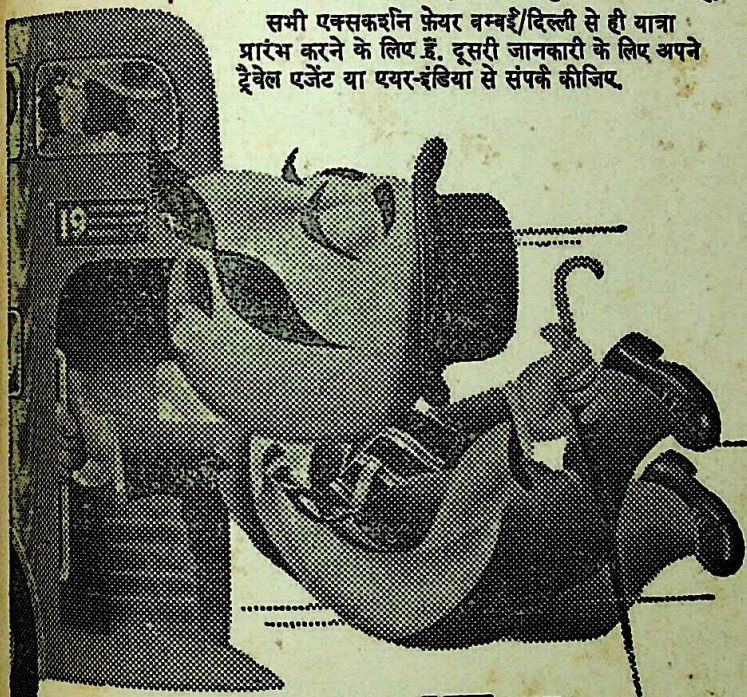
- रु. 5850 में मज़ेदार इटालियन खाने का लुत्फ.
रु. 6590 में स्विट्ज़रलैंड के शीतल प्राकृतिक सौंदर्य का आनन्द.
रु. 6600 में मोनालिसा की मोहक मुस्कान का रहस्य.

रोम, जिनेवा, पेरिस, लंदन. साथही हमारे वापसी
ट्रिपवाले एक्सकर्शन फ़ेयर पर और भी कई शहर.

मिलान—रु. 6099. बुसेल्स या प्राग या वार्सा—रु. 6600.

यूरोप के लिए सभी एक्सकर्शन फ़ेयर 14 से 90
दिनों तक के लिए मान्य हैं, तथा रास्ते में किसी एक
जगह रुकने की सुविधा भी है. भारत—यू. के. फ़ेयर
21 से 90 दिनों के लिए मान्य हैं और रु. 7350 देने पर
रास्ते में किसी एक जगह रुकने की सुविधा भी मिलती है.

सभी एक्सकर्शन फ़ेयर बम्बई/दिल्ली से ही यात्रा
प्रारंभ करने के लिए हैं. दूसरी जानकारी के लिए अपने
ट्रेवेल एजेंट या एयर-इंडिया से संपर्क कीजिए.



एयर-इंडिया
शुभ यात्रा... शुभ संदेश

AI-3908 A.

पहला
जल्दी
नहीं

दूसरा
अभी
नहीं

माता पिता
के लिए
नेक सलाह

तीसरा
कभी
नहीं

अपने पास के परिवार नियोजन केन्द्र,
प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र या ग्राम स्वास्थ्य सहायक
से सलाह और सामान लीजिए
आज ही उनके पास जाइए

५७७

(डीएवीपी=७८/४९५)

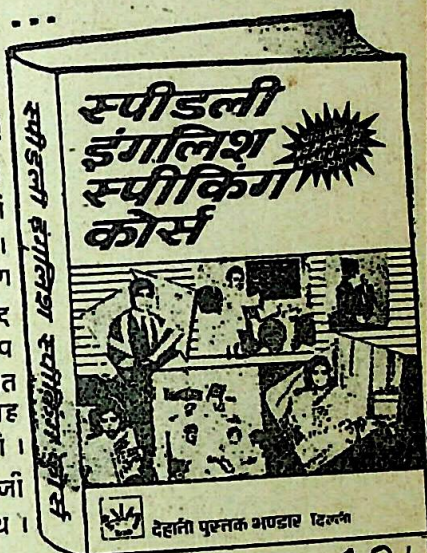
क्या आप अंग्रेजी बोलने व लिखने में अटकते हैं?

तो बिना शिक्षक, धारा प्रवाह अंग्रेजी बोलने के लिये पढ़ें ...

इसे क्यों और जरूर पढ़ें !

यह कोर्स

वार्तालाप शैली में वाक्य अंग्रेजी में और शब्द देवनागरी में हैं ।
अंग्रेजी बोलने में प्रयोग होने वाले लगभग 2750 अंग्रेजी शब्द तथा 3000 आम वार्तालाप के प्रभावशाली वाक्य जो आपको निश्चित रूप से धारा-प्रवाह अंग्रेजी बोलने में सहायक सिद्ध होंगे ।
भारत में पहली बार नई पद्धति से अंग्रेजी सिखाने वाला ग्रन्थ ।



मूल्य 18/-
डाक खर्च 2/-

सब 2२६ पृष्ठों की बजाय 408 पृष्ठों में सजिल्द संस्करण

सभी शिक्षण संस्थाओं द्वारा अपनाया गया कोर्स । 5 से अधिक प्रतियां एक साथ मंगाने पर 12½% विशेष रियायत तथा डाक-खर्च माफ़

48 पृष्ठों की अंग्रेजी-हिन्दी डिक्शनरी भी

केवल सजिल्द संस्करण ही खरीदे अजिल्द नहीं ।



देहाती पुस्तक भण्डार,
चावड़ी बाज़ार, देहली-110006. टेलीफोन-261030



भरपूर ज़िंदगी के लिए ताक़त

जीवन की खुशियाँ हैं ताक़त और तंदुरुस्ती
इनके लिए ओकासा में शामिल हैं ६ बायो
केमिकल्स, ६ खनिजद्रव्य, १० जरूरी
विटामिन तथा अश्वगंधा और योहिम्बाइन
जैसी अनमोल जड़ीबूटियाँ। जीवन को
स्फूर्ति और उत्साह से भर दीजिए—
ओकासा की मशहूर चांदी चढ़ी टॉनिक
टिकियाँ लीजिए.

अब नया पॅकेट, इस्तेमाल में आसान

ओकासा

सभी बड़े-बड़े केमिस्टों के यहाँ मिलती है
ओकासा की मुफ्त पुस्तिका के लिए लिखिए:

OKASA CO. PVT. LTD.,
P. B. No. 396, Bombay 400 001.



उच्च स्तर के प्रति अनन्य विष्ठा
के लिए सुविख्यात

जेनिथ स्टील पाइप्स एंड इंडस्ट्रीज लि.

१९५५, चर्चगेट रिक्लेमेशन
बंबई-४०० ०२०

फोन : २९४४४५, टेलीक्स : ०११-२४५८
ग्राम : ZENPIPES

अत्युत्तम स्टील पाइपों, ओ गैस
छुरियों और विशेष फौलाद के
निर्माता ।

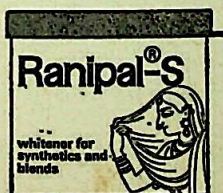
देखिए...

सर्वोत्तम सफ़ेदी के लिए

रानीपाल®



बलों को आखरी बार खंगालने से पहले पानी में थोड़ा सा रानीपाल मिलाइए और फिर देखिए... बलों पर चमकती सफ़ेदी! रानीपाल की सफ़ेदी! सफ़ेद बल कैसे भी हों—सूती, सिन्थेटिक और ब्लैंडिड—रानीपाल से चमक उठते हैं। नियमित रानीपाल लगाइए... और सफ़ेदी देखिए, दिखाइए!



सूती बलों के लिए रानीपाल®
सिन्थेटिक और ब्लैंडिड
बलों के लिए रानीपाल®—पुस

Shilpi SG-2A/78 Hin

दि इंडियन स्मेल्टिंग एंड रिफाइनिंग कंपनी लिमिटेड

रजिस्टर्ड कार्यालय :

सालबहादुर शास्त्री मार्ग, भांडुप, बंबई-४००.०७८

केबल : 'लकी' भांडुप

फोन : ५८४३८१

१.

नानफेरस यूनिट

सेमिस रोलिंग विभाग :

नानफेरस शीत, स्ट्रिप और फाइल,
नानफेरस प्लेट और सर्कल



एलाय और कार्स्टिंग विभाग :

एंटीफ्रिक्शन बेयरिंग मेटल्स

गनमैटल्स और ब्रोन्जेस, ब्रैजिंग सोल्डर्स और टिन सोल्डर्स
फाइन जिंक डाइकार्स्टिंग एलाय्स 'इस्माक ३' अल्युमिनियम,
बेस्ड डाइकार्स्टिंग एलाय्स, ब्रास और ब्रोन्ज राइस सातिव
कोर्ड, फिनिशड कार्स्टिंग रफ और मशीन्ड ।

२.

फेरस यूनिट :

फाउंड्री डिविजन

एस० जी० आयर्न और स्पेशल स्टील कार्स्टिंग्स

मेलिएबल आयर्न कार्स्टिंग्स

आइ० एस० एस०, बी० एस० एस०, एस० एस० आइ०

एम० के पेसिफिकेशन तथा ग्राहकों की विशेष आवश्यकता
के अनुसार सप्लाई किये जाते हैं ।

जीवन बीमा निगम की "कैप" शुभारम्भ आपके बच्चे के लिए



नई

चिल्ड्रन्स एन्डोसिपेडिड पालिसी

जीवन बीमा निगम ने आपके प्यारे बच्चे के लिए विशेष तौर पर एक नई लाभ सहित पालिसी शुरू की है। चिल्ड्रन्स एन्डोसिपेडिड पालिसी (संक्षेप में "कैप") की एक विशेषता यह है, कि आपके बच्चे के 16 या 21 वर्ष का हो जाने पर उसे एक मुक्त रकम मिलती है जो अपने पैरों पर खड़ा होने में उसकी सहायता करती है। उसके बाद, जीवन-सुरक्षा पालिसी की अवधि समाप्त होने तक जारी रहती है। और प्रीमियम भी तो अपेक्षाकृत बहुत कम है।

उदाहरण के तौर पर, आप अपने 1 वर्ष के बच्चे के लिए लगभग 31 ₹, मासिक (367.20 ₹, वार्षिक) प्रीमियम अदा करके 15,000 ₹, की 39 वर्ष तक चले वाली पालिसी ले सकते हैं। जीवन के शुभारम्भ के लिए उसे 18 वर्ष की आयु में 3121.20 ₹, की एक मुक्त रकम मिलेगी। उसके बाद भी बीमे की पूरी रकम के लिए जीवन-सुरक्षा जारी रहती है और 40 वर्ष की आयु में उसे बीमे के 18,000 ₹, तथा बोनस (कॉम्पन द्रो पर 8,600 ₹,) के साथ कुल 21,600 ₹,

की रकम मिलती है। 18 वर्ष की आयु के बाद किसी भी समय मृत्यु होने पर बीमे की पूरी रकम बोनस के साथ देय हो जाती है। 18 वर्ष की आयु से पहले ही मृत्यु होने पर उस समय तक जमा सभी प्रीमियम लौटा दिये जाते हैं।

निगम के पास आप कुल $367.20 \text{ ₹} \times 39 = 14,320.80 \text{ ₹}$, जिस पर आय कर में छूट भी मिलती है, जमा करते हैं और बदले में आपको 18 वर्ष की आयु में 3,121.20 ₹, तथा 40 वर्ष की आयु में 21,600 ₹, या इससे भी ज्यादा हो मिलते हैं।

"कैप" 14 वर्ष तक के बच्चों के लिए एक आदर्श उपहार है। प्रीमियम की विशेष रूप से कम दरों का लाभ उठाने के लिए अपने बच्चे का बीमा आज ही कराइये।

और अधिक जानकारी के लिए, जून सम्पर्क अधिकारी, भारतीय जीवन बीमा निगम, "योगदेव" जीवन बीमा मार्ग, बम्बई 400 021 को लिखें।



भारतीय जीवन बीमा निगम
जीवन बीमा का कोई विकल्प नहीं है

daCunha-LIC-60 Hin.

एक युगान्तकारी उपन्यास

मुजरिम हाज़िर

(दो खण्डों में संपूर्ण)

बंगला के सुप्रसिद्ध उपन्यासकार विमल मित्र का एक बेहद रोचक और हृदयग्राही वृहद् उपन्यास, जिसमें आज के सामाजिक जीवन का विशाल कनवास पर यथार्थ चित्रण हुआ है। अपनी लोकप्रियता के कारण कलकत्ता में बंगला रंगमंच पर लगातार प्रदर्शित। नयनाभिराम डिमाई आकार। मूल्य प्रथम खंड ३५/-द्वितीय खंड ४०/- डाक व्यय ५/-विशेष रियायत: ७०/-अग्रिम भेजकर रजिस्टर्ड डाक से घर बैठे प्राप्त करें।



-विमल मित्र के अन्य उपन्यास-

श्री विमल मित्र



- लज्जाहरण १०/- ● गवाह नम्बर तीन ८/- ● चरित्र १०/-
- मन क्यों उदास है ८/- ● जोगी मत जा ७/- ● काजल ५/-

राजपाल एण्ड सन्ज, काश्मीरी गेट, दिल्ली

बोरो क्रीम



अन्टीसेप्टिक परफ्युम्ड क्रीम

हर दिन सुबह और शाम त्वचा को मुलायम बनानेवाले रोगाणुनाशक-बोरोक्रीम के प्रयोग से आपकी त्वचा मुलायम और चिकनी रहेगी। बोरोक्रीम से आपकी त्वचा दाग धब्बों तथा त्वचा रोगों से मुक्त रहेगी। आपकी त्वचा को दिनभर भीनी-भीनी महक से शराबों और फूलों से ताजा रखेगा।



लिक चेन

जिसकी एक-एक कड़ी मजबूत, परखी हुई और
पूर्णतः विश्वसनीय है।



सभी उद्योगों व वाहनों में उपयुक्त



एलोय स्टील चेन एक विशेषता

इण्डियन लिक चेन मैन्फ. लि., भाण्डुप, बंबई-४०००७४

ध्रांगध्रा केमिकल वर्क्स लिमिटेड

‘निर्मल,’ तीसरी मंजिल, २४१ बैकबे रिक्लेमेशन

नरीमन पाइंट, बंबई ४०० ०२१

पार। SODACHEM

फोन : २३०७४३-२३४२७८

२३४३३०-२३४४२७

भारत में हैवी केमिकल्स के क्षेत्र में अग्रणी

अब अंतरराष्ट्रीय बाजार में भी प्रस्तुत :

✱ अपग्रेडेड इलमनाइट ✱

(सिथेटिक रूटाइल ९०-९२ TiO_2)

हमारे बनाये हुए रसायन :

✱ फास्टिक सोडा

✱ सोडा एश

✱ सोडियम बाइकार्बोनेट

✱ अमोनियम बाइकार्बोनेट

✱ कैल्शियम क्लोराइड

✱ ट्राइक्लोरो एथिलीन

✱ लिक्विड क्लोरीन

✱ हाइड्रोक्लोरिक एसिड

✱ साल्ट ✱

LINKED WITH
THE COUNTRY'S
PROGRESS
FOREVER!

Our close communication with colour for over two decades has created a fantastic range of high-quality Dyes and Pigments extensively used in every industry.

Textiles, Paints, Coir and leather, Printing inks and plastics...all rely on our fast, easy-to-use and economical Dyes. Amar Dye-Chem's colour know-how continues to enrich the nation, the world.



to enrich india's
life with colour!

AMAR DYE-CHEM LTD.

RANG UDYAN MAHIM, BOMBAY-400 018

BRANCHES: AHMEDABAD • CALCUTTA • DELHI • AMRITSAR • JAIPUR • MADRAS • MADURAI



MIRAT/ADC/203-A2

दि हिंदुस्तान शुगर मिल्स लिमिटेड

गोला गोकर्णनाथ, जिला-खीरी,
(उत्तर प्रदेश)

शुद्धश्वेत दानेदार शक्कर,
सैनिटाइज और डिनेचर्ड स्फिरोट,
शुद्ध अल्कोहल और औद्योगिक
उपयोग में आनवाली अल्कोहल

के उत्पादक

रजिस्टर्ड कार्यालय :

बनारस भवन, नरीमन पाइंट,

बंबई-४०००२१

टेलीफोन : २३३६२६

टेलीक्स : ०११-२५६३

टेलिग्राम : श्री (SHREE)
वित्त व्यापार संघटन के सदस्य

दि इंडियन टूल
मैन्यूफक्चर्स लि.

१०१, सायन रोड, सायन,
बंबई-४०० ०२२

सुनिश्चित होकर चुनाव
कीजिये

'डेंगर' ट्विस्ट ड्रिल्स रीमर्स,
कटर्स, टैप्स, टूलबिट्स
और माइक्रोमीटर्स

डेंगेलाय कार्बाइड
टूल्स और टिप्स

डेंगर-साके गियरहान्स
और गियरशॉपिंग कटर्स



प्रतिष्ठान का प्रतीक

ग्वालियर के

क्षितिज पर नया सिनार...

MAPP-GRASIM-6 Hin



ग्रासीलीन से
बने कपड़े शीघ्र ही
सभी प्रमुख स्टोर्स पर
उपलब्ध



दि ग्वालियर रेयन सिल्क मैन्युफैक्चरिंग
(वीर्विंग) कम्पनी लिमिटेड
स्टेपल फ्राइबर डिवीजन
विरलाग्राम, नागदा (एम. पी.)

Grasilene

सूटिंग्स/शर्टिंग्स
तथा अन्य कपड़े
वैज्ञानिक मिश्रित धागे ग्रासीलीन के से।

Grasilene

कृत्रिम सामान्य विस्कोज
तथा अन्य प्राकृतिक रेशों से बना एक
आश्चर्यजनक उच्च कार्यकारिता वाला
मिश्रित धागा !



संस्थापक
स्व. श्रीगोपाल नेवटिया
प्रबंध-संचालक
हरिप्रसाद नेवटिया

संपादक
नारायण दत्त
सहसंपादक
सुरेश सिन्हा
उपसंपादक
गिरिजाशंकर त्रिवेदी

व्यापार-व्यवस्थापक महेंद्र महेता

वर्ष २८ : अंक ३

इस अंक में

मार्च १९७९

पत्र-वृष्टि	पाठकों के पत्र	१७
आर्थिक विकास की दौड़ में भारत	डा. विष्णुप्रसाद	२४
सेमल (कविता)	डा. रामदरश मिश्र	३३
स्मृति के अंकुर	नीला चावला	३४
पंगातट पर प्रेरणा-गोमुख	सुंदरलाल बहुगुणा	३६
नसात्र	सुरेश सिंह	४१
धुस्वोव की जीवन-संध्या	चंद्रकांत विनीत	४४
मां	हर्बर	४८
बिरजुमार भारतीय राजनीति के	जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी	४९
नसात्र (कविता)	सुमित्रानंदन पंत	५६
दो लाजवाब शख्सियतें	कन्हैयालाल कपूर	५७
विज्ञान-विदु	केजिता	६१
पत्र पुरुष	रवीन्द्रनाथ त्यागी	६५
गजल	जहीर कुरेशी	६७
सेवा-समारोह	रामनारायण उपाध्याय	६८
दो शब्द डूब मरने की बात पर	सूर्यबाला	७२
फारसी साहित्य-सौरभ	अंबर बहराइची	७५

सिंगर स्टाकहोम में	अनिकेत	७८
अब वहां नहीं (कविता)	कुमार प्रशांत	८०
क्रेमलिन की झांकी	दिनेश सिंह	८१
रिक्शेवाले से बढ़ते-बढ़ते	अवनीन्द्र विद्यालंकार	८५
नाभिक को जोड़ता है कौन ?	शशिरंजन पांडे	८७
संथागार : प्राचीन भारत की संसद	डा. अ. ला. श्रीवास्तव	९१
सहृदयता	एरिक हाफर	९६
कृष्ण वंदे जगद्गुरुम्	मोहन गुप्त	९७
खुलकर नहीं खेली कभी होली	उपेन्द्रनाथ 'अश्वक'	१००
अभिषप्ता (हिंदी कहानी)	शीतांशु भारद्वाज	१०४
पहाड़ों की बर्फ (उर्दू कहानी)	अहमद नदीम कासमी	११२
गहरा चिंतन, पैनी उक्ति	१११
अंतःस्रोत (कविता)	अंचल	११४
रावण-दाह	संतकुमार टंडन 'रसिक'	११५
मिलिये फिर से मुल्ला नसरुद्दीन से	११८
रागिनी फ्लैट-जीवन की	पार्वती तम्पी	१३८
ग्रंथलोक	पृथ्वीनाथ शास्त्री	१४३

चित्रसज्जा : शंकर पिळ्ळे, लक्ष्मण, ओके, शेणै, प्रमोद यादव, पंकज गोस्वामी।

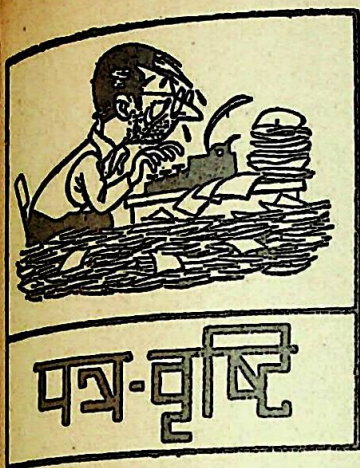


श्रद्धांजलि

हिंदी के समर्थ व्यंग्यकार तथा निष्ठावान पत्रकार श्री राधाकृष्ण का देहावसान ३ फरवरी १९७९ को रांची में हो गया। पिछले कई महीनों से वे श्वासरोग से पीड़ित थे। नवनीत-परिवार की श्रद्धांजलि।

—संपादक

श्री हरिप्रसाद नेवटिया द्वारा नवनीत प्रकाशन लिमिटेड, ३४१, ताडदेव, बंबई-३४ के लिए प्रकाशित तथा श्री बेंकटेश्वर प्रेस, ३६/४८ खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग, बंबई-४ में मुद्रित।



—राकेश शर्मा, होशंगाबाद, म. प्र.

०००

श्री जयंत नारळीकर के लेख 'उड़न-तश्तरियाँ' (फरवरी अंक) में व्यक्त विचारों में कोई नयापन नहीं है; पहले भी अन्य अनेक विज्ञानी इसी प्रकार के विचार प्रस्तुत कर चुके हैं। लेखक ने साक्ष्य देते समय गलत-बयानी भी की है। उदाहरणार्थ, उन्होंने यू. एफ. ओ. की खोज के बारे में अमरीकी 'प्राजेक्ट ब्लूबुक' का हवाला उड़न-तश्तरियों के अस्तित्व को नकारने के लिए दिया है, साथ ही 'टेम्परेचर इन्वर्शन' सिद्धांत से अपनी बात को पुष्ट करना चाहा है। परंतु उसी रिपोर्ट में टेम्परेचर इन्वर्शन सिद्धांत का पूर्णतया खंडन करते हुए कहा गया था कि वसावरणीय भौतिकी के विशेषज्ञों से वहस करने पर उन्होंने माना है कि इस प्रकार के सिद्धांतों में से कोई भी स्पष्टीकरण संतोषप्रद नहीं है; इस प्राजेक्ट के पास पहुंची अधिकांश सूचनाएं विज्ञानियों द्वारा दिये गये सुझावों से मेल नहीं खाती थीं। अमरीका के 'सायन्स डाइजेस्ट' के अगस्त १९७८ के अंक में छपे 'स्काइ मिराजेस एंड यू. एफ. ओज' नामक लेख में टेम्परेचर-इन्वर्शन सिद्धांत का खंडन किया जा चुका है। फिर भी नारळीकर उसी मुर्दा सिद्धांत का हवाला दे रहे ह। उड़न-तश्तरियाँ गुब्बारों से पहले भी देखी गयी थीं।

नारळीकर महोदय का कहना है कि आसमान में अनेक सभ्यताओं के रहते क्या उड़न-तश्तरियों का प्रमाण मिले बिना रह

सुपस्त पाठकों को नवनीत-परिवार की ओर से होली की वधाई। होली के अवसर पर इस अंक में हास्य और व्यंग्य की रचनाओं को प्रधानता दी गयी है। आशा है, पाठक इसे पसंद करेंगे। —संपादक

०००

नवनीत का मुखपृष्ठ हमेशा ही विशिष्टता लिये रहता है। लेकिन फरवरी का मुखपृष्ठ अपने आपमें बेजोड़ था। इसी अंक में उड़न-तश्तरियों के अस्तित्व के बारे में श्री जयंत वि. नारळीकर की राय विचारोत्तेजक और ज्ञानवर्धक लगी। श्री अवधनंदन का लेख 'भाओ से दूर हटता चीन' चीन की वर्तमान राजनीति पर प्रकाश डालने में सफल रहा है। सुरेश सिन्हा का लेख 'मर्द माताहारियों की माया' और 'रूसी राष्ट्र-पति के साथ एक रात' (मुहम्मद हैकल) बेहद रोचक थे।

१९७९

१७

हिंदी डाइजेस्ट

चंदे की दरें

(भारत में) एक वर्ष : २४ रु., दो वर्ष ४६ रु., तीन वर्ष : ६६ रु.। विदेशों में समुद्री डाक से : एक वर्ष : ६० रु.; दो वर्ष : १०५ रु.; तीन वर्ष : १५० रु.। विदेशों में हवाई डाक से : एशियाई देशों के लिए एक वर्ष का १२० रु., दो वर्ष का २१० रु., तीन वर्ष का ३०० रु., एशिया के अलावा अन्य देशों के लिए एक वर्ष १५० रु., दो वर्ष : २७५ रु. और तीन वर्ष : ४१० रु.।

सकता था ? यहां में कहना चाहूंगा कि अभी दिसंबर १९७८ के 'रीडर्स डाइजैस्ट' (भारतीय संस्करण) के पुस्तक-संक्षेप 'द फायर केम वाइ' में साइबेरिया में १९०८ ई. में हुए विस्फोट की रिपोर्ट प्रकाशित हुई है। अनेक शोध-वैज्ञानिकों ने स्वीकारा है कि वह परमाणु-विस्फोट था। विस्फोट से पूर्व उस बम के वाहक ने भीलों तक अपना रास्ता भी बदला था। अनुमान है कि वह विस्फोट हिरोशिमा वाले परमाणु-विस्फोट से १,५०० गुना अधिक शक्तिशाली था।

वास्तव में ज्यादातर वैज्ञानिक सिद्धांत अटकलों से भरे रहते हैं। देखने पर तो लगता है कि सितारों तक पहुंचना संभव नहीं; परंतु क्या यह आवश्यक है कि दूसरे ग्रहों में भी पार्थिव मनुष्यों जैसा ही जीव-विकास हुआ होगा और उन जीवों की विचार-प्रक्रिया या क्षमताएं भी हमारे जैसी ही होंगी ? क्या वे हमारी सीमाओं या सिद्धांतों से बंधे होंगे और उनके भेजे हुए

नवनीत

संदेश हमारे संदेश-प्रसारण की भांति होंगे ?

यह सिद्ध हो चुका है कि अंतरिक्ष में अत्यंत तीव्र गति से उड़ रहे यान में जीवों का आयुक्षय पृथ्वी पर होने वाले आयुक्षय से कहीं कम होता है; जीवों को 'स्पेन्स ऐनिमेशन' की दशा में रखने की संभावना सत्य सिद्ध हो सकती है; यान दूर-नियंत्रण के जरिये नियंत्रित किये जा सकते हैं; परमाणु या अन्य पदार्थों के जरिये ईंधन की समस्याएं हल की जा सकती हैं—इसलिए सितारों से धरती तक अंतरिक्ष-यान पहुंचना असंभव नहीं कहा जा सकता।

लेखक का यह तर्क भी पूर्वग्रहपूर्ण है कि ग्रहांंतरों की कोई अत्यंत समुन्नत सभ्यता पृथ्वी पर यान क्यों नहीं भेज पायी। वह प्रश्न तो उन सभ्यताओं से पूछा जाना चाहिये। धरती के जीव इसका क्या उत्तर दे सकते हैं !

लेखक ने कई प्रकार के 'सुपरनैचुरल फिनोमिना' के विरोध में भी तर्क दिये हैं, जबकि लेख की विषय-वस्तु से उनका विशेष संबंध नहीं। यों भी यूरी गैलर या अन्य पाखंडियों की धोखाधड़ी से अतीव्र प्रत्यक्ष (ई.एस.पी.) के हजारों प्रमाण गत सिद्ध नहीं हो जाते। टेलीपैथी, पूर्वज्ञान-वनी, दिव्यदृष्टि, मरणोत्तर जीवन आदि के अनगिनत मामले जांचे-परखे जा चुके हैं; स्वप्नों के बारे में धारणाएं बदल रही हैं; सितारों की गति एवं रात को उड़ने वाले पक्षियों की उड़ान में पारस्परिक संबंध दर्शाया जा चुका है। क्या डा. नार्लीकर

की कमी नहीं, जब हम मनहर चौहान की कहानी 'हत्या के वावजूद' के जे. वी. पंड्या बनकर अत्याचार, भ्रष्टाचार एवं अनीति के आगे मौन हो जाते हैं। पर क्यों? कोई उत्तर नहीं।

—उदय नागोरी, बीकानेर-३३४००१

०००

'औरत क्लर्क मर्दों की नजर में' (फरवरी अंक) निश्चय ही चुनौतीपूर्ण फन्तियों का संकलन है। पश्चिम जर्मनी में महिलाएं पुरुषों के समान अधिकार चाहती हैं; लेकिन भारत में क्या उन्हें जीने का अधिकार भी मिल सका है? यहां तो दहेज के मामले को लेकर हजारों युवतियों को आत्महत्या करनी पड़ती है। महिला-स्वातंत्र्य क्लबों और ऐसे लेखों की आवश्यकता भारत को कहीं ज्यादा है। लेखक ने इस गंभीर विषय को जिस खुलेपन, नवीनता और सजीवता के साथ पेश किया है, वह निश्चित ही सराहनीय है।

—राकेश टंडन, बीना, म. प्र.

०००

एक बात मुझे खटकती है कि आपकी पत्रिका में संपादकीय लेख नहीं होता। हो सकता है, यह आपकी सुनिश्चित नीति हो। परंतु आज प्रायः सभी पत्र-पत्रिकाएं सामयिक विषयों पर अपनी राय देती हैं और संपादकीय टिप्पणियों द्वारा जनमत निर्माण में योगदान देने की कोशिश करती हैं। पर नवनीत ऐसा क्यों नहीं करता?

—सूर्यनारायण त्रिपाठी, इलाहाबाद नवनीत

फरवरी अंक में प्रकाशित यात्रा-संस्मरण 'स्वर्गादिपि गरीयसी' को टाइप कराते समय गलती से 'गौड़ी हाट के मोटर स्टेशन' का 'पौड़ीहाट.....' हो गया और वैसे ही पृष्ठ १४८ पर छपा भी है। लेख आपके पास भेजने से पूर्व जांचने में मुझसे मनोयोग की कमी हुई, क्षमाप्रार्थी हूं।

एक गलती आपके यहां भी हुई है। पृष्ठ १५१ पर 'रिचपला गांव' का 'पिपला गांव' छप गया है।

—भवानीदत्त जोशी 'पारखी', लखनऊ
* हम भी क्षमाप्रार्थी हैं। —संपादक

०००

वनस्पति-विज्ञान के छात्र के नाते श्री राजेश्वर गंगवार के लेख 'शुक्र पर वनालों घर' (जनवरी अंक) की कुछ भूलों की ओर ध्यान खींचना चाहता हूं।

१. श्री गंगवार ने पृष्ठ २४ पर लिखा है कि 'ब्लू-ग्रीन ऐल्जी (सियानोफाइटा)... २२५ डिग्री शतांश तक गरम जल में भी नहीं मरती।' लेकिन इलेन कीन (१९१४) तथा कोपलैंड (१९३६) ने जांच से पाया कि सियानोफाइटा (शुद्ध उच्चारण—सियानोफाइटा) ऐल्जी ८५ डिग्री शतांश से अधिक तापमान वाले जल में जीवित नहीं रह पाती। कैपनर (देखिये, राउंड—१९६५) ने यहां तक कहा कि सियानोफाइटा ७३ डिग्री शतांश के आगे जीवित रह नहीं सकती।

२. उसी पृष्ठ पर लेखक ने लिखा है—'ऐल्जी नामक एककोशीय जीव पृथ्वी पर विद्यमान है।' वास्तव में बहुत-से ऐल्जी

बहुकोशीय होते हैं और अकेले ब्लू-ग्रीन
ऐंजी में ही राइमुलारिया, स्पाइरलीना
एल्गोस्माइरा, एफाइजीमेनन तथा अन्य
जीनस बहुकोशीय हैं।

३. लेखक ने यह भी कहा है कि ब्लू-ग्रीन
ऐंजी बैक्टीरिया की जन्मदात्री है। बहुत
कम वनस्पतिशास्त्री ऐसा मानते हैं। अधि-
कृत तो भौगोलिक जानकारी तथा अन्य
साधनों पर मानते हैं (उदाहरणस्वरूप—
इक्वीन तथा मौरिस, १९६५) कि बैक्टी-
रिया और ब्लू-ग्रीन ऐंजी लगभग एक ही
समय एक ऐसे अज्ञात पूर्वज से पैदा हुए,
जिन्हें पास फ्लाजेल्ला नहीं था। अतः ब्लू-
ग्रीन ऐंजी को बैक्टीरिया तथा अन्य वन-
स्पतियों का पूर्वज मानना जंचता नहीं है।

—प्रकाशकुमार झा, नयी दिल्ली-१९

०००

श्री नारंगजी के लेख 'रावणदाहःसंस्कृति
न विकृति' पर श्री प्रेमाचार्य शास्त्री की
प्रतिक्रिया जनवरी अंक में स्वतंत्र लेख के
रूप में पड़ी। महत्त्व के मुद्दों पर आयी
प्रतिक्रियाओं को लेख की बराबरी का दर्जा
देना न्यायपूर्ण रीति है। मुझे याद आता है,
श्री गंगाशंकर मिश्र के संपादकत्व में 'सिद्धांत'
में 'वादे वादे जायते तत्त्वबोधः' नाम का
संख्या, जिसके मूल में यही प्रौढ दृष्टि थी।

मेरा खयाल है, सीताहरण रावण का
दुष्करण था या नहीं, यह श्री नारंगजी
के लेख का मूल विषय नहीं है; मूल विषय
यह है कि रामलीला में रावण का पुतला
जाना स्वयं श्रीराम की स्थापित की हुई



हिंदूकी युकावा जिन्होंने मेसान कणों के
अस्तित्व की भविष्यवाणी (१९३५) की
और १९४९ में भौतिकी का नोबेल-पुरस्कार
पाया। इसी अंक में शशिरंजन पांडे के लेख
'नाभिक को जोड़ता है कौन?' में मेसान-
सिद्धांत और युकावा का जिक्र हुआ है।

मर्यादा के अनुरूप है या प्रतिरूप। मुझे
श्री नारंगजी की बात सही लगती है और
'मरणान्तानि वैराणि' श्लोक का उनका
किया हुआ अर्थ ही अधिक सही लगता है।
श्री नारंगजी ने यह तो नहीं कहा है कि
रावणवध ही श्रीराम का प्रयोजन था;
भार्या के हरणकर्ता को दंड देना और अप-
हृत भार्या को छुड़ाना उनका प्रयोजन था
और रावणवध से वह प्रयोजन सघ गया
था। श्रीराम के प्रयोजन की यह पहचान
सही है इसकी पुष्टि उन आघातकारी और
मानवीय कमजोरी से भरे शब्दों से भी
होती है, जिन्हें श्रीराम आगे चलकर अग्नि-
परीक्षा के प्रकरण में सीता से कहते हैं।
श्री नम्पिळ्ळै आदि वैष्णवाचार्यों की

१९७९

२१

हिंदी डाइजेस्ट

व्याख्याएं श्रीराम को परमपुरुष माननेवालों को ही संतोष दे सकती हैं; जो श्रीराम को 'नरचंद्रमा' मानकर उनके पुण्य-चरित का अध्ययन करना चाहते हैं उन्हें वे संतोष नहीं दे सकतीं।

—रामनारायण, बंबई ४०००३९

[२]

इसी अंक में आप श्री नारंगजी के लेख पर श्री संतकुमार टंडन 'रसिक' की प्रतिक्रिया लेख के रूप में पढ़ रहे हैं। और भी पत्र इस विषय पर हमारे पास आये हैं।

श्री राम किशोर शर्मा (लखर, म.प्र.) और श्री शिवानंद (मेरठ) का कहना है, रावण के पुतले को दुर्गुणों के प्रतीक के रूप में जलाया जाता है, ताकि लोग यह नसीहत लें कि 'रामादिवत् प्रवर्तितव्यं, न रावणादिवत्'। श्री पंकज आनंद (देवघर) का आक्षेप है कि लेखक ने उत्तर भारत के हिंदुओं पर तो आक्षेप किया है, पर दक्षिण भारत में जो राम का पुतला जलाया जाता है, उसकी चर्चा तक नहीं की है; फिर भी वे रावण-दाह पर होने वाले भारी खर्चों के पक्ष में नहीं हैं। श्री ब्रह्मस्वरूप गुप्त (आगरा) तथा कई अन्य पत्र-लेखकों ने भय व्यक्त किया है कि रावण को (सीता-हरण के मामले में) दोषी न मानना अनाचार और अव्यवस्था को बढ़ावा देगा। (असल में श्री नारंग का कहना इतना ही था कि पुराण-कालीन आचार-संहिता के अनुसार रावण का वह काम अपराध न था।) श्री चंद्राजीराव इंगळे (झांसी)

नवनीत

का मत है कि सोम-तारा, अहल्या-इंद्र के पौराणिक आख्यान वैदिक रूपकों के पक्के व्याख्यान हैं। (संभव है; परंतु यह श्री नारंगजी के लेख के विषय से दूर की चीज है।) श्री नेमिचंद्र भरडिया (हैदराबाद) ने नैतिकता की युग-स्वीकृत मान्यताओं पर कटाक्ष करते हुए पूछा है—'क्या सभ्य व्यक्ति कभी समाज द्वारा दोषी ठहराया गया है—चाहे वह देवराज इंद्र हो, चाहे जयद्रथ हो, या दुःशासन?' श्री कमलेश के भाटिया (नाथद्वारा) पूछते हैं कि आप के राक्षसों को नष्ट किये बिना हमें रावण के पुतले जलाने का अधिकार ही क्या है?

अब यह चर्चा समाप्त की जाती है।

—संपादक

०००

मैं नवनीत का तभी से नियमित पाठ रहा हूं, जब तीसरी कक्षा का विद्यार्थी था, यानी १९६६ से। और जहां तक हो सका, मैंने उससे भी पहले के नवनीत के अंक खोज-खोजकर पढ़े हैं। पर शायद ही कभी मैं नवनीत में (या किसी भी अन्य पत्रिका में) छपी कोई कविता या कहानी पढ़ी होगी। फिर भी न जाने किस प्रेरणावश मैंने नवंबर अंक में छपे फ्रेड उल्मन का लघु उपन्यास 'पुनर्मिलन' (पहली किस्त) को पढ़ डाला। फिर तो बड़ी बेसब्री से अगले अंक की प्रतीक्षा करने लगा, जो सार्थक रही। आशा है, इसी तरह की और भी सुंदर रचनाएं आप प्रकाशित करते रहेंगे, जिससे मुझ जैसे पाठक भी, जो कविता और कहानियों से कोशिश

मात्र

रहते हैं, इन्हें पढ़ने को विवश हो जायें।
—अशोक कुमार शर्मा, वाराणसी-५

०००

दिसंबर अंक में छपी सुधाजी की कहानी 'पहरा' में पाठक को मनोवैज्ञानिक अनुभूति के क्षितिज पर पहुँचाने की सूक्ष्म क्षमता थी। तमाम स्वच्छंदता के बावजूद नारी-हृदय पर स्वतः यह संकोच का पहरा रहता है कि कहीं किसी की संदिग्ध पलकों न उठ जायें। चरित्र के मामले में महीन से महीन गर्द भी न पड़े, इसके लिए वह अपने मनो-भावों का आंचल हमेशा दुरुस्त रखती है और परायणों की तो बात ही क्या, अपने ही पिता, भाई, पति, पुत्र के समक्ष भी संयम के प्रति सजग रहती है। संवेदनशीलता एवं कृतज्ञतावश वह कहीं निर्भीकमना हो जाती है तो कहीं संकोच में बंध जाती है।

'पहरा' में पत्नी के विदेशी होने पर भी उसमें नारीत्व की यह छाप लेखिका ने इतनी भाव-प्रवणता तथा चित्रात्मकता से प्रस्तुत की है कि कहानी के लघु कलेवर में निःसीमता की प्रतीति होती है।

—मंजुला शर्मा, हजारीबाग, बिहार

०००

दिसंबर अंक में खास पसंद आया डा. निजामउद्दीन का लेख 'हब्बा खातून'। लेखक

ने हब्बा की जीवन-गाथा और विरह-वेदना के गीतों को बड़े मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया है। —इकबाल हुसैन, बीकानेर-३३४००१

०००

दिसंबर १९७८ के नवनीत में श्री लक्ष्मी शंकर व्यास का लेख 'भारतेंदु की चार इच्छाएँ' पढ़कर चित्त आनंदित हुआ। मैं भारतेंदु-वंश का हूँ, अतः बताना चाहता हूँ कि भारतेंदुजी जिन ठाकुरजी का मनोरथ करना चाहते थे, वे अभी भी हमारे पैतृक भवन में बिराजते हैं तथा पूजे जाते हैं। हिंदी विश्वविद्यालय की कल्पना उनकी असाधारण दूरदृष्टि की परिचायक तो है ही साथ ही यह भी जताती है कि हम अपने कर्तव्यों से कितने विमुख हैं। पूर्ण हिंदी विश्वविद्यालय आज तक नहीं बना। अब तो हिंदी-सम्मेलन आयोजित करने में भी भय लगता है कि अन्य भाषाओं वाले नाराज न हों! —गिरीशचंद्र, वाराणसी

०००

'अब दालों की बारी है' और 'खारे पानी पर कैसे जीते हैं समुद्री पशु-पक्षी' दिसंबर अंक में विशेष ज्ञानवर्धक थे। आप 'विज्ञान-बिंदु' तो देते ही हैं, अगर सामान्य ज्ञान का कोई स्तंभ भी आरंभ करें तो अच्छा रहेगा। —अजय भारद्वाज, ऋषिकेश, देहाद्वन



संपादकीय पत्र-व्यवहार का पता: नवनीत हिंदी डाइजेस्ट, ३४१, ताडदेव, बंबई-४०००३४

फोन : ३७२८४७

व्यवस्था-संबंधी पत्र-व्यवहार का पता: नवनीत प्रकाशन लिमिटेड, आशीष बिल्डिंग, ३३५, वेलासिस रोड, ताडदेव, बंबई-४०००३४

फोन : ३९२८८७

श्रीगोपाल नेवटिया लेख-प्रतियोगिता (१९७८) में
द्वितीय पुरस्कार प्राप्त लेख :

क्या भारत आर्थिक विकास की दौड़ में पिछड़ता जा रहा है - और क्यों ?

डा. विष्णु प्रसाद

शोध-अधिकारी, कृषि-अर्थशास्त्र विभाग,
चंद्रशेखर आजाद कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कानपुर-२



किसी भी देश का आर्थिक विकास वहां के आर्थिक तथा आर्थिकेतर कारकों पर निर्भर होता है। आर्थिकेतर कारकों में सामाजिक एवं मानसिक कारण मुख्य हैं। विकासशील देश के लिए केवल यही आवश्यक नहीं है कि आर्थिक विकास के लिए वह पूंजी की लागत में वृद्धि करे, बल्कि यह भी आवश्यक है कि वह अपने सामाजिक, धार्मिक तथा राजनैतिक संस्थानों में भी समुचित परिवर्तन करे; क्योंकि इन संस्थानों का वातावरण मनुष्य की विचारधारा को गहराई तक प्रभावित करता है। सामाजिक तथा मानसिक कारकों को यदि स्थिर मान लें तो किसी देश का नवनीत

आर्थिक विकास वहां की जनसंख्या की वृद्धिदर, पूंजी-निर्माण, पूंजी-आय-अनुपात तथा पेशों के स्वरूप आदि पर निर्भर है।

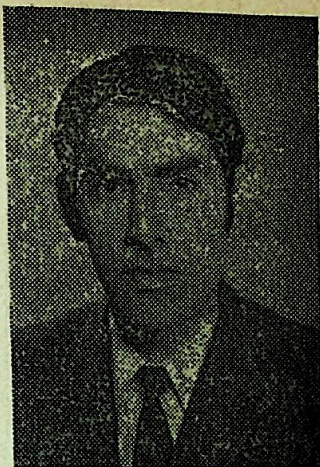
आर्थिक विकास का अभिप्राय ऐसी प्रक्रिया से है, जिसके अंतर्गत प्रतिव्यक्ति वास्तविक आय में लंबी अवधि तक वृद्धि होती है। प्रक्रिया का संबंध अर्थ-व्यवस्था के विभिन्न तत्त्वों के आपसी संबंधों तथा उनके कारण अर्थ-व्यवस्था में होने वाले परिवर्तनों से है। प्रतिव्यक्ति आय आर्थिक विकास का सही संकेतक है और उसकी वृद्धि के लिए यह आवश्यक है कि जनसंख्या की तुलना में राष्ट्रीय आय में वृद्धि अधिक तेजी से हो। प्रतिव्यक्ति वास्तविक आय

सांच

में होने वाली दीर्घकालिक वृद्धि को ही विकास का संकेतक माना गया है। यदि अल्पकाल में अनुकूल परिस्थितियों के कारण आय बढ़ती है और आगे चलकर फिर घट जाती है या घटती रहती है, तो उसे विकास नहीं माना जा सकता।

जहाँ तक आर्थिक विकास के मूल्यांकन का प्रश्न है, इसके कई आधार हो सकते हैं। जैसे कि अपने देश की अर्थ-व्यवस्था में होने वाले परिवर्तनों की उन्नतिशील देशों में होने वाले परिवर्तनों से तुलना करना। दूसरा आधार यह हो सकता है कि वर्तमान कार्य-संपादन की योजना-प्रणाली का आरंभ होने से पहले के कार्य-संपादन से तुलना करना। तीसरा आधार यह हो सकता है कि विकासजन्य परिवर्तनों और प्रगति का मूल्यांकन योजनाओं द्वारा निर्धारित लक्ष्य एवं उद्देश्यों के परिप्रेक्ष्य में किया जाये। इसके अतिरिक्त आर्थिक विकास का मूल्यांकन करने के लिए कुछ मापदंड आधार के रूप में लेना आवश्यक होगा। विभिन्न अर्थशास्त्रियों ने आर्थिक विकास के मूल्यांकन हेतु राष्ट्रीय तथा प्रतिव्यक्ति आय, जनसंख्या का दबाव, निवेश-बाय-अनुपात, व्यावसायिक ढांचा आदि मापदंडों को अपनाया है।

यहाँ हम अपने देश के आर्थिक विकास का मूल्यांकन उपर्युक्त आधार तथा मापदंड को ध्यान में रखकर करेंगे और देखेंगे कि आर्थिक विकास की दौड़ में भारत की क्या स्थिति है।



डा. विष्णु प्रसाद

राष्ट्रीय तथा प्रतिव्यक्ति आय

राष्ट्रीय आय देश की अर्थ-व्यवस्था का एक विहंगम एवं सांकेतिक चित्र प्रस्तुत करती है, जिसके सहारे अर्थ-व्यवस्था के स्तर तथा उसके विकास की दर के संबंध में जानकारी प्राप्त होती है। साधारणतया जिस दर से राष्ट्रीय आय में वृद्धि होती है, वही अर्थ-व्यवस्था की विकास-दर कहलाती है। इसी प्रकार प्रतिव्यक्ति आय से किसी अर्थ-व्यवस्था के मातहत लोगों के जीवन-स्तर तथा आर्थिक कल्याण के विषय में जानकारी प्राप्त होती है।

स्वतंत्रता-प्राप्ति से पहले की तुलना में स्वतंत्र भारत में राष्ट्रीय आय कहीं अधिक तेजी से बढ़ रही है। स्वतंत्रता-प्राप्ति के पहले देश की राष्ट्रीय आय १ प्रतिशत वार्षिक दर से बढ़ रही थी, जबकि वर्तमान वार्षिक वृद्धिदर ४ प्रतिशत के

लगभग है, अर्थात् पहले से ४ गुना अधिक । इस दृष्टि से राष्ट्रीय आय में हो रही वर्तमान वृद्धि संतोषजनक लगती है; किंतु हमारी आवश्यकता एवं पंचवर्षीय योजनाओं के निर्धारित लक्ष्यों के हिसाब से वृद्धि की यह दर बहुत अल्प और अपर्याप्त है। केवल प्रथम योजना में वृद्धि के निर्धारित लक्ष्य को प्राप्त किया जा सका।

प्रथम योजना-काल में राष्ट्रीय आय में ११ प्रतिशत वृद्धि का लक्ष्य निर्धारित किया गया था, जबकि वस्तुतः १८.४ प्रतिशत वृद्धि हुई। लेकिन द्वितीय तथा तृतीय योजनाओं में राष्ट्रीय आय में वृद्धि निर्धारित लक्ष्य से काफी पीछे रही। द्वितीय योजना में राष्ट्रीय आय में वृद्धि का निर्धारित लक्ष्य २५ प्रतिशत था; लेकिन २१.५ प्रतिशत ही वृद्धि हो सकी। तृतीय योजना में लक्ष्य ३० प्रतिशत वृद्धि का रखा गया था, जबकि राष्ट्रीय आय (१९६०-६१ की कीमतों के आधार पर) कुल १३.७ प्रतिशत बढ़ पायी। इसी प्रकार चतुर्थ योजना-काल में राष्ट्रीय आय की वार्षिक वृद्धिदर केवल ३.५ प्रतिशत रही, जबकि निर्धारित लक्ष्य ५.७ प्रतिशत का था।

राष्ट्रीय आय में ऐसी सीमित अथवा धीमी वृद्धि हो पाने के अनेक कारण रहे हैं। भारतीय अर्थ-व्यवस्था खेती पर बहुत अधिक अवलंबित है और मानसून एवं अन्य प्राकृतिक बातों पर भारी निर्भरता के कारण खेती हमारे यहां एक अनिश्चित व्यवसाय है। समय-समय पर कृषि-उत्पा-

नवनीत

दन की मात्रा में तीव्र उतार-चढ़ाव होता रहता है और इस कारण राष्ट्रीय आय में भी भारी घट-बढ़ होती रहती है। इसके अतिरिक्त देश में वचत और निवेश संबंधी प्रक्रियाएं योजनानुसार नहीं चलायी जा सकीं। पाकिस्तानी व चीनी आक्रमणों के कारण प्रतिरक्षा-व्यय में भारी वृद्धि आवश्यक हो गयी तथा आर्थिक विकास के लिए उपलब्ध संसाधनों की मात्रा सीमित हो गयी। साथ ही तृतीय योजना के समय में विदेशी सहायता की प्राप्ति बहुत अनिश्चित और कठिन बन गयी और राष्ट्रीय आय में वृद्धि नहीं हो सकी।

अंतरराष्ट्रीय दृष्टि से भी भारत में राष्ट्रीय आय की वृद्धिदर कम ही है। वर्ष १९६०-१९७१ के बीच राष्ट्रीय आय की औसत वार्षिक वृद्धिदर जापान में १०.७ प्रतिशत, सोवियत संघ में ७.२ प्रतिशत, अमरीका में ४.३ प्रतिशत, रुमानिया में ८.७ प्रतिशत, थाईलैंड में ८.१ प्रतिशत और फ्रांस में ५.७ प्रतिशत के लगभग थी, जबकि भारत में वह २.८ प्रतिशत के लगभग रही।

भारत में प्रतिव्यक्ति आय का स्तर भी बहुत नीचा है। १९६०-६१ की कीमतों पर देश की प्रतिव्यक्ति आय १९७५-७६ में ३६६ रुपये के लगभग थी, जो कि मासिक ३० रुपये होती है। चालू कीमतों पर प्रतिव्यक्ति आय वर्ष १९६०-६१ से १९७५-७६ की अवधि में बढ़ती रही है। १९६०-६१ में यह ३०६.०० रु. के लगभग थी

मात्र

वर्ष १९७५-७६ में १,००५ रुपये पर वृद्धि हुई अर्थात् १७ प्रतिशत वार्षिक दर प्रतिव्यक्ति आय बढ़ी।

लेकिन स्थिर कीमतों पर स्थिति काफी असंतोषजनक रही। वस्तुतः स्थिर कीमतों पर प्रतिव्यक्ति आय बढ़ने के बजाय, घट गयी। १९६२-६३, १९६५-६६, १९६६-६७, १९७१-७२, १९७२-७३ और १९७४-७५ की अवधि में स्थिर कीमतों पर प्रतिव्यक्ति आय में लगभग २० प्रतिशत वृद्धि हुई, जो कि वार्षिक दर से १.३ प्रतिशत के लगभग आती है। निःसंदेह यह वृद्धि बहुत ही अपर्याप्त और अल्प है और इसी कारण है कि लोगों के जीवनयापन-स्तर में कोई विशेष सुधार नहीं हुआ है।

यदि हम अलग-अलग योजना-कालों को लें, तो देखेंगे कि केवल प्रथम योजना के लक्ष्य को प्राप्त किया जा सका; अन्य योजनाओं के लक्ष्य से हम बहुत पीछे रहे। प्रथम योजना में निर्धारित लक्ष्य ४.२ प्रतिशत था, जबकि इस अवधि में प्रतिव्यक्ति आय ८.२ प्रतिशत बढ़ी। द्वितीय योजना में प्रतिव्यक्ति आय की वृद्धि का निर्धारित लक्ष्य १८ प्रतिशत था; लेकिन वृद्धि कुल ९.५ प्रतिशत ही हो सकी। तृतीय योजना में स्थिति और भी असंतोषजनक रही। इस योजना में निर्धारित लक्ष्य १७ प्रतिशत था, जबकि वृद्धि हुई केवल १.७ प्रतिशत। वार्षिक दर से यह ०.३ प्रतिशत के लगभग आती है, जो स्पष्टतः

नहीं के बराबर है। चतुर्थ योजना-काल में वार्षिक वृद्धिदर १.३ प्रतिशत रही, जो कि निर्धारित लक्ष्य (३.६ प्रतिशत) से बहुत कम थी।

अपनी पंचवर्षीय योजनाओं के निर्धारित लक्ष्य से ही हम पीछे नहीं हैं, बल्कि विश्व के अनेक छोटे-बड़े देशों की तुलना में भी हमारी प्रतिव्यक्ति आय की वृद्धिदर बहुत नीची है। उदाहरण के लिए, वर्ष १९६०-६१ के बीच प्रतिव्यक्ति आय की औसत वार्षिक वृद्धिदर जापान में ९.६ प्रतिशत, सोवियत संघ में ५.९ प्रतिशत, थाइलैंड में ४.९ प्रतिशत, फ्रांस में ४.७ प्रतिशत, सं. रा. अमरीका और श्रीलंका में ३.०० प्रतिशत तथा ब्राजील में २.३ प्रतिशत थी। मगर भारत में वह केवल १.५ प्रतिशत के लगभग रही। अन्य देशों की तुलना में हमारी प्रतिव्यक्ति आय कितनी कम है, इसका अनुमान तालिका-१ (पृष्ठ २८) से किया जा सकता है।

यदि हम राष्ट्रीय आय और प्रतिव्यक्ति आय की वृद्धिदरों की तुलना करें, तो दोनों के बीच बड़ा अंतर पायेंगे। उदाहरण के लिए, १९४८-४९ की स्थिर कीमतों पर १९४८-४९ और १९६०-६१ के बीच राष्ट्रीय आय में ४७.२ प्रतिशत की वृद्धि हुई, जबकि इसी अवधि में प्रतिव्यक्ति आय में वृद्धि केवल १७.५ प्रतिशत हुई। इसी प्रकार १९६०-६१ की स्थिर कीमतों पर १९६०-६१ और १९७५-७६ के बीच राष्ट्रीय आय में लगभग ६६ प्रतिशत और

प्रतिव्यक्ति आय में केवल २० प्रतिशत वृद्धि हुई। इस अंतर का कारण है देश की द्रुतगति से बढ़ती हुई जनसंख्या। फलस्वरूप राष्ट्रीय आय के अधिक बढ़ने पर भी प्रतिव्यक्ति आय कम बढ़ पाती है, जो कि आर्थिक विकास के निम्न स्तर का द्योतक है।

उत्पादन और उत्पादकता

भारतीय अर्थ-व्यवस्था मुख्यतः कृषि-प्रधान अर्थ-व्यवस्था है। देश की लगभग ४३ प्रतिशत राष्ट्रीय आय कृषिक्षेत्र से प्राप्त होती है और लगभग ७२ प्रतिशत कार्यशील जनसंख्या कृषि में लगी हुई है। स्पष्टतः राष्ट्रीय आय में तेजी से वृद्धि लाना एवं जनसाधारण के जीवनयापन-स्तर को ऊपर उठाना तभी संभव है, जब कृषिक्षेत्र में विकास हो। कृषि-उत्पादन का सूचकांक १९५० के १०० से १९६०-६१ में १४२.२ तथा १९७०-७१ में १८२.२ तक बढ़ गया, अर्थात् उसमें ८२.२ प्रतिशत की वृद्धि हुई। बीस वर्ष की इस अवधि में औसत वृद्धि दर ४.१ प्रतिशत

के लगभग आती है। कृषि-उत्पादकता के सूचकांक में भी इस बीच ३७.६ प्रतिशत की वृद्धि हुई, जो कि वार्षिक दर से १.० प्रतिशत आती है। यदि १९६०-६१ से १९७४-७५ की अवधि को लें, तो कृषि-उत्पादन में और कृषि-उत्पादकता में वार्षिक वृद्धि क्रमशः २.६ प्रतिशत और १.८ प्रतिशत आती है। इस तरह देश में कृषि-उत्पादन की मात्रा और कृषि-उत्पादकता बढ़ती रही है, लेकिन वह अपर्याप्त और अनिश्चित है। योजना के अनेक लक्ष्य प्राप्त नहीं किये जा सके। इसके कारणों में तकनीकी और संस्थागत कारण मुख्य हैं। इसके अतिरिक्त, शिक्षा और प्रशिक्षण का अभाव, सहायक उद्योगों की कमी आदि भी खेती के पिछड़ेपन के कारण रहे हैं।

जहाँ तक औद्योगिक विकास का प्रश्न है, प्रथम पंचवर्षीय योजना में ३९ प्रतिशत, द्वितीय योजना में ४१ प्रतिशत तथा तृतीय योजना में ४८ प्रतिशत की वृद्धि हुई। वार्षिक दर के हिसाब से यह वृद्धि ८ प्रति-

तालिका-१

कुछ देशों की प्रतिव्यक्ति आय १९७१ (अमरीकी डालरों में)

देश	प्रतिव्यक्ति आय	देश	प्रतिव्यक्ति आय
अमरीका	४५७३	घाना	२३८
कनाडा	३६७९	मिस्र	२००
फ्रांस	२८५१	थाईलैंड	१७४
आस्ट्रेलिया	२९१९	श्रीलंका	१६४
ब्रिटेन	२२१८	भारत	८८
जापान	१९००	बर्मा	६८

नवनीत

वृद्धि के लगभग आती है, जो कि निश्चय ही संतोषजनक है। किंतु चतुर्थ योजना में वृद्धि कुल ४ प्रतिशत रह गयी, जबकि निर्धारित लक्ष्य ९ प्रतिशत का था।

जनसंख्या का दबाव

जनसंख्या-वृद्धि और आर्थिक विकास एक दूसरे पर प्रभाव डालते हैं। भूमिगत संसाधनों व जनसंकुलता की दृष्टि से भारत की वृत्तगति से बढ़ रही जनसंख्या देश के आर्थिक विकास में बाधक है। प्रतिव्यक्ति कृषियोग्य भूमि का औसत हमारे यहां १९११ में १.१ एकड़ था, जो कि १९७१ में घटकर केवल ०.६ एकड़ रह गया। कृषिभूमि पर तेजी से बढ़ रहे इस जन-भार के कारण जोत का आकार छोटा होता जा रहा है, जिसका कृषि-उत्पादन और उत्पादकता पर बड़ा प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है।

बढ़ती हुई आवादी के कारण देश में खाद्यान्न की मांग तेजी से बढ़ रही है और देश के आर्थिक जीवन और विकास को विभिन्न रूपों में क्षति पहुंच रही है। ऊंची जन्यदर के कारण अनुत्पादक उपभोक्ताओं तथा अश्रित लोगों का बोझ बढ़ रहा है। देश में बेरोजगारों की संख्या १९५१ में ४० लाख और १९६१ में ७० लाख के लगभग थी, जो कि १९७१ में बढ़कर २ करोड़ २० लाख पर पहुंच गयी। तेजी से बढ़ती हुई जनसंख्या के कारण पूंजी-निर्माण की दर में आवश्यक तेजी लाना जटिल कार्य है, जो कि आर्थिक विकास में बाधक है।

१९७९

बचत तथा निवेश की दर

आर्थिक विकास संबंधी उपायों में सबसे महत्वपूर्ण स्थान दिया जाता है बचत और निवेश अथवा पूंजी-निर्माण में वृद्धि को। साधारणतया विकास की दर बहुत बड़ी सीमा तक निवेश की मात्रा व दर पर निर्भर रहती है। अन्य बातें समान हों तो निवेश जितना अधिक होगा, विकास भी उतनी ही तेजी के साथ हो सकेगा। निवेश-वृद्धि के जरिये, बढ़ती हुई जनसंख्या के लिए उत्पादन-संबंधी आवश्यक साज-सामान की व्यवस्था की जा सकती है। निवेश में अधिक वृद्धि होने की दशा में प्रतिश्रमिक मशीन व औजार अथवा उत्पादक वस्तुओं (कैपिटल गुड्स) की मात्रा में वृद्धि लायी जा सकती है। इस प्रकार कुल उत्पादन-मात्रा अथवा विकास-दर दोनों में वृद्धि लाना संभव है। बचत इस निवेश का आधार है।

उपर्युक्त दृष्टि से देश की प्रगति संतोषजनक नहीं रही है। प्रथम योजना-काल में निवेश-दर ८ प्रतिशत हो गयी थी, जो कि निर्धारित लक्ष्य ६.७ प्रतिशत से अधिक थी। द्वितीय योजना के अंत में निवेश-दर १२ प्रतिशत थी और यही लक्ष्य भी था। लेकिन इसके बाद निवेश-दर में निर्धारित लक्ष्य के हिसाब से वृद्धि नहीं हुई। तृतीय योजना के अंत में निवेश-दर १३.४ प्रतिशत (लक्ष्य : १४.५ प्रतिशत) और चतुर्थ योजना के अंत में केवल १२.९ प्रतिशत (लक्ष्य : १४.५ प्रतिशत) थी। वर्ष १९७५-

हिंदी डाइजेस्ट

अपने लेखकों से

- श्री** संपादकजी, कृपया मुझे बतायें कि नवनीत में आप कौसी रचनाएं लेते हैं ? इस आशय के अनेक पत्र हमें प्रतिदिन मिलते हैं। नवनीत के कुछ अंक देखने से भी इस प्रश्न का उत्तर मिल जायेगा; फिर भी यदि आप हमसे ही जानना चाहें, तो हम कहेंगे कि निम्नलिखित ढंग की रचनाएं हमें नहीं चाहिये :
- क. जो जीवन में अनास्था जगायें, देश के विभिन्न समुदायों में स्नेहसूत्र तोड़ें, व्यक्तिगत आक्षेप करें, सहज-स्वस्थ सुख को ठेस पहुंचायें; या जो कैलेंडर देखकर पर्वों, अयंतियों और पुण्यतिथियों के उपलक्ष्य में लिखी गयी हों।
 - ख. आपके अन्यत्र प्रकाशित लेख का नया संस्करण, कश्मीरी कविता का वाया तमिल उल्था, अल्बतों मोराविया के 'रोम की औरत' का भारतीय रूपांतर 'कौशांबी की कामकन्या', सर्वविधित हास्योक्तियों का श्रेय आपके जिला-महाकवि या तहसील-राजनेता को देने वाले विनोद-प्रसंग।
 - ग. इन विषयों से हमें परहेज है—वेदों में हृदय-प्रतिरोपण, कोसी कला के जंगल में जिराफ और बबरशेर की मुठभेड़, कामायनी में क अक्षर का प्रयोग, महावानर पुराण में मिर्जापुर का उल्लेख, कड़वी लौकी के रस से सर्वरोगों का उपचार, इत्यादि-इत्यादि।
 - * लेखमालाएं या मास-भविष्य लिखने के आश्वासन कृपया हमें न दें; न एक साथ सवा सत्ताईस कविताएं भेजें।
 - * रचना पर्याप्त हाशिया और पंक्तियों के बीच पर्याप्त स्थान छोड़कर सघे अक्षरों में कागज के एक ओर लिखकर या टाइप करवाकर भेजें। भेजने से पहले उसे एक बार पूरे मनोयोग से अवश्य पढ़ लें, भले उस दिन के बजाय अगले दिन की डाक में भेजनी पड़े। कार्बन-कापी न भेजें। लेख के आरंभ या अंत में अपना पूरा डाक-पता दें।
 - * रचना के साथ टिकट लगा और पूरा पता लिखा लिफाफा अवश्य रखें। अन्यथा रचना लौटायी नहीं जायेगी, न उसके बारे में पत्र-व्यवहार होगा।
 - * रचनाएं किसी व्यक्ति के नाम पर नहीं, निम्नलिखित पते पर भेजें :

संपादक-नवनीत हिंदी डाइजैस्ट

नवनीत प्रकाशन लिमिटेड , ३४१, ताडदेव, बंबई-३४

७६ में बढ़कर यह १६.०० प्रतिशत हो
गयी। वर्ष १९६०-६१ से १९७५-७६ तक
वचत और निवेश-दर नीचे तालिका-२ में
रखायी गयी है।

अन्य देशों की तुलना में भी भारत में
निवेश और वचत की दर बहुत कम है।
जापान, आस्ट्रेलिया, फ्रांस, कनाडा, ब्रिटेन,
अमरीका आदि देशों में वचत और निवेश
की दरें आम तौर पर २०-२२ प्रतिशत या
इससे अधिक हैं। इस दृष्टि से भारत बड़ा
निम्न देश ठहरता है, जैसा कि तालिका-
२ से स्पष्ट है। भारत में निवेश और वचत
की दरें केवल कम हैं, बल्कि इनमें वृद्धि
भी बहुत धीमी गति से हुई है। रिजर्व बैंक
के नवीनतम आंकड़ों के अनुसार, १९७५-
७६ में चालू कीमतों पर निवल राष्ट्रीय
उत्पादन के अनुपात में भारत में निवेश-
दर १६ प्रतिशत और वचत-दर १४.५
प्रतिशत थी। इन दोनों दरों के अंतर को
विदेशी वचत के प्रयोग से पूरा किया गया,
बिना भाग इस वर्ष १.५ प्रतिशत था।

हमारे विकास की आवश्यकता के हिसाब
से, विशेषतः द्रुतगति से बढ़ रही जनसंख्या
के संदर्भ में, निवेश की दर बहुत अपर्याप्त
है। प्रो. कालिन क्लार्क के हिसाब से 'यदि
किसी देश की जनसंख्या एक प्रतिशत
वार्षिक की दर से बढ़ रही हो तो वहां उसी
जीवनयापन-स्तर को बनाये रखने के
लिए लगभग ४ प्रतिशत वार्षिक अतिरिक्त
निवेश की आवश्यकता पड़ेगी।' इस दृष्टि
से भारत में वर्तमान निवेश-दर बहुत अप-
र्याप्त है; क्योंकि यहां पर जनसंख्या लगभग
२.५ प्रतिशत वार्षिक दर से बढ़ रही है।

व्यावसायिक ढांचा

आर्थिक विकास का व्यावसायिक ढांचे
से भी संबंध है। जैसे-जैसे कोई देश आर्थिक
प्रगति करता है, सामान्यतः वैसे-वैसे
उसमें कृषिक्षेत्र में लगी आबादी का अनुपात
घटता जाता है और उद्योग तथा सेवाक्षेत्र
में यह अनुपात बढ़ता जाता है। अनेक देशों
के आर्थिक-विकास इतिहास में यह बात
स्पष्ट दिखाई देती है। अमरीका में १८७०

तालिका-२

वचत और निवेश की दर (बाजार कीमतों पर
निवेश राष्ट्रीय उत्पादन का प्रतिशत)

विवरण	१९५५-५६	१९६०-६१	१९६५-६६	१९७०-७१	१९७५-७६
१. निवल घरेलू वचत	—	८.९	११.१	९.४	१४.५
२. विदेशी साधनों का निवल अंतःप्रवाह	—	३.१	२.३	१.१	१.५
३. कुल निवल निवेश (१+२)	८.०	१२.०	१३.४	१०.५	१६.०

* रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया, रिपोर्ट आन करेन्सी एन्ड फाइनेन्स १९७४-७५, खंड-१।

१९७९

के आस-पास ५० प्रतिशत कार्यशील जनसंख्या कृषिक्षेत्र में लगी हुई थी; शेष उद्योग-क्षेत्र व सेवाक्षेत्र में लगभग बराबर बंटी हुई थी। आर्थिक विकास के फलस्वरूप वहां कृषिक्षेत्र में श्रमिकों का अनुपात गिरते-गिरते १९५० के आस-पास १२ प्रतिशत रह गया था और सेवाक्षेत्र में बढ़ते-बढ़ते ५३ प्रतिशत और उद्योग-क्षेत्र में ३५ प्रतिशत तक पहुंच चुका था। इसी प्रकार जापान में १८७७ में कार्यशील जनसंख्या का अनुपात कृषिक्षेत्र में ८३ प्रतिशत, उद्योग-क्षेत्र में ६ प्रतिशत तथा सेवाक्षेत्र में ११ प्रतिशत था। जापान ने तेजी से उन्नति की और १९५० में यह अनुपात कृषिक्षेत्र में ४८, उद्योग-क्षेत्र में २१ तथा सेवाक्षेत्र में ३१ प्रतिशत हो गया।

भारत में इसके बिलकुल विपरीत व्यावसायिक ढांचा है। पिछले सत्तर वर्षों से भारत का व्यावसायिक ढांचा मूलरूप से स्थिर रहा है; उसमें कोई उल्लेखनीय या बुनियादी परिवर्तन नहीं हुआ है। यहां पर कृषि की प्रधानता एवं उद्योग व सेवाओं का पिछड़ापन स्पष्ट झलकता है। कार्यशील श्रमिकों का अनुपात यहां कृषिक्षेत्र में ७२ प्रतिशत, उद्योग में ११.२ प्रतिशत तथा सेवाक्षेत्र में १६.७ प्रतिशत के लगभग आता है। यही कारण है कि भारत अन्य देशों से आर्थिक विकास में पिछड़ा हुआ है। यद्यपि भारत में ७२ प्रतिशत कार्यशील जनसंख्या कृषि में लगी हुई है, फिर भी

हम कृषि-पदार्थों में आत्मनिर्भर नहीं हैं जबकि अमरीका में कुल ४ प्रतिशत श्रमिक खेती में लगे हैं और वे न केवल देश की सारी आवादी के लिए पर्याप्त अन्न पैदा करते हैं, बल्कि दूसरे देशों को काफी मात्रा में अन्न का निर्यात भी करते हैं। निष्कर्ष

भारत के आर्थिक विकास की सफलता व विफलता की जो झलकियां ऊपर प्रस्तुत की गयी हैं, उनसे कुछ महत्वपूर्ण बातें स्पष्ट होती हैं। इसमें कोई संदेह नहीं कि आयोग-काल में देश की अर्थ-व्यवस्था का वास्तविक मजबूत हुआ है और अर्थ-व्यवस्था बर्तमान भी बढ़ी है। किंतु विकास की दर धीमी रही है और जो विकास हुआ है, उसका लाभ मुख्य रूप से संपन्न लोगों को ही पहुंचा है। जनसंख्या में तेजी से वृद्धि होने के कारण गरीबों और बेरोजगारों की संख्या बढ़ रही है।

इस स्थिति से निवटने के लिए वृद्धि निवेश में वृद्धि करनी होगी और निवेश ढांचे में आवश्यक संशोधन करना होगा। हमें कृषि, लघु और ग्रामीण उद्योगों में विकास की ओर विशेष ध्यान देना होगा। इससे जनसाधारण की गरीबी और बेरोजगारी दूर करने में सहायता मिलेगी और आवश्यक उपभोग-वस्तुओं की उपलब्धता बढ़ेगी। इस प्रकार जनसाधारण के जीवन-यापन-स्तर को अपेक्षाकृत तेजी से ऊठा उठाना संभव होगा।



बबवीत

नूतन-पुरातन ज्ञान-विज्ञान और मनोरंजन

सोमाल

प्रिय,
तुम आये तो
मैं अपना हाड़-हाड़ फोड़कर
तुम्हारे लिए फूट पड़ा
और मेरा सारा रक्त फूल बनकर दहकता रहा।

अब इसमें मेरा क्या कसूर
कि मेरे सर्वस्व-समर्पण को भी
तुम अपनी गंध नहीं दे सके
और औरों का अधूरा समर्पण भी
तुम्हारी दी हुई सांस से महकता रहा !

—रामदरश मिश्र

ई-४/११, माडल टाउन, दिल्ली-९.



नीला चावला बेटे, क्षमा करना

शोध के संदर्भ में सेठ गोविंददासजी के नाटकों के बारे में सिलसिलेवार जानकारी चाहिये थी। उनकी एक पुस्तक, जिसकी मुझे आवश्यकता थी, लाइब्रेरी में मिल नहीं रही थी। गुरुजी ने सुझाव दिया कि सेठजी को लिखकर प्रकाशक का नाम-पता पूछ लो। सुझाव अच्छा था। मगर मन में गांठ थी—सेठजी जो 'राजाजी' कहलाते हैं, महल में रहते हैं और संसद-सदस्य हैं, क्या एक मामूली-सी छात्रा के पोस्ट-कार्ड का उत्तर देंगे? फिर भी किसी तरह कांड लिखा। कुछ दिन बाद उत्तर मिला—'दिल्ली था..... यहां आने पर कांड पड़ा। पब्लिशरों की तालिका भिजवा रहा हूं। पर मेरे पास वह पुस्तक भी है, ढूँढनी पड़ेगी। मिलते ही भिजवा दूंगा।'

पत्र स्वयं उनका लिखा हुआ नहीं था। पता चला, ज्यादातर पत्र सचिव ही लिखते हैं। जो हों, जो जानकारी चाहिये थी, मिल

नवनीत

गयी थी। मगर प्रकाशक से पता लगवाया तो पता चला कि पुस्तक उसके पास भी नहीं है। सेठजी का आश्वासन भी स्मृति में धूमिल हो गया था।

उसी हताश अवस्था में रजिस्ट्री से एक पुस्तक मिली। प्रेषक के रूप में सेठजी का नाम देखकर मैं चकित रह गयी। वही पुस्तक थी, जिसकी मुझे आवश्यकता थी। साथ में सेठजी के हाथ का लिखा हुआ पत्र भी था—'बेटे, क्षमा करना, देर हुई। अस्वस्थ हो जाने के कारण ऐसा हुआ।'

आज भी कहीं भी उनका नाम पढ़ती हूँ तो उनकी उस सहृदयता की स्मृति से मन आर्द्र हो जाता है।

रेशमी लिफाफा

नीले रंग का रेशमी-सा लिफाफा बगल डालकर आपके घर में डाल जायें तो!

.... तो उसे देखकर कितनी ही अनर्गल कहानियां मस्तिष्क में उभरने लगती हैं।

वात सन १९६८ की है। मैं उस समय शोध को मुंह का कौर समझ बैठी थी। लाइब्रेरी, पुस्तकें, पते और पत्र—सारा लि यही काम चलता।

इसी व्यस्तता में मुझे मिला एक कीमती नीला लिफाफा, जिस पर नाम इतने सुंदर अक्षरों में लिखा था कि बस देखते ही को मैं सोच न पायी कि इतना सुंदर लिफाफा मुझे कौन भेज सकता है। सो बिना जिक्र के ही उसे खोला।

सबसे पहले संबोधन और फिर लिखने

मात्र

जानने का नाम। लिखने वाले का नाम पढ़ते ही प्रसन्नता का पार न रहा। कारण, मन में नहीं यह छाप थी कि श्री कृष्णचंदर हिंदी लिखना नहीं जानते, वे उर्दू में लिखते हैं और उनका अनुवाद हिंदी में होता है। वास्तविकता क्या है, यह जानने के लिए उन्हें फिर लिखा, साथ ही नीले लिफाफे और कागज की प्रशंसा भी की।

ब्यासमय उत्तर मिला। 'मैं जिदगी के लिए जिदादिली को जरूरी मानता हूं। येरा लेख, लिफाफा, पैड तुम्हें पसंद आया हो तो जिदादिली सीखो—यही मुझे अच्छा लगेगा। किसने कहा कि मुझे हिंदी लिखना नहीं आता? सलमा को तुम्हारा सलाम बोलूंगा।'।

काल ने जब उन्हें अपना ग्रास बनाया, तब अपने शोध का पूरा न होना न अखर। वह, एक हूक उठी कि जो व्यक्ति खतों में भी लोगों को जीने की कला सिखाया करते हैं, वे कैसे स्वयं लोगों के शिकार हो जाया करते हैं! उनकी पत्नी सलमा सिद्दीकी की यह पंक्ति याद आती है—'चली है रस्म यहां, कोई न सिर उठाके चले।' मौत के सामने कौन सिर उठा सकता है!

खालीपन का भराव

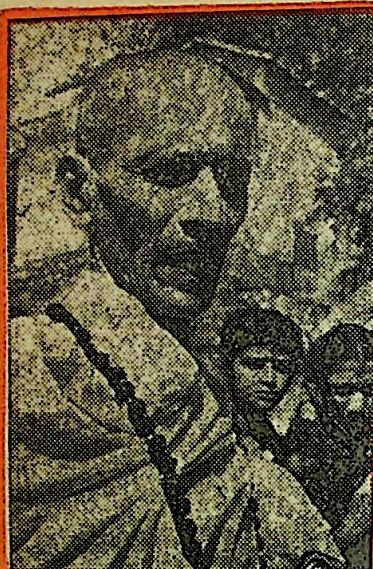
मांगें भीख नहीं मिलती और बिन मांगे मोती मिल जाते हैं। स्नेह और सद्भाव के मामले में कईवार ऐसा ही होता है। बात सन ७१-७२ की है। एक पत्र मिला—'कहाहो, कैसी हो, नहीं जानता। पर मन में

तुम्हारा ध्यान बना है, इसलिए यह जवाबी खत लिखवा रहा हूं। तुरंत सूचित करो कहां हो।' पढ़कर मन में हर्ष और निराशा का एक साथ संचार हुआ। जवाबी/कांड काटकर फौरन उत्तर लिख डाला—'आदरणीय, वहीं हूं जहां थी। जमीन जो पैरों के नीचे थी, काफी कुछ दरक गयी है। हालात बिगड़े ही हैं, सुधरे नहीं हैं। इतना खालीपन है कि समझ में नहीं आता, कैसे भरा जाये.....' और न जाने क्या-क्या.....

पत्र गंतव्य तक पहुंचा, प्रत्युत्तर, मिला—'समय को कैसे भरना है, इसका प्रबंध कर दिया है। कम से कम तीस दिन तुम उससे भराव महसूस करोगी।' और दो-तीन दिन बाद डाकिया एक बड़ा-सा बंडल लाया। किताबें और किताबें।..... तमिल, तेलुगु, कन्नड, बंगला, संस्कृत के अनुवाद, हिंदी के चुनिंदा उपन्यास! उन्हें देखने से ही प्रकट हो जाता था कि भेजने वाले का स्वाध्याय उतना ही व्यापक और परिष्कृत है, जितना कि उसका हृदय विशाल और स्नेहिल—वरना दूसरे के खालीपन को भराव देने की चिंता उन्हें होती ही क्यों।

आज वे नहीं हैं। उनके स्वर्गवास से पूर्व उनका एक पत्र मिला था—'नवनीत' में छपे एक संस्मरण की प्रशंसा में। उस समय वे बंबई अस्पताल में थे। कठोर शारीरिक क्लेश में भी दूसरों की इतनी चिंता! मुझे दुःख है कि अपने इस परम हितेच्छु के दर्शन मैं कभी न कर पायी। उनका नाम है—स्वर्गीय रामेश्वर टांटिया।





गंगातट पर प्रेमणा-गोपुण

सुंदरलाल बहुगुणा

नवनीत

घण्टे-घड़ियालों और आरती के मधुर गायन के बाद आश्रम का अंतिम दैनिक कार्यक्रम—सत्संग—समाप्त हो चुका था। आश्रम के लगभग २०० अंतेवासी और देश-विदेश से आये हुए जिज्ञासु भक्त सोने की तैयारी कर रहे थे। परंतु भारतीय संस्कृति के दो महान तत्त्व योग और वेदांत का विश्व-भर में फैली हुई अपनी तीन सौ से अधिक शाखाओं के माध्यम से प्रसार करने वाले शिवानंद आश्रम के परमाध्यक्ष स्वामी चिदानंद अपने सहकारी स्वामी दयानंद के साथ एक निराश्रित कुष्ठरोगियों को सुरक्षित आश्रय देने की समस्या पर विचार-विमर्श में व्यस्त थे।

सदा प्रफुल्लित रहने वाले इस संत के चेहरे पर चिंता की रेखाएं पढ़ी जा सकती थीं। दो दिन पूर्व ही तो यह महिला उनके आश्रम में सहायता के लिए आयी थी। उसका घर पहाड़ों में टिहरी-गढ़वाल जिले के एक दूरस्थ अगम्य गांव में था। जब तक वह मेहनत कर सकती थी, पति ने उसे रोटी-कपड़ा दिया। परंतु कुछ से अब उसके हाथ गल गये तो उसे घर से निकाल दिया। गांव के एक सज्जन उसे ऋषिकेश तक ले आये। परंतु पहाड़ के एक छोटे गांव से पहली बार बाहर आकर उसे चारों ओर उपेक्षा और दुतकार ही मिली थी। उसने आत्महत्या करने के लिए गंगा में छलांग मार दी। परंतु किसी ने बीच-बाहर निकाल लिया। अब वह आयी थी आश्रय के लिए स्वामी चिदानंदजी के पास।

परंतु आश्रम के दोनों ओर ढालुवाला और झुपड़ी में स्वामीजी द्वारा स्थापित कुष्ठ-रोगियों में स्थान नहीं था, इसलिए स्वामीजी ने उसे कुछ समय के लिए श्रीनगर (गढ़वाल) भेजने और उसके वहां रहने का बर्ष बहन करने का निश्चय किया था। परंतु वह स्वामीजी के आश्रम से दूर नहीं आना चाहती थी।

XXX

सितंबर १९७६ में देश-विदेश से हजारों श्रद्धालु भक्त स्वामी चिदानंदजी की षष्ठिपूर्ति समारोह के लिए ऋषिकेश के शिवानंद आश्रम में एकत्र हुए थे। आध्यात्मिक और सांस्कृतिक सम्मेलनों की चहल-पहल के बीच आश्रम के विश्वनाथ-मंदिर के प्रांगण में दो पुरुष और एक महिला घूम रहे थे। ये तीनों महारोगी (कुष्ठरोगी) थे। मैंने उनसे पूछा—‘यहां कैसे आये?’ उनका उत्तर था—‘स्वामी चिदानंदजी से मिलने।’ मैंने फिर पूछा—‘उनसे क्या काम है?’ उत्तर मिला—‘वे ही हमारे सब कुछ हैं।’ और उस व्यस्त कार्यक्रम के बीच भी स्वामीजी ने उनकी व्यक्तिगत समस्याओं को सुलझाने के लिए समय निकाल ही लिया। उन रोगियों के स्वस्थ बच्चों को कहीं अलग रखने का प्रबंध करना था।

ये कुष्ठरोगी टिहरी-गढ़वाल जिले की उस बालगंगा घाटी के रहने वाले थे, जहां कोई नौ वर्ष पूर्व बूढ़ाकेदार गांव में एक हृदय-विदारक घटना हुई थी। पुत्र ने अपनी कुष्ठरोगिणी मां को जिंदा जला

१९७९

डाला था और उसके बाद विरादरी को भोज भी दिया था। वहां यह अंधविश्वास है कि कुष्ठरोगी को जिंदा जला दिया जाये तो वह पूरा कुनवा सदा के लिए रोग से मुक्त हो जाता है।

XXX

कर्नाटक के एक जमींदार परिवार में जनमे स्वामी चिदानंद (पूर्वाश्रम में श्रीधर राव) के दिल में तरुणाई में ही कुष्ठ-रोगियों के प्रति सहानुभूति उमड़ पड़ी थी और उन्होंने अपने पिता के घर के विशाल अहाते की दीवार के सहारे कुष्ठरोगियों के लिए झोपड़ियां बनावा दीं। छब्बीस वर्ष की अवस्था में वे घर छोड़कर ऋषिकेश आये और स्वामी शिवानंदजी के अंतर्वासी बन गये।

एक दिन गंगातट पर घूमते समय ब्रह्मचारी श्रीधर को क्षत-विक्षत शरीर वाला एक कुष्ठरोगी दिखाई दिया जिसका सारा शरीर एक विशाल, पका हुआ घाव था। ब्रह्मचारी श्रीधर उसे उठाकर लाये, अपने हाथों उसके घाव धोये और आश्रम के निकट ही उसके लिए झोपड़ी बना दी। अब वे प्रतिदिन उसके घाव धोते, उसके लिए आश्रम की रसोई से खाना ले जाकर उसे भोजन कराते, उसके बाद ही स्वयं भोजन करते।

वह रोगी तो कुछ दिनों के बाद चल बसा। परंतु ऋषिकेश-लक्ष्मण झूला की सड़कों पर भीख मांगने वाले कुष्ठरोगियों की सेवा करना उस युवा ब्रह्मचारी का

हिंदी डाइजेस्ट

जीवन-कार्य बन गया। वे उनकी कष्टकथा सुनते। अपनी प्रेममय दृष्टि और पीड़ा हरने वाले हाथों के स्पर्श से उनके जीवन में नयी आशा का संचार करते। कुछ समय के बाद उनके प्रयत्न से उन रोगियों के लिए बस्तियां बन गयीं, जहां वे स्वावलंबी जीवन की ओर अग्रसर हो रहे हैं। चिदानंदजी उनके मित्र, मंत्रदाता और मार्गदर्शक हैं।

सात वर्ष पहले मैं स्वामीजी के साथ उत्तरकाशी के गांवों की यात्रा पर जा रहा था। चिन्तालीसौड़ के इंटर कालेज में उनके प्रवचन के पश्चात् एक बूढ़े मोची ने मेरे हाथ में एक पत्र दिया, जिसमें स्वामीजी से सहायता की मांग थी। स्वामीजी भोजन के लिए जा चुके थे। मैं जब देर से पहुंचा, तो उन्होंने कारण पूछा और मैंने उस सहायता-प्रार्थी की कहानी सुनायी। उस हरिजन की झोपड़ी हमारे रास्ते में पड़ती थी। स्वामीजी उसके सामने कार से उतर गये। सारा परिवार दोपहर के भोजन के लिए बैठा था। स्वामीजी को झोपड़ी के बाहर खड़ा देखकर बूढ़ा हड़बड़ाया हुआ बाहर आया। हम सब यह देखकर भींचके रह गये कि स्वामीजी ने उसके चरणों में सिर रख दिया है। उन्होंने उसके हाथ में एक लिफाफा और फल व मिठाइयों से भरा टोकरा देने के बाद कहा—‘मैंने सुना है कि प्लास्टिक के जूतों के चलन में आने के बाद तुम्हारे बनाये पहाड़ी जूते कोई नहीं पहनता। मैं तुम्हारी बनायी हुई चप्पलें ही पहनूंगा।’ उसके लिए यही आश्वासन बहुत नवनीत

था। मोची का कारोबार चमक उठा और उसका दुःख दूर हुआ।

श्रीधर राव जब पांच वर्ष के बालक थे, उन्हें मंगलूर में अपने नाना के यहां, जो वहां के नगराध्यक्ष और कोफी के मधुकर व्यापारी थे, गांधीजी के दर्शन हुए थे। उन्हें आम सभा के मंच पर गांधीजी की गोद में बैठने की भी याद है। वापू का यह पुष्प-स्पर्श श्रीधर राव की जीवन-निधि बन गयी और अब (स्वामी चिदानंद के रूप में) वे प्रतिवर्ष २ अक्तूबर को वाल्मीकि-हरिजनों की षोडशोपचार पूजा करके गांधीजी के प्रति अपनी श्रद्धा व्यक्त करते हैं।

सात वर्ष पूर्व विश्वनाथ की पवित्र नगरी उत्तरकाशी में मैंने पहली बार उनके हरिजन-पूजन का दृश्य देखा था। कालेज के हाल के बाहर उन्होंने आमंत्रित हरिजनों का पाद-प्रक्षालन कर उन्हें मालाएं पहनायीं। फिर चौकियों पर बैठाकर धूप, दीप और अक्षत से उनकी पूजा की। फिर आखी उतारी गयी। भोग लगाया गया। अंत में स्वामीजी ने इन जीती-जागती मूर्तियों की परिक्रमा कर उन्हें साष्टांग दंडवत् किया।

पूजा के पश्चात् हरिजनों को भोजन परोसा गया। स्वामीजी एक पत्तल लेकर प्रत्येक से जूठा प्रसाद मांगने गये और शक-विभोर होकर अत्यंत श्रद्धापूर्वक उन्होंने प्रसाद का सेवन किया और कहा—‘यह ब्रह्माथपुरी के प्रसाद से भी अधिक पवित्र है।’ मैंने यही दृश्य दो वर्ष बाद गांधी-जयंती के अवसर पर उनके आश्रम में भी

है। वहाँ सैकड़ों भक्तजनों ने भी उनसे यह प्रसाद ग्रहण किया। हरिजन-पूजा का पवित्र उत्सव जूठी पतलें उठाने और हाथ-पुलाने के बाद संपन्न हुआ। तार्किक बुद्धि को यह सब कर्मकांड-सा नजर आ सकता है। किंतु जिस धर्म ने जन्मजात अपवित्रता के विचार को सामाजिक संस्था बना डाला हो, उसे झकझोरने के लिए ऐसा प्रति-कर्म-कांड उपादेय हो सकता है। स्वामीजी का उद्देश्य है उस रूढ़ संस्कार को समाप्त करना

बिस्ने करोड़ों हरि-जनों को खुद अपनी तरफें गिरा रखा है। हरिजनों को अपनी हीन-भावना से मुक्त होने का बाह्यान उन्होंने इन शब्दों में किया है— 'ईश्वर को हम परम-पिता कहते हैं, हम सब उसकी संतान हैं।

संतान भी पिता की तरह ही होती है और हम दिव्य, अविनाशी, अजर-अमर नित्य-बुद्ध, नित्यनिर्मल पवित्र आत्मा हैं। किसी इन्सान को यह कभी नहीं सोचना चाहिये कि हम अपवित्र हैं, हम पतित हैं।'

मनुष्य मात्र को उसके अंदर की दिव्यता का ज्ञान कराना और उस दिव्यता को प्रकट करने में मदद देना स्वामीजी का मिशन है। यहाँ उनकी सामाजिक दृष्टि और वेदांत-मूलक वास्था का संगम हुआ है। अपने

उत्थान के लिए परावलंबी वृत्ति को छोड़ने का आह्वान करते हुए उन्होंने हरिजनों से कहा है— 'कोई दूसरा आपको उठाने की कोशिश करे, तो आप गिर भी सकते हैं; लेकिन जो अपने आप उठता है, वह कभी नहीं गिरता। आदमी इतना ऊंचा उठ सकता है कि लोग उसकी पूजा करें। संत रैदास मोची का काम करते थे; लेकिन उनके भजन आज बड़े-बड़े भक्त लोग बड़े प्रेम से गाते हैं। इसके लिए क्या किसी

धर्म का हृदय

धर्म एक है। ईश्वर एक है। धर्म की वास्तविक भाषा प्रेम की भाषा है। मनुष्य से प्रेम करना और उसकी सेवा करना तथा उस परम दिव्य की पूजा और खोज में जीवनार्पण कर देना— यही धर्म का पथ है। संक्षेप में, धर्म का हृदय यही दो बातें हैं—सेवा और प्रेम।

—स्वामी चिदानंद

शासन ने कोई योजना बनायी थी ?

आदिवासी, जंगली, मांस खाने वाले रत्नाकर डाकू ने संस्कृत में वाल्मीकि-रामायण लिखी, जिसके आधार पर तुलसी - रामायण बनी। जो एक आदि-वासी, असभ्य और

जंगली व्यक्ति था, उससे इतना महान कार्य कैसे हो गया? निश्चय ही अंदर की दिव्यता के आधार पर सब कुछ प्रकट हुआ।'

स्वामी चिदानंदजी के लिए मानव-मात्र की सेवा ही व्यावहारिक वेदांत है। उनके प्रिय भजन हैं संत फ्रांसिस की यह प्रार्थना :

शांति का वाद्य बना तू मुझे,
प्रभु! शांति का वाद्य बना तू मुझे।
हो तिरस्कार जहाँ, कलं स्नेह
हो हमला तो क्षमा कलं में।



अर्जुन को उपदेश देते कृष्ण

[चित्र : सुरेन्द्रनाथ कर]

हो जहां भेद, अभेद कहूं
हो जहां भूल, मैं सत्य कहूं ।
हो संदेह, वहां विश्वास,
घोर निराशा, वहां कहूं आस ।
हो अधियार, वहां प्रकाश ।
हो जहां दुःख, उसे कहूं हास ।
शांति का वाद्य

और उनका जीवन-मंत्र है गांधीजी की
'सेवक की प्रार्थना' । (इसे पाठक दिसंबर
७८ के नवनीत में पढ़ चुके हैं ।—संपादक)
जैसा कि स्वाभाविक ही है, उनका
परिवार अपने आश्रम के संन्यासियों, ब्रह्म-
नवनीत

चारियों तथा भक्तों तक ही सीमित नहीं
है । उत्तराखंड में सर्वोदय का स्वप्न साकार
करने में जुटी हुई लोकसेवकों की छोटी-सी
टोली भी उनकी आत्मीय है; क्योंकि वहाँ
वहाँ के ज्वलंत प्रश्नों को हल करने में लगी
हुई है । इस टोली ने उत्तराखंड की पावन
भूमि को शराब के अभिशाप से मुक्त करने
के लिए १९७१ में शराबबंदी का जो बल-
आंदोलन छेड़ा, उसे स्वामीजी ने न केवल
आशीर्वाद दिया, बल्कि सक्रिय सहयोग भी
दिया । आज उत्तराखंड गौरव के साथ कह
सकता है कि उसने यहां से अनादिकाल से
बहने वाली गंगा और जमुना की पवित्र
धाराओं की, पांच प्रयागों और चार धामों
की पवित्रता को अक्षुण्ण रखा है ।

उत्तराखंड में पेड़-पौधों की रक्षा के लिए
एक अद्भुत प्रयोग 'चिपको आंदोलन' का
जन्म हुआ । 'हम पेड़ों से चिपककर उसकी
रक्षा करेंगे, कटने नहीं देंगे' यह जन-संकल्प
स्वामीजी के उस उपदेश की फलश्रुति ही
थी, जो उन्होंने उत्तराखंड की यात्रा के
दौरान लोगों को दिया—'तुम देवता हो,
ऋषियों की संतान हो ।' इस भावना ने
पर्वतीय लोगों को अपने परिवार में वे
पौधों को जोड़ने की प्रेरणा दी ।

लीसे के घावों से क्षतिग्रस्त चीड़वृक्षों की
रक्षा के लिए निकाली गयी अपील का समर्थन
करते हुए उन्होंने लिखा :

'मुझे इस जाति के वृक्षों की दुर्लभ
दुर्दशा से गहरा क्लेश हुआ । ये वृक्ष पृथ्वी

[शेष पृष्ठ १४७ पर]

का
हा
का



सुरेश सिंह

हमारी प्रार्थना को स्वीकार करके जब श्री सुमित्रानंदन पंत ने कालाकांकर में रहना स्वीकार कर लिया, तो उन्होंने निवास के लिए गांव के उत्तर की ओर पलाश-वन में एक ऊंचे टीले पर बने हुए एक छोटे बंगले को चुना। वहां का एकांत, प्राकृतिक शोभा और शांत वातावरण उन्हें चिंतन, मनन और काव्य-साधना के लिए बहुत उपयुक्त लगा। उस काटेज का नाम उन्होंने 'नक्षत्र' रखा और वे उसी में रहने लगे। आज भी गांव के लोग उसे 'पंतजी की कुटिया' कहते हैं।

हमारे ग्राम कालाकांकर को पतित-पावनी गंगा दक्षिण और पश्चिम की ओर से बहती स्नेहवाहियों से लपेटे हुए है। उत्तर

की ओर से हमारे पूर्वजों ने गंगा से एक बहुत गहरी नहर निकालकर उसे पूर्व की ओर गंगा में ही गिरा दिया है। इस प्रकार हमारा गांव चारों ओर से गंगा का एक टापू-सा हो गया है। गांव में प्रवेश करने के लिए एक पुल है और उसी से मिला हुआ एक प्रवेश-द्वार है, जो 'प्रताप-द्वार' कहलाता है। इसी प्रताप-द्वार से मिले हुए ऊंचे टीले पर 'नक्षत्र' है।

पहले मैं अपना मकान उसी पलाश-वन में बनवाना चाहता था। भवन-निर्माण का कार्य देखने के लिए यह बंगला पहले ही बनवा लिया था, जो मकान बन जाने पर मेहमानों के रहने के काम आता। लेकिन फिर मैंने अपना मकान गंगातट पर बन-

गोपक के साथ : 'नक्षत्र' को नीचे से निहारते हुए कवि पंत, लेखक व श्री सुरेश निगम ।

वाया और यह बंगला पलाश-वन में बेकार पड़ा रहा। तब कौन जानता था कि इसमें हमारी भाषा का युगांतरकारी कवि दस-ग्यारह वर्षों तक काव्य-रचना करके इसे इतना प्रसिद्ध बना देगा।

इस 'नक्षत्र' में बैठकर पंतजी काव्य-साधना में तल्लीन रहते थे। यह ऐसा एकांत-वास नहीं था कि वे जन-मानस से दूर हो गये हों। प्रतिदिन 'नक्षत्र' के नीचे ही प्रताप-द्वार होकर लोगों का तांता-सा लगा रहता था। नहान तथा अन्य पर्वों में तो नीचे की सड़क यात्रियों से भरी रहती थी, जो 'नक्षत्र' से चींटियों की पांति-सी लगती थी।

पंतजी को 'नक्षत्र' इतना पसंद था कि कालाकांकर से चले जाने के बाद भी वे अपने पत्रों में उसके बारे में पूछा करते थे। उन्होंने 'नक्षत्र' पर एक कविता भी लिखी थी, जो पृष्ठ ५६ पर दी गयी है।



पंतजी जब १९३१ में कालाकांकर में रहने आये।

नवनीत

एक बार उन्होंने मुझे लिखा—'.....मेरे जीवन-काल तक "नक्षत्र" को मेरे ही लिए रख छोड़ियेगा। कभी-कभी वहां आकर रहूंगा।'।

एक बार वे कालाकांकर आये तो 'नक्षत्र' को देखने गये। वहां से लौटकर बोले—'मिस्टर सुरेशसिंह, यह "नक्षत्र" मेरा है न?' मैंने कहा—'विलकुल आपका है।'।

उन्होंने फिर कहा—'नहीं-नहीं, मेरा मतलब यह है कि आपने इसे सदा के लिए दे दिया है न? मेरा अपना कहने को इसके सिवा और कोई घर ही नहीं है।' मैंने हंसकर कहा—'पंतजी, मैं चाहे उसे दूँ या न दूँ, वह तो आपका हो ही गया। दस-बाढ़ साल से भी अधिक समय तक उस पर आपका कब्जा मुखालफाना है। अब तो मैं कानूनन भी आपसे उसे नहीं ले सकता।'।

पंतजी बहुत हंसे और बोले—'अच्छा, ऐसा भी होता है कानून में? फिर तो अब वह मेरा हो गया।'।

कुछ समय बाद सन ७१ में एक पत्र में उन्होंने लिखा—'आशा है मिसेज सुरेश सिंह सानंद बोर स्वस्थ होंगी। अस्पताल ठीक हो चल रहा होगा। "नक्षत्र" में क्या कोई रहने लगा है? उसे उठाकर प्रयाण ला सकता तो बड़ा अच्छा होता, उसी में रहता।'।

इससे पहले २२ सितंबर १९६१ के पत्र में भी उन्होंने 'नक्षत्र' के बारे में लिखा था। वह यों है:

साध

इलाहाबाद
२२.९.६९

राम प्रिय भाई,

आपके पिछले पत्रों का यथासमय उत्तर वहीं दे सका, क्षमा करें। इधर मैं बहुत अस्वस्थ रहा; उससे भी अधिक, कमजोर और आलसी। मुझे बी-कोलाईका इन्फेक्शन हो गया था। यह बीमारी बड़ी पर्सिस्ट करती है और बहुत ही कमजोर बना देती है। इसके लिए मुझे कई दिनों तक एंटी-बायोटिक्स खाने पड़े। उससे भी कमजोरी और बढ़ गयी। दिन-भर सोया रहता था। अब प्रायः ठीक हूँ।

आपका पत्र महादेवीजी को दे दिया था।

उन्होंने आपको स्वी-कृति का उत्तर भी भेज दिया है। हम लोग वहाँ ३१ अक्टूबर के उद्घाटन-समारोह में अवश्य सम्मिलित होंगे। 'नक्षत्र' का नया रूप भी देख लेंगे। महादेवीजी कहती थीं कि हम लोग वहीं रहेंगे। आप कहें तो इलाहाबाद से बोरिया-विस्तर बांधकर हम सब लोग वहीं आ जायें—वहाँ अस्पताल में नर्सिंग सीखकर काम करें—जो

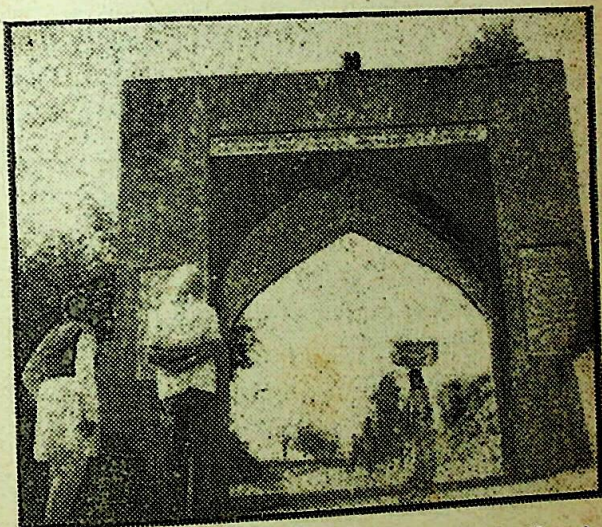
१९७९

भी पैसे मिलें उससे 'नक्षत्र' में रहें और बीमारों की सेवा करें। महादेवीजी को यह प्रस्ताव बहुत पसंद है।

'आशा है, आप सपरिवार सानंद हैं। श्रीमती सुरेश सिंह अब लखनऊ से लौट आयी होंगी। वे मेरे घर नहीं आयीं। अब मैं भी वहाँ आने पर उनके पास न ठहरकर 'नक्षत्र' में ही रहूँगा। शेषफिर।.....

सस्नेह भाई—सुमित्रानंदन पंत
कालाकांकर में पंतजी अंतिम बार उत्तर प्रदेश सरकार की फिल्म डिविजन के श्री सुरेश निगम के साथ १ अप्रैल १९७२ को आये; क्योंकि उन पर बन रही फिल्म

[शेष पृष्ठ १४९ पर]



प्रताप-द्वार पर संगमरमर पर अंकित अपनी लिखी पंक्तियाँ देखते हुए पंतजी—साथ में श्री सुरेश सिंह।

हिंदी डाइनेस्ट

खुश्चोव की जीवन-सांझ

चंद्रकांत विनीत

‘पेन्शनयाफ्ता तानाशाह’ बेमेल-सा प्रतीतहोने वाला विशेषण और विशेष्य का यह जोड़ा शीर्षक है एक लेख का, जो आजकल सारे रूस में बड़े चाव से, मगर चुपके-से पढ़ा जा रहा है। चाव से इसलिए कि लेख में रूस के भूतपूर्व सर्वेसर्वा निकिता ख़ुश्चोव के अंतिम वर्षों की कहानी है— पदच्युत होने (१४ अक्तूबर १९६४) से लेकर मृत्यु (११ सितंबर १९७१) तक की कहानी। और चुपके-से इसलिए कि इसे लिखा है रूस के प्रमुख इतिहासकार राय मेड्वेडेव ने, जिनका रूस सरकार और रूसी साम्यवादी पार्टी से वैचारिक मतभेद है। लेख की सामग्री मेड्वेडेव को ख़ुश्चोव के मित्रों और रिश्तेदारों से लंबी चर्चाओं में प्राप्त हुई थी और बहुत नजदीक टाइप किये हुए चौदह फ़ुल्सकैप पन्नों के इस लेख की कार्बन कापियां पाठकों को चोरी-छिपे प्राप्त होती हैं।

रूसी साम्यवादी पार्टी के महामंत्री तथा

नवनीत

देश के प्रधान-मंत्री के पद से ख़ुश्चोव को एकाएक बर्खास्तगी दुनिया के लिए ही नहीं स्वयं ख़ुश्चोव के लिए भी सर्वथा अप्रत्याशित घटना थी। वे कृष्ण सागर के किनारे अपने प्रिय विहार-स्थल पर आराम कर रहे थे कि उन्हें सशस्त्र पहरे में मास्को लाया गया और पार्टी के पोलिट ब्यूरो एवं संपूर्ण केंद्रीय समिति में उन पर २९ अभियोग लगाये गये और ‘ढलती उम्र और गिद्धे स्वास्थ्य’ के नाम पर उनसे ‘त्यागपत्र’ वसूल कर लिया गया।

ख़ुश्चोव के लिए यह ऐसा आकस्मिक और तीव्र आघात था कि उससे चेतने में उन्हें कई सप्ताह लग गये। ‘दादाजी तो बस सारे वक्त रोते ही रहते हैं’, उनके नव नाती ने उन दिनों अपने स्कूल के प्रधान-ध्यापक को बताया था।

मेड्वेडेव के लेख की शुरुआत नाटकीय ढंग से होती है। ख़ुश्चोव की बर्खास्तगी से पिछले दिन एक सोवियत अंतरिक्ष-यात्रा

यात्रा

छोड़ा जाना था। एकाएक उसका प्रस्थान स्पष्ट कर दिया गया। उड़ान-व्यवस्थापक बंक्ति रह गये। उन्होंने तुरंत खुश्चोव को (उनके कृष्ण सागर-तटीय विहार-स्थल पर) फोन किया; मगर वहां से किसी ने उत्तर न दिया। वे क्रेमलिन से भी बात न कर सके। मास्को में सारे ही सरकारी फोन बंद कर दिये गये थे। घंटों बाद ब्रेजनेव ने बंतरिक्ष-यात्रियों को फोन किया। जब उनसे खुश्चोव की वाबत पूछा गया, तो उन्होंने पहले तो कोई उत्तर न दिया; फिर कहा—‘खुश्चोव इस समय हवाई-यात्रा कर रहे हैं’। खुश्चोव सचमुच हवाई जहाज से मास्को रवाना हो चुके थे पोलिट ब्यूरो की पार्टी की केंद्रीय समिति की बैठक में भाग लेने—ये बैठक उनकी गैरजानकारी में बुलाई गयी थी।

वर्षास्तगी के आघात से उभरने के बाद खुश्चोव पर मुझे का दौरा पड़ा। ब्रेजनेव ने उन्हें फोन किया और (पेन्शन की) व्यवस्था पर बातचीत करने के लिए उन्हें केंद्रीय समिति में आने का बुलावा दिया। मगर खुश्चोव ऐसे मुझे में थे कि वे किसी भी नये नेता से बात नहीं करना चाहते थे। उन्होंने मास्को आने से भी इन्कार कर दिया। परिणामतः उनके आवास-स्थान के

बारे में किया गया फैसला रद्द कर दिया गया। उनकी पेन्शन में भी बहुत कटौती कर दी गयी। केवल ४०० रूबल मासिक की पेन्शन बांधी गयी, जबकि योजना १,२०० रूबल मासिक देने की थी। ४०० रूबल तो रूस में किसी भी मध्यम दर्जे की फैक्टरी के संचालक की तनख्वाह होती है और जैसा कि मेड्वेडेव ने लिखा है—‘देश में खुश्चोव की पिछली पद-प्रतिष्ठा के लिहाज से यह तनख्वाह बहुत कम थी।’

खुश्चोव, उनकी पत्नी नीना पेत्रोव्ना एवं उनके अंगरक्षक मास्को से पंद्रह मील पश्चिम पेत्रोवो-दोलेनेय में एक छोटे-से ‘दाचा’ (वंगला) में रहते थे, जिसके चारों



सुनिये एक कथा

सन १९०५ के रूस-जापान युद्ध के दौरान रूसी बेड़े का प्रधान-सेनापति एक बड़ा सामंत था। सब उससे नफरत करते थे। नालायक और क्रूर आदमी था वह। उससे नीचे जो उपप्रधान-सेनापति था, उसे सब लोग बहुत चाहते थे। बहुत ही योग्य नाविक और नेक आदमी था वह।

एक रोज खबर आयी कि वेड़े का ध्वजपोत, जिस पर सामंत और उपप्रधान सेनापति थे, दुश्मनों ने गर्क कर दिया और उस पर जितने भी लोग थे सबकी जल-समाधि हो गयी। इस समाचार से जलसेना में सबको बड़ी खुशी हुई कि प्रधान-सेनापति डूब मरा, पर साथ ही इस बात का गहरा दुःख भी हुआ कि उपप्रधान-सेनापति की मृत्यु हो गयी।

कुछ समय बाद दूसरी खबर आयी और सूचना मिली कि डूबते जहाज से कई लोग बचा लिये गये हैं और उनमें प्रधान-सेनापति भी हैं; मगर उपप्रधान-सेनापति की निश्चित रूप से मृत्यु हो गयी है।

तब जानते हैं, नाविकों ने क्या कहा ?
बोले—‘हां, विलकुल स्वाभाविक है। सोना
पानी में डूब जाता है, लीद पानी पर उत-
राती है।’
—निकिता अश्वोव

ओर काफी बड़ा जहाज था। यहाँ खुश्चोव
बागवानी में दिलचस्पी लेते थे—विशेषतः
बिना मिट्टी के, रसायन-घुले पानी में पौधे

नवनीत

उगानेकी कला (हाइड्रोपोनिक्स) में इनके उनकी इतनी गहरी आसक्ति थी कि वे सबेरे चार बजे ही उठ जाते और पौधों की देखभाल में जुट जाते थे। अंततः वे २०० जादुई टमाटर उगाने में सफल हो गए, जिनमें से प्रत्येक दो-दो पाँड वजन का था। मगर पाला पड़ जाने से सारे टमाटर खराब हो गये और खुश्चोव को इससे बहुत पहास सदमा पहुंचा। बहुत दिनों तक उन पर उदासी छाई रही।

उनका दूसरा शगल था फोटोग्राफी। मेडवैडेव लिखते हैं कि 'उन्होंने हिरण खेतों, वृक्षों, फूलों और पंछियों के कयास के फोटों लिये थे।'

यहीं एक बार ऐसा हुआ कि सैर करने
समय ख़ुश्चोव ने पास के सामूहिक कृषि-
क्षेत्र के किसानों को उनकी गलत कृषि-
तकनीकों के लिए आड़े हाथ लिया। वे
डेव लिखते हैं—‘उनकी चुभती आलोचना
किसान पहले तो सहमे-से, मगर तब
उन्होंने अशिष्टता से ख़ुश्चोव को बर्बाद
दिया और कहा कि अब आप सरकार के
सरमुख्तार नहीं हैं और आपको इस तरह
दूसरों के मामले में दखलंदाजी करने का
कोई हक नहीं है। ख़ुश्चोव इस दिस को
देने वाले अनुभव से लंबे समय तक जल
नहीं पाये।’

खुश्चोव को मास्को के मध्य भाग
कनाडा के दूतावास के पड़ोस में एक फ्लैट
भी दिया गया था। नीना पेत्रोव्ना ज
खरीदारी के लिए मास्को आतीं, इला

अयोग्य करती थीं। निकिता केवल स्थानीय चुनावों में वोट डालने के लिए मास्को आते थे और उन मौकों पर कोई विदेशी प्रकार मिलने आ पहुंचे, तो उसे मुलाकात भी दे देते थे। सधे हुए नेता के नाते उन्हें विदेशी संवाददाताओं के चालाकी-भरे प्रश्नों को टाल जाने में कोई कठिनाई नहीं होती थी। कैसी विडंबना थी यह कि जिस बादमी ने पश्चिमी राष्ट्रों को चुनौती दी थी कि हम तुम्हें दफन कर देंगे, वह अब विदेशी समाचार पश्चिमी देशों के—उनमें भी विशेषतः 'वॉयस ऑफ अमेरिका' और पी. बी. सी. के—रूसी प्रसारणों से प्राप्त करता था !

कला और साहित्य के मामले में भी ऐसा ही उलटफेर हुआ। आप जानते ही हैं कि ब्रुश्चोव ने सोल्जेनित्सिन का लघु उपन्यास 'इवान देनिसोविच के जीवन में एक दिन' को छपने दिया था और साहित्य में स्तालिनोत्तर-कालीन छूट भी उन्हीं की अनुमति से दी गयी थी। मगर शीघ्र ही वे यह महसूस करने और कहने लगे थे कि कलाकार और साहित्यकार बहुत ज्यादा छूट लेने लगे हैं। १९६२ में उन्होंने आधुनिक मूर्तिकार अन्स्ट नीज्वेस्त्नी की 'उब-काई लाने वाली खिचड़ी' का खंडन किया था। ऐसे ही एक और मौके पर कवि येगेनी येव्नुशेंको को निर्धारित मार्ग से बहुत दूर न जाने की चेतावनी देते हुए उन्होंने झल्लाकर कहा था—'कन्न कुबड़ों की कुब्ब को सीधा कर देती है।' तब अपूर्व

साहस के साथ येव्नुशेंको ने जवाब दिया था—'निकिता सर्जियेविच, हम उस जमाने से बहुत आगे निकल आये हैं, जब कुब्ब को सिर्फ कन्न सीधा करती थी। सच कहता हूँ, अब दूसरे भी उपाय हैं।' मगर निवृत्ति-काल में ब्रुश्चोव से मिलने उनके दाचा पर मूर्तिकार नीज्वेस्त्नी और येव्नुशेंको दोनों ही गये थे और ब्रुश्चोव से उनकी लंबी बातचीत हुई थी।



निकिता और नीता सन १९६३ में।

बकौल मेड्वेडेव, 'निवृत्ति के प्रथम दो वर्ष ब्रुश्चोव के लिए कठिनतम वर्ष थे।' बाद में वे कभी-कभी मास्को में कोई नाटक या चित्र-प्रदर्शनी देखने भी आ जाते थे। वे अब पढ़ते भी बहुत थे। पास्तरनाक तो उन्हें अंत तक पसंद नहीं आये और सोल्जेनित्सिन के 'फर्स्ट सर्कल' का रूसी मूल (जिसकी इनी-गिनी प्रतियां ही रूस में उप-
[शेष पृष्ठ १५० पर]

हिंदी डाइजेस्ट



मां

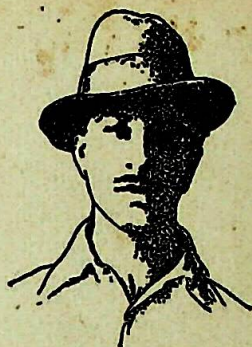
नारी की चरम विशेषता है मां। वह मोठा वात्सल्य जो प्रकृति ने उसे प्रदान किया है; यह वात्सल्य ठंडे तर्क से लगभग अछूता और प्रतिदान की स्वार्थकी आशा से एकदम दूर है। बच्चे से मां प्यार इसलिए नहीं करती कि वह सुंदर है, बल्कि इसलिए करती है कि वह उसका जीता-धड़कता अंग है—उसके कलेजे का टुकड़ा—उसकी प्रकृति का अंश। इसीलिए तो बच्चे के रोने पर वह अकुला उठती है; बच्चे की किलकारी पर उसका दिल तेजी से धड़कने लगता है; दूध पीता बच्चा जब उसके सीने में गुंथ जाता है तो उसकी रगों में रक्त मंद-मंद बहता है। विश्व के प्रत्येक स्वस्थ-अविकृत राष्ट्र में यह भावना ठीक ऐसी ही है। जलवायु हर चीज को बदल सकती है, मगर इसे नहीं। विश्व समाज के नितान्त दूषित रूपों में ही वह शक्ति है कि वे विलासमय विकृति को मां के वात्सल्य की मृदु चिताओं और परिमलों से अधिक मधुर प्रतीत करायें।

—योहान्न गॉदीफ्रीड फॉन हर्न

हमारी आजादी की लड़ाई के अंतिम दौर के कुछ वर्ष ऐसे थे, जब देश का नेतृत्व लगभग पूरी तरह विधुरों के हाथ में था। महात्मा गांधी विधुर थे, जवाहरलाल विधुर थे, सरदार पटेल विधुर थे, मौलाना अबुल कलाम आजाद विधुर थे और भी बहुत-से नेता विधुर थे। इनमें से अधिकांश की पत्नियां दांपत्य-जीवन के सुखों और अधिकारों से प्रायः वंचित ही रहीं और असमय में ही कालकवलित हो गयीं; क्योंकि उनके पतियों के पास उनकी देखभाल करने के लिए समय ही नहीं था—ज्यादातर उनका वक्त जेल में बीतता था या दौरो में।

परंतु हमारे देश में कुंआरे राजनीतिज्ञों की भी कमी नहीं रही। इनमें कुछ तो ऐसे थे, जो राजनीति में बहुत थोड़े समय रहे, मगर अपनी चमक से सदा के लिए स्मरणीय हो गये। ऐसे दो स्वनामधन्य कुंआरे थे—अमर शहीद सरदार भगतसिंह और अमर शहीद श्री चंद्रशेखर आजाद। इनमें से एक उत्तर भारत के क्रांतिकारी आंदोलन का हृदय था तो दूसरा मस्तिष्क था। वैसे उनका कोई निजी जीवन था ही नहीं, वो भी था देश के लिए अर्पित था। वे थोड़ी

जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी



सरदार भगतसिंह

ही उम्र जिये, लेकिन जीना किसे कहते हैं, इसकी मिसाल पेश कर गये। नारियों के लिए दोनों के मन में अपार गौरव था और कई बार नारियों ने अपने को जोखिम में डालकर इनकी रक्षा की। एक प्रसंग यहां पाठकों के स्मरणार्थ प्रस्तुत है।

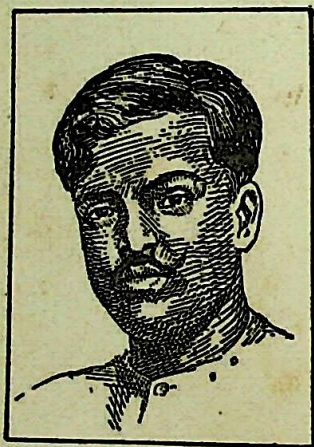
हिंदुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन आर्मी के प्रधान-सेनापति श्री चंद्रशेखर आजाद कानपुर में श्री प्यारेलाल अग्रवाल के यहां

धिरकुमार

भारतीय राजनीति के

ठहरे हुए थे। श्री अग्रवालजी, जिनके पिता मथुरा जिले के निवासी थे और कानपुर में बस गये थे, लेन-देन का व्यापार करते थे। मूलगंज चौराहे के पास उनका दुमजिला मकान था। निचली मंजिल में दुकानें थीं और हर तरफ से दरवाजे थे। ऊपर उनका निवास था, जहां रोज शाम को चाय-पकौड़ी-सेवन और राजनैतिक वार्तालाप के लिए कांग्रेस-जनों की भीड़ इकट्ठी होती थी। अग्रवालजी पैसे वाले आदमी थे; वर्षों वे शहर कांग्रेस के कोषाध्यक्ष रहे। उनके बारे में किसी को शक नहीं हो सकता था कि सशस्त्र क्रांति से उनका कोई संबंध हो सकता है। इसलिए एक कांग्रेसी कार्यकर्ता श्रीराम सिंह ने चंद्रशेखर आजाद को उनके घर पर टिका दिया था।

श्रावणी का दिन था। घर में मिठाई मंगायी गयी थी। शहर में श्रीमती तारा-



चंद्रशेखर आजाद

नवनीत

वती अग्रवाल के कई रिश्तेदार थे; अनेक स्वातंत्र्य-सैनिकों की वहन और भागी बन गयी थीं वे। अग्रवालजी आजाद से बातें कर रहे थे कि खबर आयी कि पुलिस ने घर को घेर लिया है। कांग्रेस का कोई आंदोलन तब चल नहीं रहा था। सो आजाद को यह समझने में देर नहीं लगी कि यह तलाशी उन्हीं के लिए है। उन्हें तत्काल एक युक्ति सूझी। उन्होंने तारावतीजी से कहा कि भाभी, मैं सिर पर मिठाई की डलिया उठाते लेता हूं; आप मेरे साथ जीने के रास्ते जग चलें। अपने सांवले रंग और चेहरे पर के हल्के चेचक के दागों की बदौलत आजाद को घरेलू नौकरका बाना बनाने में दिक्कत न हुई। मिठाई की परात या डलिया अपने सिर पर रखी और तारावतीजी को आगे करके चल दिये।

जीने पर ही दारोगाजी आते हुए मिले। तारावतीजी नवयुवती थीं; तिस पर लवती थीं। जब तक दारोगाजी उन्हें देखें, वे मुस्कराकर बोलीं कि दारोगाजी, आप बहुत दिनों बाद आये। आज तो राखी है। पहले मुंह मीठा कीजिये, पीछे तलाशी ले लीजियेगा। और लपककर परात में से कुछ मिठाई उनके मुंह में लगा दी। फिर बड़ी मासूमियत से कहा कि आप मेरी तलाशी दें लें तो मैं जाऊं, भाइयों को राखी बांधनी है। जैसी कि उम्मीद थी, दारोगाजी ने कहा कि नहीं-नहीं, मुझे आपकी तलाशी नहीं लेनी है, आप खुशी से जाइये। और तारावतीजी तथा आजाद आराम से बाहर

अगला नवनीत

सुम्निमा

परंपरागत मान्यताओं का पुनर्मूल्यांकन करने वाला, पुराण-कालीन कथा पर आश्रित उपन्यास—नेपाल के वरिष्ठ

लेखक एवं राजनेता विश्वेश्वर प्रसाद कोइराला की लेखनी से—पहली किस्ता।

आयतुल्ला खुमैनी

पश्चिम एशियाई राजनीति के विशेष अध्येता बोरिंदरनाथ का विशेष लेख ।

कितनी नावों में कितनी बार

अज्ञेय की ज्ञानपीठ-पुरस्कृत रचना का रस-दर्शन प्रभाकर श्रोत्रिय के शब्दों में—तथा अज्ञेय का पोर्ट्रेट वी. एन. ओके की तूलिका से ।

हिंदी का प्रथम दैनिक

‘समाचार-सुधा-वर्षण’ पर जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी द्वारा ब्रिटिश म्यूजियम (लंदन) से संकलित विशेष सामग्री और चित्र ।

चुनाव का वह बांका लड़ाका

स्वर्गीय रामाकृष्ण की अंतिम व्यंग्य-रचनाओं में से एक ।

‘भगतसिंह’ और ‘सौगात’

शहीदे आजम भगतसिंह पर युवा पाकिस्तानी पंजाबी कवि अहमद सलीम की दो मार्मिक रचनाएं ।

पत्रों का महत्त्व

हिंदी पत्र-साहित्य की रक्षा के लिए पत्रलेखन-व्यसनी पत्रकार पं. बनारसी-दास चतुर्वेदी का आग्रह ।

कारावास—डा. नरेन्द्रनाथ चतुर्वेदी की हिंदी कहानी ।

कविताएं—संस्मरण—विज्ञान—हास्य—अन्य स्थायी स्तंभ ।

पर पर ठहरा करते थे। वे विधायक थे, बाद में मंत्री हुए, राज्यसभा के सदस्य भी रहे तथा उनकी पुत्रवधू डा. सुशीला रोह-ली केंद्रीय उप-वित्तमंत्री बनीं।) नवीनजी ने टेलिफोन किया कि सुभाषबाबू आ रहे हैं, बीमार हैं और डाक्टर साहब के यहां रहेंगे। डाक्टर साहब उस वक्त आराम कर रहे थे। मैंने उन्हें जगाकर सूचना दी।

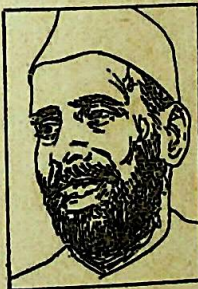
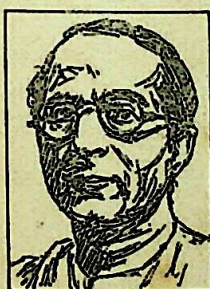
बोड़ी देर में सुभाषबाबू को लेकर एक कारपोर्टको में आकर रुकी। मोटर से जो संता-चीड़ा, गौरवर्ण, तेजस्वी व्यक्ति उतरा उसे देखकर कोई नहीं कह सकता था कि वह रुग्ण है। गजब की शान थी उनमें। अंदर से जाकर उन्हें चारपाई पर लिटाया गया और जब थर्मामीटर लगाया तो १०४ डिग्री का बुखार था! शायद वे दो-तीन दिन कान-पुर रुके। पर जब दिल्ली में बैठक की तिथि करीब आ गयी, तो बीमारी की हालत में ही रेल से दिल्ली आये और उसी अस्वस्थता में अध्यक्षता की।

आगे चलकर त्रिपुरी कांग्रेस में भी अत्यंत अस्वस्थ अवस्था में ही वे पलंग पर

लेटे-लेटे अध्यक्षता करते रहे और जब गांधीजी से उनका मतभेद मिट न सका तो उन्होंने कांग्रेस की अध्यक्षता से और फिर कांग्रेस से भी त्यागपत्र दे दिया और फारवर्ड ब्लाक की स्थापना की।

ऐसा ही तेजस्वी कुंआरा व्यक्तित्व था डा. राममनोहर लोहिया का भी। डा. लोहिया प्रखर मेधावी थे, मौलिक थे और स्वाभिमानी थे। अ. भा. कांग्रेस महा-समिति के एक विभागीय मंत्री के नाते उन्होंने कांग्रेस को अनेक आर्थिक-राजनैतिक कार्यक्रम दिये और वे कांग्रेस समाजवादी दल के स्थापकों में से थे, जो बाद में कांग्रेस से पृथक् हो गया और स्वतंत्र रूप से राज-नैतिक दल बना। यद्यपि उस समय दल में आचार्य नरेन्द्र देव, श्री जयप्रकाश नारायण, श्री अच्युत पटवर्धन जैसे अनेक समर्थ नेता थे, पर समाजवादी दल के नेता के रूप में जो व्यक्ति टिका और सबसे अधिक उभरा वे डा. लोहिया ही थे।

बहुत दिनों तक डा. लोहिया लोकसभा में नहीं आये; मगर जब आये तो उन्होंने



अच्युत पटवर्धन

मेहरअली

एच. वी. कामत

अशोक मेहता

हिंदी डाइजेस्ट

संसद को चमत्कृत कर दिया। उन्होंने यह कहकर कि देश का सबसे गरीब नागरिक दो आने रोज पर गुजारा करता है, तहलका मचा दिया था। यह उन्हीं का कुंआरा रूमानिपन था कि श्रीमती इंदिरा गांधी के प्रधानमंत्री बनाने पर उन्होंने कहा कि कम से कम इतना तो हुआ कि अब रोज समाचारपत्रों में एक खूबसूरत चेहरा देखने को मिला करेगा। वैसे उन्होंने एक वक्त श्रीमती गांधी को 'गूंगी गुड़िया' भी कहा था। शायद वे इसका अंदाज नहीं कर पाये थे कि इस गूंगी गुड़िया में क्या-क्या गुन भरे हैं !

समाजवादी दल के तीन अन्य कुंआरे नेता भी भुलाये नहीं जा सकते—श्री अशोक मेहता, अच्युत पटवर्धन तथा श्री यूसुफ मेहरजली। पटवर्धन और मेहरजली रूपवान थे और आकर्षक व्यक्तित्व के धनी थे। श्री पटवर्धन अध्यात्म-साधना में लीन हैं, जबकि श्री मेहरजली दीर्घ और कष्टदायक बीमारी के बाद संसार से विदा हो गये। श्री अशोक मेहता अब भी राजनीति में हैं।

समाजवादी खेमे के ही एक अन्य कुंआरे



पं. दीनदयाल उपाध्याय

राजनीतिज्ञ हैं श्री हरि विष्णु कामत, जो अब जनता पार्टी में हैं। पहले ये श्री सुभाष बाबू के साथ थे। इन्होंने भी आइ. सी. एच. से त्यागपत्र दिया था। मूलतः कोंकणी और कन्नड बोलने वाले श्री कामत मध्य प्रदेश के निवासी हैं। जब वे कांग्रेस-दल में थे और विरोधी दलों का विकास नहीं हुआ था, उन्होंने विरोधी पक्ष के नेता की जिम्मेदारी अनौपचारिक रूप से संभाल ली थी। वे ऐसे प्रश्न उठाते कि मंत्रियों की मुसीबत हो जाती। सौभाग्य से वे इस समय शक्ति दल में हैं, इसलिए मंत्रियों की खैरियत है।



डा. बी. सी. राय

नवनीत



अजय मुकर्जी



पी. सी. सेन

दीर्घकाल के विरोधी पक्ष के एक प्रमुख नेता हैं श्री भूपेश गुप्ता सन १९५२ से वे के राज्यसभा सदस्य हैं और कुंआरे होते हुए भी 'सदन' का



अटलबिहारी वाजपेयी

पिता' कहे जाते हैं। मजाक में उन्होंने एक बार कहा था कि मैं संजय या कांतिभाई का पिता न ही होना पसंद करूंगा। द्वितीय महायुद्ध में ब्रिटेन से अपनी शिक्षा समाप्त करके वे, श्रीमती इंदिरा गांधी और श्री फीरोज गांधी एक ही जहाज से भारत लौटे थे। सी. पी. आइ. के तो वे प्रमुख नेता हैं ही, अन्य दल भी उनका बड़ा सम्मान करते हैं।

श्री कृष्ण मेनन भारतीय राजनीति के एक और चिरकुमार थे। वे अपने जीवन काल में ही नहीं, मृत्यु के बाद भी देश व

विदेशों में विवाद के विषय रहे हैं। वे जनमे केरल में थे, मगर जिंदगी का बड़ा हिस्सा उन्होंने ब्रिटेन में, भारतीय स्वातंत्र्य-आंदोलन के अवैतनिक प्रवक्ता के रूप में बिता दिया। बाद में वहीं भारत के उच्चा-युक्त हुए। सरकारी रीति-नियमों की अपेक्षा काम को महत्व देने के उनके स्वभाव के कारण जीपकांड जैसे विवाद उठ खड़े हुए, हालांकि कोई यह नहीं कह सका कि वे किसी के एक पैसे के भी कनौड़े थे। जब वे मरे तो उनके पास बस कुछ सूट, कुछ खिलौने, बहुत-सी पुस्तकें और घाटे में चलने वाले एक प्रेस के कुछ शेयर थे, जिन्हें वे श्रीमती इंदिरा गांधी के नाम बसीयत कर गये।

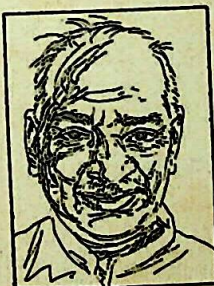
उन पर आक्षेप था कि अमरीका से उन्हें एलजी है। एलजी उन्हें अगर थी तो अमरीकियों से नहीं, अमरीका की सरकार तथा रक्षा एवं उद्योग प्रतिष्ठान से थी। संयुक्त राष्ट्रसंघ में वे भारत और तीसरी दुनिया का पक्ष जिस तरह रखते थे, उससे आम

[शेष पृष्ठ १५२ पर]



शंकरराव देव

१९७९



कामराज



चंद्रभानु गुप्त

५५



कृष्ण मेनन

हिंदी डाइजैस्ट

नक्षत्र

[अपनी काटेज के प्रति]

मेरे निकुंज, नक्षत्र-वास !
इस छाया - मर्मर के वन में
तु स्वप्न-नीड-सा निर्जन में
है बना प्राण-पिक का विलास !
लहरी पर दीपित ग्रह समान
इस भू-उमार पर भासमान,
तु बना मूक चेतनावान
पा मेरे सुख-दुख, भावोच्छ्वास !
आती जग की छवि स्वर्णप्रात,
स्वप्नों की नभ-सी रजत-रात,
भरती दश दिशि की चारवात
तुझमें वन-वन की सुरभि सांस !
कितनी आशाएं मनोल्लास,
संकल्प महत्, उच्चाभिलाष,
तुझमें प्रतिक्षण करते निवास,
है मौन श्रेय-साधन प्रयास !
तु मुझे छिपाये रह अजान
निज स्वर्ण-मर्म में खग समान,
होगा अग-जग का कंठगान
तेरे इन प्राणों का प्रकाश !
मेरे निकुंज, नक्षत्र-वास !

[१९३२]

-सुमित्रानंदन पंत

दे लालबाब शास्त्रियते

कन्हैयालाल कपूर

शास्त्रिय साहब

अगर कोई शख्स आपको उस मुशायरे की समाप्ति पर मिले, जिसके आप स्टेज-सेक्रेटरी थे, और आपको दाद देने के बजाय यह शिकवा जबान पर लाये कि आपने बहुत बेहूदा शायरों को पढ़वाया और ब्राह्मणवाह श्रोताओं का समय नष्ट किया, तो निश्चय ही आप हैरान होंगे। खास तौर पर जब आपकी उस शख्स से जान-पहचान तक न हो। इसी परिस्थिति से मुझे दो-चार होना पड़ा, जब उस अजनबी से मेरी मुलाकात हुई, जो एक के बजाय तीन उपनाम रखता था और जनाब भड़क देहलवी का शागिद था।

मैंने उससे यह कहकर जान छुड़ाना चाहा कि शायरों को आमंत्रित करने वाले साहबान दूसरे थे और सेवक ने तो केवल स्टेज-सेक्रेटरी के फर्ज अदा किये थे, लेकिन वह मुझे माफ करने को तैयार नजर न आया। कहने लगा—‘अगर यह बात मान भी ली जाये तो आपको इन जाहिलों की तारीफ करने का क्या हक था ! गजब खुदा का, आप उन्हें शायर कहते हैं ! मैं तो तुक-

अनुवाद : मुरजीत

बंद कबूल करने को तैयार नहीं ।’

‘आपकी तारीफ ?’ मैंने डरते-डरते पूछा।

‘मुझे शास्त्रिय जंडियालबी कहते हैं। शास्त्रिय के अलावा आप मुझे बरवाद या अज्जाव जंडियालबी भी कह सकते हैं।’

‘अच्छा। तीन-तीन उपनाम !’

‘जी हां ! और यह इसलिए कि बंदा एक ही वक्त में रोमांटिक, हास्य और प्रोग्रेसिव शायर है।’

‘आपका शगल ?’

‘सेवक एक स्थानीय स्कूल में क्लर्क है।’

‘बहुत खुशी हुई आपसे मिलकर।’

‘अजी साहब, रस्मी बातें रहने दीजिये।

मैं दरअसल यह अर्ज करना चाहता था कि आइंदा जब कभी मुशायरा करें तो सेवक को न भूलें—खास तौर पर जब कि वह जनाब भड़क देहलवी का शागिद है।’

कुछ दिनों के बाद शास्त्रिय साहब मेरे गरीबखाने पर तशरीफ लाये। उनकी बातचीत से मैंने यह नतीजा निकाला कि वे जनाब भड़क देहलवी और अपने अलावा किसी को शायर नहीं मानते और भड़क साहब को भी इसलिए कि वे इनके उस्ताद थे। संयोग से उस वक्त मेरी मेज पर एक

मशहूर उर्दू पत्रिका का वार्षिकांक पड़ा था। शातिर साहब उसके पन्ने उलटने लगे। इधर-उधर से देखने के बाद उन्होंने बड़ी उपेक्षा से उसे जमीन पर पटकते हुए कहा—
तुफ ! यह खुराफात है या शायरी ! एक भी काम की गजल नहीं। खुदा की कसम, इससे बेहतर गजलें तो बंदा अच्छकन बे बटन बंद करते वक्त कह लेता है। खुदा जाने इस युग में शायरों को क्या हुआ है !

मैंने सवाल किया—‘आप कौन-सी पत्रिका को अपना कलाम भिजवाते हैं?’

मुंह बनाकर कहने लगे—‘किसी पत्रिका को भिजवाने का सवाल ही पैदा नहीं होता। जब कदरदान ही लद गये तो भैंस के आगे बीन बजाने से फायदा ? शुरू-शुरू में एक पत्रिका की सरपरस्ती करने का इरादा किया था। गजल भिजवायी थी। संपादक साहब ने इस माफीनामे के साथ वापस कर दी कि आपकी शायरी कम से कम हमारी समझ से परे है। मुन्हा न अल्लाह ! यह है पढ़े-लिखों की कदरदानी का आलम ! यों नहीं कहते कि बिलकुल गंवार हूं, इसलिए हमें लाचार समझा जाये।’

‘आप ठीक फरमाते हैं। अच्छा, कोई अपना शेर सुनाइये।’

‘कैसा शेर सुनेंगे आप ? रोमानी, मजा-किया या प्रोग्रेसिव ?’

‘मजकिया।’

‘बेहतर ! तो सुनिये ! अर्ज किया है :

शातिर तुम्हारे इश्क ने सब बल बिये

निकाल

नबनीत

मुद्दत से आरजू थी कि सीधा करे कोई !
शेर सुनकर मुझ पर जड़ता जैसी अवस्था छा गयी। शातिर साहब को यह नागवार गुजरा। फरमाने लगे—‘आपने दाव नहीं दी !’
मैंने अर्ज किया—‘माफ कीजिये शातिर साहब ! यह शेर तो महाकवि इकबाल का है।’

शातिर साहब ने बिलकुल न घबराते हुए जवाब दिया—‘आप पहले शक्स नहीं हैं, जिन्होंने यह एतराज किया है। दरअसल आपको इस शेर की पृष्ठभूमि मालूम नहीं। यह शेर मैंने एक मुशायरे में पढ़ा था। इत्तफाक से वहां महाकवि इकबाल भी मौजूद थे। उन्हें इतना पसंद आया कि भाव-विह्वल होकर फरमाने लगे—काश ! आप मेरा सारा दीवान ले लें और यह शेर मुझे दे दें। मैंने अर्ज किया—आपका दीवान आपको मुबारक ! आप वखुशी यह शेर ले सकते हैं ; लेकिन इस पर कापीराइट मेरा रहेगा।’

‘वाकई आपने बड़ी दरियादिली दिखायी शातिर साहब !’

‘जी हां ! असल में जो शक्स दरियादिल नहीं, वह कभी बड़ा शायर नहीं हो सकता। हां, इस सिलसिले में एक लतीफा भी हो गया। उसी मुशायरे में महाकवि आखू भी तशरीफ फरमा रहे थे। उन्होंने प्रार्थना की—चूंकि इस शेर के दूसरे मिसरे (मुद्दत से आरजू थी कि सीधा करे कोई) में मेरा तखल्लुस इत्तफाकन आ गया है, इसलिए यह मिसरा मुझे अता करें। मैंने उनसे क्षमा मांगते हुए कहा—जब मैं सारा शेर इकबाल

मां

साहब को दे चुका हूँ, तो इसका एक मिसरा आपको कैसे दे सकता हूँ।'
'बहुत खूब ! अच्छा, कोई और शेर सुनाइये !'

'एक रूमानी शेर सुनिये !'
'इरशाद !'

'इश्क ने शातिर निकम्मा कर दिया
बरना हम भी आदमी थे काम के।'
'दुवारा माफ कीजिये शातिर साहब
लेकिन यह शेर तो'

'आपका मतलब है गालिव का है।'
'जी हाँ !'

'आपको फिर मुग़लता हुआ; लेकिन इसमें आपका कसूर नहीं। इस शेर की पृष्ठभूमि यह है कि जिस मुशायरे में यह पढ़ा गया, उसके सदर ने इसकी तारीफ़ करते हुए कहा—ऐसा शेर तो गालिव ही कह सकता है। संयोग से श्रोताओं में एक कातिब भी मौजूद था कि जो उन्हीं दिनों "दीवाने-गालिव" की किताबत कर रहा था। उसने अद्वाबश यह शेर भी गालिव से जोड़ दिया। वरना अहले-दिल जानते हैं कि यह शेर गालिव का नहीं हो सकता। जैसा कि आप भी जानते होंगे कि गालिव ने आमों के अलावा किसी चीज़ से इश्क नहीं किया और कोई शख्स लजीज आम खाकर निकम्मा नहीं हो सकता।'

एक दिन योंही बाज़ार में शातिर साहब के साथ मुठभेड़ हो गयी। उन्होंने कहा—
'मैं आपकी ही तलाश में घर से निकला था। एक जरूरी मशविरा करना है।'



'फरमाइये।'

लखनऊ में आल इंडिया मुशायरा हो रहा है। आर्गनाइज़रों ने दावतनामा भिजवाया है। आपके खयाल में मुझे वहाँ जाना चाहिये या नहीं।'

'जरूर जाइये! भला इसमें पूछने की क्या बात है?'

'लेकिन मुआवज़ा बहुत कम है। सिर्फ पांच सौ रुपये और फस्ट क्लास का किराया।'

'यह नाकाफी तो नहीं।'

'क्या कहा? नाकाफी नहीं।' शातिर साहब ने गरजकर कहा—'भड़क देहलवी के इकलौते शागिर्द के लिए सिर्फ पांच सौ रुपये ! यह मेरी ही नहीं, भड़क साहब की भी तीहीन है।'

'तो मत जाइये !'

'लेकिन आजकल हाथ जरा तंग हैं।'

हिंदी डाइजेस्ट

सोचता हूँ, चला ही जाऊँ।'

'तो चले ही जाइये।'

'आपका मतलब है, इस तौहीन के साथ समझौता कर लूँ ! यह कैसे हो सकता है ! भड़क साहब ने वसीयत की थी कि साहब-जादे, जलील से जलील हरकत करना, लेकिन नाकाफी मुआवजा कबूल न करना !'

'फिर तो आपको हर्गिज नहीं जाना चाहिये।'

'हां, यह ठीक है। मैं उन्हें आज ही तार भिजवा देता हूँ कि मुझे माफ किया जाये।'

शातिर साहब की उस मुशायरे में शामिल न होने के लिए बड़ी शोहरत हुई। सारे शहर में उनकी धूम मच गयी। हर शब्द ने उनकी प्रतिष्ठा को स्वीकार करते हुए महसूस किया कि इस गये-गुजरे जमाने में भी स्वाभिमानी शायर मौजूद हैं। एक रईस को जब पता चला तो उसने शातिर साहब को चाय पर आमंत्रित किया और उन से प्रार्थना की कि वे उनके लड़कें का (जिसकी शादी कुछ ही दिनों में हो रही थी) सेहरा लिखें। काफी बहस और तकरार के बाद शातिर साहब ने उनकी फरमाइश मंजूर कर ली। साढ़े सात सौ रुपये मुआवजा तय पाया।

शायरी के कद्रदान बड़ी उत्सुकता से शातिर साहब के सेहरे का इंतजार करने लगे। आखिर वह दिन भी आ पहुंचा, जब शातिर साहब को सेहरा पढ़ना था। वे एक नयी शेरवानी पहनकर स्टेज पर तशरीफ लाये। श्रोताओं की तरफ मुस्कराकर

मवनीत

देखा। दो-एक बार खांसे और रईस साहब को संबोधित करते हुए कहा—'हुजूर बर्न करता हूँ :

सात दरिया के फराहम किये होंगे सेहरा तब बना होगा इस अंदाज का गन्ध-गन्ध

जब कि अपने में समावे न खुशी के सारे गूँथे फूलों का भला फिर कोई क्योंकर सेहरा।

शातिर साहब ने अभी दो शेर ही पढ़े थे कि श्रोताओं में किसी नौजवान ने पुकारकर कहा—'अजी साहब ! यह क्या मजाक है ? गालिब का सेहरा आप अपने नाम से पढ़ रहे हैं।'

शातिर साहब ने चिल्लाकर जवाब दिया—'कौन कहता है, यह सेहरा गालिब का है !'

'मैं कहता हूँ।' उस नौजवान ने चुनौती देते हुए कहा।

'सबूत ?' शातिर साहब ने मांग की।

'यह रहा सबूत !' नौजवान ने जेब में से 'दीवाने-गालिब' का पाकेट एडिशन निकालते हुए कहा।

जल्से में हलचल मच गयी। शातिर साहब के मुंह पर हवाइयां उड़ने लगीं। रईस ने गुराकर कहा—'यह क्या हरकत है ?'

और शातिर साहब यह कहते हुए कि 'माफ कीजिये, मुझे एक जरूरी काम था आ गया।' जल्से से नोक-दुम भागे।

[शेष पृष्ठ १५६ पर]

भा.तीय विज्ञान कांग्रेस का छियासठवां अधिवेशन जनवरी के पूर्वार्ध में डा. रामचरण मेहरोत्रा (कुलपति : दिल्ली विश्वविद्यालय) की अध्यक्षता में उस्मानिया विश्वविद्यालय, हैदराबाद में हुआ। उसका मुख्य विचारणीय विषय था—'आने वाले दशकों में भारत में विज्ञान और प्रविधि की स्थिति'।

अधिवेशन का उद्घाटन करते हुए प्रधान-मंत्री श्री मोरारजी देसाई ने कहा कि स्वतंत्रता आने के बाद से भारत में विज्ञान और प्रविधि का जो विकास और विस्तार हुआ है, उसका लाभ दुर्भाग्यवश केवल संपन्न वर्ग को मिला है और निचला वर्ग उससे अछूता रह गया है। इस स्थिति की गंभीरता को समझते हुए भारत सरकार ने समुचित राष्ट्रीय प्रविधि-नीति निर्धारित करने के लिए कदम उठाये हैं और इस नीति का मसौदा शीघ्र ही संसद में प्रस्तुत किया जायेगा।

अध्यक्ष-भाषण में डा. मेहरोत्रा ने इस बात पर विशेष बल दिया कि देश के संतुलित विकास को दृष्टि में रखते हुए हमें अपनी अनुसंधान और विकास परियोजनाओं की प्राथमिकताएं नये सिरे से निर्धारित करनी होंगी। जनता का जीवन-सापन-स्तर ऊंचा उठाने और जनजीवन को उत्तम बनाने में विज्ञान और प्रविधि की भूमिका को नजर-अंदाज करके महज शैक्षणिक स्तर के अनुसंधान-कार्यों पर समय, धन और धन का व्यय कोई भी राष्ट्र बहुत



विज्ञान-बिंदु

केजिता

दिनों तक वहन नहीं कर सकता। जो बीज अथवा वृक्ष फल न दे, उसे कोई कब तक सींचेगा ?

उन्होंने कहा कि हमें पश्चिम से विज्ञान लेने के साथ ही वहां विज्ञान और प्रविधि के तीव्र विकास से जो पर्यावरणीय, मानवीय और सामाजिक समस्याएं उपजी हैं, उनसे भी सबक सीखना होगा। मगर इस धुन में विज्ञान के महत्त्व, प्रभाव, उसकी आवश्यकता और विकास में बाधा नहीं पड़ने दी जानी चाहिये।

विज्ञान और राजनीति
आस्ट्रिया की विज्ञान और प्रविधि मंत्री

हिंदी डाइजेस्ट

डा. हर्षा फर्नबर्ग ने 'शिक्षा के संदर्भ में विकास-कार्यों में विज्ञान और प्रविधि की भूमिका' पर बोलते हुए विज्ञान और प्रविधि को राजनीति के उपकरण के रूप में इस्तेमाल करने की बढ़ती हुई प्रवृत्ति पर चिंता और नाराजगी प्रकट की। उन्होंने कहा कि कोई भी वैज्ञानिक या विशेषज्ञ किसी समस्या का हल ढूँढ़ने में अकेला पूर्णतः समर्थ नहीं हो सकता। निःसंदेह विज्ञान और प्रविधि अपने सामाजिक दायित्वों की अनदेखी नहीं कर सकता, मगर इसके लिए उन्हें राजनैतिक संस्थाओं के सहयोग की आवश्यकता है।

उन्होंने कहा कि आस्ट्रिया एक छोटा देश है और वहां भी अब यह महसूस किया गया है कि विज्ञान और प्रविधि संबंधी गतिविधियों की रूपरेखा और दिशा राष्ट्रीय सरकार की घोषित नीति के अनुरूप ही होनी चाहिये। यही वजह है कि हमने अपने यहां विगत कई वर्षों में यंत्रेतर विज्ञान के विकास पर खासा जोर दिया है।

परमाणु और शांति

इस अधिवेशन में जिन विचारोत्तेजक और दिलचस्प विषयों पर चर्चाएं हुईं, उनमें एक था—'कलियुग में जीवन।' प्रमुख वक्ता थे नोबेल-पुरस्कृत शरीरक्रिया-विज्ञानी प्रो. जार्ज वाल्ड। उनके अनुसार, मानवीय और सामाजिक दायित्वों को ताक में रखकर की गयी आर्थिक लाभ की दौड़ ने पिछले दो सौ वर्षों में प्रकृति और परिवेश का प्रदूषण इस सीमा तक कर दिया है कि नवनीत

मनुष्य-जाति विनाश के कगार पर पहुंच गयी है। उन्होंने बताया कि अमरीका में कैंसर-रोगियों में से लगभग ८० प्रतिशत को यह रोग प्रदूषित पर्यावरण के कारण होता है।

ऊर्जा की अनाप-शनाप खपत की प्रवृत्ति पर प्रहार करते हुए प्रो. वाल्ड ने कहा कि जीवाश्मीय ईंधन (पेट्रोलियम, कोयला, लिग्नाइट आदि) की खपत को नियंत्रित करने की दिशा में कोई कारगर कदम समय रहते नहीं उठाये गये, तो आने वाली सदी में ऊर्जा का लगभग अकाल-सा पड़ जायेगा। प्रकृति में इन भंडारों का निर्माण लाखों-करोड़ों वर्षों में जाकर हो सका है। उन्हें इस तरह चंद सदियों में फूंक डालना 'सनक' के सिवा कुछ नहीं कहा जा सकता।

कृषि-उत्पादों से पेट्रोलियम प्राप्त करने के प्रयास के बारे में प्रो. वाल्ड ने कहा कि वास्तव में यह एक प्रकार की प्रतिक्रान्ति ही सिद्ध होगी। ये पेट्रोलियमदायी फसलें उगाने के लिए उर्वरक आदिके रूप में जितने पेट्रोलियम-पदार्थ खर्च किये जायेंगे, उतना-तन उसका २० प्रतिशत ही हो पायेगा, अधिक नहीं।

डा. वाल्ड ने अमरीका और रूस के परमाणु-शस्त्रभंडारों को मानवजाति के सिर पर धागे के सहारे लटकती हुई तलवार की उपमा दी और शांतिकार्यों के लिए परमाणु-ऊर्जा के भारतीय प्रयोगों को 'कल्पना' कहा। उनकी राय है कि परमाणु-ऊर्जा का कोई शांतिमय उपयोग हो ही नहीं सकता।

विबडन से उत्पन्न पदार्थों के निपटान का कोई भी तरीका या रास्ता जब तक खोज न लिया जाये, तब तक परमाणु-ऊर्जा मानव के लिए खतरे का कारण ही बनी रहेगी। विबडन से उत्पन्न हानिकारक रेडियो-विकिरणों के प्रभाव को नजरअंदाज करने की प्रवृत्ति को उन्होंने अमानुषिक कहा। उन्होंने यह भी कहा कि परमाणु से बिजली बनाने की कोशिशें आगे चलकर केवल पछतावे का कारण बनेंगी। कारण, ग्रेनियम एनरिचिंग और प्रोसेसिंग तथा ऐसे संयंत्रों के निर्माण और संचालन की लागत में अभी ही पांच गुना वृद्धि हो चुकी है और यह स्पष्ट दिख रहा है कि आगे जाकर तो लागत और भी तेजी से बढ़ेगी।

कृषि के यंत्रीकरण को बड़े नगरों में बढ़ती भीड़ का कारण मानने वाले प्रो. वाल्ड के मत में खेती आदि में यंत्रों का उपयोग तभी किया जाना चाहिये, जब मानव-शक्ति का अभाव हो; मानव-शक्ति के मुलभ रहते मशीनों का सहारा लेने से समस्याएं बढ़ेंगी ही।

घटती प्रजनन-क्षमता

हाल में एक तथ्य यह सामने आया है कि धीरे-धीरे मनुष्य की उर्वरता (प्रजनन-क्षमता) का हास प्रारंभ हो गया है, या विज्ञान की भाषा में कहें तो मनुष्य की उर्वरता-दर कम होने लगी है। हैदराबाद अधिवेशन में इसकी भी चर्चा हुई।

यहां आप यह अच्छी तरह समझ लें कि उर्वरता-दर जन्मदर से भिन्न है। पिछले

दशकों में सारी दुनिया में आवादी की बढ़ती की भयंकर रफ्तार को काबू में लाने के लिए जन्मदर घटाने की अनेक तकनीकों और कृत्रिम साधनों का विकास किया गया। यह सिलसिला आज भी जारी है। परंतु उर्वरता-दर का संबंध इन कृत्रिम साधनों या तकनीकों से नहीं है। यह तो सीधे मनुष्य की प्रजनन-क्षमता से संबंधित है।

मानव-समाज में इस क्षमता के हास के लक्षणों का जिक्र जिन समाज-विज्ञानियों ने किया है, उनका कहना यह है कि इसकी वजह शायद यह है कि धीरे-धीरे मानव की जीवन-संरचना में परिवर्तन होने लगा है। जीवन का जो अंश व्यक्ति की उर्वरता को नियंत्रित और प्रभावित करता है, वह खुद एक परिवर्तन की प्रक्रिया से गुजर रहा है।

इसके अनेक कारण हैं, जिनमें सामाजिक संरचना और प्रचलित जीवन-मूल्य प्रमुख हैं। तलाक, बड़ी उम्र में विवाह, अंतर-जातीय विवाह, जीविकार्जन के लिए बड़ी संख्या में लोगों का अपने जन्मस्थान से बहुत दूर भिन्न वायुमंडल, परिवेश और सांस्कृतिक वातावरण में जाकर बसना, खान-पान और रहन-सहन के तौर-तरीकों में परिवर्तन, पेशे-धंधे को अत्यधिक महत्त्वपूर्ण मानते हुए निजी जीवन को उसके अनुकूल ढालने की बढ़ती हुई प्रवृत्ति तथा रति-पैटर्न और व्यवहार के बदलते ढंग आदि सामाजिक कारण इसके मूल में हैं। प्रचलित जीवन-मूल्य मनुष्य के चितन को तथा उसका चितन मनुष्य के आंतरिक

हिंदी डाइजेस्ट

व्यक्तित्व को प्रभावित किये बिना नहीं रह सकते। इस परिवर्तन का शायद जीन-संरचना पर प्रभाव पड़ रहा है।

नयी दिशाएं, नये चरण

अधिवेशन के अंत में देश के वैज्ञानिक विकास के दिशा-संकेत के लिए कई प्रस्ताव पारित किये गये।

भारत के समुद्र-तट के सहारे-सहारे लगभग ३२० किलोमीटर का समुद्र-तल प्राकृतिक संपदा की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। उसकी छानबीन की जानी चाहिये, ताकि उसका पूरा-पूरा लाभ उठाया जा सके। इस बात पर भी बल दिया कि सभी प्राकृतिक और मानवीय संसाधनों का सर्वेक्षण करके उनकी सूचियां तैयार की जायें। इसके लिए आकाशीय सर्वेक्षण तकनीक, रिमोट सेन्सिंग, गभीर समुद्र-वेधन और कम्प्यूटर अनुप्रयोग आदि सभी साधन अपनाये जायें।

केंद्र और राज्यों की सरकारों से अनुरोध किया गया कि वे अनुसंधान और विकास-कार्यों को बल देने वाली बुनियादी विज्ञान-शोध स्कीमों को आर्थिक दृष्टि से तरजीह दें, ताकि आवश्यक और उपयोगी नयी जानकारी हासिल की जा सके। प्रौढ़-शिक्षा के कार्यक्रम को भी ऐसा रूप दिया जाये कि ग्रामवासी श्रमशक्ति और पर्यावरणसंबंधी जानकारी का लाभकारी उपयोग करने को प्रेरित हों।

चिकित्सा और पशु-उपचार-विज्ञान से संबंधित सेक्शन ने कहा कि नागरिकों और पशुधन को प्राथमिक चिकित्सा-सुविधाएं

उपलब्ध कराने की एक सुनिश्चित राष्ट्रीय नीति विकसित की जाये। ऐलोपैथिक चिकित्सा-पद्धति के अतिरिक्त, अन्य पद्धतियों में कार्य करने वाले चिकित्सकों को भी कुपोषण और बैक्टीरिया-संक्रमण जैसे मूलभूत विषयों की जानकारी दी जाये, ताकि वे मौसमी रोगों की रोकथाम में कारगर ढंग से सहायक हो सकें।

कृषि और जीव-विज्ञानियों ने कहा कि जैव उर्वरकों और प्राकृतिक खादों का का बड़े पैमाने पर उत्पादन आज आवश्यक होता जा रहा है। अतः कूड़े के रूप में फेंके जाने वाले पदार्थों को पुनश्चक्रण द्वारा उपयोगी बनाने की संभावना पर पूरा ध्यान दिया जाना चाहिये।

शरीरक्रिया-विज्ञानियों ने योग के वैज्ञानिक अध्ययन और योग को दैनिक जीवन में लाभकारी बनाने के तरीकों के विकास की आवश्यकता की ओर सरकार का ध्यान आकृष्ट किया। पश्चिम में 'समोहन' को जिस प्रकार चिकित्सा और मानसिक उपचार के लिए उपयोग में लाया जाने लगा है, वैसे ही भारत में योग का उपयोग किया जा सकता है; क्योंकि योग यहां के जन-मानस के अनुकूल है।

यह भी सुझाव रखा गया कि विज्ञान-कार्मिकों के चयन में नवीनतम मनोवैज्ञानिक तकनीकों का सहारा लिया जाये। मनोविज्ञानियों का कहना है कि साक्षात्कार के आधार पर चयन का आजकल प्रचलित तरीका दोषपूर्ण और एकांगी है।



भद्र पुरुष

रवीन्द्रनाथ त्यागी

भद्र पुरुष उस पुरुष को कहते हैं, जो भद्र होता है। यदि ये लोग न होते, तो इस बतार संसार की आधी मुसीबतें खुद-ब-खुद हल हो जातीं। वदमाश आदमी से आप निवृत्त सकते हैं; पर 'भद्र पुरुष' हमेशा आप-को मात दे जाता है। वह इतना शरीफ होता है कि आप उसे कभी नहीं डांट सकते—चाहे उसकी वजह से आपको भले ही डांट पड़ जाये। वह इतना असहाय और विनयी दीख पड़ता है कि आप अपना पैसा उससे कभी वसूल नहीं कर सकते, जबकि कोई गौर होता, तो सरे बाजार आप उसकी परदन पकड़ लेते।

भद्र पुरुष की तो पत्नी तक उसे सिर्फ इस कारण नहीं छोड़ती, क्योंकि वह भद्र है। कोई लफंगा होता तो कभी का तलाक ले लेती। मगर भद्र पुरुष है कि उसकी पत्नी हजार परेशानियों के बावजूद उसे नहीं छोड़ती। अपनी भद्रता के कारण उसने सबको बांध रखा है—ठीक उसी प्रकार जैसे विहारी की नायिका आम पब्लिक को अपने केश-विन्यास से बांधा करती थी। 'काको मन बांध्यो नहीं, जूड़ा बांध निहारा' भद्र पुरुष किसी भी पेशे में मिल सकते

हैं। आमतौर पर वे सफेदपोश होते हैं और हाथ में छाता या छड़ी रखते हैं। वे पान खाते हैं, जवां लेते हैं और किसी-किसी केस में तंबाकू भी पीते हैं। वे सुबह की सैर करने जाते हैं और शाम को अपनी पत्नी के साथ परमपिता परमात्मा की आरती उतारते हैं। वे दफ्तर में हैं तो शायद काम नहीं करते, दुकानदार हैं तो ठीक सौदा नहीं देते, दोस्त हैं तो उधार मांगकर वापस नहीं करते, और मुहल्लेदार हैं तो आपकी इस्तिरी या किताबें वगैरह मांगकर ले जाते हैं जिन्हें वे अपने आप कभी नहीं लौटाते।

आप झगड़े की तैयारी करते हैं, कुरते की बांहें ऊपर चढ़ाते हैं, वीररस की कोई कविता याद करते हैं और वजरंगवली का नाम लेकर मल्लयुद्ध के लिए बाहर निकलते हैं और ये हैं कि ऐसी घिघियाती मुद्रा में आपके सामने प्रस्तुत होते हैं कि वीररस के स्थान पर करुणरस या वात्सल्यरस का परिपाक होने लगता है। आप इनका कुछ नहीं कर सकते। रफू करे कोई कहां तक इनको, नहीं गिरेबां में चाक बाकी।

भद्र पुरुष कभी किसी लड़की से प्रेम नहीं करता; वह सिर्फ शादी करता है।

हिंदी डाइजेस्ट



जार्ज, कितनी दफे तुमसे कह चुकी हूँ कि बोलते
हुए हाथ बहुत मत घुमाया करो।

कोई-कोई भद्र पुरुष इधर-उधर भी मुंह
मार लेते हैं; पर इस सबसे उनकी भद्रता
पर कोई प्रत्यक्ष प्रभाव नहीं पड़ता। ये लोग
परिवार-नियोजन के विरोधी होते हैं।
बजाय परिवार-नियोजन के इनकी रुचि
शास्त्रीय संगीत और साहित्य वगैरह में
ज्यादा होती है। कभी-कभी कुछ भद्र पुरुष
लेखक, कवि या चित्रकार भी पाये गये हैं।

भद्र पुरुष राजनीति में विशेष रुचि नहीं
रखता; जो कुछ भी लोग कहते हैं, वह
सुनता जाता है और जर्दा खाता जाता है—
'कोउ नृपहोउ हमहि काहानी' वाला दृष्टि-
कोण, जो कभी श्रीमती मंथरादेवी ने रामा-
यण में अपनाया था। मैं मंथरा की बेहद
इज्जत करता हूँ। साहित्य में भी उसका
स्थान बहुत ऊँचा है। अगर मंथरा न होती,

नवनीत

तो बाकी रामायण कैसे
लिखी जाती? राम
दशरथ राम को राज्य दे
देते और स्वयं संन्यास
पर निकल जाते। अयोध्या
कांड के कुछ अंशों के बाद
लिखने को कुछ शेष ही
नहीं रहता।

भद्र पुरुष धर्म के क्षेत्र
में भी वही व्यवहार करते
हैं, जो कि शेष क्षेत्रों में।
यहां भी वे तटस्थ रहते हैं।
असलियत यह है कि भद्र
पुरुष की सारी शक्ति और
सारा समय तो अपने को

भद्र रखने में ही गुजर जाते हैं; वह बाकी
काम करे तो कब करे? वह वादे करता
है और उनके पूरा न होने पर हाथ
जोड़कर माफी मांगता है। ऐसे व्यक्ति के
सामने तो आप उसी तरह निरुपय हो जाते
हैं, जैसे कि वक्सर की लड़ाई के बाद शह
आलम हुए थे। स्थिति यह रह गयी थी कि
'शहंशाह आलम, शाहदरा से पालम'।
बाकी इलाका कंपनी के अधिकार में चला
गया था।

साथियों, अब वक्त आ गया है कि हम
सब मिलकर संसार के भद्र पुरुषों को बल
कर दें। यही वह बुर्जुआ क्लास (वर्ग) है
जो मानव-जाति की प्रगति को रोके बड़ा
है। इसकी शराफत नकली है। गार्लिन
कभी न जानिये इस होशियार को। हमारा

मात्र

अधुनैतिक दायित्व है कि हम संगठित होकर दुनिया के इन शरीफ आदमियों को मिटा डालें, ताकि बाकी लोगों को ईमानदारी से जीने का अवसर मिल सके। दिल पर पत्थर रखिये और क्रांति की तैयारी कीजिये। अगर ये भद्र पुरुष न होते तो पता नहीं अब तक हम लोग कहां पहुंच गये होते। ये लोग भले हैं पर इस वकरीछाप शराफत से फायदा क्या? वकरी के बारे में तो आप शायद यह भी कहें कि 'जालिम में थी एक बात और इसके सिवा भी', क्योंकि वह दूध देती है। ये भद्र पुरुष तो दूध भी नहीं देते। अच्छा अब आप लोग जाइये और क्रांति

की तैयारी कीजिये। बुद्धिजीवी होने के नाते मैंने अपना फर्ज पूरा कर दिया। भगवान आपकी सहायता करें। और हां, चंदा अगर काफी हो जाये तो हमें भी खबर करना, क्योंकि उस स्थिति में संभव है कि बजाय क्रांति करने के हम शायद खुद ही भद्र पुरुष बनने की बात सोचने लगें। जब तक आप लोग चंदा या क्रांति की व्यवस्था करेंगे तब तक बंदा जो है वह इस फूले हुए गुलमुहर के नीचे लटेगा और भगवान की स्तुति में फिर वही पुरानी बात अर्ज करेगा : दिल नहीं लगता मेरा तनहाई में मेरे मौला, जन्नत से किसी दूर को भेज।

[एक विदेशी रचना से प्रेरित]



गजाल

भावनाओं के शहर में लोग बेघर हो गये,
जिंदगी से इस कदर जूझो कि पत्थर हो गये।

सर्प बनकर जो हमेशा विष-वमन करते रहे,
एक तख्ती टांगकर वे लोग शंकर हो गये।

आत्मा के आईनों पर धूल के मेले लगे,
जिंदगी में आजकल इतने बवंडर हो गये।

अब किसे अपना कहें, किस द्वार पर आवाज दें,
दोस्त, रिश्ते, फूल सब कांटों के बिस्तर हो गये।
स्वप्न जिनकी आंख ने पाले सितारों से अधिक,
डुगडुगी के सामने वे लोग बंदर हो गये।

—जहीर कुरेशी

राम भवन, चिटनिस की गोठ, खालियर-४७४००१



सिमा-समारोह

रामनारायण उपाध्याय

उस दिन एक सार्वजनिक संस्था के सेवा-समारोह में जाने का अवसर आया। मैंने देखा—उसके सभी सदस्य बढ़िया सूट में थे, अपनी कार या स्कूटर से समारोह-स्थल तक आये थे और समारोह प्रारंभ होने में विलंब होने से सेवा के लिए बेचैनी अनुभव करते हुए सिगरेट के कश के साथ अपने साथियों से गर्मजोशी से बातें कर रहे थे। कोई भी गरीब या मध्यम श्रेणी का व्यक्ति संस्था का सदस्य नहीं था। उनकी यह मान्यता थी कि जो स्वयं गरीब है, अभावग्रस्त है, वह सेवा क्या करेगा! सेवा के लिए तो धन एवं सत्ता का साधन चाहिये; और जिनके पास ये दोनों हैं वे यदि चाहें तो जनता की मनचाही सेवा कर सकते हैं।

समारोह नगर से दूर एक शिक्षण-संस्था के हाल में आयोजित किया गया था। दूर की जगह इसलिए चुनी गयी थी कि समारोह की गरिमा को आम जनता की भीड़ से बचाया जा सके। समारोह में नगर के कुछ प्रतिष्ठित नागरिक, अधिकारी, पत्रकार एवं फोटोग्राफर आमंत्रित थे।

समारोह निर्धारित समय से ठीक एक नवनीत

घंटे पश्चात् प्रारंभ हुआ। यह इसलिए कि जिन्हें जल्दी हो या संस्था के सेवाकार्यों में निष्ठा नहीं हो, उन्हें लौट जाने की सुविधा रहे, ताकि सारा कार्य शांतिपूर्ण वातावरण में किया जा सके। हाल रंग-विरंगे फीलों और गुब्बारों से सजाया गया था। प्रवेश द्वार पर विजली के प्रकाश से जलने और बुझने वाले शब्दों में 'सेवा ही परम धर्म है' यह वाक्य बुझ-बुझकर जलते हुए अपना संदेश सुना रहा था।

दर्शकों के बैठने के लिए चेयर्स लगी थीं, जिन पर कुछ सुंदर पेयर्स बैठे थे। दबक उनकी ओर देखकर मंच को देखते हुए पूरे समय तक बैठने का बल संजोये हुए थे।

सामने एक सुसज्जित मंच पर पदाधिकारियों के बैठने की कुर्सियां लगी थीं, जिनके सामने एक चादर से ढंकी और पुनः दस्ते से सजी टेबल पर अध्यक्ष, उपाध्यक्ष, सचिव और कोषाध्यक्ष की नेम-प्लेट रखी थी। भाषण के लिए माइक, खड़े होकर बोलने के लिए डेस्क और प्रेरणा के लिए दायें हाथ महिलाएं, बायें हाथ पुरुष और सामने अटेंशन की मुद्रा में फोटोग्राफर

बड़े हुए थे।

जैसे ही कार्यक्रम प्रारंभ होने की घोषणा हुई, पुराने अध्यक्ष और कुछ सदस्यों ने मंच पर स्थान ग्रहण किया। उसके बाद नियमानुसार नये अध्यक्ष का नाम प्रस्तावित एवं समर्थित हुआ और उन्होंने कांटों का ताज पहनने की मुद्रा में मंच पर आकर फूलों का हार तथा गुलदस्ता ग्रहण किया। गुलदस्ता इस बात का प्रतीक था कि कटी हुई टहनियों के एक ही धागे से बंधे होने की तरह हम सबका सहयोग सेवा के लिए आपके साथ रहेगा। जैसे ही उनके चेहरे पर मुस्कान आयी, इस ऐतिहासिक क्षण को बांधने के लिए तुरंत उनका फोटो ले लिया गया।

नये अध्यक्ष जिले के सर्वोच्च अधिकारी

थे। संस्था के प्रतिनिधियों ने उनके पास पहुंचकर बड़ी मुश्किल से उन्हें संस्था का मानद सदस्य बनने के लिए राजी कर लिया था। मानद सदस्य इसलिए कि पता नहीं, वे वाकायदा सदस्य बनना स्वीकार करें या नहीं। फिर सदस्य बनाकर उनसे प्रतिमास चंदा उगाहने के झंझट से भी वे बचना चाहते थे। संस्था को उनकी उपस्थिति मात्र से बल मिला। उनका नाम सुनकर उनसे मिलने का अवसर ढूंढने वाले संस्था के सदस्य बनकर उनके आस-पास मंडराने लगे। दानदाताओं में हौड़ मच गयी। उसके पश्चात् संस्था के पदाधिकारियों के चुनाव संपन्न हुए। यह कार्यक्रम इतना बोरिंग था कि दर्शक परस्पर गपशप करते रहे और



अध्यक्ष ने उन खुले हाथों पर कमीज-पैन्ट रखकर सर्वस्व-दान का गर्व अनुभव किया।

पदाधिकारी शपथ लेते रहे।

‘सेवा’ शब्द जिन्हें पाकर सार्थकता पाता है ऐसे एक सिविल सर्जन साहब, जिनकी उपस्थिति मात्र से अनुशासन बना रहता है ऐसे एस. पी. महोदय, लोक जिनके कार्यों से प्रभावित होता आया है ऐसे लोक-कर्म विभाग के अभियांत्रिक महोदय, झूठ को भी जिनमें सच साबित करने की क्षमता है ऐसे एक नामी-धामी वकील साहब, तिल्ली, विनौला या मूंगफली किसी में से भी तेल निकालने की जिनमें क्षमता है ऐसे एक आइल-मिल के संचालक, जिनके दो पाटों के बीच पिसकर गोल और चिकनी तुवर भी दो हिस्सों में विभाजित होती आयी है ऐसे एक दाल-मिल के मालिक, बैंकों के राष्ट्रीयकरण ने जिन्हें नागरिकता से जोड़ दिया है ऐसे एक बैंक-एजेंट, जिस कुर्सी को लेकर इतना संघर्ष है उन कुर्सीयों के निर्माता एक फर्नीचर-डीलर और अनाज एवं कपड़े के सरकारी व्यापार में ‘डीलर’ से ‘लीडर’ बन जाने वाले एक कंट्रोल-शाप के व्यापारी महोदय संस्था के सम्माननीय सदस्य थे।

इन सवने खड़े होकर माइक पर पधार-कर सेवा करने की प्रतिज्ञा ली। मंच पर बैठे दर्शकों ने ताली बजाकर प्रत्येक का स्वागत किया और सबके अलग-अलग चित्र लिये गये। विचार तो ऐसा था कि प्रत्येक सदस्य जब ‘सेवा’ शब्द का उच्चारण करे, तभी उसका फोटो लिया जाये, ताकि सबके मुंह एक जैसे खुले हुए और सेवा शब्द नवनीत

का उच्चारण करते हुए सुरक्षित रखे जा सकें। लेकिन कैमरे में अभी तक शब्द को बांधने की क्षमता नहीं होने से मन मसोस कर रह जाना पड़ा।

उसके बाद समारोह के सबसे महत्वपूर्ण आइटम सहायता-वितरण के अंतर्गत एक विधवा महिला को एक राष्ट्रीयकृत बैंक से सिलाई मशीन खरीदने के लिए ३०० रु. ऋण का चेक प्रदान करने का आयोजन था। तुरंत उस महिला को मंच पर बुलाया गया और बैंक के एजेंट से उसे चेक दिलवाते हुए शानदार फोटों लिया गया। पृष्ठभूमि में संस्था के अध्यक्ष एवं पदाधिकारी भी आ सकें, इसका पूरा खयाल रखा गया था।

मेरे पास बैठे एक संवेदनशील व्यक्ति गुनगुनाये—‘ऋण तो पहले भी दिया जाता था; लेकिन ऋण लेने वाले की इज्जत का खयाल रखते हुए उसे गुप्त रखा जाता था। इसमें क्या तुक है कि एक गरीब महिला सिर्फ ३०० के ऋण के लिए संप्रांत नागरिकों के सामने हाथ फैलाये और एक वेतनभोगी कर्मचारी ऋण देकर दान-दाता बनने का अभिनय करे !’

अंत में कुछ गरीब छात्रों को इंस देने का कार्यक्रम संपन्न हुआ। करीब बीस बाल-छात्र अपनी मैली-कुचैली, फटी-सिली, पैवंद लगी त्रेशमूषा में असहाय-से पंक्तिबद्ध खड़े थे और सूट-जूट से सज्जित पदाधिकारियों के चेहरों पर ऐसा रोव था मानो इव आइटम के द्वारा वे एक सामाजिक और आर्थिक क्रांति करने जा रहे हैं। बारी-बारी

मार्च

से प्रत्येक छात्र का नाम पुकारा गया और इस्ते-कांपते उसने अध्यक्ष के सामने पहुंचकर अपने दोनों हाथ जोड़ते हुए उन्हें प्रणाम किया। उन जुड़े हुए हाथों के खुलने पर उस पर एक कमीज और पैट रखकर अध्यक्ष ने सर्वस्व दान देने जैसे गर्व का अनुभव किया।

इसी बीच घोषणा हुई कि अब छात्रों का ग्रुप-फोटो होगा। वे नजदीक के कमरे में जाकर ड्रेस बदलकर आयें। इसी बीच जाने क्या हुआ कि नितान्त असहाय-सा एक लड़का अपनी जगह पर खड़ा रोने लगा। महिलाओं ने उसे देखा तो उनकी आंखों में भी आंसू छलछला आये और उन्होंने अपने पर्स में से

नाजुक रूमाल निकालकर उन्हें पोंछ डाला।

एक पत्रकार ने उसके नजदीक जाकर पूछा—‘क्या बात है बेटा, रो क्यों रहे हो?’ वह हिचकियां भरकर बोला—‘दादाजी, मेरे पास एक ही कमीज और पैट है। मैं अंदर जाकर कपड़े कैसे बदल सकता हूं!’

उसकी बात सुनकर मुझे ऐसे लगा जैसे उस बालक ने हम सबको नंगा कर दिया हो। लेकिन किसी के किये से क्या कोई नंगा होता है! सो उसके बाद भी बड़ी रात तक डिनर, ड्रिंक और फैसी ड्रेस का कार्यक्रम होता रहा।

—साहित्य कुटीर, ब्राह्मणपुरी, खंडवा, म.प्र.



‘सांझ को उस दांपत्य-सलाहकार से मिलकर आने के बाद से बड़े गुमसुम बैठे हो जी! क्या सलाह दी उसने?’ [कार्टून]

०००

मानस-चिकित्सक के यहां एक नया रोगी आया और काउच पर लेटकर कहने लगा—‘पत्रिकाओं में जब ढेर सारे नग्न विज्ञापन देखता हूं तो भयभीत हो उठता हूं।’

‘लगता है आप धार्मिक प्रवृत्ति के व्यक्ति हैं या किसी धर्म के प्रचारक हैं।’ मानस-चिकित्सक ने कहा।

‘धर्म से मेरा कोई लगाव नहीं है। मेरा व्यवसाय वस्त्र-निर्माण है। कपड़ा बनाने की दो मिलों का मैं मालिक हूं।’ रोगी बोला। —सत्य स्वरूप दत्त



दो शब्द डूब मरने की बात पर

• सूर्यबाला •

यों कहने के लिए, 'डूब मरना' अपने आपमें बड़ी लज्जास्पद बात मानी जाती है; लेकिन जरा गौर फरमाया जाये तो पता लगता है कि यह काम उतना शरमनाक नहीं है, जितना कि साहसिक और काविले-तारीफ़। और यह तो मानने से इन्कार किया ही नहीं जा सकता कि डूब मरना कतई आसान काम नहीं; न यह सबके बूते की बात ही है। लोग-बाग़ खुदकुशी के लिए तमाम नदी-पोखर तलाशते रह जाते हैं, और डूबने वाले चुल्लू-भर पानी में ही काम चला ले जाते हैं! जाहिर है कि कुएं-बावड़ी की अड़चनें वहाने-भर हैं। वह काम दिलेरों का है। हमारे आप जैसे तो सोचते-झिंकते रह जाते हैं उन आशिकों की तरह, जो ताउम्र माशूक की गली में तलाशते रह जाते हैं कि कहीं दो गज जमीन मिले तो एक आरामदेह कब्र खुदवायी जाये। कब्र खुदे कैसे? हिम्मत ही तब न। हिम्मत मरदां मददे खुदा; और कब्र खुदवाने जैसे काम में तो खुदा खास तौर से दिलचस्पी लेता है। कहने का मतलब यह कि डूब मरने के आशिकों के लिए चुल्लू-भर पानी का बंदोबस्त कोई समस्या नहीं—इंतजाम हो ही जाता है।



ताज्जुब की बात यह कि इतने थोड़े पानी में पशु, पक्षी, कीट, पतंग कोई नहीं डूबता—सिर्फ़ आदमजाद ही डूबते देखे जाते हैं। यह एक अहम सवाल है, जिसे साहित्य, कला और दर्शनशास्त्र के शोधार्थियों के लिए छोड़ा जा सकता है। विषय चाहे कितना छोटा हो, थीसिस में तीन सौ पेज तो भर ही जा सकते हैं।

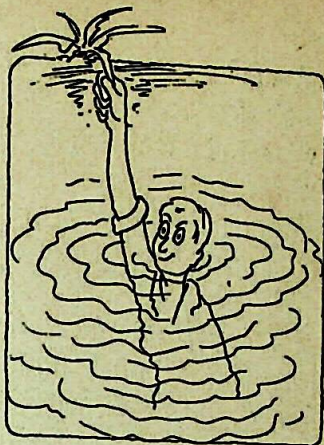
व्यावहारिक दृष्टि से देखें तो डूबकर मरने वालों की आम तौर पर दो ही किस्में होती हैं। एक, डूबते हुए बचा लिये जाने वालों की; और दूसरी बचाते हुए डूब जाने वालों की। पहली स्थिति दूसरी से भी बदतर होती है।

बहरहाल दोनों ही प्रकार की स्थितियों में कुछ सावधानियां आवश्यक हैं, जो निम्न-लिखित हैं:

अगर कोई व्यक्ति पानी में डूबते हुए 'बचाओ-बचाओ' चिल्ला रहा हो तो एक-दम नादानों की तरह फौरन छलांग मत लगा दीजिये। पहले तसल्ली कर लीजिये कि मूलतः उस व्यक्ति का इरादा आत्महत्या का तो नहीं था। क्योंकि आत्महत्या करने वालों को प्रायः तैरना नहीं आता है, उन्हें बचाने के लिए कूदना अक्सर खतरनाक होता है।

सावधानी नंबर दो यह कि खुद आपको तैरना आता है या नहीं। क्योंकि तैरना न आते हुए बचाने की कोशिश करना खुद डूब मरने वाली बात हो जाती है। अक्सर ऐसे लोग आत्महत्या के अपराधी से जाते-जाते एक 'मर्डर' भी करवा डालते हैं। बांकड़े बताते हैं कि पानी में डूबकर मरने वालों की तुलना में डूबते हुआ को बचाते हुए मरने वालों की संख्या ज्यादा होती जा रही है।

आत्महत्या के विचार से डूबने वालों के लिए यह आवश्यक है कि अंत समय में वे अपने निश्चय से तनिक भी न डिगें। क्योंकि



अड़ोस-पड़ोस तथा दोस्तों और दुश्मनों द्वारा बचा लिया जाना डूब मरने से कहीं ज्यादा जहमत-भरा होता है। पुलिस वालों को पता लग जाये तो सीधे-सीधे कई सिफरों का जुमाना या महीनों की मशक्कती जेल। (यद्यपि यह स्पष्ट है कि जुमाने की रकम आपके पास होती तो डूब मरने की नीवत ही क्यों आती!) मेरा ऐसे कई लोगों से सावका पड़ा है, जिन्होंने अकेले में यह साफ-साफ स्वीकारा है कि अगर उन्होंने डूबते समय जरा भी सावधानी से काम लिया होता तो बचा लिये जाने का कुपरिणाम आजीवन न भोगना पड़ता।

मान लीजिये कि आप आत्महत्या-वश नहीं, दुर्घटना-वश ही डूब रहे हैं, तो भी समझदारी इसी में है कि घबराये बिलकुल नहीं। अभी तक मैंने आकस्मिक दुर्घटनाओं से बचाव के जितने भी विवरण पढ़े हैं, सबमें इस बात पर विशेष जोर दिया गया है कि डूबते, जलते या गिरते समय घबराना बिल-

कुल नहीं चाहिये। कारण, घबराने से कोई फायदा नहीं और आज के युग में फायदे-नुक्सान का हिसाब लगाये बिना कोई काम नहीं करना चाहिये।

डूबते समय एकदम होश-हवाश खोकर चिल्लाने नहीं लगना चाहिये। चिल्लाने से आप थक जायेंगे। थकने से सांस जल्दी उखड़ जायेगी। नहीं चिल्लायेँगे तो सांस धीरे-धीरे उखड़ेगी। अच्छा यही होना कि आप रास्ते की ओर नजर किये रहें—कोई आता-जाता हो, तभी चिल्लायेँ वरना वही बात—चिल्लाने से फायदा ?

चीखने-चिल्लाने के बदले आप पूरी लगन से तैरने की कोशिश कीजिये, तैरना न आता हो तब भी; कोशिश करे आदमी तो

कौन-सा काम नहीं कर सकता। और फिर न भी कर पाये तो भी कोशिश करे। इन्सान का फर्ज है और फर्ज से बढ़कर दुनिया में कुछ नहीं।

डूबने से बचने का एक उपाय और है। अपने चारों तरफ देखिये, कोई तिनका वगैरह पकड़ने को मिल जाये, तो पकड़ लीजिये। कहा भी है—डूबते को तिनके का सहारा। वुजुर्गों ने कहा है, बात शलत नहीं होगी। लेकिन मान लीजिये, तिनका भी नहीं मिलता है, तो भी आप घबराइये तो नहीं हों; हिम्मत से काम लीजिये औरधीरे-धीरे डूब ही जाइये।.....

—द्वारा, आर. के. लाल, ग्लैक्सो लैब्स,
पोखरान रोड, ठाणे, महाराष्ट्र



० उदयपुर-नरेश स्व. महाराणा फतहसिंहजी अनपढ़ जरूर थे, पर कुशाग्र-बुद्धि थे। एक बार एक अंग्रेज पर्यटक उनसे मिलने आया। उसने महाराणा से पूछा—‘आपके राज्य का आकार कैसा है ? उसकी भौगोलिक स्थिति कैसी है ?’

दुभाषिये की सहायता से महाराणा ने प्रश्न का अर्थ समझा; फिर अपने सेवक को बुलाकर उसके कान में कुछ कहा।

थोड़ी देर में जब सेवक लौटा, उसके हाथ में सिका हुआ एक पापड़ था ! उसे अंग्रेज को देते हुए महाराणा ने कहा—‘मेरे मेवाड़ का यह नक्शा है, कहीं से उभरा हुआ, तो कहीं से समतल और कहीं से नीचा।’

० आपात-काल में एक अमीर के घर चोरी हुई। चोर एक लाख रुपये का सामान ले गये और घर में कागज का एक पुर्जा छोड़ गये जिस पर लिखा था—‘पक्का इरादा, कड़ी मेहनत और दृढ़ अनुशासन।’

० भोपाल में विधानसभा-भवन में एक कक्ष विरोधी दल के नेता का भी था। उसके द्वार पर जो तख्ती लगायी गयी, भूल से उस पर लिख दिया गया—‘नेता-विरोधी दल’, जबकि होना चाहिये था—‘नेता-विरोधी दल’। शीघ्र ही यह भूल किसी हिंदीप्रेमी के कहने पर सुधार दी गयी।

—श्याम मनोहर व्यास

फारसी साहित्य-सौरभ

अंबर बहराइची

अमीर खुसरो एक बार अपने गुरु सूफी संत हजरत निजामुद्दीन औलिया के साथ टहलने निकले। रास्ते में एक धुनिया रई धुन रहा था। तांत पर जब चोट पड़ती तो एक अद्भुत स्वर उपजता। हजरत निजामुद्दीन कुछ क्षण तक मुग्ध होकर उस ध्वनि को सुनते रहे। फिर मुड़कर उन्होंने अमीर खुसरो से पूछा—‘कहो! तुर्क! इस तांत से कौन-सी आवाज आ रही है?’ खुसरो ने एक क्षण आंखें बंद कीं और कहा—‘किवला व कावा। तांत कह रही है:

बर बरे जानां जानम रपत !

रपत ! रपत ! रपत !

बर बरे जानां जानम रपत !

रपत ! रपत ! रपत !

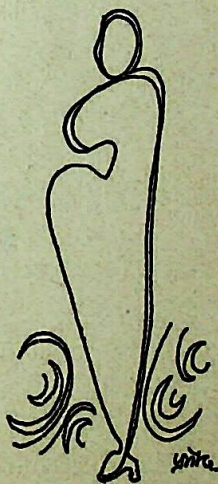
(प्रियतम के द्वार पर मेरी जान गयी, गयी, गयी, गयी। प्रियतम के द्वार पर मेरी जान गयी, गयी, गयी, गयी।)

इन पंक्तियों में तांत द्वारा प्रस्फुटित ध्वनि के साथ जो स्वरसाम्य तथा अर्थगौरव था, उससे हजरत निजामुद्दीन बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने खुसरो को गले लगाकर बहुत दुआएं दीं।

ईरान के कबीला कबूदजामा के सरदार नसरुद्दीन की किसी गलती से सुलतान

‘तकश’ रण्ट हो गया और उसने अपने एक सरदार को आज्ञा दी कि जाओ और नसरुद्दीन का सिर काट लाओ। नसरुद्दीन ने उस सरदार को किसी तरह इसके लिए मना लिया कि वह उसका सिर न काटकर उसे जीवित ही सुलतान के समक्ष प्रस्तुत करे। सरदार ने जब वैसा किया, तो नसरुद्दीन को अपने समक्ष पाकर सुलतान को बड़ा क्रोध आया। वह उस हुकमउद्दूल सरदार को कठोर दंड देने ही वाला था कि नसरुद्दीन ने यह खबाई पढ़ी :

मन खाके तू दर, चश्मेखिरद मी आरम



चित्र : प्रमोद यादव

हिंदी डाइजेस्ट

उत्तरत न यके बह, कि सब मी आरम
सर ख्वास्तई ब दस्ते कस नतवां दाद
मी आयम व बर गर्दने खुद मी आरम
—मैं अपनी बुद्धि के नेत्र में तेरे द्वार के रज-
कणों को भरे हुए, अकेलानहीं, अपितु सैंकड़ों
याचनाओं को साथ लिये आ रहा हूँ। तूने
मेरा सिर मांगा था, इसलिए मैं अपने सिर
को दूसरे को क्यों देता? इसी कारण मैं अपना
सिर अपनी गरदन पर उठाकर ला रहा हूँ।

इतना सुनते ही सुलतान तकश ने नस-
ख्दीन को न बेवेल क्षमा कर दिया, अपितु
उठकर उसे गले से लगा लिया और उसी
समय उसे ऊंचा ओहदा भी प्रदान किया।

मौलाना ताहिर ग़नी काश्मीरी, जिनकी
प्रशस्ति में डा. इकबाल ने फारसी में एक
सुंदर कविता लिखी है, शाहजहां के शासन-
काल में फारसी के सुप्रसिद्ध कवि थे। संतोष
उनमें कूट-कूटकर भरा हुआ था। सांसा-
रिक ऐश्वर्य एवं भोग-विलास को वे अवज्ञा
की दृष्टि से देखते थे और भूखे व अभाव-
ग्रस्त जीवन में प्रसन्न थे। वे कहते थे:

मा व क्रूरोक्राक्ता खुरसन्दीम

हम चू आसिया
गर रसद रोची गुबारे खातिरे मा मी शवद
—अभावग्रस्त एवं भूखों रहकर हम चक्की
की तरह हैं। जब मुझे भोजन मिलता है तो
वह मेरे हृदय की आह बनकर मुझसे पृथक्
हो जाता है। (चक्की में अन्न पहुंचता है
और पिसकर बाहर निकल आता है, चक्की
स्वयं भूखी ही रहती है।)

नवनीत

कहते हैं कि मौलाना ने अपना सारा
जीवन एक छोटे-से कमरे में व्यतीत किया।
जब वे कमरे में होते थे तो द्वार के पट बंद
कर लिया करते थे और जब बाहर निकलते
तो कमरे को खुला ही छोड़कर चले जाते
थे। किसी मित्र ने उन्हें इस बात पर टोका,
तो उन्होंने तत्काल उत्तर दिया—‘मेरे घर
की बहुमूल्य वस्तु तो मैं हूँ। जब मैं घर में
न रहूँ तो द्वार बंद करने से क्या लाभ? और
खुला छोड़ने से क्या हानि?’

०

औरंगजेब अभी शहजादा ही था कि
जेनावादी नामक रूपसी को देखकर प्रेमा-
सक्त हो गया। जब वह दक्षिण-विजय में
लगा हुआ था, तब अकस्मात् ही उसकी
प्रेयसी की मृत्यु हो गयी। जब उसे इसकी
खबर मिली तो वह तीन दिन तक शोक-
विह्वल हों चुपचाप पड़ा रहा। सभासद
उसका दिल वहलाने के लिए उसे शिकार
पर ले गये। परंतु वहां भी औरंगजेब की
दशा में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। उस
समय आकिल खां राजी ने ये पंक्तियां पढ़ीं:
इश्क़ चे आसां नमूद, लैक़ चे दुश्वार बूद
हिज़्र चे दुश्वार बूद; यार-दे आसां गिरफ्त
—प्रेम वैसे तो बहुत सरल प्रतीत हो रहा था,
लेकिन व्यावहारिक रूप से कितना कठिन
सिद्ध हुआ! वियोग कितना कठिन था, पर
मित्र ने कितनी आसानी से उसे झेल लिया।
शेर सुनते ही औरंगजेब का दिल भर
आया और उसके नेत्र अश्रुप्लावित हो गये।
उसने पूछा—‘अज आने कीस्त?’ (किसका

मावं

हर है ?) आकिल खां ने उत्तर दिया—
 'ब्रह्म आने मन अस्त।' (मेरा है।) औरंग-
 जेब ने प्रसन्न होकर उसे अपने मुख्य सभा-
 सदों में शामिल कर लिया।

जेबुनिसा 'मछली' औरंग जेब की बड़ी
 लड़की थी। उसमें बड़ी कवित्व-शक्ति
 थी। मुल्ला मुहम्मद सईद अशरफ ईरानी
 के पद्य-प्रदर्शन में उसकी काव्य-प्रतिभा में
 चार चांद लग गये। इस प्रकार उसकी
 ख्याति दूर-दूर तक फैल गयी। एक ईरानी
 शहजादे ने उसके ऊपर मुग्ध होकर यह
 मुक्तक लिख भेजा :

बुलबुले खूबत शुदम गर

दर चमन बीनम तुरा
 मन शुदम परवाना गर

दर अंजुमन बीनम तुरा
 बुलबुलाई मी कुनी

ऐ शमए महफिल खूब नीस्त
 मन हमी ख्वाहम कि दर

यक पैरहन बीनम तुरा
 यदि तुझे मैं उद्यान में देख लूं तो बुलबुल
 बन जाऊं; और यदि किसी महफिल में देख
 लूं तो पतिंगा बन जाऊं। हे ! महफिल की
 क्षमा ! तेरा यह प्रदर्शन अच्छा नहीं। मेरी
 बाकांसा है कि तुझे एक ही वेश में देखूं।

जेबुनिसा ने उसके उत्तर में यह मुक्तक
 लिखकर भेजा :

बुलबुल गल बगुजरद चूं दर चमन बीनद
 मरा

बुतपरस्ती के कुनद गर बरहमन बीनद मरा

दर सुखन मछली शुदम मानिदे-बू दर बर्गे
 गुल
 मैंले दीदन हर कि दारद दर सुखन बीनद
 मरा

—चमन में यदि बुलबुल मुझे देख ले, तो
 फूल को छोड़ दे। यदि ब्राह्मण मुझे देख ले,
 तो मूर्तिपूजा त्याग दे। मैं अपनी रचनाओं
 में इस तरह छिपी हुई हूं, जैसे कि फूल में
 सुगंध। मेरे रूप-लावण्य के दर्शनार्थी को
 चाहिये कि वह मुझे मेरी रचनाओं में देखे।

शेख मुहम्मद अली ईरान वासी थे और
 नादिरशाह से भयभीत होकर भारत चले
 आये थे। वे श्रेष्ठ सूफी कवि थे; बहुत अहं-
 कारी थे और भोग-विलास में मग्न रहते
 थे। फिर भी चूंकि वे अध्यात्म के प्रकांड
 विद्वान थे, उनसे मिलने लोण आया करते
 थे। एक बार एक संप्रांत व्यक्ति उनसे
 मिलने आया। शेख तो सामंती ठाठ से
 रहते थे। संतरी ने उन्हें द्वार पर ही रोक
 दिया। रोष में उस व्यक्ति ने कागज पर
 यह पंक्ति लिखी और वापस चला गया :

दरे दरवेश रा दरबां न बायद
 —संत के द्वार पर संतरी की आवश्यकता
 नहीं होती।

जब शेख को यह बात ज्ञात हुई तो
 उन्होंने तत्काल यह पंक्ति कही :

ब बायद ता सगे-दुनिया नयाबद
 —संतरी की आवश्यकता है, जिससे यहां
 कोई सांसारिक कुत्ता न आ जाये।

—१०/१५, याकूतगंज, इलाहाबाद



सिंघार स्टाकहोम में

• अनिकेत •

नोबेल-पुरस्कार ग्रहण करने स्टाकहोम आने वाले साहित्यकार प्रायः वहां गंभीरता का भारी लबादा ओढ़े रहते हैं। मगर १९७८ का नोबेल पुरस्कार पाने वाले और पूर्वी यूरोप के यहुदियों की भाषा यिडिश में लिखने वाले अमरीकी यहुदी उपन्यासकार आइजैक वाशेविस सिंघार ने स्टाकहोम में अपने भाषणों और प्रेस-इंटरव्यूओं में सिद्ध कर दिखाया कि विनोदीपन का नोबेलीय गरिमा से कोई विरोध नहीं है।

अपने नोबेल-भाषण में उन्होंने कहा कि पुरस्कार-राशि (८३ हजार ६२० डालर) का आधा वे एक अच्छे यिडिश टाइप-राइटर पर खर्चने को तैयार हैं। कारण, उनका वर्तमान टाइप-राइटर बुढ़ापे में पहुंचकर 'आलोचक' बन गया है। 'कोई कहानी अगर उसे जंचती नहीं, तो वह काम करना बंद कर देता है।'

खोद-खोदकर उनके जीवन के बारे में सवाल पूछने वाले रिपोर्टरों के बारे में उनकी उक्ति :

नवनीत

'जिसे सचमुच भूख लगी हो, वह नान-वाई के जीवन-वृत्तांत की फिक्र नहीं करता। इन लोगों को मेरी किताबों में कोई दिल-चस्पी नहीं है। ये तो सिर्फ यह जानना चाहते हैं कि मैं उन्हें लिखता कैसे हूँ।'

वक्चों के लिए लिखने के पक्ष में उनके पास ५०० दलीलें हैं, ऐसा उनका दावा है। उनमें से कुछ दलीलें :

'वच्चे पुस्तकें पढ़ते हैं, न कि समीक्षाएं। वच्चे अपनी पहचान ढूंढने के लिए, अपराध-भावना से छूटने के लिए, विद्रोह की प्यास बुझाने के लिए या परायेपन से पल्ला झाड़ने के लिए नहीं पढ़ते। मनोविज्ञान से उन्हें कोई मतलब नहीं होता। और समाजशास्त्र से उन्हें चिढ़ होती है। आज भी वे भगवान में, परिवार में, देवदूतों-भूतों-चुड़ैलों-बेतालों में, तर्क, स्पष्टता, विरामचिह्न तथा ऐसी दूसरी पुरानी विलुप्त हो चुकी चीजों में विश्वास रखते हैं। उन्हें दिलचस्प कहानियां पसंद हैं, न कि व्याख्याएं, गाइड या पाद-टिप्पणियां। कोई किताब उबाऊ है तो वे खुल्लमखुल्ला उबासी ले लेते हैं।'

माच

लेखक से मानवता का उद्धार करने की भाषा नहीं करते; बल्कि ऐसी बचकानी प्रीतियां बयस्कों के लिए छोड़ देते हैं।'

जब सिंगर पोलैंड से अमरीका आये, तब अंग्रेजी न जानने के कारण अमरीका उनके लिए रेगिस्तान-सा था। फिर भी संततः वे लेखक बन सके; कारण उन्हीं के शब्दों में :

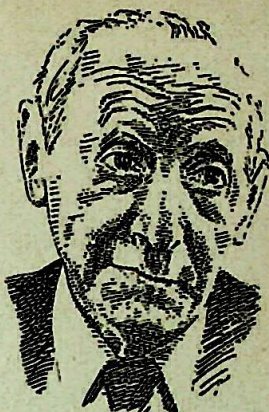
'लेखक पौधों की तरह होते हैं। कुछ पौधे रेगिस्तान में पनपते हैं, कुछ झील के किनारे। कुछ कहीं भी जी सकते हैं, घास की तरह। मैं कहीं भी जाऊँ, लेखक ही रहूँगा।'

एक प्रकाशक ने उनका एक उपन्यास उन पर जोर डालकर एक तिहाई छोटा करवाया था। वे मानते हैं, प्रकाशक की बात गलत नहीं थी :

'बहुत लंबा लिखना बेकार है। भले आप खालिस सोना लिखते हों, पर कोई भी आदमी टन-भर सोना नहीं ढों सकता।'

इस उम्र में नोबेल-पुरस्कार पाने का कोई असर ?

'पुरस्कार से मुझे प्रोत्साहन मिला है। मगर मैं अपनी सीमाएं समझ गया हूँ। और साहित्य की सीमाएं भी।'



आइज़ैक बाशेविस सिंगर

लेखक अपनी जड़ों से जुड़ा रहे :

'ये मेरी जड़ें हैं, मेरे अनुभव हैं। अगर आप उन लोगों के बारे में लिखेंगे, जिन्हें आप खूब अच्छी तरह जानते हैं, तो आप समूची मानव-जाति के बारे में लिख रहे होंगे।'

क्या उनका यहूदी होना उनके लेखन में किसी तरह सहायक हुआ है ?

'जब भी यहूदी लेखक के पास लिखने के लिए कोई विषय न रह जाये, वह यहूदी समस्या पर लिख सकता है। क्योंकि भले वह दस लाख लेख लिख डाले, तब भी यहूदियों के पास कोई समस्या तो रहेगी ही।'



पागल नहीं

'आप हफ्ते में कितनी बार दाढ़ी बनाते हैं ?'

'यही कोई २०० बार।'

'ऐं, पागल हैं क्या ?'

'जी नहीं, नाई हूं।'

—डा. गोपालप्रसाद 'वंशी'



हम सब अब वहां नहीं हैं
 जहां कल तक थे
 हममें से कितने तो ऐसे हैं
 जिन्हें यह भी नहीं मालूम
 कि कहां थे हम कल !

रास्ते की बेजान आवाजाई
 जब अचानक ही
 किसी पहाड़ी नदी की गड़गड़ाहट सोखती हुई
 तेज हो उठी थी
 हमने नियति से एक वादा किया था—
 पत्तियों में रंग और फूलों में सुगंध,
 दूरियों में निकटता और निकटता में गहराई,
 और इस प्रकार
 हर प्यासी शख्सियत को अपनेपन की ऊष्मा से
 भरने का वादा ।

पता नहीं वह शोर सब किस तरह
 एक निर्बल याचना में बदल गया
 और संकल्प में बंधी मुट्ठियां
 औचक खुल गयीं—मिखमंगे की हथेली-सी !
 वह हथेली
 किसी व्यक्ति की नहीं
 समूचे समुदाय की संकल्प-शक्ति का प्रतीक थी

पता नहीं कब तक
 फैली रही वह हथेली खाली—न उस पर
 धरा किसी ने साहस,
 न इज्जत, न बादशाहत—कौतुक दूसरा ही हुआ :
 कुछ ने उस हथेली के आईने में अपनी किस्मत देखी
 और नजूमियों ने
 हथेली पर उगी पगडंडियों को नापकर कहा—
 'चक्रवर्ती सम्राट् या पहुंचा हुआ
 फकीर होगा यह !'

अब वहां नहीं
 ० कुमार प्रशांत.०



और बस.....

न पत्तियों में रंग आया

न फूलों में सुगंध

और न उस हथेली ने फिर कभी

संकल्पशील मुट्ठी में बंधना सीखा ।

अब उसकी कोमल हथेलियों पर इस प्रकार उग आये हैं
कैंकटस

कि बादशाहत और फकीरी

दोनों की हो गयी किरकिरी ।

जब भी उसने अपनी मुट्ठी बंद करनी चाही

हवा जैसे कोई ठोस शक्ल अख्तियार कर

हथेली पर उग जाती है,

उसकी उंगली फिर खुल जाती है ।

उंगलियों का खुला रहना और क्या, बस याचना है

उंगलियों का खुला रहना और क्या, बस भागना है

उंगलियों का खुला रहना और क्या, बस मांगना है

..... और

तुम कह सकते हो

कि मैं सन्निपात में कुछ का कुछ बोल रहा हूँ

पर हकीकत यह है कि

तुम सन्निपात में कुछ का कुछ समझ रहे हो ।

एक पूरा देश खड़ा है

उंगलियां खोले !

हवा रुक गयी है

पर वह घुट नहीं रहा है;

सूरज गिर गया है

पर उसे अंधकार का भान नहीं है;

सोते सूख गये हैं

पर उसे व्यास का अनुमान नहीं है ।

व्यास, घुटन, अंधेरा सब यहां है
में चुप हूँ और वह निर्बोध !!

क्रेमलिन की माँकी युगोस्लाव नजरों से

दिनेश सिंह

ईरान में मची हुई उथल-पुथल से शाह ईरान परेशान हो विदेश में हैं और अमरीका यह सोच-सोचकर परेशान है कि कहीं रूस इसका अनुचित लाभ न उठा ले। ऐसे में हमें विश्वास है, आपको यह किस्सा कम दिलचस्प नहीं लगेगा :

मार्शल वोरोशिलोव जब रूस के राष्ट्र-पति थे, ईरान के नये राजदूत अपना नियुक्ति-पत्र उनके सामने पेश करने गये। जब राजदूत का औपचारिक भाषण चल रहा था, वोरोशिलोव को झपकी लग गयी। उनकी नींद तब टूटी, जब राजदूत महोदय कह रहे थे—‘हमारे महामहिम सम्राट.....’ सम्राट शब्द कान में पड़ना था कि बूढ़े मार्शल वोरोशिलोव चीखते हुए बोल पड़े—‘एक सम्राट हमारे यहां भी था, सूअर का बच्चा ! हमने उसका सिर उड़ा दिया।’ रूसी विदेश-मंत्रालय को काफी दौड़धूप करनी पड़ी इस प्रकरण की खबर को दबाने के लिए।

विश्वास नहीं होता ? पर यह किस्सा स्वयं निकिता ख्रुश्चोव ने युगोस्लाव राज-नेता पेलिको मिकुनोविक को सुनाया था।

नवनीत

मिकुनोविक मास्को में युगोस्लाविया के राजदूत थे और ख्रुश्चोव की उनसे बहुत वनती थी। ख्रुश्चोव उनसे घंटों बातें किया करते थे। १९५६ में हंगरी-कांड के बाद एक दिन ख्रुश्चोव ने युगोस्लाव दूतावास के आगे अपनी कार खड़ी करके उन्हें कार में बुलाकर बैठाया और कई घंटों तक उनसे बातें करते रहे। मास्को की दिसंबर की ठंड और हिमपात ! पूरी सड़क पर कई घंटों तक यातायात बंद रहा और सिपाही सड़क पर खड़े ठिठुरते रहे।

मिकुनोविक ने अपने मास्को-वास के दिनों की डायरियां पिछले साल छपवायी हैं और वे आजकल यूरोप के राजनयिकों द्वारा बेहद चाव से पढ़ी जा रही हैं। युगोस्लाविया के पदच्युत राष्ट्रपति मिलोबन जिलास ने इन शब्दों में इन डायरियों की सराहना की है—‘बहुत बढ़िया कृति, बहुत अच्छी लिखी हुई; इससे कई ऐसे भ्रम जो अब तक भंग न हो पाये थे, टूटेंगे।’

मिकुनोविक की डायरियों में रूस की आंतरिक राजनीति का और रूस के सर्वोच्च नेतावर्ग में सत्ता के लिए चलने वाली

माँ

झीना-झपटी का अंतरंग चित्र देखने को मिलता है। इसका सर्वोत्तम उदाहरण है जून १९५७ का क्रेमलिन का वह सप्ताह-संघर्ष, जिसमें मालेन्कोव, कगानोविच और मोलोटोव को मुंह की खानी पड़ी और पद-च्युत होना पड़ा। पूरा हाल खुद निकिता ख्रुश्चोव ने उसवे: दो ही हफ्ते बाद मि-कुनिको को सुनाया था। वाक्या यों हुआ:

१७ जून १९५७ की दोपहर को ख्रुश्चोव मास्को के बाहर अपने बंगले (दाचा) में थे कि तत्कालीन प्रधान-मंत्री मार्शल बुल्गानिन ने उन्हें फोन किया और पार्टी की केंद्रीय समिति की कार्यकारिणी (प्रिसीडियम) की बैठक बुलाने को कहा। 'कौन इसकी मांग कर रहा है?' ख्रुश्चोव ने पूछा। बुल्गानिन जो कि क्रेमलिन से फोन कर रहे थे, बताने लगे कि मैं एक टोली की ओर से बोल रहा हूँ, जो इस समय क्रेमलिन के: जल-पान-गृह में भोजन कर रही है। 'पार्टी के संविधान में या कार्यकारिणी की परिपाटी में किसी "भोजन-टोली" की कोई व्यवस्था नहीं है।' ख्रुश्चोव ने तुनककर जवाब दिया; मगर क्रेमलिन जाकर भोजन में शरीक होना स्वीकार किया।

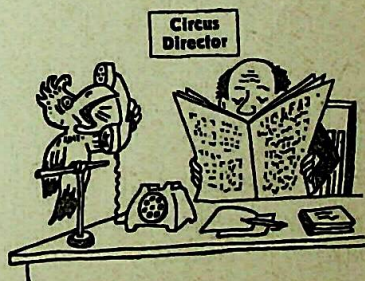
वहां पहुंचकर ख्रुश्चोव ने पाया कि वे अल्पमत में हैं। उन्हें कार्यकारिणी की बैठक बुलाने को राजी होना ही पड़ा। मगर बड़ी चतुराई से वे टालमटोल करते रहे, ताकि केंद्रीय समिति के: जो सदस्य उनवे: समर्थक थे उन्हें वे मास्को बुला सकें।

काफी चतुर चालों से अंततः वे अपने

विरोधियों को शिकस्त देने में सफल हो ही गये। उस बैठक में प्रतिरक्षा-मंत्री मार्शल जुकोव ने मालेन्कोव-कगानोविच-मोलोटोव की टोली से कहा था—'मेरी आज्ञा से केंद्रीय समिति की इमारत की ओर टैंक बढ़े आ रहे हैं।' इस तरह ख्रुश्चोव मार्शल की मदद से उस संघर्ष में जीत गये। उन्होंने स्वयं ही मि-कुनिकोव से कहा था कि लेनिन के जमाने के बाद ऐसा संघर्ष उन्होंने नहीं देखा था।

स्तालिन की तरह ख्रुश्चोव ने अपने पराजित विरोधियों का खात्मा नहीं कर-वाया। बल्कि उन्होंने मालेन्कोव को एक विजलीघर का संचालक बनाकर साइबेरिया भेज दिया और मोलोटोव को मंगोलिया में राजदूत बना दिया। कुछ समय तक उन्होंने बुल्गानिन और बोरोशिलोव को अपने पदों पर बने रहने दिया था, और स्वयं अपने खुशामदी चमचे विदेश-मंत्री शेलैपिन को भी, हालांकि ये सभी विरोधियों के साथ मिल गये थे।

उसी साल अक्टूबर तक मार्शल जुकोव



हां, पीपल्स सर्कस।... डाइरेक्टर साहब चाहिये? ठहरिये। [‘स्पुतनिक’ से]

हिंदी डाइजेस्ट

भी अपदस्थ हो गये। स्पष्ट ही ख़ुश्चोव को उनका यह कहना रुचा नहीं था कि टैंक बढ़े आ रहे हैं। उन्हें शक हुआ कि एक दिन यही तकनीक खुद मेरे विरुद्ध भी काम में लायी जा सकती है।

असल में ख़ुश्चोव तो जून १९५७ की टक्कर से पहले ही जुकोव से कतराने लगे थे। यहां तक कि एक बार जब वे दोनों कृष्ण सागर के तट पर छुट्टियां मना रहे थे, समुद्र में तैरते समय जुकोव सारे समय उनके पास बने रहे थे—इससे ख़ुश्चोव को बड़ी घबराहट महसूस हुई थी। खुद उन्हीं ने यह बात मिकुनोविक को बतायी थी कि जब अंततः मार्शल जुकोव को केंद्रीय समिति के सामने बुलाकर बताया गया कि उन्हें पदच्युत कर दिया गया है, तो वे हैरान रह गये थे। मध्यांतर में उन्होंने ख़ुश्चोव को फोन करके कहा—‘क्या बात हो गयी काम-रेड ख़ुश्चोव ! आप मुझे जानते हैं; हम दोनों तो मित्र हैं। यह सब क्या हो रहा है, मैं तो कुछ भी समझ नहीं पा रहा हूं।’ मगर सब बेकार; ख़ुश्चोव ने उनसे बात करने से इन्कार कर दिया।

वाद में कम्युनिस्ट पार्टी में यह प्रचार किया गया कि जुकोव अपने गिर्द ‘व्यक्ति-पूजा-संप्रदाय’ खड़ा कर रहे थे—युद्ध-संबंधी फिल्मों में सफेद घोड़े पर चढ़कर आने आदि उपायों से। मिकुनोविक का कहना है कि

शायद यही एकमात्र अवसर था, जब केंद्रीय समिति में फिल्मों प्रमाण के रूप में पेश की गयीं।

मगर इससे भी बड़ी विडंबना यह है कि मार्शल जुकोव की बर्खास्तगी का ढंग—हवाई अड्डे से सीधे केंद्रीय समिति के अधिवेशन में बुलाया जाना और बर्खास्त कर दिया जाना—अक्तूबर १९६४ में स्वयं ख़ुश्चोव के विरुद्ध भी इस्तेमाल किया गया।

द्वितीय विश्वयुद्ध के महान सेनापति के रूप में मार्शल जुकोव का बहुत मान कते हैं मिकुनोविक; यह उचित भी है। मगर उन्होंने यह भी दिखाया है कि किस प्रकार जुकोव पक्के साम्राज्यवादियों की भाषा में बात किया करते थे। एक बार १९४८ के रूस-युगोस्लाविया झगड़े के बारे में मिकुनोविक से बात करते हुए वे कह बैठे थे कि अपनी ताकतवर सेना के द्वारा रूस सिर्फ तीन दिन में युगोस्लाविया को ठिकाने लगा सकता था। इस पर मिकुनोविक ने झल्लाकर जवाब दिया कि मगर १९४१ में जर्मनी तीन दिन में तो क्या चार बरस में भी काबू में नहीं कर पाया था युगोस्लाविया को। फिर उन्होंने कहा था—‘और आप यह बखूबी जानते हैं मार्शल कि १९४१ में जर्मनी कितना ताकतवर था।’ तीर निशाने पर बैठा; क्योंकि १९४१ में रूस जर्मनी के हाथों हारते-हारते बचा था।



रिक्शेवाले से बढ़ते-बढ़ते.....

अवनीन्द्र विद्यालंकार

काशीनाथपुर-बलरामपुर गांव में डेढ़ एकड़ जमीन का भागीदार यासीन मुहम्मद । बीस साल पहले की बात है, गांव से लगी सड़क पर उसने चाय की दुकान खोल ली । बल निकली दुकान । कुछ पैसे बने । इससे उसने दो रिक्शे खरीद लिये और उन्हें किराये पर चलाने लगा। चाय की दुकान भी चालू रखी ।

एक दिन उसकी दुकान पर एक निवृत्त आइ. सी. एस. अफसर अब्दुल हमीद खां बाये, जो ग्राम-विकास के डाइरेक्टर रहे थे । उन्होंने यासीन को सलाह दी, गांव के रिक्शा-चालकों की सहकारी समिति बनाओ । यासीन ने उत्तर दिया—‘साहब ! यहां पहले दो बार सहकारी समितियां बनीं, दोनों टूट गयीं । कारण, चंदे की रकम में गड़बड़ पायी गयी । लोगों का सहकारी समितियों में विश्वास ही नहीं रह गया है ।’

अब्दुल हमीद खां अनुभवी व्यक्ति थे । उन्हें ऐसे ही उत्तर की आशंका थी । उन्होंने राह बतायी । कड़ा—‘तुम सदस्यों का शुरु एक आना महीना रखो । एक तो कोई भी एक आना देने से चूकेगा नहीं । दूसरे, ईमानदारी पर शक भी नहीं करेगा । एक आना होता ही कितना है ! उतने की तो वह बीड़ी फूंक देता है । इस तरह सब तुम पर विश्वास रखेंगे ।’

यासीन मुहम्मद की शंका मिट गयी । उसने अब्दुल हमीद खां को वचन दिया—‘मैं सहकारी समिति का संघटन करूंगा ।’

उसने समिति संघटित की—केवल दस आने की पूंजी के साथ । काफी कठिनाइयां बायीं, मगर यासीन हताश नहीं हुआ । वह रिक्शा-चालकों का विश्वास जीतने में सफल हुआ । सहकारी समिति पनपती गयी । रिक्शेवालों के रिक्शे पहले से सुंदर और आरामदेह बन गये । आमदनी भी बढ़ी । समिति का कोष बन गया ।

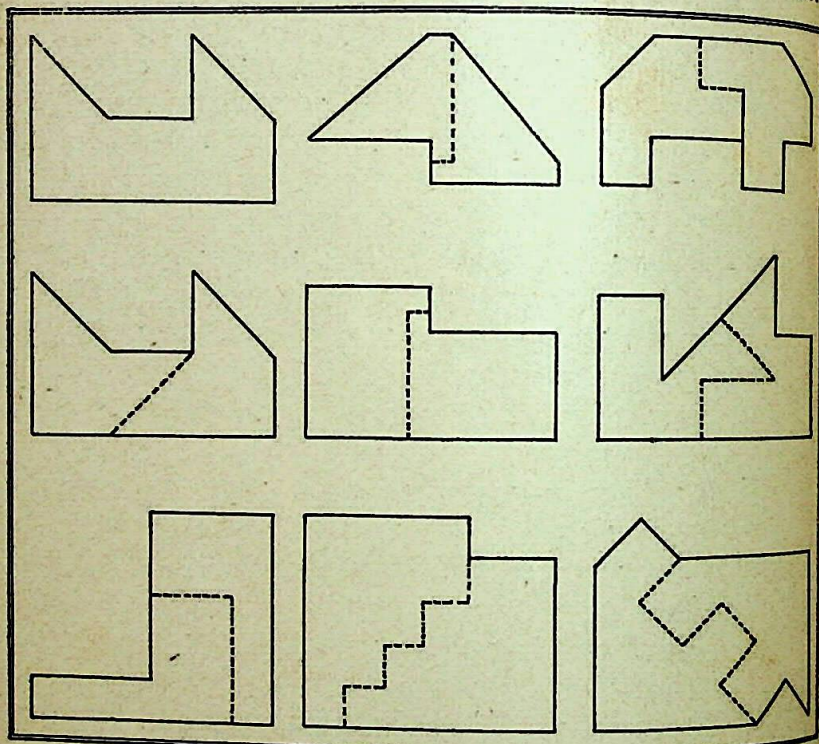
बीस साल बाद आज समिति के ८ लाख रुपये बैंक में जमा हैं । उसके १२६ सदस्यों के पास अपने रिक्शे हैं । नहीं नहीं, समिति तीन ट्रैक्टरों और एक घानकुटाई मशीन की मालिक है । उसके तीन नलकूप हैं । वह गांव में एक ग्राइमरी स्कूल और एक माध्यमिक स्कूल चलाती है । उसने गांव की गलियां ईंटों से पाट दी हैं । गांव की सड़क के दोनों ओर गारियल-बूझ लगे हैं । समिति का अपना कार्यालय-भवन है, सभा-भवन भी है; दोनों में

बिजली है, पंखे हैं, फोन है। समिति की सेवा में २२ वेतनभोगी कर्मचारी हैं। समिति का दावा है कि काशीनाथपुर-बलरामपुर में कोई बेकार नहीं है।

इस असाधारण सफलता ने यासीन को नेता बना दिया है। मामूली-सा पढ़ा-लिखा यह व्यक्ति आज ग्राम-विकास का विशेषज्ञ माना जाता है और प्रायः हर मास ढाका बुलाया जाता है। वह बाङ्गलादेश के योजना-आयोग का सलाहकार है। यह सब पुरुषार्थ और स्वावलंबन का फल है। सरकार से कोई दान-अनुदान नहीं लिया गया। अफसरों के आगे पीछे चक्कर नहीं लगाये गये। अंग्रेजी में अर्जियां नहीं लिखी गयीं। सब सेवाभाव, मेहनत और ईमानदारी के बलबूते पर किया गया। ग्राम-विकास की सही राह यही तो है।



बंटवारा करने में आप कितने कुशल ? फरवरी अंक (पृ. ११६-१७) के प्रश्नों के उत्तर।



नमूने समेत आठों आकृतियों (बदले हुए क्रम में) कटावदार रेखाओं द्वारा इस तरह बांटी गयी है कि दोनों हिस्से आकृति और क्षेत्रफल में सर्वथा समान हैं।



नाभिक को जोड़ता है कौन ?

शशिरंजन पांडे

कहानी बेहद पुरानी है। कि चार अंगों ने एक हाथी को टटोला और जिस अंग ने उसके जिस अंग को छुआ, उसी को उसने हाथी का सही आकार समझा। ठीक यही हालत नाभिकीय भौतिकी में भी रही है। पिछले पचास वर्षों में नाभिकीय कणों को जोड़ने वाले बल का पता लगाने का प्रयास निरंतर चलता रहा है; परंतु अलग-अलग प्रयोग या विभिन्न नाभिकीय नमूने (माडल) सिर्फ उसके विभिन्न गुणों का पता लगाने में समर्थ हुए हैं और नाभिकीय बल की पूर्ण जानकारी अभी तक नहीं मिल पायी है। और यह स्थिति तब है, जबकि विज्ञान के इतिहास में सबसे अधिक प्रयोग-क्षमता और बुद्धिशक्ति इसी प्रश्न पर खर्च हुई है।

वर्तमान शताब्दी में इस मामले में विज्ञान की जो हालत रही है, उसे हम एक दृष्टांत से व्यक्त कर सकते हैं।

मान लीजिये, आप एक पार्क में जाते हैं, जहां क्रिकेट का खेल चल रहा है। आप क्रिकेट बिलकुल ही नहीं जानते हैं। आप देखते ही कहेंगे कि ये कुछ सनकी लोग हैं, जो गेंद को इधर-उधर बिना तरतीब के

फेंक रहे हैं; कभी कोई गेंद के पीछे खाली हाथ भागता है, तो कभी कुछ लोग बल्ले लेकर भागते हैं। आपको लगेगा कि इस खेल का न तो कोई नियम है, न उद्देश्य ही। लेकिन अगर आप कुछ समय तक ध्यान से देखते रहें, तो पायेंगे कि खिलाड़ी कुछ खास अवस्थाओं में भागते हैं और इस खेल के कुछ सुनिश्चित नियम भी हैं। ठीक यही हालत इस शताब्दी के प्रथम पचीस वर्षों में परमाणु-संरचना के क्षेत्र में रही है। पहले इलेक्ट्रॉन-प्रोटॉन का भ्रमण इत्यादि स्पष्ट नहीं था। फिर धीरे-धीरे पता चला कि परमाणु के क्षेत्र में 'क्वांटम भौतिकी' का पालन होता है।

अब मान लीजिये कि आप पार्क के दूसरे कोने में जाते हैं। वहां भी कुछ उसी तरह का एक खेल 'बेसबॉल' चल रहा है। उसे देखते ही आपको यह तो आभास हो जाता है कि इस खेल के नियम भी कुछ उसी तरह के हैं; पर इधर से उधर जाने वाला गेंद आपको दिखाई नहीं देता। यही अवस्था वैज्ञानिकों को अब नाभिक के क्षेत्र में अनुभव हो रही है। उन्हें यह तो एहसास है कि

हिंदी डाइजेस्ट

परमाणु की भांति नाभिक में भी 'क्वांटम भौतिकी' का गणित लागू होगा; पर कणों को जोड़ने वाला कण, गैद या बल क्या है, इसका विलकुल पता नहीं चल रहा है। वस्तुतः इस खोये हुए गैद की ही तलाश आज नाभिकीय वैज्ञानिक को करनी है।

परंतु ऐसा भी नहीं है कि इस दिशा में कोई प्रगति नहीं हुई। आज हम पहले की अपेक्षा कहीं ज्यादा आस्थावान हैं अपने उपलब्ध ज्ञान पर और प्रयोग-परिणामों के बाहुल्य ने हमारा मार्ग बहुत कुछ प्रशस्त कर दिया है।

जैसा हम जानते हैं, हर चीज छोटे-छोटे कणों-परमाणुओं-की बनी हुई है और हर परमाणु में केंद्रीय नाभिक होता है और उसके चारों ओर चक्कर लगाने वाले ऋणात्मक कण-इलेक्ट्रान-होते हैं। नाभिक में धनात्मक प्रोटान और अनावेशित न्यूट्रान दोनों होते हैं; परिणामतः नाभिक पर धनात्मक आवेश रहता है। इस तरह हर परमाणु एक सौर मंडल-सा होता है, जिसमें धनात्मक आवेश वाले नाभिक रूपी सूर्य के चारों ओर इलेक्ट्रान रूपी ग्रह चक्कर काटते रहते हैं।

नाभिक बहुत भारी होता है; परमाणु का ९९ प्रतिशत भार उसी में होता है। पर उसका आकार पूरे परमाणु की तुलना में बहुत ही कम है। परमाणु को एक घर के आकार का मान लें, तो नाभिक का आकार पिन के सिरे के बराबर होगा। नाभिक का भार अधिक है और आकार छोटा है, इसी वजह से

तथ्य को हम दूसरे ढंग से यों कह सकते हैं कि उसका घनत्व अधिक है। परमाणु और नाभिक में एक मुख्य अंतर यह भी है कि जहां परमाणु का घनत्व अलग-अलग तत्वों में अलग-अलग होता है, वहां नाभिक का घनत्व लगभग समान रहता है। चूंकि नाभिक इस मामले में हमारे दैनिक जीवन में परिचित धातु आदि अन्य पदार्थों की तरह है, इसलिए सहज ही मन में यह खयाल आता है कि शायद नाभिक भी उन्हीं बलों से जुड़ा हो, जिन बलों से पदार्थ जुड़े होते हैं।

हम साधारणतः दो तरह के बलों से परिचित हैं—१. विद्युत-बल और २. गुस्त्वाकर्षण-बल। इनमें से पहला (विद्युत-बल) नाभिक को जोड़ता हो, इसका तो प्रश्न ही नहीं उठता; क्योंकि अनावेशित (अर्थात् विजली के आवेश से रहित) न्यूट्रान नाभिक में होते हैं। इसके अलावा, प्रयोग से जितना नाभिक-बल अनुमान किया जाता है, उसके विद्युत-बल ४० गुना कम पड़ता है। खी गुस्त्वाकर्षण की बात। वह पदार्थों की संहति का समानुपाती होता है और नाभिक के परास (रेंज) के लिए इसका मान बहुत कम (१०^{१०} गुना कम) निकलता है। मतलब यह हुआ कि हमारा परिचित ज्ञान यहां नाभिक के संदर्भ में काम नहीं करता।

इस तरह वैज्ञानिकों के सामने अब दो तरीके रह जाते हैं :

१. नाभिक-बल को ही सीधे नापकर उसके गुण ज्ञात करना।

२. बल के कारण पर भविष्योक्ति मार्ग

(प्रमेय-रचना) करना ।

नाभिक में कण किसी नाभिक-बल से जुड़े रहते हैं। उनकी एक बंधन-ऊर्जा होती है। नाभिकीय बल का अनुमान लगाने में यह बंधन-ऊर्जा सहायक हो सकती है। यह पाया गया है कि पूरे नाभिक का भार उसके कणों के भार के योग से कुछ कम होता है और भार में यह कमी आइन्स्टाइन के सूत्र $[ऊर्जा = भार \times (प्रकाशवेग)^2]$ के अनुसार बंधन-ऊर्जा में बदल जाती है। इस तरह कणों के और नाभिक के भार से बंधन-ऊर्जा का पता चल जाता है।

अब अगर हम बंधन-ऊर्जा को आधार मानकर बल को ज्ञात करने के लिए नाभिकीय समीकरण बनायें, तो गणित की दृष्टि से बहुत मुश्किल पेश आती है। नाभिक में कणों की संख्या कुछ ज्यादा है और इतनी बलगत राशियों के समीकरण को कम्प्यूटर भी हल नहीं कर पाता।

जब यहां भी वैज्ञानिकों को निराश होना पड़ा, तो उन्होंने बड़े नाभिक के मुकाबले छोटे सरल नाभिक का प्रायोगिक अध्ययन प्रारंभ किया।

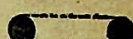
सबसे छोटा नाभिक है ड्यूट्रान, जिसमें १ प्रोटान और १ न्यूट्रान होता है। परंतु धीरे-धीरे पता चला कि यह नाभिक बहुत ज्यादा बातें नहीं बता सकता। इसका अध्ययन केवल न्यूट्रान-प्रोटान के ही बीच के बल के बारे में जानकारी दे सकता है, जबकि न्यूट्रान-न्यूट्रान, प्रोटान-प्रोटान के मध्य लगने वाला बल और ही प्रकार का



(ग)

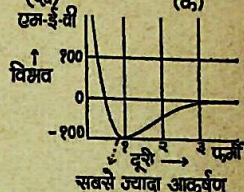


(ख)



(क)

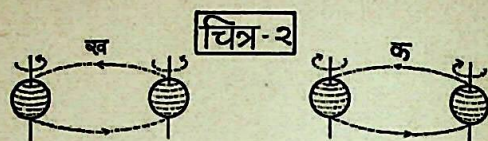
चित्र-१



नाभिकीय बल नियत दूरी पर काम करते हैं। (क) कण बहुत दूर हों, तो बल काम नहीं करता। (ख) एक निश्चित दूरी पर नाभिकीय कणों में आकर्षण होता है। (ग) बहुत समीपता में नाभिकीय बल विरुद्ध में बदल जाता है। यही ग्राफ में बताया गया है। हो सकता है। इसके अलावा अन्य नाभिकों की तुलना में ड्यूट्रान में न्यूट्रान व प्रोटान कुछ ज्यादा दूरी पर होते हैं और उसकी बंधन-ऊर्जा भी कम होती है। इसलिए संभव है कि जब नाभिक में ज्यादा कण हों तो वे ज्यादा पास-पास हों और नाभिक की बंधन-ऊर्जा ज्यादा हो, तथा उस दशा में नाभिक-बल पूरी तरह ही भिन्न होता हो।

इसलिए वैज्ञानिकों ने ड्यूट्रान के बजाय स्वतंत्र न्यूट्रान-प्रोटान कणों की विभिन्न नाभिकों से टक्कर का अध्ययन इस दृष्टि से किया कि किस कोण पर कितने कण प्राप्त होते हैं। ये प्रयोग विभिन्न ऊर्जाओं पर किये गये और उनसे निम्नलिखित महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त हुई:

१. नाभिक-बल सिर्फ नाभिक की सीमा तक ही कार्य करता है (१०^{-११} से.मी. तक), उसके बाहर नहीं; और विद्युत-बल की



नाभिकीय बल की अक्षकक्षगति-निर्भरता—(क) जब वक्रा में गतिदिशा और अक्ष-
गतिदिशा एक है, तब नाभिक तीव्र है; (ख) दिशा में कम है।

अपेक्षा बहुत शक्तिशाली होता है (४० गुना)। नाभिक-बल और विद्युत-बल की प्रभावी दूरी की तुलना हम इस तरह कर सकते हैं कि अगर चार गुना दूरी पर विद्युत-बल और नाभिक-बल समान हों, तो २८ गुना दूरी पर विद्युत-बल १०^४ गुना ज्यादा हो जायेगा।

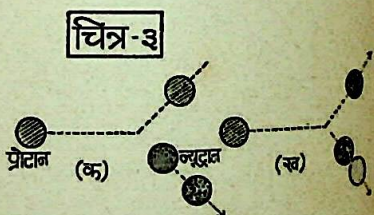
२. नाभिक-बल को स्वाभाविक तौर पर आकर्षण-बल होना चाहिये। (तभी तो कण जुड़े रहेंगे।) पर पाया यह गया है कि यह आकर्षण-बल न्यूट्रान-प्रोटान के बहुत समीप आने पर विकर्षण में बदल जाता है। यानी नाभिक-कण एक निश्चित दूरी से ज्यादा पास-पास नहीं आ सकते। वस्तुतः यह आवश्यक भी है; क्योंकि वेवल आकर्षण-बल तो उनके अस्तित्व को ही खत्म कर देगा [चित्र-१, पृष्ठ ८९]।

३. नाभिक-बल न्यूट्रान-प्रोटान के आवेश पर निर्भर नहीं होता है। यानी प्रोटान-प्रोटान, न्यूट्रान-न्यूट्रान और न्यूट्रान-प्रोटान के बीच लगने वाले बल में कोई अंतर नहीं होता। साथ ही, कभी-कभी आवेश की बदला-बदली भी हो जाती है। साधारणतः अगर दो कणों की (जिनमें से एक कण स्थिर है) टक्कर हो, तो टकराव

नवनीत

के बाद पहले यानी चलते कण का वेग थोड़ा कम हो जायेगा और दूसरा यानी स्थिर कण (थोड़ा) वेग प्राप्त कर लेगा। पर नाभिक-कणों की टक्कर में ऐसा भी होता है कि चलता कण बिल्कुल स्थिर हो जाये और स्थिर कण चलने लगे। इस क्रिया को आवेश-विनिमय द्वारा समझा जा सकता है। अर्थात् टक्कर के बाद कण तो वही है, पर उसने आवेश बदल लिया है और हमें लगता है कि दूसरा कण भाग रहा है [चित्र-३]।

४. नाभिकीय बल कणों की घूर्णन दिशा पर भी निर्भर होता है। नाभिकीय कण पृथ्वी की तरह दो तरह की गति करते हैं—एक तो अपने ही अक्ष पर गति, और दूसरी कक्षा में गति। देखा गया है कि जब अक्षीय और कक्षीय गति एक ही दिशा में



आवेश-विनिमय : 'क' में प्रोटान अपनी गति कायम रखे हुए हैं; 'ख' में न्यूट्रान-प्रोटान विनिमय हो गया है।

मार्ग

होती है, तब नाभिक-बल विपरीत दिशा की अवस्था की तुलना में ज्यादा प्रभावी होता है [चित्र-२]।

५. इसके अलावा नाभिक-बल पास के ही कण पर नहीं, आस-पास के कई कणों पर एक साथ काम करता है।

इस तरह पचीस वर्ष के प्रयोग हमें बताते हैं कि नाभिकीय बल लघुपरास का, शक्तिशाली, आकर्षण-युक्त (केवल पास के विकर्षण को छोड़कर), आवेश-विनिमय-युक्त, आवेश पर निर्भर न रहने वाला, कई कणों पर एक साथ काम करने वाला बल है। लेकिन इसका स्रोत क्या है? यह कैसे, व कहां से उत्पन्न होता है? यहां पर फिर परेशानी पेश आती है।

यद्यपि नाभिकीय बल की विचित्रता विद्युत-बल और गुरुत्व-बल को नाकाम कर देती है, परंतु नाभिकीय बल का उद्भव ज्ञात करने के लिए हम विद्युत-बल की उद्भव-क्रिया से मार्गदर्शन प्राप्त करते हैं। (ज्ञात से अज्ञात की ओर बढ़ना सरल होता है न।) हम मानते हैं कि दो कणों के मध्य विद्युत-बल फोटॉन नाम के एक वाहक-कण के माध्यम से व्यक्त होता है, जो आवेश-रहित और भार-रहित होता है। यह एक कण से दूसरे कण पर जाकर बल का संवाहक-संयोजक बनता है।

इसी दिशा में सोचते हुए १९३५ में जापान के भौतिकशास्त्री हिदेकी युकावा ने शक्तिशाली की कि नाभिकीय बल भी एक कण के माध्यम से कार्यरत होता है, जिसे

उन्होंने 'मेसान' कहा। परंतु उनका यह मेसान भार और आवेश से युक्त था। (लघु-परास और आवेश-विनिमय की व्याख्या तभी संभव है।) उन्होंने गणना करके मेसान का भार और आवेश निकाला। यह युकावा की मौलिक सूत्रबद्ध थी और १९४७ में पावेल आदि वैज्ञानिकों ने अपने प्रयोगों में इन धन-ऋणावेशित कणों का अस्तित्व सिद्ध कर दिखाया।

फिर कैमर ने सुझाव रखा कि मेसान ऋण और धन आवेश के साथ ही साथ बिना आवेश का भी होना चाहिये। यानी मेसान तीन तरह के हैं। उनका तर्क यह था कि प्रोटॉन-प्रोटॉन में आवेश-विनिमय की अवस्था में घनात्मक प्रोटॉन, मेसान के दूसरे घनात्मक आवेश को ग्रहण नहीं कर सकता; सो यहां कार्यरत मेसान अनावेशित ही होना चाहिये। यह तर्क युक्ति-संगत था और साइक्लोट्रॉन मशीनों से कणों की बहुत तीव्र गति पर मेसान और नाभिक की टक्कर कराने से वैसा अनावेशित मेसान प्राप्त भी हो गया।

इन सबसे वैज्ञानिकों को ऐसा आभास होने लगा था कि वे अपने उद्देश्य में सफल होते जा रहे हैं। लेकिन आज समस्या है—नाभिक-कण और मेसान के बीच चलने वाले बल की गणना करना। यह ठीक है कि मेसान-सिद्धांत नाभिकीय बल के लघुपरास, विनिमय-गुण और आवेश-निरपेक्षता की व्याख्या प्रस्तुत करता है; परंतु अभी उसके

[शेष पृष्ठ ९५ पर]

आज से लगभग ढाई हजार वर्ष पूर्व भारत में अनेक छोटे राज्य थे। इनमें कुछ राजतंत्र थे और कुछ गणतंत्र थे। राजतंत्रात्मक राज्यों में जो स्थान राजदरबार का था, वही स्थान गणतंत्रात्मक राज्यों में संथागार का था। संथागार (संस्था-अगार) उस काल की संसद अथवा पार्लमेंट थे। इनमें मंत्रिमंडल की बैठकें हुआ करती थीं, जिनमें विभिन्न महत्त्वपूर्ण मसलों पर विचार-विमर्श के माध्यम से निर्णय किये जाते थे। यहीं प्रशासनिक नीतियों का निर्धारण होता था, उच्च अधिकारियों की नियुक्तियां की जाती थीं, नये सदस्यों और गण-प्रधान या अध्यक्ष का निर्वाचन किया जाता था।

बौद्ध साहित्य में जिन गणराज्यों के संथागारों का उल्लेख पाया गया है, उनमें वैशाली के लिच्छवि, कपिलवस्तु के शाक्य तथा पावा और कुशीनगर के मल्ल मुख्य हैं। छोटे-छोटे गणराज्यों में केवल एक ही संथागार होते थे; परंतु लिच्छवियों तथा शाक्यों जैसे बड़े गणराज्यों में केंद्रीय संथागारों के अलावा प्रांतीय संथागार भी थे, जो प्रांतीय प्रशासन का संचालन करते थे।

संथागार एक प्रकार के संसद-भवन थे। इनके नवनिर्माण पर आजकल की भांति किसी सम्मानित व्यक्ति के द्वारा इनका उद्घाटन कराने की भी परंपरा थी। दिग्घनिकाय के संगीतिसुत्त के अनुसार, मल्लों के नये संथागार का उद्घाटन बुद्ध ने किया था। मग्घिसमनिकाय तथा संयुक्तनिकाय में कहा गया है कि शाक्यों के नये संथागार नवनीत

संथागार प्राचीन भारत की संसद

डा. अ. ला. श्रीवास्तव

का उद्घाटन बुद्ध ने एक आख्यानमाला के किया था।

सदस्य एवं अध्यक्ष

भिन्न-भिन्न गणराज्यों के संथागारों में सदस्यों की संख्या भिन्न-भिन्न हुआ करती थी। वैशाली के संथागार में ७,७०७ सदस्य थे जो लिच्छवि जाति के मूल कुटुंबों से चुने जाते थे। वे सभी अपने को 'राजा' कहते थे। न कोई किसी से छोटा था, न बड़ा। यही राजागण प्रशासन में विभिन्न पदों पर नियुक्त किये जाते थे। इनका निर्वाचन एवं नियुक्ति संथागार में ही की जाती थी।

यद्यपि वैशाली नगर की जनसंख्या साठों में थी, किंतु केवल ७,७०७ कुलीन परिवारों से ही संथागार के सदस्य चुन जाते थे। प्रशासन का अधिकार केवल कुलीन परिवारों के ही हाथ में था। प्रशासनिक अधिकार देने के लिए जिन योग्य एवं सच्चरित्र व्यक्तियों को चुना जाता था, उन्हें 'प्रतिनिधि राजा' कहते थे और उनकी बैठकें संथागार में होती थीं। शाक्यों का संथागार

गार एक विशाल स्तंभ-भवन था। 'महा-
वस्तु' के अनुसार, शाक्यों के संथागार की
सदस्य-संख्या ५०० थी।

प्रत्येक गणराज्य में एक पद नायक का
होता था, जिसे अध्यक्ष, गणमुख्य अथवा
जेट्ठक कहते थे। संभवतः वही राज्य का
प्रधान या राष्ट्रपति होता था। अध्यक्ष की
नियुक्ति निर्वाचन द्वारा एक निर्धारित अवधि
के लिए की जाती थी। महात्मा बुद्ध के काल
में चेटक वैशाली गणराज्य के प्रधान चुने
गये थे। महावीर की माता त्रिशला इनकी
बहन थीं। गौतम बुद्ध के पिता शुद्धोधन स्वयं
शाक्य परिषद् के अध्यक्ष थे। शाक्य संथागार
के अध्यक्ष को 'राजा' कहा जाता था।
कार्यक्षेत्र

संथागार राज्य की सबसे बड़ी संस्था थे।



अनुकृति : डा. अ. ला. श्रीवास्तव

इनका कार्यक्षेत्र बहुत व्यापक था। अध्यक्ष
तथा सदस्यों का निर्वाचन, उच्च पदाधि-
कारियों की नियुक्ति, युद्ध, संधि तथा अन्य
राजनैतिक समस्याओं का समाधान, आपात-
स्थिति पर विचार-विमर्श एवं प्रशासनिक
नीति-निर्धारण आदि काम संथागारों में
संपन्न किये जाते थे। मगध-नरेश अजात-
शत्रु के आक्रमण करने पर वैशाली के संथा-
गार में इस पर खुलकर विचार-विमर्श हुआ
था कि युद्ध लड़ा जाये या संधि कर ली जाये।

कोशल के राजकुमार विडूडभ द्वारा
कपिलवस्तु पर आक्रमण किये जाने पर
शाक्य लोग संथागार में निर्णय करने के
लिए एकत्र हुए थे कि राजकुमार के लिए
नगरद्वार खोल दिये जायें अथवा नहीं। कुछ
ने कहा 'द्वार खोल दो'; पर दूसरों ने इसका
विरोध किया। अंत में बहुमत जानने के
लिए मत-विभाजन हुआ। बहुमत आत्म-
समर्पण के पक्ष में था, द्वार खोल दिये गये।

राजनैतिक अधिवेशनों तथा मंत्रिमंडल
की बैठकों के अलावा इन संथागारों में
धार्मिक एवं सामाजिक गोष्ठियों के आयो-
जन भी किये जाते थे। संयुक्तनिकाय के
अनुसार शाक्यों के नये संथागार में एक
आख्यानमाला आयोजित की गयी थी,
जिसका उद्घाटन गौतम बुद्ध ने किया था।
शालवन से जब बुद्ध के निर्वाण का संदेश
नगर के भीतर पहुंचाया गया, तब कुशी-
नगर के मल्ल अपने संथागार में सभा कर
रहे थे। बाद में यह तय करने के लिए कि
बुद्ध का अंतिम संस्कार कैसे किया जाये, वे

पुनः संथागार में एकरुत्र हुए थे।

वस्तुतः ये संथागार विधान-सभा, व्यवस्थापिका सभा, कार्यपालिका, न्यायपालिका सभी कुछ थे। राजदरबारों के समान संथागारों में भी पारस्परिक झगड़ों का निबटारा किया जाता था। संथागार सर्वोच्च न्यायालय का काम करते थे। वैशाली गणराज्य की न्याय-व्यवस्था अत्यंत उच्च कोटि की थी। वहां कई श्रेणियों के न्यायालय थे। नीचे से क्रमशः विनिश्चय-महामात्र, बोहारिक (व्यावहारिक) तथा सूत्रधर के न्यायालय थे। इन सभी में से गुजरता हुआ मुकद्दमा अट्ठकुलक नामक न्यायपीठ या जूरी के सम्मुख प्रस्तुत किया जाता था। इसके ऊपर सेनापति, उपराजा और अंत में राजा या अध्यक्ष के न्यायालय थे।

निर्दोष व्यक्ति को मुक्त कर देने का अधिकार इन सभी न्यायालयों को था। परंतु दोषी होने पर अपराधी को दंड देने का अधिकार केवल राजा के सर्वोच्च न्यायालय को था। राजा भी मनमाना दंड नहीं देता था। अपराध को तथा अपराधी की आयु, उसकी सामाजिक स्थिति एवं मनोदशा को ध्यान में रखते हुए वह पवेणी-पोत्थक (प्रतीग-पुस्तक या विधान-संहिता) के आधार पर शास्त्रानुकूल दंड देता था। इस प्रकार वैशाली में किसी निरपराध व्यक्ति को दंड दे दिये जाने की संभावना नहीं के बराबर थी।

अधिकारी एवं कर्मचारी

संथागार की सभाएं आधुनिक पार्लमेंट नवनीत

से किसी भी प्रकार से कम व्यवस्थित नहीं थीं। संथागार में सभा की कार्रवाई के सुचारु संचालन के लिए अनेक अधिकारी एवं कर्मचारी नियुक्त किये जाते थे। जब तक सदस्यों की एक निश्चित संख्या सदन में उपस्थित नहीं होती थी, तब तक (कोरस के अभाव में) सभा की कार्रवाई वैध नहीं मानी जाती थी। सदस्यों की यह निश्चित संख्या उपस्थित करने के लिए जो अधिकारी रहता था, उसे गणपूरक कहते थे।

सभी सदस्यों के लिए समुचित आसन की व्यवस्था आसनपञ्चापक नामक अधिकारी करता था। मत-विभाजन, मत-गणना एवं उसका निर्णय करने वाले अधिकारी को गणक कहते थे। सभा की कार्रवाई को लिपिवद्ध करने के लिए लिपिक होते थे। कार्रवाई एवं मत-विभाजन

संथागारों में सभाओं का आयोजन प्रस्ताव-पाठ से प्रारंभ होता था, जिसे 'ज्ञप्ति का अनुसावन' कहते थे। कभी-कभी यह प्रस्ताव-पाठ कई बार दोहराया जाता था। प्रायः प्रस्ताव के पक्ष वाले सदस्य मौन रहते थे। सदस्यों को सदन में केवल प्रस्ताव पर ही बोलने की छूट थी। वे अप्रासंगिक विषय पर नहीं बोल सकते थे। प्रस्ताव-पाठ के बाद प्रस्तावित विषय पर सदस्य अपने-अपने विचार प्रकट करते थे। विवादित विषयों पर पहले तो खुली बहस होती थी, और बाद में बहुमत जानने के लिए मत-विभाजन का सहारा लिया जाता था।

स्पष्ट अथवा खुले मत-विभाजन को

‘विवृतिकम्’ कहा जाता था। परंतु गुह्यक मत-विभाजन की दो रीतियां थीं—‘स्वकर्ण-जल्पकम्’ तथा ‘शलाका-पद्धति’। स्वकर्ण-जल्पकम् रीति में प्रत्येक सदस्य गणक के कान में फुसफुसाकर अपना मत प्रकट करता था और गणक अंत में मत-विभाजन का परिणाम सदन को प्रकट करता था। परंतु जब अत्यंत महत्त्वपूर्ण मसलों पर मत-विभाजन होता था, तब ‘शलाका-पद्धति’ से मत-विभाजन होता था। पक्ष तथा विपक्ष की शलाकाएं भिन्न-भिन्न रंगों की होती थीं। ‘शलाका-ग्राहक’ नामक अधिकारी प्रत्येक सदस्य से गुह्यक रूप से शलाकाओं के मत एकत्र करता था और गणक अंत में सदन को मत-विभाजन का निर्णय सुनाता था। ‘शलाका-पद्धति’ मत-विभाजन की एक अत्यंत वैज्ञानिक और स्वस्थ पद्धति थी।

सदस्यों की दलबंदी

संथागारों के सदस्य भिन्न-भिन्न दलों या गुटों में बंटे रहते थे। वे प्रायः अपने नेताओं के नाम से जाने जाते थे जैसे अंधक-

वृष्णि संघ के संथागार में अक्रूर के अनुयायियों को ‘अक्रूरवार्य’ या ‘अक्रूरपक्ष’ या ‘अक्रूरगृह’ कहा जाता था।

संथागारों की धार्मिक अथवा सामाजिक गोष्ठियों में शांति भले ही रहती हो, पर राजकाज के समय शोर-शराबा अवश्य होता होगा। दलबंदी एवं पारस्परिक ईर्ष्या-द्वेष गणराज्यों की सबसे बड़ी कमजोरी थी। इस दलबंदी अथवा ईर्ष्या-द्वेष का कारण अधिकार-लिप्सा थी। भाषणा-कला में पटु, दौड़घूप करने में समर्थ तथा गुटबाजी में चतुर सदस्य प्रायः सफल रहते थे। आजकल की भांति प्राचीन काल में भी सत्तारूढ़ दल को हटाना कठिन होता था। जब दो बड़े दलों की शक्ति बिल्कुल बराबर होती थी तो छोटे-छोटे दल लाभ उठाते थे। वे जिसका पक्ष ले लेते, वही दल सत्तारूढ़ हो जाता था।

इन तथ्यों से यह स्पष्ट कि गणराज्यों के संथागार वस्तुतः प्राचीन काल के पार्लमेंट थे। —१३६, तुलारामबाग, इलाहाबाद



[पृष्ठ ९१ का शेष]

विकर्षण-स्वभाव, अक्षकक्ष-गति-निर्भरता व बहुकण-क्रियाशीलता की व्याख्या करना वाकी है।

मेसान और नाभिक-कण का बल इतना शक्तिशाली और जटिल है कि हमारे गणित के सिद्धांत यहां काम नहीं करते। प्रश्न है कि गणित ठीक नहीं है या मेसान-सिद्धांत ठीक नहीं है? ज्यादातर वैज्ञानिकों को यही लगता है कि मेसान के मामले में

भौतिकशास्त्री ठीक दिशा में हैं और मेसान-सिद्धांत शायद हमारे खोये हुए गेंद को प्राप्त कराने में समर्थ हो जाये।

अब देखना है कि हमारा गणित कितना समर्थ है और क्या वास्तव में ही मेसान-सिद्धांत नाभिकीय बल की व्याख्या में सक्षम है। बहुत संभव है कि आने वाले वर्षों में भौतिकी का नोबेल-पुरस्कार इसी के अन्वेषण पर मिले।



सहृदयता

लोगों की दयालुता देखकर मैं हमेशा चकित रह जाता हूँ। जहाँ तक मेरा प्रश्न है, दयालु होने के लिए मुझे हमेशा प्रयत्न करना पड़ता है, खुद को याद कराना पड़ता है कि मुझे दयालु होना चाहिये। पर मैंने अपने पूरे जीवन में देखा है कि लोगों में कितनी अधिक दयालुता पायी जाती है। मैं एक बार 'हाँप' (एक प्रकार का फल) तोड़ने की मजदूरी करने के लिए जा रहा था। हाँप की बेलें बहुत ऊँचाई तक जाती हैं। पर हाँप तोड़ने का काम बहुत आसान होता है और स्त्रियाँ और बच्चे भी उसे करते हैं। फिर शाम के समय सब एक साथ बैठकर गाते हैं।

मुझे पता नहीं था कि यह काम मुझे कहाँ मिलेगा। हल्ड्स्वर्ग नामक एक स्टेशन आया, तो मैं गाड़ी से उतर पड़ा और अपना विस्तर कंधे पर रखकर शहर की ओर चल पड़ा। मैंने गोश्त की एक दुकान देखी, तो रुक गया। दुकान में बैठा कसाई ऊँचा-संवा, तगड़ा आदमी था। मैंने खिड़की से अंदर झाँकते हुए पूछा—'यहाँ हाँप का बाण कहाँ है?'

उसने मेरी ओर देखा और फिर कहा—'जरा ठहरो, मैं वहाँ खबर करता हूँ। वे आकर तुम्हें अपने ट्रक में ले जायेंगे।' वह फोन करने के लिए चला; पर कुछ ही कदम जाने पर मुड़ा और कहने लगा—'पर तुम्हें वहाँ जाने की क्या जरूरत है? वहाँ बहुत तकलीफ होगी। उसके बजाय मैं तुम्हें यहाँ शहर में ही अच्छा काम दिलवा देता हूँ।' और उसने फोन करके एक जगह मुझे काम दिलवा दिया, जहाँ आलूबुखारे सुखाये जाते थे। मैं जाने लगा, तो उसने कहा—'पर तुम रहोगे कहाँ?'' तब उसने मेरी नामक एक स्त्री को फोन करके उसके यहाँ मेरे निवास का प्रबंध कर दिया। मैं अभी चला ही था कि उसने मुझे रोकते हुए कहा—'पर तुम खाओगे कहाँ से? काम करने पर उसी समय तो पैसे मिलेंगे नहीं।' और पास के एक रेस्तराँ में जाकर मेरे खाने की व्यवस्था कर दी। सो पंद्रह मिनट में मुझे काम मिल गया, रहने की जगह मिल गयी और मेरे खाने-पीने का इंतजाम हो गया।

हल्ड्स्वर्ग में मैं लगभग दो महीने रहा। एक दिन मैंने समाचारपत्र उठाया तो एक मुकद्दमे की खबर ने मेरा ध्यान खींच लिया। मुकद्दमा अभी हाल ही में शुरू हुआ था। उसका संबंध एक भयानक घटना से था, जो मेरे आने से पहले वहाँ हुई थी। कुछ लोगों ने गिरोह बनाकर एक गृहस्थी दर्जी पर हमला किया था। जो कि कम्प्यूनिस्ट समझा जाता था। उन्होंने उसके घर पर गोलियाँ चलायी थीं और फिर उसे पकड़कर उसके मुँह पर कालिख पोती थी। उस गिरोह का मुखिया वही कसाई था, जिसने मेरे लिए स्वयं ही इतना कुछ किया था और मुकद्दमा उसी पर चल रहा था। वह व्यक्ति जो इस हद तक दयालु था, इतना बड़ा अत्याचार भी कर सकता था!

—एरिक हॉफर



कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम्

मोहन गुप्त

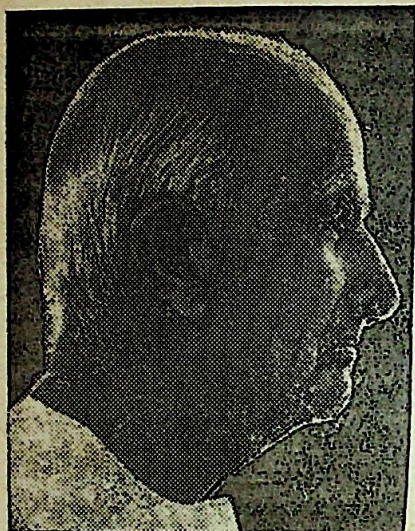
कृष्ण-चरित्र का विवेचन वंकिमचंद्र चट्टोपाध्याय, म. म. गोपीनाथ कविराज, क. मा. मुन्शी, पं. चमूपति और रजनीश ने विभिन्न दृष्टिकोणों से और शैलियों में किया है। श्री घनश्यामदास विड़ला की कृति 'कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम्' भी इसी शृंखला की एक नयी सशक्त कड़ी है—कृष्ण-चरितमाला का अनूठा सुगंधित पुष्प।

व्यवसायपति श्री विड़लाजी को इसके

प्रणयन की प्रेरणा महामता पं. मदनमोहन मालवीय से मिली थी। भागवत पुराण और महाभारत के अनुशीलन के साथ ही विड़लाजी ने स्वामी चिन्मयानंदजी के गीता एवं अन्य उपनिषदों पर भाष्य, लोकमान्य तिलक का गीतारहस्य आदि पुस्तकों भी भली भांति पढ़ी हैं। इसी से वे अपनी कलम से यहां कृष्ण-चरित की एक हृद्य छवि प्रस्तुत कर सके हैं—नितरांत निजी शैली में।



'कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम्' का एक नयनाभिराम चित्र ।



श्री घनश्यामदास बिड़ला

कृष्ण की सारी कथा के पुनः-प्रणयन में उनका अभिप्राय भी सुस्पष्ट है। 'कृष्ण केवल उपास्य नहीं अनुकरणीय भी हैं।' कृष्णलीलाएं तो 'केवल रोगन हैं जो सामान्य लोगों को आकर्षित करने के लिए वेदांत पर लपेटा गया है।' अतः 'नाम-स्मरण' से ही काम चलाकर कृष्ण के जीवन की अवहेलना बहुत बड़ी भूल है। 'योगक्षेम की पूति तो अनन्य भक्तों की ही होती है, जो उपासना नहीं पर्युपासना करते हैं।'

लेखक ने योग का अर्थ 'आत्मज्ञान' किया है और क्षेम के मानी हैं उसकी अचलता। लेखक का दृढ़ विश्वास है कि 'भगवान की दया सारे विश्व में बिखरी हुई है। हम न

नवनीत

बटोरें तो दोष हमारा। हमें "सर्वभूतहितः" रहकर स्वधर्म का आचरण करना चाहिये; क्योंकि साधुत्व प्राप्त किये कि अप्राप्य प्राप्त नहीं होता और प्राप्त की नहीं होती।'

बिड़लाजी का यह कथन भी ध्यान देने योग्य है—'बंधक कर्म वे ही होते हैं, जिनके जन-समूह की सेवा कानितांत अभाव रहता है।' 'सेवा न करके जो केवल अपना पेट भरने के लिए ही रात-दिन पचते रहते हैं वे लोग पक्के चोर हैं।' इसी तरह ये वाक्य भी—'कर्म को भगवान समझो।' 'वर्तव्य कभी त्याज्य नहीं।' 'जो मूर्ख स्वार्थ से प्रेरित होकर भी सक्रिय रहते हैं, उन्हें भी अक्रिय नहीं बनाना चाहिये।' 'मन्त्रा से कर्म का मूल्यांकन होता है।' 'बंधनों की पावंदी में जो कर्म बिये जाते हैं, वही मर्यादा की कसौटी है।'

लेखक ने 'लोक-कल्याण को ही श्रेष्ठ यज्ञ' माना है। इसीलिए भागवत के वंशधर कृष्ण उपास्य हैं तो महाभारत के वासुदेव कृष्ण अनुकरणीय महापुरुष। कृष्ण में 'नीति और व्यवहार का विलक्षण समन्वय है।' वे निर्बल पर दया के पक्षपाती हैं और निर्दय को कठोर दंड देने के पक्षधर हैं। उनकी मान्यता है कि भले ही 'पृथ्वी रक्त से गीली हो जाये' किंतु 'न्याय की रक्षा अवश्य होनी चाहिये।' इसीलिए कृष्ण दत्त का तो पर किसी को भी खरी-खोटी सुनाने से कभी नहीं चूकते।

कर्ण-कृष्ण-संवाद इस कृति की एक

मात्र

उपलब्धि है और कर्ण-कुंती-संवाद भी। इनमें विड़लाजी की सूझबूझ, सहृदयता और लेखकीय कौशल सभी एक साथ झलक पड़ते हैं।

विड़लाजी की तीक्ष्ण मर्मग्राही दृष्टि से महाभारत का दुर्योधन यहां 'पराजित नायक' के रूप में पेश होता है। वे पांडवारी से भी सहानुभूति रखते हैं और द्रौपदी से भी। दोनों ही महाभारत की 'पूत खोने वाली' महीयसी महिलाएं हैं। कृष्ण पांडवारी का शाप सरमाथे लेते हैं। जीवन का हेतु मिटते ही वे मृत्यु का वरण कर लेते हैं।

'संसार कृष्णमय था और रहेगा' शीर्षक अंतिम अध्याय में लेखक ने अपनी समस्त अनुभूति का सारांश यों प्रस्तुत किया है :

'श्रीकृष्ण शब्द आत्मा का पर्यायवाची है। सब भूतों में यह आत्मा अविभक्त है, सर्वत्र है, और एक ही है। आत्मा और परमात्मा एक ही है।'

'तरह-तरह के घाट घड़ने से उनके अनेक नामरूप बन जाते हैं, पर अंत में तो सभी घाट सुवर्ण ही हैं।'

'आत्मा (कृष्ण) और परमात्मा सर्वत्र, सर्वव्यापक, अनादि, अजर और अमर है, काल और स्थान से अबाधित है। इसलिए महापुरुषों की कथा इस विश्व की ही

कथा है, ऐसा समझकर हम इस समाप्ति पर उसी कृष्ण की वंदना करते हैं, जो सर्वत्र है, हममें है, आपमें है : कृष्ण वन्दे जगद्गुरुम्।'

सारी कृष्णकथा इस कृति में इतनी सरसता से वर्णित है कि एक बार शुरू करने पर कोई भी सहृदय पाठक इसे समाप्त किये बिना न रहेगा। प्रकाशन भी बड़ी सज्जज के साथ हुआ है। लोक-चित्रांकन शैली के बहुत-से चित्रों ने इस कृति को बहुत नयनाभिराम बना दिया है। यह ठीक समझ में नहीं आता कि ये सभी चित्र (एक को छोड़कर) राधा-कृष्ण-लीलाओं से ही क्यों संबंधित हैं। शायद यह भक्ति-भावना की संतुष्टि के लिए किया गया है; क्योंकि उनका वर्णन 'विशिष्ट' नहीं हो सका है। कनुप्रिया राधा का तो नाम ही नहीं लिया गया।.....

एक बात खटकती है कि जहां छायांकन और प्रस्तुति-कर्ता और मुद्रकों के नाम छपे हैं, वहीं चित्रकार का कहीं उल्लेख ही नहीं। मूल्य राज संस्करण का तो ६० रु. ठीक ही है। किंतु साधारण संस्करण यदि कुछ चित्र कम देकर ४० रु. के बजाय कम मूल्य में उपलब्ध बनाया जाता, तो अधिक पाठक लाभान्वित हो पाते।

* कृष्ण वन्दे जगद्गुरुम् * घनश्यामदास विड़ला; चित्र : विरला एकेडेमी ऑफ आर्ट एंड कल्चर एवं बसंत कुमार विड़ला के सौजन्य से; प्रकाशक : विरला एकेडेमी ऑफ आर्ट एंड कल्चर, कलकत्ता; छायांकन एवं प्रस्तुति : किशोर पारेख; मुद्रक : जी. सी. प्रिंटर्स, दिल्ली एवं आर्मी नेवी प्रेस, बंबई; मूल्य : राजसंस्करण ६० रु. तथा साधारण संस्करण ४० रु.।



खुलकर नहीं खेली कभी होली

होली वैसे तो बड़ा ही अच्छा त्योहार है, गरीब लोग तमाम तकलीफों के बावजूद पूरे मन से हंसते-नाचते, गाते होली मनाते हैं—चाहे जाने, चाहे अनजाने तौर से। लेकिन मैंने कभी भी खुलकर होली नहीं खेली..... बचपन में इसके कारण हुए

दुःख का मुझ पर इतना असर पड़ा कि मैं कभी भी होली के हुड़दंग में अपने आपको खींचना नहीं चाहता.....



नवनीत

उपेन्द्रनाथ 'अरक'

हां, एक बार की घटना मुझे याद है। तब सातवीं या आठवीं कक्षा में पढ़ता था। उस जमाने में होली के दिनों में एक मुहल्ले के लड़के इकट्ठे होकर दूसरे मुहल्ले पर चढ़ाई करते थे और पिचकारियां एवं रंगों की लड़ाई में जीतकर वापस आते थे। हमारे मुहल्ले में एक ब्राह्मण सब-पोस्ट मास्टर लड़का गुणा ही नहीं, कुछ पागल था। वह शरीर से हूण्ट-पूण्ट और बलिष्ठ था और ऐसी मुहिमों में अगुआ रहता था। उन अभियानों में वह बड़ा-सा चमड़ा हाथ में छिपाये आगे रहता था। उसके पीछे रंगों से भरी पिचकारियां, बोतलें और बालटियां लिये और लड़के चलते थे। बाजार में तो वह चाकू आस्तीन में छिपा लेता था, लेकिन मुहल्ले में दाखिल होते ही चाकू बाहर निकल आता था। जाहिर है, दूसरे मुहल्ले के लड़के डरकर भागते और हमारे मुहल्ले वाले उन पर पिचकारी और रंग डालते और छोटी बालटियां फेंककर विजयोन्मत्त हो वापस आते। चूंकि वह

गणल-गूंगा था, कोई उसे कुछ कहता न था। विधिवत् तो होली का त्योहार दो दिन का ही होता है; पर जहां तक मुझे याद है, हम लड़के लगभग पांच-छह दिन पहले तोहारका (हल्की हवा जो बाद में लू बन जाती है) के साथ ही रंग फेंकना शुरू कर देते थे।

जिस सुबह का जिक्र है, मुहल्ले के लड़कों ने पंजपीर मुहल्ले पर हमला करने की ठानी। मैं तो मैं पतला-दुबला बीमार कमजोर लड़का था और लड़ाई-भिड़ाई में मेरी रुचि न थी; लेकिन उस सुबह मैं केवल उत्सुकता-वश छोटी-सी पिचकारी लिये उनके पीछे हो लिया। एक फलांग चलकर ही एक मुहल्ला था—चौक चड़िया। हमारे मुहल्ले और उसके बीच दो-तीन वंद गलियां भी थीं। इन सबके लड़के उस सुबह इकट्ठे थे और हमारा काफी लंबा जुलूस होली के रंग में यह गाते हुए आगे बढ़ रहा था :

होरी ऐ वई होरी ऐ
किस मड़वे दी चोरी ऐ।

बीच-बीच में 'होरी ऐ' का नारा लगाते हुए हम आगे बढ़े। पूरी गली-भर गूंगा छोटा-सा चाकू हाथ में लिये उसे बंद-मास्टर की छड़ी की तरह धीरे-धीरे इधर-उधर घुमाता हुआ आगे चलता रहा। लेकिन ज्यों ही हंस अतार की दुकान के पास हम पंचपीर मुहल्ले के बाजार में दाखिल हुए, उसने चाकू समेत दोनों हाथ बगलों में छिपा लिये। बाजार का थोड़ा-सा हिस्सा और बढ़े-से मेहराबदार दरवाजे पार कर हम पंचपीर मुहल्ले में दाखिल हुए। गूंगे ने फिर चाकू निकाल लिया। समवेत स्वर में 'होरी ऐ' का नारा दोनों ओर के मकानों के अंतः-पुरों तक गूंज गया। पंचपीर मुहल्ला चौड़ी गली में दूर तक चला गया है, लेकिन कहीं भी हमें अपने सामने कोई टोली नहीं दिखाई दी। जैसे-जैसे हम बढ़ते गये, वैसे-



होरी खेलते मुहम्मद शाह रंगीले—एक समकालीन चित्र की रंग द्वारा अनुकृति।

वैसे खिड़की-दरवाजे बंद होते गये और हमारे वीर योद्धा बंद होती खिड़कियों और दरवाजों के बीच से पिचकारियां चलाते रहे।

जब हम मुहल्ले के अंतिम छोर तक पहुंच गये—या कहूं कि हमारी सेना का अग्रभाग, हमारा नेता मुहल्ले के अंत तक पहुंचा—तो नजारा देखने के लिए मैं पीछे दायीं ओर एक मकान के चबूतरे पर चढ़ गया। मैंने देखा, गूंगा चाकू घुमाता हुआ और लड़के पिचकारियां उछालते हुए दूसरी मंजिल तक वारजे से पिचकारी मारने वाले लड़कों को ललकार रहे थे कि नीचे उतरो, औरतों की तरह क्या ऊपर चढ़ गये हो। कुछ लड़के अपनी पिचकारियों को ऊपर की तरफ करके छोड़ भी रहे थे। उस जमाने में बच्चे वांस की पिचकारियां अपने घरों में ही बनाते थे; और वे बहुत दूर तक मार करती थीं। तो भी उनकी मार हम तक पहुंच नहीं पा रही थी। और हमारे गोल के लड़के यह सोचकर कि अब वे नहीं उतरेंगे, अपनी पिचकारियां इस प्रकार खाली कर रहे थे।

तभी ऊपर के वारजे की खिड़कियां खुलने की आवाज हुई। साथ ही बालटियों से गहरे हरे रंग के पानी की धारें आगे खड़े लड़कों पर गिरिं। वे पीछे को भागे कि तभी नीचे के दरवाजे खुले और एक लड़का बड़ी-सी सव्जी काटने की छुरी और दूसरे लड़के पिचकारियां थामे हमारे पीछे हो लिये।

हमारी फौज में भगदड़ मच गयी। मैं नवनीत

सबसे पीछे खड़ा था, सो उछलकर भागा। मेरी उम्र वारह-तेरह साल की थी, लेकिन बीमारी और कमजोरी के बावजूद मैं तेजी से दौड़ रहा था। मुझे सिर्फ इस बात का एहसास है कि मेरे दायें-बायें लड़के बेतहाशा भाग रहे थे और मुझसे आगे निकलते जा रहे थे। पंजपीर के लड़कों ने हंस अत्तार की दुकान तक हमारा पीछा किया। उन्होंने हमारी टोली के दो लड़कों के हाथों से वोतवें और पानी की बालटी भी छीन ली।

आखिर टोली के सब लड़के एक जगह इकट्ठे हुए। मगर उस गूंगे का कहीं भी पता न था। अपनी टोली की इस शर्मनाक हार से शायद उसका दिल टूट गया था और वह बाजार की ओर आने के बजाय स्टेशन की ओर भाग गया था और किसी गाड़ी में बैठ गया था। उसके बाद उसके पिता ने उसे बहुत ढूँढ़ा, पर उसका कहीं पता न चला।

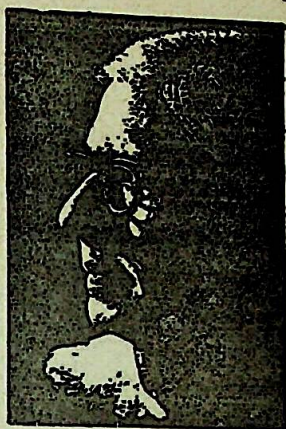
हमारे दल के 'वीरों' का कहना था कि ऊपर से पथराव हो रहा था इसलिए डरकर भागे थे। पर जहां तक मुझे याद है केवल रंगीन पानी से भरी बालटियों ही उड़ती गयी थीं। इस अभियान में लड़कों का खिड़कियों के अंदर बेतहाशा रंग-भरी पिचकारियां मारना और दीवारें खराब करना मुझे बहुत बुरा लगा था। उसके बाद मैं किसी होली-अभियान में शामिल नहीं हुआ।

उसके दो वर्ष बाद की बात है। होली का जोर कम हो चला था। शायद अंतिम दिन था। होली खेलकर नहा-धोकर नव

कपड़े पहन मैं अपनी सजी-संवरी बैठक में बैठा था। उन दिनों मुझे अपनी बैठक सजाने का बहुत शौक था। तस्वीरों को भी अपने आप माउंट करके फ्रेम चढ़वाता था। हमारे नये मकान की बैठक में दीवारों पर बड़ा खूबसूरत जहर-मोहरा रंग किया गया था और उन पर एक कतार में तस्वीरें लगी थीं। मुहुल्ले में सबसे ज्यादा सुंदर हमारी बैठक थी। मुझे बैठे पांच-दस मिनट भी नहीं हुए थे कि अचानक शोर मचा-होरी ऐ, होरी ऐ !

मैं दरवाजा बंद करने के लिए उठा कि तभी किसी दूसरे मुहुल्ले के लड़के भागते हुए आये और मेरे दरवाजा बंद करते-करते उन्होंने रंग और कीचड़ से सारी दीवारें और तस्वीरें खराब कर दीं। दरवाजा बंद करके आंगन में रखी कपड़े धोने की थापी उठाकर मैं उनके पीछे भागा और सबसे पीछे भागने वाले लड़के की पीठ पर जड़ दिया; उसकी पीठ दुहरी हो गयी। वह लड़खड़ाया; लेकिन भाग निकला। मैं वापस आया। तस्वीरें उतारकर धो लीं, लेकिन कीचड़ के धब्बे कई महीनों तक दीवारों को बदजेब बनाये रहे।

तीसरा दृश्य लाहौर का है। मैं तब 'बंदे मातरम्' में काम करता था। लाहौर की होली के बड़े किस्से सुने थे, सो अपने एक मित्र से उनका नजारा दिखाने के लिए कहा। वे लोहारी दरवाजे के अंदर चौक से एक साप्ताहिक निकालते थे। उनके परामर्शानुसार सुबह-सुबह होली का हुड़-



लेखक 'अशक'

दंग शुरू होने से पहले मैं वहां पहुंच गया। उन लोगों ने नीचे सीढ़ियों का दरवाजा बंद कर दिया था। हम ऊपर से नीचे का तमाशा और हुड़दंग देखते रहे। जाने कितनों के मुंह कोलतार से रंगे गये, कितनों पर कीचड़ और गंदगी फेंकी गयी थी। दोपहर के करीब हमने देखा कि एक आदमी आगे-आगे चला जा रहा है, उसके पीछे एक कुली सिर पर मटका उठाये आ रहा है। ऐन चौक के बीच किसी ने पत्थर फेंका और मटका फोड़ दिया। उस वक्त आगे चलने वाला लड़का तो भाग गया, लेकिन वह गरीब मजदूर मटके में भरी गलाजत से नहा गया। वह किंकर्तव्यविमूढ़-सा चौक में खड़ा था और लोण बेतहाशा हंस रहे थे। मेरा दिल रोने-रोने को हो गया। इसके बाद मने कभी होली नहीं खेली। खेलना तो दूर, मैं होली के दिनों में घर से बाहर भी नहीं निकलता।



अविश्वामित्र

शीतांशु भारद्वाज

बाँज-बुसंश के दरख्तों से छन-छनकर आती हुई ठंडी और सुगंधित बयार तुम्हारे नासापुटों को निरंतर अपनत्व का एहसास कराती आ रही है। अपनी हवा, अपनी घरती और अपने ही वंधु-बांधव—यही सब कुछ तो अपनत्व के विधायक तत्त्व हुआ करते हैं। वचपन से ही वन-पर्वतों की यह गंध तुम्हारे मन-प्राण में रची-बसी हुई है। यहाँ आकर तुम्हें अजीब-सी अनुभूति होती है। दोपहर ढलने को है, किंतु वातावरण में अब भी वन-कीटों के चीं-चीं, चिड़-चिड़ के स्वर अपना राग अलापते जा रहे हैं।

गोल कमरे में शृंगार-मेज के सामने खड़ी-खड़ी तुम आदमकद आईने में अपनी रूपराशि को स्वयं ही सराहती जा रही हो। तभी मेज पर रखा हुआ टेलिफोन बजने लगता है—ट्रिंग.....ट्रिंग....

‘यस् ।’ लपककर तुम फोन के चोगे को कान से सटा लेती हो।

‘मैडम, फोन फ्रॉम बरेली ।’ उस ओर से टेलिफोन-केंद्र की आपरेटर तुम्हें सूचित नवनीत .

करती है।

‘हेलो, इरा ठाकुर !’ अगले ही क्षण तुम फोन पर अपना परिचय देने लगती हो।

‘इराजी, मैं शंकर अग्रवाल बोल रहा हूँ ।’ उस ओर फोन पर बरेली संभाषण के उपशिक्षा-निदेशक होते हैं।

‘अग्रवाल साहब, नमस्कार !’ तुम स्तर में मिस्री घोलने लगती हो।

‘नमस्कार !’ वे पूछते हैं—‘सब खैरिया हैं न ? पेपर-वेपर.....’

‘जी हां, खैरियत ही ठहरी ।’ तुम उन्हें अपने परीक्षा-केंद्र की गतिविधियों से परिचित कराने लगती हो—‘अभी तक तो ऐसी कोई वारदात नहीं हुई जो.....’

‘देन आल राइट ।’ उस ओर से फोन खट दिया जाता है।

सहसा ही तुम्हें अपने स्थानांतरण संबंधी आदेशों की याद हो आती है। पिछले महिने तुम स्वयं बरेली जाकर रामपुर के फल इंटर कालेज से अपनी बदली यहीं नवीन ताल के जी. आइ. सी. में करवाने की

वातवीत कर आयी थीं। उन्होंने तुम्हें
मायवस्त किया था कि परीक्षाओं के
समाप्त होते ही वे तुम्हारी इच्छानुसार ही
तुम्हारा स्थानांतरण कर देंगे।
'हलो!' तुम फोन पर फिर से बात
करना चाहती हो।

'फोन का संपर्क कट चुका है, मैडम!'
आपरेटर सूचित करती है।

ठंडी सांस भरकर तुम फोन रख देती हो।
बोर्ड ने तुम्हें यहां के परीक्षा-केंद्र की
शिक्षिका नियुक्त किया है। तुम्हारे ठह-
रने की व्यवस्था इसी डाकबंगले में की गयी
है। डाकबंगले से निकलकर तुम एक संकरे
हालवां मार्ग पर हो लेती हो। कुछ कदम
चलकर एक मोड़ पर रुककर तुम इस झील
की नगरी को देखने लगती हो। उस पार
सामने ही चाइना पीक की नंगी और खुर-

दुरी पहाड़ी है। उधर से फिसलकर तुम्हारी
दृष्टि नैनी लेक पर आ टिकती है। वहां
पांच-छह पाल वाली नावें तैर रही होती हैं।

तुम झील के मुहाने पर अवस्थित मल्ली-
ताल की ओर देखने लगती हो। वहां बड़े
बाजार के समीप ही लाल खपरैल के ढालवां
छतों वाले रेल के डिब्बे-से जो कमरे दिखाई
दे रहे हैं, वे सभी यहां के जी. आइ. सी. के
हैं। मुख्य भवन के दुमंजिले गुंबद से चप-
रासी पहली घंटी बजाता आ रहा है-टन्-
टन्....टन् न् न्। हरे मखमली लानों
पर बिखरे हुए परीक्षार्थी उठ-उठकर परीक्षा-
भवन की ओर जाने लगे हैं।

तुम फिर से अपना रास्ता नापने लगती
हो। मल्लीताल पर आकर तुम कालेज के
अपने अस्थायी कार्यालय में आ बैठती हो।
अलमारी से परीक्षा संबंधी आवश्यक कागज-



पत्रों को लेकर तुम परीक्षा-भवन की ओर आ जाती हो। पर्यवेक्षक-गण वहां उस समय उत्तर-पुस्तिकाओं का वितरण कर रहे होते हैं।

जेठ-वैसाख के दिन आलस्य-भरे होते हैं। कुर्सी पर बैठी हुई तुम हथेली को मुंह के पास ले जाकर एक आलस्य-भरी जम्हाई लेती हो। तीन वजने में अभी पंद्रह मिनट बाकी हैं। तुम्हारी मेज को स्थानीय विद्यालयों के अध्यापकों ने घेरा हुआ है। तुम्हारे अपनत्व के रिश्तों का दायरा बढ़ता ही जाता है। तुम अपनों के बीच में हो। तुम्हें लगता है जैसे हर कोई ही दम भर के लिए तुम्हारे साया में आराम करना चाहता हो। नारी के प्रति पुरुष का सनातन आकर्षण ! अपनी इस विशिष्टता पर तुम कितना-कुछ गर्व अनुभव करती हो !

आठ-दस पर्यवेक्षक अब भी तुम्हारी मेज को घेरे हुए हैं। तीन वजने में अभी पांच-एक मिनट बाकी है। बोर्ड से प्राप्त सील-बंद लिफाफे पर साक्षी के रूप में तुम तीन अध्यापकों के हस्ताक्षर पहले ही करवा चुकी हो। सभी परीक्षार्थी अधीरता के साथ प्रश्न-पत्र की प्रतीक्षा कर रहे हैं।

सामने की कतारों पर तुम एक सरसरी-सी दृष्टि डालती हो। आज भी सामने के द्वार से हाथी-सा झूमता हुआ युवा छात्र अपनी सीट की ओर आ रहा है। अपने कर्तव्य की याद आते ही तुम उधर से दृष्टि फेर लेती हो। प्रश्नपत्र के लिफाफे को खोलते हुए तुम अपने अंदर कहीं कंपकंपी-सी नवनीत

अनुभव करती हो।

तुम्हारी यह भयाकुल मनःस्थिति तुम्हारे दवंगपन पर कहीं बट्टा तो नहीं लगा रही है ? अपने सात-वर्षीय सेवाकाल में तुम विगड़े से विगड़े परीक्षा-केंद्रों को भी निर्वृत्त करती रही हो। बरेली के इस शिक्षा-संभाण में अब तक परीक्षार्थियों के ऊपर तुम कितना कुछ कहर गिराती रही हो, वह सभी जानते हैं। छुरे-चाकुओं से तुम कभी भी आतंकित नहीं हुईं। फिर आज तुम्हारे उसी तमाम अर्जित दवंगपन की दीवारें क्यों हिल रही हैं ? क्यों आज तुम्हारा अंतर्गमन प्रकंपित हुआ जा रहा है ?

टन-से घंटा बजता है। पर्यवेक्षक त्वरित गति से परीक्षार्थियों में प्रश्नपत्र वितरित करने लगते हैं। प्रतिनित्य की भांति तुम परीक्षार्थियों को कुछ आवश्यक निर्देश देने के लिए कुर्सी से उठ खड़ी होती हो। तुम्हारी दृष्टि उसी युवा परीक्षार्थी पर जा लकती है। तीसरी कतार में सबसे आगे बैठा हुआ वह न जाने कब से तुम्हें ही देखता जा रहा है। तुम फिर से भयाकुल हो जाती हो। स्वाधीनता-पूर्व की अवला-सी !

परसों वह परीक्षार्थी अत्यधिक चंचल था। बार-बार वह अपनी जेबों में हाथ डालता था। किंतु उसके पास नकल टीपे का कोई मसाला न था। तुम उसके पास जा खड़ी हुई थीं। 'क्यों ?' तुमने जैसे निगाहों ही निगाहों में पूछा था।

इस पर वह सीट से उठकर तुम्हें प्रश्नपत्र दिखाता हुआ निराला की काव्य-पंक्तियों

साथ

पर जंगली रखने लगा था :

श्याम तन, भरबंधा यौवन,
नत नमन, प्रिय-कर्म-रत-मन,

गुरु हथौड़ा हाथ

करती बार-बार प्रहार ।

'डिडिट ।' भुनभुनाकर तुम उधर से
हट गयीं थीं ।

'मि. विस्ट जरा इन लोगों को सावधान
कर दीजिये ।' तुम वहीं खड़े उस कालेज
के एक अध्यापक से कहती हो ।

'परीक्षार्थी ध्यान दें ।' विस्ट उन्हें साव-
धान करने लगता है—'अपनी जेबों में छिपाये
हुए कागज-पत्तर निकालकर इनविजि-
लेटरों के हवाले कर दीजिये । कोई नकल
टीपता हुआ पकड़ा गया तो, उसे क्षमा नहीं
किया जायेगा ।'

दायित्वबोध तुम्हें फिर से सक्रिय करने
लगता है । आंखों पर गागल्स चढ़ाकर तुम
परीक्षा-भवन का एक तूफानी राउंड लेने
लगती हो । तुम तीसरी कतार के आगे खड़ी
हो । वह परीक्षार्थी प्रश्नपत्र पर गरदन
झुकाये हुए न जाने क्या कुछ सोच रहा है ।
आज शायद उसके पास नकल टीपने का
कोई मसाला न हो ।

'पेपर पर रोल नंबर लिखो ।' कड़ककर
तुम उसे डांटती हो ।

मुस्कराकर वह प्रश्नपत्र पर अपना
रोल नंबर लिखने लगता है ।

'ह्लाट्स योर नेम ?' तुम उसका नाम
जानना चाहती हो ।

'वन एट श्री नाइन डबल फाइव ।' वह

उसी प्रकार मुस्कराता रहता है ।

'ठीक है ।' तुम तल्खी से आदेश देती
हो—'प्रवेश-पत्र दिखाओ ।'

वह युवा परीक्षार्थी पर्स से अपना प्रवेश-
पत्र निकालकर तुम्हें दिखाने लगता है ।

नामः—पुनीत पांडे; अनुक्रमांक—एक लाख
तिरासी हजार नौ सौ पचपन ।'

'हूं ।' तुम पुनः अपनी सीट की ओर
लौट आती हो ।

'क्या हुआ मैडम ?' जाने कहां से तुम्हारे
पास विस्ट आ जाता है ।

'कुछ नहीं !' बात टाल देने की गरज से
तुम मेज की दराज से कोई पत्रिका निकाल-
कर उसके पन्ने पलटने लगती हो ।

'मैडम !' तभी तुम्हारे पास धवड़ाया
हुआ कोई पर्यवेक्षक आता है ।

'येस !' तुम पत्रिका को एक ओर रख
देती हो ।

'इस लड़के ने तो नाक में.....' पर्यवेक्षक
सिर खुजलाने लगता है ।

'नाइन फिफ्टी फाइव न !'

'जी ।'

'चलिये, मैं आ रही हूं ।' आंखों पर
गागल्स चढ़ाकर तुम परीक्षा-भवन का एक
राउंड लेने लगती हो ।

परीक्षा-भवन में तुम भय और आतंक
का वातावरण उपस्थित कर देती हो । 'ऐ!
पेपर पर क्या लिख दिया ?' किसी के गाल
पर चपत लगाकर तुम उसे भयाकुल कर
देती हो । कोई इधर-उधर झांकता है तो
तुम उसके कान उमेठ देती हो । सभी पर्य-

वेक्षकों की गस्त में तेजी आ जाती है।

‘ऐ, खड़े हो जाओ।’ तुम पुनीत के पास आ खड़ी होती हो।

एक अंगड़ाई लेकर पुनीत विशेष अदा के साथ सीट से उठ खड़ा होता है। यदि कोई दूसरा परीक्षार्थी होता तो तुम स्वयं ही उसकी जेबों की तलाशी लेने लग जातीं; किंतु आज तुम अपने में ऐसा साहस नहीं जुटा पातीं। वह उद्धत लड़का मुस्कराता हुआ पैट की पिछली जेब से कंधी निकालकर तुम्हारे गागल्स में झांकता हुआ अपने सिर के बाल संवारने लगता है। तुम्हारे क्रोध का पारा चढ़ने लगता है। तुम्हारी आंखों के दर्पण में अतीत का प्रतिबिम्ब साकार होने लगता है। ऐसे में, तुम्हारा क्रोध थर्मामीटर के पारे की तरह उतरने लगता है।

हिंदू कालेज लाइब्रेरी का रीडिंग रूम। लंबी मेज के आमने-सामने मोटे-मोटे ग्रंथों को फैलाये हुए तुम और अनुराग अपने त्रिपय के नोट्स ले रहे हो। तुम अनुराग को देखती हो तो वह जेब से कंधी निकालकर अपने सिर के बाल संवारने लगता है।

‘ऐ!’ संध्या को घर लौटते हुए अनुराग से तुम पूछ बैठती हो।

अनुराग ठिठककर तुम्हें देखने लगता है।

‘लाइब्रेरी में क्या कर रहे थे!’ तुम खीझ-भरे स्वर में पूछती हो।

‘तुम्हारे रूप के दर्पण में’ अनुराग मुस्करा देता है।

‘हिश!’ तुम अपनी कनपटियों के इर्द-गिर्द कहीं तपिश-सी अनुभव करती हो।

नवनीत

‘मैं खड़ा ही रहूँ मैडम!’ पुनीत जैसे तुम्हारे मन की चोरी को पकड़ लेता है।

तुम्हारे अतीत का शीशमहल छन्न-छूट जाता है। सतरंगे इंद्रधनुष से तुम ऊबड़-खाबड़ धरती पर उतर आती हो। वहीं से तुम सामने खड़े पर्यवेक्षकों को आदेश देती हो—‘मि. पंत, इनकी तलाशी ले लीजिये।’

‘जी मैडम, मैं.....’ पंत कुछ हकलाने-सा लगता है।

‘अरे, आइये भी।’ तुम अधिकार-पूर्ण दर्प से कहती हो—‘हम जो है।’

‘हां भई, हाथ खड़े करो।’ तुम पुनीत के कहती हो—‘तुम्हारी तलाशी ले जायेगी।’

‘लेकिन मैडम, मैं कोई चोर-डाकू.....’ पुनीत तर्क देने लगता है—‘ऐसा तो चोर-डाकूओं से कहा जाता है।’

‘मूर्ख!’ तुम्हारा अगला आदेश होता है—‘दोनों हाथ खड़े करो।’

डाकूओं की मुद्रा में पुनीत अपने दोनों हाथ ऊपर उठा लेता है। पंत उसकी सफारी सूट की जेबों से कागज-पत्र निकालकर उन्हें वहीं डेस्क पर रख देता है।

‘मोजों की भी तलाशी ले लीजिये।’ तुम कहती हो।

पंत पहले तो कुछ झिझकता है, किंतु अगले ही क्षण ज्यों ही वह तलाशी के लिए नीचे झुकता है, कुछ ऐसे चौंकता है जैसे उसे विच्छू ने काट लिया हो। ‘अरे, बाप रे बाप!’ उसका मुंह खुला का खुला ही रह जाता है।

नवनीत

‘क्यों?’
 ‘चाकू मैडम, चाकू!’ देखकर पंत की
 बिबी बंध जाती है।
 ‘चाकू!’ तुम भी चौंककर दो कदम
 पीछे हट जाती हो।
 ‘हां मैडम, रामपुरी चाकू!’ पंत तुम्हारे
 ही बगल में आ खड़ा होता है।

वक्ष से खिसक आये आंचल को ठीक कर
 तुम आगे बढ़ती हो। पुनीत के दायें मोजे
 से चाकू निकालकर तुम उसे अपने अधिकार
 में कर लेती हो। उसे खटाखट बंद करती
 हुई तुम उसकी ओर घूरती हो—‘क्यों?’
 ‘यह तो मैडम, आत्मरक्षा....’ पुनीत
 उसी प्रकार मुस्कराता रहता है।

‘हूं!’ तुम उधर से हट आती हो। काणज-
 पत्र लेकर पंत भी तुम्हारी मेज पर आ खड़ा
 होता है।

उन अनेक पर्चियों के बीच तुम्हारे हाथ
 एक पीले रंग की पर्ची लगती है। वह अन्य
 पर्चियों की कुंजी होती है। मुहावरे—बायां
 मोबा, पर्यायवाची शब्द—वहीं दायीं ओर,
 विरोध शब्द—दायीं जेब, पत्र—दायां मोजा
 (बायीं ओर),...निबंध—वहीं (दायीं ओर)।
 नकल की इस नयी तकनीक को देखकर तुम
 हसप्रसन्न रह जाती हो।

परीक्षा-भवन में भय और आतंक छा
 जाता है। कालेज के प्राचार्य को साक्षी करके
 तुम पुनीत को दो वर्ष के लिए निलंबित
 करा देती हो।

संध्या हो आयी है। केंद्र की उत्तर-
 पुस्तिकाओं को अपने ही सामने सीलबंद

१९७९

करवाकर तुम डाकबंगले में आ जाती हो।

‘मेम साहब, चाय!’ डाकबंगले का बूढ़ा
 चौकीदार तुम्हारे आगे चाय की गरम मग
 रख जाता है।

चाय पीकर तुम चौकीदार को आवाज
 देती हो—‘धर्मा काका!’

‘जी, मेम साव!’ हाथ बांधे हुए चौकी-
 दार एक ओर खड़ा हो जाता है।

‘आज मैं खाना नहीं लूंगी।’

‘दूध तो लेंगी न, सरकार!’

‘हां। पर फीका और बिना मलाई का।’

बिस्तर पर तुम बराबर करवटें बदलती
 जा रही हो। बड़े नगरों में किस प्रकार
 परीक्षार्थी पर्यवेक्षकों को छूरा घोंप दिया
 करते हैं! तुम्हारी आंखों के आगे अखबारों
 की कतरनें उड़ने लगती हैं। कहीं पुनीत भी
 तुम्हारे साथ कोई अभद्र व्यवहार न कर दे!

परीक्षा-भवन में तुम पुनीत के मोजे से
 चाकू निकालती ही हो कि तत्काल वह उसे
 छीन लेता है। एक बड़ी चीख के साथ तुम
 वहां से भाग खड़ी होती हो। हाथ में खुला
 हुआ चाकू लेकर पुनीत बराबर तुम्हारा
 पीछा करता आ रहा है। निरुपाय—सी तुम
 झील में कूद पड़ती हो।

सुबह तुम अपने को पसीने में तर-बतर
 पाती हो।

‘रात को क्या हुआ था, मेम साव!’
 चौकीदार तुम्हारे आगे नाशता रखते हुए
 पूछता है।

‘कोई डरावना सपना देखा था, काका।’
 तुम उस दुःखस्वप्न से कांप-कांप जाती हो।

हिंदी डाइजेस्ट

‘उंह ! सपना....!’ चौकीदार चाय बनाता हुआ कहता है—‘उमर बढ़ रही होगी।’

चाय पीती हुई तुम उस बूढ़े के दार्शनिक सूत्र का विश्लेषण करने लगती हो। बचपन में मां भी तो यही कहा करती थी। तो क्या उम्र का बढ़ना किसी के रोके रुका है ? तुम्हारी दृष्टि चौकीदार के झुर्रियों-भरे चेहरे पर जा लगती है। तुम उस कथन को परिमार्जित करने लगती हो—‘उम्र बढ़ नहीं, ढल रही होगी काका।’

‘एक ही बात है, मेम साव !’ चौकीदार बरतन समेटने लगता है—‘दाल-भात कहो या भात-दाल !’

उम्र बढ़ने की यह प्रक्रिया तुम्हें दिग्भ्रमित करने लगती है। विस्तर से उठकर तुम सीधे ही आईने के पास आ खड़ी होती हो। आंखों के इर्द-गिर्द की स्थाही और कनपटी के दो प्रतिशत सफेद वालों को देखकर तुम्हें लगता है, जैसे सचमुच ही तुम्हारी उम्र ढलती जा रही हो। आह ! रूप का यह क्षय ! विस्तर में घंसकर अपने प्रारब्ध पर सिसकने-सुवकने लगती हो।

रविवार का अवकाश है। डाकबंगले में पड़ी-पड़ी ही तुम ऊब गयी हो। शील की नगरी में संध्या उतर आयी है। वस्त्र बदलकर तुम सैर-सपाटे के लिए डाकबंगले से नीचे उतर आती हो। मार्ग पर तुम्हें जितने भी चेहरे दीखते हैं, उन सभी के ओंठों पर सहज मुस्कान है। तुमने कहीं पढ़ रखा है कि ऐसी मुस्कान उम्र को बढ़ाती है। काश ! तुम्हारे होठों पर भी यही मुस्कान खिलती।

नवनीत

ठंडी सड़क पर एक कुंज के समीप आकर तुम रुक जाती हो। लगता है जैसे समीप ही कोई तुम्हें पुकार रहा हो।

‘मैडम ! मैडम !’ नीचे शील की सड़क पर नाव लिये हुए पुनीत सचमुच में ही तुम्हें पुकार रहा होता है।

तुम भयाकुल हो जाती हो। आंखों पर गागल्स चढ़ाकर उधर से उलटे पांव लुपतल्लीताल की ओर आने लगती हो।

‘हम इतने बुरे तो नहीं हैं, मैडम !’ नीचे नाव खेता हुआ पुनीत तुमसे अनुरोध करने लगता है—‘बोटिंग कीजिये !’

बोटिंग यानी कि नौका-विहार। तुम्हारे मन के कोने में कहीं रोमांस का दृश्य पलने लगता है। तुम चौड़ी छाती बो स्थाह मूँछों वाले पुनीत के साथ नौका-विहार कर रही हो। अनुराग ने भी तो कभी तुम्हारे साथ नौका-विहार किया था। अनुराग नेगी, जो तुम्हारी नाव को बीच बंध-घार में छोड़कर स्वयं किनारे पर जा गया था। अतीत का एक और कतरा तुम्हारे आंखों के आगे साकार होने लगता है।

कोर्ट के बाहर किसी लुटे हुए जुआरी-नी तुम अनुराग की प्रतीक्षा करती आ रही हो। उसने संबंध-विच्छेद के लिए तुम पर बांझ होने का आरोप लगाया था। विनिर्दोषता के अनेक प्रमाणपत्रों के साथ उसे इसे सिद्ध भी कर दिया था। उन अकारण प्रमाणों का तुम कोई प्रतिवाद नहीं कर सकी थीं।

‘अनुराग !’ पास से जाते हुए अनुराग को

तुमने टोका था।

ठिठककर अनुराग तुम्हें देखने लगा था।

‘इसकी क्या आवश्यकता थी अनुराग?’

तुमने प्रकंपित अधरों से पूछा था—‘मुझ पर कोई दूसरा अभियोग भी तो लगाया जा सकता था।’

‘ओह इरा!’ अपने आप पर ही झुंझ-साता हुआ अनुराग आगे चल दिया था। तुम देखती ही रह गयी थीं।

मल्लीताल की ओर लौटती हुई लाइ-ब्रेरी के समीप तुम ठिठक जाती हो। सामने ही परिवार-नियोजन का विज्ञापन तुम्हारे बंतर में नशतर-सा लगा जाता है। ‘हम दो, हमारे दो।’ एक सर्द आह भरकर तुम फिर से रास्ता नापने लगती हो।

बोट-क्लब के सामने वैडवादक कोई उत्तेजक धुन बजाते जा रहे हैं। झील के मुहाने की उस वालू पर अनेक जोड़ों के शांव नृत्य की मुद्रा में थिरक रहे हैं। तुमसे यह सब कुछ नहीं देखा जाता। तुम नंदा-देवी के मंदिर की ओर मुड़ जाती हो। किंतु वहां भी वही जुगल-जोड़े होते हैं। आंखें मूंदे हुए वे लोग न जाने क्या कुछ मांगते जा रहे हैं। सुबह होकर तुम मंदिर से भी बाहर निकल आती हो। उसी अशांत मनःस्थिति में तुम बाहर एक बेंच पर आ बैठती हो। अपने अभिशप्त जीवन पर तुम्हारी आंखें बाढ़-सी हो आती हैं।

‘मैडम!’ तभी न जाने कहां से वहां पुनीत आ जाता है।

‘ओह पुनीत!’ अबला-सी तुम याचक

बन जाती हो—‘प्लीज़!’

‘साँरी मैडम!’ पुनीत वहां से हट जाता है।

रात घिर आयी है बेंच से उठकर तुम ऊपर डाकबंगले की ओर जाने लगती हो। चढ़ाई वाले मार्ग को तय करती हुई एक बार पलटकर तुम नीचे देखती हो। झील में पड़ते बिजली के लट्टुओं के प्रतिबिंबों को देखकर लगता है, जैसे तारों-भरा एक दूसरा ही आकाश नीचे धरती पर उतर आया हो। बोट-क्लब से आती बेंड की धुन जैसे तुम्हारे कानों में लावा घोलने लगती है।

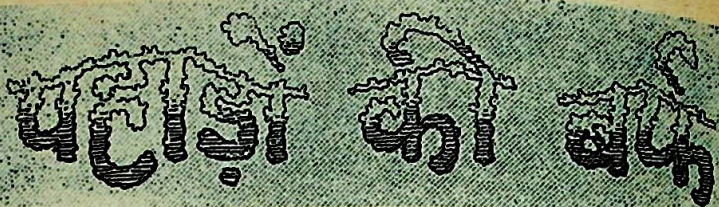
किसी प्रकार ऊपर डाकबंगले के लान में आकर तुम रात की बांहों में घिरी हुई झील की नगरी को देखने लगती हो। रात की वह दुल्हन तुम्हें फूटी आंख भी नहीं सुहाती। तुम्हारा मन होता है कि उस नगरी में कोई ऐसा दैविक प्रकोप आ जाये, जिससे वह नीली झील की नगरी पथरीले पठार में परिवर्तित हो जाये। तुम बिनाशा-कांक्षी हो जाती हो। उसी मनःस्थिति में लान से तुम कटी डाल-सी विस्तर पर आ लुढ़कती हो।

‘मेम साव, खाना लगाऊं?’ चौकीदार किचन से ही पूछता है।

‘नहीं काका, भूख नहीं है।’ कहकर तुम उस अंधेरे बंद कमरे में अपने अभिशप्त जीवन पर सिसक पड़ती हो। जैसे सिसकना ही तुम्हारी नियति हो।

—एफ ५०, विद्याविहार, पिलानी-३३००३१





अहमद नदीम कासमी

कलम को कागज पर झुकाया ही था कि आवाज आयी—‘खुदा की राह में एक आना दे दे, तेरा बच्चा खुश रहेगा।’

मैंने कलम वापस कलमदान में रख दी। अगर उसकी कीमत चालीस-पचास रुपये न होती तो मैं उसे जरूर पटक देता।

सुबह से बारह-एक बजे तक के सोच-विचार के बाद मुझे मजे का एक वाक्य याद आया था; मगर भिखारिन की आवाज ने उसे नोच लिया। जैसे फूंक मारने से चिराग की लौ गायब हो जाती है।

क्या ही अच्छा-सा वाक्य था। मेरी कहानी शुरू से ही पढ़ने वालों को जकड़ लेती!

नौकर मकान की तीसरी मंजिल पर था। भिखारिन की आवाज उस तक शायद न पहुंच सकी थी; वरना मेरे आदेश के अनुसार भिखारिन को उस तरफ से निकल जाने का हुक्म तुरंत मिलता। भिखारिन भी एक ही आवाज लगाकर शायद चली गयी।

यकायक खोये हुए वाक्य के कुछ शब्द गड़गड़ होकर मेरे जेहन में उभरे। एक जलती हुई दियासलाई बुझे हुए चिराग की

तरफ बढ़ी। उसका रंग पहाड़ों की बर्फ की तरह साफ था—मगर नहीं, मैंने बर्फ के रंग में कोई और रंग भी मिलाया.....

‘खुदा की राह में एक आना दे दे, तेरा बच्चा खुश रहेगा।’

ओह! तो वह अभी तक वहीं नीचे दरवाजे के पास खड़ी थी। दियासलाई धुएँ की एक हल्की लकीर छोड़कर बुझ गयी और मैंने पुकारकर कहा—‘घर पर कोई नहीं है।’

‘तुम तो हो बाबू, तुम ही खुदा की राह में एक आना दे दो न!’

मैं चुप रहा। भिखारियों को मुंह लगाता मेरी आदत नहीं। उनके पास सबसे बड़ी दलील भूख होती है और मुझे उस दलील का कभी कोई जवाब नहीं सुझ सका।

कुछ देर के बाद जेहन की धुंध में हरकत पैदा हुई और कहानी के शुरू का वाक्य जैसे आंखें मलने लगा—उसका रंग पहाड़ों की बर्फ की तरह.....

‘दे दो ना एक आना तुम ही।’ अब भिखारिन की आवाज जैसे ठीक मेरे सिर पर गूँजी। मैंने देखा तो वह मेरे कमरे के दरवाजे में खड़ी थी। और उसका पूरा

माँ

बड़ बाहर सीढ़ी पर था। मुझे उसका केवल एक हाथ नजर आया, जिससे उसने किवाड़ को पकड़ रखा था। उस हाथ का रंग पहाड़ों की बर्फ का-सा था। चमकता हुआ सफेद, मगर कहीं-कहीं हल्की-सी नीलाहट देता हुआ। यह शायद उसकी रंगों का रंग था, मगर उसके नाखूनों ने मुझे ज्यादा सोचने का अवसर नहीं दिया। ये नाखून मैल से भरे हुए थे। फिर मेरे देखते ही देखते उसकी उंगलियों में हरकत पैदा हुई। तो ये ऐसी भिखारिन है कि भीख मिलने तक का समय गुजारने के लिए किवाड़ पर ढोलक बजाने लगी है। क्या ऐसी को भीख देना उचित है? मगर क्या इतने सफेद हाथों को भीख मांगने पर मजबूर कर देना उचित

है? लेकिन क्या हर मजबूरी उचित हो सकती है?

मैंने तकिये के नीचे से एक आना उठाया और कहा—‘ये लो।’

‘इधर फेंक दो बाबू।’ वह बोली।

न जाने क्यों, मुझे भिखारिन की इस हरकत पर गुस्सा-सा आने लगा था। मैंने आना फेंकने के बजाय पटक दिया। वह आना किवाड़ पर बजकर कमरे के अंदर दहलीज से कोई एक गज की दूरी पर रुका। भिखारिन ने सीढ़ी पर से ही झुककर हाथ बढ़ाया। उसके चेहरे का एक रुख मेरे सामने आया। मगर यह सब कुछ एक सेकंड के तीसरे हिस्से में हुआ। मुझे ऐसा लगा, जैसे एक विजली मेरे कमरे में कौध-



अनुवादक : जाहिद इकबाल

कर उड़ गयी है। मुझे दरवाजे तक पहुंचने में कुल दो सेकंड लगे होंगे। मगर सीढ़ियां खाली थीं। मैं पलटकर तेजी से गली में खुलने वाली खिड़की के सामने आया। वह गली के नुक्कड़ पर जा रही थी। नंगे पांव थी। मैंने लाल रंग की शलवार पर उसने काले रंग की कमीज पहन रखी थी और उसके सिर पर शलवार ही के रंग की चादर थी, फिर वह दूसरी गली में मुड़ गयी।

और मैं कलम उठाकर अपनी कहानी का पहला खोया हुआ वाक्य ढूंढने लगा।

मगर चिराग की बुझी हुई लौ पहले किसी को मिली है, जो मुझे मिलती? ऐसा महसूस होने लगा, जैसे यही एक खूटी थी, जिस पर मुझे विचारों का सारा गट्टर टांगना था और अब यह खूटी टूट गयी है तो मेरा हर विचार पत्थर बन गया है और मैं पत्थरों के इस बोझ तले दुहरा हुआ जा रहा हूं।

फिर रद्दी खरीदने वाले ने गली में एक सांस में कोई बीस शब्द का वाक्य, तेज आवाज में अदा किया और मुझे उस पर गुस्सा आ गया। यह रद्दी वाला पिछले कई वर्ष से हर दिन एक-दो बार उस गली में से गुजरता था और मेरे मकान के सामने ज़रूर रुकता था। वह जानता था कि मैं पढ़ने-लिखने वाला आदमी हूं और ऐसे आदमियों के यहां रद्दी मिल जाती है। मैं इस आवाज का आदी था। कहानी लिखते हुए भी मैंने यह आवाज कई बार सुनी थी और मेरी कहानी की खानी में इसने कभी कोई रूक़ावट नहीं पैदा की थी। मगर नवनीत

आज मुझे रद्दी वाले पर इतना गुस्सा आया कि मैं कलम रखकर उठा। खिड़की में से देखना चाहा, मगर मेरी नज़र सबसे पहले गली के नुक्कड़ पर पड़ी। मैं खयालों में गुम हो गया भिखारिण दूसरी गली में मुड़ रही थी। मैं जैसे उसके पीछे भागा। मैं कितनी गलियों और सड़कों को तय करता हुआ न जाने कहां जा रहा था। न जाने मैं ट्रैफिक से कैसे बचा और चौराहे को कैसे पार किया। न जाने मैंने कितने सिगरेट कब जलाये और कहां फेंके। फिर जब मैं माल रोड के एक चौक में ट्रैफिक सिग्नल की लाल बत्ती देखकर रुका, तो मुझे पहली बार एहसास हुआ कि मैं कहीं जा रहा हूं।

'क्यों भई, मैं कहां जा रहा हूं?' मैं खुद से पूछा।

मैं इश्क की सारी समस्याओं और तमाम मंजिलों से आगाह हूं। मैं जरा-सी बात पर रो भी दिया हूं और बड़े-बड़े दुखों को पी भी गया हूं, मगर मुझे ऐसी घृणा का अनुभव कभी नहीं हुआ था कि एक मैली-कुचैली बदबूदार और उजड़ु भिखारिण की सिर्फ एक नीमहखी झलक ने मेरे खून को उवाल दिया था और मैं वहां जा रहा हूं जहां से अगर वापस न आ सका तो शहर के बच्चे मुझ पर पत्थरों की वर्षा कर देंगे। तो क्या यह सच है कि हर आदमी में थोड़ा-सा जनून जरूर होता है? मगर मेरा यही जनून क्या कम है कि जब लोग दोनों हाथों से धन-दीलत समेट रहे होते हैं तो मैं कहानी लिख रहा होता हूं! मुझे जनून की इसी

भाव

मात्रा पर संतुष्ट रहना चाहिये।

मैं घर लौट आया। मैंने रात का एक बड़ा भाग अपनी कहानी का पहला वाक्य सोचने में काट दिया। मगर जहाँ पहाड़ों की बर्फ मेरे जेहन में आयी, वहीं भिखारिन ने सीढ़ी पर से हाथ बढ़ाकर इकट्ठी उठायी।

मैं सुबह ठीक समय पर उठा। फिर अपने कमरे में कुछ इस तरह आ बैठा, जैसे सूरज निकलते ही दोपहर हो गयी है और भिखारिन अब आती ही होगी। इस समस्या पर देर तक मेरे और मेरे जेहन के बीच बहस होती रही। मैं कहता था कि देखो तो मेरे हाथ में कलम है, मैं तो कहानी लिखने बैठा हूँ, मगर मेरा जेहन कहता था कि नहीं, तुम झूठे हो, तुम तो भिखारिन का इंतजार कर रहे हो। उस समय तो मैंने उलटा अपने जेहन को झूठा साबित कर दिया था। मगर जब दोपहर को भिखारिन आयी तो मुझे मालूम हुआ कि मैं उसी का इंतजार कर रहा था।

आवाज आयी—‘खुदा की राह में एक आना दे दे, तेरा बच्चा खुश रहेगा।’

और मैंने सोचा, क्या किसी शायर ने कभी इससे अच्छा शेर भी कहा है? अजीब बात है कि न तो मैं पलंग पर से कूदकर उठा और न मैंने कलम को कलमदान में रखा। मैंने सिर्फ इतना कहा—‘अरे, तू आज फिर आ गयी!’

वह कुछ नहीं बोली। मैंने देखा तो वह मेरे कमरे के दरवाजे में कुछ इस तरह खड़ी थी कि उसका पूरा घड़ बाहर सीढ़ी

पर था। मुझे उसका सिर्फ एक हाथ नजर आया, जिससे उसने किवाड़ को धकड़ रखा था। उस हाथ का रंग पहाड़ों की बर्फ का-सा था और मुझे ऐसा लगा, जैसे वह कल से यहीं खड़ी है—वह सृष्टि के आरंभ से यहीं खड़ी है।

यकायक मैं डरा। कहीं वह किवाड़ पर ढोलक न बजाने लगे। कल मैंने उसकी उंगलियों की हरकत से अपनी हालत महसूस की थी। भीख इस तरह नहीं मांगी जाती। भिखारिन को भीख सामने आकर मांगनी चाहिये। भिखारिन को कम से कम भीख मांगने का ढंग तो आना चाहिये और फिर न जाने मैंने क्या सोचा और मेरे मुंह से निकला—‘ले.....ले जा।’

‘दे’ वह बोली—‘तेरा बच्चा खुश रहेगा।’

एकदम वह सारी की सारी अंदर आ गयी। मैंने एक आना इतनी तेजी से उसकी गुलाबी हथेली पर गिरा दिया, जैसे वह आने के इंतजार में जरा देर और इसी तरह मेरे सामने खड़ी रही तो मैं खिड़की से कूद जाऊंगा।

मगर वह आना लेकर भी उसी तरह खड़ी रही। मैंने घबराकर उसकी तरफ देखा, तो वह शोल्फ पर रखे हुए मिट्टी के एक खिलौने को देख रही थी।

मैंने एक क्षण में इसका कुछ इस तरह परीक्षण किया कि यदि कोई कभी नजर आये तो इसे अपने जेहन में से तोचकर फेंकने में आसानी हो। मगर यकायक उसने मेरी तरफ देखकर पूछा—‘हिरन है?’



चित्र : पंकज गोस्वामी

‘नहीं, हिरनी है।’ मैंने कहा।

वह फिर कुछ नहीं बोली। चुपचाप कमरे से निकल गयी। मैं जल्दी से खिड़की पर आया। वह एक-एक आने को बच्चों की तरह उछालती हुई जा रही थी, फिर वह दूसरी गली में मुड़ गयी।

और मुझे अपने आप पर हंसी आ गयी। हंसते हुए मैंने कलम उठायी और कुछ इस तरह लिखने बैठ गया, जैसे आज कहानी का एक पहला वाक्य ही क्या अंतिम वाक्य भी लिखकर उठूंगा।

‘उसका रंग पहाड़ों की बर्फ की तरह साफ था।’ ‘उसका रंग उन पहाड़ों की बर्फ की तरह साफ था, जिन पर...’ ‘उसका रंग पहाड़ों की बर्फ की तरह साफ था जो...’ ‘उसका रंग पहाड़ों की बर्फ की तरह इस हृद तक साफ था कि...’

एक मौज आयी और किनारे को अपनी यादों की नमी देकर पलट गयी। इतनी नवनीत

गुलाबी, इस कदर गुलाबी, इस हृद तक गुलाबी, हथेली पर सिर्फ एक आना चमका और मैंने अपने आपको गाली दे दी—बड़ा बनता है। इस हाथ की कीमत क्या सिर्फ एक आना है! लानत है तुम पर और तेरी हुस्न-परस्ती पर।’

दूसरे दिन की दोपहर तक का समय मैंने उस मुजरिम की तरह बिताया, जो जुर्म करने के बाद अपने अंदर झांके तो उसका जमीर उस पर थूक दे। इन दिनों तो एक आने में एक रोटी भी नहीं मिलती।

मगर सारे शहर में मैं, सिर्फ मैं ही तो नहीं हूँ, जिससे इसने एक आना लिया होगा। न जाने पूरे दिन मैं इसने कितनों के सामने हाथ फैलाये होंगे? तो क्या जिस तरह वह मेरे पास आयी है, उसी तरह दूसरों के पास जाती होगी? सारा शहर मुझे दुश्मन नजर आने लगा। अच्छा तो जेहन में निरापन इस तरह पैदा होता है।

मगर आज की रात तो एक अजीब हालत थी। इधर एक चेहरा सामने आता उधर एक शोला-सा भड़कता। फिर घुबो-सा छा जाता। फिर पत्थर-से बरसते। मैंने फैसला किया, कल सारा दिन घर से बाहर रहूंगा, किसी डाक्टर से सलाह लूंगा।

मुबह देर से आंख खुली। नहाने और नाश्ता करने में भी देर हो गयी। अगर की मंजिल पर बैठकर पेपर पढ़ना शुरू किया, तो दोपहर तक पढ़ता रहा। जब नौकर ने आकर कहा कि पड़ोसी कुछ देर के लिए पेपर मांग रहा है, तो मैंने वक्त

मार्ब

देवा। यकायक किसी चीज ने जैसे मेरे अंदर उछलकर मुझे कमरे से बाहर कर दिया और मैं सीढ़ियों पर से इतनी तेजी से उतरा कि बच्चे भी इस तरह उतरते नहीं होंगे। अपना कमरा खोलकर मैं सीधा खिड़की के पास गया और गली में झांका। दो बच्चे सिगरेट की डिब्बियों से मकान बना रहे थे और गली में से एक बुढ़िया जा रही थी। मैं ऊपर के कमरे की तरफ लपका और नौकर से पूछा—‘कोई मुझसे मिलने तो नहीं आया था?’

‘आप सो तो नहीं रहे थे साहब कि कोई आता तो मैं नहीं बताता।’ वह बोला—‘बस सुबह-सुबह एक सन्जो वाला आया था, फिर पेपर वाला आया था, और अभी-बभी मांगने वाली आयी थी।’ मुझे अपनी तरफ घूरता देखकर वह बोला—‘कोई भी तो नहीं आया था साहब, क्या आपने किसी को समय दे रखा था?’

मैं कोई जवाब दिये बिना पलट आया। वह आयी थी और चली भी गयी, तो उसकी अहमियत कुछ भी नहीं थी कि उसके आने के बावजूद कोई नहीं आया था।

क्या फरिश्तों को अच्छा लगता है कि बाज के दिन को भी मेरी जिंदगी में शुमार करें।

सीढ़ियों पर से धीरे-धीरे उतरता हुआ मैं गली में आ गया। फिर दूसरी गली से होता हुआ सड़क पर आया और दूर-दूर तबड़ें दौड़ाया कि शायद वह किसी रास्ता चलते हुए का दामन थामे खड़ी हो। शायद

किसी दुकान के सामने पड़ी हुई सड़ी चीजों में से बहुत कम सड़ी हुई चीजें चुन रही हो। शायद वह किसी पेड़ के सहारे खड़ी हो कि आज उसकी लगी-बंदी आमदनी में से एक आना कट गया।

सड़क पर पहले की तरह चहल-पहल थी। जैसे कुछ हुआ ही नहीं था। और सच में कुछ भी नहीं हुआ था। यह कितनी अजीब बात है कि इन्सानों के अंदर के तूफान उनके अंदर ही चलते रहते हैं। हर इन्सान के अंदर से उसका तूफान बाहर आ जाये तो कैसी क्यामत हो जाये।

मैं वापस अपनी गली में आया तो बच्चों ने सिगरेट की डिब्बियों से पांच-मंजिला मकान बना लिया था और मेरे साथ वाले मकान के दरवाजे पर एक औरत रही वाले के हाथ पुरानी कापियां बेच रही थी।

और वह मेरे मकान की दहलीज पर बैठी थी। तो मेरी भीख इसके लिए इतनी अहम है? वह मुझे देखकर मुस्करायी और बैठे-बैठे एक तरफ हटकर रास्ता दे दिया। उसके पांव इतने मंले थे, जैसे वह गलती से किसी दूसरे के पांव लगाकर चली आयी हो। हां, आज उसके हाथ धुले हुए थे।

‘अच्छा तो आज तुम्हारे हाथ बहुत साफ हैं।’ उसने अपने हाथ गोद में छुपा लिये। जैसे कहीं से चुरा लायी हो और अब पकड़ी गयी हो। मैं ऊपर लपका और अपने कमरे का दरवाजा खोलकर मैंने उसे बुलाना चाहा, मगर फिर रुक गया। जैसे मेरे मुंह से एक भी शब्द निकला तो सारे शहर में

गूँज जायेगा। और फिर मैंने इशारे से ऊपर आने के लिए कहा और वह इधर आने लगी। मगर मुझे दरवाजे में खड़ा देखा तो वह सीढ़ियाँ छोड़कर रुक गयी। उसने भौंहेँ उठाकर मेरी तरफ देखा और मैं कुछ इस तरह एक तरफ हट गया, जैसे न हटा तो कहीं नीचे डूब जाऊँगा।

मैंने अपने तकिये के नीचे से एक अठन्नी उठायी और उसकी तरफ बढ़ा दी। उसने हाथ फैलाया, मगर अठन्नी देखकर हाथ खींच लिया—‘नहीं बाबू, मेरे पास छूट्टा नहीं है।’

‘तुम अठन्नी ले लो।’ मैंने उससे भोलेपन से खुश होकर कहा।

‘पूरी?’ उसने पूछा।

‘हां, तुम्हारे पास छूट्टे जो नहीं हैं।’

एक आना लेने वाली भिखारिन के लिए अठन्नी ऐसी ही है, जैसे एक कहानीकार की एक लाख की लाटरी निकल आये। सो मैंने तय कर लिया कि उसने अठन्नी के लिए हाथ फैलाया तो मैं उसे कलाई से पकड़ लूँगा और जाहिर है, उचित ढंग से पकड़ूँगा। क्योंकि मेरे पूरे आठ आने उसके पास होंगे। फिर जब मैं उसकी कलाई अपने हाथ में ले लूँगा तो उससे कहूँगा—मैं उससे कहूँगा अभी मेरी कहानी का पहला वाक्य पूरा भी नहीं हुआ था कि देखा वह जा रही है।

‘अठन्नी तो लेती जाओ।’

‘ले तो ली बाबू।’ वह जाते हुए बोली। मुझे एक झटका-सा लगा। वह अठन्नी ले चुकी थी, लेकिन मुझे पता नहीं चला था।

नवनीत

फिर एकदम मुझे ऐसा लगा, जैसे वेग कुछ खो गया है। वह अठन्नी के बलात् मेरी कहानी का पहला वाक्य भी सापने गयी थी। वह मुझे सिर्फ अपना चेहरा दे गयी थी, जो उसके जाने के बाद दरवाजे में से झाँकता रहा। वह बोझिल थोड़ी देर से दिखाई देने लगा, फिर धुंधला हो गया। पाँचवें दिन तो वह विलुप्त गायब हो गया।

मैंने छठे और सातवें दिन शहर की सड़कें लाइने रियों में यूनानी मूर्तिकला पर किताबें हुई किताबें छान मारीं, मगर मुझे वीनस साइके और अफ्रोदिते के चेहरों में वह चेहरा नजर न आया, जो इन सबसे किसी न किसी तरह से भिन्न था। शायद भिखारिन के नयनों के तिल के उभार ने उसकी नाक के दोनों तरफ वीनस की नाक के मुकाबले में ज्यादा सुंदरता पैदा कर दी थी, या शायद साइके की गरदन भिखारिन की गरदन के मुकाबले में छोटी थी और मंली थी, या मुमकिन है अफ्रोदिते के मुकाबले में भिखारिन के ओंठों के गोशे ज्यादा गहरे, ज्यादा जज्बाती थे। मैं इस बारे में कुछ यकीन कह नहीं सकता। हाँ, भिखारिन की मुद्रा मुझे याद थी, मगर जब मैं उसकी किताबें आँखों या सिर्फ ओंठों के बारे में सोचता तो सारा चेहरा वर्फ की तरह पिघलने लगता।

सातवें दिन शाम के करीब मुझे यह जाहिर हुआ कि मैं एकदम बेगाने ज़िंदगी गुजार रहा हूँ। चेहरे गालिब के नहीं होते कि जब चाहो उठाकर पढ़ लो।

वे तो सामने आते हैं और गुजर जाते हैं।
 चेहरे तो लमहे हैं और लमहे कब वापस
 आयें हैं! तुमने एक चेहरा देखा। माना
 कि यह बेहद हसीन है, बेहद अजीब चेहरा
 था। लेकिन जैसे यह चेहरा, जिसके बारे में
 तुम सोच तक न सकते थे कि किसी औरत
 का ऐसा चेहरा भी होगा, यकायक तुम्हारे
 सामने आया और गुजर गया। इसी तरह
 और कई चेहरे आते रहेंगे और गुजरते
 रहेंगे। और अगर तुम चेहरे पर से नजरें
 हटाना भूल गये तो आखिरकार एक दिन
 तुम्हें मालूम होगा कि तुम्हारे हमदर्दों ने
 तुम्हें पागलखाने भिजवा दिया है।

हफ्ते में यह पहली रात थी, जब मैं
 सकून से सोया था। जब उठा तो सूरज
 काफी चढ़ आया था। नाश्ते के बाद मैंने
 पहला काम यह किया कि अपनी कहानी का
 पहला वाक्य लिखने बैठ गया। जलनी हुई
 एक दियासलाई बुझे हुए एक चिराग की
 तरफ बढ़ी और पहाड़ों पर बर्फ जमने लगी।
 हर तरफ हजारों आँदने लग गये, जिनमें
 हजारों सूरज चमक रहे थे। फिर चका-
 चौक के इस तूफान में एक चेहरा उभरा और
 आवाज आयी—‘ओ सखी (दाता)।’

मैं पलंग पर से कूदकर उतरा और दर-
 वाजे में झाँका। फिर बिजली की-सी तेजी
 से सीढ़ियाँ उतरकर गली में पहुँच गया।
 फिर दूसरी गली में चला गया, फिर सड़क
 पर आ गया। रोजाना की आदत थी, जैसे
 कुछ हुआ ही नहीं।

और सच में कुछ हुआ नहीं था, सिर्फ

इतनी-सी बात हुई कि मोहल्ले के एक तांगे-
 वाले ने मेरे पास आकर हैरत से पूछा—‘क्यों
 बाबूजी, खैरियत तो है.....आप नंगे पांव
 क्यों खड़े हैं?’

तांगेवाले ने मेरे नंगे पांव देख लिये थे,
 मगर मेरे जेहन को जो जखम लग रहा था,
 एक तांगेवाले ने क्या किसी ने भी न देखा
 था। कोई किसी के जखम को नहीं देखता,
 शायद इसलिए कि जखम देखने-दिखाने की
 चीज नहीं है। या शायद इसलिए कि सबके
 अपने-अपने जखम होते हैं।

तो क्या यह जखम जो मेरे जेहन में है,
 किसी और के जेहन में भी है। अगर है तो
 कहां है कि मैं उसे अपने सीने से लगाकर
 जरा-सा रो लूं। इन्सान आखिर जखमों के
 इन नातों को क्यों छिपाये फिरता है, जो
 जाहिर हो तो सब इन्सान प्यार से एक दूसरे
 को लिपटा लें।

तांगेवाले को कोई जवाब दिये बिना मैं
 वापस अपने कमरे में आया और विस्तर पर
 सिर से पांव तक चादर ओढ़कर इस तरह
 लेट गया, जैसे कोसों का सफर करके आ रहा
 हूं। मैंने आँखें बंद कर लीं और अपने जेहन
 से रुजू किया, मगर इसने भी आँखें बंद कर
 रखी थीं। सब सो रहे थे। चारों तरफ
 डरावना सन्नाटा था। आज रद्दी वाला भी
 कहीं मर गया था।

मैंने ऊँचने की हालत में देखा कि भिखा-
 रिन मेरे कमरे के दरवाजे पर खड़ी है और
 कह रही है—‘खुदा की राह में एक आना दे
 दे। तेरा बच्चा खुश रहेगा।’

मैंने चादर नोचकर फेंक दी। वह दर-वाजे पर सचमुच खड़ी थी और कह रही थी—‘खुदा की राह में एक आना दे, दे सबी, तेरा बच्चा खुश रहेगा।’

मैंने कुछ इस तरह कहा, जैसे वह मेरी बीबी है। ‘तुम इतने दिनों से कहां थीं?’ मैंने डांटकर पूछा—‘क्या तुम्हें मालूम है कि आज तुम पूरे एक हफ्ते के बाद मेरे पास आयी हो!’

मेरे कहने का असर केवल उसकी आंखों पर हुआ। उन आंखों में एक अजीब-सी चमक पैदा हुई। वह चमक जो बेहद प्यार, बेहद गुस्से या डर की हालत में पैदा होती है।

‘वोलो, कहां थी तुम?’ मैं कड़का।

‘मैं यहीं थी बाबू, और कहां थी!’ वह बच्चे की तरह बोली।

‘तो फिर तुम एक हफ्ते तक आयी क्यों नहीं?’

‘अठन्नी जो ले गयी थी बाबू, एक आना उस दिन का और बाकी सात आने सात दिनों के। आज आठवां दिन था तो आ गयी।’

बहणियों की तरह मैंने विस्तर पर बैठकिया उठाकर दूर फेंक दिया और उसके नीचे पांच-पांच, दस-दस रुपयों के जितने भी नोट रखे थे, उन्हें मुट्ठी में लेकर भिन्न-भिन्न की तरफ बढ़ाया। उसकी कलाई को लकड़ी की तरह पकड़कर मैंने वे नोट उसकी मुट्ठी में ठूस दिये और चीखा—‘इस रुपयों में जितने भी आने हैं, उतने दिनों के अगर तुम एक भी दिन पहले यहां आयी हो टांगें तोड़ दूंगा जाओ, तुरंत निकल जाओ।’



शब्दों का उपहार

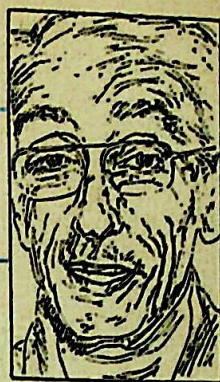
उस दिन मन भर आया। मैं एक अमरीकी उपन्यास का अनुवाद कर रही थी कि उसमें कुछ शब्द ऐसे आये, जो शब्दकोश में न मिले। मेरी मदद के लिए अमरीकी दूतावास के श्री हरवंश सिंह ने मुझे एक शब्दकोश भेजा, जिसके पहले पृष्ठ पर उन्होंने लिखा था: ‘टु अमृता प्रीतम, विद आल द गुड वड्स फ्रॉम दिस डिक्शनरी।’ (अमृता प्रीतम को इस शब्दकोश में के तमाम अच्छे शब्दों के साथ।)

मेरे समकालीन लोग शब्दकोश में से बुरे से बुरे शब्द चुनकर मेरे लिए इस्तेमाल करते रहे हैं; पर सभी अच्छे शब्द चुनकर मुझे देने का भी किसी को खयाल आ गया। जब कानों को बुरे शब्द सुनने की आदत पड़ गयी हो, तो एक भी अच्छा शब्द देखकर कान बँके चुंघिया जाते हैं।

—अमृता प्रीतम



गहरा चिंतन, पैनी उक्ति



जाक कोस्त्यू फ्रांस के अग्रणी आयुमेंटरी फिल्म-निर्माता हैं। वे औद्योगीकरण के हमले से प्रकृति और पर्यावरण के बचाव के आंदोलन के भी अग्रज हैं। प्रकृति और उसकी संपदा की रक्षा उनकी फिल्मों और टेलिविजन कार्यक्रमों का मूल स्वर है। फ्रांस में नये परमाणु ऊर्जा संयंत्रों की स्थापना का वे तीव्र विरोध कर रहे हैं। उनके नेतृत्व में प्रकृति-प्रेमियों ने 'ईकालाजी ७८' नामक दल बनाकर पिछले साल आम चुनाव लड़े। सीटें तो उन्हें बिलकुल नहीं मिलीं, मगर १० प्रतिशत मत उनके पक्ष में पड़े, जिसने राजनीतिज्ञों को चौंका दिया। इस सफलता का श्रेय मुख्यतः कोस्त्यू को था।

कोस्त्यू आज फ्रांस के ही नहीं, समूचे पश्चिम यूरोप के एक प्रमुख टेलिविजन-व्यक्तित्व हैं। नीचे उनकी कुछ उक्तियां दी जा रही हैं, जो उनके गहरे चिंतन और पैनी अभिव्यक्ति का आस्वादन कराती हैं:

● मेरा खयाल है, अगर अमरीका में टेलि-

विजन होता तो यूरोप में हिटलर न हुआ होता। जब भीड़ जमा होती है और हिटलर भाषण देता है, हम सब कहते हैं—'जय !' जब हम चार या पांच आदमी अपने घर के एकांत में बैठे होते हैं और वे छोटी मूर्छें और पागलाना अदा टेलिविजन पर देखते हैं, तो असली आदमी का हमें पता चल जाता है। यही कारण है कि द गोल (चुनाव) हार गये। वे टेलिविजन पर बोले और लोग देख सके कि वे (द गोल) तो चुक गये आदमी हैं; और लोगों ने उनके खिलाफ वोट डाले।

● एजियन समुद्र में (डूबे महाद्वीप अटलांटिस की) पुरातत्त्वीय खोजयात्रा से मैं इस तथ्य से अभिभूत होकर लौटा कि धरती की तमाम सभ्यताएं जिनका हमें पता है, पिछले ६,००० वर्षों में हुई हैं। ताम्रयुग से आज तक के इस छोटे-से अरसे में सैकड़ों सभ्यताएं विकसित हुईं और विलुप्त हो गयीं। वे विलुप्त हुईं युद्धों और क्रांतियों में, ब्रह्मा-

हिंदी डाइजेस्ट

डीय दुर्घटनाओं और भूगर्भीय उथल-पुथलों से, कत्लेआम और प्रव्रजनों से। हमारे नाभिकीय उद्योग के खतरनाक उत्पादन जितने समय तक हमारे बीच रहेंगे, उससे सौ गुना कम अरसे में समूचा मानव-इतिहास हो गुजरा है।

● इकारस की तरह अगर तुम्हारे पंख भी मोम के बने हैं, तो सूरज के बहुत निकट न उड़ो।

● अधिकांश लोगों को जीवन में प्रतिदिन बहुत ही जटिल सूचनाओं से काम लेना पड़ता है और अगर वे उन्हें ठीक से न समझें तो उनके प्राणों पर आ बन सकती है। यह दलील कि परमाणु-ऊर्जा संबंधी मामले बेहद

जटिल हैं, न्यायपूर्ण नहीं है। हम यह आम नहीं करते कि आम जनता परमाणु-ऊर्जा उद्योग के काम के व्योरो पर चर्चा को, ठीक वैसे ही जैसे कि हम उससे युद्ध में संचालन की आशा नहीं करते। मगर मैं समझता हूँ कि हमारे विजली और ऊर्जा उद्योग की कुल योजना-नीति पर सवाल उठाने का औचित्य और सामर्थ्य दोनों आम जनता के पास है; ठीक वैसे ही जैसे कि युद्ध तय करने का उसे हक है कि हमें युद्ध में पड़ना है या नहीं।

● अगर रूसियों ने अंतरिक्ष में पहला कृत्रिम उपग्रह न भेजा होता, तो अमरीका कभी चांद पर न जाते।



प्रशंसा की मूर्ख

एक कोयल ने मोर से कहा—‘जब मैं गाती हूँ, तो लोग मेरी आवाज की सुंदरता और मिठास का आनंद लेने के लिए जमा हो जाते हैं। मनुष्य वैशक हत्यारा है, पर सुंदरता का पारखी भी है।’

मोर ने उसकी बातें सुनीं, तो सोचने लगा कि लोगों को इकट्ठा करके अपने पंखों की सुंदरता दिखाये और उनसे प्रशंसा पाये। उसने अपने मन में कहा—‘भला कोयल के पास मेरे पंखों जैसी सुंदर चीज क्या हो सकती है।’

वह एक ऐसी जगह गया, जहां लोगों की भीड़ लगी हुई थी, और उनके सामने अपने पंख फैलाकर नाचने लगा। वह हर किसी के सामने जाता और अपने पंख उसकी आंखों के बिलकुल पास ले जाकर उनका प्रदर्शन करने लगता।

इस पर एक आदमी ने कहा—‘इस मोर में कोई गड़बड़ लगती है, जो यह एक जगह खड़ा नहीं रह सकता। शायद इसे कोई बीमारी हो गयी है।’

सब लोगों ने मोर को पकड़कर मार डाला, ताकि वह बीमारी उनके मुर्गे-मुर्गियों में न फैल जाये।

—इबरीस शर्मा



‘मम्मी!
मैं ३ महीने का हो चुका हूँ!’



‘जी हाँ, अब देना शुरू कीजिए
फैरेक्स®

मुन्हे के ठोस आहार की शुरुआत के लिए
डॉक्टरों की सिफारिश है **फैरेक्स®**

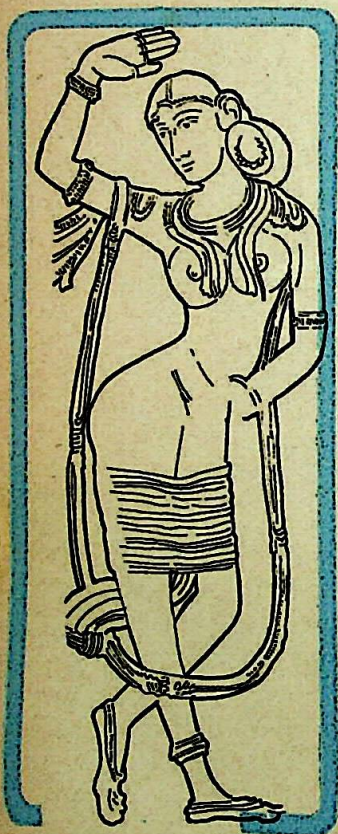
मुन्हे का आदर्श ठोस आहार
जल्द और सर्वांगीण
विकास के लिए



लिटोस-GLP.65-1510 HI

अंतःस्रोत

— अंचल —



अनुकृति : वी. एन. ओके

नहीं पूरी पड़ीं सारी दिशाएं एक अंजलि को
अधूरी रह गयी मेरी विधा एकांत पूजन को
बंधी ओंकार की अविराम शैलाकार बांहों में
नहीं पूरी हुई कोई कड़ी मेरे समर्पण की
समूचा सूर्य भी आजन्म पूजादीप की मेरे
न बन पाया अकंपित चतिका का शुभ्र नीराजन
जयी, अपराह्ण-रंजित, स्तब्ध मेरी आयु-गायत्री।
न कर पायी अभी तक अंश-भर उस दीप्ति का वंदन।

विकलता, व्यर्थता इस परिक्रमित चक्रांत जीवन को
तुम्हीं जानो, न जानो, और कोई तो न जानेगा
किया मैंने नहीं आह्वान करुणा का तुम्हारी जब
क्षमा की पात्रता सुझाई न कोई और मानेगा
रहा विश्वास भावातीत मन की गतिमयी लय-सा
नियति मेरी रही केवल उसी संपूर्ति में पकती
मुलाकर स्वप्नगर्भा प्रेरणा की मुक्त राहों को
रही अपनी क्षुभित आराधना की दीनता तफ्ती।

सदा टूटा किये सब अर्थ मेरे, शब्द तक मेरे
तुम्हारी भव्यता की दिव्य रेखाकृति न बन पायी
अव्यंजित ही सदा जो रह गयी अभिशप्त प्राणों में
वही असहाय मेरी भावना निस्पंद पथरायी
तुम्हारी सर्वचेतन, सर्व-आभासित असीमा का
न कोई पारदर्शी बोध मेरी प्रार्थना पाती
अथाही, चिरविदारक शून्यता में मूक, जड़-जैसी
निपट असमर्थ मेरी मुग्धता अफलित रही जाती।

—दक्षिण सिविल लाइन, पचपेढ़ी, जबतपुर

रावण-दाह : संकुमारी व भक्ति

संतकुमार टंडन 'रसिक'

श्री इंद्रचंद्र नारण के लेख 'रावणदाह....' (अक्तूबर १९७८) से ऐसा झलकता है कि तुलसी ने रावण के प्रति घृणाभाव भरा।

'रामचरित-मानस' पढ़कर मुझे तो कभी ऐसा नहीं लगा। रावण भी राम का बड़ा 'भक्त' था। उसकी भक्ति शत्रुभाव से भी जो मनोविज्ञान-सम्मत है। वैरभाव में शत्रु के बारे में चिंतन, स्मरण और ध्यान तीव्र हो जाते हैं। अंततः यह कल्याणकारी भी होता है। शत्रु द्वारा विरोध और आक्रमण के आतंक-वश अपने दोषों की ओर ध्यान देने से आत्मसुधार होता है। आत्म-शुद्धि से सद्गति होती है। मृत्यु के समय रावण की भी यही स्थिति थी।

भगवान कहते हैं—'किसी भी भाव में हो, मेरा भक्त मेरी शरण में है। मैं उसका रक्षक हूँ।'

'मानस' के विभिन्न पात्र राम के प्रति विभिन्न भावों से भक्ति करते हैं। 'मानस' का रावण जानता है कि राम असाधारण पुरुष हैं, ईश्वर के अवतार हैं। वह मंदोदरी, अंगद, विभीषण, हनुमान आदि की चेतावनी पर ध्यान नहीं देता। उसके हृदय में राम के हाथों युद्धभूमि में मरकर मोक्ष प्राप्ति की इच्छा है। राम की सहज शत्रुता

वह सीताहरण से मोल लेता है। भोगी रावण तो सीता के प्रति बल-प्रयोग कर सकता था। राम रावण की इस भक्ति का मर्म जानते हैं और उसे परम पद देते हैं।

'विनयपत्रिका' में तुलसी ने कहा है कि जो नाता जिसे भावे, वह उसी नाते से राम को माने—'रीझे बस होत खीझे देत निज धाम रे!' बालकांड में—'भाव, कुभाव, अनख आलसहू। नाम जपत मंगल दिसि दसहू ॥' कुभाव और अनख से आशय है वैर और ईर्ष्या! राम भी कितने उदार हैं—



सीताहरण : एलोरा की एक मूर्ति

हिंदी डाइजेस्ट

सफ़ेदी ऐसी चकाचौंध कि जो भी देखे, वो बोले...



यह है

डेट

डिटर्जेंट
टिकिया की
धुलाई



‘रहत न प्रभु चित चूक किये की । करत
सुरत सी वार हिये की ।’ राम ‘चूक’ पर
चित नहीं देते, वे तो हृदय की बात-अनन्य
भक्ति को-याद रखते हैं ।

‘मानस’ में शूर्पणखा के प्रति रावण का
कथन है :

सुर, नर, असुर, नाग, खग माहीं ।

मेरे अनुचर सम कोउ नाहीं ॥

खरबुधन मो सम बलवंता ।

तिन्हि को मारे दिन भगवंता ॥

रावण स्वयं भी अपनी मुक्ति के बारे में

आश्वस्त है :

सुर रंजन भंजन सहि भारा ।

जो जगदीस लीन्ह अवतारा ॥

तो मैं जाय वैर हठ करऊं ।

प्रभु शर प्राण तजे भव तरऊं ॥

भक्त रावण की स्फोटोक्ति है :

होय भजन नहिं तामस देहा ।

मन क्रम वचन मंत्र हठ एहा ॥

जो नर रूप भूपसुत कोऊ ।

हरिहौं नारि जति रण दोऊ ॥

इसीलिए रावण राम की निंदा और
उपहास करता है, ताकि शत्रु-भावना तीव्र-
तम हो, क्रोध प्रबल हो और शीघ्र ही युद्ध

में मरने से मुक्ति मिले । रावण राम को
तपस्वी कहकर ‘रामनाम’ से मुक्ति की
बात भी कहता है । राम के वाण से आहत
होते ही वह स्वयं रामनाम लेता है, गाली
नहीं देता (‘कहां राम रण हर्ती’) ।

रावण के शव के निकट विलाप करती
मंदोदरी के शब्दों ‘जानउ अमनुज करि....
तुमहि दीन्ह भगवान’ पर ध्यान दें । राम
को प्रणाम करती मंदोदरी रावण के परम-
गति पाने की बात कहती है । वह रावण
के प्रति राम की करुणा से भी द्रवित है ।

संक्षेप में, महाप्रतापी, महाविद्वान्, रावण
राम का महान भक्त था । तुलसी ने उसके
गुण-अवगुणों का वर्णन करते हुए जो चरित्र
उकेरा है, उससे ऐसा बिलकुल नहीं लगता
कि तुलसी का उद्देश्य रावण के प्रति हमारे
हृदय में घृणा का भाव भरना था ।

गोस्वामी तुलसीदास राम और रावण
के ‘हृदय’ को समझते थे । वास्तविक बात
को समझने के लिए हमें भी सहृदय होना
पड़ता है । ‘मानस’ के राम ‘करत सुरत सी
वार हिये की’ हैं तो हमें भी रावण के हृदय
को समझने का प्रयत्न करना है ।

— ११ सरायमीरखा, लोकनाथ, इलाहाबाद-३-



अंधेरा

सुबह की काली करतूत है अंधेरा,

मरे सूरज का ताबूत है अंधेरा,

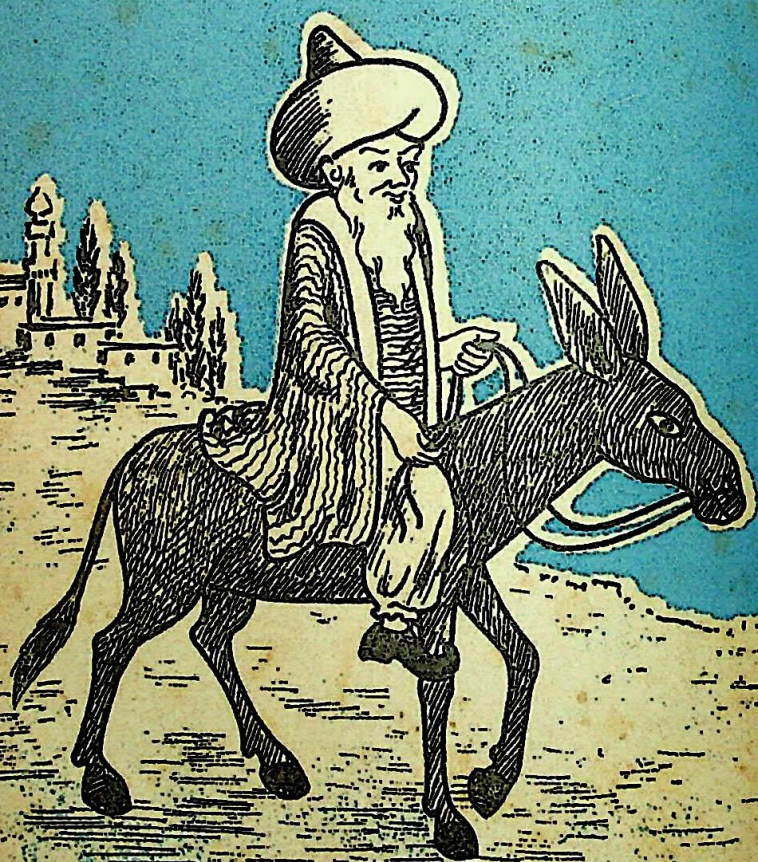
बेवफा आंख का कसूर है अंधेरा,

छांह है आपकी जी हज़ूर अंधेरा ।

— कन्हैयालाल सेठिया



मिलिये फिर से मुल्ला नसरुद्दीन से



अक्सर अपनी सूझबूझ-भरी हाजिरजवाबी से और कभी-कभी अपने भोलैपन और बुद्ध-पन से सबको सदियों से हंसाते आ रहे मुल्ला नसरुद्दीन होजा से आप नवनीत में पहले भी मुलाकात कर चुके हैं, अब होली के पर्व पर एक बार फिर मिल लीजिये। मुल्लाजी के किस्से सुफियों के लिए भले गूढ़ अध्यात्म की सांकेतिक कथाएं हों, मगर रूस से लेकर चीन तक आम आदमी उनमें विशुद्ध हास्य का आनंद पाता है। ऐसे ही विशुद्ध हास्य की ये सरस कथाएं मुल्लाजी के अपने हमवतन मुरात हिकमत की पुस्तक 'वन डे द होजा' से ली गयी हैं।

शंकरप्रसन्न वर्मा द्वारा प्रस्तुत

होनहार बिरवान के होत चीकने पात।
मुल्ला नसरुद्दीन होजा ने वचपन में ही अपनी प्रतिभा का प्रमाण दे दिया था। पिता उन्हें पहली बार पड़ोस के गांव ले गये। दुपहर की नमाज का वक्त हो चला था। मुअज्जिन गांव की मस्जिद की मीनार पर चढ़कर वांग देने लगा।

नन्हे नसरुद्दीन होजा ने तब तक न मीनार देखी थी, न मुअज्जिन की वांग सुनी थी। उसने समझा कि मुअज्जिन मदद के लिए पुकार रहा है। चिल्लाकर उसने नीचे से कहा :

'तुम इतने बड़े हो गये, पर तुममें इतनी भी अकल नहीं है! बिना शाखों वाले पेड़ पर चढ़ बैठे और अब चिल्ला रहे हो कि मुझे उतारो!'

मुल्ला जब नामी-गिरामी आदमी बन चुके थे, एक रोज वे तैमूर लंग के दरबार में बैठे थे। इतने में लूट में लायी गयी चीजों में एक बढ़िया गधा दरबार में हाजिर किया गया। तैमूर को खुश करने के

इरादे से मुल्लाजी ने गधे की प्रशंसा के पुल बांध दिये। बोले—'जहांपनाह, इसके चेहरे से ऐसी बुद्धिमत्ता फूट रही है कि शायद सिखाने पर यह पढ़ना-लिखना भी सीख जाये।'

तैमूर ने उनकी बात पकड़ ली और फौरन अपने सेवक को आदेश दिया कि वह गधे की रस्सी मुल्लाजी के हाथ में थमा दे और मुल्लाजी से कहा—'ले जाओ, महीने-भर में इसे पढ़ा-लिखाकर वापस लाओ।' मुल्लाजी को यह समझते देर न लगी कि



होनहार बिरवान के.....

अगर इस काम में वे विफल रहे तो नतीजा क्या होगा ।

ठीक एक महीने बाद वे उसी गधे की रास थामे तैमूर के दरबार में हाजिर हुए ।

तैमूर ने पूछा कि क्या गधा पढ़-लिख गया है और मुल्लाजी ने 'हां, जहांपनाह !' कहते हुए एक मोटी-सी पोथी गधे के सामने रख दी ।

गधा अपनी जीभ से पोथी के पन्ने पलटता चला गया और तीसवें पन्ने पर पहुंचकर जोर-जोर से रेंकने लगा ।

तैमूर और उसके दरबारी चकित रह गये । तैमूर यह पूछे बिना न रह सका कि मुल्लाजी, यह चमत्कार आपने कैसे किया ?

मुल्ला नसरुद्दीन ने बड़े सन्न के साथ समझाया :

'परवर-दिगार, पहले रोज मैंने मुट्ठी-भर हरी घास पोथी की जिल्द और पहले पन्ने के बीच रखी । गधे ने जिल्द खोलकर घास खा ली । दूसरे रोज मैंने घास दूसरे पन्ने पर रखकर पोथी बंद कर दी । गधे ने उसे खोलकर घास खा ली । फिर मैं प्रति-दिन इसी ढंग से क्रमशः अगले पन्ने पर घास रखता रहा । आज तीसवां दिन था, जब तीस पन्ने पलटने पर वहां घास नहीं मिली तो गधा गुस्से में रेंक रहा है ।'

पड़ोसी के बगीचे में लगे पके फल देखकर एक रोज मुल्लाजी के मुंह में पानी भर आया । वे निसैनी लगाकर दीवार पर चढ़े और फिर निसैनी को दूसरी ओर टिका-
नवनीत

कर पड़ोसी के बगीचे में उतर गये ।

मगर पड़ोसी यह सब देख रहा था । वह लपकता हुआ आया और गरजकर मुल्लाजी से बोला—'क्या कर रहे हो यहां तुम ?'

मुल्लाजी तनिक भी विचलित नहीं हुए बोले—'यह निसैनी बेच रहा हूं।'

'मुझे बेवकूफ समझते हो ? यह भी कोई जगह है निसैनी बेचने की ?'

फौरन मुल्लाजी ने उसे डपटा—'भट-शय, शिष्टता से बोलिये । निसैनी नहीं बेच दनी हो तो मत खरीदिये । मगर निसैनी मेरी है और मुझे अधिकार है कि मैं बेच चाहूं, वहां इसे बेचूं ।'

और निसैनी के सहारे वे दीवार पार कर के वापस अपने घर पहुंच गये ।

एक जमाने में मुल्लाजी की दो बीबिन थीं और जैसा कि स्वाभाविक था, दोनों में चखचख मची रहती थी अपने आपसे मुल्लाजी की चहेती सिद्ध करने के लिए । अंत में मुल्लाजी को एक युक्ति सूझी—उन्होंने दोनों को अलग-अलग बुलाकर एक एक नीला मनका दिया और कहा कि इसे किसी को दिखाना मत ।

उस दिन से जब भी दोनों सीतों अपने को श्रेष्ठ सिद्ध करने के लिए एक साग्र उनके पूछतीं कि हममें से कौन अधिको ज्यादा प्रिय है, मुल्लाजी उत्तर देते—'जिसके पास मेरा नीला मनका है, वह ज्यादा प्रिय है।'

मुल्लाजी अरब में चार सप्ताह गुजार

कर लौटे थे। पास-पड़ोस के लोगों ने उससे पूछा कि क्या आपने अरबी भाषा भी सीखी? मुल्लाजी ने तुनककर कहा—‘आप लोग क्या मुझे मूर्ख समझते हैं कि चार हफ्ते अरब में रहकर भी अरबी न सीखूं!’
‘तो बताइये, अरबी में ऊंट को क्या कहते हैं?’

‘ऐसे बेटुके ढंग से लबे जानवर का नाम पूछने में क्या तुक है!’

‘तो चींटी का नाम ही बता दीजिये।’

‘ऐसे बेटुके ढंग से छोटे जीव का नाम पूछने में भी क्या तुक है!’

‘तो बताइये, मेमने को क्या कहते हैं?’

‘भई, जब मैं अरब से रवाना हुआ, तब भेड़ें अभी ब्यायी नहीं थीं। अब तक वे ब्या चुकी होंगी और अरबी में उनका कोई नाम तो रखा ही गया होगा।’ मुल्लाजी ने शांति से उत्तर दिया।

मुल्लाजी एक रोज एक बत्तख भुनवाकर उसे तैमूर-लंग को भेंट करने के लिए एक थाली में रखकर ले चले। बत्तख जैसी बढ़िया भुनी थी कि उसकी खुशबू से उनके मुंह में पानी भर आया। उनसे रहा न गया और उन्होंने बत्तख की एक दांग तोड़कर खा ली।

जब भुनी बत्तख तैमूरलंग के

सामने पेश हुई उस खूनी बादशाह ने देखा कि बत्तख की एक दांग गायब है। उसे लगा कि यह उसके लंगड़ेपन की ओर इशारा है। आंखें लाल करके उसने मुल्लाजी को धुड़का कि इसकी एक दांग गायब होने का मतलब क्या है?

मुल्लाजी का जवाब था—‘अकशहर की बत्तखों के तो एक ही दांग होता है।’ और उन्होंने पास की झील की ओर इशारा भी किया, जिसके किनारे बहुत-सी बत्तखें एक दांग पर खड़ी थीं।

पर जब तैमूर के इशारे पर एक सैनिक डंडा लेकर बत्तखों की ओर लपका, तो वे



‘अकशहर की बत्तखों के तो एक ही दांग होती है।’

दोनों पैरों से भाग निकलीं और तैमूर ने अंगारे जैसी आंखों से मुल्लाजी को घूरते हुए कहा—‘अब क्या कहते हो?’

‘जहांपनाह, गुस्ताखी माफ हो। इस परीक्षण से कुछ भी सिद्ध नहीं होता। क्योंकि वह सैनिक अगर वही सौटा लेकर मेरी तरफ लपकता, तो मैं चार पैरों से भागता नजर आता।’

मुल्लाजी अपने वगीचे से टोकरी-भर पके अंजीर तोड़कर उन्हें बेचने सड़क के नुककड़ पर जा बैठे। थोड़े समय में एक औरत वहां से गुजरी। पके फल देखकर उसका मन ललचा गया। उसने मुल्लाजी से कहा कि अभी तो मेरे पास पैसे नहीं हैं, अगर आप उधार दे दें तो मैं दो सेर फल खरीद लूंगी और कल पैसे दे जाऊंगी। मुल्लाजी ने दो सेर अंजीर तोल दिये, फिर ऊपर से एक अंजीर देते हुए कहा—‘इसे यहीं खाइये, यह मेरी सौगात है।’

उस औरत ने धन्यवाद देते हुए कहा—‘न मुल्लाजी, आज तो मैं इसे खा न सकूंगी। मेरे रोजे चल रहे हैं। बात यों है कि चार साल पहले मैं रमजान के महीने में बीमार पड़ गयी थी और रोजे न रख पायी थी, उसके बदले में अब रोजे रख रही हूँ।’

मुल्लाजी ने लपककर सारे अंजीर वापस ले लिये और कहा :

‘माफ करो वहन, मैं तुम्हें उधार नहीं दे सकता। अगर भगवान का उधार चुकाने में तुम्हें चार वरस लग गये, तो मेरा उधार

नबनीत

चुकाने में तो न जाने कितने वरस लग जायेंगे।’

एक दिन मुल्लाजी अपने गधे पर लो बोरी गेहूं लदवाकर गांव की चक्की पर आटा पिसवाने पहुंचे। अपनी वारी आने की प्रतीक्षा करते हुए वे दूसरों की बोरियों में एक-एक मुट्ठी गेहूं लेते और अपनी बोरियों में डाल लेते।

चक्की वाला उनकी यह हरकत देख रहा था। अंत में वह पूछ बैठ कि मुल्ला, यह क्या हो रहा है?

मुल्लाजी ने उत्तर दिया—‘भाई, बात यों है कि मेरा दिमाग जरा फिर गया है। इसलिए ऐसा हो जाता है।’

‘मगर मैंने तुम्हें अपनी बोरी का गेहूं दूसरों की बोरियों में डालते तो एक बार भी नहीं देखा।’

‘मैंने इतना ही कहा था कि मेरा दिमाग जरा फिर गया है। मैंने यह तो नहीं कहा कि मेरा दिमाग पूरी तरह फिर गया है।’

तैमूरलंग के पास एक वार शिकार पहुंची कि उनका एक मालगुजारी अफसर बहुत गड़बड़ कर रहा है—रियाया से कई गुना ज्यादा टैक्स उगाहता है और ज्यादातर खुद हड़प जाता है। जब अफसर को बुलाकर जांच की गयी, तो प्राया गया कि वही खातों में बड़ा घोटाला है। तैमूर ने व केवल उसकी सारी संपत्ति जब्त कर ती, बल्कि उसे विवश किया कि वह वही खातों

के सारे कागज भी खाये ।

रियाया तैमूर के इस न्याय से वेहद प्रसन्न हुई । मगर मुल्लाजी उतने खुश नहीं हुए, हालांकि भ्रष्ट अफसर की जगह उन्हें मालगुजारी अफसर बना दिया गया था । उन्होंने सारा हिसाब-किताब खाखरों पर लिखकर रखना शुरू किया । फिर एक रोज जब तैमूर का आदेश हुआ कि सब खाते जांच के लिए लाओ, तो वे खाखरे लेकर दरबार में हाजिर हुए ।

तैमूर उन अजीब खातों को देखकर चकित हुआ, तो मुल्लाजी ने स्पष्टीकरण पेश किया :

‘हुजूर, मेरा हाजमा बहुत कमजोर है । मैंने सोचा, हिसाब-किताब में कोई गड़बड़ी हो जाये और हुजूर मुझे कागज खाने को विवश करें तो मैं तो प्राणों से हाथ धो बैठूंगा । इसलिए मैंने सारा हिसाब-किताब खाखरों पर लिखा है । वे कागज से ज्यादा सुपच होते हैं ।’

बीचरात को अपने घर के पास कुछ लोगों के झगड़ने की आवाज सुनकर मुल्लाजी कंवल ओढ़कर घर से निकले । कारण, दूसरों के झगड़े में तमाशबीनी करना उनका प्रिय मनोबिन्द था । मगर उनका घर से निकलना था कि झगड़ने वाले आपस में झगड़ना छोड़ सहसा उन पर टूट पड़े और उनका कंवल छीनकर भाग गये । कंवल गंवाकर मुल्लाजी चुपचाप खटिया पर आ बैठे । जब उनकी बीबी ने पूछा कि झगड़े



मेरा कंवल झगड़े का सबब था ।

का सबब क्या था, तो बोले—‘लगता है, मेरा कंवल ही झगड़े का सबब था । जब कंवल चला गया, तो झगड़ा भी थम गया ।’

मुल्लाजी से किसी ने पूछा दुनिया में सबसे मूल्यवान चीज क्या है ? उत्तर मिला—‘सलाह ।’

फिर पूछा गया कि सबसे मूल्यहीन चीज क्या है ? उत्तर मिला—‘सलाह ।’

‘एक ही चीज सबसे मूल्यवान भी हो और सबसे मूल्यहीन भी, यह कैसे संभव है ?’ पूछने वाले ने सवाल किया ।

फौरन जवाब मिला—‘सलाह जब मांगी जाती है तो सबसे मूल्यवान चीज होती है ; मगर जब सुनी नहीं जाती तब वह सबसे

मूल्यहीन होती है।'

मुल्लाजी की बीवी अपन बूढ़े पिता को देखने गयी थी। बूढ़े को भोजन के बाद कहवा पीने का बड़ा शौक था। उसे खुश करने के लिए मुल्लाजी की बीवी ने कहवा खुद तैयार किया, मगर बातों में मशगूल होने के कारण असावधानी से उसमें एक की जगह चार चम्मच चीनी डाल दी। उस चाशनीनुमा कहवे की एक चुस्की लेते ही बूढ़े का पारा चढ़ गया और उसने अपनी बेटी के गाल पर एक करारी चपत रसीद कर दी।

इस अपमान से रूठकर मुल्लाजी की बीवी अपने घर चली आयी और उसने पूरा किस्सा अपने पति को सुनाया। मुल्लाजी ने सब कुछ सुना और कहा—'मैं तुम्हारे पिताजी को पत्र लिख दूंगा कि अगर भविष्य में आपने मेरी बीवी के तमाचा मारा तो मैं आपकी बिटिया की गरदन तोड़ दूंगा।'

लोग सदियों में धूप सेंकते हुए बैठे थे और उनमें इस बात पर बहस चल रही थी कि जिस कबूतर ने जैतून की टहनियों चोंच में पकड़कर हजरत नूह की नाव में पहुंचायी, वह नर कबूतर था या मादा कबूतर थी।

मुल्लाजी ने बड़े इत्मीनान से फैसला दिया—'निश्चय ही वह नर कबूतर था। कोई मादा चंद क्षण भी अपना मुंह बंद रखे, यह संभव ही कैसे है!'

मुल्लाजी घर की खिड़की में बैठे बाहर का नजारा देख रहे थे। तभी एक बच्चा उधर से निकला। उसमें ताबूत के पीछे जो लोग थे, वे रो-रोकर कह रहे थे—'हाय, पुन हमें छोड़कर उस जगह क्यों जा रहे हो जहां अंधेरा है, सर्दी है, जहां न खाने को कुछ है और न जहां कोई किसी का खयाल रखता है। वहां तो तुम बिलकुल यतीम बनकर रहोगे।'

मुल्लाजी ने इस पर चिल्लाकर अपनी बीवी को आदेश दिया—'फौरन घर का दरवाजा बंद कर दो। वे लोग जिस जगह का वर्णन कर रहे हैं, वह हमारा घर ही हो सकता है। कहीं मुर्दा यहीं रहने को न बा पहुंचे।'

मुल्लाजी एक पड़ोसी के यहां दावत में निमंत्रित थे। भोजन के अंत में चाखी में पगे हुए रसीले फल का कटोरा आया। गरमी का मौसम था। फल बर्फ में ठंडा किया हुआ था। मुल्लाजी के मुंह में पानी भर आया। मगर मेजबान ने जो चम्मच मुल्लाजी व दूसरे मेहमानों को दे रखे थे, वे बेहद छोटे थे, जब कि वह खुद छोटा-मोटा करछुल लिये हुए था। हर बार वह फल का बड़ा-सा टुकड़ा करछुल में लेता और मुंह में रखकर कहता—'हाय, मर गया!'

अंत में मुल्लाजी से रहा न गया। उन्होंने मेजबान के हाथ से करछुल लगभग छीनते हुए कहा—'आप बहुत मर चुके, अब हमें भी थोड़ा मर लेने दीजिये।'

तैमूरलंग ने अपने सैनिकों के शराब पीने पर रोक लगा रखी थी। वह मानता था कि शराब से अनुशासन टूटता है। मगर दिवावा वह यही करता था कि इस्लाम के नियमों की खातिर उसने शराबबंदी कर रखी है।

एक दिन एक सैनिक नशे में धुत्त पकड़ा गया और तैमूर के सामने पेश किया गया। तैमूर ने आदेश दिया कि उसे ३०० कोड़े मारे जायें। मुल्लाजी वहीं बैठे थे; वे हंस पड़े। तैमूर ने समझा कि कट्टरपंथी मुल्लाजी इस सजा को नाकाफी समझकर हंस रहे हैं; उसने ३०० की जगह ५०० कोड़े लगाने की आज्ञा दी।

मुल्लाजी इस पर हो-हो करके हंस पड़े। चकित होकर तैमूर ने उनके हंसने का कारण पूछा। तब मुल्लाजी बोले—‘हुजूर, आपका आदेश इस बात का प्रमाण है कि या तो आपको गिनती नहीं आती, या आपने कभी कोड़ा चखा नहीं है।’

गांव के कहवाघर में किसी ने कहा कि मौसम कितना गरम है।

इस पर दूसरा आदमी बड़बड़ाया—‘लोग बड़े कृतघ्न हैं, हर चीज पर बड़बड़ाते हैं—गरमियों को गरम बताते हैं, सर्दियों को ठंडा। लोगों को कोई खुश नहीं कर सकता।’

अब तक चुप बैठे मुल्लाजी उसकी ओर मुड़े और पूछ बैठे—‘क्यों साहब, क्या आपने सुहावने वसंत के विरुद्ध भी कभी किसी को शिकायत करते सुना है?’

तीन दिग्गज विद्वान देश-विदेश में घूम रहे थे। वे जिस भी शहर में जाते, वहां के विद्वानों को शास्त्रार्थ के लिए ललकारते। जब वे अक्शहर पहुंचे तो तैमूरलंग ने अपने दरबार के सबसे बड़े विद्वान के रूप में मुल्लाजी को उनसे शास्त्रार्थ के लिए नियुक्त किया।

शास्त्रार्थ शहर के सबसे बड़े चौक में होना था। मुल्लाजी बड़ी शान से अपने गधे पर चढ़कर चौक में पहुंचे।

विदेशी विद्वानों में से पहले ने सवाल



ब्रह्मांड का केंद्र कहां है?

हिंदी भाइजेल

किया—‘ब्रह्मांड का केंद्र कहां है ।’

‘मेरे गधे के पिछले बायें पैर के खुर के नीचे ।’

‘क्या सबूत है इसका ?’

‘अगर विश्वास न होता हो तो खुर उठा-कर नाप लीजिये ।’

पहला विद्वान चुप हो गया ।

दूसरे ने आगे बढ़कर सवाल किया—
‘आकाश में कितने तारे हैं ?’

‘मेरे गधे की पूंछ में जितने बाल हैं ।’

‘इसका सबूत ?’

‘गिनकर देख लीजिये ।’

‘पर कोई आपके गधे की पूंछ के बाल कैसे गिन सकता है ?’

‘तब आसमान के सारे तारे कोई कैसे गिन सकता है ?’

दूसरा विद्वान भी चुप हो गया ।

तीसरे ने आगे बढ़कर सवाल किया—
‘चूंकि आपको अपने गधे के बारे में इतना सब पता है, तो क्या आप बता सकते हैं कि उसकी पूंछ में कितने बाल हैं ?’

‘हां, उतने ही जितने कि आपकी दाढ़ी में बाल हैं ।’

‘कैसे सिद्ध करेंगे इसे आप ?’

‘बड़ी आसान बात है, बशर्ते आपको एतराज न हो । मैं आपकी दाढ़ी से एक-एक बाल नोचता जाऊंगा, उसी हिसाब से आप भी मेरे गधे की पूंछ से एक-एक बाल नोचते जाइये । अगर दोनों जगह बाल एक संग खत्म न हुए तो मैं हार मान लूंगा ।’

कहने की जरूरत नहीं, तीनों शास्त्रार्थ-

नवनीत

महारथी चुपचाप वहां से चलते बने ।

मुल्लाजी के मेमने को मुटियाते देव पड़ोस के शरारती छोकरो का जी ललचाने लगा । उन्होंने एक युक्ति सोची । सब एक साथ आकर मुल्लाजी से बोले—‘मुल्लाजी, आज से चार दिन बाद दुनिया का अंत हो जाने वाला है । अब इस मेमने को मारकर हमें खिला दीजिये, पुण्य मिलेगा ।’

मुल्लाजी ने उनकी बात सुनी और बत-सुनी कर दी ।

अगले दिन छोकरो ने फिर उन्हें पर लिया । बोले—‘अब तो मुल्लाजी, तीन ही दिन रह गये हैं, अब भी पुण्य कमा लीजिये ।’

मुल्लाजी पर कोई असर नहीं पड़ा । अगले दिन फिर वही बात हुई ।

अंत में जब दुनिया खत्म होने में ‘एक ही दिन’ रह गया तो छोकरे एकदम मुल्लाजी के पीछे ही पड़ गये । अब तक मुल्लाजी की जीभ भी मेमने के लजीज मांस के लिए लार टपकाने लगी थी । उन्होंने मेमने को बिड़किया और छोकरो से कहा कि जाओ, तुम लोण तालाब में नहा आओ, तब तक मेमना भुन जायेगा ।

जब लड़के नहाकर निकले तो उन्होंने देखा कि मेमना तो आंच पर भुन रहा है मगर उनके तमाम कपड़े नदारद हैं । अब उन्होंने मुल्लाजी से कपड़ों की बात पूछी तो उत्तर मिला :

‘मैंने उनसे ही तो अलाव जलाया है । मैंने सोचा उनकी कमी तुम लोगों को खलेगी ।’

नहीं। आखिर उनकी जरूरत ही क्या रह गयी है तुम्हें? याद है न, कल तो दुनिया ही खत्म हो रही है।'

मुल्लाजी रोज अल्लाह से ऊंची आवाज में यह प्रार्थना करते थे—'या अल्लाह, मुझे एक हजार, अशफियां अता कर। मगर पूरी एक हजार अता करना—एक भी कम नहीं। अगर तुने ९९९ अता कीं तो मैं उन्हें हाथ भी न लगाऊंगा।'।

यह सुनते-सुनते उनके यहूदी पड़ोसी को मुल्लाजी की परीक्षा लेने की सूझी। यहूदी कंजूस तो था ही, मजाक करने का भी उसे चाव था। उसने एक रोज मुल्लाजी की प्रार्थना समाप्त होते ही एक थैली में ९९९ अशफियां भरकर चिमनी में से उनके घर में गिरा दीं।

धम्म की आवाज के साथ थैली गिरी और मुल्लाजी ने लपककर उसे खोला और देखकर चकित रह गये कि उसमें चमचमाती हुई अशफियां हैं। गिनीं तो एक हजार में ठीक एक कम थीं। उन्होंने ऊंची आवाज में अल्लाह को धन्यवाद दिया—'या अल्लाह, तुने गलती से ९९९ ही अशफियां भेजी हैं। कोई बात नहीं। बची हुई अशफियां कल जरूर भेज देना।' और संभालकर सब अशफियां संदूक में रख लीं।

अब पड़ोसी घबरा गया और मुल्लाजी के घर आकर ९९९ अशफियां लौटाने की मांग करने लगा और जब मुल्लाजी न माने तो उसने काजी के पास चलने को कहने लगा।

अंत में मुल्लाजी को काजी को अदालत में जाने को रजामंद होना ही पड़ा। मगर वे बोले—'मुझे गठिया है; वहां तक चलने के लिए तुम अगर अपना घोड़ा दो तो मैं चलने को तैयार हूं।' पड़ोसी तैयार हो गया। मुल्लाजी ने दूसरी कठिनाई वयान की—'मेरा चोगा बिलकुल फट गया है, इसे पहनकर मैं काजी के सामने कैसे हाजिर हो सकता हूं।' पड़ोसी ने उसे अपना बढ़िया चोगा पहनने को दिया।

पड़ोसी का बढ़िया चोगा पहने, पड़ोसी के घोड़े पर सवार मुल्लाजी काजी की अदालत को खाना हुए। उनके पीछे-पीछे उनका पड़ोसी दौड़ता हुआ चला।

काजी के सामने दोनों की पेशी हुई। पड़ोसी ने दावा किया कि मजाक में उसने ९९९ अशफियां थैली में भरकर मुल्लाजी की चिमनी में से गिरायी थीं। मुल्लाजी से जब जवाबतलब किया गया तो उन्होंने काजी से कहा—'सरकार, यह आदमी तो अजीब दावा कर रहा है। मला कोई आदमी ९९९ अशफियां थैली में भरकर पड़ोसी के घर में फेंकेगा? फिर तो यह आदमी यह भी दावा कर सकता है कि मुल्लाजिस घोड़े पर चढ़कर अदालत आया है, वह भी मेरा है। यही क्यों, यहां तक कह सकता है कि मुल्ला ने जो चोगा पहन रखा है, वह मेरा चोगा है। ऐसे पागल की बातों का क्या एतबार!'

काजी को मुल्लाजी की बात सर्वथा तर्क-संगत लगी और उसने मामला खारिज कर दिया।



रागिनी फ्लैट-जीवन की

श्रीमती पार्वती तम्पी

टेलिविजन, कम्प्यूटर और हवाई यात्रा की तरह ही फ्लैट की जिंदगी भी शायद आधुनिक युग का विशिष्ट लक्षण है। फ्लैटों में जीना, एक दूसरे की बगल में जीने के बजाय एक दूसरे के सिर पर जीना है। फिर भी मकानों के बजाय फ्लैटों में जीना अधिकाधिक लोकप्रिय होता जा रहा है—आज के नौजवानों में, किफायत-शारों में, गतिशील और पेशे को प्रधानता देने वाले लोगों में।

लगभग सात वर्ष तक मैं न्यूयार्क के हृदय-भाग में एक एपार्टमेंट में रही हूँ। ठीक सामने ही संयुक्त राष्ट्रसंघ था, जिसमें मेरे पति काम करते थे। हम सातवीं मंजिल पर रहते थे—यानी इतनी ऊंचाई पर कि कोई चुस्त चोर भी खिड़की की राह भीतर न आ सके, मगर साथ ही इतनी निचाई पर भी कि आग लगने पर आसानी से बचाये जा सकें। (बात यह है कि दमकल की सीढ़ी नौवीं मंजिल तक ही पहुँच पाती है।) वैसे न्यूयार्क की इमारतों के हिसाब से यह इमारत काफी नीची ही थी; क्योंकि सिर्फ पंद्रह मंजिल की थी यह।

सं. रा. अमरीका में आपको प्रत्येक

नवनीत

अतिरिक्त चीज के लिए अतिरिक्त पैसा देने पड़ते हैं—ऊपरी मंजिल के लिए, अच्छे दृश्यावली के लिए, रसोईघर में वनी खिड़की के लिए, अलमारी के लिए, चौबीस घंटे दरबान के लिए, लिफ्ट में लगे क्लोचड-सॉफ्ट टी. वी. के लिए और निश्चय ही अच्छे मुहल्ले के लिए। मुहल्ला पूरी तरह गरीब लोगों का हो, और पड़ोस में कोई केनेडी या शकफेलर रहता हो तो इज्जत बढ़ जाती है न, इसलिए दाम भी बढ़ जाते हैं और वर्णभेद का काला साया भी दूर हो जाता है।

कई एक कारण थे कि हमने शहर में ही रहना पसंद किया, बजाय इसके कि शहर के बाहर मकान लेकर रहें, जहाँ टैक्स भी कम देने पड़ते हैं और हवा भी ज्यादा स्वच्छ होती है। एक तो सारे महानगर संग्रहालय, पुस्तकालय, नाट्यक्षेत्र और रेस्तराँ वहाँ से नजदीक पड़ते थे। दूसरे, तमाम घरेलू यंत्रोपकरण वहाँ सुलभ थे—जैसे कि डिश-वाशर, तंदूर आदि। सबसे बड़ा लाभ तो था एकांत का, गुमनामी का—जो जी में आये कीजिये, कोई रोकने या टोकने वाला नहीं।

फ्लैटों के निवासी औरों से कहीं ज्यादा

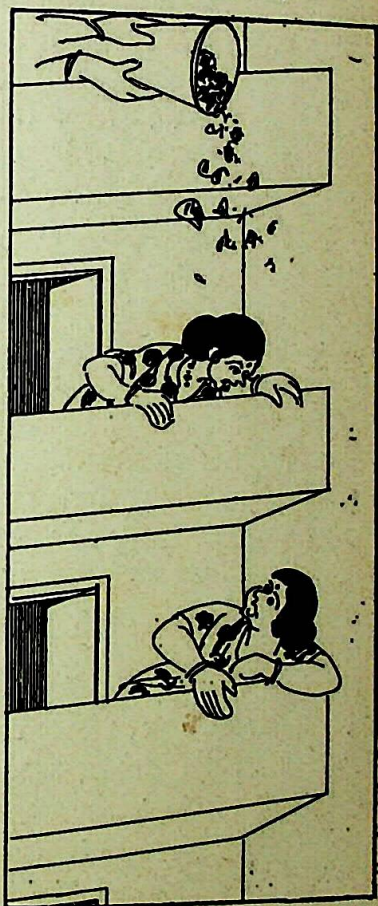
ना

व्यस्त, आत्मनिर्भर और आत्मतृप्त लगते हैं। इसी का यह फल था कि उन तमाम वर्षों में अपने पड़ोसियों से मेरा सिर्फ मुस्कान और नमस्ते का परिचय था। असल में हमारी मंजिल पर एक ८५-वर्षीय वृद्धा तथा मैं ही ऐसी थीं, जो बाकायदा नौकरी पर नहीं जाती थीं। और हम दोनों तल-घर (बेसमेंट) में जहां कि तमाम धुलाई-मशीनें, दूध-मशीनें, सिगरेट-मशीनें रखी थीं, आपस में एक-आध वाक्य कभी-कभार बोल लेती थीं।

उस फ्लैट में जीने का एक बुनियादी हिस्सा या कपड़ों की धुलाई। वह साप्ताहिक कार्य ही नहीं था, साप्ताहिक चुनौती भी थी। चुनौती इसलिए कि दूसरे लोग—बासकर घनी पड़ोसियों की नीग्रो नौकरानियां—तमाम धुलाई और सुखाई यंत्रों पर कब्जा जमा ले या हमारे धोये हुए कपड़े गलती से दूसरे लोग उठा ले जायें, इससे पहले हमें मशीन हथियानी पड़ती थी। एक बार की बात है कि धुलाई-यंत्र में मुझे सौ डालर का गीला नोट मिला और जब तक उसकी मालकिन बदहवास हालत में उसकी तलाश में नहीं आयी, मैं वहीं प्रतीक्षा करती रही। अगले रोज उस भली महिला ने मेरे पास गुलदस्ता भिजवाया। वैसे, मुझे तो सौ डालर का नोट ही ज्यादा तृप्ति देता !

वहां फ्लैट में रहने के कुछ जोखिम भी थे। सबसे बड़ा जोखिम (जो कि सभी बड़े शहरों में रहता है) असुरक्षा का,

विपदा का, यहां तक कि मौत का था। वह सुवेशधारी युवक जो लिफ्ट में हमारे साथ खड़ा है, या गलियारे में खड़ा वह किशोर कहीं हत्यारा, लुटेरा या मादक द्रव्यों का ब्यसनी तो नहीं? हरदम आप चौकन्ने रहते हैं। दरवाजे पर आप तीन-तीन ताले और सांकल जड़ते हैं; मगर वे



● 'आकाशवाणी' से सामार ●

आपको नाकाफी महसूस होते हैं। आप द्वार-सूराख (पीप-होल) में से झाँके बिना कभी दरवाजा नहीं खोलते; और जितनी भी बार द्वार की घंटी बजती है, आपका दिल धक्-से रह जाता है।

न्यूयार्क में फ्लैट-जीवन का एक और जोखिम था—‘टिप’ देना। इमारत के आम नौकर से जरा-सा कुछ कराओ तो टिप दो। डाकिया पासल लाया है, डाकिये को टिप दो। दरबान ने सीटी बजाकर आपके लिए टैक्सी रोकी है, दरबान को टिप दो। क्रिस्मस पर तो आपको सभी को टिप देनी पड़ती है। सच कहें तो उन दिनों उन लोगों की मुस्कान ज्यादा चौड़ी हो जाती है, उनका अभिवादन ज्यादा आत्मीयतापूर्ण हो जाता है, उनकी सेवा ज्यादा मुस्तैद हो जाती है—लालच-भरी प्रतीक्षा में। कई कंजूस किरायेदार तो इससे बच निकलने के लिए फ्लोरिडा या भारत को चले जाते हैं।

फ्लैट में रहने का सबसे बड़ा जोखिम है आगजनी की संभावना का। न जाने कितनी बार हमने सुने हैं दमकलों के वे कराहते भोंपू और कितनी बार देखे हैं भागे चले आते हुए लंबे-चौड़े लाल ट्रक, एम्बुलेन्स और पुलिस-वैन, और असली या कल्पित आग को बुझाने के लिए हाथों में होज-पाइप थामे लपककर हमारी या हमारे पड़ोसी की बिल्डिंग में घुसते हुए फायर-ब्रिगेड के जवान; और हम हैं कि हाथ से कलेजा थामकर खड़े हैं कि फायर-ब्रिगेड या कोई हेलिकाप्टर या खुद भगवान आये

नवनीत

और हमारे प्राण बचाये। मगर एक बार हमारी बिल्डिंग की एक पकी-झुकी बुकिंग ने तो फ्लैट से निकलने से इन्कार ही कर दिया था और फायर-ब्रिगेड के तीन-तीन जवरे जवानों को उसे उठाकर ले जाना पड़ा—मगर वह थी कि सारे रास्ते उन्हें बर्तन जमाती रही।

दूसरे छोटे-मोटे जोखिम हैं चूते हुए या बिगड़े हुए उपकरण। एक बार हमारे तश्तरी-धुलाई मशीन ने बड़ी दरियादिली से गरमागरम पानी नीचे के फ्लैट में जगलना शुरू कर दिया। कुछ ही मिनटों में एक बदहवास युवक हमारे द्वार पर आ पहुंचा और बोला—‘मिसेज तम्पी, आपने तो हमारी नर्सरी (बच्चाघर) खीलते पानी से भर डाली। हमारा बच्चा लगभग उबल गया!’

ऊपर के फ्लैट वाले शोर पैदा कर सकते हैं। हमें जब-तब ऊपर से धम्म-धम्म की आवाज सुनाई दिया करती थी और बड़ी खीझ अनुभव होती थी। अंत में एक दिन ऊपर वाली पड़ोसिन खुद बोलीं—‘धम्म-धम्म की आवाज से आपको काफी परेशानी होती होगी। असल में मेरी बूढ़ी अम्मा हैं न, वे चलते हुए अक्सर गिर पड़ती हैं।’

और अमरीका में फ्लैट में जीने में निश्चय ही एक और समस्या है—एकाकीपन की समस्या। बहुधा ऐसा होता है कि बाप घर में निपट अकेले हैं, बाहर बर्फीला तूफान बरपा है, चारों ओर से दीवारें आपको घेरे हुए हैं और आप मानो जमीन से मीलों ऊंचाई पर लटके हुए हैं। बड़ी डरावनी हो

साब

सकती है यह अनुभूति, खासकर जब आप देर गये रात को टी. वी. पर कोई रूढ़ कंपा देने वाली अपराध-कथा देख रहे हों। वाज दफा तो यह तन्हाई ऐसी तीव्र होती है कि फ्लैट का एकाकी निवासी दम तोड़ देता है और वह चल बसा है इसका पता भी तभी चलता है, जब वदबू रिसकर बाहर पहुंचने लगती है।

भगवान की कृपा से हिंदुस्तान में फ्लैट-वासियों की ऐसी हालत कभी नहीं होती; क्योंकि यहां तो हरदम आवाजाही चलती ही रहती है। वल्कि यहां तो हालत यह है कि आप किसी भी क्षण पड़ोसी के फ्लैट में बेखटके घुसकर मदद या कटोरी-भर चीनी या ताजातरनी अफवाह प्राप्त कर सकते हैं।

फ्लैट-जीवन का एक लाभ यह है कि उसमें स्वतंत्र मकान की तुलना में कम नौकरों से काम चलाया जा सकता है, या बगैरनौकर के भी। एक और लाभ यह है कि अनचाहे मेहमानों और सास-ससुर के लिए वहां जगह की तंगी रहती है। पर अगर वे आपको प्यारे हैं, या आपकी सासजी पोते-पोतियों की भीड़ में 'बरसाती' में भी आपके संग ही जीने पर वजिद हैं तो फिर यह लाभ घाटा बन जाता है।

फ्लैट-जीवन के जोखिम भारत में कम ज़रू किंतु अधिक टिकाऊ हैं। एक जोखिम यह है कि फोन करने के लिए पड़ोसी दिन में ही नहीं रात में भी किसी भी वक्त आ सकते हैं। दिल्ली में हमारी एक पड़ोसिन को अपने पति पर इतना अविश्वास था कि

वे बार-बार हमारे यहां से फोन करके उनकी गतिविधियों की खबर रखती थीं। फिर, 'लिफ्ट नहीं चल रहा है' का बोर्ड भी फ्लैट-जीवन का एक जोखिम है। कई बार बोर्ड नहीं भी लटका होता, मगर आप लिफ्ट में ऊपर जा रहे हैं कि लिफ्ट बीच में ही रुक जाती है और आप खुद लटके रह जाते हैं।

पतली दीवारें भी मुसीबत का कारण बन सकती हैं। हर आवाज इन दीवारों में से छनकर आती रहती है—बच्चों के रोने की, पाँप संगीत की, दंपतियों के झगड़े की और उससे भी भयंकर, उनके प्यार-दुलार की। आप अपनी बाल्कनी से झुककर नीचे के फ्लैट वाली पड़ोसिन से मजे से बातें कर रही हैं कि ऊपर के फ्लैट से कूड़े का ढेर आपके सिर पर बरस जाता है। सामने भले कितनी सुंदर दृश्यावली बिछी हो, मगर सूखने के लिए टांगे गये रंग-विरंगे अंडर-वियर और पोतड़े उसे आपकी आंखों से ओझल किये रखते हैं।

फ्लैट भी 'किसिम-किसिम के' होते हैं। कुछ फ्लैट मध्यम आय वालों के लिए होते हैं, और हम ज्यादातर उन्हीं में जिये हैं। कुछ फ्लैट होते हैं तिचली आय वालों के लिए—चूहों की फौज से भरे, दीवारों से उखड़-उखड़कर झर रहे पेंट और बच्चों की तोड़फोड़ से क्षतिग्रस्त। फिर होते हैं छात्रों के सामूहिक निवास के फ्लैट, जिनके सामने स्वयं भूखों मर रहे छात्र तश्तरियों में दूध छोड़ जाते हैं लावारिसबूढ़ी बिल्लियों के लिए।

ऊंची आय वालों के लिए निर्मित विलासपूर्ण फ्लैटों की बात ही ओर है—स्नानघर में सुनहरे फिटिंग्स, छत से लटकते क्रिस्टल के फानूस और दीवार से दीवार तक बिछे चार-चार इंच मोटे गलीचे ! विराट् कोआपरेटिव सोसायटियां होती हैं, जिनमें फ्लैट का मालिक या किरायेदार बनने के लिए आपको खासी बड़ी कमेटी के सामने पेश होना पड़ता है इंटरव्यू के लिए ।

शिकागो में ऐसा एक गगनचुंबी एपार्ट-मेंट-कम्प्लेक्स है—इतना ऊंचा, इतना विशिष्ट कि न केवल आलंकारिक अर्थ में, बल्कि शब्दशः बादलों में लिपटा हुआ । उसके फ्लैट-मालिक नीचे दरबान को फोन करके उससे पता लगाते हैं कि सड़क पर मौसम कैसा है । उस इमारत में अलग-अलग मंजिलों पर अपने ही सुपरमार्केट, बगीचे, सिनेमाघर, पुस्तकालय, बैंक व गराज हैं, जिससे उसके निवासियों को दूसरे शहर जाने के सिवा किसी काम के लिए बिल्डिंग के बाहर कदम रखने की जरूरत नहीं ।

फ्लैट की जिंदगी अब स्थायी चीज हो चली है; और अनंत अवसरों की खान है वह । लिफ्टों में रिश्ते कायम होते हैं, गलि-

यारों में शादियां तय होती हैं, दोस्ती जुड़ती-टूटती हैं; बच्चों को कभी भी हम जोलियों की कमी नहीं पड़ती; औरतें पक्का शास्त्र के गुरु और 'स्कैंडल' का आदान-अदान करती हैं; पुरुष नौकरियों और काम-काज की जानकारी का विनिमय करते हैं; बुजुर्ग यादों की अदला-बदली करते हैं और विश्व शब्दशः 'एकनीडम्' बन जाता है ।

अगर हम फ्लैट-जीवन के भविष्य के बारे में सोचते हैं तो उसका विकल्प क्या है ? क्या फ्लैटों की मांग इतनी बढ़ जायेगी कि कानूनन यह तय करना पड़ेगा कि प्रत्येक व्यक्ति इतने ही वर्गफुट का हकदार होगा, अधिक का नहीं ? या क्या समुन्नत तकनीकी तथा बढ़ती समृद्धि की बदीलत में ऊंची और विशाल दैत्याकार अट्टालिकाएं बनने लगेंगी कि उनमें असीम स्थान के अखंड एकांत होगा और एक ही फ्लैट के बाशिंदे भी आपस में इंटरकॉम पर ही बातचीत किया करेंगे ?

खैर, फिलहाल तो हम अपनी वर्तमान हैसियत के अनुसार फ्लैट छोड़कर मकानों में और मकान छोड़कर फ्लैटों में उबड़ते बसते रहेंगे ।



एक भिखारी ने एक घर से रोटी की भीख मांगी । वहां से उसे आधी रोटी मिली । दूसरे घर गया । वहां से उसे चौथाई रोटी मिली । तीसरे घर गया । वहां उससे दो कंम रोटी मिली । एक अन्य घर में गया तो वहां से उसे पूरी रोटी मिल गयी । भिखारी ने हैरान होकर पूछा—'बीबीजी ! यह पूरी रोटी मेरी है ?' 'हां ! यह रोटी तुम्हारी है ।' मालकिन ने उत्तर दिया । 'ओह ! मैं समझा—आप सालम रोटी की रेजगारी कर रही हैं, क्योंकि आज किसी ने मुझे पूरी रोटी नहीं दी ।' भिखारी ने कहा ।



साहित्य अकादेमी की सात पुस्तकें
और हिंदी संदर्भ-ग्रंथ
समीक्षक : पृथ्वीनाथ शास्त्री



ग्रंथालोक

* बंगला साहित्य का इतिहास * डा. सुकु-
मार सेन; अनुवादक : डा. निर्मला जैन;
३९८ पृष्ठ; ३० रुपये ।

* सिंधी साहित्य का इतिहास * लालसिंह
मजवाणी; अनुवादक : आनंद खेमाणी;
२५७ पृष्ठ; २० रुपये ।

* महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर * नारायण
चौधुरी; अनुवादक : गिरिधर राठी; ६४
पृष्ठ; २१॥ रुपये ।

* बि. एम. श्रीकंठय्य * एन. मूर्तिराव;
अनुवादक : गिरिधर राठी; ७० पृष्ठ;
२१॥ रुपये ।

* माणिक बंद्योपाध्याय * सरोज मोहन
मित्र; अनुवादक : विनोद भारद्वाज; ९२
पृष्ठ; २१॥ रुपये ।

* नीला अंबर, काले बादल * नरेन्द्र खजू-
रिया; अनुवादक : देवरत्न शास्त्री; ११९

पृष्ठ; ८ रुपये ।

* राख और हीरे * येर्जी आंग्रेबेक्की;
अनुवादक : रघुवीर सहाय; २४८ पृष्ठ;
१८ रुपये ।

सबके प्रकाशक : साहित्य अकादेमी, रवींद्र
भवन, ३५ फीरोजशाह रोड, नयी दिल्ली-१।

१. बंगला साहित्य के इतिहास पर डा.
सुकुमार सेन की पुस्तकें बंगला में भी उप-
लब्ध हैं। प्रस्तुत पुस्तक उनके अंग्रेजी ग्रंथ से
क्यों अनूदित की गयी, यह विचारणीय है।
दूसरे, इसमें इतिहास भी केवल १९४१ तक
का है, जो पाठक के लिए अधूरा और अपूर्ण
है। यदि कम से कम १९७५ तक का हिस्सा
डा. सेन से बंगला या हिंदी में लिखवाकर
इसमें जोड़ा गया होता, तो कहीं अधिक
अच्छा होता। हालांकि टैगोर (ठाकुर),
चटर्जी (चट्टोपाध्याय), बनर्जी (बंद्योपा-

हिंदी डाइजेस्ट

ध्याय), मुखर्जी (मुखोपाध्याय), सिन्हा (सिंह) रूप हिंदी में अखरते हैं, अनुवाद ठीक हुआ है। परिशिष्ट में, अनुवाद में उद्धृत अवतरणों का मूल पाठ, सहायक ग्रंथसूची, नामानुक्रमणिका देने से पुस्तककी उपयोगिता बढ़ गयी है। बंगला साहित्य के जिज्ञासुओं के लिए यह संग्रहणीय पुस्तक है।

२. सिन्धी साहित्य की ऐतिहासिक जानकारी कराने के लिए श्री अजवाणी की यह पुस्तक बहुत ही उपयोगी है। प्रत्येक अध्याय के अंत में संदर्भ-ग्रंथों की सूची देकर लेखक ने विषय-जिज्ञासुओं का बहुत उपकार किया है। परिशिष्ट के रूप में ग्रंथसूची, लेखक-ानुक्रमणिका और शुद्धिपत्र लेखक और प्रकाशक की उत्तरदायिता के परिचायक हैं। लेकिन आवश्यकता इस बात की है कि ऐसी पुस्तकें मूल भाषा से अनूदित की जायें अथवा मूल भाषा के विद्वानों से हिंदी में लिखवायी जायें। अंग्रेजी से अनूदित भारतीय भाषाओं के साहित्य-इतिहास उसी प्रकार के प्रयत्न हैं, जैसे प्रयत्न कुछ लोग अभी भी भारतीय संस्कृति की जानकारी फैलाने के लिए यूरोपीय विद्वानों की कृतियां पढ़कर करते हैं। इनकी अपनी उपयोगिता है, लेकिन साथ ही सीमाएं भी सुस्पष्ट हैं।

३ व ४. श्री गिरधर राठी ने 'भारतीय साहित्य के निर्माता' माला की दोनों पुस्तकें बहुत ही मुहावरेदार और सशक्त हिंदी में अनूदित की हैं। श्री चौधुरी ने महर्षि देवेंद्रनाथ ठाकुर (१८१७-१९०५) के जीवन एवं कृतित्व का हृद्य आकलन किया है। ब्रह्मसमाज

नवनीत

के अग्रगण्य मनीषी एवं रवीन्द्रनाथ के पिता महर्षि देवेंद्रनाथ ठाकुर में उपनिषदों के प्रति अनुराग एक आकस्मिक घटना से जुड़ा हुआ और फिर बढ़ता ही गया। राजा राम-मोहन राय के बाद वे ही वंगदेश की ब्रह्म-समाजी क्रांति के अग्रदूत बने। वे अपने विरोधियों की भी तर्कयुक्त बातें मान लेते और कठिन विपत्तियों में भी अविचलित रहते थे। उन्हें शंकराचार्य की यह बात माननी थी कि जीव और ब्रह्म एक हैं। फारसी का सूफी कवि हाफिज उनका सर्वाधिक प्रिय कवि था। वे अपने काव्यात्मक गद्य-लेखन से आज भी पाठकों को प्रभावित करते हैं। उनकी पत्र-रचना तो और भी अधिक अच्छी थी। वे ८७ की उम्र में मरे, उनके जीवन के अंतिम तीस वर्ष ध्यान-चिंतन-मनन में ही बीते। पहाड़ों की यात्रा उन्हें प्राणप्रिय थी। एक बार तो बारह साल के रवीन्द्रनाथ को भी अपने साथ ले गये थे। शान्तिनिकेतन की नींव उन्हीं के हाथों पड़ी थी। 'आत्मजीवनी', जिसमें जीवन के ४१ वें वर्ष तक की ही कहानी है, उनकी सर्वश्रेष्ठ रचना है।

श्री वि. एम. श्रीकण्ठय्य (वी. एम. श्री.) ने आधुनिक कन्नड के लिए अपनी आवाज तब उठायी, जब एक तरफ संस्कृत और दूसरी तरफ अंग्रेजी उसे दबोचे हुए थीं और वह अपने प्राचीन और मध्यकालीन साहित्य की परिधियों से मुक्त नहीं हो पा रही थी। वि. ए. श्री. ने साहित्य की भाषा को जनभाषा के निकट लाने और दैनंदिन विषयों पर रचना-कार्य को बढ़ावा देने का आंदोलन छेड़ा।

अंग्रेजी के प्राध्यापक होते हुए भी उन्होंने ज्ञान-वृक्षकर अपना कार्यक्षेत्र कर्नाटक तक ही सीमित रखा था। वे कहा करते थे— 'दिल्ली दूर है, मेरे लिए तो हल्ली (गांव) ही काफी है।' कर्नाटक के एकीकरण के लिए उनका विशेष आग्रह और उत्साह था। कन्नड कविता में छंद-स्वातंत्र्य एक तरह से उन्हीं की देन है। अंग्रेजी प्रगीतों के उनके अनुवाद (१९२१-२६) छपने के बाद कन्नड-भाषियों ने पहचाना कि किसी भी विषय पर किसी भी लय में कविता लिखी जा सकती है। उनके नाटकों में पूर्वी-पश्चिमी संस्कृतियों का काम्य संगम हुआ है। कन्नड छंद-शास्त्र का एक संक्षिप्त इतिहास भी उन्होंने लिखा। उनकी अन्य रचनाओं से भी यह जाहिर है कि उनका चिंतन उनके लेखन से ज्यादा वेगवान था। वे नहीं चाहते थे एक भी अकेला रिवाज—चाहे वह कितना ही अच्छा क्यों न हो—सारे संसार को शासित करे। पुस्तिका के अंत में 'संस्मरण' बहुत अच्छे बन पड़े हैं।

५. मानिक वंद्योपाध्याय (१९०८-५६) बंगला के यथार्थवादी साहित्यकारों में अगुआ माने जाते हैं। साम्यवादी राजनीति से जुड़ने पर भी उनकी साहित्यिकता क्षतिग्रस्त नहीं हुई। डा. सरोज मोहन मित्र ने इस छोटो-सी कृति में मानिक वाबू के बारे में लगभग सभी कुछ बता दिया है।..... मानिक-साहित्य के पात्र सारे बंगला कथा-साहित्य में वेंजोड़ हैं। समाज के प्रति उनकी सचेतनता भी अद्वितीय थी। थोथी भाव-

कता और क्षुद्र पाखंडी प्रवृत्ति उन्हें असह्य थी। व्यक्ति के रूप में वे अपने साहित्यकार को लांघ गये थे, यद्यपि यह भी सच है कि बंगला का अधुनिक युग सही मानी में उन्हीं की रचनाओं से शुरू हुआ था। उनका सारा जीवन मछुआरों, जुलाहों, किसानों, मल्लाहों, मजदूरों व छोटे-मोटे क्लर्कों के बीच बीता था। उन्हीं के प्रति वे अंत तक सचेत रहे और उन्हें आत्मीयता से अपनी रचना में चित्रित कर सके—कथा, कविता, निबंध सबमें। उनका अडिग विश्वास था कि 'जिस क्षण लेखक लेखन को अपना व्यवसाय बना लेता है, उसी क्षण वह अपनी स्वतंत्रता काफी खो देता है।' वे हमेशा इस बात पर जोर देते थे कि लेखक की जानकारी बौद्धिक ही नहीं अनुभव के आधार पर भी होनी चाहिये। अनुवाद अच्छा हुआ है।

६. श्री खजूरिया की कहानियों का यह संग्रह डोगरी भाषा की उत्कृष्ट साहित्य-सर्जना के रूप में प्रकाशित एवं पुस्तकृत हुआ है। हिंदी में यह अनुवाद डोगरी साहित्य और संस्कृति से परिचय कराने के लिए ठीक है। अनुवाद अच्छा हुआ है।

७. 'राख और हीरे' का अनुवाद पढ़कर सचमुच निराशा हुई। क्या यह अनुवाद सचमुच श्री रघुबीर सहाय ने किया है? क्या फुर्तीला की जगह 'चैतन्य' का प्रयोग ज्यादा अच्छा है? पृ. ३ पर 'सूखी हुई छितरी हुई डाले', 'तुम भी उन्हें जानते रहे होंगे', 'लहीम शहीम बंद लारी', कहीं 'मिसेज' तो कहीं 'श्रीमती' (पृ. १) बौना या ठिगना

की जगह 'पस्ताकद' जैसे प्रयोगों ने अनुवाद की 'शोभा' कम कर दी है। प्रूफ की गलतियाँ तो पहले दो-तीन फार्मों में बेशुमार हैं। जो हो, मूल उपन्यास की कथा, रवानगी और शैली पाठक को मोहती है।

०००

* हिंदी संदर्भ-हिंदी पत्रिका साहित्य से जुने गये समस्त विषयों पर लेख, संपादकीय टिप्पणी, पत्रादि की प्रलेख-सूची (१९६९, १९७०, १९७१ तीन जिल्दें) * संपादक : उमेशचंद्र टंडन; प्रकाशक : राजस्थान विश्वविद्यालय पुस्तकालय, जयपुर राजस्थान; मूल्य : क्रमशः ३० रु., ४५ रु., ६० रु., प्रकाशन-काल १९७० से १९७६।

भारतीय भाषाओं में संदर्भ-साहित्य की कमी प्रायः सभी को खटकती है। विशेषतः पत्रिकाओं में प्रकाशित विविध विषयों पर सामयिक एवं शोधपूर्ण साहित्य के प्रलेखों की संदर्भ-सूची प्रस्तुत करने की ओर तो हमारे यहां ध्यान ही नहीं दिया गया। इसलिए यह बड़े हर्ष की बात है कि राजस्थान विश्वविद्यालय ने यह कार्य हिंदी पत्रिकाओं के क्षेत्र में शुरू किया है।

उक्त तीनों जिल्दों में से पहली में तीस विशिष्ट पत्रिकाओं में छपे ज्ञान-विज्ञान के लगभग तीस विषयों से संबंधित प्रलेखों की सूची है। दूसरी जिल्द में पत्रिकाओं की संख्या ५८ हो गयी है; तीसरी में ६६। इससे यह स्पष्ट है कि संपादक ने उत्तरोत्तर अपने अनुभव से लाभ उठाया है। श्रेणी-विभाण के लिए चुने गये विषयों की संख्या कम लगती

है; वास्तव में एक ही विषय से संबद्ध कितने ही उपविषयों को भी शुमार करें, तो यह संख्या सैकड़ों में हो जायेगी। इसका जायजा विषयानुक्रमणिका से मिलता है।

प्रविष्टियों में लेखक, लेख का शीर्षक, पत्रिका का नाम, खंड, वर्ष (अंक-संख्या), वर्ष-मास-तिथि, पृष्ठ दिये गये हैं और अंत में विषयानुक्रमणिका और लेखानुक्रमणिका भी प्रस्तुत हैं।

संपूर्ण संचयन में संपादक की सूझ-बूझ और श्रम परिलक्षित होते हैं। वेशक यह संदर्भ-ग्रंथ व्याप्ति तथा विषय-वस्तु दोनों दृष्टियों से उत्तरोत्तर अधिक अच्छा और विस्तृत होता गया है। तीनों जिल्दों में लगभग १,२५० पृष्ठ हैं और १७,४१३ प्रविष्टियाँ हैं।

निदेशक का यह कथन भी ध्यान देने योग्य है—'कुछ विषय ऐसे हैं जिन पर प्रचुर संख्या में लेख प्रकाशित हो रहे हैं और कुछ ज्ञान के क्षेत्र ऐसे हैं जो लगभग अछूते पड़े हैं। पत्रिकाओं के लिए लेख लिखने के लिए विषय-चयन के मामले में लेखकों के लिए यह बात बहुत सहायक सिद्ध हो सकती है। परोक्ष रूप से यह लेखन का स्तर ऊंचा उठाने में भी सहायक हो सकती है।' (बशर्त लेखक लोग मौलिक लेखन की ओर अधिक प्रवृत्त हों और अंग्रेजी में या अन्य विदेशी भाषाओं में छपी सामग्री के रूपांतरण से बचें।) यों संपादकों का भी इस ओर ध्यान देना समीचीन होगा। यह प्रकाशन निश्चय ही सभी पुस्तकालयों और संस्थाओं में संग्रहणीय है।



[पृष्ठ ४० का शेष]

की रक्षा का और जमीन के कटाव तथा भूस्खलन (जो इस इलाकों के निवासी भाई-बहनों के जीवन को खतरे में डालते रहते हैं) की रोकथाम का महत्त्वपूर्ण काम कर रहे हैं।

इन जन-आंदोलनों के वाहक कार्यकर्ताओं की शक्ति बढ़ाने का उनका अपना ही तरीका है। वे पारिवारिक चिंताओं से मुक्त रह सकें, इसके लिए स्वामीजी उनके बच्चों की शिक्षा के लिए सहायता भेजते रहते हैं। किस कार्यकर्ता का बच्चा कहाँ पढ़ रहा है और उसकी प्रगति कैसी है, इसकी स्वामीजी को पूरी जानकारी रहती है। श्री धूमसिंह नेगी वन-श्रमिकों को ठेकेदारी शोषण से मुक्त कराने के लिए समर्पित हैं। उनकी सहधार्मिणी वर्षों से 'अल्सर' की रोगिणी हैं। घर में पथ्य-परहेज नहीं हो सकता। आश्रम के अस्पताल में दाखिल कर ली गयीं। स्वामीजी ने कहा, जो भी विशेष औषध व खुराक आवश्यक हो, उसकी व्यवस्था हो जायेगी।

हिमालय सेवा संघ के पश्चिमी क्षेत्र के मंत्री योगेश बहुगुणा को उनके काम में सहायित हो, इस विचार से आश्रम के सदस्य के रूप में ही स्थान दे दिया गया है। मार्च १९७७ में अपने घर से आते हुए रास्ते में वे दुर्घटना-ग्रस्त हो गये। किसी फौजी ट्रक ने बेहोश हालत में उन्हें ऋषिकेश के अस्पताल में पहुँचा दिया। चौथे दिन जब उन्हें होश आया तो उनकी आँखें स्वामीजी

१९७९

को ढूँढ़ रही थीं। आश्रम के मंत्री स्वामी प्रेमानंदजी और दूसरे संन्यासी नियमित रूप से उन्हें देखने जाते। गुजरात की यात्रा से लौटते ही स्वामीजी स्वयं अस्पताल गये, उनके सिरहाने बैठकर प्रार्थना की। प्रति-दिन उनका समाचार लेने फल और संदेश के साथ किसी न किसी को भेजते। योगेशजी के स्वास्थ्य-लाभ में डाक्टरी चिकित्सा से अधिक काम स्वामीजी की प्रेम-भरी उपस्थिति ने किया। जब मैंने इसका जिक्र स्वामीजी से किया और योगेशजी के पास रखने के लिए उनका चित्र मांगा, तो उन्होंने ये शब्द लिख दिये :

श्री योगेशजी, एवर हॅव युवर् गेज क्लिक्स्ट अपॉन द इटर्नल रियल्टी वॅट इज एवर-प्रेजेन्ट हियर् एन्ड नाउ ऐज युवर् इटर्नल कम्पैनियन। वॅट रियल्टी इज पीस, लाइव एन्ड लाइङ्ग।

—स्वामी चिदानंद

[श्री योगेशजी, अपनी दृष्टि उस चिरंतन सत्ता पर स्थिर रखिये, जो चिरंतन सखा की तरह सदा ही आपके संग रहती है। वह सत्ता शांति है, प्रकाश है, जीवन है। —स्वामी चिदानंद]

यह संदेश पढ़ते ही योगेशजी की निराशा भाग गयी और वे मुस्कराने लगे।

छह साल पहले उत्तरकाशी जिले के गंवाणा गांव की धर्मदेई नाम की एक बालिका के बारे में उन्हें पता चला। पेड़ से गिरने पर उसके पैर की हड्डी टूट गयी थी। उसके माता-पिता उसका इलाज करा नहीं सकते थे। स्वामीजी ने धर्मदेई को

हिंदी डाइजेस्ट

१४७

देहरादून के अस्पताल में दाखिल कर दिया और उसकी देखभाल का दायित्व एक बड़े फौजी अफसर भक्त को सौंपा। उत्तम से उत्तम इलाज के बाद भी धर्मदेई स्वस्थ न हुई, तो उन्होंने उसे आश्रम में बुला लिया। आश्रम-अस्पताल में लेटी रहने वाली धर्मदेई जीवन के प्रति निराशाग्रस्त न हो जाये, इसके लिए उन्होंने उसे रामनाम का मंत्र दिया। वह भागवत की कथा पढ़कर स्वयं उसका रसपान करती है और दूसरे रोगियों को भी सुनाती है।

चंडीप्रसाद भट्ट चमोली जिले के निष्ठावान सेवक हैं। वहाँ पर शराबबंदी, वन-सुरक्षा और अन्य रचनात्मक कार्यकलापों के वे प्राण हैं। जुलाई १९७३ में वे शिवानंद आश्रम में मुझसे मिलने आये थे। एक दिन उन्होंने कहा—‘कल मेरा जन्मदिन है।’ ज्यों ही स्वामीजी को इसका पता चला, उन्होंने विशेष पूजा का आयोजन कराया। फिर अपने निजी कक्ष में चौकी बिछाकर और अल्पना सजाकर उनका पूजन किया। प्रेमपूर्वक भोजन कराया। उस दिन स्वयं स्वामीजी का एकादशी का व्रत था।

स्वामी चिदानंदजी पूरी मानवता के सेवक हैं। मद्रास के लायोला कालेज में शिक्षण के दौरान उनका ईसाई धर्म से गहरा

परिचय हुआ। हिंदू, मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई, पारसी और अन्य धर्मों का उनके जीवन में समन्वय है। वे भारतीय संस्कृति का प्रचार करने के लिए कई बार विदेश यात्रा कर चुके हैं। भारत के कोने-कोने में तो वे घूमते ही हैं।

आचार्य विनोबा ने उनके तपोनिष्ठ, सेवामय और विरक्त जीवन को देखकर कहा था—‘चिदानंदजी योगी और संन्यासी दोनों हैं।’ उनका जीवन ज्ञान, कर्म और भक्ति का अद्भुत त्रिवेणी-संगम है।

उनके उज्ज्वल चरित्र में हिमालय की धवलता है, समस्त सृष्टि के साथ उनके तादात्म्य में हिमालय की विशालता है, जीवमात्र की सेवा के लिए उनकी समर्पण-भावना में हिमालय की उदारता है। हिमालय के साथ उनका नाम जुड़ने से उसके आध्यात्मिक शिखर चमक उठे हैं, जीवन के कठोर संघर्ष से दबे-थके हिमालय के पुत्रों को नया आत्मविश्वास प्राप्त हुआ है। वे हिमालय के संत-शिरोमणि हैं।

मानवता की नवरचना में निरत तथा दबे-थके-भूखे एवं भूले-विसरे लोगों के इस वीतराग प्रेमल सखा को प्रणाम।

—नवजीवन आश्रम, पो. सिल्यारा,
पिन-२४९१५३



डा. दादाभाई नौरोजी से किसी मित्र ने पूछा कि मौका मिले तो क्या आप यही जीवन फिर से जियेंगे ?

उत्तर मिला—‘हां यही जीवन मय इसकी तमाम निराशाओं और कठिनाइयों के मैं फिर जीना पसंद करूंगा।’



[पृष्ठ ४३ का शेष]

कालाकांकर के 'नक्षत्र' और नौका-विहार के चित्रों के बिना अधूरी ही रहती।

हम लोग उनके साथ 'नक्षत्र' गये। वहाँ कई चित्र लिये गये। सहसा मुझे 'नक्षत्र' के ठीक नीचे के प्रताप-द्वार का ध्यान आया और मैंने पंतजी को बताया कि मैंने उनकी वे चार पंक्तियाँ जो उन्होंने मेरे पूज्य बड़े भाई राजा अवधेश सिंहजी के विलायत से लौटने पर उनके स्वागत-पत्र के लिए हमारे अनुरोध से लिख दी थीं, प्रताप-द्वार पर संगमरमर की चौड़ी पट्टियों पर खुदवाकर लगवा दी हैं।

'कौन-सी पंक्तियाँ ? मुझे याद नहीं पड़ रहा है।' पंतजी बोले—'हां इतना जरूर याद है कि राजासाहब की मृत्यु १९३४ में हुई थी और वे उससे एक या डेढ़ साल पहले कुछ महीनों के लिए विलायत गये थे।'

इस पर मैंने श्री पंतजी को वे पंक्तियाँ सुनायीं, जो इस प्रकार हैं :

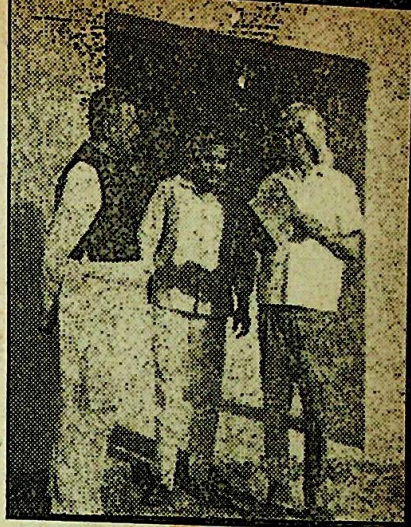
स्वागत करता विशद छत्र-सा खुला रेशमी
नील गगन

स्वागत करती गंगा जिसके स्नेहपाश में
राजभवन

स्वागत करती धरणी नवनव शस्यों में
लहरा प्रतिछन

स्वागत करता कालाकांकर शत-शत कंठों
से श्रीमन्

पंतजी को अपनी ये पंक्तियाँ याद हो आयीं। वच्चों की तरह बड़े भोलेपन से उन्होंने कहा—'मैं नीचे जाकर उन्हें देख आता



'नक्षत्र' के सामने पंतजी, सुरेश सिंह तथा (बीच में) उनके पुत्र शिरीष कुमार सिंह। हूँ। आपने मुझे पहले बताया ही नहीं। इधर-दो बार यहां अस्पताल के सिलसिले में आया था, तब आपने यह बताया ही नहीं। मैं अभी देखकर आता हूँ।'

इतना कहकर वे टीले से नीचे उतरने के लिए तैयार हो गये। मैंने टोका—'पंतजी ! बहुत संकरा और टेढ़ा-मेढ़ा रास्ता है।... चलिये, उधर से मोटर पर बैठकर आ जायेंगे।' पर 'मैं' इस रास्ते से दस साल तक उतरता-चढ़ता रहा हूँ। इससे मैं भली भांति परिचित हूँ।' कहकर वे नीचे सड़क पर पहुँच गये। हम लोग भी नीचे आये। पंतजी ने अपनी पंक्तियों को देखकर कहा—'आपने बड़ा सुंदर उपयोग किया इन पंक्तियों का। यह कालाकांकर आने वालों के लिए स्वागत-गान बन गया है।'

—कालाकांकर, प्रतापगढ़, उ. प्र.



[पृष्ठ ४७ का शेष]

लब्ध हैं) पढ़कर उन्होंने कहा था—‘मैं तो इसे हर्गिज छपने न देता ।’

खुश्चोव को लगता था कि दो बड़ी गलतियाँ उन्होंने की थीं, जिनकी कीमत उन्हें पदच्युति के रूप में चुकानी पड़ी । एक गलती थी के. जी. वी. (रूसी गुप्तचर संस्थान) के अध्यक्ष एवं लाल सेना के जनरल इवान सेरोव को १९५८ में कजाक-स्तान भेज देना । बेशक सेरोव स्तालिन-कालीन अपराधों से जुड़े हुए थे; मगर खुश्चोव के प्रति वे पूरे वफादार थे और उनका हर आदेश पूरा करने को प्रस्तुत रहते थे । १९५७ में खुश्चोव का तख्ता पटलने के एक षड्यंत्र से खुश्चोव का बचाव भी उन्होंने किया था । मगर अगले साल खुश्चोव ने उनकी पदावनति कर दी और उनके स्थान पर के. जी. वी. का अध्यक्ष बना । दिया साम्यवादी युवक संघटन के मुखिया अलेक्सान्द्र शोलेपिन को । १९६४ में शोलेपिन ने खुश्चोव-विरोधियों का साथ दिया । इसका यह इनाम भी उन्हें मिला कि ब्रेजनेव और कोसीगिन ने उन्हें पोलिट ब्यूरो का सदस्य बना दिया ।

खुश्चोव को इसका जरा भी भ्रम नहीं था कि किसी दिन वे फिर से सत्तारूढ़ हो सकेंगे । सारे देश ने उनकी बर्खास्तगी को बिना विरोध स्वीकार कर लिया था । फिर भी यह चीज उन्हें चुभती थी कि नये सत्ता-धीशों में से कोई कभी उनसे मिलने नहीं आया । यहां तक कि १९६९ में उनके ७५ वें नवनीत

जन्मदिन पर क्रैमलिन से बधाई न आयी, जबकि जनरल द गोल और रानी एलिजाबेथ द्वितीय ने शुभकामनाएं भेजी थीं ।

धीरे-धीरे राजनैतिक मामलों पर खुश्चोव अपने विचार मित्रों एवं रिश्तेदारों के सामने प्रकट करने लगे । उनके बंगले के पास सरकारी अफसरों का छुट्टी मनाने का केंद्र था । खुश्चोव जब-तब वहां पहुंच जाते थे । मेड्वेडेव का कहना है—‘छुट्टी मना रहे अफसर फौरन उन्हें घेर लेते और उनमें घंटों बातें होतीं..... वे खुश्चोव से काफी पैने सवाल पूछ बैठते । मगर सवे हुए बहसबाज खुश्चोव को ऐसे सवालों से निवटना आता था और वे इसका बुरा भी नहीं मानते थे ।’

जब सन १९६८ में चेकोस्लोवाकिया में रूसी सेना भेजी गयी, वह कदम खुश्चोव को अनावश्यक लगा । जब उन्हें शक दिलाया जाता कि उन्होंने खुद १९५६ में हंगरी में सेना भेजी थी, वे चिढ़कर उत्तर देते थे कि हंगरी में साम्यवादी व्यवस्था को उखाड़ फेंकने का प्रयत्न हुआ था, जबकि चेकोस्लोवाकिया में तो साम्यवादी पूरी तरह सत्तारूढ़ थे ।

इसी तरह १९६६ में लेखक-द्वय बोर्डे सिन्याव्स्की और यूली डेनियल पर जब मुकद्दमे चलाये गये, खुश्चोव को वह भी अनुचित लगा । स्तालिन की बेटी स्वेतलाना जब तक अमरीका न चली गयीं, तब तक वे उन्हें वफादार साम्यवादी और निजी मित्र मानते रहे ।

नये सत्ताधीशों ने ख़ुश्चोव को एक निवृत्त नेता के रूप में जीने दिया, यह भी इस व पूर्वो यूरोप की साम्यवादी परंपरा में नयी बात थी। मगर उनके साथ कोई ममता या उदारता नहीं बरती गयी थी।

१९७० में जब पश्चिम में ख़ुश्चोव के संस्मरण पुस्तक रूप में छपे, आंद्रेई किरिलेन्को ने उन्हें क्रेमलिन में बुलवा भेजा। किरिलेन्को कभी ख़ुश्चोव के खास कृपा-पात्र थे और अब ब्रेजनेव के खास आदमी और भावी उत्तराधिकारी समझे जाते हैं। उन्होंने अपने भूतपूर्व 'बॉस' से बड़ी उद्धतता से बातचीत और यहां तक कह डाला— 'आप ज़रूरत से ज्यादा खुशहाल हैं।' मेडव्हेडेव लिखते हैं, तब ख़ुश्चोव ने गुस्से से जवाब दिया— 'ठीक है, मेरा दाचा और मेरी पेंशन छीन लो। मैं हाथ पसारकर अपने देशवासियों से भीख मांग लिया कलंगा, और निश्चय ही वे मुझे कुछ न कुछ दे देंगे। लेकिन तुम्हें अगर किसी दिन भीख मांगनी पड़ गयी, तो कोई तुम्हें कानी कौड़ी भी नहीं देगा।'।

पोलिट ब्यूरो के सदस्य अर्विद पेल्ले ने ख़ुश्चोव को बुलाकर उन पर इसके लिए बहुत दबाव डाला कि वे कह दें कि ये

संस्मरण उनके लिखे हुए नहीं हैं। ख़ुश्चोव सिर्फ यह कहने को तैयार थे कि इन संस्मरणों के पश्चिम भेजे जाने की उन्होंने कतई अनुमति नहीं दी थी।

अर्विद पेल्ले से वह मुलाकात समाप्त होने पर ख़ुश्चोव सीने पर हाथ रखकर लौटे थे। उसके कुछ समय बाद ही उन्हें दिल का दौरा पड़ा और वे ११ सितंबर १९७१ को गुजर गये।

निकिता ख़ुश्चोव कोई दुध के धूले आदमी नहीं थे। स्टालिन के जमाने में यूक्रेन में हुए 'सफाये' (पर्ज) उन्हीं ने आयोजित और संचालित किये थे। मगर जैसा कि राय मेडव्हेडेव ने कहा है, ख़ुश्चोव का ऐतिहासिक महत्त्व इसमें है कि उन्होंने सन १९५३ के बाद स्टालिनी परंपरा को तोड़ा।

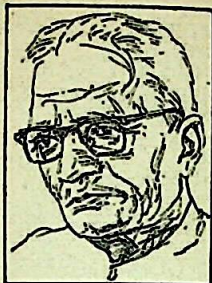
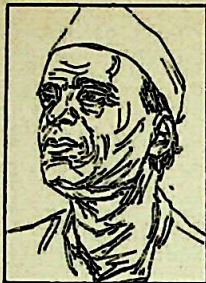
हम 'तीसरी दुनिया' के लोग यह भी नहीं भूल सकते कि अमरीका के राष्ट्रपति केनेडी की तरह निकिता ख़ुश्चोव में यह शक्ति थी कि मौका आने पर वे अंतरराष्ट्रीय राजनीति में अपने खेमे के स्वार्थ से ऊपर उठकर समस्त मानव-जाति की दृष्टि से सोच सकते थे। १९६२ का क्यूबा-कांड इसका शानदार उदाहरण था।



बड़ी देर से शतरंज की बाजी जमी हुई थी। एक नवयुवक और एक वृद्ध का मुकाबला था। नवयुवक की अधीरता देखकर वृद्ध खिलाड़ी ने कहा— 'अरे बेटा! तुम मुझे अनाड़ी न समझो। मैं उस समय से खेल रहा हूँ, जब तुम्हारा जन्म भी नहीं हुआ था।'।

नवयुवक ने कहा— 'जी! मेरी केवल इतनी ही प्रार्थना है कि मेरी मौत होने से पहले खेल खत्म कर दीजिये !'





आक्षेप पर भी ध्यान जाता है कि उन्होंने देश को तैयार किये बिना ही चीन को लड़ाई का न्योता दे दिया। असल में यह दोष किसी पर यदि मढ़ा जा

विनोबा भावे

साने गुरुजी

[पृष्ठ ५५ का शेष]

अमरीकी सचमुच प्रभावित था।

एक बार रमानिया की राजधानी बुखारेस्ट में मुझे एक अमरीकी सज्जन मि. वारेन मिले। वे मूलतः रमानिया के ही थे और अब अपने पुराने वतन को देखने आये थे। होटल में अगल-वगल में नाश्ता करते हुए हमें अंग्रेजी भाषा ने मिला दिया। ओहायो में वकालत करते थे वे। उन्होंने कहा—‘मुझे तो तुम्हारा कृष्ण मेनन खूब अच्छा लगता है। खूब सुनाता है वह!’

संयुक्त राष्ट्रसंघ में मेनन के कई दिनों चले भाषण ने नया मानदंड स्थापित किया, जिसके बाद पाकिस्तान की बोलती बंद हो गयी। रूस के साथ श्रीमती विजयलक्ष्मी पंडित के समय जो संबंध विगड़ गये थे, उन्हें उन्होंने सुधारा और स्वेजकांड में मिस्र का जवर्दस्त समर्थन करके अरब-भारत मैत्री की नींव डाली।

आज जबकि हमारे कुंआरे विदेश-मंत्री चीन के साथ हमारा संबंध सुधारा रहे हैं, श्री कृष्ण मेनन पर किये जाने वाले इस

नवनीत

एन. एस. हर्डीकर

सकता है तो वे थे श्री जवाहरलाल नेहरू श्रीलंका जाते हुए जब हवाई अड्डे पर श्री नेहरू ने ढोला चौकी को खाली कराने का आदेश सेना को दिया, उस समय कृष्ण मेनन न्यूयार्क में थे और उनसे पूछा तक न गया था। फिर भी पराजय की पूरी जिम्मेदारी उन्होंने अपने ऊपर ली और उफ तक नहीं की। यहां तक कि ऐसा एक पत्र तक अपने पीछे न छोड़ा, जिससे श्री नेहरू पर आक्षेप आये।

वे बढ़िया कपड़े पहनते थे। बच्चों से उन्हें बहुत प्यार था और उनके लिए वे विदेशों से तरह-तरह के खिलौने बड़े चाव से लाया करते थे। सो ऐसा नहीं कहा जा सकता कि वे शुष्क आदमी थे और मनुष्यों से उन्हें प्यार नहीं था। उनकी एक बड़ी बहन थीं, जिन्होंने उन्हें मां की तरह पाला था। उनकी मृत्यु पर कृष्ण मेनन बच्चों की तरह रोये थे।

लंबे अरसे तक ऐसा लगता था कि वह पश्चिम बंगाल की नियति ही है कि उसकी राजनैतिक बाण्डोर चिरकुमारों के हाथ में

मार्च

रहे। श्री विधानचंद्र राय जब तक जीवित रहे, उन्होंने सिर्फ बंगाल की ही नहीं, सारे देश की राजनीति पर भी प्रभाव डाला। वे पश्चिम बंगाल के मुख्यमंत्री ही रहे और कभी केंद्र में नहीं आए; मगर जवाहरलालजी को वे सिर्फ 'जवाहरलाल' कहकर संबोधित करते थे। राजनीति में व्यस्त रहते हुए भी वे देश के सबसे बड़े चिकित्सकों में से थे। ऐसा भी कहा जाता है कि अंतिम दिनों में उन्होंने विवाह कर लिया था और वह भी सुदूर जापान में जाकर।

बंगाल के कांग्रेसी मुख्यमंत्रियों में से डा. प्रफुल्लचंद्र घोष और श्री प्रफुल्लचंद्र सेन भी चिरकुमार-परंपरा के ही थे और संविद सरकार के प्रथम मुख्यमंत्री श्री अंजय मुखर्जी भी। इस राज्य को दीर्घकाल तक एक कुआरी राज्यपाल (पद्मजा नायडू) भी प्राप्त रहीं।

दीर्घकाल तक भारतीय जनसंघ पर तो एक तरह से कुआरे नेताओं का वर्चस्व रहा है। इनमें सबसे प्रमुख रहे हैं मथुरा में जनमे श्री दीनदयाल उपाध्याय, जो अत्यंत संयत और मृदु स्वभाव के थे। अगर उपाध्यायजी आज जीवित होते तो भारतीय राजनीति में अनेक शुभ एवं बुनियादी परिवर्तन हो पाते।

वर्तमान विदेश-मंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी भारतीय जनसंघ के अध्यक्ष ही नहीं, दीर्घकाल तक विरोधी पक्ष के सबसे अधिक प्रभावशाली वक्ता रहे हैं। कहा जाता है कि उत्तर हो या दक्षिण, उनके लिए जितनी भीड़ एकत्र होती है, उतनी केवल

इंदिरा गांधी के लिए होती है। वाजपेयीजी से एक महिला ने 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' के जरिये एक बार प्रश्न किया था कि क्या भारतीय जनसंघ के कार्यकर्ताओं के



गुरु गोलवलकर

लिए आवश्यक है कि वे विवाह न करें और आपने विवाह क्यों नहीं किया? उत्तर में वाजपेयीजी ने कहा था कि ऐसा जरूरी नहीं है। फिर हंसकर कहा था कि जब मेरी विवाह की उम्र थी, तब तो किसी ने पूछा नहीं कि आपने विवाह क्यों नहीं किया!

ऊपर जिनका जिक्र हुआ है, उनके अलावा भी दो-तीन कुआरे कांग्रेस के इतिहास में बहुत प्रसिद्ध रहे हैं। इनमें से एक तो आज भी देश की राजनीति में शक्तिशाली और विवादास्पद हैं। वे हैं श्री चंद्रभानु गुप्त। निकर पहने, ड्रिल-मास्टर्स की-सी छोटा डंडा हाथ में लिये गुप्तजी अभी भी अपने को स्वयंसेवक मानते हैं। अगर वे किसी कार्यकर्ता पर नाराज हो जायें और उसे बुरा-भला कह दें, तो दूसरे क्षण उसे बुलवाकर कुछ दक्षिणा देंगे और प्रसन्न करेंगे। कार्यकर्ताओं का उनके प्रति इतना अनुराग है कि उनके प्रश्न को लेकर नौ मंत्रियों ने उत्तर प्रदेश के मंत्रिमंडल से त्यागपत्र दे दिया था।

अपने दिल को संभालिये लब-डप ही हृदय का शुद्ध सुरताल है

नब्ज का रुक-रुक कर चलना
बेहोशी का एहसास
भारीपन एवं दबाव की शिकायत
श्वास लेने में कठिनाई
नीलाभ चेहरा
बायीं भुजा में दर्द
टांगों पर शोथ
तीव्र घड़कन एवं ठंडे पसीने का आना
हृद्रोग के पुनिश्चित लक्षण हैं ।

रोगमुक्त होने के लिए परामर्श करें :
कविराज पं. दुर्गादत्त शर्मा, वैद्य-वाचस्पति



**KALPA
PHARMACY**
NAVRATNA CHOWK
JULLUNDUR CITY, Pb.
PHONE: 2401 • GRAMS: KALPAPHAR

(कृपया अंग्रेजी अथवा हिन्दी में पत्र-व्यवहार कीजिये।)

कांग्रेस के इतिहास में सदा याद रखे जाने वाले एक और कुंआरे थे श्री के. कामराज । पहले मद्रास के कर्मठ मुख्यमंत्री के रूप में और फिर भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अध्यक्ष के रूप में उन्होंने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी । 'कामराज योजना' के कारण वे प्रसिद्ध हो गये । इंदिराजी को प्रधान-मंत्री बनाने का श्रेय भी उन्हीं को दिया जाता है । श्री कामराज न हिंदी जानते थे, न अंग्रेजी । दिल्ली आकर उन्होंने दोनों भाषाएं जरा-जरा सीखी थीं । हर प्रश्न के लिए उनका उत्तर प्रसिद्ध था—'पार्कलाम् ।' तमिल के इस शब्द का अर्थ है—देखेंगे । कहते हैं मगः पता नहीं कहां तक सच है कि जब भी श्री कामराज की मां की मुलाकात नेहरूजी से होती, वे उनसे कहती थीं कि मेरे बेटे को शादी करने के लिए समझाइये ।

कांग्रेस के एक अन्य कुंआरे नेता थे श्री शंकरराव देव । वे कांग्रेस के महामंत्री रहे; बाद में अध्यक्ष-पद के भी उम्मीदवार हुए, परंतु चुनाव हार गये ।

राजनीति में प्रत्यक्ष भाग न लेते हुए भी भारतीय राजनीति को बहुत प्रभावित करने वाले दो और कुंआरों का उल्लेख यहां किया जाये या नहीं, मैं तय नहीं कर पा रहा हूं । वे हैं—आचार्य विनोबा भावे तथा राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सर-संचालक स्व. माधव स. गोलवलकर । इन्हीं की तरह जिन्होंने निःस्वार्थ कर्मठ कार्यकर्ताओं की सेना तैयार की, ऐसे दो कुंआरे थे—कांग्रेस सेवादल व राष्ट्रसेवा दल के संस्थापक और संवर्धक डा. एन. एस. हर्डीकर एवं साने गुरुजी ।

संसद में दीर्घकाल से एंग्लोइंडियन समुदाय का प्रतिनिधित्व करने वाले श्री फ्रैंक एन्टनी भी कुंआरे हैं ।

इस प्रकार भारतीय राजनीति को कुंआरों की बड़ी ही महत्त्वपूर्ण देन रही है । उनकी एकाग्र देशसेवा को निश्चय ही इस चीज से बल मिला कि उनके पास सोचने और फिक्र करने के लिए कोई दूसरा विषय नहीं था ।

—५५ काका नगर, नयी दिल्ली-११०००३



सृजन

अपनी पुस्तक 'स्रष्टा' के अंत में मैंने एक ऐसे व्यक्ति का उल्लेख किया है, जो ब्रह्मांड का चित्र बनाना चाहता है । कई वर्षों की मेहनत के बाद वह एक दीवार पर बहुत-से जहाज, मीनार, घोड़े, शस्त्र और मनुष्य चित्रित करता है । आखिर जब वह मौत की कगार पर खड़ा होता है, तो क्या देखता है कि दीवार पर के चित्र में उसने अपने चेहरे को ही चित्रित किया था ।

यही बात सभी पुस्तकों के बारे में कही जा सकती है । और मेरी उपर्युक्त पुस्तक के बारे में तो यह बात निश्चित रूप से कही जा सकती है ।

—होर्हें लुई बोहस



[पृष्ठ ६० का शेष]

दूसरे दिन हमने सुना कि शातिर साहब ने शहर छोड़कर जंड़ियाले में आवास ग्रहण कर लिया है।

★

मिस्टर कुरैशी

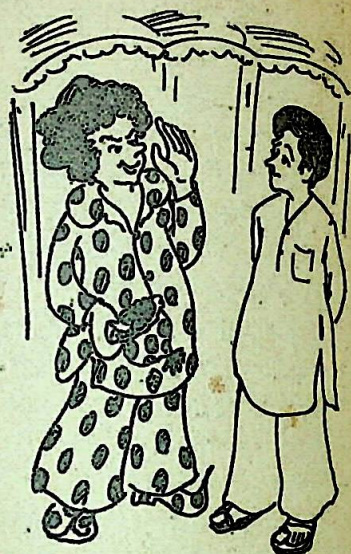
हमें वह दिन कल की तरह याद है, जब मिस्टर कुरैशी हमारे कमरे में आये और उन्होंने यह खुशखबरी सुनायी—‘आइये। आपका परिचय एक महान हस्ती के साथ कराये।’ उसके बाद हाथ मिलाते हुए हमसे फरमाया—‘वह महान हस्ती हम ही हैं। वतन बुलंद शहर है, जहां आदरणीय वालिद डिप्टी-कमिशनर हैं। हम उनके इकलौते साहबजादे हैं। इन दिनों आइ. ए. एस. के इस्तहान की तैयारी कर रहे हैं। आप चूंकि भले आदमी नजर आये, हमने मुनासिब समझा, आपसे परिचय किया जाये।’

हमने रस्मी तौर पर कहा—‘आपसे मिलकर बड़ी खुशी हुई !’

मिस्टर कुरैशी नाराज हो गये। कहने लगे—‘रस्मी फिकरों से हमें चिढ़ है। वैसे भी आपको कहना चाहिये था, हमसे मुलाकात करके आपको बेहद फख्र महसूस हुआ।’

‘इसमें क्या शक है।’

‘वह इसलिए कि,’ मिस्टर कुरैशी ने अपने वक्तव्य का खुलासा करते हुए कहा—‘हम सौ में से निम्नानवे लोगों के साथ बातचीत करना अपनी तौहीन समझते हैं। खानदानी परंपराओं का तकाजा भी यही है कि हर नवनीत



ऐरे-गैरे को मुंह न लगाया जाये।’

हम उनसे अभिभूत होते हुए बोले—‘बाप ठीक फरमाते हैं।’

उस दिन के बाद मिस्टर कुरैशी से कई मुलाकातें हुईं। उनके रंग-ढंग और रहन-सहन के तौर-तरीकों से यह अंदाजा लगाना मुश्किल था कि वे डिप्टी कमिशनर के पुत्र हैं, जिनके खानदान की वकौल उनके यू. पी. में धूम है। लिबास बहुत मैला पहनते। सिर के बाल महीनों न तराशावाते। उनके कमरे में जितना फर्नीचर था, वह किसी कबाड़ी से ओने-पौने दामों में खरीदा गया था। अक्सर तंगी में रहते और आये दिन पांच-दस रुपये कर्ज ले जाते, जो शायद ही कभी वापस करते।

मिस्टर कुरैशी जब कभी अपने खानदान

साथ

का जिक्र करते तो यों लगता, जैसे चौदह पीढ़ियों से रईस चले आ रहे हैं। एक दिन बताया—'इस साल फसल अच्छी नहीं हुई। ज्यादा से ज्यादा पांच लाख की आमदनी होगी।' एक और दिन कहा—'आदरणीय वालिद ने अस्सी हजार की एक कार खरीदी है, लेकिन वे उससे संतुष्ट नहीं। कहते हैं, हमारे जैसे रईस के पास एक लाख की कार होती चाहिये।'

एक शाम को जब मिस्टर कुरैशी होस्टल में गैरहाजिर थे, अघड़ उम्र का एक मुलाकाती उनसे मिलने के लिए आया। बातचीत के दौरान पता चला कि वे कुरैशी साहब के आदरणीय वालिद साहब हैं। बुलंद शहर में डिप्टी कमिश्नर के क्लर्क हैं। थोड़ी-सी जमीन भी है। कुनवा काफी बड़ा है। इसीलिए बड़ी मुश्किल से गुजर होती है। मिस्टर कुरैशी के बारे में उन्होंने भेद खोला कि लगातार तीन साल से बी. ए. में फेल होने के बाद अब प्राइवेट उम्मीदवार के रूप में उसी इम्तहान की तैयारी कर रहे हैं।

जब मिस्टर कुरैशी अपने कमरे को लौटे, तो उन्होंने अपने वालिद से हमारा परिचय कराना उचित न समझा। पर उनके जाने के बाद कहा—'आदरणीय वालिद साहब ने बड़ी सादा तबीयत पायी है। रईस-इब्त-रईस होने के बावजूद बहुत मामूली लिबास पहनते हैं। इस पर तुरा यह कि हमेशा सेकंड क्लास में सफर करते हैं। उनका असूल है कि ऐसा करने से मुसाफिर मानव-स्वभाव का अध्ययन कर सकता है।

एक इतवार को मिस्टर कुरैशी ने बातों-बातों में हमसे पूछा—'आपको शेरों-शायरी से भी कुछ दिलचस्पी है?' जब हमने उनके सवाल का जवाब हां में दिया, एक नोटबुक निकाली और कहा—'हमारी ताजा गजल सुनिये।' तरलुम से गजल पढ़ने के बाद सवाल किया—'कैसी है?' गजल वाकई लाजवाब थी। हमने दिल खोलकर दाद दी।

अगले रोज सुबह-सवेरे वे हमारे कमरे में प्रकट हुए और बोले—'कल एक और गजल तैयार हो गयी थी। लगे हाथों वह भी सुन लीजिये।' वह गजल भी हमें पसंद आयी। उसके बाद तो यह हाल हो गया कि मिस्टर कुरैशी दिन में तीन-तीन गजलों कहने लगे। उनका गला काफी सुरीला था। जब पढ़ते, समां बंध जाता। कई बार हमें उनकी प्रतिभा पर रश्क आया कि कम-उम्र होने के बावजूद कितना परिपक्व चितन है उनका। हमने सोचा, इम्तहान में उनकी नाकामयाबी का कारण यह हो सकता है कि वे स्वभाव से शायर हैं।

हमने उन्हें मुशायरों में शामिल होने का मशवरा दिया। उन्होंने फरमाया—'मुशायरों से हमें बहशत होती है। अस्सी फीसदी श्रोता जाहिल होते हैं। फिजूल शेरों पर दाद देते हैं। काम के शेर पर चुप रहते हैं।

'अगर मुशायरे पसंद नहीं हैं तो पत्रिकाओं में अपना कलाम भिजवा दिया कीजिये।'

'उन्हें कलाम भिजवाना बेकार है। आजकल संपादकों की सूझ-बूझ का यह

हिंदी डाइजेस्ट

आलम है कि वे रुवाई और कतआ में फर्क नहीं कर सकते। हमारे कलाम की वारी-कियां खाक समझेंगे।'

एक रोज हम मिस्टर कुरैशी से अपनी एक किताब जो वे उधार ले गये थे, लेने के लिए उनके कमरे में गये। वे ऊंच की अवस्था में बिस्तर पर लेटे हुए थे। कहने लगे—'हमारी अलमारी में होगी। खुद ही निकाल लीजिये।' किताब की तबाश करते वक्त अचानक हमारी नजर एक खूबसूरत फाइल पर पड़ी। उसे खोलकर देखा, तो वह किसी गुमनाम शायर का दीवान था, जिसमें वे सभी गजलें दर्ज थीं, जिन्हें मिस्टर कुरैशी अपनी रचनाएं कहते रहे थे।

कुछ और दिनों के बाद उन्होंने एक नया शिगूफा छोड़ा। हर रोज एक खूबसूरत लड़की की फोटो दिखाते, उसकी वंशावली बयान करते। फिर पूछते, अगर हम इससे शादी कर लें तो कोई हर्ज तो नहीं? उनमें कोई खान बहादुर की लड़की होती, कोई किसी रईसे-आजम की सुपुत्री होती, और कोई मशहूर फिल्म-अभिनेत्री। क्योंकि हर-एक निहायत खूबसूरत होती, इसलिए वे फैसला न कर पाते कि किसे चुना जाये।

एक दिन तीसरे पहर जब हम कालेज से वापस आये तो शहर के एक फोटोग्राफर को मिस्टर कुरैशी से तकरार करते हुए सुना। वह कह रहा था—'बाह साहब, यह भी खूब रही। दो महीने हो गये। दुकान से अलबम यह कहकर उठा लाये कि हमें अपनी पत्रिका के मुखपृष्ठ के लिए एक नवनीत

फोटो का चुनाव करना है, जिसके आपको पांच सौ रुपये देंगे। आज तक न अलबम वापस किया, न यह बताया कि कौन-सी फोटो पसंद आयी।'

होस्टल छोड़ने के बाद कई साल तक मिस्टर कुरैशी से मुलाकात न हुई। एक दिन इत्तफाक से चांदनी चौक में उनके साथ मुठभेड़ हो गयी। उनके साथ एक दुबली-पतली और काली-कलूटी औरत थी, जिसने दो वच्चों को उठा रखा था। वे बड़े तपाक से मिले। कहने लगे—'बेगम कुरैशी से मिलिये। आप बिजनौर के एक मशहूर जागीरदार की इकलीती साहबजादी और एम. ए., पी. एच. डी. हैं।' हमने अभिवादन किया। इधर-उधर की बातें होने लगीं। बेगम कुरैशी के स्वर का जायजा लेने के बाद हम इस नतीजे पर पहुंचे कि एम. ए., पी. एच. डी. तो एक ओर, वह मिडल पास भी नहीं लगतीं। कुरैशी साहब से यह पूछने पर कि उनका क्या शगल है, मालूम हुआ कि वे 'बेनजीर सर्कस' के मालिक हैं, जिससे उन्हें बीस हजार रुपये मासिक आय होती है।

पिछले साल हमें मथुरा जाने का इत्तफाक हुआ। शहर की दीवारों पर 'बेनजीर सर्कस' के इश्तहार चिपके हुए देखकर हमें मिस्टर कुरैशी का खयाल आया। सोचा, आज रात सर्कस देखी और उनसे मुलाकात की जाये। ज्यों ही पंडाल में दाखिल हुए, तबीयत खुश हो गयी। वाकई वह सर्कस खुश करने वाला था। खेल शुरू होने के पंद्रह-बीस मिनट बाद दो जोकर अबाड़े में

उतरे। उनमें से एक पर हमें मिस्टर कुरैशी का गुमान हुआ और जब उसने अपने साथी के मुँह पर थप्पड़ लगाकर फिजूल-सा फिकरा कसा, तो गुमान यकीन में बदल गया। बड़ी हैरानी हुई कि मिस्टर कुरैशी को यह क्या सूझी।

खेल के खत्म होने पर उनसे मुलाकात हुई। उन्होंने बड़ी संजीदगी के साथ कहा— 'आज एक जोकर बीमार हो गया था। हमने सोचा, दर्शकों को बड़ी निराशा होगी।

इसलिए खुद जोकर का पाटें अदा करके उस कमी को पूरा कर दिया।' यह कहने के बाद उन्होंने एक जोरदार कहकहा लगाया और हमारे हाथ पर हाथ मारकर पूछा— 'कहिये, हमारा अभिनय कैसा रहा?' हमने उनकी पीठ ठोकते हुए जवाब दिया— 'मिस्टर कुरैशी ! आप तो पैदाइशी अभिनेता हैं। आप हमेशा अभिनय करते रहें हैं और कुछ इस अंदाज से कि बनावट पर हकीकत का गुमान होता रहा है।'

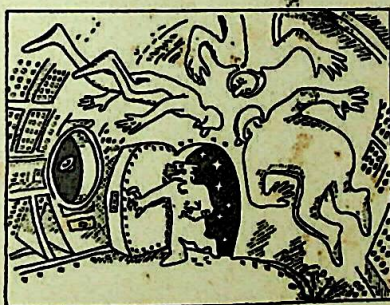


रमेश :— क्या तुम्हारे मास्टरजी समझ गये थे कि ये सवाल हल करने में मैंने तुम्हारी मदद की थी ?

मनवीर :— हां ! वे कहते थे कि यह काम दो आदमियों का है। केवल एक आदमी इतनी गलतियां नहीं कर सकता।

बेटा :— पिताजी ! आप इतना कीमती शर्ट पहनकर क्यों सो रहे हैं ?

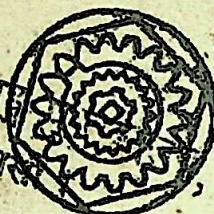
पिता :— बेटे ! कल सपने में बड़े साहब आये थे और मैं कुरता पहने हुए था। अगर आज भी आ गये तो ?



'सब अंतरिक्ष-यात्री साहबान अपने-अपने टिकट दिखायें।'

यांत्रिक प्रगति का अनुपम प्रतीक

मुमुक्षु भवन वेद वेदाङ्ग
अस्सी, वाराणसी



लोहे में गोल छेद बनाना आसान है, पर उसे विभिन्न प्रकार का बनाने के लिए विशेष प्रकार के टूल 'ब्लोच' की जरूरत होती है। जिन-जिन देशों में मोटर, लारी, स्कूटर, मशीन टूल, इत्यादि इंजीनियरिंग उत्पादन होते हैं, वहां 'ब्लोच' उत्पादन परमावश्यक होता है। डेंगर-फोर्स्ट टूल लिमिटेड ने इस आवश्यकता की पूर्ति की है। उनके बनाये 'ब्लोच' से लोहे या अन्य धातु के भीतर व बाहर के भाग को आसानी से विविध स्वरूप दीजिये।



डेंगर-फोर्स्ट टूल लि.,
पहला पोखरण रास्ता,
थाना (बंबई)



फैशन की
ओहर



जियाजी

स्टूडिंग्स इमिटिंग

जियाजीराव बॉयल प्रिन्स डिमिटेव डिजिटलर, कलकत्ता (म.प्र.)

1979 .C. 14 3

वार्षिक मूल्य रु. २४

A. H. WHEELER

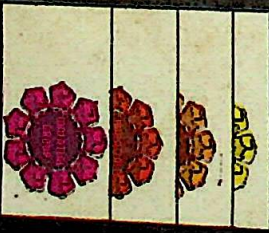
मूल्य रु. २-२५

सर्वोच्च
अकार सूर्य
जीवनदाता,
आदिभक्ताना,
सबका आराध्य है,
पूजन में अर्चन में,
आत्म चिंतन
मान में,
अहिंसे में, एकता में,
जीवन की पैरुका में,
इन सभी के मूल में
सूर्य है,
सूर्य चक्र चल सूर्य,
सूर्य ही जल सूर्य।



अपानगान

मूर्ति, आदि,
साहिब,
हिसा मंटीरियल्स
व हेनिम,

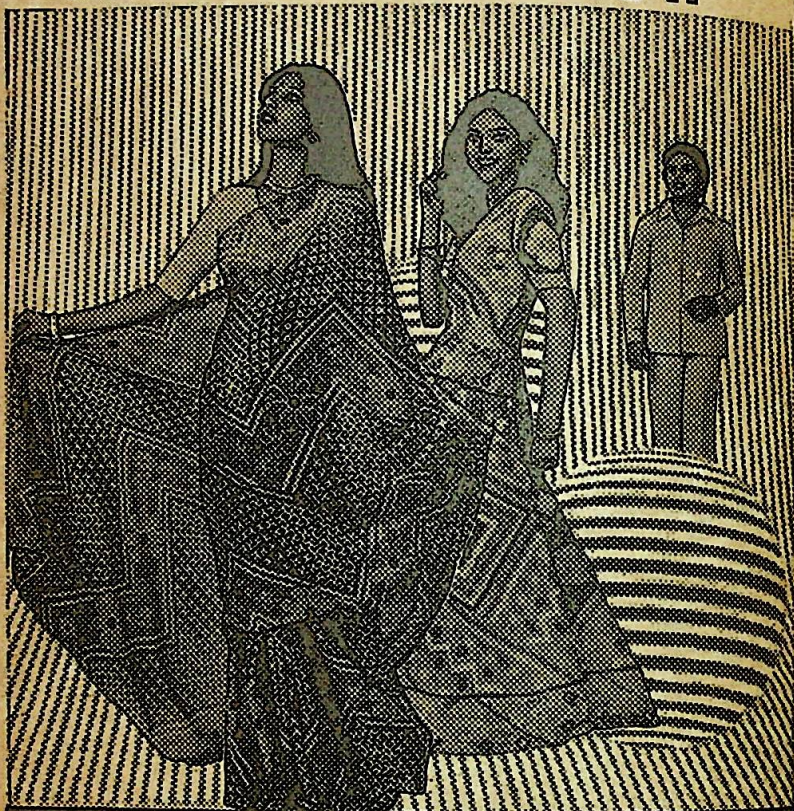




नवनीत

[हिन्दी डाइजेस्ट]

व्यक्तित्व की सीमा-रेखा



एक अलग अंदाज
अपनाइये। एक नया रिवाज
चलाइये। अनोखी अदाओं
को पहन इतराइये।
आधुनिक फैशन
से सज कर

मफतलाल इंडस्ट्रीज न्यू शोरॉक मिल्स
मफतलाल फाइन

सूटिंग्स, शर्टिंग्स, साड़ियाँ,
ड्रेस मटीरियल्स, और डेनिम्स



everest/79/MFI/311-hi

उत्तम वस्त्रों के लिए, पु. त. काल, भस्ती, वाराणसी।

सेन्चुरीके अनुपम वस्त्र



१००% सूती कपड़ों के लिये

दि सेन्चुरी स्पिनिंग एण्ड मैन्युफैक्चरिंग कंपनी लिमिटेड, बम्बई

दि इंडियन स्मेल्टिंग एंड रिफाइनिंग कंपनी लिमिटेड

रजिस्टर्ड कार्यालय :

लालबहादुर शास्त्री मार्ग, भांडुप, बंबई-४०० ०७८

केबल : 'लकी' भांडुप

फोन : ५८४३८१

१.

नानफेरस यूनिट

सेमिस रोलिंग विभाग :

नानफेरस शीट, स्ट्रिप और फाइल,
नानफेरस प्लेट और सर्कल

एलाय और कार्स्टिंग विभाग :

एंटिफ्रिक्शन बेयरिंग मेटल्स
गनमैटल्स और ब्रॉन्जेस, ब्रेजिंग सोल्डर्स और टिन सोल्डर्स,
फाइन जिक डाइकार्स्टिंग एलाय्स 'इस्माक ३' अल्युमिनियम
बेस्ड डाइकार्स्टिंग एलाय्स, ब्रास और ब्रॉन्ज राड्स सालिड
कोर्ड्स, फिनिशड कार्स्टिंग रफ और मशीन्ड ।



२.

फेरस यूनिट :

फाउंड्री डिविजन

एस० जी० आयर्न और स्पेशल स्टील कार्स्टिंग्स

मेलिबल आयर्न कार्स्टिंग्स

आइ० एस० एस०, बी० एस० एस०, एस० एस० आइ० एस०

के पेसिफिकेशनस तथा ग्राहकों की विशेष आवश्यकता

के अनुसार सप्लाई किये जाते हैं ।

अगर सेरिडॉन से भी आपका
सरदर्द नहीं जाए तो डाक्टर
की सलाह लीजिए.

सिर्फ एक सेरिडॉन
से ही सरदर्द जल्द
गायब हो जाता है
और आप फिर से
चुस्त और तरोताजा
हो जाते हैं लेकिन
कभी-कभी सरदर्द
इतना तेज और



असाध्य होता है
कि सेरिडॉन से भी
आराम नहीं मिलता
ऐसी हालत में
डाक्टर की सलाह
लीजिए वही
आपको सही नुस्खा
बताएंगे.

सेरिडॉन

ट्रेडमार्क

‘रोश’

शक्तेशाली • हानिरहित
सिर्फ एक काफी है.





उच्च स्तर के प्रति अनन्य निष्ठा
के लिए सुविधायक

जेनिथ स्टील पाइप्स एंड इंडस्ट्रीज़ लि.

१९५, चर्चगेट रिकलेमेशन
बंबई-४०० ०२०

फोन। २९४४४५, टेलीग्राम। ०११-२४५८
ग्राम। ZENPIPES

अत्युत्तम स्टील पाइपों, औद्योगिक
छुरियों और विशेष फौलाद के
निर्माता।

दि इंडियन टूल
मैन्यूफक्चरर्स लि.

१०१, सायन रोड, सायन,
बंबई-४०० ०२२

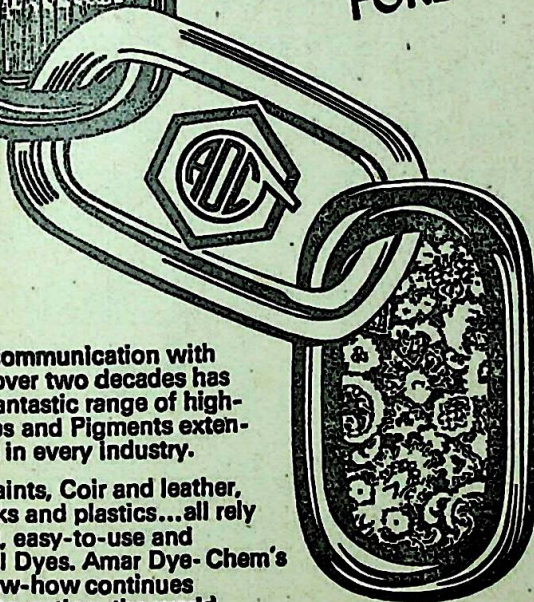
सुनिश्चित होकर चुनाव
कीजिये

'डेंगर' ट्विस्ट ड्रिल्स रीमर्स,
कटर्स, टैप्स, टूलबिट्स
और माइक्रोमीटर्स
डेंगोलाय कार्बाइड
टूल्स और टिप्स
डेंगर-साके गियरहाब्स
और गियरशेपिंग कटर्स



प्रतिशान का प्रतीक

**LINKED WITH
THE COUNTRY'S
PROGRESS
FOREVER!**



MIRAT/ADC/203-A2

Our close communication with colour for over two decades has created a fantastic range of high-quality Dyes and Pigments extensively used in every industry.

Textiles, Paints, Coir and leather, Printing inks and plastics...all rely on our fast, easy-to-use and economical Dyes. Amar Dye-Chem's colour know-how continues to enrich the nation, the world.



to enrich india's
life with colour!

AMAR DYE-CHEM LTD.

RANG UDYAN MAHIM, BOMBAY-400 016



BRANCHES: AHMEDABAD • CALCUTTA • DELHI • AMRITSAR • JAIPUR • MADRAS • MADURAI

ध्रांगध्रा केमिकल वर्क्स लिमिटेड

'निर्मल,' तीसरी मंजिल, २४१ बैकबे रिवलेशन

नरीमन पाइंट, बंबई ४०० ०२१

टार : SODACHEM

फोन : २३०७४३-२३४२७८

२३४३३०-२३४४२७

भारत में हेवी केमिकल्स के क्षेत्र में अग्रणी

अब अंतरराष्ट्रीय बाजार में भी प्रस्तुत :

* अपग्रेडेड इलमनाइट *

(सिंथेटिक रूटाइल ९०-९२ TiO_2)

हमारे बनाये हुए रसायन :

* कास्टिक सोडा

* सोडा एश

* सोडियम बाइकार्बोनेट

* अमोनियम बाइकार्बोनेट

* कैल्शियम क्लोराइड

* ट्राइक्लोरो एथिलीन

* लिक्विड क्लोरीन

* हाइड्रोक्लोरिक

* साल्ट *

लिक चैन

जिसकी एक-एक कड़ी मजबूत, परखी हुई और
पूर्णतः विश्वसनीय है।



सभी उद्योगों व वाहनों में उपयुक्त



एलाय स्टील चैन एक विशेषता

इण्डियन लिक चैन मैनु. लि., भाण्डुप, बंबई-४०००७८

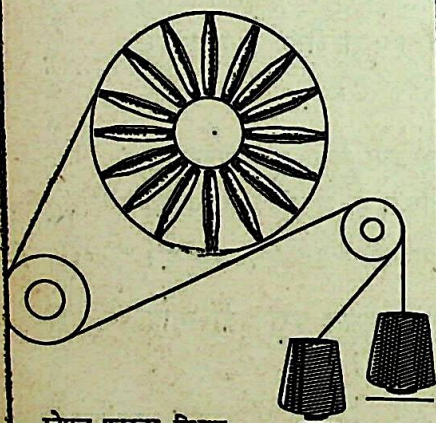
नवनीत के ग्राहकों को सूचना

- १) पत्र-व्यवहार में अपना ग्राहक-क्रमांक या रसीद-संख्या अवश्य लिखें।
- २) ग्राहक-क्रमांक देने से आपकी शिकायत और सूचनाओं पर हम शीघ्र ध्यान दे सकेंगे।
- ३) 'नवनीत' की प्रतियां पिछले माह के आखिरी सप्ताह में आपको भेजी जाती हैं। प्रति न मिलने की शिकायत मास की १० तारीख के बाद की जा सकती है।
- ४) यदि आपको अपने पते में परिवर्तन कराना हो, तो उसकी सूचना माह की १५ तारीख तक हमारे दफ्तर में दें।
- ५) बहुत थोड़े समय के लिए हम पते में परिवर्तन नहीं कर सकेंगे। अतः डाकघर से ऐसी व्यवस्था कर लें कि वह आपकी डाक नये पते पर भेज दे।
- ६) नये ग्राहकों को चंदा भेजते समय पूरा पता साफ अक्षरों में लिखना चाहिये।



विविध किस्मों के
प्राकृतिक, रासायनिक व
मानव निर्मित
बुनाई के सूत

परदे, गार्डियां व कवर बनाने के लिए
मुलायम और बहुरंगी • क्रोशेस्टों के
लिए सुंदर और चमकदार • वसन्त
में लचीले और नमीसोख



स्टेपल फाइबर विभाग
विरला ज्यूट मैन्युफैक्चरिंग
कं. लि.

९/१ आर. एन. मुकर्जी रोड
कलकत्ता-७०० ००१

दि हिंदुस्तान शुगर
मिल्स लिमिटेड

गोला गोकर्णनाथ, जिला-खोरी,
(उत्तर प्रदेश)

शुद्धश्वेत दानेदार शक्कर,
रेबिटफाइड और डिनेचर्ड स्पीरोट,
शुद्ध अल्कोहल और औद्योगिक
उपयोग में आनेवाली अल्कोहल

के उत्पादक

रजिस्टर्ड कार्यालय :

बजाज भवन, नरीमन पाइंट,

बंबई-४०००२१

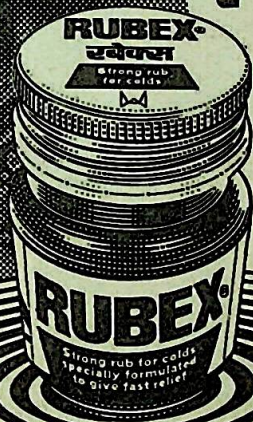
टेलीफोन : २३३६२६

टेलेक्स : ०११-२५६३

टेलिग्राम : श्री (SHREE)
उचित व्यापार संघटन के सदस्य

रुबेक्स की गरमाहट

सर्दी से
दे राहत



रुबेक्स

Alambic

सायक्लोबिन के विघर्षित
रसायन का उत्पादन

गरमाहट फैलाए,
सर्दी-जुकाम से राहत दिलाए.

everest/79/ACW/151-hn

ग्वालियर के

क्षितिज पर नया सितारा...

MAPP-GRASIM-6 Hin



ग्रासीलीन से
बने कपड़े शीघ्र ही
सभी प्रमुख स्टोर्स पर
उपलब्ध



दि ग्वालियर रेयन सिल्क मेन्युफैक्चरिंग
(बीबीए) कम्पनी लिमिटेड
स्टेपल फ्राइवर डिवीजन
विरलाग्राम, नागदा (एम. पी.)

Grasilene

सूटिंग्स/शर्टिंग्स
तथा अन्य कपड़े.

वैज्ञानिक मिश्रित धागे ग्रासीलीन के बने।

Grasilene

कृत्रिम सामान्य विस्कोज
तथा अन्य प्राकृतिक रेशों से बना एक
आश्चर्यजनक उच्च कार्यकारिता वाला
मिश्रित धागा !



संस्थापक
स्व. श्रीगोपाल नेवटिया
प्रबंध-संचालक
हरिप्रसाद नेवटिया

संपादक
नारायण दत्त
उपसंपादक
गिरिजाशंकर त्रिवेदी

व्यापार-व्यवस्थापक महेंद्र महेता

वर्ष २८ : अंक ११

इस अंक में

नवंबर १९७९

पत्र-वृष्टि	संपादक की डाक से	१३
भारतीय राजनीति का शुद्धात्मा	गंगाशरण सिंह	१९
जयप्रकाश	स्व. यूसुफ मेहरअली	२३
एक बुनियादी क्रांति की दहलीज पर	जयप्रकाश नारायण	२९
हमारा पेशा	मदर तेरेसा	३३
अनंत में जीना	बलवीर सिंह	३४
सम्य मानव के सात महापाप	कोन्राड लारेन्स	३७
अंधेरे की तरफ (कविता)	अब्दुल मलिक खान	३९
मेरे पिता	सत्यजित राय	४०
फिलि बोयो कुसी मृगनेनी	गोपालप्रसाद व्यास	४८
एक वाक्य में जीवन-दर्शन	५३
सुंदरता का रहस्य	डेविड गन्स्टन	५८
जिंदगी के युद्ध का हिस्सा (कविता)	नंद चतुर्वेदी	५९
विज्ञान-बिंदु	केजिता	६१
मेरा बचपना सही (कविता)	यज्ञ शर्मा	६५
तेल कहां है ?	रमेशदत्त शर्मा	६६
साद जैसे ईद का (उर्दू कहानी)	अतिया परवीन	७८

ग्वालियर के

क्षितिज पर नया सितारा...

MAPP-GRASIM-6 Hin



ग्रासीलीन से
बने कपड़े शीघ्र ही
सभी प्रमुख स्टोर्स पर
उपलब्ध



दि ग्वालियर रेयन सिल्क मेन्युफैक्चरिंग
(वीर्विंग) कम्पनी लिमिटेड
स्टेपल फ्राइबर डिबीजन
विरलाग्राम, नागदा (एम. पी.)

Grasilene

सूटिंग्स/शर्टिंग्स
तथा अन्य कपड़े

वैज्ञानिक मिश्रित धागे ग्रासीलीन के बने।

Grasilene

कृत्रिम सामान्य विस्कोज
तथा अन्य प्राकृतिक रेशों से बना एक
आश्चर्यजनक उच्च कार्यकारिता वाला
मिश्रित धागा।



संस्थापक
स्व. श्रीगोपाल नेवटिया
प्रबंध-संचालक
हरिप्रसाद नेवटिया

संपादक
नारायण दत्त
उपसंपादक
गिरिजाशंकर त्रिवेदी

व्यापार-व्यवस्थापक महेंद्र महेता

वर्ष २८ : अंक ११

इस अंक में

नवंबर १९७९

पत्र-वृष्टि	संपादक की डाक से	१३
भारतीय राजनीति का शुद्धात्मा	गंगाशरण सिंह	१९
जयप्रकाश	स्व. यूसुफ मेहरअली	२३
एक बुनियादी क्रांति की दहलीज पर	जयप्रकाश नारायण	२९
हमारा पेशा	मदर तेरेसा	३३
अनंत में जीना	बलवीर सिंह	३४
सम्य मानव के सात महापाप	कोन्राड लारेन्स	३७
अंधेरे की तरफ (कविता)	अब्दुल मलिक खान	३९
मेरे पिता	सत्यजित राय	४०
कित् छोयो कुसीं मृगनेनी	गोपालप्रसाद व्यास	४८
एक वाक्य में जीवन-दर्शन	५३
सुंदरता का रहस्य	डेविड गन्स्टन	५८
निंदगी के युद्ध का हिस्सा (कविता)	नंद चतुर्वेदी	५९
विज्ञान-बिंदु	केजिता	६१
मेरा बचपना सही (कविता)	यज्ञ शर्मा	६५
तेल कहां है ?	रमेशदत्त शर्मा	६६
चांद जैसे ईद का (उर्दू कहानी)	अतिया परवीन	७८

सागर निष्करण

घास (कविता)

दोस्ती का स्वेटर

सृजनात्मक चिंतन

कौन मूल्यवान ?

स्मृति के अंकुर

बिछुड़े हुए पड़ोसी मुल्क के नाम (कविता)

एंग और चेंग

पिजरे से आजाद लेकिन उड़ने से भयभीत

महायोगी मिलरेप (आत्मकथा-सार)

एक पत्र-अंश (कविता)

शास्त्रीय संगीत, कितना शास्त्रीय ?

अवैध, किंतु असाधारण

महान बिप्लवी

महाभियोग एक अमरीकी राष्ट्रपति पर

ग्रंथलोक

में धोबी हूं

दो क्षण तो हंस लें

निकलस मोन्सरात

कार्ल सैंडवर्ग

अमृता प्रीतम

अर्नेस्ट डिन्नेट

मनुगुप्त

त्रिपाठी, मुखर्जी, सोमदत्त

नवराज

डा. आस्पी गोलवाला

स्व. वलराज साहनी

पृथ्वीनाथ शास्त्री

लक्ष्मीकांत सरस

प्यारेलाल श्रीमाल

सुदीप

वचनेश त्रिपाठी

विश्वास

पृथ्वीनाथ शास्त्री

यदुनाथ थत्ते

.

८२

८७

८८

९०

९५

९७

१००

१०१

१०५

११२

१२४

१२५

१२९

१३५

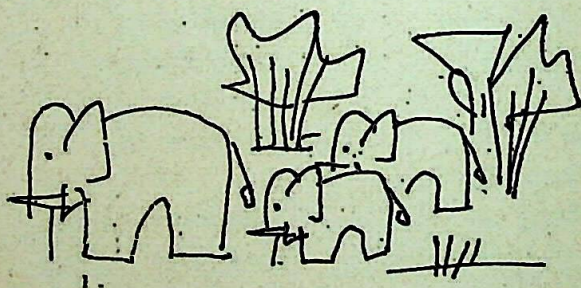
१४२

१४८

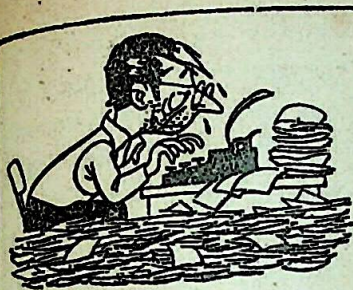
१५५

१५८

चित्रसज्जा : ओके, शेणै, सत्यजित राय, एन. पी. सोनी, डा. भटनागर, राणे, राणा।



श्री हरिप्रसाद नेवटिया द्वारा नवनीत प्रकाशन लिमिटेड, ३४१, ताडदेव, बंबई-३४ के लिए प्रकाशित तथा श्री वेंकटेश्वर प्रेस, ३६/४८, खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग, बंबई-४ में मुद्रित।



पत्र-वृष्टि

नवनीत का दीपावली विशेषांक अपनी गरिमा और परंपरा के अनुरूप बहुत उच्च-स्तरीय और पठनीय बन गया है। बधाई। ऐसी मानक पत्रिकाओं के रहते हिंदी भाषा और साहित्य की प्रतिष्ठा सुरक्षित है। भविष्य के लिए शुभकामना।

—विवेकी राय, गार्जीपुर, उ. प्र.

०००

सुसंपादित, सुमुद्रित सुंदर दीपावली विशेषांक के लिए हृदय से आभारी हूँ।

—गौरीशंकर गुप्त, वाराणसी

०००

नवनीत का दीपावली विशेषांक अपने परंपरागत गौरव के सर्वथा अनुरूप लगा। श्री व्योहार राजेन्द्रसिंह की बोधकथा, श्री खनलाल जोशी का 'महत्त्वाकांक्षा में महत्त्व कितना?', श्री रंजन सूरिदेव का 'प्राकृत रामचरित' एवं श्री केदारनाथ मिश्र और श्री वीरेन्द्र मिश्र की रचनाएं, श्रेष्ठ

हैं। गणेश और लक्ष्मी पर सामग्री का अभाव दृष्टिगत हुआ। —कैलाश त्रिपाठी, सेवरही (देवरिया), उ. प्र.

०००

नवनीत के दीपावली विशेषांक में 'एक अनूठे सवाल' की परंपरा में इस बार लेखकों के ज्ञान की परीक्षा थी। उन्हें अपनी बात एक वाक्य में कहनी थी। अतः कई लेखकों के जवाब टालमटोल वाले लगे, तो कुछ ने इसे हंसी-मजाक में लिया। जबकि स्वामी विवेकानंद का 'अंतस्थ देवत्व' सर्वाधिक प्रेरणादायी प्रतीत हुआ।

—डा. रश्मिकांत व्यास, उज्जैन, म. प्र.

०००

सरस कविताओं, सुंदर लेखों से परिपूर्ण है यह अंक। 'उद्बोधन', 'संस्मरण' और 'जीवन-सौरभ' विशेष ज्ञानवर्द्धक और प्रेरणास्पद हैं। 'एक वाक्य में जीवन-दर्शन', 'महायोगी मिलरेप' इस विशेषांक के प्राण हैं। आवरण पृष्ठ का चित्र नवनीत की सांस्कृतिक विरासत का उद्बोधक है। मुद्रण, आकलन अद्वितीय और आकर्षक है। नवनीत परिवार को मेरी बधाई।

—चक्रधर नलिन, रायबरेली

०००

श्री सत्यकाम विद्यालंकार का 'अंग्रेजी में नया वेदानुवाद' लेख मुझे अत्यंत रोचक और ज्ञानवर्द्धक लगा।

आज से कुछ वर्ष पूर्व जब मैंने वेद पढ़े थे, मुझे उनमें कहीं भी दार्शनिकता या चिंतन का अहसास जरा भी नहीं हुआ

हिंदी डाइजेस्ट

था। इसका कारण शायद यही था कि मैंने वेदों का वही अर्थ पढ़ा था जो लोक-प्रचलित है और जिसका लेखक ने अपने लेख में खंडन किया है। वेदों का इतना गहन और आध्यात्मिक अर्थ पढ़कर मैं पुलकित हो उठा। पाठकों की ज्ञानवृद्धि और वेदों के वास्तविक स्वरूप का दर्शन करवाने के लिए मैं लेखक का हृदय से आभारी हूँ। ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि वह लेखक और स्वामी सत्यप्रकाश को इस महान् कार्य को संपन्न करने में सफलता प्रदान करे।

—प्रभाकर शेवगांवकर,
रामन् रिसर्च इंस्टिट्यूट, बेंगलोर-६

०००

नवनीत की परंपरानुसार दीपावली अंक में लेखकों से दिलचस्प प्रश्न पूछकर उनके उत्तर छापना सराहनीय है। पाठकों को भी इसमें सम्मिलित किया जाना और भी स्वागतयोग्य है।

—साधूराम एम. तोतलानी, जयपुर

०००

काव्य के अतिरिक्त लेख, संस्मरण एवं कहानियां भी विशेषांक में अत्यंत उत्कृष्ट हैं। स्वर्गीय भुवनेश्वरजी का अंचलजी लिखित संस्मरण मर्मस्पर्शी है। श्री मकरंद दवे का लेख 'मानव विकास का महापर्व', श्री रतनलाल जोशी का 'महत्वाकांक्षा में महत्त्व कितना?', श्री दिनेशचंद्र वर्मा का 'भयानक रस की एक मूर्ति' जैसे लेख एवं कोहलीजी का उपन्यास-सार 'दंड' इस अंक की सांस्कृतिक उपलब्धियां कही जा नवनीत

कृपया रचना भेजते समय उसके साथ पर्याप्त टिकट लगा लिफाफा अवश्य भेजा करें। अन्यथा रचना को न तो वापस किया जायेगा, न उसके विषय में पत्र-व्यवहार किया जायेगा। कृपया यह आशा भी न करें कि रचना हमारे यहां रखी रहेगी और बाद में कभी डाक-टिकट भेजकर मंगवायी जा सकेगी। —संपादक

सकती हैं। इसी कोटि की श्रेष्ठ रचनाएं हैं 'प्राकृत रामचरित' (श्री रंजन सूरिदेव) तथा महायोगी मिलरेप। श्री रमेश मंत्री का व्यंग्य लेख सामयिक एवं सटीक है।

—राजेन्द्र गौतम, नयी दिल्ली-३२

०००

अक्टूबर-७९ के विशेषांक ने नवनीत के विशेषांकों की परंपरा में एक नया कीर्तिमान स्थापित किया है। सोलह से अधिक कविताएं, डा. शिवराम कारंत और 'संडे' संपादक एम. जे. अकबर से परिचर्चा के साथ-साथ 'एक वाक्य में जीवन-दर्शन' पर एक साथ इतने विचार! आपने सचमुच कितना श्रम किया है इनके संकलन-संपादन में! कुमार प्रशांत, जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी और सुखवीर का योगदान प्रशंसनीय है। आशुतोष पांडेय का संस्मरण 'राजपाल के लिए चोरी' अच्छा लगा। मिलरेप का कथासार और श्री सत्यकाम विद्यालंकार का लेख 'अंग्रेजी में नया वेदानुवाद'

नवनीत

अपने लेखकों से

श्री संपादकजी, कृपया मुझे बतायें कि नवनीत में आप कौसी रचनाएं लेते हैं ? इस आशय के अनेक पत्र हमें प्रतिदिन मिलते हैं। नवनीत के कुछ अंक देखने से भी इस प्रश्न का उत्तर मिल जायेगा; फिर भी यदि आप हमसे ही जानना चाहें, तो हम कहेंगे कि निम्नलिखित ढंग की रचनाएं हमें नहीं चाहिये।

क. जो जीवन में अनास्था जगायें, देश के विभिन्न समुदायों में स्नेहसूत्र तोड़ें, व्यक्तिगत आक्षेप करें, सहज-स्वस्थ सुख को ठेस पहुंचायें; या जो कैलेंडर देखकर पर्वों, जयंतियों और पुण्यतिथियों के उपलक्ष्य में लिखी गयी हों।

ख. आपके अन्यत्र प्रकाशित लेख का नया संस्करण, कश्मीरी कविता का वाया तमिल उल्था, अल्बतों मोराविया के 'रोम की औरत' का भारतीय रूपांतर 'कौशांबी की कामकन्या', सर्वविदित हास्योक्तियों का श्रेय आपके जिला-महाकवि या तहसील-राजनेता को देने वाले विनोद-प्रसंग।

ग. इन विषयों से हमें परहेज है—वेदों में हृदय-प्रतिरोपण, कोसी कला के जंगल में जिराफ और बबरशेर की मुठभेड़, कामायनी में क अक्षर का प्रयोग, महावानर पुराण में मिर्जापुर का उल्लेख, कड़वी लौकी के रस से सर्वरोगों का उपचार, इत्यादि-इत्यादि।

* लेखमालाएं या मास-भविष्य लिखने के आश्वासन कृपया हमें न दें; न एक साथ सवा सत्ताईस कविताएं भेजें।

* रचना पर्याप्त हाशिया और पंक्तियों के बीच पर्याप्त स्थान छोड़कर सघे अक्षरों में कागज के एक ओर लिखकर या टाइप करवाकर भेजें। भेजने से पहले उसे एक बार पूरे मनोयोग से अवश्य पढ़ लें, भले उस दिन के बजाय अगले दिन की डाक में भेजनी पड़े। कार्बन-कापी न भेजें। लेख के आरंभ या अंत में अपना पूरा डाक-पता दें।

* रचना के साथ टिकट लगा और पूरा पता लिखा लिफाफा अवश्य रखें। अन्यथा रचना लौटायी नहीं जायेगी, न उसके बारे में पत्र-व्यवहार होगा।

* रचनाएं किसी व्यक्ति के नाम पर नहीं, निम्नलिखित पते पर भेजें:

संपादक-नवनीत हिंदी डाइजेस्ट

नवनीत प्रकाशन लिमिटेड, ३४१, ताडदेव, बंबई-३४

आकर्षक हैं। हार्दिक बधाई।

—अखिल विनय, बंबई-१२

०००

सितंबर अंक में प्रकाशित तीनों कहानियां बेहद अच्छी लगीं। खास तौर से डा. राधावल्लभ त्रिपाठी की कहानी 'विद्यारंभ'।

—राजेश पटेल 'उत्साही',
होशंगाबाद, म. प्र.

०००

सितंबर अंक में प्रकाशित 'विद्यारंभ' कहानी वर्तमान 'पब्लिक स्कूलों' की तथाकथित उच्च मानसिकता और उससे जुड़े एक मध्यवर्गीय परिवार की स्थिति पर गहरी चोट करती है। आजकल समाज की अव्यवस्थाओं, भ्रष्टाचार पर तो बहुधा कहानीकार चोट करते दिखाई देते हैं; पर एक शिक्षक और कथाकार के नाते डा. राधावल्लभ त्रिपाठी ने इस कहानी के माध्यम से बेलाग बात कही है।

—सूर्यकान्त त्रिपाठी, मिर्जापुर, उ. प्र.

०००

सितंबर अंक में श्री सुनील कौशिक की कहानी 'वसीयत' उत्तर प्रदेश पत्रिका के अक्टूबर १९७८ के अंक में भी प्रकाशित हो चुकी है। पूर्व प्रकाशित कहानी का नवनीत में छपना आश्चर्य का विषय है!

'विद्यारंभ' कहानी एक साधनरहित उच्च आकांक्षाओं से युक्त निम्न मध्यमवर्गीय परिवार का वास्तविक चित्र है। इसके लेखक डा. राधावल्लभ त्रिपाठी साधुवाद के पात्र हैं। 'जनता संकट' श्री

नवनीत

चंदे की दरें

(भारत में) एक वर्ष : २४ रु., दो वर्ष : ४६ रु., तीन वर्ष : ६६ रु.। विदेशों में समुद्री डाक से : एक वर्ष : ६० रु., दो वर्ष : १०५ रु., तीन वर्ष : १५० रु.। विदेशों में हवाई डाक से : एशियाई देशों के लिए एक वर्ष का १२० रु., दो वर्ष का २१० रु., तीन वर्ष का ३०० रु.; एशिया के अलावा अन्य देशों के लिए एक वर्ष : १५० रु., दो वर्ष : २७५ रु. और तीन वर्ष : ४१० रु.।

अटल विहारी वाजपेयी का व्यक्तिगत स्पष्टीकरण अधिक प्रसीत होता है।

—डु. पूनम अग्निहोत्री, मैनपुरी, उ. प्र.

०००

नवनीत (सितंबर-७९) में श्री रामानन्द शर्मा संबंधी अपील पढ़ने का अवसर मिला।

श्री दिनकरजी के पटना-स्थित निवास पर मुझे दो-तीन वार शर्माजी के दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त हो चुका है। हिंदी के प्रचार-प्रसार में उनके योगदान को अस्वीकारना अपने आपको नहीं पहचानने-जैसी भूल होगी।

—हिमांशु श्रीवास्तव, पटना-८००००७

०००

श्री नेमिशरण मिश्र के लेख 'फुलर : विचारों की खदान' (सितंबर अंक) ने मुझे यह पत्र लिखने को प्रेरित किया है।

मुझे विश्वास है कि आप इसे निस्संकोच स्वीकारेंगे कि फुलर के 'विचारों की खदान'

नवंबर

से ज्ञानबोध का 'माल' निकालने के लिए केवल एक लेख काफी नहीं है... फुलर ही ऐसे एकमात्र दार्शनिक हैं जो तथ्यों और आंकड़ों की सहायता से अपनी स्थापनाएं समझा सकते हैं। उनके चिंतन का सार एक सामान्य व्यक्ति को भी अपने कर्मक्षेत्र में वांछनीय दिशा पकड़ने के लिए प्रेरित करता है।

—वसन्त आथा, सम्बलपुर-७६८००४

०००

सितंबर-७९ में प्रकाशित डा. सीताराम सहगल का लेख 'सूर्य, जीवन का ऊर्जा स्रोत' वैदिक विज्ञान की मनोरम झांकी प्रस्तुत करता है।

बेदायें में वैज्ञानिक दृष्टि रखने वाले आचार्य यास्क जैसे मनीषियों के निष्कर्षों की वर्तमान भौतिक विज्ञान के साथ संगति बिठाकर पौराण्य और पाश्चात्य बुद्धि-जीवियों को चमत्कृत कर देने वाले अप्रतिम विद्वान् महामहोपाध्याय श्री मधुसूदन ओझा वर्तमान शताब्दी की विभूति थे। श्री ओझाजी की स्मृति जागृत करा देने वाले उक्त लेख के लिए मेरे शतशः वर्धापन स्वीकार करें।

डा. राधावल्लभ त्रिपाठी ने अपनी 'विद्यारंभ' कहानी में पब्लिक स्कूलों के प्रति मध्यवर्ग में पनपते मिथ्या आकर्षण को जिस सहज किंवा गूढ़ व्यंग्यात्मक शैली में चित्रित किया है, वह लाजवाब है।

ऐसी ही शिक्षा पद्धति पर अकबर इलाहाबादी का निम्न शेर सटीक बैठता है :

१९७९

हम ऐसी कुछ किताबें
काविले-जव्ती समझते हैं।

कि जिनको पढ़के लड़के

बाप को खव्ती समझते हैं ॥

—पं. प्रेमाचार्य शास्त्री, दिल्ली-७

०००

श्री वचनेश त्रिपाठी का लेख 'एक स्वातंत्र्य-व्रती' (सितंबर-७९) शहीद माहौर की तपस्या और त्याग का स्मरण दिलाता है। इस संबंध में पहले भी लिखा जा चुका है, किंतु श्री त्रिपाठीजी के लेख में नयापन है।

फिर भी उनके लेख से एक भ्रम होता है। उन्होंने लिखा है—'झांसी के गुप्तचरों की सरगरमी बढ़ी तो आजाद, भगवानदास माहौर, सदाशिव और वैशंपायन ग्वालियर चले गये।'।

पर यह सही नहीं है। झांसी में गुप्तचर विभाग की सरगरमी बढ़ने पर माहौर एवं सदाशिव राव ने आजाद को ओरछा के जंगलों में रहने की सलाह दी थी। वहीं वे लोग उनके सहायक भी रहे। वहीं आजाद ने गोली चलाने का अच्छा अभ्यास किया, बम भी बनाये।

शायद वे कुछ दिनों तक ग्वालियर भी रहे हों, किंतु उनका मुख्य कार्य सन १९२५ से १९२९ तक सातार नदी के तट पर ही चला था। काकोरी-कांड के बाद वे झांसी आये और वहां कुछ महीने रहकर ही ओरछा चले गये। वे वहां साधु के वेश में रहे।

—मैयालाल शर्मा,

मामोन दरवाजा, टीकमगढ़, म. प्र.

हिंदी डाइजेस्ट

नवनीत (सितंबर-७९) में पाकिस्तानी शायरा परवीन शाकिर पर प्रकाशित लेख को पढ़कर निम्नलिखित पंक्तियां :
मुश्तरका दुश्मन की बेटी,
मेरी बेटी जैसी प्यारी,
तूने भारत की घरती पर
नज्मे गायीं गीत सुनाये
प्यार के गीत ।

उन गीतों ने फूल खिलाये,
प्यार के फूल-मुहब्बत के गुल,
जुही, चमेली, नरगिस, सम्बुल,
नन्हे बच्चों के हंसते ओंठों से सुंदर।
उनकी भीनी-भीनी खुशबू
चारों जानिब फैल रही है ।
लेकिन मैं यह सोच रहा हूं,
तेरे इस प्यारे गुलशन की
पहरेदारी कौन करेगा ?

आयेगी एक रोज सियासत,
(फूलों और कलियों की दुश्मन)
चोर की सूरत, चुपके-चुपके,
फूलों पर बारूद बिछाकर,
उनमें आग लगा देगी,
सारा बाग जला देगी ।
कितने भी खुशरंग हों,

कैसी भी प्यारी खुशबू देते हों,
फूल मगर गोली तो नहीं हैं ।
एटम बम से कौन लड़ेगा ?

(पहली पंक्ति परवीन साहिवा की है, जो
लता मंगेशकर के लिए लिखी गयी थी।)

—योगेन्द्रपाल साबिर, शिकोहाबाद,
जि. मैनपुरी, उ.प्र.

०००

नवनीत का नियमित पाठक हूं। हमेशा
अंक प्राप्त करने की प्रतीक्षा रहती है।
दीपावली-अंक हाथ में आते ही पढ़ गया।
इस अंक में जानकीवल्लभ शास्त्री का
'सामगान', श्रीरंजन सूरिदेव का 'प्राकृत
रामचरित', 'भारत १९८४ में' रचनाओं की
जितनी भी प्रशंसा की जाये, कम है। मेरा
नम्र अनुरोध है कि खेल-जगत संबंधी लेख
कभी न छूटने दिया करें। समाज में फैले
भ्रष्टाचार पर भी कभी-कभी लेख छापते रहें।

—सुरेन्द्रकुमार शर्मा, फैजाबाद, उ.प्र.

०००

मेरी इच्छा है कि 'नवनीत सौरभ' की
तरह आप नवनीत में अब तक प्रकाशित
कहानियों का एक संग्रह भी प्रकाशित करें।
नवनीत में प्रकाशित कहानियां स्तरीय
होती हैं।

—गुणेन्द्रनाथ सिंह,
सासाराम, रोहतास, बिहार



संपादकीय पत्र-व्यवहार का पता: नवनीत हिंदी डाइजैस्ट, ३४१, ताडदेव, बंबई-४०००३४

फोन : ३७२८४७

व्यक्त्वा-संबंधी पत्र-व्यवहार का पता: नवनीत प्रकाशन लिमिटेड, आशीष बिल्डिंग,
३३५, बेलासिस रोड, ताडदेव, बंबई-४०००३४

फोन : ३९२८८७

भारतीय राजनीति का शुद्धात्मा

जंगाशरण सिंह

जे. पी. एक दुर्लभ व्यक्ति थे, जिन्हें जीवन के हर क्षेत्र में स्वच्छता का, लगभग शक की हद तक का, आग्रह था।

असुंदरता उन्हें सरासर असह्य थी। उनके निजी जीवन की स्वच्छता फैलकर राजनैतिक और सार्वजनिक जीवन की स्वच्छता में परिणत हुई थी।

जीवन को वे कला मानते थे। कहा करते थे—'जीना सबसे श्रेष्ठ कला है—तमाम कलाएं उसी से निकलती हैं। जो कलात्मक ढंग से जीना नहीं जानता, वह बच्चा नागरिक और अच्छा मनुष्य नहीं हो सकता।'।

स्वच्छता उनकी सनक-सी बन गयी थी। जीवन के सामान्य कामों को भी वे कलात्मक ढंग से करने का यत्न करते थे। हजामत बनाना, खाना, कपड़े पहनना, कमरे को ठीक रखना और यहां तक कि लोगों के साथ सलूक—सभी कुछ वे बड़े करीने से करते।

मैंने बहुत कम सार्वजनिक व्यक्तियों को इन मामलों में इतना अधिक संवेदनशील पाया है।

एक मानी में जे. पी. का रूप भ्रामक था—उनके तौर-तरीके इतने नरमी-भरे

और शिष्टतापूर्ण थे कि उनके किये कुछ कामों की कोई कल्पना भी नहीं कर सकता था। उदाहरण के लिए, आज भी बहुतों को अचरज होता है कि ऐसा नरम आदमी हजारीबाग सेंट्रल जेल की दीवारें कैसे फांद सका होगा! इसी तरह वे बहुत-से साहस-कार्य कर सकते थे, जिनकी आशा लोग सामान्यतः उनसे नहीं करते थे।

जे. पी. को जनता की शक्ति में सदा ही अडिग विश्वास था; यह चीज उनके लिए धार्मिक आस्था जैसी थी। उन्हें इसका पक्का यकीन था कि केवल सरकारी तंत्र के जरिये बहुत ज्यादा भलाई साधी नहीं जा सकती। आम जनता की असली और स्थायी भलाई करने के लिए जनमत, जान-दार संघटन, और जन-जागृति जरूरी है।

इन्हीं कारणों से वे पदों-ओहदों से वचते रहे। वे मानते थे कि दफ्तर-रूपी 'पिंजरे' के बजाय आम जनता में रहते हुए वे अधिक उपयोगी काम कर सकेंगे। इसी-लिए वे राष्ट्रीय कांग्रेस के उन प्रमुख व्यक्तियों में से थे, जो अंग्रेजों द्वारा नियंत्रित धारासभाओं में शरीक होने के हमेशा विरुद्ध थे।

गांधीजी के नेतृत्व में कांग्रेस आंदोलन

● 'इंडियन एक्सप्रेस' से साभार ●



लोकनायक जयप्रकाशजी प्रभावतीजी के साथ :

ने सरकारी ओहदे न लेने की मनोवृत्ति को जन्म दिया था। उसका परिणाम देखा गया कांग्रेस (१९२२) में, जहां कि परिवर्तनवादियों और अपरिवर्तनवादियों में टकराव हुआ। परिवर्तनवादी चाहते थे कि कांग्रेस धारासभाओं में पहुंचे। अपरिवर्तनवादी इसके विरुद्ध थे। मतभेद हो गया।

फिर १९२६ में जब कांग्रेस ने केंद्रीय धारासभा में जाने का निर्णय सामूहिक रूप से किया, तब भी कई कांग्रेस-जन-विशेषतः युवक-बाहर ही रहे। इसी तरह १९४३ नवनीत

में कांग्रेस ने पुनः केंद्रीय धारासभा में जाने का फैसला किया। बहुत बड़ी संख्या में युवा कांग्रेस-जनों ने कांग्रेस में बने रहते हुए ही, धारासभा में न जाने का निश्चय किया।

जे. पी. इस युवावर्ग के ठेठ प्रतिनिधि थे। हालांकि जे. पी. सन १९२२ से सन १९२९ तक भारत से बाहर रहे, जब वे भारत लौटे और राष्ट्रीय आंदोलन में शरीक हुए, तब संयोग से बहुत-से कांग्रेस-जन-विशेषतः युवक-इन्हीं भावनाओं से

नवंबर

मरण रे तुहु मम श्याम समान

पिछले दिनों जे. पी. अक्सर मृत्यु की चर्चा करते रहते थे। ऐसी ही चर्चाओं के दौरान मैंने उन्हें बतलाया था कि रवीन्द्रनाथ ने मरण पर कई कविताएं लिखी हैं। मरण को उन्होंने नितान्त स्पृहणीय बना दिया है। एक बार मैंने उनको रवीन्द्रनाथ की 'भानु-सिंहेर पदावली' की 'मरण रे तुहु मम श्याम समान' तथा 'मरण ओहे मोर मरण कबे बुमि आमाके करिबे वरण' आदि कविताएं सुनायीं। जयप्रकाशजी इनसे बहुत प्रभावित हुए तथा उन्होंने इनका आनंद लिया। लेकिन इस सबके बाद उन्होंने कहा—'रवीन्द्रनाथ ने अपनी प्रतिभा के बल पर मृत्यु को इतना बढ़िया, इतना "फैसिनेटिंग" बना दिया है। क्या मृत्यु सचमुच इतनी "फैसिनेटिंग" है? फिर लोग डरते क्यों हैं? फिर घबराते क्यों हैं? मुझे लगता है कि रवीन्द्रनाथ की प्रतिभा ने इसको बहुत ऊंचा उठा दिया है। शायद वास्तविकता से बहुत ऊंची उठ गयी है यह चीज?' एक वर्ष पहले उन्होंने यह कहा था।

इस बार बंबई से लौटकर जब आये, तो एक रोज उन्होंने अचानक मुझसे कहा—'आपने रवीन्द्रनाथ की कविताएं सुनायी थीं, कुछ याद हैं?' पहले तो मैंने उन्हें बहुत-सी कविताएं सुनायी थीं, लेकिन आखिर में यही दोनों कविताएं मुझे याद थीं—ये दोनों मैंने उन्हें सुनायीं।

तब उन्होंने कहा—'आपको स्मरण होगा कि मैंने कहा था कि यह थोड़ा कल्पनापूर्ण है, वास्तविकता नहीं है। इसमें कल्पना ही है। बंबई से लौटने के बाद मैं अपने अनुभव से कह सकता हूं कि रवीन्द्रनाथ वाज करेक्ट। डेय इज ए वेरी फैसिनेटिंग थिंग। मृत्यु डरने की चीज नहीं है। मृत्यु घबड़ाने की चीज नहीं है। बल्कि मैं तो यह अनुभव करता हूं कि जिस पीड़ा से होकर मैं गुजर रहा हूं, जो कष्ट मैं भोग रहा हूं, उससे मृत्यु तो हजार गुनी अच्छी है। सिर्फ तुलनात्मक दृष्टि से अच्छी नहीं है। मेरा खयाल है कि मृत्यु कष्ट-दायक नहीं है और इसका कुछ अनुभव मुझे बंबई में हुआ है।'।

वह उन्होंने बताया भी।

मुझे अभी क्षमा कीजिये, समय गुजरने दीजिये तो मैं बतलाऊंगा कि उन्होंने क्या कहा, बंबई में उन्होंने किस तरह का अनुभव किया।

—बाबू गंगाशरण सिंह ['रविवार' में]

आंदोलित थे ।

जे. पी. अमरीका चले गये थे और उनके तथा युवा कांग्रेस-जनों के बीच किसी प्रकार का संपर्क नहीं था । मगर जे. पी. युवा पीढ़ी को प्रेरित करने वाली मुख्य भावधारा के साथ इस तरह घुल-मिल गये कि लोगों को महसूस ही नहीं हुआ कि वे अनेक महत्त्वपूर्ण वर्षों में भारत में नहीं थे । वे प्रगतिशील कांग्रेस-जनों की मुख्य धारा की मुख्य रौ बन गये ।

जे. पी. मामूली बातों और छोटी समस्याओं की कभी चिंता नहीं करते थे । मसलन, उनके हाथ हमेशा ही तंग रहते थे, मगर वे इससे कभी चिंतित नहीं हुए ।

सन १९३७ से १९४७ तक मैं जे. पी. और प्रभावतीजी के साथ पटना में परिवार के सदस्य की तरह रहा । पैसे न जे. पी. के पास होते थे न मेरे पास, और हम लोग चतुर भी न थे । गांव में अपने घर से अनाज लाकर किसी तरह गुजारा कर लेते थे । गेहूं, दाल, घी जे. पी. के घर से आ जाता; चावल, गुड़ मेरे घर से ।

एक दिन जे. पी., प्रभावतीजी और मैंने राजगिर जाने का निश्चय किया । चूंकि जे. पी. को कुछ काम निबटाना था, उन्होंने मुझसे कहा कि प्रभावतीजी को पटना जंक्शन ले जाओ और वहां मेरा इंतजार करो । जब जे. पी. पटना जंक्शन पहुंचे, ट्रेन छूट चुकी थी । हम ट्रेन में थे ।

जे. पी. के पास पैसे नहीं थे । वे चाहते तो घर चले जाते और सैर से चूक जाने के बारे में मन को मना लेते । मगर वे रेलवे बुक स्टाल के मैनेजर के पास पहुंचे और बोले कि कुछ पैसे दे दीजिये । बदले में वे अपनी हाथघड़ी देने को तत्पर थे । मैनेजर ने कृपापूर्वक पटना से बख्तियारपुर तक का किराया उन्हें दे दिया ।

जे. पी. ने राजगिर के बजाय बख्तियारपुर तक के ही टिकट के पैसे मांगे थे । उन्हें उम्मीद थी कि प्रभावतीजी और मैं वहां उनका इंतजार कर रहे होंगे । मगर जब वे बख्तियारपुर पहुंचे, तब तक राजगिर की ट्रेन छूट चुकी थी । अगली ट्रेन तक वे रुके रहे और ट्रेन आते ही बिना टिकट के ही उसमें चढ़ गये ।

रास्ते में टिकट-कलेक्टर ने उनसे टिकट मांगा । 'टिकट के एवज में मेरी हाथघड़ी रख लीजिये', जे. पी. उससे बोले । मगर तब तक टी. सी. ने जे. पी. को पहचान लिया और वह दूसरे यात्रियों के टिकट जांचने में मशगूल हो गया ।

दूसरा कोई आदमी होता तो इसे अपनी खुशकिस्मती समझता । मगर जे. पी. ने राजगिर स्टेशन पर उतरते ही मुझसे टी. सी. को किराया चुकाने को कहा । टी. सी. पैसे लेने को तैयार न था । मगर जे. पी. ने जोर डाला । टिकट का पैसा चुकता किया गया और रसीद प्राप्त की गयी ।



जयप्रकाश

स्व. यूसुफ मेहरअली

सन् १९३३ में एक रोज नासिक सेंट्रल जेल का फाटक खुला कैद की सजा पूरी कर चुके एक लंबे, विशिष्ट दिखने वाले नौजवान को रिहा करने के लिए। निश्चय ही भावी इतिहासकार जब हमारे जमाने के बारे में लिखेंगे, तो इसे १९३३ की एक महत्वपूर्ण घटना मानेंगे। कारण, उस युवक की रिहाई से भारत की राजनीति में एक नयी शक्ति का उदय हुआ था। जय-प्रकाश नारायण एक विचार, एक संकल्प, एक दृष्टि लेकर जेल से निकले थे। और उसमें से जनमी थी कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी।

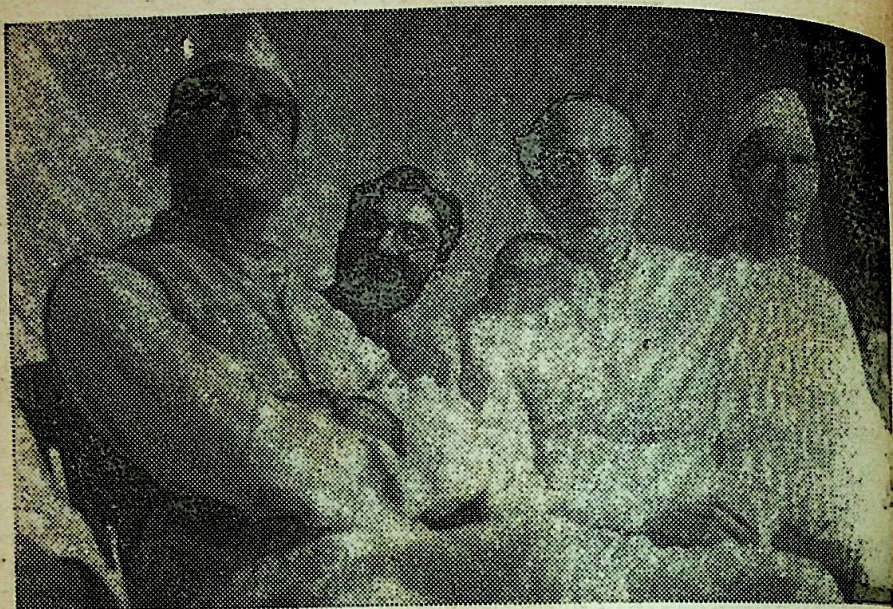
आज वे भारत के सार्वजनिक जीवन में सबसे लोकप्रिय और सम्मानित नामों में से एक हैं। मगर बहुत कम लोगों को मालूम है कि कितना शानदार है वह व्यक्तित्व, जिसे कि जयप्रकाश नारायण कहा जाता है। और इसका अंदाज तो और भी कम लोगों को है कि किन-किन अनुभवों और साहस-यात्राओं ने इस अत्यंत आकर्षक व्यक्तित्व का निर्माण किया है।

जीवन का प्रत्यक्ष अनुभव उन्हें है। शायद यही कारण है जो उनका चिंतन इतना स्पष्ट है। जब वे पढ़ाई जारी रखने अमरीका पहुंचे, तो अपना छात्र-जीवन उन्होंने क्लास-रूम में नहीं, बल्कि खेतों में शुरू

किया। अक्टूबर १९२२ में वे जब कैलिफोर्निया पहुंचे, तो पाया कि विश्वविद्यालय का सत्र शुरू होने में अभी तीन महीने बाकी हैं, और इतना पैसा उनके पास भी नहीं कि तब तक का खर्चा चला सकें। सो वे एक बगीचे में काम करने पहुंचे।

कैलिफोर्निया में बड़ी तादाद में भारतीय रहते थे, जिनमें काफी सारे सिक्ख और पठान थे। जयप्रकाश पठानों की एक टुकड़ी में शामिल हो गये; जिसका मुखिया शेर खां का बड़ा दर्शनीय व्यक्तित्व था—खां अब्दुल गफ्फार खां से भी ज्यादा ऊंचा और चौड़ा। असहयोग आंदोलन ने संसार-भर में भारतीयों को बहुत गहरा प्रभावित किया था और भारत से आने वाला हर शब्द गहरी दिलचस्पी का विषय होता था। जब यह जाहिर हुआ कि जयप्रकाश ने असहयोग आंदोलन में शरीक होने के लिए कालेज छोड़ा और विश्वविद्यालय की छात्रवृत्ति छोड़ दी, तब तो उन्हें काम पाने में कोई कठिनाई नहीं हुई।

फलों का मौसम तब खत्म होने को ही था और जयप्रकाश सुबह से रात तक सज्ज मेहनत करते अंगूरों, आड़ुओं, और बादामों के बीच। डाल से फल उतारने के बाद उनका चूने और गंधक से उपचार किया



एक सार्वजनिक सभा में बायें से जयप्रकाश नारायण, अशोक मेहता,
यूसुफ मेहरअली और आर. ए. खेडगीकर ।

जाता, फिर सुखाकर फैक्टरी में भेजा जाता सफाई के लिए । जयप्रकाश का काम था हर टोकरी में झांकना, सड़े फल बीन-बीन कर बाहर फेंकना । शायद यही काम वे आज भी कर रहे हैं—कांग्रेस की टोकरी में से सड़े फल निकाल फेंकना ।

इस तरह दिन में दस घंटे और सप्ताह में सात दिन काम करते रहे—उनके लिए रविवार था न तीज-त्योहार । मगर मजदूरी आकर्षक थी—चालीस सेंट प्रतिघंटा यानी चार डालर प्रति दिन, जो कि उन दिनों की मुद्रा-विनिमय की दर से चौदह रुपया दैनिक बैठती थी । नौजवान जय-प्रकाश को यह शाही रकम जान पड़ती थी

और महीने-भर में वे अस्सी डालर कमा सके । फलों का मौसम खत्म होने पर वे यह दौलत लिये बर्कले पहुंचे और विश्वविद्यालय के खुलने का इंतजार करने लगे । उन्होंने एक कमरा किराये पर लिया और अपना खाना खुद पकाने लगे ।

कैलिफोर्निया में एक ही सत्र गुजर पाया कि जयप्रकाश फिर दिवालिया हो गये । लिहाजा वे चले गये आयोवा विश्वविद्यालय, जहां पर शुल्क कैलिफोर्निया से एक चौथाई ही था । इसे चुका पाने के लिए भी वे आइडू के बगीचे में काम करते रहे । आयोवा से वे पहुंचे विस्कान्सिन विश्वविद्यालय । यहां पर एक नया तत्त्व उनके

जीवन में प्रविष्ट हुआ—ऐसा तत्त्व जिसने उनके जीवन को सर्वथा नयी ही दिशा में मोड़ दिया।

जयप्रकाश का व्यग्र मन जिस रोशनी के लिए टटोलवाजी कर रहा था, वह रोशनी उन्हें यहीं मिली। यह देखकर वे विस्मय में थे कि असीम अवसरों के देश अमरीका में भी अपार वैभव और घोर गरीबी लगभग साथ-साथ में मिलते हैं। इस पहली का समाधान क्या है? क्या कारण है कि कुछ के पास तो दुनिया की समस्त बेहतरीन चीजें हैं, जबकि ज्यादातर लोगों को गंदगी, गरीबी और अंतहीन मेहनत में जिंदगी गुजार देनी पड़ती है?

विस्कान्सिन विश्वविद्यालय के एक अध्यापक ने ऐलान किया था कि पूंजीवादी व्यवस्था के ढाँचे में गरीबी की समस्या का कोई हल नहीं है, और वे एक उत्कट समाजवादी के रूप में मशहूर थे। जयप्रकाश बड़ी उत्सुकता से उनके पास गये, दोनों का आपस में गहरा लगाव हो गया। जयप्रकाश मार्क्सवाद के क्लासिकी ग्रंथों को आतुरता से वाचने लगे और शीघ्र ही वे उनके समाजवादी बन गये—मगर जवर्दस्त मानसिक संघर्ष के बिना नहीं। अब तो उनके जीवन का अर्थ ही बदल गया। वे विज्ञान छोड़कर अर्थशास्त्र पढ़ने लगे। एम. ए. की उपाधि के लिए उनके लिखे शोध-निबंध की बड़ी तारीफ हुई और वे विश्वविद्यालय के प्रखरमति छात्रों में गिने जाने लगे। यहां से वे न्यूयार्क गये, जहां वे

सख्त बीमार पड़ गये और कई महीने अस्पताल में रहे।

अमरीका में जयप्रकाश लगभग आठ साल रहे और पांच अलग-अलग विश्वविद्यालयों में पढ़े। शुरुआत उन्होंने की थी गणित भौतिकी और रसायनशास्त्र के छात्र के रूप में; फिर वर्षों तक वे जीवशास्त्र, मनोविज्ञान, अर्थशास्त्र और समाजशास्त्र पढ़ते रहे। कई बार उन्हें पढ़ाई स्थगित करनी पड़ी, ताकि एक या दो सत्रों की पढ़ाई के लायक पैसा कमा सकें। उन्होंने दिन में दस घंटे खेतिहर मजदूर का, एक जाम-फैक्टरी में पैकर का, लोहे की एक फर्म में मैकेनिक का और एक रेस्तरां में बैसे का काम किया था। सेल्समैन के रूप में भी उन्होंने अपनी किस्मत आजमायी। लिहाजा १९२९ में जब वे भारत लौटे, तो आराम की जिंदगी की आशा करने वाले अनुभवहीन विद्यार्थी के रूप में नहीं, बल्कि दुनिया को नजदीक से देख चुके और सार्वजनिक जीवन में अपने को पूरी तरह समर्पित करने को कृतसंकल्प व्यक्ति के रूप में लौटे।

जवाहरलाल नेहरू ने फौरन उन्हें भारतीय कांग्रेस का श्रम अनुसंधान विभाग संभलवा दिया। कुछ ही महीने बाद १९३२ की सिविल नाफरमानों आंदोलन में जयप्रकाश कांग्रेस के कार्यकारी महामंत्री के रूप में काम कर रहे थे।

नासिक जेल में उनकी कैद के दिनों को इतिहास बड़े प्यार से याद किया करेगा।

उनके साथ वहाँ काफी संख्या में प्रमुख कांग्रेस कार्यकर्ता थे। मसानी वहाँ थे और थे अच्युत पटवर्धन, अशोक मेहता, एन. जी. गोरे, एस. एम. जोशी, एम. एल. दांतवाला।

इन तथा दूसरे मित्रों ने वहाँ भावी कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी की रूपरेखा तैयार की। दूसरी जेलों में भी कांग्रेस कर्मियों का युवा वर्ग या जो कि कांग्रेस में पैदा हो गयी सड़न से असंतुष्ट था, कांग्रेस के दृष्टिकोण और कार्यक्रम में अधिक गतिशील दिशा-परिवर्तन का आकांक्षी था और समाजवादी परिणामों पर पहुँच चुका था।

रिहाई के बाद शीघ्र ही जयप्रकाश ने पटना में अखिल भारतीय कांग्रेस सोशलिस्ट सम्मेलन आयोजित किया, जो आचार्य नरेन्द्रदेव की अध्यक्षता में हुआ। मौका महत्वपूर्ण था, क्योंकि ठीक उसी समय अखिल भारतीय कांग्रेस महासमिति की बैठक भी हो रही थी सिविल नाफरमानी को वापस लेने और संसदीय कार्यक्रम शुरू करने की मांग करने के लिए। यह उचित ही था कि इस दक्षिणपंथी बंहाव को रोकने के लिए वामपक्ष अपनी शक्तियों को संघटित करे। जयप्रकाश संघटन समिति के महामंत्री चुने गये। अगले महीनों में वे निरंतर काम में जुटे रहे—बेहरा प्रांत में जाते, क्रांतिकारी तत्वों को एक जुट करते और सब स्थानों पर कांग्रेस समाजवादी टोलियां स्थापित करते। चंद महीनों बाद बंबई में कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी कायम हुई। जय-

नवनीत

प्रकाश पार्टी के महामंत्री बने और लखनऊ अधिवेशन में कांग्रेस कार्यकारिणी के सदस्य बनाये जाने तक इस पद पर काम करते रहे। चंद महीनों बाद उन्होंने कांग्रेस हाइकमान से त्यागपत्र देकर फिर से पार्टी का महामंत्री पद संभाला।

रामगढ़ कांग्रेस से ठीक पहले जयप्रकाश जमशेदपुर में 'राजद्रोहात्मक भाषण' करने के आरोप में एकाएक गिरफ्तार कर लिये गये। उन्होंने बड़े फख्र के साथ अपना 'अपराध' स्वीकार किया और साल-भर की सख्त कैद की सजा पायी। रिहा होते ही जेल के फाटक पर ही उन्हें फिर से गिरफ्तार कर लिया गया।

कुछ समय बाद उन्हें अपने घर से हजार मील से भी ज्यादा दूर देवली के नजरबंद शिविर में भेज दिया गया। हफ्ते महीनों में ढल गये और महीने बरस बन गये; और अंततः स्थिति इतनी असहनीय हो उठी कि देवली कैप में नजरबंद तमाम राजनैतिक कैदियों ने अपनी शिकायतें दूर करवाने के लिए आमरण भूख-हड़ताल करने का फैसला कर लिया। जयप्रकाश के नेतृत्व में देवली कैप में हुए उस अनशन से सारे देश में उवाल आ गया। भूख-हड़तालियों की हालत दिनो-दिन बिगड़ती गयी और देश में क्रोध की लहरें दौड़ने लगीं। पूरे ३१ दिन उस अग्नि-परीक्षा को चलने देने के बाद भूख-हड़तालियों की मौत की जिम्मेदारी से बचने के लिए विदेशी सरकार अंत में बड़े अशोभन ढंग से झुकी। उन बहादुर

नवंबर

साथियों में से बहुतों की तंदुरुस्ती तबाह हो चुकी थी। जयप्रकाश इस अग्नि-परीक्षा से 'हीरो' बनकर निकले, हालांकि नौकर-शाही ने उनके पास से वरामद हुआ कहकर एक पत्र छापा था और उन्हें बद-नाम करने की भरपूर कोशिश की थी। इस पत्र के सिलसिले में गांधीजी ने सरकार को जो शानदार जवाब दिया था, वह दीर्घ कालतक स्मरण किया जायेगा।

जब 'भारत छोड़ो' आंदोलन छिड़ा, तब जयप्रकाश जेल में ही थे। उन्हें देवली से बिहार के हजारीबाग सेंट्रल जेल भेज दिया गया था। बाहर क्रांति छिड़ी हुई थी, ऐसे में जेलवास उनके लिए असह्य हो उठा। फिर एक सुबह सवने सुना कि जयप्रकाश अन्य चार साथियों के साथ जेल से निकल भागे हैं। सन वयालीस की क्रांति की सबसे सनसनी-खेज घटनाओं में से एक थी यह। उनके साहस और उपक्रम ने ब्रिटिश सरकार की नाक में दम कर दिया। उन्हें पकड़वाने के लिए ५,००० रु. के इनाम की घोषणा की गयी। बाद में इनाम की रकम बढ़ाकर १०,००० रु. कर दी गयी।

कुछ समय बाद आयी इस खबर ने और भी ज्यादा सनसनी फैला दी कि जय-प्रकाश और राममनोहर लोहिया नेपाल में पकड़े गये मगर उनके गोरिल्ला साथियों ने उन्हें हाथो-हाथ छुड़ा लिया और इसमें बाम लोगों ने भी उनका साथ दिया। सरकार के मुंह पर यह करारा तमाचा था

१९७९

और जयप्रकाश और लोहिया लगभग पौराणिक पुरुष बन गये।

घटना-चक्र का असह्य बोझ पड़ रहा था उन पर-शिकार किये जा रहे पशु की तरह भटकाव, काम की असामान्य स्थितियां, लगातार रतजगा। उनका स्वास्थ्य चौपट हो गया। ऐसे ही वक्त पंजाब में वे पकड़ लिये गये। सरकार उनसे इस कदर खौफ खाती थी कि लंबे अरसे तक तो यह बात भी एकदम गुप्त रखी गयी कि वे कहाँ पर हैं। उन्हें शारीरिक यंत्रणा दी जाने और उन पर 'थर्ड डिग्री' तरीके आजमाये जाने की खबरों से जनता बेचैन थी। असलियत क्या है, यह पता लगाने के लिए श्रीमती पूर्णिमा बनर्जी ने लाहौर हाइकोर्ट में हैबियस कार्पस अर्जी दाखिल की।

इस कदम को बेकाम करने के लिए सरकार ने घोषित कर दिया कि जय-प्रकाश १८१८ के रेग्युलेशन-३ के तहत राजबंदी हैं; लिहाजा हाइकोर्ट के अधिकार-क्षेत्र से परे हैं। और जब हाइकोर्ट ने इसी आधार पर हैबियस कार्पस की अर्जी खारिज कर दी कि जयप्रकाश राजबंदी हैं और इस कारण हाइकोर्ट के अधिकार-क्षेत्र से परे हैं, तब विदेशी सरकार ने फौरन उन्हें फिर से सुरक्षा-बंदी बना दिया। ऐसे किया जाता है कानून और व्यवस्था का पालन इस देश में!

कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के तमाम नेताओं में जयप्रकाश 'थीअरी' से सबसे ज्यादा आकृष्ट हुआ करते। मगर वे कठ-

मुल्ला नहीं हैं। उनकी उंगलियां सदा मंज-
बूती से टिकी रहती हैं जनता की नब्ज
पर। संकुचित मतवाद उन्हें सरासर ना-
पसंद है। अगर कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी एक
निरी राजनैतिक पार्टी से बढ़कर कुछ है,
अगर आज वह देश के अधिकाधिक क्रांति-
कारी तत्वों को अपने वैचारिक प्रभाव
में समेटती हुई एक सशक्त आंदोलन बन
गयी है तो जयप्रकाश को इसका कम श्रेय
नहीं है।

लेखक के रूप में जयप्रकाश ऐसी शैली
के धनी हैं जो एक साथ सरल और सीधी
है। उनकी पुस्तक 'समाजवाद क्यों ?'
की बड़ी तारीफ हुई है। भाषणकर्ता के
रूप में वे धुआंधार वक्ता नहीं हैं, मगर
अपने खरेपन और विषय पर पूरी पकड़
के जरिये वे श्रोताओं पर धुआंधार
वक्ताओं से कहीं ज्यादा प्रभाव छोड़
जाते हैं।

जहां तक मैं ढूंढ पाया हूं, उनमें दो अव-
गुण ह। पहला यह कि उनके पास बड़ा ही
शानदार शेविंग-सेट है और वे उजली
मुस्कान के साथ खुद बताया करते हैं कि
शहर में इससे बढ़िया सेट दूसरा नहीं
मिलेगा। जब जयप्रकाश जैसा खूबसूरत चेहरा
किसी ने पाया हो, क्षम्य ही कहा जायेगा
न इसे ?

दूसरे अवगुण को क्या नाम दूं, मेरी
समझ में नहीं आ रहा है। शायद इसे
'टाइम सेन्स का अभाव' कहना ठीक रहेगा;
क्योंकि इसे 'वक्ता की गैरपाबंदी' कहना

बहुत बेरौनक होगा। असल में बात यह
है कि जयप्रकाश को बढ़िया वहस में आनंद
आता है, खासकर जब कि सामने वाला
बुद्धिमान हो; और उसके लिए वे दूसरे
दस कार्यक्रम चूकने को भी तैयार हो जाते
हैं। मगर ऐसे मौकों पर जब वे अगले कार्य-
क्रम में विलंब से तशरीफ लाते हैं तब उनके
मुखड़े पर ऐसी सच्ची बेदना बिछी होती
है कि उनकी वह वक्त की गैरपाबंदी
उन्हें और भी प्यारा बना देती है।

जयप्रकाश अभी युवक हैं; मगर उनके
पास ज्ञान और अनुभव की ऐसी विपुल
राशि है, जैसी कि इस देश में कम लोगों
के ही पास होगी। वे सौम्य हैं, पर साथ
ही दृढ़ भी हो सकते हैं और यह तो वे साबित
कर ही चुके हैं कि बड़े-बड़े फैसले करने का
दमखम उनमें है। इन सबसे बढ़कर, उनके
पास आने वालों को मोहते हैं उनके मान-
वीय गुण।

ये हैं जयप्रकाश—निराडंबर, बेहद उदार,
दिन की तरह खुले और साफ, आज की
साधन-सामग्री से उजले कल के निर्माण में
निरत। बिहार के सारन जिले के छोटे-से
गांव सिताबदियारा में जनमे इस किसान-
बालक ने जीवन में पहली बार ट्राम उन्नीस
बरस की उम्र में देखी थी। आज वह उस
आंदोलन के अग्रगण्य नायकों में से है
जिसके साथ इस देश के भविष्य का अटूट
संबंध जुड़ गया है।

[सिताबदियारा इस समय उत्तर प्रदेश
के बलिया जिले का हिस्सा है। —सं.]



एक बुनियादी क्रांति की दहलीज पर

अथ प्रकाशनार्थम्

आज हमें समाज के मूल्यों में मूलभूत परिवर्तन करना है। यह छोटा-सा काम नहीं है। करोड़ों लोगों के मानस-परिवर्तन का काम है। ऐसे महान काम के वाहक बनने की जिम्मेदारी मुख्य रूप से आज की युवा-पीढ़ी को उठानी है। हमारी पीढ़ी के लोगों को जो काम करना था, वह कर चुके। आने वाले जमाने की जिम्मेदारी आज की नयी पीढ़ी की है, इस देश के तरुणों की है, युवकों की है।

एक बार सर्वहारा को समाज में क्रांतिकारी वर्ग माना गया। किंतु आज अब मजदूर वर्ग क्रांति का अग्रदूत नहीं बन सकता। अमरीका, इंग्लैंड और यूरोप के अन्य देशों में मजदूर-वर्ग भी समाज का एक स्थापित हित बन गया है। और स्थापित हित बन जाने के बाद उसमें क्रांतिकारी शक्ति नहीं रहती।

इसलिए यूरोप के युवा आज कह रहे हैं कि अब जो क्रांति होने वाली है, वह बुद्धि-जीवियों की क्रांति होगी। विद्यार्थी उसमें सम्मिलित होंगे और क्रांतिकारी विचारक उसका नेतृत्व करेंगे।

हमारे यहां भी विद्यार्थियों तथा युवकों में असंतोष है। वर्तमान शिक्षण पद्धति की

जो खराबियां हैं, जिस तरह आज हमारे विद्यार्थियों को शिक्षा दी जा रही है, शिक्षा प्राप्त करने के बाद उनको जिन परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है, उन सबके कारण उनमें एक विद्रोह की भावना जागती है। वावजूद इसके आज के सभी प्रचलित मूल्यों को वे चुनौती दे रहे हैं, ऐसा भी नहीं कहा जा सकता।

इसलिए हमारे युवकों में एक क्रांतिकारी शक्ति जागृत हो और वे एक रचनात्मक मार्ग की तरफ मुड़ें, ऐसा प्रयास करना है। व्यापक समाज-परिवर्तन के काम में युवकों की शक्ति लगाकर सम्पूर्ण राष्ट्रीय जीवन को एक मोड़ देना है। आज के युग की यह मांग है। मानव-आत्मा स्वातंत्र्य चाहती है, आत्मसाक्षात्कार चाहती है। आज तक जो क्रांतियां हुई हैं, वे मानव आत्मा की तड़प की ही परिणाम हैं। किंतु बाद में इन क्रांतियों का स्वरूप ऐसा हो गया, जिसमें मानव-आत्मा की उपेक्षा हुई और तंत्र तथा संस्थाओं पर अधिक जोर दिया गया।

क्रांतिकारी नेताओं ने यह माना कि समाज-संचालन के तंत्रों को वे बदल सके हैं और क्रांति करने में सफल हुए हैं, किंतु

इतना ही यथेष्ट नहीं था। क्रांति के जो मूलभूत ध्येय थे, वे तो अभी दूर ही थे। समानता स्वतंत्रता, बंधुता, विरादरी, राज्यविहीन समाज, हर एक को उसकी आवश्यकतानुसार मिले और हर एक अपनी क्षमता-भर समाज को दे-ये सब बहुत अच्छे ध्येय थे। किंतु अब तक वे स्वप्नवत् ही हैं। अब सब ध्येय सिद्ध हों, प्रत्यक्ष व्यवहार में उन पर अमल हो, ऐसी आज के युग की मांग है।

गांधीजी एक बात बार-बार कहते थे, वह मुझे याद आती है। वे कहते थे कि दूसरी क्रांतियां इकहरी हैं, यानी ऐसी क्रांति, जो मात्र समाज के बाह्य ढांचे में ही परिवर्तन लाती है, जब कि मेरी क्रांति दुहरी क्रांति होगी, जो मनुष्य के मानस में शुरू होगी और अंत में समाज के बाह्य ढांचे में परिवर्तन लायेगी। व्यावहारिक दृष्टि से देखने पर तो वास्तविक क्रांतिकारी के लिए सत्ता पर कब्जा करने का कोई अर्थ ही नहीं होगा।

इसलिए अब यह चीज स्पष्ट रूप से समझ में आ जानी चाहिए कि शांति के लिए ऐसी पद्धति अपनानी होगी, जिसके कारण मनुष्य के मानस में परिवर्तन आये; उसके जीवन-मूल्यों में परिवर्तन आये; जीवन के प्रति मनुष्य के दृष्टिकोण में परिवर्तन आये; वस्तुओं के प्रति, मानवों के प्रति और प्रकृति के प्रति दृष्टिकोण में परिवर्तन आये। और दूसरा यह कि आज के इतिहास की मंजिल पर मनुष्य जब चंद्र और शुक्र पर नवनीत



पहुंचा है, तब उसके सामने मानव-बंधुओं का एक विश्वकुटुम्ब बनाने से छोटा आदर्श नहीं हो सकता। आज एक यही क्रांतिकारी ध्येय हो सकता है।

अब सवाल यह उठता है कि मनुष्य को हम बदलेंगे कैसे? गांधी-विनोबा ने उसके लिए व्यापक सामाजिक आंदोलन का मार्ग अपनाया है। परंतु बहुत बार विचारक हमें चेतावनी देते रहते हैं कि ऐसे आंदोलनों में जब-जब मतवाद और कर्मकांड पर अधिक जोर दिया जाता है, तब-तब उसकी कीमत मनुष्य से वसूल की जाती है। ऐसे आंदोलन स्वयं स्थापित आदर्शों की बलि-वेदी पर मनुष्य को कुरबान कर रहे हैं। आंदोलनकारियों के लिए आदर्श मानव-निरपेक्ष मूल्य बन जाता है।

यह चेतावनी जरूर ध्यान में रखने लायक है। इस विषय में हमें सावधान रहना है। हम यदि अहिंसा द्वारा जीवन

नवंबर

परिवर्तन और समाज परिवर्तन करना चाहते हों, तो भी इस चेतावनी का अवश्य ही ध्यान रखना पड़ेगा। किंतु मैं मानता हूँ कि गांधी-विनोबा के सर्वोदय आंदोलन में मनुष्य ही केंद्र बिंदु है, इसलिए उसमें मानवता ही अंतिम मूल्य है। मनुष्य के प्रति संवेदना न हो, तो कोई ऐसे आंदोलन में नहीं पड़ेगा। फिर भी हमें यह कभी नहीं भूलना चाहिए कि हमारा 'एप्रोच' मानवीय हो और समग्र हो।

यद्यपि कृष्णमूर्ति जैसे तत्त्वज्ञानी तो यह भी पूछेंगे कि मनुष्य को बदलने वाले हम कौन ? यह अधिकार हमें किसने दिया ? मैं कहूँगा कि हम सब भाई हैं और ऐसे मानव-बंधुत्व के नाते ही हमें यह अधिकार मिला है, हमारा यह कर्तव्य बन गया है। हम अपने आपमें परिवर्तन लाने के लिए निरंतर चिंतन-मनन करते हैं और अपने मानव-बंधु में भी परिवर्तन लाना, यह भी हमारे चिंतन-मनन का एक भाग ही है। इसलिए ऐसे सामाजिक आंदोलन द्वारा मनुष्य में परिवर्तन लाकर समाज में परिवर्तन लाने का प्रयास हम कर रहे हैं।

यह एक व्यापक लोक-शिक्षण का काम है। साथ ही गांधी-विनोबा ने तो प्रचलित शिक्षण-पद्धति को भी नया स्वरूप देने की हिमायत की है। उन्होंने नयी शिक्षा का विचार समाज के समक्ष रखा है, जिससे वचन से ही मनुष्य के मन में नये मूल्य बढ़ पकड़ते आयें। शिक्षा का उद्देश्य ज्ञान-दान करना और प्रशिक्षण देना तो है ही,

नवनीत

परंतु इसके साथ ही शिक्षा का एक सर्वमान्य उद्देश्य है—मानव को मानव बनाना, उत्तम मानव बनाना। मनुष्य का पर्यावरण समझने और बदलने के लिए बहुत-कुछ किया गया है; लेकिन स्वयं मनुष्य को समझने और बदलने के लिए बहुत कम काम किया गया है।

पिछले कुछ वर्षों से पूर्व और पश्चिम में भीतरी और बाहरी, भौतिक और आध्यात्मिक ज्ञान को जोड़ने का, दोनों के बीच समन्वय स्थापित करने का प्रयत्न किया जा रहा है। उसके द्वारा ऐसे ज्ञान का विकास होगा, जिसमें न तो भौतिकवाद की उपेक्षा होगी और न अध्यात्मवाद की। वह दोनों का सच्चा समन्वय स्थापित करने का प्रयत्न होगा।

इसके फलस्वरूप आज मनुष्य का व्यक्तित्व विच्छिन्न हो गया है। और जब तक सुसंवादी ज्ञान और शिक्षा द्वारा 'नैतिक व्यक्ति और अनैतिक समाज के बीच' का विरोध दूर नहीं होगा, तब तक मनुष्य के व्यक्तित्व की यह विच्छिन्नता कायम रहेगी। नैतिकता और आध्यात्मिकता इस जगत से जब तक विमुख रहेगी, तब तक समाज के दिन-प्रतिदिन के व्यावहारिक विषय भी नैतिकता और आध्यात्मिकता से उतने ही विमुख रहेंगे। यह चीज मनुष्य के कल्याण तथा विकास के लिए अत्यंत हानिकारक है।

मनुष्य केवल पेट भरने के लिए नहीं जीता, उसके भीतर अधिक गहरी और

इतना ही यथेष्ट नहीं था। क्रांति के जो मूलभूत ध्येय थे, वे तो अभी दूर ही थे। समानता स्वतंत्रता, बंधुता, विरादरी, राज्यविहीन समाज, हर एक को उसकी आवश्यकतानुसार मिले और हर एक अपनी क्षमता-भर समाज को दे-ये सब बहुत अच्छे ध्येय थे। किंतु अब तक वे स्वप्नवत् ही हैं। अब सब ध्येय सिद्ध हों, प्रत्यक्ष व्यवहार में उन पर अमल हो, ऐसी आज के युग की मांग है।

गांधीजी एक बात बार-बार कहते थे, वह मुझे याद आती है। वे कहते थे कि दूसरी क्रांतियां इकहरी हैं, यानी ऐसी क्रांति, जो मात्र समाज के बाह्य ढांचे में ही परिवर्तन लाती है, जब कि मेरी क्रांति दुहरी क्रांति होगी, जो मनुष्य के मानस में शुरू होगी और अंत में समाज के बाह्य ढांचे में परिवर्तन लायेगी। व्यावहारिक दृष्टि से देखने पर तो वास्तविक क्रांतिकारी के लिए सत्ता पर कब्जा करने का कोई अर्थ ही नहीं होगा।

इसलिए अब यह चीज स्पष्ट रूप से समझ में आ जानी चाहिए कि शांति के लिए ऐसी पद्धति अपनानी होगी, जिसके कारण मनुष्य के मानस में परिवर्तन आये; उसके जीवन-मूल्यों में परिवर्तन आये; जीवन के प्रति मनुष्य के दृष्टिकोण में परिवर्तन आये; वस्तुओं के प्रति, मानवों के प्रति और प्रकृति के प्रति दृष्टिकोण में परिवर्तन आये। और दूसरा यह कि आज के इतिहास की मंजिल पर मनुष्य जब चंद्र और शुक्र पर नवनीत



पहुंचा है, तब उसके सामने मानव-बंधुओं का एक विश्वकुटुम्ब बनाने से छोटा आदर्श नहीं हो सकता। आज एक यही क्रांतिकारी ध्येय हो सकता है।

अब सवाल यह उठता है कि मनुष्य को हम बदलेंगे कैसे? गांधी-विनोबा ने उसके लिए व्यापक सामाजिक आंदोलन का मार्ग अपनाया है। परंतु बहुत बार विचारक हमें चेतावनी देते रहते हैं कि ऐसे आंदोलनों में जब-जब मतवाद और कर्मकांड पर अधिक जोर दिया जाता है, तब-तब उसकी कीमत मनुष्य से वसूल की जाती है। ऐसे आंदोलन स्वयं स्थापित आदर्शों की बलि-वेदी पर मनुष्य को कुरबान करते हैं। आंदोलनकारियों के लिए आदर्श मानव-निरपेक्ष मूल्य बन जाता है।

यह चेतावनी जरूर ध्यान में रखने लायक है। इस विषय में हमें सावधान रहना है। हम यदि अहिंसा द्वारा जीवन

नवंबर

परिवर्तन और समाज परिवर्तन करना चाहते हों, तो भी इस चेतावनी का अवश्य ही ध्यान रखना पड़ेगा। किंतु मैं मानता हूँ कि गांधी-विनोबा के सर्वोदय आंदोलन में मनुष्य ही केंद्र बिंदु है, इसलिए उसमें मानवता ही अंतिम मूल्य है। मनुष्य के प्रति संवेदना न हो, तो कोई ऐसे आंदोलन में नहीं पड़ेगा। फिर भी हमें यह कभी नहीं भूलना चाहिए कि हमारा 'एग्रोच' मानवीय हो और समग्र हो।

यद्यपि कृष्णमूर्ति जैसे तत्त्वज्ञानी तो यह भी पूछेंगे कि मनुष्य को बदलने वाले हम कौन ? यह अधिकार हमें किसने दिया ? मैं कहूंगा कि हम सब भाई हैं और ऐसे मानव-बंधुत्व के नाते ही हमें यह अधिकार मिला है, हमारा यह कर्तव्य बन गया है। हम अपने आपमें परिवर्तन लाने के लिए निरंतर चिंतन-मनन करते हैं और अपने मानव-बंधु में भी परिवर्तन लाना, यह भी हमारे चिंतन-मनन का एक भाग ही है। इसलिए ऐसे सामाजिक आंदोलन द्वारा मनुष्य में परिवर्तन लाकर समाज में परिवर्तन लाने का प्रयास हम कर रहे हैं।

यह एक व्यापक लोक-शिक्षण का काम है। साथ ही गांधी-विनोबा ने तो प्रचलित शिक्षण-पद्धति को भी नया स्वरूप देने की हिमायत की है। उन्होंने नयी शिक्षा का विचार समाज के समक्ष रखा है, जिससे बचपन से ही मनुष्य के मन में नये मूल्य बड़ पकड़ते आयें। शिक्षा का उद्देश्य ज्ञान-दान करना और प्रशिक्षण देना तो है ही,

नवनीत

परंतु इसके साथ ही शिक्षा का एक सर्वमान्य उद्देश्य है—मानव को मानव बनाना, उत्तम मानव बनाना। मनुष्य का पर्यावरण समझने और बदलने के लिए बहुत-कुछ किया गया है; लेकिन स्वयं मनुष्य को समझने और बदलने के लिए बहुत कम काम किया गया है।

पिछले कुछ वर्षों से पूर्व और पश्चिम में भीतरी और बाहरी, भौतिक और आध्यात्मिक ज्ञान को जोड़ने का, दोनों के बीच समन्वय स्थापित करने का प्रयत्न किया जा रहा है। उसके द्वारा ऐसे ज्ञान का विकास होगा, जिसमें न तो भौतिकवाद की उपेक्षा होगी और न अध्यात्मवाद की। वह दोनों का सच्चा समन्वय स्थापित करने का प्रयत्न होगा।

इसके फलस्वरूप आज मनुष्य का व्यक्तित्व विच्छिन्न हो गया है। और जब तक सुसंवादी ज्ञान और शिक्षा द्वारा 'नैतिक व्यक्ति और अनैतिक समाज के बीच' का विरोध दूर नहीं होगा, तब तक मनुष्य के व्यक्तित्व की यह विच्छिन्नता कायम रहेगी। नैतिकता और आध्यात्मिकता इस जगत से जब तक विमुख रहेगी, तब तक समाज के दिन-प्रतिदिन के व्यावहारिक विषय भी नैतिकता और आध्यात्मिकता से उतने ही विमुख रहेंगे। यह चीज मनुष्य के कल्याण तथा विकास के लिए अत्यंत हानिकारक है।

मनुष्य केवल पेट भरने के लिए नहीं जीता, उसके भीतर अधिक गहरी और

अधिक सूक्ष्म आकांक्षाएं भी होती हैं, जिनकी वह तृप्ति चाहता है। इसलिए स्कूल-कालेजों में विद्यार्थियों को यह समझना-समझाना जरूरी है कि आप अपने व्यक्तिगत जीवन में अपने बाहरी कार्य-कलापों का अपने आध्यात्मिक और नैतिक विचारों के साथ किस प्रकार सामंजस्य स्थापित कर सकेंगे।

आज आपके सामने प्रश्न है कि आप खंडित व्यक्तित्व वाले मनुष्य बनेंगे या अखंडित व्यक्तित्व वाले? यदि आप अपने व्यक्तिगत जीवन में सदाचार को जैसा ऊंचा स्थान दें, वैसा ऊंचा स्थान उसे आप सार्वजनिक या सामाजिक जीवन में दें, तो कहीं अधिक उत्तम और अधिक उपयोगी अर्थशास्त्री, वकील, डाक्टर, इंजीनियर,

प्रशासक, अध्यापक, राजनीतिज्ञ अथवा कुछ भी बन सकेंगे।

ऐसा करने से आप न केवल सामाजिक हित में अधिक योगदान करेंगे और अपने देश की अधिक सच्चाई के साथ सेवा कर सकेंगे, बल्कि इससे आपका व्यक्तिगत लाभ भी होगा। आपको अधिक प्रसन्नता और शांति मिलेगी। आपका जीवन अधिक उपयोगी और पूर्ण बनेगा।

आज हम जिस बुनियादी क्रांति की दहलीज पर खड़े हैं, उसके लिए कार्यकर्ता तैयार करने होंगे और उसके लिए स्कूल-कालेजों के द्वारा सुसंवादी शिक्षा और सामाजिक आंदोलनों के जरिये व्यापक लोक-शिक्षण समाज को निरंतर देते रहना होगा।

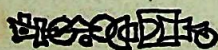


इतिहास में अब तक जो क्रांतियां हुई हैं, वे मेरे विचार से केवल राजकीय क्रांतियां थीं। और जिन्हें औद्योगिक क्रांति कहते हैं, उनके अलावा जितनी भी राजकीय क्रांतियां हुई हैं, वे अधिकांश में हिंसा के द्वारा हुई हैं। अभी हम चाहते हैं कि भारत में गांधीजी के रास्ते से एक संपूर्ण क्रांति अहिंसा के माध्यम से हो।

ऐसी संपूर्ण क्रांति से एक नया समाज बनेगा, जो आज से बिल्कुल भिन्न होगा। समाज की ऐसी नवरचना के लिए एक ऐसी क्रांति की जरूरत है, जो संपूर्ण भी हो और समग्र भी हो। वह समाज के एक-एक अंग को और क्षेत्र को स्पर्श करे। साथ ही साथ वह व्यक्ति के समग्र जीवन को भी आंदोलित करे। ऐसी एक संपूर्ण क्रांति लाना हमारा ध्येय है।

कई लोग कहते हैं कि यह सब मेरा दिवा-स्वप्न है। मैं उन लोगों के साथ विवाद में नहीं पड़ता। फिर भी इतना तो अवश्य कहूंगा कि जिन्होंने सपना देखना छोड़ दिया है, वे कदापि क्रांति नहीं ला सकते। क्रांतिकारी यदि स्वप्नदर्शी नहीं होगा तो उसे नये समाज का चित्र कहाँ से प्राप्त होगा?

— जयप्रकाश नारायण



बबनीत

बुद्ध-पुराण-ज्ञान-विज्ञान और मनोरंजन

हमारा पेशा

हम अपना क्या उपयोग भगवान को करने बते हैं, महत्त्व इसका है। भगवान हमारे जरिये क्या कर रहा है, महत्त्व इसका है। क्योंकि हम धार्मिक हैं और हमारा पेशा कोदियों और मरते हुआ के लिए काम करना नहीं है, हमारा पेशा ईसा का होकर रहना है। चूंकि मैं ईसा की हूं, इसलिए ईसा के प्रति अपने प्रेम को कार्यगत करने का साधन है यह सब काम-काज। वह अपने आपमें साध्य नहीं, साधन है।

मैं जिसको भी छूती हूं, उसमें ईसा को देखती हूं, उसमें ईसा को देखती हूं; क्योंकि ईसा ने कहा है—‘मैं भूखा था, मैं प्यासा था, मैं नंगा था, मैं बीमार था, मैं तक्रलीफ में था, मैं बेघरबार था, तुमने मुझे अपनाया’ इतनी सीधी-सी बात है यह। इसीलिए हमें भूखे को तलाशना होगा, नंगे को तलाशना होगा। इसीलिए हम गरीबों से जुड़े-बड़े हैं।

—मदर तेरेसा

अन्त में जीना

बलवीर सिंह

एक साधारण-से बूढ़े साधु ने किसी मठ में रहते हुए अपना सारा जीवन गुमनामी में ही बिताया था। वह अपने जीवन से संतुष्ट था और वृद्धावस्था में भी हर समय किसी न किसी काम में लीन रहता था।

एक दिन वह मठ की रसोई में जूठे बरतन साफ कर रहा था कि मौत का फरिश्ता उसके पास आया।

फरिश्ते ने कहा—'ईश्वर ने मुझे भेजा है। तुम्हारा समय आ गया है कि अब तुम अनन्तता में निवास करो।'।

'मैं ईश्वर का आभारी हूँ कि उसने मुझे याद किया है। लेकिन तुम देख ही रहे हो कि ये इतने सारे बरतन साफ करने के लिए पड़े हैं। क्या इन्हें इसी हालत में छोड़कर मेरा जाना उचित है?'

मौत के फरिश्ते के ओठों पर मुस्कराहट आयी और उसने कहा—'ठीक है, मैं फिर कभी आऊंगा।' और वह गायब हो गया।

साधु बरतन साफ करने के बाद हमेशा की तरह अपने दूसरे कामों में लग गया।

एक दिन वह बाग में पौधे रोप रहा था कि मौत का फरिश्ता फिर उसके पास

आया। 'अब तो तुम्हें चलना ही होगा।' उसने कहा।

'ओह, तुम आये हो!' साधु ने उसकी ओर देखा। फिर पौधों की क्यारियों की ओर संकेत करते हुए कहा—'बस, थोड़ा-सा ही काम बाकी रह गया है। इसे अधूरा छोड़ना ठीक नहीं। क्या कुछ देर रुका नहीं जा सकता?'

'जैसा तुम चाहो,' मौत के फरिश्ते ने कहा और गायब हो गया।

साधु काम करता रहा। पौधे रोपने के बाद वह दूसरे काम करने लगा।

एक बार महामारी फैलने पर वह गरीबों की एक बस्ती में बीमारों की सेवा कर रहा था कि मौत का फरिश्ता उसके पास आया और चुपचाप बड़ी दिलचस्पी से उसे देखने लगा। अचानक साधु का ध्यान उसकी ओर गया, तो उसने कहा—'बड़े गलत समय पर आये हो! इस बार मैं तुम्हारे साथ चलने से इन्कार नहीं कर सकता; लेकिन इन मरीजों को देखकर ही सोचो कि यहां मेरी कितनी जरूरत है। फिर भी, अगर कहो तो...?'

साधु की बात पूरी होने से पहले ही

नवनीत

३४

नवंबर

फरिश्ता गायब हो चुका था।

कई दिनों के बाद साधु काफी रात गये तक मरीजों की सेवा करने के बाद अपनी छोटी-सी कोठरी में जाकर लेटा, तो बहुत ज्यादा थका हुआ था। वह निढाल-सी सूनी-सी नजरों से छत की ओर देख रहा था कि अचानक उसे मौत के फरिश्ते का खयाल आया और उसने मन में कहा—अगर वह इस समय आ जाये, तो मैं इसी क्षण उसके साथ चल पड़ूंगा..... तब, उसे अपना शरीर और भी अवसन्न और निर्जीव-सा प्रतीत हुआ। उसकी इच्छा हो रही थी कि लंबी, गहरी नींद में डूब जाऊं।

वह अपनी बोझिल आंखें बंद करने ही वाला था कि उसने देखा, मौत का फरिश्ता उसके सामने खड़ा है। देखते ही उसके

चेहरे पर खुशी दौड़ गयी और उसके मुंह से निकला—‘प्रभो, धन्य हो तुम, जो इतनी जल्दी मेरी सुन ली और अपने फरिश्ते को मेरे पास भेज दिया।’ और उसने मौत के फरिश्ते को संबोधित करते हुए कहा—‘मैं तुम्हारा भी आभारी हूं, जो इतनी जल्दी आ गये हो। मैं चलने को तैयार हूं और चाहता हूं कि अब हमेशा के लिए ईश्वर के चरणों में बैठकर अनंतता में निवास करूं।’

वह उठने ही लगा था कि मौत के फरिश्ते ने कहा—‘लेटे रहो, लेटे रहो, उठने की जरूरत नहीं है।’ फरिश्ते के ओठों पर हल्की-सी मुस्कराहट आयी। ‘उठकर तुम्हें कहां जाना है? तुम अनंतता में ही तो जी रहे हो।’



पूरे तमिलनाडु में ५६ हजार देवालय विद्यमान हैं, जिनमें से ५० हजार देवालय गांवों में हैं। इन देवालयों में पूजा-आराधना की व्यवस्था के लिए सरकार को एक रुपया भी खर्च करना नहीं पड़ता। जिन देवालयों के पास पूजा आदि के लिए अपनी कोई निधि नहीं है, उनमें गांव का कोई वृद्ध जल और फूल चढ़ा देता है। ऐसे देवालयों की संख्या बीस हजार से कम नहीं होगी।

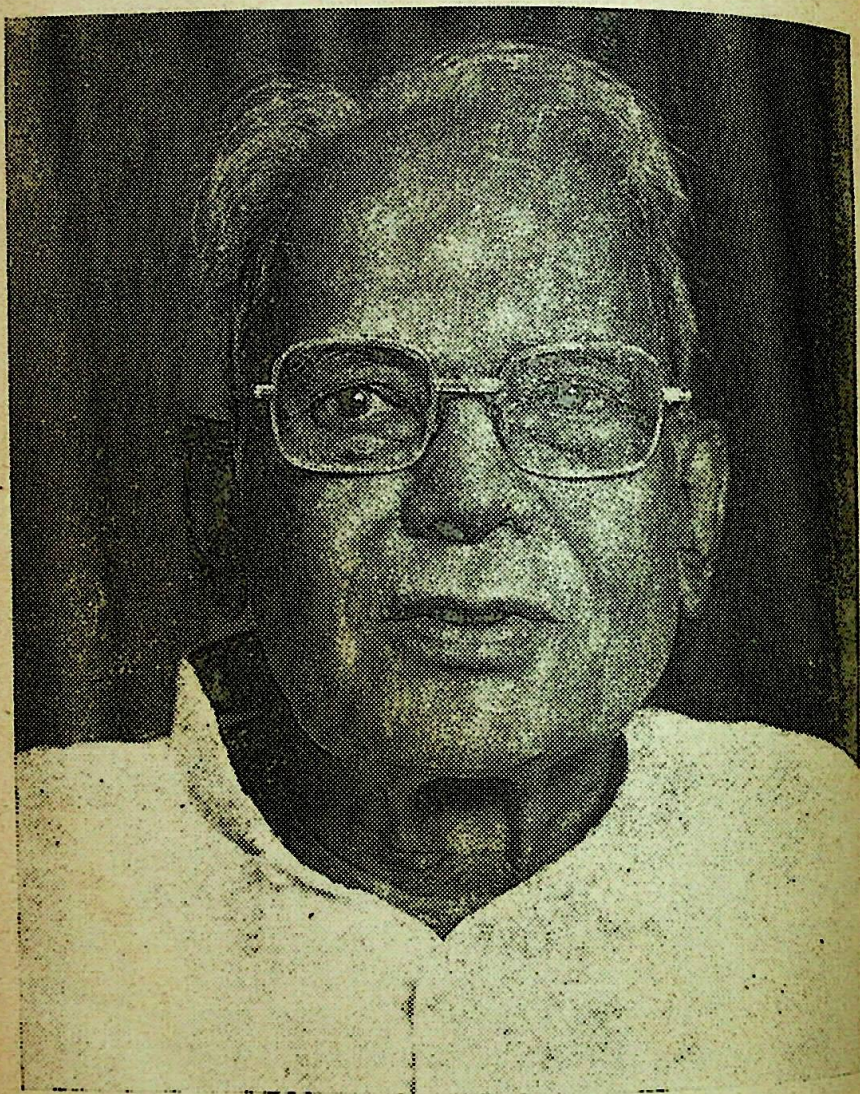
तमिलनाडु में सोलह देवालय ऐसे हैं, जिनकी वार्षिक आय पांच लाख रुपये से अधिक है। इनमें पलनी, मदुरै, तिरुत्तणि, चिदंबरम आदि उल्लेखनीय हैं।

हाल में मदुरै देवालय के बाहर दर्शनार्थियों के जूतों की रक्षा के लिए जो कांटाकट स्वीकृत हुआ, उससे देवालय को डेढ़ लाख रुपया मिला है।

दक्षिण के सभी मंदिरों के लिए आजकल एक खतरा पैदा हो गया है। उनकी सुंदर देवमूर्तियां चुराकर विदेश भेज दी जाती हैं। इसमें एक व्यवस्थित तस्कर दल का हाथ है, ऐसा दीखता है। अगर इस तस्करी को समूलतः नष्ट न किया गया, तो हमारे देवालयों की सारी देवमूर्तियां अमरीका के धनिकों के ड्राइंग रूमों की शोभा बन जायेंगी।

—टी. एस. राजु शर्मा





अंतिम प्रणाम !

जन्म : ११ अक्टुबर १९०२

निर्वाण : ८ अक्टुबर १९७९

आ ठ प्रक्रियाएं, जो यों तो अलग-अलग हैं मगर कार्यकारण-भाव से आपस में जुड़ी हुई हैं, हमारी सभ्यता को ही नहीं बल्कि मानव-नस्ल को भी नष्ट कर डालने की धमकी दे रही हैं। ये प्रक्रियाएं हैं :

१. धरती पर बेहद घनी आबादी। इससे सामाजिक संपर्क बेतहाशा बढ़ जाते हैं, जिससे हममें से हर कोई अपने आपको अमानवीय ढंग से एक खोल में बंद कर लेता है। इसके अलावा, चूंकि थोड़ी-सी जगह में बहुत लोगों को ठुंसकर रहना पड़ता है, उनमें आक्रामक वृत्ति उभरती है।

२. प्राकृतिक परिवेश का विध्वंस। न केवल हमारे चारों ओर का परिवेश ही विनष्ट हो रहा है, बल्कि अपने से श्रेष्ठ प्राकृतिक सृष्टि की सुंदरता और भव्यता के प्रति मनुष्य का भक्तिभरा आश्चर्य-भाव भी विनष्ट हो रहा है।

३. अपने ही विरुद्ध मनुष्य की होड़-भरी होड़। इससे प्रौद्योगिकी के विकास की रफ्तार निरंतर तेज होती जा रही है; मनुष्य तमाम मूल्यों के प्रति अंधे हो उठे हैं और उन्हें चितन-जैसे असली मानवीय कार्य के लिए फुरसत ही नहीं रह गयी है।

४. अनुभूतियों व भावनाओं का कुंद हो जाना। यह ऐयाशी का परिणाम है। प्रौद्योगिकी और औषधशास्त्र की प्रगति के कारण आज मनुष्य को तनिक-सा भी असुख असह्य होने लगा है। इस तरह मनुष्य ऐसे आनंदों को अनुभव करने की क्षमता खोता चला जा रहा है, जो आनंद विषम विघ्न-बाधाओं को

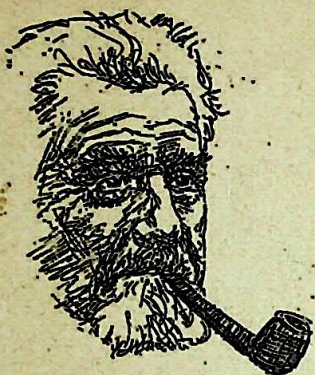


कोनराड लारेन्स

जीतने पर ही प्राप्त होते हैं। आनंद और शोक की स्वाभाविक तरंगें आज वर्णनातीत वोरियत की अगोचर-सी हल्की हलचलें बनकर रह जाती हैं।

५. आनुवंशिक क्षय। हमारी आधुनिक सभ्यता में 'जन्मजात न्यायबुद्धि' और उचित-अनुचित की चंद पैतृक परंपराओं के सिवा ऐसे कोई तत्त्व नहीं रहे हैं, जिनके दबाव में हमें सामाजिक व्यवहार के सहजबुद्धि-प्रेरित (इन्स्टिक्टिव) प्रतिमानों को जातीय अस्तित्व और विकास के लिए अनिवार्य तत्त्वों के रूप में अपनाना ही पड़े।

६. परंपरा का उच्छेद। वह विषम बिंदु आ पहुंचा है, जब नयी पीढ़ी पुरानी पीढ़ी से संवाद करने में भी असमर्थ हो गयी है—उसके साथ तादात्म्य अनुभव करने की तो बात ही क्या ! फलतः आज के युवक प्रौढ़ों व बूढ़ों के साथ एक अलग नस्ल के लोगों का-सा सलूक करने लगे हैं और उनसे इस



चिकित्सक, विज्ञानी एवं जीव-व्यवहार के विशेष अध्येता लारेन्स, जिनकी पुस्तक 'सिविलाइज्ड मेन्स एट डेडली सिम्स' का उपसंहार-अध्याय यहां प्रस्तुत किया गया है। तरह द्वेषपूर्वक पेश आते हैं, जैसे कि वे शत्रु-देश के हों। इससे परंपरा का जारी रह पाना असंभव हो उठा है। इस गड़बड़ का मुख्य कारण है माता-पिता और बच्चों के बीच संपर्क की कमी, जिसका शैशव के नितांत आरंभिक चरणों में भी रोगोत्पादक परिणाम हो सकता है।

७. मानव-मन में बलात् विचार भरने की शक्यता का बढ़ जाना। प्रत्येक सांस्कृतिक समूह में सदस्यों की संख्या के बेतहाशा बढ़ जाने से तथा तकनीकी साधनों के पूर्णता

पर पहुंच जाने से आज जनमत को मरोड़कर इस तरह एकरूप बना देना संभव हो गया है, जिसकी मिसाल अब तक के मानव-इतिहास में नहीं है। इसके अलावा किसी सिद्धांत के मानने वालों की संख्या जितनी ही बढ़ती है, उसी के ज्यामितीय अनुपात में उसकी सम्मोहन-शक्ति भी शायद बढ़ जाती है। अब तो ऐसे भी सांस्कृतिक-समूह बन गये हैं, जिनमें 'माध्यमों' (उदाहरणार्थ, टेलिविजन) के प्रभाव से अपने को प्रयत्नपूर्वक दूर रखने वाले व्यक्ति को रोगी-सा समझा जाता है।

मनुष्य को व्यक्तित्व-विहीन बनाने वाले प्रभाव उन सभी को प्रिय हैं, जो बड़ी तादाद में लोगों को अपने मन के मुताबिक मोड़ना चाहते हैं। जनमत-संग्रह, विज्ञापन, चतुराई-पूर्वक चुपके-से प्रचारित फैशन और खब्तें आज गैरसाम्यवादी देशों में वृहत् उत्पादकों को और साम्यवादी देशों में अफसरों को आम जनता पर लक्ष्मण-भग एक-सा वर्चस्व प्राप्त करने में मदद रहे हैं।

८. मानव-समाज का परमाणु-शास्त्री के लेंस होना। बाकी सात खतरों की तुलना में इस खतरे को ढालना कहीं आसान है।



जिन बातों पर हम अड़े उनसे नहीं, बल्कि जो घाव हमने भरे, जो ज़िदगियां हमने बचायीं, जो दुःख-दर्द हमने मिटाये—उनसे हमें जांचा जायेगा। -राष्ट्रपति साहब

जीवन में गलतियां तो हम सभी करते हैं; मगर प्रशंसनीय व्यक्ति वह है, जो अपने गलती स्वीकार करे और उसे सुधारे। -मुहम्मद कबीम बागदादी



अंधेरे की तरफ

मुझे उजाले की तरफ मत खींचो
मैं उस अंधेरे की तरफ जाना चाहता हूँ
जहाँ कई सूरज अपने पेट पर पट्टी बांधे
आग की तलाश कर रहे हैं
जो उन्हें पूरब से पश्चिम तक जाने की शक्ति दे ।

मैं उस अंधेरे की तरफ जाना चाहता हूँ
जहाँ बीमार चांदनी अपने दूधिया रूप की खातिर
चौराहे पर खड़ी कर दी गयी है
और उसकी बेदाग चादर
नाली के कीचड़ से भर दी गयी है !

मैं उस अंधेरे की तरफ जाना चाहता हूँ
जहाँ गंदुम के एक दाने के पीछे
आदम और हव्वा आपस में वार कर रहे हैं
एक दूसरे को पहचानने से इन्कार कर रहे हैं !

मेरे दोस्त !

मैं उस अंधेरे की तरफ जाना चाहता हूँ
जहाँ इन्सानियत की कब्र पर इन्सान की ममी रो रही है
जिंदगी खुद अपनी लाश ढो रही है
मुझे जाने दो, अंधेरे का तिलिस्म तोड़ना है
आदमी और आदमी के बीच का पुल बनाना है
आदमी को आदमी से जोड़ना है ।

—अब्दुल मलिक खान

प्रेस रोड, भवानीमंडी, जि. झालावाड़, राजस्थान

मेरे पिता

सत्यजित राय

जब मेरे पिता की मृत्यु हुई, मैं ढाई वर्ष का था। इसलिए आत्मीयता के नाते एक से दूसरे का जैसा संबंध होता है, वैसा अपने पिता के साथ जोड़ पाने का सुयोग मुझे नहीं मिला। उन्हें मैंने उनकी रचनाओं और चित्रों के माध्यम से पहचाना; उनकी एक खस्ता कापी, कई नोटबुकें, एक हस्तलिखित पत्रिका के दो अंक, अपनी मां एवं कई आत्मीय स्वजनों से सुने वर्णनों के माध्यम से पहचाना।

मेरे पिता सुकुमार राय का जन्म सन १८८७ में हुआ। उनकी मां बिधुमुखी देवी ब्राह्मसमाज के उज्ज्वल नक्षत्र, स्वाधीनचेता द्वारकानाथ गंगोपाध्याय की पुत्री थीं। पिता थे उपेन्द्रकिशोर राय जिनकी प्रतिभा का परिचय उनके गीतों, चित्रों एवं मुद्रण-कार्यों में बिखरा पड़ा है। उनमें विज्ञान और कला, प्राची और प्रतीची का आश्चर्यजनक समन्वय था।

उपेन्द्रकिशोर ने वायलिन के साथ-साथ पखावज बजाया, ब्राह्मसंगीत की रचना के साथ-साथ मुद्रण-कार्य में मौलिक अनुसंधान किया, रात में घर की छत पर

बैठकर दूरबीन से आंखें सटाकर आकाश में तारे देखे, सहज-सुंदर भाषा में पौराणिक कहानियों एवं ग्रामकथाओं को बच्चों के लिए नये ढंग से लिखा। साथ ही खास विलायती ढंग से तैलरंग, जलरंग, स्याही से चित्र भी बनाये।

ऐसे पिता के स्नेह-सान्निध्य में बड़े हुए थे सुकुमार राय। उनके दो भाई और तीन बहनें थीं। उम्र में सबसे बड़ी थीं सुखलता, और उनके बाद थे सुकुमार। रवीन्द्रनाथ के 'राजर्षि' उपन्यास में से लेकर इन भाई-बहन के घरेलू नाम 'ताता' और 'हासि' रखे गये थे।

सुकुमार की स्कूल-कालेज की शिक्षा कलकत्ते में ही हुई। शिवनाथ शास्त्री की 'मुकुल' पत्रिका में प्रकाशित दो बालकालीन रचनाओं के सिवा छात्रावस्था में सुकुमार की साहित्य-रचना का कोई प्रमाण नहीं मिलता।

कालेज छोड़ने के कुछ ही दिनों बाद उन्होंने 'नान्सेन्स क्लब' की स्थापना की। उनके साहित्य की मूल धारा किस ओर प्रवाहित होगी, वह इस क्लब के नामकरण

अनुवाद : शरद राकेश

से ही स्पष्ट है। अंतरंग मित्रों को लेकर संघटित इस क्लब के लिए लिखे दो नाटकों 'झाला पाला' एवं 'लक्ष्मणेर शक्तिशेल' एवं क्लब की पत्रिका 'साड़े बत्रिस भाजा' के पृष्ठों में सुकुमार के हास्यरस का प्रथम आभास मिलता है।

ऊपर बताये दोनों नाटकों में से निस्संदेह दूसरा अधिक सार्थक और उपभोग्य है। लेकिन पहले में भी मौलिक प्रतिभा का संकेत है। भाषा के सहारे हास्यरस की संज्ञा सुकुमार-साहित्य की एक विशिष्टता है। इसका एक सुंदर उदाहरण 'झाला पाला' में है, जिसमें एक पंडितजी 'आइ गो अप' (I go up) का अर्थ संस्कृत के आधार पर 'गाय रो रही है' करते हैं।

'लक्ष्मणेर शक्तिशेल' नाटक में रामायण के कुछ चरित्रों को महाकाव्य की दुनिया से उठाकर एकदम रंग-तमाशे की महफिल में फेंक दिया गया है। इस रामायण में हनुमान बताशे खाता है, यमदूत का वेतन बकाया रहता है, और विभीषण की दाढ़ी की गंध जांववान को उद्वेलित

करती है। सुकुमार का संगीत-रचयिता रूप पहले-पहल 'लक्ष्मणेर शक्तिशेल' में ही प्रकट हुआ था। सहज छंद और स्वर में रचित गीतों से इस नाटक में हास्यरस की चमत्कारी अभिव्यक्ति हुई है।

लेकिन हास्यरस की जिस विशेष अभिव्यक्ति में सुकुमार अद्वितीय थे, उसका प्रथम परिचय तो 'संदेश पत्रिका' में मिला।

रसायन एवं भौतिकी में डबल आनर्स लेकर बी. एस-सी. पास करने के पांच वर्ष

बाद सुकुमार १९११ में मुद्रण-कला की विशेष शिक्षा प्राप्त करने इंग्लैंड रवाना हुए। इसके एक वर्ष बाद रवीन्द्रनाथ भी लंदन पहुंचे। उनके साथ थी 'गीतांजलि' के अंग्रेजी अनुवाद की पांडुलिपि।

रवीन्द्रनाथ उपेन्द्र-किशोर के समवयस्क एवं मित्र थे; और सुकुमार थे रवीन्द्रनाथ के तरुण भक्त-वृंद के सिरमौर। रवीन्द्रनाथ की कवि-प्रतिभा से इंग्लैंड के विद्वत्समाज का उस समय तक परिचय नहीं हुआ था। इसी समय 'क्रैस्ट' सोसायटी के एक अधिवेशन में सुकुमार ने 'द स्पिरिट आफ रवीन्द्रनाथ' नामक लेख पढ़कर



पिता सुकुमार राय
[स्केच : सत्यजित राय]

इस परिचय का पथ प्रशस्त किया था ।

सन् १९१३ की मई से उपेन्द्रकिशोर के संपादकत्व में 'संदेश' मासिक पत्रिका निकली । इसके कुछ महीने बाद ही सुकुमार भारत लौटे और तभी से उनके चित्र और अन्य रचनाएं 'संदेश' में छपने लगीं ।

पहले तीन वर्षों में सुकुमारकी रचनाओं की संख्या अधिक नहीं थी । कारण, उपेन्द्रकिशोर उस समय जीवित थे और अकेले उन्हीं की रचनाओं और चित्रों से 'संदेश' के पुष्ठ भरे जाते थे । उन्हीं रचनाओं से, और विशेषतः चित्रों से यह स्पष्ट पता चलता है कि हास्यस्रष्टा के रूप में उपेन्द्रकिशोर कुछ कम नहीं थे ।

पौराणिक कथाओं के चित्रों में हास्य के लिए विशेष अवकाश नहीं होता; किंतु वहां भी दैत्य-दानव-राक्षस-पिशाचों का चेहरा अंकित करते समय भयानकरस के साथ हास्यरस को मिलाने में उपेन्द्रकिशोर को जरा भी दुविधा नहीं हुई; और इसीलिए उनके बनाये राक्षसों के चित्र कई बार मनुष्यों के ही उग्र रूप लगते हैं । उनके मानव-व्यंग्यचित्रों में हम अपने अति परिचित जाने-पहचाने लोगों को ही हास्यकर स्थितियों एवं भावभंगिमाओं में देखते हैं । इनमें कार्टूनों जैसी अत्युक्ति और अट्टहास नहीं हैं । इनमें है मृदु, स्निग्ध, सहज हंसी, जिसमें श्लेष या विद्रूप रंभमात्र भी नहीं होता । असल में इस हंसी में उपेन्द्रकिशोर का अपना चरित्र ही प्रतिफलित है । जो उन्हें एक मानव की तरह जानते

नवनीत

थे, वे यही कहते हैं ।

सुकुमार के हास्य में श्लेष नहीं था, किंतु व्यंग्य अवश्य रहता था । वे जरूरत पड़ने पर उन्मुक्त अट्टहास से भी पीछे नहीं हटते थे; और यह भी उनके अपने स्वभाव का परिचायक था । सुकुमार राय के कौतुक-प्रिय, मजलिसी-स्वभाव की बात मनें और भी बहुत से व्यक्तियों से सुनी है ।

चित्रकारी उपेन्द्रकिशोर और सुकुमार किसी ने भी वाकायदा नहीं सीखी थी । उपेन्द्रकिशोर के चित्रों में तो इसका जरा भी आभास नहीं मिलता; परंतु सुकुमार के चित्रों में यह अवश्य झलकता है । चित्रकारी में उपेन्द्रकिशोर की समकक्षता की अभावपूर्ति सुकुमार ने दो दुर्लभ गुणों से कर ली थी—उनकी असाधारण पर्यवेक्षण क्षमता और निष्ठक कल्पना-शक्ति । इन दोनों के समन्वय से सुकुमार के चित्रों की विषय-वस्तु चित्रकला की तकनीक को लांघकर जीवंत-सी आ खड़ी होती है । इसीलिए सुकुमार-चित्रित किसी भी वास्तविक या काल्पनिक प्राणी का अस्तित्व यथार्थ-सा लगता है । चाहे 'काठ बूझे' या 'चंडीदासेंर खुड़ो' हो, चाहे 'रामगर्द' या 'हिजिबिजबिज' या 'गोमरायेरिया' सभी समान रूप से विश्वसनीय हैं ।

उपेन्द्रकिशोर के संपादन-काल में 'संदेश' में प्रकाशित सुकुमार की कई रचनाओं में उनकी साहित्यिक विशिष्टता भी स्पष्ट झलकती है । १९१४ में 'आबोल-नावोल' जैसी पहली कविता 'खिचुड़ी' प्रकाशित

नवनीत

हुई और सुकुमार-साहित्य में पहली बार अद्भुत जीव ने सांस ली। उसके बाद ही 'बकछप्प', 'मोरगरू', 'गिरगिटिया', 'सिंहहरिण', 'हातिम', 'काठबूड़ो' की सर्जना हुई। उन्होंने इनके चित्र भी बनाये।

लेकिन सुकुमार ने इन चरित्रों की कल्पना हमेशा मनुष्य रूप में नहीं की। प्रायः ये काल्पनिक भी रहे हैं तभी 'हुंको मुखे ह्यांगला' रचा गया जिसके हाव-भाव तो मनुष्यों से हैं लेकिन अंग-प्रत्यंग पशु-पक्षियों की खिचड़ी हैं। ये 'छेले भुला' या 'छड़ा' के 'हाट्टिमाटिमटिम' या 'एकानडे' के संग-गोत्री नहीं हैं। छड़ा (तुक) के इन अद्भुत प्राणियों की कोई चारित्रिक विशेषता नहीं है। शायद 'एकानडे' एक तरह का जुजू है और हाट्टिमाटिमटिम विशिष्ट शृंगी पक्षी।

दो-एक अद्भुत प्राणियों को छोड़कर सुकुमार के पहले के बंगला साहित्य में काल्पनिक प्राणियों की चर्चा नहीं मिलती। विदेशी साहित्य में निश्चय ही लुई कैरोल एवं एडवर्ड लियर ने कुछ अद्भुत प्राणी रचे हैं। कैरोल की विख्यात कविता 'जैवारोयाकि' के ब्रिलिंग और बोरोगोव में सुकुमार की रचि का थोड़ा-सा आभास है। फिर भी उससे एक मूल अंतर है। 'जैवारोयाकि' के प्राणी ऐसे कल्पना-जगत में विच-



जब कुम्हड़ो पोटाश नाचने लगे तो आपकी खैरियत इसी में है कि आप मूली के झाड़ से बंदर की तरह लटककर झूलने लगें।

रते हैं कि उनके कार्यकलाप की वर्णना में एकदम नये शब्द गढ़ने पड़ते हैं।

लियर ने भी एक से अधिक अजीब प्राणी रचे हैं। लेकिन उनमें से एक भी हमारे जाने-पहचाने जगत के बहुत निकट नहीं आता। वे तो रूपकथाओं में ही मिलते हैं। किंतु 'हुंकोमुखो' का निवास तो पूरे बंगाल में है। सिर्फ यही नहीं :

श्यामदास मामा तार आफिगेर थाना-दार आर तार केड नय एछाड़ा।

—श्यामदास मामा उसका आफिङ्ग का दारोगा नहीं और कोई था उनके सिवाय उसका।

ठीक इसी तरह 'ट्यांश गोरू' अनायास ही हारू के दफतर में दिखता है। 'किम्भूत' मैदानों और घाटों के पार रो-रोकर मरता है, निश्चय ही 'कुमड़ोपटाश' भी शहर के आस-पास ही घूमते फिरते हैं, नहीं तो



स्पूकी सुकुमार राय के स्केच भी उनके लेखन की तरह ही आनंददायक थे।

हमें उनसे इतना सतर्क होने की जरूरत नहीं पड़ती। देखता हूं कि सिर्फ रामगरुड़ ने ही संगति के कारण एकांत वातावरण में रहना पसंद किया है, लेकिन वह भी रूपकथा के राज्य में नहीं। निश्चय ही इनकी दुनिया को सच्ची दुनिया कहने से बात नहीं बनती। असल में, यह सुकुमार की अपनी-सिर्फ अपनी-दुनिया है और इसकी रचना में ही साहित्यिक सुकुमार का श्रेष्ठ कृतित्व है।

उपेन्द्रकिशोर अपने पुत्र की साहित्यिक प्रतिभा का आभास मिलने पर भी उसका पूर्ण विकास नहीं देख पाये। १९१५ में बावन वर्ष की आयु में उनका देहांत हो गया और 'संदेश' के संपादन का भार सुकुमार पर आ पड़ा।

ठीक इसी समय स्थापित हुआ 'मंडे क्लब' या सुकुमारकी भाषा में 'मंडा लोगों नवनीत

का सम्मेलन'। उस समय के अनेक विशिष्ट तत्त्व कलाकार, साहित्यकार, शिक्षाविद् एवं काव्यरसिकों के प्रयास से निर्मित इस क्लब के सुमेरु थे सुकुमार। सदस्यों की सूची में सुकुमार के बाद के भाई सुविनय के अलावा सत्येन्द्रनाथ दत्त, अजित कुमार चक्रवर्ती, सुनीतिकुमार चट्टोपाध्याय, अतुलप्रसाद सेन, कालिदास नाग, प्रशांतचंद्र

महलानविश, प्रभात गंगोपाध्याय, चारुचंद्र बंधोपाध्याय, निर्मलकुमार सिद्धांत आदि के नाम भी मिलते हैं।

प्लेटो और नीत्शे से लेकर बंकिम, विवेकानंद, वैष्णव कविता, रवीन्द्र-काव्य कुछ भी 'मंडे क्लब' के आलोचना-चक्र से नहीं बचता था। इसके अलावा चलता गाना-बजाना, भोज, पिकनिक, अड्डेबाजी आदि। क्लब की सूचनाएं सुकुमार के प्रेस में छपतीं और उनकी भाषा भी सुकुमार की ही होती। एक बार क्लब-संपादक (सेक्रेटरी) की अनुपस्थिति में सदस्यों के पास छपा हुआ एक पोस्टकार्ड पहुंचा:

संपादक बेयाकूब कोया जे गिये छे
डूब एदिके ते हाय हाय क्लाबटि जे जाय
जाय ताई बोलि सोमबारे मद्गूहे गड़पारे
दिले सब पदधूलि क्लाबटिरे ठेले तुलि।
रकमारि पूंथि जत निज-निज रुचि मत

नवंबर

आनिबेन साथे सबे किछु किछु पाठ हबे ।
कर जोड़े बार बार निवेदिछे सुकुमार ।
 -संपादक बेवकूफ कहीं गया है डूब !
 इधर मची हाय हाय ! क्लव तो बस जाय
 जाय ! तभी कहां सोमवार मेरे घर किले
 पार । पदरज सब देंगे । क्लव आगे ढकेलेंगे ।
 तरह-तरह की पुस्तक निज मर्जी के मुता-
 बिक साथ सब लायेंगे, कुछ-कुछ पढ़ेंगे ।
 हाय जोड़ बार-बार कहता है सुकुमार ।
 सुकुमार के और भी एक कार्य का उल्लेख
 जरूरी है, जिसका संबंध ब्राह्मसमाज से
 है । ब्राह्म-युवकों की एक समिति बनाकर
 साप्ताहिक गोष्ठियों में भाषणों और आलो-
 चना की सहायता द्वारा समाज की चिन्तन-
 धारा और कर्मपद्धति में नवीनता का
 संचार करना सुकुमार के जीवन का एक
 प्रधान लक्ष्य था ।
 ब्राह्मसमाज के आदिपर्व का गौरवो-
 ज्ज्वल इतिहास मानो उनमें जोश भर
 देता था । यद्यपि आदर्शच्युति की कई
 मिसालों ने उन्हें हताश भी किया था ।
 अंतिम दिनों में यच्चों के लिए पद्य में रचित
 ब्राह्मसमाज के इतिहास 'अतीतेर छविर
 शेष' में कई जगह इसी मायूसी की झलक
 मिलती है ।
 'संदेश' के संपादन से पहले शिशु-साहित्य
 के अलावा उनकी रचनाओं में 'प्रवासी'
 में छपे कला और भाषा संबंधी कई निबंधों
 एवं 'चलचित्तचंचरी' और 'शब्द कल्पद्रुम'
 इन दो नाटकों का भी उल्लेख जरूरी है ।
 निबंधों में सुकुमार के विचारबुद्धि-दीप्त

१९७९

आधुनिक मन का परिचय मिलता है ।
 दोनों नाटकों में मुख्यतः विचारों की प्रधा-
 नता है । फिर भी बेचुटीले-हास्यमय संवाद
 के कारण आस्वाद्य हैं । सुकुमार के मज-
 लिसी मिजाज का भी पूरा परिचय मिलता
 है इन दोनों नाटकों में । इसलिए पारि-
 वारिक परिवेश में ये खूब जमते हैं ।

'संदेश' का भार कंधे पर पड़ने के बाद
 से सुकुमार की शिशु-साहित्य-सृष्टि दिनों-
 दिन बढ़ती ही गयी । सिर्फ कहानी, कविता
 ही नहीं विभिन्न विषयों पर चित्ताकर्षक
 निबंध, सारे विश्व की छोटी-छोटी खबरें,
 देश-विदेश की उपकथाएं, स्वरचित 'धांधा',
 'हेंमालि' (पहेलियां) आदि से 'संदेश' के
 पृष्ठ भर उठे । उस समय के 'संदेश' के
 किसी अंक को लेकर उसकी सामग्री का
 विश्लेषण करने पर शिशु-साहित्य की
 सार्थक और शाश्वत परिभाषा के लिए
 संकेत मिलते हैं । स्कूली कहानियां बंगला
 में 'संदेश' से पहले भी लिखी गयी थीं,
 लेकिन 'पागल दाशु' जैसी पहली कहानी
 में ही सुकुमार ने दिखा दिया कि ऐसी
 कहानी का उचित रूप क्या होता है ।

सुकुमार के संपादक होने के कुछ महीने
 के अंदर ही एक छोटी कहानी 'संदेश' में
 प्रकाशित हुई । मेरी राय में यह सुकुमार
 की एक श्रेष्ठ रचना है । कहानी का नाम
 है 'द्विधांचु' । एक राजदरबार में अचानक
 एक बड़े कौवे के 'कः' (कौन) बोलने
 पर जो प्रतिक्रियाएं होती हैं वहां हुए उन्हीं
 का आकलन है इसमें । कहानी के अंत



गंजा, जो गाये बिना नहीं रह सकता ।

में राजा साहब राजमहल की छत पर और एक बड़े कौवे के सामने चार पंक्तियों का एक मंत्र बोलते हैं। इस मंत्र का दस पंक्तियों का एक संस्करण सुकुमार ने अपने नाटक 'शब्द कल्पद्रुम' में बृहस्पति के मंत्र के रूप में दिया जो कि 'नान्सेन्स राइम' का उत्कृष्ट उदाहरण है।

सुकुमार राय ने 'नान्सेन्स' के इस विशेष रस का नाम रखा था—'खेयाल रस'। इस रस का आभास दुनिया के सभी देशों की देहाती तुकबंदियों में मिलता है।

बंगला साहित्य के गद्य या पद्य में हास्य-रस के दृष्टांत आदिकाल से मिलते हैं। मंगलकाव्य या मयमनसिंह-गीतिकाव्य में है, वैसे ही हुतात्म-आलाल-बंकिम-ईश्वर-गुप्त

नवनीत

में भी हैं। इनमें निरर्थक (नान्सेन्स) कुछ भी नहीं मिलता। लेकिन इसका मतलब यकीनन यह नहीं है कि अपने पहले के हास्यरसिकों का कोई भी गुण सुकुमार में नहीं था। श्लेष, अनुप्रास, ध्वनि-साम्य आदि की सहायता से हास्य की सर्जना जैसे पहले होती थी वैसे ही सुकुमार ने भी की थी।

असली बात यह है कि सुकुमार के नान्सेन्स प्रायः मौलिक हैं। प्रभाव की बात कहें तो सिर्फ बंगाल की हास्य परंपरा ही नहीं विदेशी साहित्य, पान्टोमाईम, चार्ली चैपलिन, विलायती कामिक्स आदि सभी का प्रभाव सुकुमार की निरर्थक (नान्सेन्स) तुकबंदियों पर पड़ा था।

इसीलिए 'आबोल-ताबोल' की भूमिका में उन्होंने लिखा—'यह "खेयाल रस" की पुस्तक है। जो इसमें रुचि नहीं रखते उनके लिए नहीं है यह पुस्तक।'

रवीन्द्रनाथ ने भी अपने अंतिम दिनों में 'अद्भुत छड़ा' (विचित्र तुकबंदियों) के संकलन 'खापछाड़ा' में इसी तरह की कैफियत दी थी। परंतु उनके ये विचित्र तुकतुक सुकुमार के जैसे एकदम निरर्थक और खामखयाली नहीं थे। रवीन्द्रनाथ ने अपनी सहज छंदोलय से पाठकों का कौतूहल अवश्य मिटाया है, परंतु रचना की शैलीगत चातुरी ने निरर्थक कवित्व के पागलपन का रास्ता भी बंद कर दिया है।

१९१५ से १९२३ तक, आठ वर्ष की अवधि में सुकुमार ने संदेश-संपादन किया

नवंबर

किंतु उनके अंतिम ढाई वर्ष तो रोग-शैया पर ही कटे थे।

उनके लेखन और चित्रकारी की श्रेष्ठ कृतियां इसी ढाई वर्ष की देन हैं। 'ह-ज-ब-र-ल' का रचनाकाल १९२२ है। बंगला निरर्थक (नान्सेन्स) गद्य का यह श्रेष्ठ उदाहरण निस्संदेह लुईस कैरोल की 'एलिस' से अनुप्राणित है। यहां भी हरी घास पर सोना, सपने देखना, परिचित-अर्धपरिचित जानवर और मनुष्यों के चरित्र का मेल, भाषा और सामाजिक आचार-विचार एवं नियम आदि पर वक्र रसिकता, और सबसे अंत में नींद टूटने पर स्वप्न जगत से वास्तविक जगत में वापस लौटना संरचित है। फर्क इतना ही है कि 'ह-ज-ब-र-ल' की स्वरूप योजना एकदम से बंगाली है—इतनी कि किसी भी अन्य भारतीय भाषा में भी इसके अनुवाद की संभावना नहीं है।

'हेशोशम हुंशियार की डायरी' भी ह-ज-ब-र-ल की समसामयिक है। इसमें भी 'खेयाल रस' (नान्सेन्स) तो है, लेकिन यह स्वरूपतः पैरोडी है कानन डायल के एक रोमांचक उपन्यास 'द लास्ट वर्ल्ड' की। डायल की कहानी में बीसवीं शताब्दी का एक प्रोफेसर (चैलेंजर) दक्षिण अमरीका के आमेजन क्षेत्र में एक ऐसी अनजानी दुनिया खोज लेता है जहां आज भी प्रागैतिहासिक प्राणियों का अस्तित्व है।

सुकुमार की कहानी में चैलेंजर प्रोफेसर हुंशियार और घटनास्थल काराकोरम पर्वत का एक अदेखा अनजाना अंश है।

यहां भी प्रागैतिहासिक प्राणियों की भरमार है, लेकिन इनका कोई उल्लेख प्राणिशास्त्री या जीवशास्त्री की किसी पुस्तक में नहीं मिलेगा। सिर्फ सुकुमार ही इन्हें पहचानते थे और बंगला और लैटिन के मिश्रण से इनका नामकरण भी वे ही कर पाये थे। इनकी मुखाकृति भी सुकुमार ने ऐसी विश्वसनीय बना दी है कि अजायबघर में जाकर 'लैंगवार्गनिस', 'कटकटोडन', 'चिल्लाने रसरस' या 'गोमराथेरियाम' के कंकाल नहीं देख पाने पर अचरज होता है।

बीमारी की अवधि में सुकुमार का मन बार-बार एक रचना की ओर गया है। सुकुमार ने रचना का नाम दिया था—'श्रीश्रीवर्णमालातत्त्व'। बंगला काव्य में अनुप्रास की जो धारा प्राचीन काल से चली आ रही है, उसकी ही एक चमत्कारिक परिणति की संभावना थी इस रचना में। दुःख की बात है कि सुकुमार इसे पूरी नहीं कर पाये।

सुकुमार राय की कोई भी रचना उनके जीवनकाल में पुस्तक-रूप में नहीं छपी थी। 'आबोल-ताबोल' छपा था १९२३ में, उनकी मृत्यु के तेरह दिन बाद। यद्यपि उसकी तिरंगी जिल्द और अंगसज्जा, तथा पादपूरक दो-चार पंक्तियों की कुछ तुकबंदियां, टेलपीस के चित्र इत्यादि वे स्वयं शैयाशायी अवस्था में ही बना गये थे। उनकी अंतिम रचना थी 'आबोल-ताबोल' जिसकी अंतिम कविता का विचित्र (शेष पृष्ठ ६४ पर)

कित खोयी कुर्सी मृगनैनी

गोपालप्रसाद व्यास

इस बार वार के महीने में रामलीला हुई तो सही, मगर मजा नहीं आया। मजा किसी का नौकर थोड़े ही है। मजा भारत का नेता भी नहीं है कि जब बुलाओ तो माला पहनने और भाषण देने के लिए खुद अपने वाहन पर चढ़के चला आये। वह तो मतदाताओं के मन की लहर है कि कहो तो निहाल कर दें और बिना कहे पामाल कर दें।

हां, तो बात रामलीला की हो रही थी। देवता कोपे, तो कहीं पानी की एक बूंद नहीं और कहीं राजनीति के आश्वासनों की तरह ऐसे वरसे कि खेत-खलिहान जल-जंगल एक हो गये। सन सत्तर में जैसे इंदिरा-दल का सफाया हो गया था, वैसे ही गांव के गांव गंधे के सिर पर सींग की तरह गायब हो गये। विभिन्न घटकों के नाले-परनाले जनता की सूखी नदी में ऐसे मिले कि भयंकर बाढ़ आ गयी। उसके सामने जो भी पड़ा, वह ढह गया, वह गया। मगर इस बार तो सावन भी सूखा गया और भादों भी। नतीजा यह हुआ कि सचाई का धान सूख गया। ईमानदारी की दाल

कहीं जमी ही नहीं, तो गलती कैसे? लोग मक्का-मदीने तो गये, लेकिन बिना वर्षा के ज्वार, बाजरा और मक्का पैदा नहीं हुए; तब रामलीला का रंग कैसे जमता?

रामलीला होती है चेहरों से। भारत की कोई भी लीला आदमी के असली चेहरे से नहीं खेती जाती। राम राम नहीं होता, रावण रावण नहीं होता। सब नाटक कहे हैं। कोई पूंछ लगाने से हनुमान हुआ है? रामलीला के लिए चेहरे उसी तरह आवश्यक हैं, जिस तरह राजनीति के लिए आश्वासन, गरीब-परवरी और मगर के आंसू। जैसे भारत के नेता को अपनी पार्टी की विजय के लिए अपने असली चेहरे को छिपाने के लिए आदर्शों का मुखौटा पहनना पड़ता है, वैसे ही रामलीला में अभिनेताओं को बंदरों, भालुओं, गिद्धों, स्वर्णमृगों और राक्षसों के चेहरे लगाने पड़ते हैं।

लेकिन इस बार चेहरे बनाने वालों ने हड़ताल कर दी। कहा—नकली चेहरे बनाते बनाते हम तो ऊब गये। इस धंधे में कोई ज्यादा फायदा भी नहीं है। भगवान ने हमारी सुनी। मध्यावधि चुनाव होने को

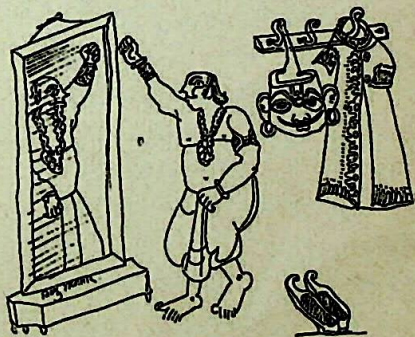
नवनीत

है। अब हम नकली नहीं, हजारों की तादाद में ऐसे मुखौटे तैयार कर रहे हैं, जिससे वानर नर दिखाई देने लगे और हमारा मुखौटा पहनने पर लोग आदमी को देवता समझकर उसकी जय-जयकार करने लगे और भेड़ की तरह उसके पीछे लग जायें। अब हम कागजी मुगदर और नकली तीर-कमान नहीं बनायेंगे। यह बालवर्ष है। हम बच्चों को हिंसा का पाठ नहीं पढ़ा सकते। दिखावटी आतिशवाजी चलाने से लाभ भी क्या? इस बार का चुनाव कोई नाटक या खेल नहीं है। हमने पार्टियों के एजेंटों के आर्डर बुक कर लिये हैं। इस बार हमारी सुरियां 'फुक्क' करके नहीं बुझ जायेंगी। पटाखे 'धुस्स' करके नहीं रह जायेंगे। इस बार आप हमारा कमाल देखियेगा। चुनाव-सभाओं में भगदड़ न मचा दें तो हमारा नाम आतिशवाज नहीं। चुनाव-मंच को नेताओं सहित न उड़ा दिया तो हमारी दाढ़ी भी मियां, मिर्जापुर वाली देवी के सामने मुड़वा देना।

और तो और, कमबख्त एक्टरों ने भी तो इस बार दल बदल लिया। कहने लगे—जब हर पेशेवर ने दल बदल लिया तो हम क्या किसी से कम हैं? लोग बेकार नेताओं को दोष देते हैं। बेहतर सुविधाओं के लिए एक के बाद एक नौकरी बदली जा सकती है तो अपने भविष्य की सुरक्षा के लिए नेता दल क्यों नहीं बदल सकते? हमने भी अपने डायलाग बदल लिये हैं। अब, 'गुरु वशिष्ठ के चरणों में दास राम का प्रणाम

स्वीकार हो' के बजाय हम इस वाक्य का रिहर्सल कर रहे हैं कि 'हे पूज्य पिताजी, हे परम पूजनीया माताजी, मेरे प्यारे चाचाजी, चतुरानी चाचीजी, हे मेरे मतलब के गुरु चौधरी साहब! इस बार आपका, आपके घर का, आपकी बिरादरी का परम पावन वोट हमारी पार्टी को ही मिलना चाहिये, नहीं तो आपके जूतों को छूकर आपकी ही कसम खाता हूँ कि आपके घर पर धरना देकर यह कीर्तन कर उठूंगा कि—जीना तेरी गली में, मरना तेरी गली में।'।

रावण का पार्ट करने वाला एक दिन आईने के सामने खड़ा होकर मुट्ठी ताने यह रिहर्सल कर रहा था—हे निशाचरो और हे निशाचरियो, नहीं-नहीं, भाइयो और बहनो, हम किसी भी कीमत पर अपनी सोने की लंका को, उसके शानदार सिंहासन को किन्नरों, वानरों और भालुओं के हवाले नहीं कर सकते। हम मर जायेंगे, लेकिन कुर्सी नहीं छोड़ेंगे। कोई हनुमान



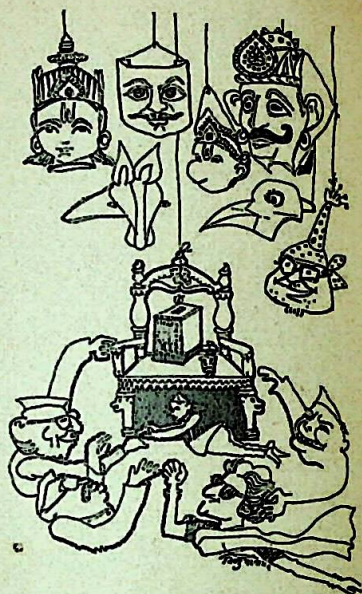
चित्र : भटनागर

हमारी लंका को आकर जलाये, इससे पहले ही हम उसमें खुद आग लगा देंगे। यह हमारी बिरादरी का सवाल है। हमारी भाषा का सवाल है। हमारी सभ्यता का सवाल है। हमारी संस्कृति का प्रश्न है। हमारा धर्म खतरे में है। इसकी रक्षा के लिए आप कमर कसकर खड़े हो जाइये। अपने फौलादी बाजुओं में बंदूक की तरह बोट को उठा लीजिये और मतपेटी पर निशाना दाग दीजिये। जय हो आपकी और भला हो हमारा।'

तो साहब, अंग्रेजी कलेंडर के सप्टेंबर मंथ में जैसे-तैसे रामलीला हुई। हुई क्या लकीर पिटी। रावण, कुंभकर्ण और मेघनाद के पुतलों पर बौने, छौने और सलोने राम-लछमनों के सरकंडों के बेनिशाने तीर चले तो सही, लेकिन निशाचरों के सैकड़ों फुट लंबे पुतले साफ बच गये। विरोधी नेताओं के पुतलों की तरह उनमें भी स्वयं-सेवकों ने हाय-हाय करके आग लगायी। राजा रामचंद्र भी अपना नकली पार्ट भूल कर सीताहरण के प्रसंग में असली विलाप करने लगे :

हा गुणखान जान की कुर्सी ।
तेरे बिन अब मातमपुर्सी ॥
हे खग मृग हे मधुकर खेनी ।
कित खोई कुर्सी मृगतंनी ॥
खंजन सुक कपोत मृग मीना ।
बिन कुर्सी सब डोलत दीना ॥
कुंद कली दाड़िम दामिनी ।
कब मिलिहै कुर्सी-कामिनी ॥

भवनीत



चित्र : भटनगर

बरन पास मनोज धनु हंसा ।
सब सत्ता की करहिं प्रशंसा ॥
आपुन गुन गन सहज बखानी ।
नेकुं न संक सकुच मन माहीं ॥
सुन कुर्सी तेरे बिन आजू ।
भूली सुधि-बुधि बिसरे काजू ॥
किमि राहि जात विरह तोहि पाहीं ।
मिलत प्रिया कुर्सी क्यों नाहीं ॥
चरण धरत, चिंता करत,
नींद न भावत शोर ।
कुर्सी कह बूढ़त फिरत,
नेतागण चहुं ओर ॥
सियावर रामचंद्र की जय !
कहा न कि रामायण का पूरा पाठ ही

नंत



बदल गया, यानी सब ठाठ ही बदल गया। तब दर्शकों और श्रोताओं को लीला का आनंद कैसे आता? आनंद या मजा आता है पैसे से। पैसा इस बार लोगों ने रामलीला के चंदे में दिया ही नहीं। कहने लगे कि बाजार में मंदा है। मध्यावधि चुनावों की घोषणा के कारण चौपट हमारा धंधा है। मांगने वाले अनेक देने वाला अकेला यह बंदा है। जब रात अंधेरी हो तो कहां चंदा है? चंदा वहां दिया जाता है, जहां कुछ धंधा है। इस बार हम रामलीला को नहीं, चुनाव-लीला को चंदा देंगे। देंगे क्या, देना पड़ेगा। नहीं देंगे तो चुन जाने पर लोग हमारे लाइसेंस रद्द कर देंगे, परमिट फाड़ देंगे, दुकानों के तख्ते और मकानों के छज्जे उखाड़ देंगे। इन्कम टैक्स के दबे हुए कागज फिर से उभाड़ देंगे। हमारे दुश्मन नेताओं

के कान भरने लगेंगे। इंस्पेक्टर आये दिन चालान करने लगेंगे। ना बाबा, राम-नीति पर चलने से अब तक हमारा कोई भला नहीं हुआ। राजनीति पर संभलकर चलने पर कम-से-कम नुकसान न होने की गारंटी तो है? संभलकर चलना यही है कि कांग्रेस (इ) वाले आयें तो कहें—आइये! जनता वाले आयें तो कहें—तशरीफ लाइये! लोकदल वाले घुसते चले आयें, तो गद्दी छोड़कर खड़े हो जायें और हाथ जोड़कर कहें—यहां बिराजिये! साम्यवादी आयें तो कहिये—हम तो सेवा के लिए हाजिर हैं, मगर अपने यूनियन वालों से कह दीजिये कि एक घर तो डायन भी बख्श देती है। खुदा न खास्ता मार्क्सवादी भी दल बांधकर आ धमकें तो बोलें नहीं, इतना ही कहें, जो आप सोचकर आये हैं उसके आधे की रसीद

काट दीजिये और नकद ले जाइये। कहने का मतलब यह है कि हम तो जी हिंदू हैं, भूर्ति ही नहीं, पहाड़ों को भी पूजते हैं। गाय की ही नहीं, कुत्ते की भी पूजा करते हैं। देवी के लिए ही नहीं, भैरों के लिए भी बलि देते हैं। पीपल पर ही नहीं, बबूल पर भी जल चढ़ाते हैं।

तो साहब, मनी ब्लाक हो गया और इस बार की रामलीला फीकी हो गयी, इसलिए हमने दुबारा से रामलीला नहीं रामन (रावण) लीला करने की ठानी है। पहले सोचा था कि इसे नवंबर-दिसंबर में करेंगे, लेकिन जुगाड़ नहीं बैठा। फिर लीला के चौधरियों ने तय किया कि दिसंबर-जनवरी ठीक रहेगा। जितने चौधरी, उतनी बात। अब एक लठैत नंबरदार अपनी सलाह को चुनौती बताते हुए एलान कर गये हैं कि अगर फरवरी से पहले लीला की, तो शहर में दफा १४४ लगवा देंगे, झगड़ा हो जायेगा और कर्फ्यू लग जायेगा।

जो भी हो, रामलीला तो होगी और होकर रहेगी। यह धर्म का सवाल है। दीन-हीन आर्टिस्टों की रोजी-रोटी का सवाल है। जनता के मनोरंजन का ही नहीं, उसे प्रशिक्षित करने का सवाल है। जनता को प्रशिक्षित किये बिना लोकतंत्र चल सकता है, रामलीला नहीं चल सकती। नेता अपने उसूलों पर कायम न रहें, लीला वाले अपने उद्देश्यों पर स्थिर हैं। नेता अपनी आस्थाओं से डिग जायें, हम नहीं डिग सकते। यह हमारी बात का सवाल है और

बात भी अगर दाढ़ी-मूंछ तक की होती, तो कटवा देते। बाल तो घर की खेती हैं, फिर उग आते, लेकिन सवाल बाल का नहीं, बाल की खाल का है। बात काटी और कटायी जा सकती है; लेकिन नाक न काटी जा सकती है और न कटायी जाती है; क्योंकि इसकी वजह से सीताहरण होता है। सीता-हरण से रावण-मरण होता है। रावण-मरण से रामायण लिखी जाती है।

रामायण लिखने के बाद लोग काम-धाम छोड़कर, उसका खंड और अखंड पाठ करने लगते हैं। जनता धर्म के नाम पर कर्म-विमुख हो जाती है। कर्म-विमुख होने पर देश की तरक्की नहीं हो सकती, गरीबों का भला नहीं हो सकता और आप तो जानते ही हैं कि हमारा जन्म तो देश की गरीबी मिटाने के लिए ही हुआ है। उसे हमारे सिवाय और कोई नहीं मिटा सकता। लोग अपनी गरीबी मिटा रहे हैं, देश की नहीं। इसलिए हम और हमारे साथी हाथ जोड़कर आपकी सेवा में पहुंचने वाले हैं कि हमारे अगले-पिछले खोटों की तरफ ध्यान न दें। जरूरत समझें तो हमारे थैले में पड़े इन नोटों की तरफ ध्यान दें। नोटों का क्या है? यह तो जैसे आधे हैं, वैसे ही जायेंगे। अगर आपके काम आयेंगे तो हम भर पायेंगे।

हम आपकी वोट (नाब) पर ही चढ़कर चुनाव की बैतरणी पार कर सकते हैं, लेकिन बिना आपकी वोट के हम न दीन के रहें और न दुनिया के।

—बी ५२, गुलमोहर पार्क, नयी दिल्ली-४९



दीपावली अंक में हमारे आग्रह पर अनेक जाने-माने साहित्यकार-पत्रकार-विचारकों ने एक वाक्य में अपना जीवन-दर्शन लिख भेजा था। हमारे अनेक कृपालु पाठकों ने भी अपने उत्तर भेजे, जो दीपावली अंक में स्थानाभाव के कारण जा नहीं पाये थे, वे इन पृष्ठों में प्रस्तुत हैं।

एक वाक्य में जीवन-दर्शन

किशोरीरमण टंडन

शिकायतों की तंग गली में रहने के बजाय कृतज्ञता की विस्तृत दुनिया में मुक्त विचरण!

डा. माहेश्वरी सिंह 'महेश'

ठुक-ठुक करते चलो बात कुछ बन जायेगी।
पग-पग बढ़ते चलो, कभी मंजिल आयेगी।

डा. बी. एल. कपूर

समुद्र इव गाम्भीर्ये धैर्येण हिमवान् इव।

कैलाश त्रिपाठी

तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु। (मेरा मन कल्याणमय संकल्पों वाला हो।)

डा. श्यामसुंदर दुबे

सामाजिक अन्याय और शोषण के खिलाफ, अपनी रचनात्मक शक्तियों द्वारा जन-जीवन में जागृति ला सकूँ।

डा. जमुना प्रसाद जलेश

एक विशेष पात्र के रूप में रंगमंच पर अपनी कला के निखार हेतु बार-बार आना और परदा गिरते ही पुनः पृष्ठभूमि में अदृश्य हो जाना।

अजित कुमार (पटना)

अन्याय से संघर्ष तथा न्याय से प्रेम।

निर्मल मिर्लिद

अधिक मीठे फलों में कीड़े लग जाते हैं,
अतः वाणी और व्यवहार की मिठास की भी सीमा होनी चाहिये।

मोहम्मद सहीद शेख

प्रकृति-प्रेम, भ्रमण और अकेलापन।

रमेश चमन

अतिरिक्त सुविधाओं को त्यागकर, हर हालत में जिज्ञासु बने रहना।

देवघर महंत
जीवन ही संघर्ष और संघर्ष ही जीवन है।

शेखर चंद्र बुधानी

विकास ही जीवन और संकोच ही मृत्यु है। प्रेम ही विकास, और स्वार्थपरता ही संकोच है। इसलिए प्रेम ही जीवन का मूलमंत्र है। प्रेम करने वाला ही जीता है और स्वार्थी मरता रहता है। इसलिए प्रेम प्रेम के ही लिए करो; क्योंकि एकमात्र प्रेम ही जीवन का वैसा आधार है, जैसा कि जीने के लिए श्वास लेना।

[स्वामी विवेकानंद]

संजीव वर्मा

किसी सिद्धांत की सीमा में बंधकर मत रहो; बदलते समय व परिस्थितियों के साथ मनन, चिंतन व कर्म को बदलते रहो।

मीना शर्मा

जरूरतें कम करना और जिज्ञासा को जन्म देना।

बी. बी. राय

अपनी एक रोटी भी बांटकर खा सकूं।

श्रीमती राजलक्ष्मी शिवहरे

निरंतर संघर्ष ही जीवन है।

राजेश 'रिक्त'

प्रेम से सौंदर्य की उत्पत्ति होती है;

नवनीत

सौंदर्य से प्रेम की नहीं—इस कथन की सत्यता को जीवन द्वारा प्रमाणित करना।

छोटे लाल

बिना तरजीह के चुनो, बिना कामना के कार्यगत करो।

शैलेन्द्र कुमार

जीवन जैसा भी बीते परंतु शुभ और सत्य के लिए उत्साहपूर्वक सतत प्रयत्नशील रहे।

सत्य स्वरूप दत्त

जिसका दृष्टिदीप बुझ जाये उसका पथ-प्रदर्शन सूर्य भी नहीं कर सकता।

रमेश चंद्र भरतिथ्या

मेरा जीवन अंगूर का दाना—कुछ बड़ा कुछ मीठा है।

राहुल कुमार सिंह

यदि मृत्यु के सिवा जीवन का कोई उद्देश्य है तो यह कि औपचारिकता जानकर जीवन के सभी कर्तव्यों का बिना लोभ के निर्वाह।

रामकुमार पांडेय

तेरा वैभव अमर रहे मां
हम दिन चार रहें न रहें।

राजेश कुमार सिंह

कलिः शयानो भवति संजिहानस्तु द्वापरः।

नवंबर

उत्तिष्ठं स्वेता भवति कृतं संपद्यते चरन् ॥
चरैवेति चरैवेति । [ऐतरेय ब्राह्मण]

कौमुदी मिश्र

स्वातः सुखाय बहुजनहिताय, सतत
स्वाध्याय ।

डा. महावीर सिंह मुंडिया

मैं शरीफ हूँ, सभा शरीफ हैं, यह मानता
हूँ; यही मेरी असफलता है । तो क्या शरा-
फत छोड़ दूँ ? नहीं ।

रघुपति हेगडे कडवे

दल बदलकर वोट मांगने वाले अक्सर-
वादियों को कभी वोट न देना ।

मुशीला हेगडे कडवे

मोरनी की तरह इस दुनिया का सौंदर्य
देखकर नाचूँ और बादलों की तरह इसके
हरेपन के लिए वरसूँ ।

शिवदयाल काबरा

अभी की राजनैतिक उठा-पटक को
देखते हुए—'कोउ नृप होउ हमहि का हानी,
चेरि छाँड़ि अब होव कि रानी !'

अखिल विनय

परहित सरिस धरम नहि भाई ।

अवण कुमार दीपावरे

मीठा बोलो चाहे झूठा बोलो ।

१९७९

तुलसी नीलकंठ

जीवन एक लंबी यात्रा है ।

लीलाबहादुर पौडेल क्षत्री

ज्योतिर्गामी संतुलित जीवन-चर्या ।

अखिल कुमार जैन

भाषण चांदी है, मौन सोना है । भाषण
मानवीय है, मौन दैविक है ।

[जर्मन कहावत]

सर जोनसारी

निरंतर कार्यरत रहो और इससे जो
कुछ पाते हो, उसमें संतोष और प्रसन्नता
अनुभव करो ।

जगदोश किजल्क

ईश्वर मुझे कटु से कटु वचन सुनने और
मीठे से मीठे वचन बोलने की क्षमता दे,
फिर मैं निर्भय होकर लक्ष्य तक पहुंच
सकूंगा ।

कुमारी मीरा वर्मा

जब हम कोई कार्य करने की इच्छा
करते हैं तो शक्ति अपने आप आ जाती है ।
[मुंशी प्रेमचन्द कृत 'गबन' से उद्धृत]

पी. के. महेश

मेरे पिताजी अक्सर कहते हैं—'बेटा,
बुढ़ापे और गरीबी का कभी भी मजाक

मत उड़ाना ।

जी. वी. शेट्टिगार

‘चलने वाले ही ठोकर खायेंगे, बैठने वाले नहीं ।’ [कन्नड कवि राघवांक]

डा. शुकरत्न उपाध्याय

स्वयं को स्रष्टा की लीला का यंत्र समझकर सभी का शुभ चाहते हुए द्वंद्वों में भी अपने अखंड आनन्द को सुरक्षित रख, उत्तरदायित्वों के प्रति पूर्ण सजग चेतना के आलोक में, चट्टानों के प्रतिरोधों में भी प्रवहमान पहाड़ी झरने की तरह जीवन-लक्ष्य की ओर अजेय संकल्प और पूरे उल्लास के साथ निरंतर गतिशील बने रहना ।

महेन्द्र भानावत

काम में जी-जान, बना रहे स्वाभिमान ।

रूपनारायण

सत्य एवं विधान (कानून) का दृढ़ता से पालन करना एवं कराना ।

महावीर प्रसाद अग्रवाल

जीवन किसी से संयुक्त होने में है । अच्छे से अच्छा होने की प्रक्रिया में इसका दर्शन है : ‘योगस्थः कुरु कर्माणि’ ।

श्याम मनोहर व्यास

रोगग्रस्त शरीर सह्य हो सकता है,

नवनीत

रोगग्रस्त मन नहीं ।

डा. खेमराज मेहता

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वराप्तिबोधत ।

दामोदर लखानी

और कितने समेटे पृष्ठ इसके जिंदगी विखरा कथानक हो गयी ।

देख ली हमने चरम सीमा बहुत अंत में हमसे वगावत हो गयी ।

[सुथी प्रज्ञा तिवारी की कविता]

शरद श्रीमाल

किसी बुद्धिमान को बोलने के अनेक अवसर दो, लेकिन मूर्ख को मुंह खोलने का मौका भी मत देना ।

आदिकुमार जैन

‘विश्वास वह पक्षी है जो प्रभात के पूर्व अंधकार में ही प्रकाश का अनुभव करता है और गाने लगता है ।

[रवीन्द्रनाथ ठाकुर]

अवधेश

सत्य सदा सूली चढ़ता है,
असत राज सिंहासन,
किंतु सत्य ही कहता रहता,
असतराज का शासन ।

नारायण कृष्ण जोशी

ब्रह्म संत्यं जगन्मिथ्या

जीवनं सत्यशोधनम् ।

नयनतारा नत्थानी

सुख की छायाएं झीनी-झीनी
दुख तो वर्षा की धूप सरीखा है ।
सातों ही रंग नयन में बसते हैं
बाहर का जग तो फीका-फीका है ।

पुष्पलता जैन

शिक्षा प्राप्त करने के तीन आधार
स्तंभ-अधिक निरीक्षण, अधिक अनुभव,
अधिक अध्ययन ।

अभय कुमार जैन

सर्वश्रेष्ठ जो कुछ तुम्हारे पास हो उसे
दुनिया को दे डालो; उसके बदले में तुम्हें
सर्वश्रेष्ठ ही मिलेगा ।

रामसरनदास

खाओ, पियो करो आनन्द,
भाड़ में जाये परमानन्द !

मुचनेश्वरी प्रसाद 'भुवन'

यदि हम अपने जीवन में त्याग, प्रेम
तथा पवित्रता को उतार सकें तो हमारे
लिए और कुछ भी करना शेष नहीं रहता ।

राजेंद्रप्रसाद लहरिया

पथ-शूलों पर चलकर भी मानवता

की अर्चना, प्रेम की उपोसना और हैवा
नियत की अवहेलना करना मैंने अपना
कर्तव्य समझा है ।

डा. बी. पी. खरे

जीवन की सरलता और सच्चे सुख की
प्राप्ति अपने-अपने कर्तव्य-क्षेत्र में समुचित
और कल्याणकारी श्रम करने से होती है ।

डा. वसन्तकुमार श्रीमाल

यद् भाव्यं तद् भविष्यति ।

सच्चिदानन्द 'सिद्धार्थ'

अपनी अंतिम सांस तक भी किसी के
काम आ सकूं ।

गीता मेहरा

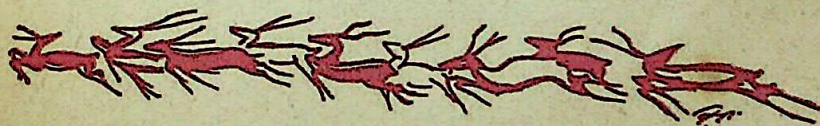
ऐसा कोई काम नहीं करना, जिससे
अपनी आत्मा और परमात्मा के सामने
आंखें नीची करनी पड़ें ।

मीना मेहरा

जीवन को बढ़ाना नहीं, सुधारना
चाहिये ।

मिदूलाल भारती

पीड़ित मानवता से बढ़कर कोई दूसरा
धर्म नहीं है ।





सुंदरता का रहस्य

आखिर सुंदरता का रहस्य क्या है—खास तौर पर स्त्री की सुंदरता का ?
वस्तुतः सुंदर स्त्री में केवल नखशिख का ही सौंदर्य नहीं होता; बल्कि उसमें एक आंतरिक सौंदर्य का प्रकाश भी होता है, जिसका उसके बनाव-सिंगार या साज-सज्जा से कोई संबंध नहीं होता, न उसकी उम्र से ही उसका संबंध होता है।

जैसा कि एक मनोविज्ञानी ने कहा है, किसी स्त्री को बच्चे की फोटो दिखाइये और देखिये कि उसकी आंखें किस प्रकार चमक उठती हैं। और उसे बच्चे के साथ बैठी उसकी मां की फोटो दिखाइये, तो उसकी आंखें और भी चमक उठेंगी और चेहरे पर भ्रमता उभर आयेगी। तब उसके चेहरे पर वास्तविक सुंदरता दिखाई देगी; क्योंकि वह उसके अंदर से प्रस्फुटित हो रही होगी।

हम सबने वह सुंदरता देखी है, जो मां बनने वाली किसी स्त्री के या गोद में बच्चा लिये किसी मां के चेहरे पर झलक रही होती है। लेकिन कई स्त्रियां अपनी भावनाओं को इस हद तक जागृत नहीं कर पातीं कि उनके अंदर की सुंदरता उनके चेहरे पर प्रकट हो। इस मामले में उन्हें कई बार पुरुषों से वह सहायता नहीं मिलती जोकि मिलनी चाहिये। वास्तव में, उनकी कई भावनाओं को पुरुष ही जगा सकते हैं।

हमारे पूर्वज इस बात को ज्यादा अच्छी तरह समझते थे। उनका कहना था कि पुरुष का थोड़ा-सा ग्यार और अपनत्व-भरा साथ स्त्री को कुछ का कुछ बना सकता है।

प्रसिद्ध अंग्रेजी लेखक जे. बी. प्रीस्टले ने बहुत पते की बात कही है :

‘वह सुंदर नहीं थी, लेकिन वह आकर्षक बन सकती थी, बशर्ते उसे कोई कभी-कभी यह एहसास कराता कि वह सुंदर है।’

—डेविड गन्स्टन





जिंदगी के युद्ध का हिस्सा

—नंद चतुर्वेदी

बहुत दिनों तक
गहरी नीली अतलांत झील की याद नहीं आती
आती है तो
एक अकथनीय दुःख की हवा और वर्षा के
झिझोड़े हुए पेड़ की तरह खड़ा रहता हूं
चलता हूं अच्छे-बुरे दिनों की स्मृति और आतंक के
बीचो-बीच

पुरानी दुनिया का सारा बोझ कंधों पर है
काल पत्थर को घिसता है

यह है

लेकिन तब तक जंगल के तमाम वृक्षों की
नसें टूटी हुई, छिन्न-भिन्न
वनस्पतियों का शोक
एक अंधेरे में बहती हुई नदी के
क्रुद्ध एकालाप से बढ़कर कुछ नहीं होता

धूप की याद आती ही रहती है
धूप के दिन, हवा की थापों से चलते

बादल पुलों के सपने
 धूप में नहाये वृक्षों के कुंज
 फिर-फिर आश्वस्त होना
 अपने प्रति, धूप, बादल और हवा के प्रति
 लेकिन इसी बीच
 लौटता है बार-बार
 रंगता हुआ धीरे-धीरे अंधेरे की तरफ घिसटता दिन

०

पीले रक्तहीन लोगों में बैठा हुआ मैं प्रतीक्षा करता हूँ
 एक फल की और धूप-किरण की
 जिसकी स्मृति अब सिर्फ व्यंग्य हंसी रह गयी है ।

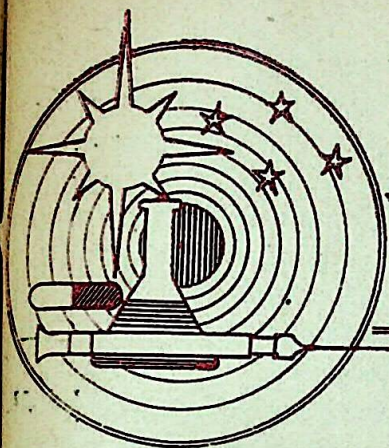
०

हवाओं का वेग थक गया हो ऐसा नहीं है
 लेकिन मां जिस पेड़ के नीचे बैठी है
 वहां पत्ता तक नहीं हिलता
 एक पेड़ के सपने का
 इस तरह मिट्टी में मिलने का
 दुःख जो भी हो
 हवा का रुकना
 एक असह्य त्रास है

०

यही सोचना, डूबे रहना
 हटाना निराशा की धुंध
 फिर डूबना, उठना
 यह दिनचर्या का हिस्सा है
 जिंदगी के युद्ध का हिस्सा भी ।

-३०, अहिंसापुरी, फतहपुरा,
 उदयपुर (राजस्थान)



विज्ञान विंदु

केजिता

आदमी की जिंदगी का सबसे बड़ा डर है—मौत का डर। भारतीय चिंतन मौत को शरीर बदलना भर मानता आ रहा है। मौत को रहस्य अब विज्ञान भी नहीं मानता। उसके अनुसार वह सामान्य यानी रहस्यविहीन एक जैव प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया को समझने के जो अनेक प्रयास हुए हैं, उनसे यह बात उभर कर सामने आयी है कि मृत्यु के लिए उत्तरदायी प्रक्रिया की गति को नियंत्रित कर पाना असंभव नहीं है।

यहां यह समझ लें कि मनुष्य को अमर बनाये जाने की बात विज्ञान नहीं कर रहा है। संसार की किसी भी जैव प्रक्रिया को अनंत काल तक अक्षुण्ण बनाये नहीं रखा जा सकता। जो बात कही जा रही है वह यह है कि समय से पहले होने वाली मौतों को रोका रखा जाना नामुमकिन नहीं है। अनुमान यह है कि अधिकांश मौतें, नासमझी और लापरवाही की वजह

से समय से पहले ही शरीर को निर्जीव बना देती हैं। इस कच्ची या असामयिक मृत्यु को रोकने की प्रक्रिया को अब एक नये शब्द 'पुनःसंप्राणीकरण' (रिएनीमेशन) से संबोधित किया जाने लगा है।

रूसी वैज्ञानिक डा. व्लादामीर नेगो-व्स्की विश्व के जाने-माने पुनःसंप्राणीकर्ता- (रिएनीमेटर) हैं। वे मास्को विश्वविद्यालय में रीएनिमेटालाजी विभाग के अध्यक्ष हैं। हाल ही में उन्होंने पिछले चालीस सालों से चले जा रहे इस क्षेत्र के अपने अनुसंधान-कार्यों और अपनी उपलब्धियों पर प्रकाश डाला है, जिससे कई चौंकाने वाले तथ्य सामने आ सके हैं। डा. नेगोव्स्की के अनुसार, मनुष्य का स्वाभाविक आयुष्य डेढ़ सौ वर्ष के आस-पास होना चाहिये। उदाहरण के लिए जब कोई डाक्टर यह कहता है कि उसके मरीज की मृत्यु खून की कमी के कारण हो गयी तो वास्तव में वह बहुत बड़े जघन्य अपराध की स्वीकृति-

१९७९

भर करता है। ऐसी मृत्यु को वे चिकित्सीय मृत्यु (क्लिनिकल डेथ) कहा करते हैं। निःसंदेह ऐसे मरीजों को बचाना असंभव नहीं कहा जा सकता। डा. नेगोव्स्की का कहना है कि दुनिया-भर में लाखों ऐसे व्यक्तियों की जरूरत है, जो इस क्षेत्र में प्रशिक्षित किये जा सकें। स्वयं उनके अनुसार वे इस क्षेत्र में इतनी निपुणता हासिल कर सके हैं कि पांच-छह से लेकर पंद्रह मिनट तक मौत को आगे के लिए टाल सकते हैं और उन्हें विश्वास है कि शरीर के ताप को कम करके इस अवधि को दो-तीन घंटों तक के लिए बढ़ाया जा सकता है।

वे बताते हैं कि शरीर के यांत्रिक ढाँचे के अचानक निष्क्रिय होने को रोकने के लिए उचित विधि द्वारा कृत्रिम श्वसन, हृदय की मालिश, विद्युत आघात (शाक) औषध, हाइपोथर्मिया (शारीरिक ताप का कम होना) तथा हाइयोक्सिया (शरीर की कोशिकाओं में आक्सिजन की कमी हो जाना) के नियंत्रण की आवश्यकता होती है। इस पद्धति के विशेषज्ञ मृत्यु को कोई 'निश्चित क्षण' न मानकर एक प्राकृतिक प्रक्रिया के रूप में ही स्वीकारते हैं।

प्रो. नेगोव्स्की के अनुसार, उनके इस सनसनीखेज अनुसंधान का एक रोचक पहलू यह है कि उनके द्वारा पुनर्जीवित किये गये अनेक मरीजों को डाक्टरों मृत्यु (क्लिनिकल डेथ) के बाद एक 'नये जीवन' की संवेदनाओं का अनुभव हुआ। परंतु पश्चिम के विभिन्न गैर-साम्यवादी देशों में

हो रहे इस प्रकार के परीक्षणों से प्राप्त निष्कर्षों से उन्होंने अपनी गहरी असहमति प्रकट करते हुए कहा है कि इस प्रकार के अनुभव रोगी मस्तिष्क के वहम अथवा भ्रम से अधिक कुछ नहीं हैं। ऐसे अनुभव सारे संसार में होते हैं, इसका भी कारण यही तो है कि मन्द-मस्तिष्क की संरचना और संचालन-प्रक्रिया विश्व-भर में एक-सी है।

संतान-शाप

औलाद के चक्कर में हमारे यहां परिवार नियोजन के इस युग में भी कोई-कोई नारी अपने जीवन से हाथ धो डालती देखी जाती है। मगर पश्चिम के देशों में यह चक्कर औलाद पाने का नहीं, उससे बचने का है। ब्रिटिश मेडिकल जर्नल की एक ताजा रिपोर्ट के अनुसार पैंतीस से लेकर चवालीस के बीच की उम्र वाली कई महिलाओं की मृत्यु का कारण उनका गर्भ से बचने के लिए गर्भरोधी 'पिल' का लगातार इस्तेमाल करना पाया गया है। इसकी तुलना में गर्भ, प्रसव या गर्भपात के कारण होने वाली मृत्युओं की संख्या अब काफी कम हो गयी है। १९७५ की अवधि में 'पिल' के कारण ही ब्रिटेन में पंद्रह महिलाओं को अपनी जान से हाथ धोना पड़ा है।

बताया गया है कि 'पिल' के अधिक प्रयोग से रक्त-परिचरण संबंधी रोगों का खतरा काफी बढ़ जाता है। 'पिल' के कारण होने वाली अधिकांश मृत्युओं का कारण यही रोग है। परंतु ट्यूमर और गर्भाशय-ग्रीवा के कैंसर के मामले भी

खने में आये हैं। एक महिला तो 'पिल' के कारण अपनी आंखों की रोशनी ही खो बैठी थी। इसके अतिरिक्त, मानसिक विक्षेप के अनेक मामलों का कारण भी 'पिल' को ही पाया गया है।

प्रोटीन हमारे भोजन के वे पोषकतत्त्व होते हैं, जो शरीर के निर्माण में इंटों का काम करते हैं। प्रोटीन किसी एक योगिक-विशेष का नाम नहीं है। यह एक वर्ग है जिसमें काफी बड़ी संख्या में योगिक शामिल होते हैं। हर प्रोटीन का अपना अलग-अलग रासायनिक नाम है और शरीर में हर प्रोटीन के अलग-अलग काम भी निश्चित हैं।

नये प्रोटीनों की खोज, उनकी रासायनिक संरचनाओं के निर्धारण और शरीर में उनके महत्त्व को लेकर जैव-विज्ञान के क्षेत्र में होने वाले अनुसंधान-कार्य का अपना विशेष महत्त्व है। प्रसिद्ध वैज्ञानिक पत्रिका 'नेचर' में प्रकाशित दो लेखों के अनुसार, एक भारतीय और एक जर्मन वैज्ञानिक के एक दल ने सांड के ताजा वीर्य के प्लाज्मा में से एक नये प्रोटीन की खोज की है। प्लाज्मा उस द्रव को कहते हैं जिसमें शुक्राणु (स्पर्म) अपनी प्राकृतिक अवस्था में तैरते रहते हैं। इस प्रोटीन का नाम है—सेमिनलप्लाज्मिन। और यह नयी खोज करने वाले वैज्ञानिक हैं—रीजनल रिसर्च लेबोरेटरी, हैदराबाद के डा. पी. एस. भागवं और पश्चिम जर्मनी के मेक्स प्लांक इंस्टिट्यूट आफ बायो-

केमिकल्स के डा. शीट।

चेतन चुंबक

कई अन्य पक्षियों की तरह कबूतर का दिशा-ज्ञान भी गजब का होता है। कहीं छोड़ दीजिये, वह सीधे बिना ज्यादा भटके-अटके अपने निवास-स्थान पर पहुंच जायेगा। दूरी कितनी ही क्यों न हो, उससे कबूतर को अपना स्थान खोज लेने में कोई बाधा नहीं पड़ती। इस क्षेत्र के अध्येताओं को इतना तो मालूम हो चुका है कि इस काम में ये पक्षी सूरज की स्थिति की सहायता लेते हैं और रात में या बादल होने पर जब सूर्य लापता होता है, तब पृथ्वी के चुंबक का। मगर इससे आगे शोध की गाड़ी अटकी हुई थी।

अब एक महत्त्वपूर्ण खोज की है न्यूयार्क की स्टेट यूनिवर्सिटी के जाने-माने जीव-विज्ञानी प्रो. चार्ल्स वाल्कोट ने। उन्होंने कबूतर की आंख के गड्ढे के पीछे और मस्तिष्क के समीप एक ऐसे ऊतक (टिश्यू) का पता लगाया है, जो आकार में एक वर्ग मिलिमीटर से भी छोटा है, और लौहतत्त्व से सम्पन्न है। रासायनिक रचना की दृष्टि से यह लौहतत्त्व वहां मेग्नेटाइट अथवा लोड स्टोन नामक खनिज के रूप में उपस्थित रहता है, जो कि एक चुंबकीय पदार्थ है। यानी कबूतर के शरीर में एक चुंबक मौजूद रहता है।

'बोस्टन संडे ग्लोब' नामक पत्रिका में छपी एक रिपोर्ट के अनुसार, प्रो. वाल्कोट का कहना है कि अभी निश्चित रूप से इस

चुंबकीय ऊर्जा और कबूतर के दिशा-ज्ञान के बीच के संबंध तो सिद्ध नहीं किया गया है; परंतु इससे इस दिशा में नया शोध-सूत्र अवश्य हाथ लग गया है।

भूचाल की चाल

भूचाल आते रहे हैं और ले जाते रहे हैं अपने साथ सैकड़ों-हजारों बेगुनाह इन्सानों की जानें। दुनिया के किसी न किसी हिस्से में ये हर वर्ष आते हैं—कभी कहीं तेज और कभी कहीं हल्के। भूचाल का रोक पाना शायद मानव की शक्ति और सामर्थ्य के बाहर है। उससे बचने के लिए इस दिशा में प्रयत्न किया जा रहा है कि उसके घटित होने से पहले उसका अनुमान लगाया जा सके। मुख्य प्रश्न है इस अनुमान का आधार क्या हो। अब तक कई विकल्प सामने आये हैं। आप इस स्तंभ में पहले पढ़ चुके हैं कि पशु-पक्षियों के व्यवहार में आकस्मिक परिवर्तन से भावी भूकंप का अनुमान किया

जा सकता है। इस विषय में चीन में हुए शोधकार्य पर एक पूरा लेख भी आप नवनीत (जून १९७९) में पढ़ चुके हैं।

बताया जाता है कि चट्टानों की विद्युत-चालकता जिन घटकों पर निर्भर है, वे भूकंप आने से पूर्व पृथ्वी के उदर में होने वाले परिवर्तनों से इस सीमा तक प्रभावित होते हैं कि चट्टानों की विद्युत-चालकता में भी परिवर्तन आ जाता है और इस परिवर्तन को नापा भी जा सकता है। ये घटक हैं—चट्टान का आयतन, उसमें बने छिद्रों की रचना और छिद्रों में मौजूद तरल पदार्थ की अपनी चालकता।

रूस में अब इस पद्धति को इतना प्रामाणिक माना जाने लगा है कि वहां भूकंप-संवेदी क्षेत्रों में बड़े-बड़े जनित्र लगाये जा रहे हैं। इन जनित्रों से उत्पन्न विद्युत-चुंबकीय क्षेत्र के कारण चट्टानों में होने वाले विद्युत-परिवर्तनों पर हर समय निगाह रखी जा सकेगी।



[पृष्ठ ४७ का शेषांश]

मिला-जुला आस्वाद बंगला साहित्य में सदा विस्मयकारी वस्तु रहेगा। इसकी रचना के समय उन पर मृत्युछाया पड़ी थी, उसका संकेत अंतिम कई छंदों में है—

‘आदिम कालेर चादिम हिम
तोड़ाया बांधा घोड़ार डिम
घनिये एलो घूमेर घोर
गानेर पाला सांग मोर।’

—आदिम समय यह चंद्रीय हिम मानो खांचे में रखा घोड़े का अंडा है। मुझे भी

अब घोर निद्रा आ रही है और यह गान का मेरा अवसर अब समाप्त हुआ।

जीवन-मृत्यु की संधि बेला में ऐसी रसिकता किसी अन्य रससर्जक के लिए संभव हुई या नहीं मैं नहीं जानता।

०००

[लेख सत्यजित राय और पायं वसु द्वारा संपादित एवं आनंद पब्लिशर्स प्राइवेट लिमिटेड द्वारा प्रकाशनाधीन पुस्तक ‘सुकुमार साहित्यसमग्र’ से प्रकाशित।]



मेरा बचपना सही

मैं चाहता हूँ
कि पेड़ के पहले फूल को देखूँ
अचानक कब
वह डाल पर फूट निकलता है
कैसे खिलता है।

मैं चाहता हूँ
अंडे से निकलती गौरैया देखूँ
और देखूँ
वह तुतलाते-तुतलाते
अचानक कैसे जवान हो जाती है
और कब पहला अंडा देती है।

मैं चाहता हूँ
कि मुंह अंधेरे उठूँ
घुप्प, काले आसमान को
पहले सिलेटी
फिर नीला होता हुआ देखूँ
सुबह को होता हुआ देखूँ।

मैं चाहता हूँ
कि पहाड़ी के पीछे
उगता सूरज देखूँ
उसकी अग्रभूमि में
ताड़ के पेड़ों की
स्पष्ट होती हुई आकृतियां देखूँ।

मैं चाहता हूँ
कि जब तक यह सब

अपनी आंखों से न महसूस कर लूँ
कोई मुझे यह न बताये
कि ये बातें पुरानी हो चुकी हैं
साहित्य में बेमानी हो चुकी हैं।

मैं चाहता हूँ
कि उगते हुए सूरज का रंग
खुद पहचानूँ।
कोई मुझे यह न बताये
वह कैसा होता है
कहां से आता है
कैसे उगता है ?

जो बिना बताये नहीं रह सकता
मैं चाहता हूँ
वह पहले
अपने घर की आधी रोटियां लाये
मुस्कराकर, आवरसे मुझे खिलाये
जब तक वह ऐसा नहीं करता
मैं उसकी बात
नहीं सुनना चाहता
उसके सूरज का रंग
नहीं जानना चाहता
चाहे वह कोई भी हो।

— यज्ञ शर्मा

जी-१२।१७, जलपद्मा, बांगड़ नगर,
गोरेगांव (प.), बंबई-४०००९०



तेल कहाँ है ?

● रमेशदत्त शर्मा ●

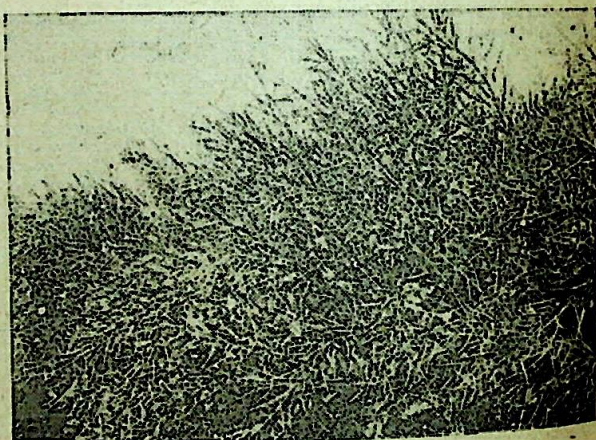
यह तिल ही था जिसे हमारे पूर्वज दिल दे बैठे और उसी के बीजों के चिकनाई-भरे निचोड़ को 'तैल' (तेल) कहा गया था। पर अब तो शायद ही कोई चीज बची हो, जिसका तेल न निकाला जाता हो—मिट्टी से लेकर मछली और आदमी तक। यों आदमी को खुद हर रोज ३० ग्राम चिकनाई चाहिये। पर अपने देश में अगर हर कोई तेल खाने लगे, तो प्रतिदिन ११ ग्राम से ज्यादा किसी को न मिले। आधी आबादी तो गरीबी के ऐसे अंधेरे में डूबी है कि उसे दिया जलाने को क्या, दूर से दिखाने को भी तेल नहीं मिलता।

तिल के अलावा सरसों (सर्पप), अरंड और अलसी तथा नारियल भी हमारे पूर्वजों को मालूम थे। पर आज तेल देने-वाली हमारी मुख्य फसल है—मूंगफली। ७२ लाख हेक्टर में मूंगफली उगायी जा रही है। इसके बाद आती हैं सरसों,

नवनीत

तोरिया, जिनकी खेती ३५ लाख हेक्टर में होती है। फिर आता है तिल २३ लाख हेक्टर में, अलसी २० लाख हेक्टर में, और अरंड ५ लाख हेक्टर में। तेल-जगत के इन पांच बड़ों के बाद कुसुंभ (करडी) और रामतिल हैं; और उनके बाद आती हैं नयी फसलें सोयाबीन और सूरजमुखी।

वैसे कोई एक सौ पौधे ऐसे हैं, जिनके बीजों से उपयोगी तेल निकलता है, पर अभी उन सबका पूरा-पूरा इस्तेमाल नहीं हो रहा। परंपरागत तिलहनी फसलों की भी



'तेल' (तैल) शब्द भले 'तिल' शब्द से निकला हो, परंतु पंजाब से असम-उड़ीसा तक तेलों का राजा सरसों का तेल है।

नवंबर

उपेक्षा हुई है, फिर नयों को कौन गले लगाये !

उपेक्षित क्षेत्रों की पिछड़ी फसल

उपेक्षा इस तरह कि फसल-प्रणालियों में दलहन और तिलहन—दोनों के साथ भेद-भाव बरता गया है। सबसे अधिक उपजाऊ और सिंचित जमीनों में तो बैठाये गये गेहूँ-धान और बेचारे दलहन-तिलहन खदेड़ दिये गये वर्ष पर निर्भर रहने वाले बारानी क्षेत्रों में, बची-खुची जमीनों में। सरसों की तो बरसों तक लोग मिलवां खेती ही करते रहे। अलग से भी कोई तो दर्जा इसे दिया जा सकता है, किसी ने नहीं सोचा। इसी हिसाब से खाद और पानी इन फसलों के हिस्से कम आया। रोग और कीट-नाशक दवाओं का तो जिक्र ही नहीं था।



कुसुम, कुसुम या करंडी का तेल शरीर में कोलेस्टेरोल का निर्माण न करने के कारण आजकल महिमा अर्जित कर रहा है।

१९७९

विज्ञान ने भी इनके सुधार पर ध्यान नहीं दिया।

इधर आबादी बढ़ी। तेल की मांग बढ़ी। पिछले कुछ वर्षों से सोचा जाने लगा कि तिलहनी फसलों की पैदावार बढ़ाकर अधिक तेल उपलब्ध किया जाये। यों थोड़ा-बहुत काम तो तभी से शुरू हो गया था, जब आज की 'इंडियन' और तब की 'इम्पीरियल' कौन्सिल ऑफ एग्रिकल्चरल रिसर्च (कृषि अनुसंधान परिषद) की स्थापना सन १९२४ में हुई थी।

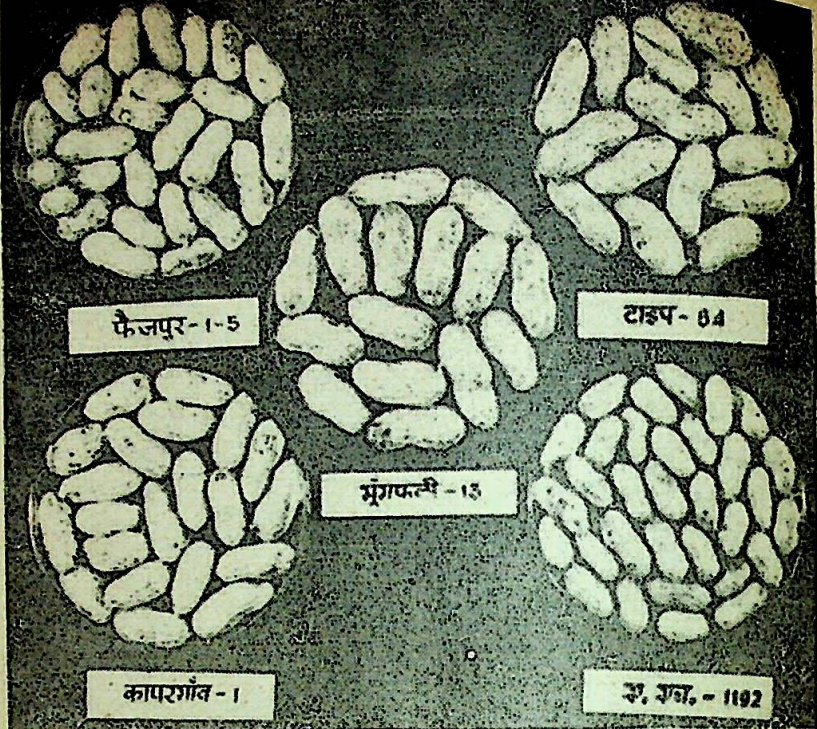
खोज के खुरदरे रास्तों पर :

उस समय तिलहनी फसलों पर अनुसंधान का काम राज्यों के कृषि-विभाग करते थे। अपने-अपने इलाके से जो भी किस्में मिलीं, उगा लीं। कुछ अच्छी छांटी

भी गयीं। पर अखिल भारतीय स्तर पर परीक्षण करने की कोई व्यवस्था नहीं थी। जिस तरह बची-खुची जमीनों में इसकी खेती होती थी, वैसे ही बची-खुची सुविधाओं से इस पर अनुसंधान चला।

आजादी आने के बाद केंद्रीय तिलहन समिति बनी। पहली बार तिलहनी फसलों पर अनुसंधान और

हिंदी डाइजेस्ट



मूंगफली, जिसे पुर्तगाली हिंदुस्तान लाये, आज देश का प्रमुख तिलहन बन गयी है। इस चित्र में दर्सायी गयी हैं उसकी कतिपय प्रमुख किस्मों की फलियाँ।

विकास की देशव्यापी योजना बनी। इसका नतीजा यह हुआ कि पंजाब में अच्छी उपज देने वाली मूंगफली-१ किस्म गुजरात में भी जा पहुँची। तमिलनाडु में विकसित की गयी मूंगफली की 'टीएम वी' किस्में आंध्र प्रदेश में तथा उत्तर प्रदेश में विकसित तिल की टाइप-१२ और १३ अन्य प्रदेशों में प्रसारित हुईं। हैदराबाद में तिलहन विकास निदेशालय बना। परंतु अखिल भारतीय समन्वित तिलहन अनुसंधान परियोजना सन १९६७ में ही आकर शुरू की जा सकी। आजकल इसका

भी मुख्यालय हैदराबाद में है और सके पंतनगर में प्रशिक्षित उत्साही निदेशक डा. विक्रम सिंह पूरे जोश से तिलहनी फसलों के उद्धार में लगे हुए हैं।

डा. विक्रम सिंह ने बताया कि देश के हर कोने में इकट्ठी की गयी तिलहनी फसलों की विविधता-भरी किस्मों के अलावा दुनिया के हर तिलहनी क्षेत्र से किस्में मंगवाकर उन्हें तिलहन-सुधार कार्यक्रम में इस्तेमाल किया जा रहा है। फसलों के ऐसे चक्र खोजे जा रहे हैं, जिनमें तिलहनी फसलों का समावेश हो सके। रोगरोधी

और कीटरोधी किस्में विकसित की जा रही हैं। नये रासायनिक तरीके जांचे जा रहे हैं, जिनके इस्तेमाल से बीमारियों और कीड़े-मकोड़ों की रोकथाम हो सके। खेती-बाड़ी के बेहतर तरीकों के अलावा किसानों को तिलहन की खेती के लिए प्रोत्साहित करने के उपाय भी मुझाये गये हैं। उदाहरण के लिए लीजिये मूंगफली। 'मनीला कोटै' और 'चीना बादाम'

आज कौन यकीन करेगा कि सोलहवीं सदी से पहले हमारे देश में मूंगफली का कोई नाम ही नहीं जानता था। ४५ से ५० प्रतिशत तक तेल और २८ से ३० प्रतिशत तक प्रोटीन से भरपूर मूंगफली का मूल देश है ब्राजील। वहां से इसे दुनिया-भर में फैलाया पुर्तगाली सौदागरों ने। हमारे देश में फिलीपाइन्स से कोई फादर जोसफ लाये थे उसे। तभी तो दक्षिण भारत में कुछ स्थानों पर मूंगफली को 'मनीला कोटै' भी कहते हैं। लेकिन उत्तर भारत में यह चीन से चलकर बंगाल होती हुई आयी और पूर्वी भारत में अब भी फेरीवाले इसे 'चीना बादाम' कहकर बेचते हैं।

मूंगफली भी उसी फलियों वाली फसलों के कुल की है, जिसमें दालें आती हैं। वैसे तो इसकी कोई पचास जातियां मिली हैं, पर खेती की जाने वाली मूंगफली का शास्त्रीय नाम है—अरेकिस हाइपोजिया। 'हाइपो' यानी 'नीचे' और 'जिया' यानी 'भूमि'। भूमि की फली से बिगड़कर बना 'मूमफली' और किसी अल्पज्ञ भाषा-

सुधारक ने कर दिया 'मूंगफली'। आचार्य किशोरीदास वाजपेयी तो 'मूमफली' को ही शुद्ध मानते हैं। पर बादाम घोटने वालों में 'मूमफली' की आवाज कौन सुने!

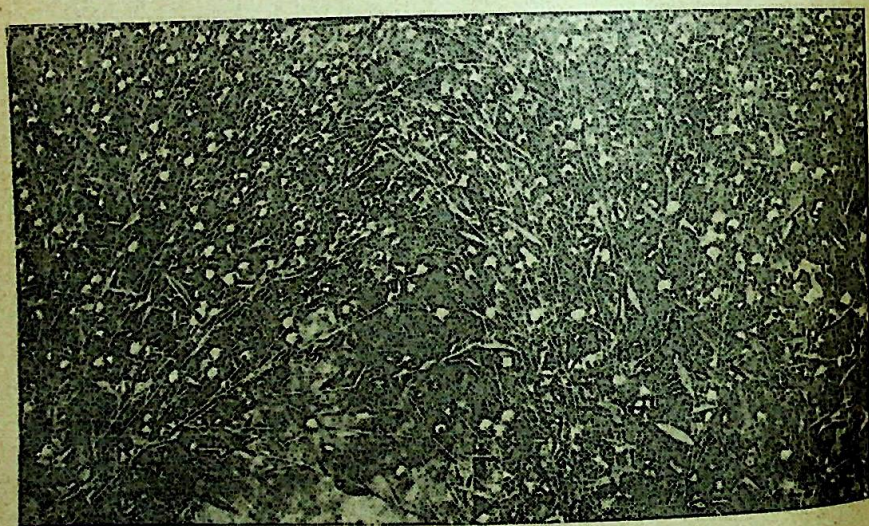
कभी आपने सोचा है कि इसकी फली भूमि के अंदर कैसे पहुंचती है! अच्छा-खासा पौधा तो हवा में ही अंकुराता है। पांच पंखुरियों वाले फूल रोशनी में ही खिलते हैं, सुबह छह से आठ बजे तक। पर फूल खिलने से कोई घंटे भर पहले ही इसके परागकोश अपने परागकण स्त्रीकेशर पर बरसा चुके होते हैं। बंद फूल में ही परागण हो चुकता है। अगले बारह घंटों में फूल मुरझाकर गिर जाते हैं। अब अंडाशय का वृत्त बढ़ना शुरू करता है। यह खूंदी-सरीखा होता है और कहलाता है—'पेग' या नस्से। लगता है जैसे ये पौधे की उंगलियां हों। ये ही झुकते हैं और धरती को खोजकर उसके अंदर धंस जाते हैं। दो से सात सेंटीमीटर तक अंदर जाकर ये फिर बढ़ना और फलियां बनाना शुरू करते हैं। मजे की बात यह है कि जो 'पेग' या नस्से पौधे पर १५ सेंटीमीटर से ऊपर लगे रहते हैं, वे झुककर भूमि तक नहीं पहुंच पाते और उन पर फलियां नहीं लगतीं। फलियां तो भूमि के नीचे ही पनपती हैं। देखा नम्रता का महत्त्व! एक पौधे पर २५ से लेकर १५० तक फलियां आती हैं। भूमि की इस फली को नरम, भुरभुरी मिट्टी चाहिये, नहीं तो कोमल टहनी घंसेगी कैसे!

पानी मूंगफली को ज्यादा नहीं चाहिये।

एक हल्की वर्षा खेत की तैयारी से पहले हो जाये, दूसरी बुआई के पहले पखवारे में और अगले तीन-चार महीनों में हल्की ही दो बारिशें और हो जायें। वस काफी है। वर्षा न होने पर दो-तीन सिंचाई करनी होंगी। पर पानी खेत में खड़ा नहीं रहना चाहिये। कटाई या कहिये कि खुदाई के समय मौसम सूखा और साफ रहे तो अच्छा। गीला होने पर फलियों में फफूंदी लग सकती है। यह फफूंदी एक जहर पैदा करती है—अप्लाटाक्सिन। इस जहर की अधिक मात्रा कैंसर तक पैदा कर सकती है। पर इससे दाने का स्वाद भी बिगड़ जाता है और खराब दाना मुंह में आते ही आप थूक देते हैं।

मूंगफली की किस्में दो तरह की हैं—

गुच्छे वाली और फैलने वाली। गुच्छे वाली २५ से ११० दिन में पक जाती हैं और फैलने वाली किस्म १२५ से १४० दिन लेती है। पर ज्यादा पैदावार फैलने वाली से ही मिलती है। वैज्ञानिकों ने अब ऐसी किस्मों का विकास किया है, जो गुच्छे वाली होती हुई भी अच्छी उपज देती हैं। 'ज्योति' गुच्छे वाली है, 'टाइप-६४' अघ-गुच्छिया है और 'नं. १३' और 'आर. एस. १' फैलने वाली। पर उपज इन सबसे २० से ३० क्विंटल प्रति हेक्टर मिलती है। नयी किस्मों में 'एम-१३', 'एम-१४५' और 'पी जी-१' उल्लेखनीय हैं। बंबई की ट्राम्बे स्थित अनुसंधानशाला में परमाणु-विकिरण द्वारा भोटे दाने वाली बेहतर किस्में विक-



अलसी, जिसकी नयी किस्में १५ से १८ क्विंटल प्रति हेक्टर तक उपज देती हैं।

सित की हैं।

एक सर्वेक्षण से पता चला है कि मूंगफली उगाने वाले किसान खाद लगाते ही नहीं। फली वाले कुल की होने के कारण मूंग-फली की जड़ों में नाइट्रोजनकारी जीवाणु पलते हैं। शुरु के २०-२५ दिन, जब तक जड़ों में जीवाणु पालने वाली गांठें नहीं बनतीं, तब तक के लिए १५-२० किलो नाइट्रोजन प्रति हेक्टर लगा देना काफी है। इसके अलावा फास्फेट (५०-६० कि.), पोटाश (३०-४० कि.), कैल्शियम और सल्फर भी मिलने चाहिये। नहीं तो फलियां छोटी, सिकुड़ी, बिना बीज की या छोटे दाने वाली बनती हैं।

कई फफूंदियों को मूंगफली बड़ी प्रिय है। सबसे भयंकर है 'टिक्का' रोग पैदा करने वाली सक्कोस्पोरा। पत्तियों पर छोटे-छोटे गोल गहरे भूरे दाग इसकी पहचान हैं। बहुत तेजी से फैलती है यह बीमारी। शुरु में ही दस दिन के अंतर से फफूंदनाशी दवा २ किलो १ हजार लिटर पानी में घोलकर छिड़क दें, तो प्रकोप कम हो जाता है। सबसे अच्छा यह है कि बीज बोने से पहले बीज का 'थिराम' (१३ ग्राम प्रति हेक्टर) या 'कपटान' (८ ग्राम प्रति हेक्टर) दवाओं से उपचार कर दें।

मूंगफली पैदा करने में गुजरात सबसे आगे है। तीन हेक्टर खेत में मूंगफली की खेती जितने पानी से की जा सकती है, उससे धान की खेती सिर्फ एक हेक्टर में हो पायेगी। फिर मूंगफली से मिट्टी भी उप-

१९७९

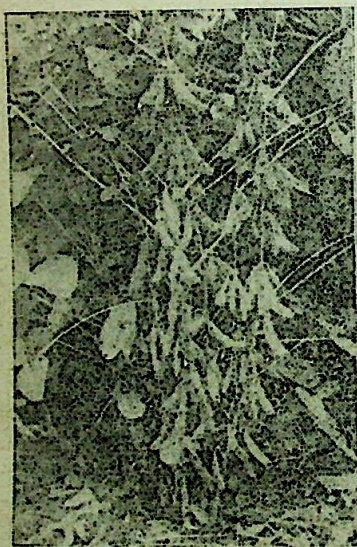


सूरजमुखी अब बगीचों से खेतों में पहुंच गयी है। रोगों और चिड़ियों की वक्रदृष्टि से बचे तो यह प्रति हेक्टर १॥ हजार रु. मुनाफा दे सकती है। ऊपर स्वस्थ पौधा, नीचे बीमार पौधा।



जाऊ बनती है। सिंचाई की व्यवस्था हो जाये तो ५ टन प्रति हेक्टर तक मूंगफली की पैदावार नयी किस्मों से आराम से मिल सकती है। अतः तिलहन-विकास के नये अभियान में मूंगफली को प्राथमिकता दी गयी है।

छठी योजना में मूंगफली का क्षेत्र ६ लाख ३० हजार हेक्टर से बढ़ाकर १० लाख १० हजार हेक्टर तक ले जाने का विचार है। इसके लिए अनेक बड़े बांधों के आस-पास के सिंचित क्षेत्र को चुना जा रहा है—आंध्र प्रदेश में नागार्जुनसागर और पोचंपद कर्नाटक में तुंगभद्रा और भद्रा, उड़ीसा में हीराकुड और डेल्टा सिंचाई प्रायोजना-क्षेत्र,



सोयाबीन—आज का कल्पतरु

नवनीत

राजस्थान में राजस्थान नहर और भाकड़ा-क्षेत्र। तमिलनाडु, गुजरात, महाराष्ट्र और मध्य प्रदेश के लघु सिंचाई-क्षेत्रों में भी मूंगफली का प्रसार किया जायेगा। कुल मिलाकर ४१ जिलों में मूंगफली की सघन खेती का प्रसार किया जायेगा। मूंगफली के उत्पादन और वितरण में राष्ट्रीय डेरी विकास निगम के सफल अनुभवों का भी लाभ उठाया जा रहा है।

विकास के नये प्रयास

मूंगफली के बाद आती है सरसों, तोरिया और राई। सरसों और उसके इन उपभेदों की खेती ३,४२८ हजार हेक्टर में होती है और पैदावार है, लगभग १६९२ हजार टन। फिर आता है, तिल, जिसकी खेती २,२५० हजार हेक्टर में होती है और पैदावार लगभग ३८० हजार टन मिलती है। फिर अलसी और अरंडी आते हैं। सूरज-मुखी और सोयाबीन तो अभी जहां-तहां जड़ें पकड़ रही हैं।

इन सभी तिलहनी फसलों में से खाने योग्य तेल देने वाली फसलों के विकास पर विशेष बल दिया जा रहा है। ७८-७९ के लिए मूंगफली का समर्थन-मूल्य बढ़ाकर १७५ रुपये प्रति क्विंटल कर दिया गया था। सरसों-तोरिया का समर्थन-मूल्य तो अब (७९-८०) के लिए २४५ रुपये प्रति क्विंटल घोषित किया गया है। सूरजमुखी और सोयाबीन के लिए भी ७८-७९ में समर्थन-मूल्य १७५ रुपये रखा गया था।

तिलहनी फसलें उगाने वाले किसानों को

नवंबर

चुने हुए जिलों में वहां की जलवायु के लिए उपयुक्त नयी किस्मों के मिनीकिट मुफ्त बांटे जायेंगे। हर मिनीकिट में आधे हेक्टर में बोने लायक नयी किस्म का बीज रहेगा। बीज-उपचार की दवा भी मिलेगी। उगाने की तरीक़ीब बताने वाला साहित्य भी रहेगा—अंग्रेजी में नहीं, भारतीय भाषाओं में। आगे भी फसल-रक्षा के लिए, बीजों के उत्पादन के लिए, ढुलाई के लिए तथा प्रदर्शनों के लिए आर्थिक सहायता की व्यवस्था की गयी

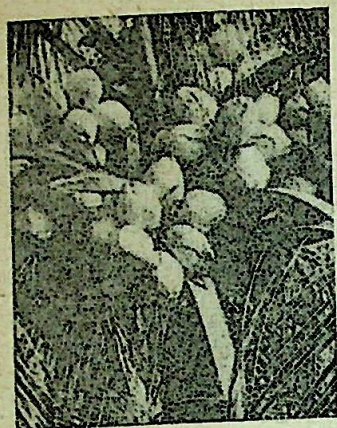
है। राज्य सरकारों को तिलहनों के इस राष्ट्रीय अभियान के लिए आवश्यक कर्म-चारी भरती करने के वास्ते केंद्र शत-प्रति-शत आर्थिक सहायता देगा।

नयी फसलें

सूरजमुखी को तिलहनी फसल के रूप में उगाने के प्रयास हमारे यहां सन ६९-७० में सफल हुए, जब रूस से लायी गयी चार किस्में और कनाडा की 'सनराइज' से भारत में सूरजमुखी का उदय हुआ। ७३-



तेल की प्रतीक्षा में मुंह खोले दीये नहीं, तेल के लिए सुखाये जा रहे गोले। देश में हर साल ३० लाख टन गोले का तेल निकाला जाता है। अब तो इसके विकास के लिए अलग बोर्ड कायम किया जा रहा है।



नारियल-गुच्छे के गुच्छे

७४ में इसका क्षेत्र २ लाख हेक्टर हो गया था। नाम से सूरज की भवत पर प्रकाश के प्रति नितांत तटस्थ यह फसल सारे साल किसी भी मौसम में ली जा सकती है। ज्यादा बारिश हो तो ठीक, कम हो तो भी ठीक। अब आठ राज्यों में इसके प्रसार की योजना कार्यान्वित की जा रही है। इस फसल के प्रसार में सबसे बड़ी बाधा हैं चिड़ियां, जो बीज चुग जाती हैं।

कल्पतरु सोयाबीन

सोयाबीन को तो पंतनगर के भूतपूर्व यशस्वी कुलपति डा. ध्यानपाल सिंह कल्पतरु कहा करते थे। ४० प्रतिशत प्रोटीन और २० प्रतिशत तेल देने वाली सोयाबीन दलहन भी है और तिलहन भी। तेल निकालने के बाद बची सोयाबीन-खली प्रोटीन से भरपूर रहती है और किस्म-किस्म के प्रोटीनपूर्ण व्यंजन इसी खली से बनाये

नवनीत

जाते हैं। कुमायूं की पहाड़ियों में सोयाबीन को 'भट' कहते हैं। वहां सन १८२२ से इसकी खेती के प्रमाण मिले हैं। फिर १९३० वाले दशक में गांधीजी ने इसका प्रचार किया। पर देश में इसे अपनाने की असली शुरूआत १९६३-६४ में इसकी अमरीकी किस्मों पर पंतनगर तथा जबलपुर में किये गये प्रयोगों से हुई। अब इसकी खेती लगभग २५ हजार हेक्टर में हो रही है। मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश और कर्नाटक के अलावा हिमाचल प्रदेश और बिहार में भी सोयाबीन का व्यापक प्रसार करने के लिए कदम उठाये गये हैं।

सोयाबीन-कार्यक्रम के प्रवर्तक डा. ध्यानपाल सिंह (संप्रति, कुलपति - राजेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, पटना) ने बताया कि बिहार के रांची के आदिवासी-क्षेत्र में सोयाबीन और मूंगफली दोनों के प्रसार की काफी संभावनाएं हैं। इसके लिए कार्यकर्ता भी आदिवासियों में से ही छांटने की कोशिश की जा रही है। अक्तूबर में बुआई करने पर सरसों की 'वरुण' किस्म ने वहां ३० क्विंटल प्रति हेक्टर तक उपज दी है। अब किसान, इसे गेहूं के साथ मिलवा बोलने के बजाय अकेली फसल के रूप में ही ले रहे हैं। वे जानते हैं कि सरसों को ऊंचे दाम पर बेचकर गेहूं तो वे अपनी जरूरत के लिए खरीद भी सकते हैं। छोटा नागपुर, संथाल परगना और सिवभूम जिलों में भी मूंगफली और सोयाबीन का प्रसार हो रहा है।

नवंबर

लेकिन डा. सिंह इस बात से सहमत नहीं हैं कि कुछ क्षेत्रों में किसानों को अनाज की खेती बंद करके तिलहन या दलहन उगाने पर कानूनी तौर पर या किसी और तरह का दबाव डालकर मजबूर किया जाये। उनका कहना है—‘किसान वैसे ही दुखी प्राणी है, पर समझदार भी है। उसे इतनी ठोकरें लग चुकी हैं कि अगर उसके मतलब की चीज होगी और उसे एक की जगह दो पैसा मिलता दिखाई देगा, तो वह जरूर उसे ग्रहण करेगा। बस आप उसे ठीक से समझा दीजिये और आवश्यक साधन उपलब्ध करा दीजिये। बीज, खाद, दवा और पैदावार की अच्छी कीमत मिल जाये, तो फिर किसान न तिलहनों की कमी हड़्दें देंगे, न अनाज की।’

डा. स्वामिनाथन् की योजना

किसानों की क्षमता में ऐसा ही अटूट विश्वास व्यक्त किया प्रसिद्ध शोध विज्ञानी तथा भारत सरकार के वर्तमान कृषि एवं सहकारिता सचिव डा. एम. एस. स्वामिनाथन् ने। उन्होंने तिलहन-समस्या के समाधान की रणनीति स्पष्ट की—‘सबसे पहली बात यह है



कि अनुसंधान में तिलहनों को प्राथमिकता मिले। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद की समन्वित तिलहन अनुसंधान निदेशालय को इसके ४५ केंद्रों और उपकेंद्रों सहित छठी योजना में और भी सबल बनाया जायेगा। जूनागढ़ में मूंगफली का अनुसंधान संस्थान अलग से बनाया जा रहा है। कुछ केंद्र उन स्थानों में बनाये जायेंगे, जहां अभी कोई अन्य केंद्र तिलहनों पर खोज-कार्य नहीं कर रहा है। कनाडा और स्वीडन की सहायता से सरसों, तोरिया, तिल और सूरजमुखी पर अनुसंधान को बढ़ाया जा रहा है। बड़ी सिंचाई-परियोजनाओं के १६ अनुसंधान केंद्रों को कृषि विज्ञान-केंद्रों से जोड़कर तिलहनों की खेती के नये तरीके किसानों तक पहुंचाये जा रहे हैं।

‘इसके अलावा बारानी कृषि अनुसंधान की समन्वित योजना में ३० प्रसार-शिक्षा सरसों का पौधा—बायें परंपरागत, बीच में सिंचित क्षेत्र के लिए और दायें बारानी क्षेत्र के लिए नवविकसित।



केंद्र खोले गये हैं, क्योंकि तिलहन मुख्यतः बारानी फसलें हैं। रेडियो, दूरदर्शन तथा प्रेस और प्रसार-कार्यकर्ताओं द्वारा भी तिलहन की खेती के नये तरीकों का जोरों से प्रचार किया जायेगा। जो किसान तिलहनों की सबसे अधिक पैदावार दिखायेंगे, उन्हें भी अब कृषि-पंडित का सम्मान मिलेगा।



‘राष्ट्रीय डेरी विकास निगम को अमरीका से १६० हजार टन खाने का तेल दान में मिल रहा है। इसे बेचकर जो रुपया मिलेगा, उससे तेल-वितरण का भी एक राष्ट्रव्यापी सहकारी संघटन चलाया जायेगा, ताकि डेरी की तरह तेल-विकास का भी सीधा लाभ किसानों को मिले।’

आगे डा. स्वामिनाथन् ने बताया कि तिलहनों के बीज पैदा करने और बेचने की व्यवस्था भी सुदृढ़ की जा रही है। जो किसान बीज-कार्यक्रम में भाग लेंगे, उन्हें भी विशेष सुविधाएं दी जायेंगी। कीड़ों की समस्या के समाधान के लिए कृषि-उद्योग निगम जैसी संस्थाओं को काम पर लगाया जायेगा कि वे देखें कि सरसों की फसल चेंपा लगने से खराब न हो। किसानों को दालों और तिलहनों की खेती के लिए ऋण दिलाने की व्यवस्था को और सरल किया जा रहा है। इसके लिए बैंक खुद किसानों के पास जायेंगे। कटाई के बाद रख-रखाव और सरकारी खरीद के संघटन को भी मजबूत बनाया जायेगा, ताकि किसानों को अपनी मेहनत का पूरा फायदा मिले।

नारियल से ३० लाख टन गोले का तेल

अरुणा-अरंडी की बीनी किस्म... प्रति हेक्टर २०-३० क्विंटल तक उपज।

मिलता है। इसके विकास के लिए अलग से बोर्ड बनाया जा रहा है। सबसे अधिक तेल देने वाला ‘आइलपाम’ है, जो प्रति हेक्टर २५ हजार किलो ग्राम तेल देता है। केरल में इसे बड़े पैमाने पर उगाने के प्रयास किये जा रहे हैं। तारामीरा, महुआ, साल, नीम और करंज के अलावा चावल की कनी, मक्का की कनी तथा आम की गुठली से भी बहुत-सा तेल मिल सकता है। साबुन तथा अन्य उद्योगों में इनका उपयोग किया जा सकता है।

डा. हरिकृष्ण जैन की राय

भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान के निदेशक डा. हरिकृष्ण जैन का विश्वास है कि सरसों के पौधे की बनावट में प्रजनन-विज्ञानी और भी सुधार कर सकेंगे। जल्दी ही ऐसा पौधा विकसित हो सकेगा, जिसमें फलियां ज्यादा लगे, फलियों में दाने

ज्यादा संख्या में और मोटे तथा ज्यादा तेल वाले हों। इस संस्थान के कानपुर केंद्र ने तोरिया की ८५ दिन में पकने वाली और १५ क्विंटल प्रति हेक्टर देने वाली नयी किस्म 'टी आई के-७८२' विकसित की है। पीली सरसों की भी १२ क्विंटल प्रति हेक्टर उपज देने वाली किस्म 'वाइ. एस. आइ. क-७४२' जारी की गयी है। यह १२५ दिन में पकती है और इसके दानों में ४६ प्रतिशत तेल होता है। अलसी की भूरे दाने वाली 'एल्-एस-३' और पीले दाने वाली 'एल्-एस-४' भी जारी की गयी है, जो १५ से १८ क्विंटल प्रति हेक्टर उपज देती है। इसके पाउडरी फफूंद का पूरा जीवन-चक्र खोज लिया गया है और अब इसका पूरा नियंत्रण भी संभव हो पायेगा।

प्रथम योजना काल में तिलहनी फसलों की पैदावार ५२ लाख ४१ हजार टन थी और पचीस वर्षों में बढ़कर सन ७५-७६ में ९९ लाख १० हजार टन पर पहुंच गयी

थी। लेकिन अगले दो सालों में उत्पादन गिरा। तेल की मांग ६ प्रतिशत की दर से बढ़ रही है और पैदावार ३-४ प्रतिशत की दर से। इसका दोष मौसम को दिया जा रहा है। और मौसम तो इस बार भी टेढ़ा ही है। इस बार के भयानक सूखे ने खरीफ की मूंगफली पर बुरा असर डाला है। इससे संदेह पैदा होता है कि क्या हम छठी योजना में १२५ लाख टन तिलहनों के वार्षिक उत्पादन का लक्ष्य पूरा कर पायेंगे। ऐसे में आशा-भरी बातें दिया तो क्या जिया ही ज्यादा जलायेंगी।

फिर जो बात अधिकांश विकास-कार्य-क्रमों में हुई वही तिलहन-अभियान में हो गयी तो क्या होगा। केंद्र से राज्य तक, राज्य से जिले तक, जिले से तहसील तक और तहसील से गांव तक, हजारों खाइयां हैं, जिनमें फिसलने से बचने पर ही तिलहनों की चिकनाई देहातियों के सूखे चेहरों को चमका सकेगी।



मजाज लखनवी बड़े ही हाजिर-जवाब थे। जबान से बात निकली और उन्होंने जुमला चस्पां किया। एक बार डाक्टर अतहर परखेज उनके साथ चांदनी चौक से गुजर रहे थे। ईतवार का दिन था। चांदनी चौक की दुकानें बंद थीं। एक दुकान पर बहुत ही बड़ा ताला लगा हुआ था। डा. साहव ने कहा—'मजाज साहव ! यह ताला देखिये।'।

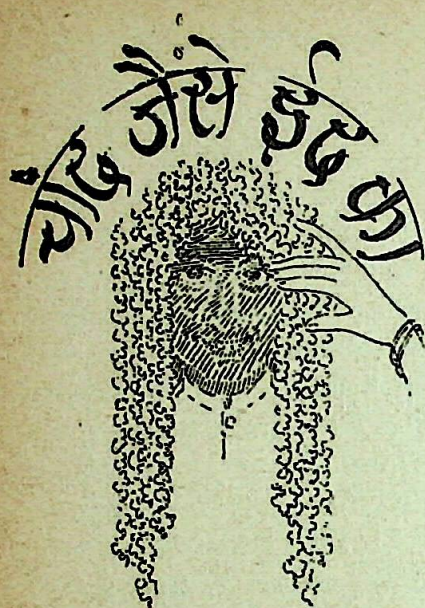
मजाज साहव ने मुड़कर देखा और बेसावता बोले—'मियां, यह ताला है या अल्लाह-ताला !'

— हसन जमाल छीपा

०००

'पंडितजी, आप प्रार्थना बड़ी तेजी से करते हैं और पारायण बहुत धीरे-धीरे.....क्या कारण है?' उत्तर मिला—'भाई, बात यह है, प्रार्थना में मैं भगवान से बात कर रहा होता हूँ, जबकि पारायण में भगवान मुझसे बात कर रहे होते हैं।'।





अतिया परवीन की उर्दू कहानी

दूल्हा अपनी तीन बहनों के रुपहले आंचलों की छांव में अंदर आ रहा है। भाभी बेतहाशा दौड़ीं। उन्होंने काम के हंगामे में अभी तक अपने ननदोई की शक्ल नहीं देखी थी। निकाह हो चुका था और उनके आग्रह पर ही दूल्हे को अंदर लाया गया था।

‘अरे भई, दुल्हन की भावज कहां हैं ? अपने ननदोई को संभालें।’ किसी ने हांक लगायी।

‘हां, और क्या !’ और एक शोख आवाज उभरी—‘जी भरकर संभालें। साली तो आधी घरवाली होती है, पर सलहज पूरी जोरू मानी जाती है !’

कहकहों की बौछार से सराबोर भाभी सचमुच शरमा गयीं।

‘लीजिये ! भाईजान ! अपनी काफिर-अदा सलहज से मिलिये’ एक बहन ने दूल्हे से कहा। दूसरी ने सेहरे की लड़ियां हटायीं।

‘देखिये, कितनी खूबसूरत हैं !’

दूल्हे ने हंसकर अपनी सुंदर सलहज को देखा। सफेद फूलों के बीच दूल्हे का काला रंग और भी गहरा गया था और उसके पीछे से सफेद दांत यों चमक रहे थे, जैसे काले बादलों के बीच बिजली ! यह बिजली भाभीजान के दिल पर गिरी।

भाभी ने दूल्हे की तस्वीर ही देखी थी जिसमें काला रंग गोरा था और नक्श इतने खूबसूरत थे कि वे खो-सी गयी थीं। फिर बड़ी शोखी और जोश के साथ वह तस्वीर उन्होंने अंजुम की गोद में डाल दी थी।

‘अंजो ! जी चाहता है, तुम्हारे मंगेतर पर आशिक हो जाऊं !’

‘हाय अल्लाह, भाभी !’ अंजुम ने शरमाकर तस्वीर उन पर फेंक मारी थी और आंचल में चेहरा ढांप लिया था।

अंजुम, उनकी प्यारी ननद, बीस वर्ष की बड़ी ही खूबसूरत, गोरी-चिट्ठी, गुदाज जिसमें और बूटा-सा कद। न जाने कितने रिश्ते आये थे उसके लिए। एक से बढ़कर एक। पर किसी के साथ फूल न खिल सके। यह रिश्ता एक रिश्तेदार ने तय कराया था। दूल्हा अच्छे घर का था। एम. ए. पास। उम्र २८-३० साल। उन रिश्तेदार का

● अनुवाद : सुरजीत ●

देखा-भाला, जाना-बूझा। बड़ी अच्छी
सर्विस। और क्या चाहिये भला ! भैया ने
हां कर दी।

भाभी खुशी से फूली न समायीं। अल्लाह
उनको मरहूम सास-ससुर के सामने सुखरू
ले जायेगा। सास मरते समय अपनी चहेती
बच्ची को इन शब्दों के साथ बहू के सुपुर्द
कर गयी थीं—‘दुल्हन ! अंजो को ननद नहीं,
बहन समझना। उसका दिल न मैला होने
देना। वरना यह समझो, मेरी पीठ कन्न में
नहीं लगेगी।’

और सचमुच भाभी ने अंजो को अपने
दिल से लगाया तो हथेली का फफोला और
आंखों का तिल बनाकर रखा। लोग कहते—
भावज हो तो ऐसी। उन्होंने जहां अंजुम
को तालीम के जेवर से सजाया, वहां घर-
दारी में भी माहिर बना दिया। शकल तो
उसकी थी ही हजारों में एक। इन गुणों के
साथ वह वाकई लाखों में एक हो गयी।

महीनों पहले ही भाभी ने शादी की
तैयारियां शुरू कर दी थीं, और आखिर आज
वह दिन भी आ ही गया। अंजुम इज्जत-
आबरू के साथ भाई-भावज के कंधों को
हल्का करके पति के घर जा रही है। गुलाब
और बेले के फूलों से लदी मोटर दरवाजे के
पास खड़ी है—अंजुम को बाबुल की दहलीज
से फूल की तरह उठाकर पिया के आंगन
में मलिका बनाकर उतारने के लिए। अचा-
नक भाभी की सारी खुशी काफूर हो गयी।
जैसे उनका दिल कोई हथेलियों से मसल
रहा हो !

१९७९

अंजुम और दूल्हे का कोई जोड़ न था
हंसी-चहचहाती अंजुम की सहेलियां
इधर-उधर खड़ी खुसर-फुसर कर रही थीं।
मेहमान औरतों में से किसी के ओंठों पर
व्यंग्य-भरी मुस्कान थी, तो किसी के चेहरे
पर अचरज। कोई दांतों तले जीभ दबाये
थी तो कोई खेद प्रकट के लिए माथा पकड़े।
‘हाय ! दूल्हा कितना काला है !’ एक
रिश्तेदारिन फुसफुसायीं।

‘अरे, जैसे उलटा तवा !’ दूसरी बोली।
‘हाय ! अंजुम की किस्मत ही फूट
गयी !’ तीसरी ने रोनी-सी सूरत बना ली।
‘मां-बाप होते तो देख-भालकर, छान-
फटककर शादी करते। भाई-भावज ने तो
यों समझो, कंधे का बोझा उतार फेंका, चाहे
वह’

‘चाहे वह कोयले की खदान में गिरा. ...’
किसी ने बात बढ़ायी और हंसी की एक
लहर तलवार की धार बनकर भाभी के
दिल को काटती चली गयी।

उनको गुमसुम देखकर अन्य रिश्तेदार
औरतों ने दूल्हे को मसनद पर ला बैठाया।

सुखं मखमल की मसनद। भाभी ने पूरे
एक महीने इस मसनद पर कारचोबी की
थी। किनारों पर एक बालिशत चौड़ा चम-
चम करता गौटा टांका था।

‘अरे, दूल्हा इस मसनद पर बैठकर शह-
जादा लगेगा, शहजादा !’ वे बड़े चाव से
कहा करतीं।

लेकिन अब उस शमशमाती मसनद पर
दूल्हा बैठा तो लगा कि अंजुम की किस्मत



की तरह इस मसनद की किस्मत भी फूट गयी! अब वे अंजुम को क्या मुंह दिखायेंगी?

‘अंजुम!’ उनके मुंह से एक हल्की-सी कराह निकली। वे पलटीं और अंजुम के कमरे की ओर भागीं।

अंजुम सजी-संवरी, ससुराल से आया हुआ सुखं सुहाग-जोड़ा पहने सिर से पांव तक गहने से लदी थी। पतली सुतवां नाक में बड़ी-सी नथ। माथे पर बिंदिया। हाथों में मेहंदी। कितनी खूबसूरत, नजर आती है। भाभी की पलकें झपकने लगीं।

अंजुम ने भाभी को देखा तो पहले मुसकरायी। फिर उनका उदास चेहरा देखकर स्वयं भी रो पड़ी। भाभी, भैया, दो फूल-से भतीजे। अब्बा का घर छोड़कर आज वह कितनी दूर जा रही थी!

‘अंजो! मेरी बहन.....’ भाभी बढकर उससे लिपट गयीं और फूट-फूटकर रोने लगीं। इतना रोयीं कि अंजुम घबरा गयी। इसके बजाय कि भाभी उसे तसल्ली देतीं, वह भाभी को समझाने लगी—‘हर लड़की को एक दिन अपने मायके से विदा होना पड़ता है, भाभी! अरे, मैं आती तो रहूंगी। सदा के लिए तो नहीं छूट रही हूं।’

नवनीत

‘अंजो ... मेरी प्यारी मैं तुमसे बेहद शर्मिदा हूं!’ हिचकियां उनके सारे शरीर को हिला रही थीं।

‘शर्मिदगी काहे की, भाभी!’ अंजुम रो पड़ी—‘आपने मुझे सब कुछ दे दिया। कोई कसर नहीं उठा रखी। अम्मां भी होतीं तो मुझे इतना लायक न बना पातीं। और क्या चाहिये मुझे?’

भाभी ने सोचा, अंजुम को मालूम करा देना ही बेहतर है। यह एकदम दूल्हे का मुंह देखेगी, तो कहीं इसका दिल धड़कना ही न भूल जाये!

‘अंजो!’ उन्होंने उससे नजरें मिलाये बिना रोते हुए कहा—‘हम सबके साथ किस्मत ने एक भयानक मजाक किया है। और अशफाक भाई को मैं क्या कहूं, जिनके भरोसे पर हमने यह शादी कर दी और दूल्हे को स्वयं देखना भी गवारा न किया....’

‘क्यों? क्या हुआ, भाभी?’ अंजुम का जगमगाता चेहरा फीका पड़ गया।

‘वह.... वह दूल्हा तुम्हारे काबिल मतलब यह कि दूल्हा बहुत काला है। चेहरे के नक्श भी बहुत अच्छे नहीं हैं।’

अंजुम कुछ क्षणों तक उनको देखती रही। भाभी ने डरते-डरते उसकी ओर देखा, पर यह क्या? वे रोना भूल गयीं। उनकी हिचकियां एकदम रुक गयीं।

अंजुम का चेहरा फिर उसी तरह जगमगाने लगा। ओंठों पर मुसकान, आंखों में एक सुंदर भविष्य की दमक। उसने अपने नरम-नरम हाथों में भाभी के ठंडे हाथ दबा

नवंबर

लिये। उसकी मुस्कराहट हंसी में बदल गयी।
'भाभी, आप क्या इसीलिए इतना परेशान थीं?'

'हां, अंजो! मैं तुमसे बहुत शर्मिदा हूं...'

'भाभी!' वह हंसी और फिर संजीदा हो गयी—'गुस्ताखी और बेगैरती माफ!... उनका सिर्फ रंग ही काला है न? चेहरे के नक्श ही मामूली हैं न?'

'हां!' भाभी अदालत में खड़े अभियुक्त की तरह अपराध स्वीकार करते हुए गरदन झुकाकर बोलीं।

'उन्होंने इस शादी के लिए कोई शर्त रखी थी?'

'नहीं!'

'आपसे ट्रक-भर दहेज की मांग की थी?'

'नहीं!'

'शादी से पहले मुझे देखने की ख्वाहिश जाहिर की थी?'

'नहीं!'

'अपने लिए स्कूटर या मोटर की मांग की थी?'

'नहीं!'

'बारात में भैया के कहे हुए २० आदमियों की जगह १०० आदमी लाने की जिद की थी?'

'नहीं!'

'और कोई मांग, भाभी?'

'कुछ भी नहीं, अंजो!'

'दूसरे सभी रिश्ते जो मेरे लिए आये थे, उन सबने किसी न किसी ऐसी चीज की मांग की थी, जो मेरे भैया की कमर तोड़ देती।

मैंने उनमें से कोई भी रिश्ता पसंद नहीं किया था, भाभी ... वे सबके सब लालची और स्वार्थी इन्सान थे।'

'अंजो!' भाभी की आंखें फैल गयीं।

'हां भाभी!' अंजुम ने अपने गुलाब की पंखुरी-जैसे ओंठों से उनका माथा चूम लिया और शरमाकर बोली—'भाभी, वे अगर चाहते तो बड़ी से बड़ी शर्त रख सकते थे। लोग उनका काला रंग नहीं, उनका जगमगाता ओहदा देखते। आलीशान मकान देखते। यह खूबसूरत कार देखते, जो आज आपके छोटे-से दरवाजे पर दुल्हन बनी खड़ी है; पर उन्होंने कोई शर्त नहीं रखी। उनका दिल सोने का है, भाभी। उनके अंदर का आदमी इतना हसीन है कि उनकी बाहरी परत उसको छिपा नहीं सकती। मैं बहुत खुश हूं, भाभी! आपने और भैया ने मेरे आंचल में सारी दुनिया डाल दी है। जाइये, उठिये, भाभी। उनका इस्तिकबाल (स्वागत) हंसते-जगमगाते चेहरे के साथ कीजिये। उनको जरा भी एहसास न हो कि.....'

भाभी चप्पलें छोड़कर बाहर भागीं।
हंसती-खिलखिलाती, चहकती हुई!

दूल्हे का सेहरा उलटकर साफे के गिदं मंड दिया गया था और भाभी को ऐसा लग रहा था, कोई सपनों का शहजादा मसनद पर बैठा है!

भाभी ने लहककर ढोल बजाती, गाती हुई लड़कियों की आवाज में आवाज मिला दी :
'बना मेरा ईद का चांद कि नाचो सांवरी रे....'



निकलस मोन्सरात के विश्वविख्यात उपन्यास 'द कुएल सी' का एक अंश।

सागर निष्करण



ब्रिटिश युद्धपोत 'कम्पास रोज' शेष जहाजी बेड़े के साथ उत्तरी स्काटलैंड से गुजर रहा था। यह इलाका बड़ा सुंदर था। किनारे पर छोटे-छोटे सफेदी-पुते मकान थे और चारों तरफ चमकीली धूप फैली हुई थी। पीछे दूरी पर नीले रंग की पहाड़ियां दिखती थीं, जिन पर सरदी के मौसम की पहली बर्फ अभी-अभी ही गिरी थी। कटे-फटे तट पर समुद्र भीतर कहीं-कहीं बड़ी दूर तक घुस गया था, और इन खाड़ियों के मुहानों पर प्रकाश-स्तंभ बने

हुए थे। सारी की सारी दृश्यावली नौसैनिकों को पुलकित कर रही थी।

फिर एक दिन सांझ ढलते-ढलते वे स्काटलैंड के उत्तरी छोर राथ अंतरीप तक पहुंच गये थे। यहां बड़े जोर की बारिश हुई थी, और बौछारों और सांझ के धुंधलके में जमीन धीरे-धीरे उनकी आंखों से ओझल होने लगी थी। अब वे विशाल अतलांतक सागर में प्रवेश कर रहे थे।

महासागर में प्रवेश के साथ ही नौसैनिक फिर से युद्ध का तनाव महसूस करने लगे

अनुवाद : राजेन्द्र शर्मा

थे। अब वे ऐसी जगह पर थे जहां उनके साथ कुछ भी हो गुजर सकता था। जर्मन पनडुब्बियां दुश्मन के जहाजों की टोह में यहां बराबर घूमा करती थीं।

‘कम्पास रोज’ अपने जहाजी बेड़े के साथ धुर उत्तर में स्थित आइसलैंड की तरफ बढ़ रहा था। कुछ दिनों के उपरांत वे वहां पहुंच गये।

आइसलैंड में विकट सरदी थी, और वहां काली चट्टानों और सफेद बर्फ के अलावा कुछ भी दिखाई नहीं देता था। जहाज की ऊपरी सतह पर भी बर्फ की मोटी तह जम गयी। राजधानी रेक्याविक में चार जहाजों को सुरक्षित पहुंचाकर वे वापस चल दिये।

दोपहर चार बजे कप्तान ऐरिकसन ने समुद्र में अपनी स्थिति का निरीक्षण किया और फिर जहाज की रफ्तार बढ़ाने का आदेश दे दिया। रेक्याविक जाने के कारण वे शेष जहाजी बेड़े से कट गये थे, और कप्तान चाहता था कि मध्यरात्रि तक वे वापस अपने बेड़े से मिल जायें। सुरक्षा इसी में थी।

रात होते-होते सरदी बहुत बढ़ गयी थी। जहाज अब अपनी पूरी रफ्तार से जा रहा था। अचानक बड़े जोर का धमाका हुआ। नीचे छिपी एक जर्मन पनडुब्बी का फेंका हुआ तारपीडो जहाज के लोहे के पेंदे को चीरता हुआ भीतर घुस गया और उसके साथ ही समुद्र का पानी धड़धड़ाता हुआ भीतर आने लगा। उस भयंकर

झटके से ‘कम्पास रोज’ चकरघिन्नी की तरह घूम गया और फिर लड़खड़ाता हुआ बीच समुद्र में खड़ा हो गया। पानी भरते ही जहाज टेढ़ा होने लगा और उसका पिछला हिस्सा ऊपर उठने लगा।

उस समय कप्तान ऐरिकसन एवं उपा-कप्तान लाकहार्ट ऊपर डेक पर ही थे। कुछ क्षण तो वे भौचक रह गये। उन्होंने कई साथी जहाज इसी तरह डूबते देखे थे; पर उन्हें विश्वास नहीं हो रहा था कि उनका जहाज भी डूब सकता है। उनके चारों तरफ रात का घुप अंधेरा था और कुछ भी देख पाना असंभव था। पर वह धमाका और डेक का एकाएक एक तरफ झुक जाना एक ही बात की तरफ इशारा करते थे। जहाज के निचले हिस्से में उथल-पुथल होने का भी एक ही मतलब था।

कप्तान ऐरिकसन ने वेल्स को आदेश दिया कि वह बेड़े के अगुआ जहाज ‘वाइ-परस’ को खबर करे कि ‘कम्पास रोज’ डूब रहा है। वे अभी भी बेड़े से तीस मील पीछे थे।

ब्रिटिश लेखक निकलस मोन्सरात (हाल में दिवंगत) का उपन्यास ‘द क्रुएल सी’ द्वितीय विश्वयुद्ध की पृष्ठभूमि पर लिखा गया था। उसे युद्ध-विभीषिका का सबसे सशक्त वर्णन करने वाली कथा-कृतियों में गिना जाता है। अब तक उसकी ७० लाख प्रतियां बिक चुकी हैं—३०-३५ हजार प्रतियां हर साल बिक जाती हैं।

लाकहार्ट से उसने कहा—‘लाइफबानेट और रैफ्ट फौरन निकाल लो, और अगले आदेश का इंतजार करो।’

डेक अब और भी टेढ़ा हो गया था। नीचे फिर बड़ी जोर की आवाज हुई। कोई भारी चीज जहाज से टूटकर गिरी और फिर अरराकर पानी की तरफ ढुलकने लगी। साथ ही चिमनी के पास लगे सेफ्टी वाल्व को फोड़कर भाप दहाड़ती हुई बाहर निकल रही थी।

ऐरिकसन समझ गया कि उसका जहाज बड़ी तेजी से डूब रहा है, उसी रफ्तार से जिससे उसने कुछ साथी जहाजों को डूबते देखा था।

डेक पर नावों के बीच की जगह में बड़ा शोरगुल हो रहा था। अंधेरे और हड़बड़ी में वे लोग एक दूसरे से टकरा रहे थे; टेढ़े डेक पर उन्हें पैर जमाना मुश्किल पड़ रहा था और वे बार-बार फिसल रहे थे। भाप अब भी चीखती हुई बाहर निकल रही थी, मानो जहाज अपने दुर्भाग्य पर रोष प्रकट कर रहा हो। दो नावों में से एक तो बेकार हो गयी थी—जहाज इतने टेढ़े कोण पर था कि उस नाव को निकाल पाना नामुमकिन था। दूसरी नाव अपनी जगह पर ही इस बुरी तरह से फंस गयी थी कि हथोड़े मारने के बाद भी वह निकल नहीं पा रही थी, हालांकि एक दर्जन लोग उसे बाहर खींच रहे थे। और इस दौरान बेहद कीमती वक्त बरबाद हो रहा था।

नवनीत

अब एक ही चारा था। लोग पानी पर तैरने वाले खबर के रैफ्टों की तरफ दौड़ रहे थे। इस अंधी दौड़ में वे फिर एक दूसरे से टकरा रहे थे और गुस्से में गाली-गलौज कर रहे थे।

आखिर छह-सात लोगों ने एक रैफ्ट बाहर निकाल लिया और उसे खींचकर वे जहाज के छोर पर ले गये। वे सभी आतुर थे रैफ्ट पर सबसे पहले अपनी जगह बना लेने को। डेक अब और टेढ़ा होकर आसमान की तरफ उठ रहा था।

दुर्घटना बड़ी अप्रत्याशित थी। तारपीडो जब जहाज से टकराया, उस समय सैंतीस नौसैनिक और मल्लाह जहाज के निचले हिस्से में थे। कुछ गपशप कर रहे थे, कुछ ताश खेल रहे थे या कहानियां पढ़ रहे थे। कुछ सो भी गये थे। कमरे में बस एक ही दरवाजा था।

इन लोगों में से कोई भी जिदा नहीं बच सका। अधिकांश तो धमाका होते ही मर गये। धमाके से दरवाजा टेढ़ा-मेढ़ा होकर चौखट में बुरी तरह फंस गया था। कुछ लोग धमाके के बाद दरवाजे की तरफ दौड़े, पर वे उसे किसी भी तरह खोल ही नहीं पाये। बाहर निकलने का और कोई रास्ता था नहीं, सिवा बम से टूटे उस हिस्से के जिसमें से होकर पानी भीतर घुसा चला आ रहा था।

मौत से इन नाविकों की लड़ाई बहुत थोड़ी देर चल पायी थी। पर जब तक भीतर दौड़ते पानी ने आखिरी आदमी का

नवंबर

मुंह बंद नहीं कर दिया, उनकी भयाक्रांति चीखें बड़ी तेजी से ऊपर डेक पर पहुंचती रहीं। लेकिन ऊपर से उन्हें मदद पहुंचाना संभव नहीं था।

इस बीच सात मिनट गुजर चुके थे। ऐरिकसन समझ गया कि डूबते जहाज को बचाने का कोई रास्ता नहीं है। जहाज का अगला हिस्सा अब पानी के भीतर था और पिछला हिस्सा बहुत ऊपर उठ गया था। सभी को इसका बड़ा रंज था कि उनका प्यारा जहाज, जिस पर वे इतने दिन साथ-साथ रहे थे, अब डूब रहा था।

कप्तान ऐरिकसन को घोर मानसिक यातना उन बातों से हो रही थी जो वह नहीं कर पाया था—न तो वह लाइफबोट ही निकलवा पाया था और न नीचे फंसे लोगों को ही बचा पाया था। 'कम्पास रोज' का पिछला हिस्सा अब बिल्कुल ऊपर उठ गया था। 'जहाज छोड़ दो', ऐरिकसन ने आदेश दिया—'ईश्वर, तुम लोगों की मदद करे !'

अब नाविकों में भयंकर डर फैल गया। उनमें से कुछ फौरन समुद्र में कूद गये और डूबते जहाज से थोड़ी दूर निकल गये। वे अपने कुछ अन्य साथियों को बुला रहे थे और रात की भयंकर सरदी में कांप रहे थे। कुछ समुद्र के बर्फीले पानी में कूदने से डर रहे थे और जहाज के पिछले हिस्से में झुंड बनाकर खड़े हो गये थे। जहाज का यही थोड़ा-सा हिस्सा अब पानी के ऊपर था। कुछ और लोग हिम्मत कर जहाज के

पिछले हिस्से से सरकते हुए, कूदे, मगर उनके शरीर जहाज की कीलों से भरी खुरदरी सतह से बुरी तरह से जखमी हो गये।

जहाज के डूबने में अब ज्यादा समय नहीं था। उनके देखते-देखते पिछला हिस्सा और ऊपर उठा और आखिरी आदमी भी डर से चिल्लाता हुआ नीचे पानी में कूद पड़ा। जब जहाज डूबा, तब पानी का एक फव्वारा बड़े जोर से ऊपर उठा, फिर उनके चारों तरफ जहाज से निकलते तेल की दुगंध फैल गयी।

तेल बिखरकर और फैलता गया। अब समुद्र में पड़े इन लोगों को भयंकर सरदी लग रही थी। वे जानते थे कि उस घुप अंधेरे में वे कितने असहाय हैं। उन पचास आदमियों के बीच सिर्फ दो रैफ्ट थे और उनके चारों तरफ अथाह सागर था।

उन दो रैफ्टों पर हर आदमी के लिए जगह नहीं थी। जगह हो भी नहीं सकती थी। इने-गिने लोग ही उन पर बैठ पाये थे। बाकी रैफ्ट से लटकने वाली रस्सी की सीढ़ियों को पकड़े थे, या उन लोगों को पकड़े हुए थे जो रैफ्ट पर थे। कुछ और लोग इन्हीं के इर्द-गिर्द पानी में तैर रहे थे। थकान और असहनीय सरदी से उनकी सांस रुक-रुककर चल रही थी और बर्फीली लहरें उन्हें तमाचे मार रही थीं। पानी पर फैला तेल उनकी नाक और मुंह से भीतर जा रहा था। शीघ्र ही उनके हाथ जमने लगे, फिर उनकी टांगें, और तब सरदी

बड़ी निर्ममता से उनके जिस्मों के और भीतर घुसने लगी—वहां जहां उनकी रगों में खून दौड़ता था। अब वे छटपटा रहे थे। कुछ लोग एक दूसरे को धकियाकर रैफ्ट पर चढ़ने की कोशिश कर रहे थे, पर ऊपर बैठे लोग उन्हें नीचे धकेल देते थे। तब वे फिर लाचारी में तैरने लगते थे—अपने दोस्तों को गाली देते हुए, मदद के लिए चिल्लाते हुए और ईश्वर से प्रार्थनाएं करते हुए।

जो लोग रस्सी पकड़े हुए थे उनके हाथ बर्फीली पानी से ठिठुर गये थे और रस्सी थामे रहना उनके लिए असंभव हो गया था। जहाज से बिखरा तेल तैरने वाले लोगों के मुंह में जा रहा था और वे कै कर रहे थे। वे लोग जिनके अंग जहाज की खुरदरी सतह से जख्मी हो गये थे, अब भयंकर पीडा महसूस कर रहे थे।

धीरे-धीरे लोग मरने लगे।

पर कुछ खुशकिस्मत लोग थे, जो जिंदा बच गये थे—कप्तान ऐरिकसन, उप-कप्तान लाकहार्ट व चंद और लोग। दोनों रैफ्टों पर कुल मिलाकर भ्यारह लोग ऐसे थे, जो अगली सुबह तक अपने आपको जिंदा बचा पाये थे।

लाकहार्ट बीच-बीच में पानी में पड़े सभी लोगों की गिनती कर लेता था। रात में एक बार जब उसने गिनती की थी, तब तीस लोग जिंदा थे। पर जैसे-जैसे रात गुजरी थी, ये लोग पटापट मरते चले गये थे। बातचीत करते-करते एकाएक उनके

हाथों से रस्सी छूट जाती और वे नीचे रसा-तल में चले जाते थे। यह सब देखकर लाकहार्ट को एक बार तो यह लगा कि अगर जल्दी ही रात खत्म न हुई और सुबह की धूप नहीं निकली, तो शायद उनमें से कोई भी जिंदा नहीं बचेगा। रात के उस घुप अंधेरे में रैफ्ट पर बैठे नौसैनिकों में यदि कोई कुछ देर तक नहीं बोलता था तो अंदाज हो जाता था कि वह मर गया है, और उसका स्थान पानी में तैरता हुआ उसका कोई साथी ले लेता था।

रात में कुछ देर के लिए चांद घने बादलों से निकल आया था और उसने इस दर्दनाक दृश्य को रोशन कर दिया था। तीखी व सर्द हवा से लहरें कुछ और ऊपर उठ रही थीं और आदमी रैफ्ट के इर्द-गिर्द पानी में सिकुड़े हुए पड़े थे। बाहरी घेरे में कुछ और लोग थे। ये लाइफबेल्ट व रस्सी से एक दूसरे से बंधे हुए थे। पर ये सबके सब मर चुके थे और अब इनकी लाशें ही तैर रही थीं। चांदनी कुछ क्षण लाशों पर चमकी, फिर आश्चर्य और सहानुभूति के साथ चांद बादलों की ओट में हो गया। ऐसे दर्दनाक दृश्य पर अंधेरे का परदा पड़ा रहना ही बेहतर था।

सुबह के धुंधलके में मरने वालों और जिंदा बचे रहने वालों में कोई खास फर्क नहीं दिखता था। रैफ्ट पर जो बचे-बुचे लोग थे, उनकी बांहों में उनके मृत साथी थे, और यह कहना मुश्किल था कि उनमें से कौन मरा हुआ है और कौन जिंदा।

कप्तान ऐरिकसन ने कुछ देर बाद गौर किया कि सभी जीवित नाविकों के चेहरे भयग्रस्त हैं। वे किसी तरह मौत से बच गये थे, पर मौत का खतरा अभी भी उनके सिर पर मंडरा रहा था। उनके जिस्म भयंकर सरदी से ँठ गये थे और चेहरे स्याह पड़ गये थे। ऐरिकसन ने अपने जमे हुए ओंठों को बड़ी मुश्किल से हाथ से रगड़कर अपने मातहत लाकहार्ट से तीन शब्द कहे :
 'नंबर एक, सुनो....'
 'जी, सर....'

लाकहार्ट ने एक क्षण अपने कप्तान की तरफ देखा और फिर वह दूसरी तरफ देखने लगा। दोनों का उन असहनीय क्षणों में ज्यादा बातचीत कर पाना संभव नहीं था। पैनी बर्फीली हवा उनके चेहरों पर लग रही थी, सदैव लहरें रैफ्ट से टकरा रही थीं, रस्ती से बंधे नौसैनिकों की लाशें पानी पर थिरक रही थीं।

अब सूरज निकल रहा था—इस भीषण दर्दनाक दृश्य को और उजागर करने के लिए। रोशनी में साफ दिख रहा था कि विशाल समुद्र पर उनके दो रैफ्ट ही नहीं थे, बल्कि बहुत-सी दीगर चीजें भी पड़ी हुई थीं। तैरती लाशों के घेरे से आगे उनके टूटे जहाज का मलबा बिखरा हुआ था। तेल की दुर्गंध से भरे पानी पर फैला यह मलबा आँखों में चुभता था।

उन्हें बचाने वाले जहाज 'वाइपरस' ने कुछ घंटों बाद उन्हें इसी स्थिति में पाया था।

घास ०

—कार्ल सैंडबर्ग—

लगा दो
 जिस्मों के ढेर
 आस्टरलिट्ज
 और वाटरलू में
 दफना दो
 बेलचों से उन्हें
 और करने दो
 मुझे काम

घास हूं मैं
 सब ढंक लेती हूं
 लगाओ
 उनके ऊंचे ढेर
 गेटिसबर्ग
 ईप्र
 और वर्डन में

दफना दो उन्हें
 और करने दो
 मुझे काम।

दो साल
 दस साल
 और सैलानी पूछते हैं
 बस कन्डक्टर से :
 'कौन-सी जगह है यह ?
 हम अब कहाँ हैं ?

घास हूं मैं
 करने दो
 मुझे काम।

[अंग्रेजी से रूपांतर : विनोद शर्मा]



मैं एक ही सदी में जीती हूँ—इसी अपनी सदी में, जिसका साहित्य में पढ़ती हूँ। लेकिन खुशवंतसिंह पिछली बहुत-सी सदियों में जीते हैं; क्योंकि वे उनका इतिहास लिखते हैं। उन्हें पुरानी रचनाओं और पुराने खंडहरों में इतनी गहरी दिलचस्पी है कि जब वे उनके नामों का सविस्तार वर्णन करने लगते हैं, तो सुनने वालों को लगता है, जैसे वे अभी-अभी स्कूल में भरती हुए हों।



अमृता प्रीतम

तरह घास की पत्तियों के गीत लिखती हूँ। मैं तो मुहब्बत के गीत लिखती हूँ, और जिसके बारे में लिखती हूँ, वह चाहे किसी ऐसे पेड़ के नीचे खड़ा हो जिसका नाम मुझे न आता हो, फिर भी मैं गीत लिख सकती हूँ।'

'पर तुम्हें अगर यह भी नहीं पता कि ये किन लोगों की कन्न हैं, तो तुम कहानियाँ क्यों लिखती हो?'

'मुझे कन्नों से क्या लेना-देना? मैं तो अपने बारे में लिखती हूँ। और मैं अभी जिंदा हूँ।'

'मैं अपने बारे में कहानी नहीं लिखता।'

'यह मैं जानती हूँ। इसका यह मतलब हुआ कि आपसे कहानी लिखवाने के लिए आदमी को मरकर किसी कन्न में लोट जाना चाहिये, ताकि आप जब कभी उस कन्न के पास से गुजरें, तो उसका इतिहास पूछें, फिर उसके बारे में लिखें।'

एक दिन जब खुशवंतसिंह ने मुझसे दिल्ली की कन्नों और खंडहरों का इतिहास पूछा, तो मैंने उन्हें जवाब दिया हंसकर कि मैं इतिहास पढ़ती नहीं, बल्कि इतिहास की सृष्टि करती हूँ। लेकिन असलियत यह थी कि मुझे किसी भी चीज के इतिहास की जानकारी नहीं थी। फिर एक दिन उन्होंने मुझे महरौली के आस-पास की बहुत-सी कन्नें दिखायीं—अलाउद्दीन खिलजी की, कुतुबुद्दीन ऐबक की, सुलतान गारी की, तेरहवीं सदी के ख्वाजा कुतुबुद्दीन वख्तियार काकी की, सोलहवीं सदी के शायर मौलाना जमाली की और शहंशाह अकबर की घाई-मां के बेटे आदम खां की...। और कबें दिखाते हुए खुशवंतसिंह ने मुझसे कहा :

'तुम पंजाब की कैसी कवयित्री हो कि तुम्हें न फूलों के नाम आते हैं, न पेड़ों के नाम आते हैं!'

'मैं बर्दसंवर्ध की तरह प्रकृति के गीत नहीं लिखती, न ही वाल्ट व्हिटमैन की

‘क्या मतलब?’

‘मैं अपने बारे में सोच रही थी कि आप मेरे उपन्यास का अंग्रेजी में अनुवाद तब करेंगे, जब मेरी कन्न वन चुकी होगी। फिर जब आप नया इतिहास लिखेंगे, तो उसमें मेरी कन्न का भी जिक्र करेंगे, और फिर शायद.....’

खुशवंतसिंह उन्हीं दिनों इंग्लैंड जाने वाले थे। इस वार उन्हें हवाई जहाज के बजाय समुद्री जहाज में जाना था और वह भी कार्गो बोट में, जिसमें कोई और यात्री जाने वाला नहीं था। उस पूरी यात्रा

के दौरान खुशवंतसिंह ने मेन्ना उपन्यास अंग्रेजी में अनुवाद कर दिया। मैं नहीं जानती थी कि वे दोस्ती की इतनी कदर करते हैं। उनके व्यक्तित्व का यह पहलू मैंने पहली बार देखा था।

और फिर, ज्यों-ज्यों मैंने उनकी रचनाएं पढ़ीं, उनके मन की सुंदरता को देखा, और गलतफहमियों के खुरदरे धागे से बुना हुआ स्वेटर उधड़ता गया और उसकी जगह कद्रदानी की मुलायम और स्निग्धता-भरी पशम से दोस्ती का स्वेटर बुना जाने लगा।



वात सन १९३१ या १९३२ की है। उस समय फीरोजाबाद (जिला आगरा) के सब-डिविजनल आफिसर श्री सुलतान हैदर जोश नाम के एक काव्य-रसिक सज्जन थे। उन दिनों राष्ट्रीय आंदोलन चल रहा था और एक बार एक नवयुवक मुसलमान राजनैतिक अभियुक्त उनके इजलास में पेश हुआ।

उन दिनों अधिकांश राजनैतिक कैदी अपना बचाव नहीं करते थे और ठीक-ठीक कोई बयान भी नहीं देते थे। मगर इस अज्ञात नवयुवक को जोश साहब की काव्य-रसिकता का ज्ञान था, और शायद वह स्वयं भी कविता करता था। सो, जब उससे बयान देने को कहा गया, उसने ये तीन शेर तरन्नुम के साथ अदालत में पढ़े:

वल्लाह रे मुंसिफ़ ! तेरे इंताफ़ के सदके !

मुंह बंद, जुबान बंद, दहन बंद, नज़र बंद।

खुल खोलू तो फिर देखो मेरी जोशिशे-वहशत

बोतल की तरह मैं भी हूं लबरेज, मगर बंद !

सैयाद ! तेरा रिस्क-ए-रसा और कोई है

खुल जायेंगे सौ दर जो किया एक भी दर बंद !

जिस समय उसने ये शेर पढ़े, सारी अदालत में सन्नाटा छा गया। सहृदय डिप्टी साहब भाव-विभोर हो गये। कर्तव्य-वश उन्हें उसे दंड तो देना पड़ा; किंतु उन्होंने उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की।

— डा. गोपाल प्रसाद ‘वंशी’



सृजनात्मक चिंतन

अर्नेस्ट डिन्नेट की पुस्तक 'आर्ट ऑफ़ थिंकिंग' के एक प्रकरण का सार ।

प्रतिभा अर्थात् सृजनात्मक विचार, सृजन-मय सोच । या कहिये, प्रतिभा उस मन-स्थिति को कहते हैं, जिसमें सृजनात्मक विचारों का आविर्भाव या उद्भव होता है । किंतु सृजन केवल साहित्य में ही नहीं, किसी शिल्प या कला के क्षेत्र में भी हो सकता है । सृजन विज्ञान और दर्शन में भी होता है । कारण, विचार की दिशाएं अनंत हैं, उसका क्षेत्र अपरिसीम है ।

मनःस्थिति सदा ऐसी नहीं बनी रहती कि प्रतिभाशाली सर्जक सृजनरत बने रहें । कुछ लोगों की प्रतिभा किसी कालविंदु पर पहुंचकर सृजन की प्रेरणा मात्र से ही चुक जाती है; अन्य कुछ लोग दीर्घकाल तक प्रतिभा के उपयोग से अनेक सर्जनात्मक कृतियां दे जाते हैं ।

सृजन के मूल में सदा ही कोई न कोई भाव, विचार, प्रत्यय, धारणा या भावना रहती है । अंग्रेजी में इसके लिए एक छोटा-सा प्यारा शब्द है—'आइडिया' । यही धीरे-धीरे अपने आस-पास की शक्तियां जुटाकर एक उद्देश्य बन जाता है और वह फिर किसी न किसी सृजन में परिणत होता है । अनातोल

फ्रांस ने जब तारों-भरे आकाश को ध्यान से देखा, तब उसे मनुष्य की क्षुद्रता और पृथ्वी की अणुता का पता चला था और इससे अनातोल को जो प्रेरणा मिली थी, उसका प्रभाव उसकी सारी कृतियों में दीख पड़ता है । यही बात कवि ताइन और उसकी प्रेरणा-स्रोत विल्ली और बिल्लियों के कार्य-कलाप के बारे में सच है । ताइन के विल्ली पर लिखे सानिटों में इसीलिए प्रतिभा का मनोरम चमत्कार दीख पड़ता है ।

हमारी आत्मा एक महासागर जैसी है । उसकी संभावनाएं, ग्रहणशीलता और सुनम्यता सचमुच रहस्यमयी हैं—हमारी मामूली पहुंच के बाहर । किंतु होती हैं वे असंदिग्ध ही । प्रेरणा के प्रसंग हमें कब कृपा प्रतीति करा दें, कुछ नहीं कहा जा सकता । इसका हमारे अपने दैनंदिन जीवन की मरुभूमि से कोई रिश्ता नहीं होता ।

किसी भी क्षण हमारी बुद्धि इतनी प्रदीप्त हो सकती है कि सचमुच आश्चर्य होता है । तब हम किसी की भी बातों या विचारों का सार या मर्म पकड़ पाते हैं, किसी भी भाषण की खरी और वजनदार आलोचना कर

नवनीत

सकते हैं या उसे भली भाँति समझकर वक्तव्य की सराहना कर सकते हैं। किंतु ऐसा क्या हम हमेशा कर पाते हैं? वस, मन-मस्तिष्क में जो भी कौंधता है, उसके प्रति सचेतन ही तो हो पाते हैं हम; और यदि हम ऐसे सब क्षणों के प्रति सावधान रहें, तो असाधारण उद्बोधन के अधिकारी भी बन सकते हैं। इसीलिए कागज की चिदियों पर जब-तब लिखी बातें या रेखांकन भी कभी-कभी समग्र मानवीय जीवन के उन्नायक और प्रेरक बन जाते हैं। अक्सर ये भंगुर और दुर्ग्राह्य होते हैं, अथवा दूसरी चीजों की और भाँति-भाँति के एहसासों की भीड़ में खो जाते हैं। किंतु अपने आपमें ये प्रतिभा-प्रसूत अनवद्य कृतियों से किसी तरह भी कम नहीं होते। इनका हम अपने अचेतन से कैसे उद्धार करें—यही सृजन के क्षेत्र की सबसे बड़ी समस्या होती है।

विश्व के अधिकांश विचारक इस बात पर सहमत हैं कि सत्य की उपलब्धि का कारण हमारी कोई न कोई मानस प्रक्रिया ही होती है। सत्य से हमारा तात्पर्य उस आलोक से है, जिसे हमारा मन वास्तविकताओं के सघन संपर्क से प्राप्त करता है। सत्य को पा लेने पर हमारी बौद्धिक खोज खत्म हो जाती है और हमें एक प्रकार की प्रशान्ति का अनुभव होता है।

सत्य की प्राप्ति का और भी एक तरीका है—आत्मिक या अंतर्वर्ती यथार्थ से साक्षात्कार। प्रायः श्रेष्ठ धार्मिकों या कवियों की यही सहजबोध्य पद्धति होती है। उनकी

प्रभा या अंतःप्रज्ञा की प्रामाणिकता के लिए तर्क, युक्ति, संगति आदि की कोई जरूरत नहीं पड़ती। ध्यान या मनन अथवा गंभीर चिंतन ही पर्याप्त होता है। उदाहरणार्थ, आप कोई भी उत्तम रहस्यवादी साहित्य लें, जैसे संत तेरेसा का 'द कासल ऑफ द सोल' (आत्मदुर्ग)। यूरोपीय साहित्य में प्लातोनस से स्वेडेनबर्ग तक यही बात दीख पड़ती है। प्रातिभ ज्ञान या अंतर्बोध के आधुनिक हिमायती न्यूमन या बर्गसां भी रहस्यात्मकता के ही अधिक निकट लगते हैं। ऐसा नहीं है कि उन्हें तथ्यात्मकता का मूल्य नहीं मालूम था। परंतु वे उस उच्चस्तरीय बुद्धि का भी अनुभव कर चुके थे, जिससे सत्य का आवरण भेदना संभव हो पाता है।

ये अंतःप्रज्ञाएं (प्रमाण या सहजबोध) प्रकाशना या श्रुति नहीं होतीं। हमारे मन-मस्तिष्क में समाहित बिंबों की जो तुलनाएं या आपसी मुकाबले होते हैं, या कहिये कौंधते हैं, उन्हीं से सारी प्रमाण प्रकट होती हैं। इनकी सुनम्यता (लचीलापन) या समंजसता हमारी बुद्धि से जनमे खयाली फार्मुलों (गुरों) से कहीं अधिक होती है। न्यूमन इन्हें वास्तविक तथ्यों की अपेक्षा 'वैचारिक सत्य' कहना ज्यादा पसंद करता था। यह आप 'ग्रामर आफ एसेन्ट' (सह-मति या स्वीकृति का व्याकरण) और 'क्रिएटिव इवोल्यूशन' (सर्जनात्मक क्रम-विकास) पढ़ते वक्त समझ सकते हैं कि सोचने की कला की विशेषताएं क्या होती हैं और वे कैसे विवरणों की अपेक्षा अनुभव पर

अधिक निर्भर होती हैं।

मौलिक सृजन के लिए दो उपादान अत्यंत आवश्यक होते हैं—१. आत्मवान बनो; २. आत्मा या अपने आपकी खोज में लगे रहो।

आत्मवान या अपना आपा बनने में दो बाधाएं मुख्यतः आती हैं—ढोंग और शंका-लुता।

ढोंग या भंगिमा भरोसा नहीं बन सकती। भरोसा जब दूसरी अच्छी और खरी खूबियों के साथ मिल जाता है, तो प्रतिभा में परिणत हो जाता है। बाल्जाक में आप दोनों बातों की मिसाल पा सकते हैं। किंतु दोषदर्शिता या व्यंग्य अपने आपमें कोई भंगिमा नहीं है। अपने उत्कृष्ट रूप में व्यंग्य सचाई या निष्कपटता और

आत्मश्लाघा का घोलमेल ही बन पाता है। उसमें वह रूसो वाली निश्चित धारणा छिपी रहती है कि 'कोई भी अपने से ज्यादा अच्छा नहीं होता'। जो आप नहीं हैं, उसे अपने में आरोपित करके दिखाना ही भंगिमा है। यदि कोई ऐसा करने या अभिनय करने में ही अपनी शान

नवनीत

समझता है, तो वह मौलिक सृजन कैसे कर सकता है! ज्यादा से ज्यादा वह एक अच्छा ग्रामोफोन रिकार्ड ही बन सकता है। और ऐसा अक्सर पेशेवर कलम-नवीसों के साथ घटता है। बहुत-से 'आधुनिक' पाठकों को उनकी 'लोरियां' अच्छी भी लगती हैं। सच तो यह है कि साहित्यिक फैशन और फार्मूलों के मुताबिक लिखने वाले अपनी

चिंतनोय

चिंता करने योग्य दो ही बातें हैं—आप स्वस्थ हैं कि बीमार हैं। अगर आप स्वस्थ हैं, तो फिर चिंता करने की कोई बात ही नहीं। लेकिन अगर आप बीमार हैं तो चिंता करने योग्य दो ही बातें हैं—स्वस्थ होंगे कि परलोक सिधारेंगे। स्वस्थ हो गये तो फिर चिंता की कोई बात ही नहीं। लेकिन अगर परलोक सिधार गये तो चिंता करने योग्य दो ही बातें हैं—स्वर्ग जायेंगे कि नरक। स्वर्ग गये तो फिर चिंता की कोई बात ही नहीं। लेकिन अगर नरक गये तो वहां इतने सारे मित्र मिलेंगे कि उनके साथ हाथ मिलाते-मिलाते आपको चिंता करने की फुरसत ही नहीं मिलेगी।

हस्ती ही मिटा डालते हैं। वे यह समझ ही नहीं पाते कि नकल सर्जनात्मकता का गला घोट डालती है। निरी दोषदर्शिता या व्यंग्य करते रहने से हमारा व्यक्तित्व भी नहीं बन पाता। लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि सृजन की दिशा में हम निरालसी बने रहें। हम अपनी चेतना को झकझोरकर यह देख लेना चाहिये कि क्या

किसी रचना को शुरू करने से पहले हम उतनी तैयारी कर पाये हैं, जितनी कि करनी चाहिये थी। अपनी विगत उपलब्धियों से संतोष कर लेना भी एक तथ्य का आलस्य ही है। और अपने किसी भी रचनात्मक प्रयत्न को अंतिम एवं पूर्णतया दोषहीन समझ लेना भी बहुत बड़ी भूल है।

अपनी मनीषा, योग्यता या क्षमता का भरपूर उपयोग कर पाना हमारा एक नैतिक दायित्व है, जिसकी पूर्ति से सृजनात्मकता का प्रवाह खुल जाता है। और इसके लिए हमें अपनी इच्छाशक्ति दृढ़ करनी चाहिये।

हम अपने आपकी उपलब्धि अधिकांशतः मानसिक परिवेश में ही करते हैं। विशेषतः तब जब एकांत में आत्मचिंतन या पुनर्विचार करते हों अथवा किसी नैतिक समस्या को अपने लिए सुलझा रहे हों। बौद्धिक अनुभूति या मानस प्रत्यक्ष के सघन क्षणों में हम शेष सृष्टि की हर वस्तु के साथ एक तरह की समानुभूति प्राप्त करते हैं, उसे समझने की पूरी कोशिश करते हैं—यद्यपि उस वक्त अपने को एकदम अकेला महसूस करते हैं। कोई महान कृति, किसी संत या मनीषी का सामीप्य, संगीत का श्रवण या ऊंचो कोटि की साधना भी हमें ऐसे क्षणों में ले जा सकते हैं। सभी विचारशील सृजनरत लोगों के जीवन में ऐसे क्षण आते ही हैं, जब सृजन के असीम आनंद की प्रभा उनके चेहरे पर झलक उठती है।

अनदेखे, अनजाने सौंदर्य या तथ्य अथवा सिद्धांत की आकस्मिक उपलब्धि या सप्रयत्न आविष्कृति के समय भी ऐसा ही होता है। सच तो यह है कि जब तक हम अपने निकटतम से यानी अवचेतन से संयुक्त नहीं हो जाते, तब तक अपने को दूसरों से बहुत कम अलग कर पाते हैं। इसके लिए कुछ व्यावहारिक उपाय ये हैं :

१. अपनी मुख्य मनोवृत्ति मालूम करें।

१९७९

इससे तात्पर्य चेतना के उस स्तर से है, जो सर्वाधिक समृद्ध होता है, जिससे हम बहुत ज्यादा विचार-सामग्री पाते हैं, जिस पर होने से हम बहुत अधिक सोच पाते हैं। प्रतिभा बुनियादी तौर पर इसी स्तर की विचार-शक्ति है, जो बड़ी सहजता से काम करती है। साथ ही, यह धैर्य और आनंद से परिपूर्ण होती है। तभी तो प्रतिभा के कार्यों में हमारे मन-मस्तिष्क रम पाते हैं।

२. अपनी मनोवृत्ति के अनुकूल ही बोलें और लिखें।

अक्सर लोग जब उत्कृष्ट प्रेम या क्रोध में होते हैं, अथवा किसी विचार, विश्वास, मतवाद या तीव्र इच्छा के वश में होते हैं, तो बहुत अच्छा बोलते हैं। गहरी नैतिकता की आधार-भूमि पर बने रहने वाले लेखक अन्य कलाकारों की अपेक्षा बेहतर मनोवृत्ति रख पाते हैं। इसके लिए उन्हें किसी फन्तासी और अतिथयार्थ के अनुभवों की जरूरत नहीं पड़ती। हां, यह अवश्य होता है कि कुछ लयें (यदि इस शब्द को सारे अर्थों में लें) लेखकों को अपने अवचेतन के अधिक निकट रख पाती हैं।

३. अंतःप्रज्ञा, प्रमा अथवा प्रातिभ ज्ञान का महत्त्व समझें।

यही वह मानस क्रिया है, जो सहज ही होती है और जिसमें कम से कम बाहरी उपकरणों की जरूरत पड़ती है। यह अचानक ही कौंधता है। चाहे अपने जाने हमन इसके विषय की तीव्र इच्छा की हो या नहीं, किंतु एक क्षण में ही हमें उसके निश्चित यथार्थ

का बोध हो जाता है। इसी से हमारी किसी भी पुरानी समस्या का समाधान मिल संकता है। हमारा सारा रख ही बदल जाता है। कारण, हमें एक ऐसे रहस्य-सूत्र का पता लग जाता है कि जो सारी गुत्थी सुलझाने में हमारी पूरी मदद करता है। ऐसे क्षणों में हमें कोई दबाव, तनाव या परेशानी भी नहीं महसूस होती; प्रत्युत एक प्रकार की समग्रता और स्वतंत्रता का एहसास होता है। लेकिन ये क्षण कभी इतने भंगुर होते हैं कि हम उनकी वास्तविकता से परिचय भी नहीं कर पाते कि वे विस्मृति-विलीन हो जाते हैं। और कभी ये हमारी ऐंद्रिय अनुभूति के क्षणों से भी कहीं अधिक दृढ़ और स्पष्ट होते हैं।

छोटी-छोटी प्रमाणें प्रायः तब बहुत आती हैं, जब हम जगते हुए-से भी सपने देखते या अत्यंत मनोरम संगीत सुनते होते हैं। कभी तो इनकी संख्या इतनी बड़ी होती है कि हम कोई अंदाज तक नहीं कर सकते। सोचने की कला पर किसी का आधिपत्य तभी माना जा सकता है, जब वह मनचाहे वक्त पर इन प्रमाणों को उद्बोधित कर सके और ऐसा करते वक्त उसके दिमाग पर कोई जोर भी न पड़े।

४. अपनी प्रमाणों से स्नेहिल बरताव करें।

इसलिए कि वे बार-बार उसी रूप में और उतनी ही अपील से नहीं आतीं। प्रमाणों के क्षणों में हमें भीतर-बाहर शांत और मौन रहना चाहिये। हमें इन पर ध्यान तो देना है, किंतु इनके प्रति बहुत इच्छुक या

जिज्ञासु एवं सकौतुक नहीं होना है। ये ऐसी तितलियां हैं, जो पकड़ी जाने पर अपनी खूबियां खो देती हैं। इसीलिए बहुत-से लेखक अपने प्रातिभ अनुभवों पर बुद्धि की कसरत या श्रम नहीं करने लगते। अच्छा यही होगा कि इन क्षणों में हम अपने मन में अधिकाधिक विव उभरने दें।

५. अपना 'मूड' उद्बोधक रखने की आदत डालें।

हमारी चेतना का एक स्तर सर्वाधिक संवेदनशील होता है। हम इसे जानते हैं और इस पर कभी भी पहुंच सकते हैं। तब हमारी जो भी प्रतिव्रिया होती है, वह सुनिश्चित होती है। यदि हम अधिकाधिक अपने आपमें रहें तो हमारा व्यक्तित्व भी विकसित होता रहता है और तभी हमारी ग्रहणशीलता भी बढ़ती जाती है।

वास्तव में हमारे जीवन की भावनाओं, प्रयत्नों, महनीयता और बुद्धि के उत्कर्ष के सर्वोच्च शिखर उद्बोधक 'मूड' रहने पर ही अधिगत हो पाते हैं। अवकाश के थोड़े-से क्षण ऐसा मूड ला दे सकते हैं। जैसे ही हम इसके प्रति सचेतन हुए कि प्रज्ञानभूतियां भी टिमटिमाते लगती हैं। कविगण यह अच्छी तरह समझते हैं। ऐसी स्थिति में कभी-कभी तो हमें आगामी घटनाओं का भी आभास या एहसास भी हो जाता है। बच्चों को अपनी मासूमियत के कारण प्रायः ऐसा होता है। हमें भी हो सकता है, वरत हम अपने मन-मस्तिष्क से मासूमियत बिलकुल धो-पोंछ न डालें।



कौन मूल्यवान ?

मनुगुप्त

नायक का नाम हिरोमी कियोकावा । शहर-जापान में एक कस्बा काने । कियोकावा की उम्र-सिर्फ ३६ वर्ष । पेशा-दफ्तर में क्लर्क ।

घटना बहुत छोटी-सी हैं । कियोकावा को एक लाटरी मिली-१ करोड़ येन, यानी लगभग ४,०६,४०० रुपये ।

नये साल के दिन जब यह खबर मिली, तभी से कियोकावा तरह-तरह के सपने देखने लगा-एक गाड़ी होगी, एक वाड़ी, बीबी के पास तरह-तरह के किमोनो और आधुनिक फैशन की वेषभूषाएं । घर में जापानी शैली का उपवन होगा-छोटे पेड़ों और पहाड़ों तथा झरनों से नयनाभिराम ।

कैसे मालूम था कि अंत इस कहानी का भी वही हुआ, जो उस कहानी का हुआ जिसमें एकु भिखमंगा घड़ा-भर सत्तू जमा करके उसे छत से लटकाकर सपने बुनता और आखिर लात मारकर घड़ा तोड़ देता है-सत्तू बिखरकर किसी काम का नहीं रहता ।

कियोकावा ने लाटरी की रकम वसूलने से पहले ही उसे जला दिया । मित्रों ने, हितैषी सहकर्मियों ने रोका तो भी नहीं माना । सबको देखते कियोकावा को लख-

पति बना सकने वाला भाग्य-टिकिट राख हो गया

क्यों किया उसने यह कृत्य ? इस-लिए कि दोस्तों ने बोलना बंद कर दिया था उससे, यद्यपि सारा शहर उसे जान-पहचान गया था । जिधर जाता उधर ही लोग उंगली उठाकर दिखाते-वह जा रहा है भाग्यशाली हिरोमी कियोकावा ! लेकिन कियोकावा तो नजदीकी प्यारे दोस्तों की ईर्ष्याजन्य नयी दुश्मनी से परेशान हो गया था । नहीं बनेगा वह 'लक्ष्मीवाहन'-यानी उल्लू ...

बन ही गया फिर भी ! सारा धन किसी अस्पताल को दे सकता था कुछ भी ऐसा कर सकता था, जिससे दूसरों की निगाह में वह बहुत ज्यादा प्यारा हो जाता....

नहीं, फ्रांस के मशहूर लेखक-दार्शनिक सार्त्र ने साहित्य में नोबेल पुरस्कार के साढ़े सात लाख रुपये नहीं कबूले थे । कहा था-आलू के बोरे के बराबर हैं ये रुपये मुझे नहीं चाहिये । बर्नार्ड शा ने नोबेल पुरस्कार की सारी रकम एक ट्रस्ट को दान कर दी थी । उद्देश्य था ऐसी भाषा और लिपि का प्रचार-प्रसार जिसे दुनिया में सब लोग समझें, पढ़ें । मगर कुछ नहीं हो सका उस

दिशा में। अब ब्रिटिश सरकार सोच रही है कि संसद से कानून बनवाकर राष्ट्रीयकरण कर ले उस सारी धनराशि का। इसलिए कियोकावा ने लाटरी वसूलना ही गलत समझ लिया। वैसे भी बेचारा उत्तेजना के मारे सो नहीं पा रहा था। कई रातें जागते, चहलकदमी करते और बिस्तर पर करवटें बदलते बीती थीं। बीबी होती तो शायद ऐसा न हुआ होता।

मान लीजिये, आप कियोकावा हैं और आपको दीवाली के दिन खुली महाराष्ट्र सरकार की पांच लाख की लाटरी मिली है... आप सोचने लगे हैं—'पौने दो लाख तो सरकार टैक्स के वसूलेगी, बचे ३ लाख २५ हजार ! ठीक-सा फ्लैट लूं तो कम से कम दो लाख गये, ४०-५० हजार घर सजाने को चाहिये, ३५ हजार के लगभग की कार आयेगी। बाकी ५० हजार व्याज पर लगा दूंगा, ५०० रुपये प्रतिमास की आम-दनी हो जायेगी। नहीं, रिइन्वेस्ट कर दूंगा उसे, आठ वर्ष में एक लाख हो जायेंगे !

'छोड़ो जी, फ्लैट-वैट के चक्कर में नहीं पड़ना। सारी रकम का पूंजी विनियोग करके (विनियोगाद् वृद्धिः) दुगुना क्यों न बना लिया जाये ? मुफ्त सलाह देने वाले, कुछ मिलने की उम्मीद लगाने वाले रिश्ते-दारों की भीड़ शुरू हो गयी है अचानक 'सुपर हीरो' हो गया हूं उनके लिए... जो कभी याद नहीं करते थे, वे भी वधाइयों के

तार, खत भेज रहे हैं। कुछ लोग तो यही कहते नहीं अघाते—'मजे करो प्यारे, अब तो। अब क्यों आठ सौ की नौकरी से चिपके हो ? व्याज ही काफी होगा, सवा तीन लाख का। मूल में हाथ लगाने की जरूरत नहीं।'।

लोग मुझे 'मुकद्दर का सिकंदर' तो बता ही रहे हैं, बख्शते नहीं अपनी मेहरबानियों से रोज-रोज ! बीबी के घरवालों का तांता शुरू हो गया है पैसे सबकी निगाह में खटक रहे हैं, घर का कामकाज नौकर करने लगे हैं, बीबी मेरी खातिर-खुशामद में दिन-रात एक किये है दोस्त उसे दुश्मन लगते हैं, रुपये अभी हाथ में नहीं आये लेकिन कर्ज मांगने वालों की 'क्यू' लग गयी है ! टिकिट तो मैंने बैंक में जमा कर दिया है, अन्यथा जान के लाले पड़ जाते.... यों किडनैप होने का डर लगा रहता है, बहुत सावधानी से दिन बिता रहा हूं। अखबार वाले भी आये थे कई। उनसे कह दिया है कि पहले अब तक जिन्हें पांच लाख, दस लाख, दो लाख और एक लाख की लाटरियां मिली हैं उनके इंटरव्यू छापिये दो-चार। सरकार के लाटरी-विभाग के निदेशक से पता लीजिये पाने वाले के नाम-पते !

सच ! यह एक बड़ा अच्छा विषय है। 'इन्वेस्टिगेटिव' अखबार-नवीसी के लिए। मैं इस पर कुछ काम करूंगा कल से।



चावल का भात

सन् १९७० में मैं ठाकुर रणमतसिंह कालेज, रीवा में स्नातक-कक्षा के अंतिम वर्ष की पढ़ाई पूरी कर रहा था। गांव से कालेज लगभग २४-२५ किलोमीटर के फासले पर है। प्रति सप्ताह साइकल से आता-जाता था। अतः अपने गांव और शहर के बीच सड़क के किनारे पड़ने वाले गांवों के अधिकांश व्यक्तियों से परिचय-सा हो गया था।

मार्च के महीने में एक दिन मैं राशन-पानी लेने गांव जा रहा था। जैसे ही शहर की सीमा पार करके एक गांव में मेरा प्रवेश हुआ, कुछ दूरी पर हरिजनों की वस्ती से स्त्री-पुरुषों के रोने व शोर का समवेत स्वर



चित्र: एन. पी. सोनी

१९७९



सुनाई पड़ा। कौतूहलवश नड़क छोड़कर मैंने पगडंडी पकड़ ली तथा टोह लेते-लेते उस घर तक पहुंचा, जहां से वह आवाज आ रही थी। बड़ा ही हृदय-विदारक दृश्य था। उस घर का मालिक दमे की बीमारी के बाद चल बसा था। शव से लिपट-लिपटकर मृतक की बुढ़िया पत्नी रो रही थी। बहुएं घूँघट के भीतर सुबक रही थीं। किंतु मृतक के दोनों लड़के आपस में लड़ रहे थे। पास खड़े लोगों से इस लड़ाई का कारण पूछा तो उन्होंने बताया कि बड़ा भाई मृत पिता के दाह-संस्कार में मुखाग्नि स्वयं देना चाहता है, किंतु छोटा भाई कहता है कि आग में दूंगा, वस इतनी-सी बात है।

मैंने बीच-बचाव करते हुए उन दोनों से कहा—'चित्ता में आग चाहे बड़ा भाई दे या छोटा भाई, एक ही तो बात है।'

इस पर बड़े भाई ने तमककर कहा—'आप नहीं जानते जी, छोटा इसलिए आग देने की जिद कर रहा है कि चित्ता में जो भी आग देगा, उसे हफ्ते-भर चावल का भात खाने को मिलेगा। मैं ससुरा कोदों का भात खाऊँ और यह हफ्ते-भर चावल का भात खाये,

९७

हिंदी डाइजेस्ट

ऐसा नहीं हो सकता ।'

गरीबी की खाई कितनी गहरी है,
इसका इससे सचोट निदर्शन क्या होगा ?

—कालिका त्रिपाठी, शहडोल, म. प्र.

०००

पश्चात्ताप

वे मेरे स्वर्गीय पिताजी के मित्र हैं—
आइ. ए. एस. एवं राज्य सरकार के
उच्च पदाधिकारी, हम लोगों के अत्यंत
शुभचिंतक। पिछले दिनों उनके घर जाना
हुआ। विशाल सरकारी बंगला—चपरासी,
झाड़वर-युक्त कार से सुसज्जित। जो मांगो
हाजिर। साहब जो चाहते, चपरासी से
कहते और चीज कुछ ही पलों में सामने
हाजिर। पैसे अथवा मूल्य की कोई चर्चा न
होती। मैंने मन में सोचा, नौकरी हो तो
ऐसी हो। सारी तनख्वाह बैंक में !

मेरे कमरे में चढ़ी रील में तीन ही फोटो
और खींचे जा सकते थे। मन में विचार
आया, क्यों न फटाफट तीन फोटो खींच
डालें और रील यहीं धुलवा लें मुफ्त में।
बेकार में कानपुर में धुलवाने पर और आठ-
दस रुपये लग जायेंगे। बस तीन फोटो खींच
डाले चील-कौवों के। रील निकालकर
चपरासी को सौंप दी कि धुलवा लाना।
'जी, साहबजी' कहकर उसने रील मेरे हाथ
से ले ली। दूसरे दिन रील धुलकर आ
गयी। फोटो साफ उतरे थे। मन खुश हो
गया कि हरा लगा न फिटकरी, रंग चोखा
आया।

नवनीत

दो दिन बाद चपरासी ४ रुपये और १६
रुपये का बिल मेज पर रख गया। उत्सुकता-
वश बिल को पढ़ा तो घर के सामानों के
बीच रील धुलवायी के १३ रुपये लिखे थे।
बात समझते देर न लगी। मन ग्लानि से
भर गया। साहब हर हफ्ते १०० रुपये
चपरासी को देकर उससे सामान मंगाते
रहते थे, जब रुपये खर्च हो जाते तो चप-
रासी हिसाब दे देता। देर न की मैंने, तुरंत
रील के पैसे कूटे और १३ रुपये जोड़कर
साहब की मेज पर रख दिये। बात तो टल
गयी, पर मन को ग्लानि अभी तक नहीं
गयी। अब भी किसी को चोर या रिश्वत-
खोर कहने से पहले मन एक बार ठिठक-सा
जाता है उस घटना को याद करके।

—अरूप मुखर्जी, कानपुर-५

०००

जीत हार में बदल गयी

उन दिनों में गुरुकुल कांगड़ी में पांचवीं
कक्षा में पढ़ता था। हमारी कक्षा के
शिक्षक श्री मुंशी रामसिंहजी थे। वे उर्दू
तथा गणित तो जानते थे, पर संस्कृत से
अनभिज्ञ थे। इस कमी की पूर्ति के लिए
छात्रों के साथ विद्यालय में बैठकर संस्कृत
पढ़ते थे। एक कर्तव्यपरायण शिक्षक के
नाते वे सायंकाल के भोजन के बाद हमें भी
पठित पाठ याद करने को कहते और स्वयं
भी पाठ दोहराते। फिर सबसे पाठ सुनकर
और प्रार्थना-मंत्र बुलवाकर सोने के लिए
कहते।

नवनीत

उस दिन अन्य सब छात्रों ने पाठ सुना दिया, पर मैं नहीं सुना सका। मुंशीजी ने दंडस्वरूप मुझे तख्त पर खड़े होने के लिए कहा। १५-२० मिनट बाद मंत्र बोलकर सब छात्र सो गये। थोड़ी देर बाद मुंशीजी को भी नींद आ गयी और वे भी सो गये। उनके सो जाने के बाद मैं भी विस्तर बिछाकर सो गया। प्रातःकाल साढ़े चार बजे बड़ी कक्षा के छात्रों के उठने की घंटी बजी तो मैं जग गया और विस्तर लपेटकर फिर तख्त पर खड़ा हो गया। कुछ देर बाद मुंशीजी उठे। मुझे खड़ा देखकर पास आकर बोले—‘तुम क्यों खड़े हो?’ मैंने कहा—‘कल रात आपने मुझे खड़ा होने का दंड दिया था। आपके बिना कहे कैसे सोता।’ मेरा उत्तर सुनकर वे मेरे पैर पकड़कर आंखों से आंसू बहाते हुए कहने लगे—‘सोम ! मुझे क्षमा कर दे। मैं भी कैसा पापी हूँ कि तुझे खड़ा होने का दंड देकर खुद सो गया और तू बेचारा सारी रात खड़ा रहा !’



धोलनगर (गुजरात) के राजा पलंग पर लेटे हुए थे। सेवक पैर दबा रहा था। राजा ने आंखें मूंद लीं तो उसने उनके पैर से एक अंगूठी निकाल ली। प्रातःकाल राजा ने अंगूठी को पैर में न पाकर सेवक पर संदेह तो किया, किंतु उससे पूछा नहीं।

दूसरे दिन संदेह की पुष्टि के लिए राजा ने नींद में होने का बहाना किया और जब सेवक दूसरे पैर से अंगूठी निकालने लगा, तब बोले—‘एक तो रहने दो भाई।’ सेवक घबरा गया, पैरों में गिरकर बोला—‘मुझसे बड़ी गलती हो गयी हूँ, क्षमा कर दें।’

‘गलती तुम्हारी नहीं, मेरी है। मुझे यह सोचना चाहिये था कि इतने कम वेतन में तुम्हारा गुजारा कैसे होता होगा। बस, मेरी इसी असावधानी से तुम यह दुष्कृत्य करने पर विवश हुए।’

इसके बाद राजा ने अपने कर्मचारियों का वेतन बढ़ा दिया। —एस. के. त्रिपाठी



अब तू लेट जा, तेरी टांगें दुखने लगी होंगी मैं दबा दूँ।’

मुझे बड़ी ग्लानि हुई। मैं उनके पैरों पर गिरकर बोला—‘मुझे क्षमा कर दीजिये, मैं आपसे झूठ बोला कि मैं सारी रात खड़ा रहा। आपको सोया देखकर मैं भी विस्तर बिछाकर सो गया था।’

मेरी बात सुनकर उनके चेहरे पर प्रसन्नता झलक उठी। धोती के छोर से अपने आंसू पोंछते हुए उन्होंने मुझे उठाकर छाती से लगा लिया और बोले—‘तूने मुझे पाप से बचा लिया सोम, बरना मैंने सोचा था कि इस अपराध के दंडस्वरूप आज सारा दिन उपवास रखूंगा।’ उनकी बात सुनकर अपने हाथ से अपने गाल पर तीन-चार थप्पड़ लगाते हुए मैंने कहा—‘मैंने आपको धोखा दिया, आप मुझे क्षमा कर दें।’ इस तरह असाधु साधुना जयेत् का पहला उदाहरण मैंने अपने जीवन में देखा।

—सोमदत्त विद्यालंकार, नयी दिल्ली-६०

बिछुड़े हुए पड़ोसी मुल्क के नाम

ड्योढ़ी पार बसती आबादी में—ताकता हूँ
मैं अपने बिछुड़े भाई को;
कई साल हुए जिसे खदेड़ दिया था
किसी ने मेरे जन्म से पहले ।
वह बत्तीस साल का अरसा
छोटा अरसा नहीं, एक सदी है !

मां-बाप भी बेटे के नक्श भूल जाते हैं,
यादें मिट जाती हैं
खुशक हवाओं और नागफनी की
बाड़ उग आती है
उस पार की बस्ती रात में गुम जाती है ।

.....
पर इन रातों में अब भी कई बार
अंधेरे में बिछोह से चीखता मैं
ड्योढ़ी के उस पार भी
किसी को रोते सुनता हूँ ।

—नवराज

कुमाऊं हास्टल, आइ. आइ. टी., नयी दिल्ली-२९



एंग और चेंग

डा. आस्पी गोलवाला

वे जुड़वां बच्चे जिनके शरीर भी आपस में जुड़े हुए हों, अंग्रेजी में 'सयामीज ट्विन्स' कहलाते हैं। इस शब्द के लिए अंग्रेजी भाषा ऋणी है सयाम (थाईलैंड) के दो जुड़वां भाइयों की, जिनके शरीर आपस में एक चौड़ी पट्टी से जुड़े हुए थे।

वात सन १८११ की है। बैंकाक के निकट एक गांव में दो बच्चों ने जन्म लिया, जिनके शरीर वक्षोस्थि से लेकर उदर के निचले हिस्से तक आमने-सामने से जुड़े थे। इन्हें आमने-सामने चेहरा रखकर ही सुलाया जा सकता

था। इनके नाम रखे गये एंग और चेंग। ज्यों-ज्यों ये बच्चे बड़े होते गये उन्हें जोड़ने वाली पट्टी ज्यादा चौड़ी तथा लचीली होती गयी। जब इन्होंने किशोरा-वस्था की देहरी पर कदम रखा, तब तक वे एक दूसरे की ओर थोड़ा झुककर अगल-बगल में खड़े हो सकते थे। इन्होंने

साथ-साथ कदम बढ़ाकर चलना और दौड़ना ही नहीं तैरना भी सीख लिया था।

गांव के लोग तो एंग और चेंग को उतनी विचित्र निगाहों से नहीं देखते थे, क्योंकि वे उस गांव में ही



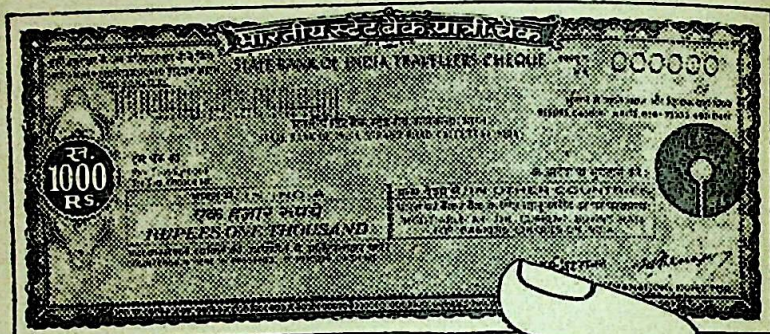
मूल 'सयामीज ट्विन्स'

१९७९

१०१

हिंदी डाइजेस्ट

अब, 1,000 रुपये जिन्हें कोई लूट नहीं सकता.



स्टेट बैंक के 1,000 रुपये के नये ट्रैवलर्स चेक.

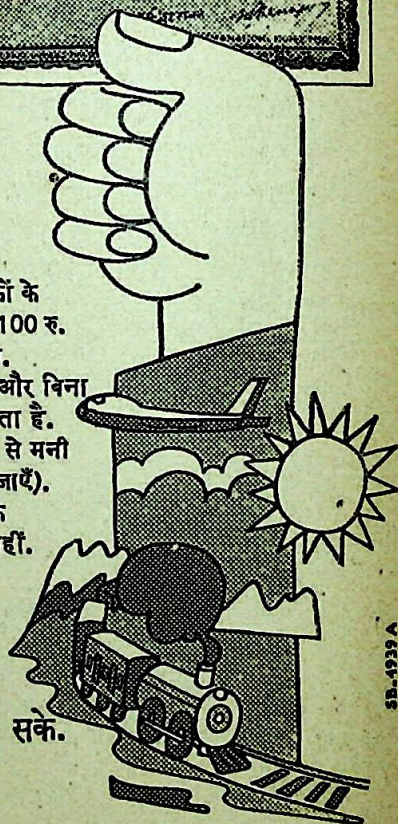
- भारतीय स्टेट बैंक और उसके सहयोगी बैंकों के 7,300 से भी अधिक कार्यालयों में 50 रु., 100 रु. और 500 रु. के मूल्यमानों में भी उपलब्ध.
- बिना कोई शुल्क लिए जारी किए जाते हैं और बिना कोई शुल्क काटे इनका सुगतान किया जाता है.
- जिस कार्यालय से जारी किए जाते हैं वहाँ से मनी बैक गारंटी (यदि खो जायें या चोरी चले जायें).
- इनका इस्तेमाल भी आसान—सुगतान के समय किसी परिचय-पत्र की भी जरूरत नहीं.
- असीमित अवधि के लिए वैध.
- भारत भर में 25,000 से भी अधिक स्थानों में सुनाये जा सकते हैं.

स्टेट बैंक ट्रैवलर्स चेक

धन, जो न खो सके...न चोरी हो सके.



**स्टेट बैंक
आईए, साथ बढ़े!**



हमारी सभी महानगरीय व शहरी शाखाओं में राजाजी जन्म शताब्दी समारोह के कूपन उपलब्ध हैं.

जन्म लेकर बड़े हुए थे; परंतु बैंकाक के राजमहल में जब भी कोई विदेशी शाही मेहमान आता, उसके मनोरंजन के लिए एंग और चेंग को जरूर बुलाया जाता था।

ऐसे ही एक मौके पर एक अमरीकी जहाजी कप्तान ने राजमहल में उन्हें देखा। वह उनसे बहुत प्रभावित हुआ और उन्हें मई १८३० में इंग्लैंड ले गया। वहां वे मनोरंजन की दुनिया के अपूर्व आकर्षण बन गये। वे जहां भी जाते, हज़ारों लोग उन्हें घेर लेते। इस तरह एंग और चेंग की शारीरिक बाधा उनके लिए अच्छी आमदनी का साधन बन गयी।

अमरीका और यूरोप में लगभग दस वर्षों तक चक्कर लगाने के बाद उन्होंने काफी बड़ी दौलत जमा कर ली। फिर उन्होंने मनोरंजन की दुनिया को अलविदा कहकर किसी स्थान पर स्थायी रूप से बस जाने का निश्चय किया। उत्तरी कैरोलिना (अमरीका) में उन्होंने एक शानदार कोठी

खरीदी और वहां रहने लगे।

उन्हें वहां रहते साल-भर ही बीता था कि आस-पास यह खबर फैल गयी कि समीप के ही एक धनी किसान की दो खूबसूरत लड़कियों से उन जुड़वां भाइयों का रोमांस चल रहा है और वे कभी भी विवाह-सूत्र में बंध सकते हैं। इन लड़कियों के नाम थे— एडी और सैली। लोगों ने इस रोमांस का सख्त विरोध किया और कहा कि जुड़वां लड़के दो लड़कियों से कैसे विवाह-संबंध स्थापित कर सकते हैं!

लेकिन एंग और चेंग विवाह की बात पर दृढ़ थे और इसके लिए कोई भी कुर्बानी देने को तैयार थे। यह तय किया गया कि यदि आपरेशन करके दोनों के शरीर अलग-अलग कर दिये जायें, तो विवाह हो सकता है। दोनों भाई ऐसे आपरेशन के लिए तैयार हो गये। इसके पहले भी कई बार यह बात उनके दिमाग में उठी थी; पर कोई शल्य-चिकित्सक इस आपरेशन का खतरा उठाने के लिए तैयार नहीं हुआ था।

इस बार उन्होंने किसी तरह फिलाडेलफिया के शल्य-चिकित्सकों को आपरेशन के लिए तैयार कर लिया। पूरी तैयारी की गयी और आपरेशन शुरू होने ही वाला था कि अचानक एडी और सैली वहां आ पहुंचीं। उन्हें यह पता चल गया था



जे. पी. अस्पताल, दिल्ली में जनमे जुड़वां बच्चे।

१९७९

१०३.

हिंदी डाइजेस्ट

कि एंग और चेंग क्यों आपरेशन करवा रहे हैं। काफी अनुनय-विनय द्वारा उन्होंने एंग और चेंग को उसी तरह जुड़े रहने के लिए मना लिया। आपरेशन नहीं हुआ और विरोध के बावजूद कुछ सप्ताहों के भीतर ही एंग और चेंग का विवाह सैली और एडी से हो गया। युगल-दंपति ने सम्मिलित रूप से घर बसाया।

अगले तीस वर्षों के सुखी दंपत्य-जीवन में उनके कुल २१ बच्चे हुए—एडी और चेंग के दस, और सैली तथा एंग के ग्यारह। यह बात सोचकर हैरत होती है कि उन्होंने अपने वैवाहिक संबंधों को कैसे व्यवस्थित किया होगा? दोनों दंपतियों के एक-एक गुंगा और बहुरा बच्चा हुआ, शेष सभी पूरी तरह स्वस्थ और सामान्य थे।

अमरीकी गृहयुद्ध ने एंग और चेंग को अपनी वैभवशाली कोठी को छोड़ने पर मजबूर कर दिया। उनकी संपत्ति लूट ली गयी। अब वे फिर से सड़कों पर थे। लेकिन किस्मत ने फिर भी उनका साथ दिया। सन १८७२ तक उन्होंने फिर से काफी धन जमा कर लिया और अपने पुराने मकान को दुबारा आबाद कर लिया। लेकिन उनका सुख थोड़े ही समय का रहा।

कुछ समय से चेंग अस्वस्थ रहने लगा था। जनवरी १८७४ में एक दिन उसे काफी तेज बुखार चढ़ गया और बेचैनी होने लगी। उसी जुड़ी हालत में दोनों भाई उस रात अपनी पत्नियों से अलग दूसरे

कमरे में सोये। तड़के चार बजे के करीब चेंग की पत्नी एडी यह देखने दबे पांव उस कमरे में गयी कि सब कुछ ठीक तो है। चेंग के मृत देह पर नजर पड़ते ही वह चीख उठी।

उसकी चीख सुनते ही दूसरे लोग भी जमा हो गये। इस शोरगुल से एंग की नींद खुल गयी। जैसे ही उसने सिर उठाकर चेंग की ओर देखा, वह भी बेहोश हो गया। एक घंटे के भीतर उसकी भी मृत्यु हो गयी!

जुड़वां भाइयों की जुड़वां मौत का समाचार सुनकर लोग उनके घर की ओर भागे। भीड़ जमा होती गयी। कुछ लोग उन शवों को खासी रुकमें देकर खरीदने को तैयार थे। पर एडी और सैली ने शव फिलाडेल्फिया के एक अस्पताल को दान में दे दिये, ताकि उन पर चिकित्साशास्त्रीय अनुसंधान किया जा सके।

पोस्टमार्टम से पता चला कि यद्यपि एंग और चेंग के शरीर के अन्य सभी अंग अलग-अलग थे, पर उनके दिल एक ही था। जुड़ी हुई पट्टी के सहारे वही दिल दूसरे को भी ज़िंदा रखे हुए था—यदि उनके जीवन-काल में कभी उस पट्टी को काटकर उन्हें अलग करने की कोशिश की जाती, तो निश्चय ही एंग की मौत हो जाती। एडी और सैली ने तीस साल पहले आपरेशन रुकवाया था, तब कौन जानता था कि वे उनकी ज़िंदगी बचा रही हैं।



पिंजरे से आजाद लेकिता उड़ते से मयभीत

— स्व. बलराज साहनी

[जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नयी दिल्ली में दिये गये दोक्षांत भाषण के अंश]

बीस साल पहले की बात है, 'दो बीघा जमीन' फिल्म के निर्माता, विमल राय और उनके कलाकारों तथा टेक्नीशियनों का कलकत्ता की 'फिल्म जर्नलिस्ट एसोसियेशन' की ओर से सम्मान किया जा रहा था। बड़े सुंदर भाषण हुए। पर श्रोता बड़ी उत्सुकता से विमल राय को सुनने की प्रतीक्षा कर रहे थे। वे उस महान व्यक्ति से उसकी कला और जीवन संबंधी अनुभव और विचार सुनना चाहते थे। आखिर विमल राय से बोलने के लिए प्रार्थना की गयी। मैं उस समय विमल राय के बिलकुल पास फर्श पर बैठा हुआ था और काफी समय से देख रहा था कि वे बहुत ही बेचैन और घबराये हुए-से लग रहे हैं। आखिर वे उठे और उन्होंने श्रोताओं के सामने बड़ी नम्रता से हाथ जोड़कर सिर्फ इतना कहा—'जो कुछ कहना था, मैं फिल्म में कह चुका हूँ। मैं क्षमा चाहता हूँ कि मेरे पास कहने के लिए और कुछ नहीं है, और न मुझे भाषण करना ही आता है।'

इस समय मैं भी सिर्फ इतना ही कहना

चाहता हूँ। अगर मैं इससे ज्यादा कहने का साहस कर रहा हूँ, तो सिर्फ इसलिए कि जिस व्यक्ति के नाम पर आपकी यूनिवर्सिटी कायम की गयी है, उसके व्यक्तित्व से मुझे प्यार है। इसलिए आपकी संस्था की ओर से मिलने वाली किसी भी आज्ञा का मैं उल्लंघन नहीं कर सकता। अगर आप मुझे इस इमारत की सीढ़ियाँ और फर्श साफ करने की आज्ञा देते, तो मैं अपना उतना ही सौभाग्य समझता, जितना इस समय यहां खड़े होकर आपको संबोधित करने में महसूस कर रहा हूँ। उस सेवा के लिए मैं शायद योग्य साबित होता।

मुझे गलत न समझा जाये। मैं यहां नम्रता और शिष्टता का दिखावा करने के लिए नहीं झूया हूँ। जो बात मैंने कही है, वह दिल से कही है। मैं यहां जो कुछ कहूंगा, अपने उस जीवन-अनुभव के बारे में ही कहूंगा, जिसमें से गुजर रहा हूँ। उससे बाहर जाना मूर्खता होगी।

इस समय मुझे अपने विद्यार्थी-जीवन के जमाने की एक घटना याद आ रही है,



स्वास्थ्य तथा दीर्घ जीवन के लिये ३००० वर्ष पुराना नुस्खा

डाबर च्यवनप्राश पूरे परिवार के लिये ४ सूत्री आयुर्वेदिक टॉनिक

विटामिन सो
से भरपूर,
स्वादिष्ट
सहज-मोठा मिश्रण
अपने प्राकृतिक
रूप में



१. शरीर के तंतुओं को जवान रखता है
डाबर च्यवनप्राश से शरीर के तंतुओं का क्षय
धीमा पड़ जाता है।

२. शरीर की प्रतिरक्षा शक्ति को
बढ़ाता है

डाबर च्यवनप्राश शरीर की संपूर्ण प्रतिरोधक
शक्ति का विकास करता है तथा सर्दी और
जुकाम में भी लाभदायक है।

३. स्फूर्ति प्रदान करता है

डाबर च्यवनप्राश बच्चों में स्फूर्ति बनाए रखता
है और बुढ़ावस्था में कार्यशक्ति विकसित
करता है।

४. इसमें संचय और वृद्धि करने के गुण हैं
डाबर च्यवनप्राश शरीर के विकास में मदद
देता है।

देवताओं का नुस्खा

च्यवनप्राश का नुस्खा ३००० वर्षों से भी पहले
का है, जैसा कि कहा जाता है कि देवताओं के
चिकित्सकों ने महर्षि च्यवन को उनका यौवन
फिर से प्रदान करने के लिए तैयार किया था।
यद्यपि च्यवनप्राश सम्भवतः विश्व में प्राचीन
स्वास्थ्य-प्रद टॉनिक है, तथापि डाबर ने इसके
बनाने का तरीका पूर्ण आधुनिक एवं वैज्ञानिक है।

एक शक्तिदायक आयुर्वेदिक टॉनिक

डाबर च्यवनप्राश

सभी देवा विक्रेताओं के यहाँ मिलता है।

जिसे मैं कभी भुला नहीं सका, और जिसने मेरे मन पर बहुत गहरा असर डाला।

हमारा परिवार बस में रावलपिंडी से कश्मीर जा रहा था। रास्ते में पहाड़ का एक हिस्सा टूटने के कारण सड़क बंद हो गयी थी। ऊपर से बेहद बारिश हो रही थी। कई दिन तक न बारिश बंद हुई, न सड़क की मरम्मत हो पायी। दोनों तरफ मोटरों की लंबी कतारें लग गयीं। न खाने-पीने का अच्छा इंतजाम था, न सोने का। आस-पास के गांवों के लोग यात्रियों की सेवा करते हुए थक गये थे। पी. डब्ल्यू. डी. के कर्मचारी सड़क की मरम्मत करने में सिरतोड़ मेहनत कर रहे थे। फिर भी ड्राइवर और यात्री हर समय उनके पीछे पड़े रहते, उन्हें सुस्त और निकम्मा कह-कहकर कोसते रहते। आखिर चौथे-पांचवें दिन रास्ता खुलने का एलान हुआ और ड्राइवरों को हरी झंडी दिखा दी गयी।

पर तब एक बड़ा ही अजीब नजारा देखने में आया। न इस तरफ से और न ही उस तरफ से कोई ड्राइवर अपनी गाड़ी आगे बढ़ाने में पहल करने के लिए तैयार था। सभी खड़े एक-दूसरे का मुंह देख रहे थे। इसमें शक नहीं कि रास्ता कच्चा था, और खतरनाक भी। एक तरफ पहाड़ था, और दूसरी तरफ खाई और ठाठें मारता जेहलम दरिया। ओवरसियर ने अपनी पूरी तसल्ली करके रास्ता खोला था, पर कोई भी व्यक्ति उसका आश्वासन सुनने को तैयार नहीं था। आधा घंटा बीत गया। कोई टस से मस न

हुआ। इतने में पीछे से एक छोटी-सी, हल्के हरे रंग की, स्पोर्ट्स-कार आती हुई दिखाई दी। एक अंग्रेज उसे चला रहा था। भीड़ को देखकर वह हैरान हुआ। मैं कोट-पतलून पहने जरा बन-ठनकर खड़ा था। उसने मुझसे पूछा, 'क्या हुआ है?' मैंने उसे सारी बात बतायी, तो वह जोर से हंसा और उसी क्षण हार्न बजाता हुआ, बिना किसी डर के, कार चलाता हुआ आगे बढ़ गया।

उसके बाद का नजारा और भी देखने लायक था। कहां तो कोई माई का लाल गाड़ी स्टार्ट करने के लिए तैयार नहीं था, और कहां अब सभी की गाड़ियों के इंजन एकदम स्टार्ट हो गये, और वे हार्न पर हार्न बजाते हुए एक साथ वह हिस्सा पार करने लगे। इतनी भगदड़ मची कि रास्ता फिर काफी देर के लिए बंद हो गया। तब मैंने अपनी आंखों से प्रत्यक्ष देखा कि गुलाम और आजाद आदमी में कितना फर्क है!

पता नहीं, आपमें से किसी ने नंदलाल बसु द्वारा चित्रित गांधीजी का चित्र देखा है या नहीं। यह एक ऐसे व्यक्ति का चित्र है, जिसे अपने आप पर, अपने विचारों और अपने चरित्र पर विश्वास है।

मेरा थोड़ा-बहुत संबंध साहित्य की दुनिया से भी है, और यही हालत मैं उस दुनिया में भी देखता हूं। यूरोपीय साहित्य के फैशन हमारे उपन्यासकारों, कहानी-लेखकों और कवियों पर झट हावी हो जाते हैं। मेरे पंजाब में कवियों की नयी पीढ़ इन्कलाबी जब्बे से ओतप्रोत है। वह जनता

को इन्कलाब के लिए चुनौती देने वाली कविता लिखती है, पर पश्चिमी पूंजीपति देशों की कविता की तरह उसमें न तुक है, न लय है, न छंद है। वह जनता की समझ में नहीं आती, जिसे कि वह इन्कलाब की प्रेरणा देना चाहती है।

और अगर आप अपने शैक्षणिक संसार को भी जरा गहरी नजर से देखें, तो शायद दूसरों पर हंसने के साथ-साथ आप खुद पर भी हंसना चाहेंगे।

पंजाब में यह जानी-पहचानी बात है कि किसान का बेटा कालेज की शिक्षा प्राप्त करने के बाद खेती-वाड़ी के काम के लायक नहीं रहता। उसे अपने चौगिर्द और अपने लोगों से नफरत हो जाती है। वह शहर भागने की कोशिश करता है। क्या आपके शैक्षणिक वातावरण की यह स्थिति शोकपूर्ण नहीं है ?

आपने पंडित जवाहरलाल नेहरू की आत्मकथा में पढ़ा होगा कि हमारे देश के आजादी के आंदोलन पर, जिसका नेतृत्व इंडियन नेशनल कांग्रेस करती थी, शुरू से ही पूंजीपति वर्ग का प्रभाव रहा है। सो, स्वाभाविक था कि आजादी के बाद इसी वर्ग का शासन और समाज पर प्रभाव

सबनीत

जिम्मेदारी

श्रीमती गोल्डा मेयर सत्तर वर्ष की उम्र में इस्त्रायल की प्रधान-मंत्री बनी थीं। अपनी आत्मकथा में इसका उल्लेख करते हुए उन्होंने लिखा है :

‘मैं प्रधान-मंत्री उसी प्रकार बनी, जिस प्रकार कि हमारे यहां दूध देने वाला आदमी हमें पहाड़ी पर बनी एक फौजी चौकी का कमांडर बना। हम दोनों को ही इस काम का खास शौक नहीं था; लेकिन हम दोनों ने उसे अपने पूरे सामर्थ्य के अनुसार निभाया।’

होता। आपमें से कोई भी इस बात से इन्कार नहीं करेगा कि पिछले बीस सालों से पूंजीपति वर्ग दिन प्रतिदिन और ज्यादा धनवान और शक्तिशाली होता जा रहा है, और मजदूर और किसान वर्ग और ज्यादा लाचार और परेशान। पंडित नेहरू इस स्थिति को बदलना चाहते थे, पर बदल नहीं सके। इसके लिए मैं उन्हें दोष नहीं देता। हालात ने उन्हें मजबूर कर रखा था।

हम जानते हैं कि अंग्रेजों की पूंजीवादी

व्यवस्था ने अपने कदम मजबूत करने के लिए अंग्रेजी भाषा का प्रयोग किया था। आज हमारे देश की पूंजीवादी व्यवस्था के कदम कौन-सी भाषा मजबूत करती है ? पूंजीपति हर चीज को मुनाफे की दृष्टि से देखता है। उस दृष्टि से उसके लिए आज भी अंग्रेजी ही फायदेमंद है।

भारत का पूंजीपति वर्ग देश में इन्कलाब नहीं चाहता, कोई बुनियादी तब्दीली नहीं चाहता। अंग्रेजों से विरसे में मिली हुई व्यवस्था को उसी प्रकार कायम रखने में उसका फायदा है। पर वह खुले आम अंग्रेजी को अंगीकार नहीं कर सकता। राष्ट्रीयता का कोई न कोई आडंबर खड़ा करना उसके लिए जरूरी है। इसीलिए वह संस्कृतनिष्ठ

नवंबर

हिंदी को राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार करने का ढोंग करता है। उसे पता है कि संस्कृत शब्दों के बोझ तले दबी नकली और बेजान भाषा अंग्रेजी के मुकाबले में खड़ी होने का सामर्थ्य अपने अंदर कभी भी पैदा नहीं कर सकेगी। आज के युग के वैज्ञानिक और तकनीकी शब्दों से रिक्त होने के कारण वह हमेशा कमजोर भाषा बनी रहेगी। और सबसे बढ़िया बात तो यह है कि जिस प्रकार अंग्रेजों के समय था, उसी प्रकार आज भी वह लड़ाई-झगड़े का कारण बनी रहेगी।

कोई भी देश तभी उन्नति कर सकता है, जब उसमें अपनी समस्याओं को अपने ढंग से हल करने की शक्ति आ जाये। पर मैं जिस ओर भी देखता हूं, मुझे लगता है कि हमारी हालत अभी भी उस पक्षी जैसी है, जो लंबी कैद के बाद पिंजरे में से आजाद तो हो गया, पर उस आजादी का फायदा उठाने और खुले आसमान में उड़ने से उसे अभी भी डर लग रहा है।

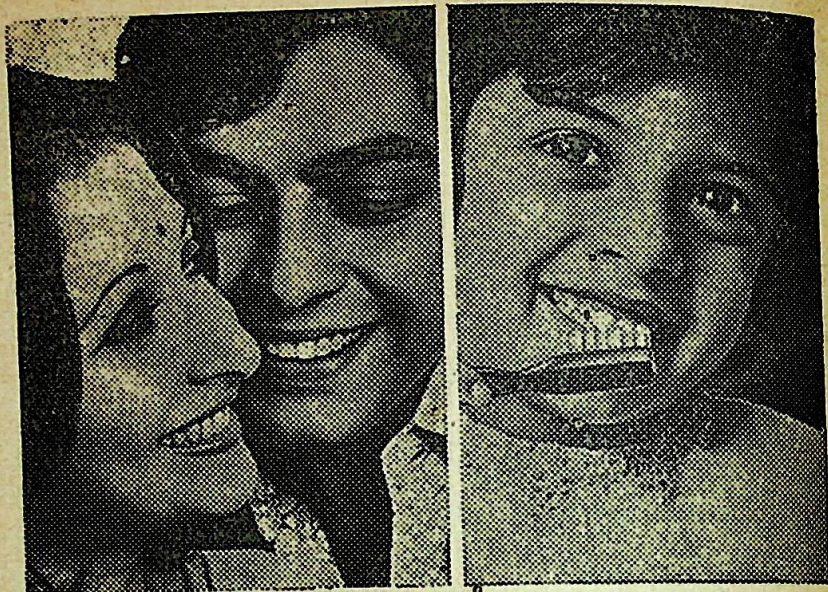
व्यक्तिगत जीवन में भी और सामाजिक जीवन में भी, हमारी हालत वाल्टर मिटी जैसी है। हर आदमी जीना चाहता है किसी और ढंग से, लेकिन जी रहा है किसी और ढंग से। वह कहना चाहता है कुछ, लेकिन कह रहा है कुछ और। जो हालत व्यक्ति की है, वही हमारे समाज की भी है, वही हमारी हुकूमत की भी है, और वही हमारी यूनिवर्सिटियों की भी है।

मैं समझता हूं कि हमारे देश में भी कई पुलिस-अफसर ऐसे होंगे, जो जनता के मन

में डर पैदा करने के बजाय उसकी सेवा और सहायता करना चाहते हैं। पर वे अंग्रेजी साम्राज्य से मिली हुई व्यवस्था का शिकार हैं। जब भी कोई व्यक्ति उनके दफ्तर में दाखिल होता है, वे मानो अपना फर्ज समझते हैं कि उसे ऐसे घूरकर देखें कि उसकी जान ही निकल जाये। यही हाल हमारे मंत्रियों का है। यही हाल चपरासियों का है।

पर अजीब बात तो यह है कि जो लोग हर समय मंत्रियों के रवैये के खिलाफ शिकायतें करते हैं, वही मंत्रियों को हार पहनाने के लिए सबसे आगे जाकर खड़े होते हैं। किसी भी सभा-सोसायटी का जलसा हो, वहां मंत्री जरूर आना चाहिये। मैं पचीस वर्षों से 'इप्टा' (इंडियन पीपल्स थियेटर एसोसियेशन) का मेम्बर हूं। यह संस्था आम जनता के लिए नाटक खेलने का दावा करती है। इसके नाटकों में सरकार और शासन-व्यवस्था की बड़ी आलोचना होती रही है। इसीलिए सी. आइ. डी. पुलिस इस पर खास नजर रखती है। पर मैंने देखा है कि इसी 'इप्टा' की कान्फरेंस के उद्घाटन के लिए मंत्रियों का आना जरूरी समझा जाता रहा है।

दूसरी ओर दूसरे विश्वयुद्ध के जमाने में मैंने चार साल इंग्लैंड में बिताये थे, जहां म. बी. बी. सी. का अनाउन्सर था। उन चार सालों के दौरान मैंने चर्चिल को एक बार भी नहीं देखा था। चर्चिल तो क्या मैंने इंग्लैंड के किसी मंत्री को भी नहीं देखा था।



कोलगेट डेंटल क्रीम से सांस की बदबू रोकिये... दंतक्षय का प्रतिकार कीजिये

हर भोजन के बाद अपने दांत कोलगेट से साफ कीजिये। यह ठीक उसी तरह दांतों की रक्षा करता है, जैसे दुनियाभर के दंत विशेषज्ञ कहते हैं।

दांतों में छिपे हुए अन्नकणों में कीटाणु बढ़ते हैं। इनसे सांस में बदबू पैदा होती है, और बाद में दांतों में सड़न।

इसीलिए, हमेशा भोजन के फौरन बाद कोलगेट डेंटल क्रीम से दांत साफ कीजिये। यह सांस को ताजा, दांतों को सफेद और दांतों की सड़न रोकने में असरदार साबित हो चुका है।

अधिक तरबूरीवाला सांस और अधिक सफेद दांतों के लिये दुनिया भर में फ़्यादा से फ़्यादा लोग दूसरे टूथपेस्टों के बजाय कोलगेट टूथपेस्ट ही खरीदते हैं।

देखिये, कोलगेट के भरोसेमंद फ़ॉर्मूले का काम:



दांतों में छिपे हुए अन्नकणों में सांस में बदबू और दांत में सड़न पैदा करने वाले कीटाणु बढ़ते हैं।



कोलगेट का अनोखा, असरदार क्षीय दांतों के कोने में छिपे हुए अन्नकणों को और कीटाणुओं को निकाल देता है।



नतीजा: आपके दांत आकर्षक सफेद, आपकी सांस तरबूरी और दंतक्षय की रोकथाम।



दांतों की पूरी सुरक्षा के लिए कोलगेट द्वायपेस्ट टूथपेस्ट। ये दांतों के पतले व गहवारी की रक्षा करते दांतों पर बनी परत को हटाते हैं। ८ विभिन्न किस्मों के परिवार में हर एक के लिए उपयुक्त।

**सिर्फ एक दांतोंका डॉक्टर ही
इससे बेहतर देखभाल कर सकता है।**

पता नहीं, वे कहां छिपे रहते थे। पर जब से हिंदुस्तान आजाद हुआ है, मैंने मंत्रियों के सिवा और कुछ देखा ही नहीं है।

महात्मा गांधी जब गोलमेज-कान्फरेंस के लिए इंग्लैंड गये थे, तो उन्होंने इंग्लैंड के सम्राट को संबोधित करके कहा था— 'हिंदुस्तान के चालीस करोड़ लोग ब्रिटिश सरकार की बंदूकों और मशीनगनों को उसी तरह देखते हैं, जिस तरह कि दीवाली के दिन उनके बच्चे पटाखों को देखते हैं।' यह दावा वे क्यों कर कर सके? इसलिए कि उन्होंने हिंदुस्तानियों के दिलों में से अंग्रेज शासकों का डर निकाल दिया था। आम लोग अंग्रेज शासकों को इज्जत की जगह नफरत से देखने और उनके साथ असहयोग करने लगे थे। यह साहस महात्मा गांधी ने निहत्थे हिंदुस्तानियों के दिलों में भर दिया था।

आज अगर हम सचमुच चाहते हैं कि हमारे देश में समाजवाद आये, तो जन-साधारण को पैसे और स्तब्ध के सहम से आजाद कराने की जरूरत है। पर इस समय असलियत क्या है? हर तरफ पैसे और स्तब्ध का बोलबाला है। समाज में इज्जत उसी की है, जिसके पास मोटर हैं, बंगले हैं, दौलत का दरिया बहता है। क्या कभी ऐसी हालत में भी समाजवाद आ सकता है? अगर जनता के विचार पुराने युग से जुड़े हुए हों, तो नया युग कैसे जन्म ले सकता है? अगर हम

देश में समाजवाद लाना चाहते हैं, तो पहले हमें ऐसा वातावरण पैदा करना चाहिये, जिसमें इज्जत पैसे वाले की नहीं, बल्कि गरीब की हो; सम्मान उसे मिले, जो अपने दो हाथों की मेहनत से देश के लिए अनाज पैदा करता है, मशीनें चलाता है। सम्मान गुणवानों का होना चाहिये—साहित्यकारों का, कलाकारों का, वैज्ञानिकों का। पर ऐसे व्यक्तियों को कहां इज्जत मिलती है?

आज फिर हमें किसी महात्मा गांधी की जरूरत है, जो हमें गुलाम कट्टे-कीमते छोड़कर आजाद कट्टे-कीमते अपनाने की प्रेरणा दे। अब यह जरूरत किसी नये अवतार का रास्ता देखने के बजाय उन रास्तों पर चलकर पूरी की जा सकती है, जो महात्मा गांधी ने बनाये थे। वे रास्ते कौन-से हैं? अपने आपको शासकों के साथ जोड़ने के बजाय आम जनता के साथ जोड़ना। जैसे कि मेरे पंजाब के गुरु अर्जुन देव ने कहा है :

जन की टहल सम्भावन जन रिउ
ऊठन बैठन जन के संग।
जन चर रज मुख माथे लागी
आसा पूरन अनंत तरंगा।

आप जवाहरलाल नेहरू यूनिवर्सिटी के ग्रेजुएट अपने अंदर ऐसा साहस पैदा कर सकेंगे और आजाद होकर सोच सकेंगे, जो मेरे जैसे लोग अपने जीवन में करने से असमर्थ रहे हैं—यही मेरी आकांक्षा है। भूल-चूक माफ।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय



महायोगी मिलरेप

एक आध्यात्मिक यात्रा-कथा.

॥ दूसरी किस्त ॥

तिब्बत में भगवान बुद्ध के अवतार के रूप में पूजित, महान सिद्ध, संत-कवि मिलरेप (१०५२-११३५ ई.) तिलोप, नारोप और मरूप की परंपरा में चौथे सिद्ध थे और अंतर्ज्योतिर्मय जीवन की योग-प्रक्रिया के तिब्बती आचार्य थे। भारत की श्रीचक्र-संवर (महासुखमंडल) की पद्धति को तिब्बती सिद्धों ने अपनी इस छह-सूत्री प्रक्रिया से प्रवर्तित किया था—१. अंतर्ज्योति-सिद्धांत, २. शरीर के मिथ्यात्व का आभास, ३. स्वप्नावस्था में आत्मचेतना, ४. विशुद्ध ज्योति का अनुभव, ५. अंतरिम अवस्था की धारणा, ६. चेतना का प्रत्यंतरण। तिब्बत की यह योग-पद्धति 'कुंडलिनी-योग' से भिन्न है। इसमें केवल ऊपरी चार चक्रों का निर्देश है तथा शक्ति की जगह प्रज्ञा और कुंडलिनी की जगह वज्र-योगिनी का वर्णन है।

मिलरेप की साधना में क्रियमाण कर्म का आत्यंतिक महत्त्व है। उसी से साधक के प्रारब्ध और संचित कर्म नष्ट होते हैं। इसमें भी पहले मणिपूर चक्र पर अधिकार होने से अन्य चक्रों का भेद होता है। इसमें समस्त शारीरिक तत्त्वों के उदात्तीकरण को ही लक्ष्य माना गया है। वैश्विक चेतना के उदय से 'अस्मि' और 'अस्ति' (आत्म और अनात्म) की सीमाएं टूटती हैं, तदनंतर हृदय में वज्रसत्त्व (जो कि अक्षोभ्य का क्रियापक्ष है) की अनुभूति वैयक्तिक और मानवीय स्तर पर होती है। तभी उस प्रज्ञा का आलोक फैलता है जिसमें समस्त वस्तुएं शून्य में आभासित होती हैं और समस्त सृष्टि का शून्यत्व आभासित होता है। यही है ससीम में असीम की उपलब्धि। इसी को वे अंतःप्रज्ञा भी मानते हैं। वज्र से तात्पर्य अपरिवर्त्य और नित्य से है। सारे ज्ञान जब उसी में समाहित हो जाते हैं, तब व्यक्ति-चेतना अनंत प्रेम, करुणा, परम औदार्य और सर्वभूत-हित से अनुप्राणित रहती है। इसीलिए महायोगी मिलरेप अपने शिष्यों को अंतिम उपदेश के रूप में कह गये—'जब तक पूर्णतया आत्मोपलब्धि न हो जाये, तब तक सर्वभूत-हित की साधना और उसके लिए आतुरता से बचो।'

मिलरेप ने अपनी जीवन-गाथा अपने पट्टशिष्य रे-चुंग को सुनायी थी, जिसे रे-चुंग ने तद्वत् लिपिबद्ध किया था। दिवंगत लामा काजी दव-संडुप ने उसका अंग्रेजी में अनुवाद किया था, जिसका सार-संक्षेप इन पृष्ठों में श्री पृथ्वीनाथ शास्त्री ने प्रस्तुत किया है।



एक दिन फिर अचानक वहां मेरी बहन हालत भिखमंगन जैसी थी। गांव में उसे पेट आ गयी। वह मेरे लिए एक प्याला कुछ लोगों के मुंह से एक गाना सुन पड़ा छंग और कुछ खाना जुटा लायी थी। उसकी था, जो मेरा बनाया हुआ था। उन्हीं से

उसे मेरे यहां होने का सुराग लगा था। उसकी लायी चीजें खाकर मुझे बहुत अच्छा लगा था और उस रात मेरी ध्याभ-धारणा भी और रातों की अपेक्षा अधिक अच्छी हुई। लेकिन दूसरे दिन सुबह से शाम तक मेरे पेट में बहुत दर्द हुआ। तरह-तरह के अच्छे-बुरे खयाल भी आते रहे। बहुत कोशिश करने पर भी ध्यान में जी नहीं लगा। पेट बहन को मैंने अपनी बनायी दो-एक गीतियां सुनाकर वापस कर दिया।

कुछ समय बाद एक दिन वह फिर आयी। इस बार उसके साथ जैसे भी थी। इस बार वे दोनों जौ का कुछ आटा, मांस, मक्खन और छंग लेकर आयी थीं। अब तक तो किसी तरह मेरे शरीर पर चिथड़े रहते थे। कुछ दिन मैंने वह बोरा भी अपने शरीर पर बांधा था, जिसमें चाची जौ का आटा छोड़ गयी थी। लेकिन इस बार मेरी देह बिलकुल नंगी थी और मैं पानी लेने को गुफा से बाहर निकला था। मेरी यह अवस्था देखकर वे बहुत लज्जित और दुःखी हुईं। दोनों ही रोने लगीं। वे इस बात के लिए मेरे बहुत पीछे पड़ीं कि मुझे लोगों से भिक्षा मांगकर अपना काम चलाना चाहिये। बोलीं—“हम दोनों भी थोड़ी-बहुत चीजें और कपड़े जुटा देंगी। तुम्हें इस तरह अमानवीय ढंग से ज़िदगी बरबाद नहीं करनी चाहिये।” मैंने कहा कि मुझे कुछ नहीं लेना—किसी से भी नहीं। न मैं भीख मांगने में अपना वक्त ही बरबाद करूंगा। क्योंकि पता नहीं, कब मौत आ जाये। उससे पहले ही मैं अपनी

नवनीत

साधना पूरी कर लूं, यही इच्छा है। मैंने उनसे स्पष्ट कह दिया—“तुम दोनों भी अब और कुछ देने की इच्छा से यहां न आना।” इस पर पेट बोली—“इससे भी बुरी और कौन-सी स्थिति तुम्हें संतोष देगी, मेरे भाई?” मैंने उसे समझाया कि ऐसे कई लोक हैं, जिनमें इससे भी घोर यंत्रणा मिलती है और लोग हैं कि दिन-रात वहीं पहुंचने का यत्न करते रहते हैं। वे अपने वर्तमान कर्मों की पापमयता पर ध्यान ही नहीं देते।

‘फिर अचानक मेरे कंठ से और एक गीत फूट पड़ा, जिसमें एकाकी, निस्संग, पूर्ण मुक्त अवस्था में रहने की अभिव्यक्ति थी।

पेट बोली—“भाई, तुम्हारी पिछली और अब की बातों और कार्यों में एक प्रकार की समरसता अवश्य है। किंतु मैं तुम्हें इस हालत में नहीं रहने दे सकती। मैं तुम्हारे लिए कुछ कपड़े आदि अवश्य जुटा लाऊंगी। उससे तुम्हारी ध्यान-साधना पर कुछ बुरा असर नहीं पड़ेगा।”

‘वे दोनों तो यह कहकर चली गयीं; लेकिन उनका लाया हुआ वह अच्छा खाना खाकर मुझे इस बार इतनी पीडा हुई कि मेरा ध्यान ही छूट गया! मैंने इसे घोर विपत्ति समझकर वह गुरु-प्रदत्त मुहरबंद पांडुलिपि खोली। उसमें लिखा था कि तुम्हें अब अच्छे खाने से परहेज नहीं करना है। अन्यथा तुम्हारा नाडीतंत्र और भी अधिक खराब हो जायेगा। उसमें मेरे लिए और भी कुछ आदेश थे, जिनके परि-

नवंबर

पालन से मेरे तन-मन ठीक हो सकते थे।

‘मैंने तुरंत उनका पालन किया। मुझे अनुभव हुआ कि मेरे नाडीचक्रों की गांठें खुल रही हैं। सुषुम्ना की जकड़ भी ढीली पड़ रही है। मेरे तन-मन में अभूतपूर्व शांति और आनंद भी संचारित होने लगे हैं। मेरा धर्मकाय सुसंघटित हो गया है। तब मुझे संसार और निर्वाण के अन्योन्याश्रित संबंध-स्रोत का भी स्पष्ट अनुभव हुआ। मंत्रयान के इस नये ज्ञान से मेरी समझ में आ गया कि पूर्ण ज्ञान के लिए शरीर की उपेक्षा नहीं करनी चाहिये। अच्छा खाना, कपड़ा उसमें बाधक नहीं होते। मैं यह भी समझ गया कि इन दिनों पेट और जैसे मेरी क्यों मदद कर रही हैं। उन दोनों के प्रति मुझे बड़ी कृतज्ञता का अनुभव हुआ। मेरे कंठ से फिर कई प्रार्थना-गीतियां फूट पड़ीं।

‘इसके बाद तो सिद्धियों का तांता लग गया। मैं अब कोई भी रूप धारण कर सकता था। हवा में उड़ सकता था। मैं रात को सपनों में सारे विश्व का परिभ्रमण करने लगा। मूलाधार चक्र से सहस्रार पद्म तक मेरी गति अबाध हो गयी। अपने जैसे सैकड़ों अन्य व्यक्तियों में मैं अपने को बांट सकता था। मैं अपने शरीर को प्रज्वलित अग्निपुंज या प्रशांत उदधि में परिणत कर सकता था। यद्यपि यह सब सपनों में ही होता था; किंतु मुझे इससे बहुत संतोष हुआ। क्योंकि बाद में ये सब बातें यथार्थ में भी होने लगीं।

‘ऐसे ही एक बार मैं एक गांव के ऊपर से उड़ता जा रहा था कि मुझे खेत में काम करते हुए दो बाप-बेटों का यह संवाद सुन पड़ा :

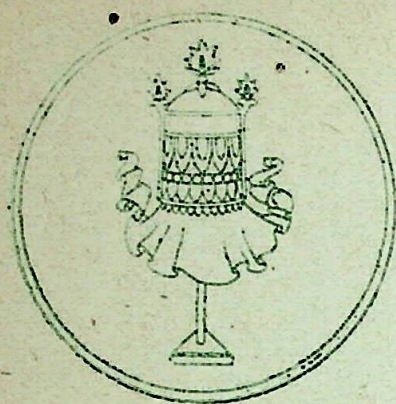
‘बाप—“देख, देख, इस उड़ते हुए खोटे बेमतलब के जादूगर की परछाईं न पड़े तेरे ऊपर !”

‘बेटा—“अगर कोई इस तरह उड़ सकता है तो वह खोटा और बेमतलब का व्यक्ति नहीं हो सकता।”

‘मुझे उसी क्षण खयाल आया कि अब मुझे प्राणिमात्र की सेवा में जुट जाना चाहिये। अन्यथा मेरी ये सारी सिद्धियां व्यर्थ हैं। किंतु तभी भीतर से यह भी सुनाई पड़ा—नहीं, मुझे तो अपना सारा जीवन साधना में ही बिताना है, ताकि दूसरे लोग भी मेरे दृष्टांत से लाभ उठायें। लेकिन अब मुझे यहां नहीं रहना चाहिये; क्योंकि जो लोग मेरे चमत्कार देख आंर सुन चुके हैं, वे भीड़ लगवा देंगे मेरी गुफा पर। इससे आध्यात्मिक कार्यों में बाधा पड़ेगी। मैं यतींद्र बन जाऊंगा जो अभी मेरा लक्ष्य नहीं है।

‘जब-तब लोगों के मुंह से अपनी निंदा-स्तुति या उनकी निर्देशात्मक बातें सुनकर मेरे कंठ से गीतियां निकल पड़ती थीं, जिन्हें मेरी भीठी आवाज में सुनकर लोगों की आंखें खुलती थीं, धर्म-भक्ति बढ़ती थी। मैं एक जगह कभी ठहरता न था, घूमता ही रहता था।

‘पित मुझे ढूंढती हुई फिर वहीं आ गयी,



धर्म-पताका

जहां उस दिन मैं ठहरा हुआ था। वह एक कंबल लायी और मेरे पीछे ही पड़ गयी कि इसे सीकर शरीर को ढंकने के लिए एक पोशाक बना लो। वह बार-बार यह भी कहती रही कि तुम दूसरे धनी महंत (मठाधीश) लामाओं की तरह क्यों नहीं रहते! नहीं तो क्या तुम सचमुच अयोग्य और आलसी हो और सर्वस्व-त्यागी होने का ढोंग ही करते हो? कम से कम अपनी गंगी देह को तो ढंक लो, जिससे मुझे या अन्य स्त्रियों को नंगछद्ग देखकर लज्जित न होना पड़े।

‘मैंने उसे समझाया कि मेरे शरीर में लज्जित होने लायक कुछ भी नहीं है। जैसा यह शरीर जनमा था, वैसा ही है। स्त्रियों को अपने स्तन ढंकने की जरूरत पड़ती है, क्योंकि जन्म के समय वे उनके शरीर में विकसित नहीं होते, बाद में बहुत-बहुत देह ढंग से वे निकल पड़ते हैं। ... और लज्जा

नवनीत

के वारे में अचानक एक गीतिका मेरे मुंह से प्रस्फुटित हुई, जिसका भाव था :

‘असल में लज्जास्पद हैं हमारी अज्ञान-पूर्ण प्रथाएं। मानव के व्यक्तित्व के तीन पहलू हैं—काय, मन और वाक्। इन्हें यदि कोई सहज भावसे ही व्यक्त करे, तो इसमें शरम की कोई बात नहीं। मानव स्त्री या पुरुष होकर ही जनमते हैं। यह भी सब जानते हैं कि उनके सारे अंग-प्रत्यंग एक-से नहीं होते। इसमें छिपाने की क्या बात है! असली लज्जा की बात तो संपत्ति से जन्म लेती है। वह धनिकों की गोद में ही बड़ी होती है। लोभी, हिंसक, हानिकर विचार, अविश्वास, खोटे कर्म, शैतानी षड्यंत्र, चोरियां और डाके, मित्रों को छलना, विश्वासघात—ये सब ही वस्तुतः लज्जास्पद हैं, मानव का तन नहीं। हमारे कुछ काम और तरीके ही लज्जास्पद होते हैं, देह के अवयव नहीं। जिन लोगों ने अध्यात्म का पथ चुन लिया है, जो ध्यानमग्न रहकर ही जीवन बिता रहे हैं, उनके लिए लाज-शरम की रूढिबद्ध दृष्टि कोई महत्त्व नहीं रखती। इसलिए पेट बहन, सहर्ज होओ, सहजता से जीने दो। अपनी और मेरी परेशानियां न बढ़ाओ।’

मिलरेप ने उसे अपने साथ आध्यात्मिक जीवन-यात्रार्थ कैलास पर्वत चलने को भी आमंत्रित किया। किंतु वह राजी नहीं हुई। केवल तब तक ठहरने को राजी हुई, जब तक उसकी लायी खाद्य वस्तुएं समाप्त न हों।

इसी बीच एक दिन मिलरेप की चाची

११६

नवंबर

भी एक याक पर बहुत-सा सामान लादकर आ पहुँची। उसके पति और भाई मर चुके थे। वह अपने पापों का प्रायश्चित्त करने की भावना से मिलरेप और पेत के पास क्षमा मांगने आयी थी। मिलरेप ने उसकी वस्तुएं लेने से इन्कार कर दिया और उसे एक गीतिका गाकर उसके सारे छोटे कृत्यों का एहसास करा दिया। अंत में वह बहुत रोयी और बोली कि यदि तुमने मुझे क्षमा नहीं किया, तो मैं अभी इसी क्षण जाकर आत्म-हत्या कर लूंगी। वहन के बहुत मना करने पर भी मिलरेप ने अपने को क्षमाशील यति मानते हुए चाची को क्षमा कर दिया और वह सद्धर्म के पथ पर आ गयी।

एक बार शिव-वौद-रेप नामक गुरुभाई ने मिलरेप से पूछा—‘संसार से मुक्ति पाने के लिए हम क्या करें?’

मिलरेप ने तब उसे यह कर्म-सिद्धांत समझाया :

‘संसार के सारे लक्ष्य और पदार्थ एक-दूसरे के विरोधी हैं। जैसे आराम-कष्ट, अमीरी-गरीबी, यश-अपयश, परिचय-अपरिचय आदि।

‘शून्य से ही कर्म के वे नियम निकले हैं। शून्य को समझना और उसमें विश्वास करना बहुत कठिन होता है; इसी से लोग कर्म के नियम और सिद्धांत से भी वंचित रह जाते हैं। शून्य की उपलब्धि होते ही कर्म-अकर्म, विकर्म-कुकर्म, सुकर्म-अपकर्म के सारे रहस्य खुल जाते हैं। विवेक बलवान बन जाता है। तब पुण्य के प्रति प्रयत्न और

पाप से विरति स्वतः होने लगती है। इसी लिए संयम और ध्यान, एकांत में गुप्त और रहस्यमय तथ्यों का चिंतन आवश्यक है। तब शून्य का भेद खुलता है। मंत्रयान से हमें इसमें बहुत मदद मिलती है।

‘संसार की स्थितियों का सम्यक् विवेचन करो। संत-महात्माओं की जीवनियों का अध्ययन करो। मृत्यु की अवश्यंभाविता और मृत्युक्षण की अनिश्चितता पर सोचो। एकांत में ध्यान धारणा करो। भक्तिपूर्वक गुरुवचनों का पालन करो। तब समझोगे कि कर्म का यथार्थ रहस्य क्या है।’

संत मिलरेप के प्रथम शिष्य अमानव कोटि के थे। ये सब उन्हें तंग करने ही आये थे। वाद में उनके कुछ मानव-शिष्य बने। फिर कैलास पर्वत पर रहने वाली देवी तेन-मस (चिरजीवन) उनकी शिष्या हुई।

नेपाल के योल्मो-कंग्र में उनकी एक कुटिया थी। किंतु उनकी मुख्य निवास-स्थली लप्जी-चूबर में एक गुफा ही थी। और भी बहुत-से एकांत स्थलों में उन्होंने ध्यान किया था। उनके नाम से बीस दुर्ग भी विख्यात हैं। अंत में तो उनमें ध्यान, ध्येय और ध्याता ऐसे एकाकार हो गये थे कि फिर किसी प्रक्रिया या प्रज्ञा की आवश्यकता ही नहीं रह गयी थी। अब जहां भी वे जाते, वहां उनकी शिष्य-मंडली भी साथ जाती।

कैलास पर्वत पर मिलरेप ने गणपति को भी सद्धर्म की शिक्षा दी थी। वे पत्वर पर्वत पर लिख नाम की कंदरा में रहे थे, जहां

उन्होंने एक चुड़ैल की मुक्ति करायी थी। वे जहां भी गये, वहां की बहुत-सी गाथाएं उनके जीवन से जुड़ गयीं। ऐसा समझा जाता है कि वे कई शताब्दियों तक जीवित थे और आज भी वे मानवता की रक्षा के लिए सप्तर्षियों की तरह अमर हैं। मैत्री और कृष्णा उनके व्यक्तित्व में ऐसी घुल-मिल गयी थीं कि अपने-पराये के भेद से वे एकदम मुक्त हो चुके थे। अधिकार और प्रतिष्ठा के बल पर किसी का शासन करने की प्रवृत्ति उनमें कभी भी नहीं देखने में आयी। 'कर्णतंत्र' में निष्णात होने से उन्हें कभी भी शास्त्रों और ग्रंथों की आवश्यकता नहीं हुई। त्रिकाय (धर्मकाय, संभोगकाय और निर्माणकाय में) प्रतिष्ठित होकर उन्हें आशा-निराशा के अनुभव से बचने का गुर ज्ञात हो गया था। मृत्युभय ने उन्हें कभी पीड़ित नहीं किया।

अपनी अनुभूतियों के विवेचन में वे इतने प्रवीण थे कि लोगों की राय का उनके लिए कोई महत्त्व न था। हर अनुभूति को वे अपनी आध्यात्मिक साधना का अंग बनाते हुए सिद्धांतों और मतों के तार्किक पचड़े में कभी नहीं पड़े। निर्वाण ने उन्हें इस या उस लक्ष्य के पीछे नहीं दौड़ने दिया। धर्मकार्य में सदास्थित मिलरेप को प्रथा और रूढ़ियों को मानने-पालने की भी कोई जरूरत नहीं हुई, कभी कृत्रिम उपायों से काम नहीं लेना पड़ा। उनके तन-मन इतने विनयी हो गये थे कि गर्व और उद्धत बरताव क्या होता है, यह वे एकदम भूल गये थे। शरीर को ही

एक प्रकार का 'आश्रम' बना लेने पर उन्हें मठ-स्थापना की कोई आवश्यकता ही नहीं रही। अशब्द (अवाङ्मनसगोचर) की उपलब्धि होने के कारण शब्दों के धातु और अर्थ जानने के लिए वे क्यों परिश्रम करते! इसकी यदि किसी को चाह है तो वह सद्-ग्रंथों का अध्ययन करे—वे यहीं कहते थे।

उनकी सहज-सुबोध गीतियों के प्रभाव से बहुत-से पंडितों और मठाधीश लामाओं को ईर्ष्या-द्वेष ने पीड़ित किया। परंतु वे मिलरेप का कुछ भी नहीं बिगाड़ पाये। हां, सब जानते-बूझते हुए मिलरेप ने एक गेशे (पंडित) की रखैल के हाथों से दही में जहर खाया था, सो भी यह कहकर कि मेरी दूसरे लोक को जाने का समय आ गया है। देह छोड़ने से पहले उन्होंने अपने बहुत सारे शिष्य-शिष्याओं को बुलवा भेजा। और उन सबको भी आमंत्रित किया, जो उनसे मिलना चाहते थे, किंतु अभी तक ऐसा नहीं कर पाये थे। लप्ची-चूबर में यह अंतिम सभा जुटी। काफी दिनों तक वे उसे कर्म और धर्मकाय के सिद्धांत और भी स्पष्ट-तया समझाते रहे थे। उनकी एक प्रसिद्ध गीतिका है इस-पर, जिसका भाव यह है:

'पिछले कर्मों के फलस्वरूप प्राणी जन-मते ही पाप करने में मजा लेने लगता है; उसे पुण्यकार्य करने में उतना आनंद नहीं आता, जितना कि आना चाहिये। यह प्रवृत्ति बुढ़ापे तक पीछा नहीं छोड़ती। स्वभाव विकृत बना रहता है। इसलिए पापों के फल ही पल्ले पड़ते हैं।

‘कुर्म नष्ट तो नहीं होते, किंतु सदिच्छा से क्षीण अवश्य किये जा सकते हैं। जो जान-बूझकर कुर्म करते हैं, वे जी भरकर अपयश बटोरते हैं।

‘जो इतना भी नहीं जानते कि वे स्वयं कहां जा रहे हैं, यदि वे दूसरों को राह दिखाने लगते हैं, तो वे अपनी हानि तो करते ही हैं, दूसरों को भी ले डूबते हैं।

‘यदि किसी को दुख-दर्द नहीं चाहिये, तो दूसरों को हानि पहुंचाना बंद कर दे।

‘पिछले सारे पापों को स्वीकारना और उनके लिए पश्चात्ताप और प्रायश्चित्त करना, सद्गुरु और आराध्य के चरणों में बैठकर यह प्रतिज्ञा करना कि भविष्य में हम कभी कोई दुष्कर्म नहीं करेंगे—पापों के फल-भोग से बचने के श्रेष्ठ सत्पथ हैं।

‘अधिकांश पापियों की बुद्धि तीव्र होती है, किंतु मन चंचल होने से कभी समाहित नहीं होता उनका चित्त; वे संसार-चक्र में निरुद्देश्य घूमते रहते हैं। उन्हें बार-बार अनुताप और प्रायश्चित्त करने की आवश्यकता है। पाप की प्रवृत्ति पुण्यों से प्रेम के द्वारा ही नष्ट होली है।

‘अवश्य ही तुम उत्साहपूर्वक पापों को क्षीण और पुण्यों को पुष्ट बनाओगे। तभी तुम्हें दिव्यातिदिव्य आत्माओं के दर्शन होंगे। तभी तुम अपने मन का धर्मकाय देखोगे। और उसके साथ ही तुम देखने योग्य सब-कुछ देख लोगे—अनंत अप्रमेय की उपलब्धि संसार और निर्वाण (जन्म-मृत्यु-चक्र और मुक्ति)। तभी तुम्हारी कर्म-प्रक्रिया

भी समाप्त होगी।’

इस गीतिका के साथ तादात्म्य होते ही बहुत-से उपस्थित शिष्य समाधिस्थ हो गये। उन्हें यह मालूम हो गया कि निर्वाण क्या होता है। किंतु ऐसा उन्हीं को हुआ, जो सचमुच मुमुक्षु थे। फिर मिलरेप (जेत्सुन) सारी सभा से बोले :

‘मैं अब न्यानम् और टिंगरी तो नहीं जा सकता, जैसा कि मेरे कुछ प्रिय शिष्य आग्रह कर रहे हैं; क्योंकि यह शरीर बहुत बड़ा हो चुका है। मृत्यु की प्रतीक्षा अब मैं त्रिन् और चूवर में करूंगा। बस, अब हमारी यही अंतिम भेंट है। इसके बाद मैं तुम सबसे पावन स्वर्लोक में ही मिलूंगा। मैं तुम सबके वर्तमान और अनंत भविष्य के लिए सुख-शांति की, परमानंद-प्राप्ति की कामना करता हूं।’

इसके बाद फिर उनके कंठ से एक गीतिका और निःसृत हुई, जिसका सारांश यह है :

‘हम सब एक-दूसरे के प्रति कृपालु और करुणाद्रि रहे हैं। अब हम लोग अमरावती में फिर मिलेंगे।

‘तुम सब चिरायु रहो। शांति, सुख, समृद्धि पाओ। तुम्हारे मन कुविचारों से मुक्त रहें, धर्म में निष्ठा रखो, पुण्य-कर्म करने में सफल बनो।

‘यह देश सामरस्यपूर्ण शांति के कारण युद्धों और कष्टों से मुक्त रहे, फसलें फूलें-फलें, लोग सत्कर्म में प्रवृत्त हों; वे ध्यान का महत्त्व समझें, उनकी साधना में अंतराय न आयें, वे गलतियां न करें; पुण्य, प्रसाद और

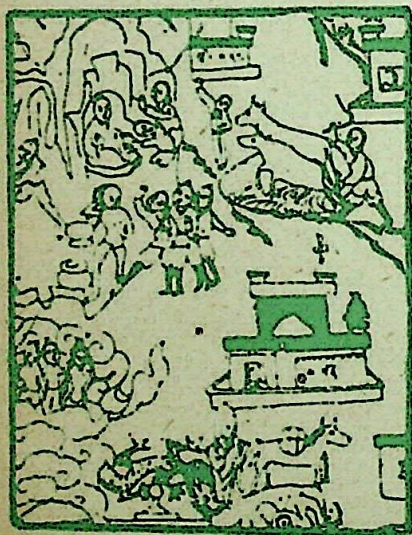
प्रभूत कृपा से उनका पथ मंगलमय हो ।'

त्रिन पहुँचकर मिलरेप ने 'छूने में भी जहरीली' चट्टान पर कुटिया में निर्वास किया और बहुत-से भक्तों की कितनी ही शंकाओं का समाधान किया । उन्होंने मृत्यु को जन्म का फल बताया और यह भी कहा कि योगी के लिए यह ठीक नहीं कि कोई दूसरा भी उसके हमेशा बने रहने की कामना करे । काल का ग्रास होने से कोई कभी बचा नहीं । इसीलिए दूसरों की सेवा करने के लिए भी किसी को तांत्रिक एवं यौगिक प्रक्रियाओं से अपना जीवन बढ़ाना नहीं चाहिये । सांसारिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए जो तांत्रिक प्रक्रिया करते हैं, वे अंत में दुःख ही पाते हैं । अहंमन्यता, वासना,

घृणा, ईर्ष्या और मूर्खता कभी उनका पीछा नहीं छोड़तीं । केवल संयोग-वश हुए रोग की निवृत्ति के लिए बुद्ध ने अपनी नाडी दिखाने के लिए जीवक कुमार की ओर हाथ बढ़ा दिया था । मृत्यु से निवृत्ति की तो उन्होंने भी कभी कोशिश नहीं की । अपना वक्त आने पर उन्होंने उसका सहर्ष वरण ही किया था । मिलरेप ने भी अपने लिए किसी को कुछ भी न करने दिया । औषध तक नहीं ली ।

उन्होंने यहाँ भी बताया कि संभव है, मृत्यु के बाद उनका शव स्तूप आदि बनाने के लिए उपलब्ध न भी हो । अतः उसकी कोई तैयारी न की जाये । 'न मेरा कोई मठ है, न मंदिर । इसलिए मैं किसी को उत्तराधिकारी नहीं बनाऊंगा । जहाँ जिसका जी चाहे, एकांत में साधना करे । जीवन छोटा है, मृत्यु का क्षण अनिश्चित है, अतः बस अभी से ध्यान में लग जाओ । पाप से बचो, सामर्थ्य-भर पुण्यार्जन करो, चाहे उसके लिए जीवन भी देना पड़े । ऐसा कोई काम न करो, जिसके लिए तुम्हें लज्जित होना पड़े । इस नियम को कभी न भूलो । दूसरों की प्रेमपूर्वक सेवा करो ।

मरने से पहले मिलरेप का शारीरिक क्लेश देखने के लिए वह गेशे (पंडित) भी पूजा करने के वहाने आया, जिसने अपनी रखैल के हाथों उन्हें जहर दिलवाया था । मिलरेप ने उसे योग की महामुद्रा दिखाकर एक गीति सुनायी और उसे क्षमा कर दिया । उसकी सारी संपत्ति की भेंट उन्होंने तो नहीं

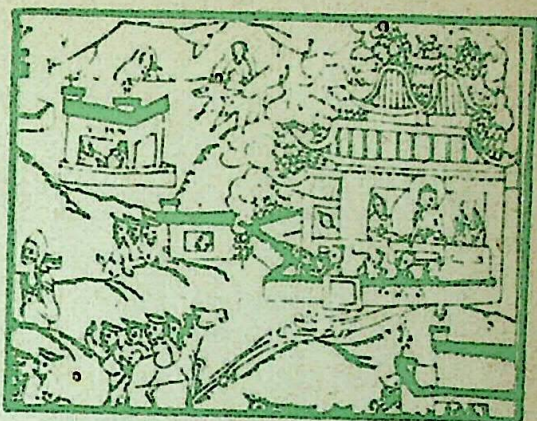


नरक-एक प्राचीन तिब्बती चित्र

स्वीकारी; किंतु शिष्यों ने उसे लेकर बाद में उसी से मिलरेप के अंतिम संस्कार का व्यय उठाया और प्रतिवर्ष उनकी पुण्यतिथि के अयोजन का काम उसी को सौंपा।

मिलरेप ने अपने प्राण चूवर जाकर त्यागे। रास्ते-भर वे एक खेल करते रहे थे। उन्होंने अपने कितने ही शरीर बना लिये और वे एक साथ सर्वत्र विद्यमान प्रतीत हुए। जो लोग प्रबंध आदि के लिए पहले चूवर पहुंचे थे, उन्हें वे वहां बैठे मिले। वे अपने साथियों के भी साथ रहे और उन्हीं दिनों में अन्य अनेक स्थलों पर भी पूजा स्वीकारते हुए पाये गये।

त्रिंशे की गुफा में वे कुछ दिन दृग्गन्धा-वस्था में पड़े रहे थे। उन्होंने आज्ञा दी कि रे-चुंग के सिवा पट्टशिष्यों में से और कोई भी उनका शव न छूए। उन्होंने सबसे यह भी कह दिया था—'इसी गुफा में जीवन-भर जो सोना और लिखित उपदेश मैंने एकत्र किये हैं, वे गड़े हैं। उनका ठीक इस्तेमाल करना। पाखंड से हमेशा बचना। नाम और नामा कमाने के लिए कभी कुछ न करना। निष्ठापूर्वक, भक्ति से, साधना ही तुम्हारा लक्ष्य होना चाहिये।' उन्होंने यह भी बहुत जोर देकर कहा—'अगर थोड़ा भी स्वार्थ संलग्न रहा, तो तुम कभी भी सफल रूप में परोपकार भी नहीं कर



स्वर्ग—एक प्राचीन तिब्बती चित्र

पाओगे; दूसरों के हित-साधन में तब कुछ न कुछ कमी रहेगी ही। स्वयं ही डूब रहा आदमी दूसरों को क्या बचायेगा !'

८४ साल की उम्र में उन्होंने महासमाधि में प्राण छोड़े—फाल्गुन की चतुर्दशी के दिन, उषःकाल में। तब सारा आकाश अनेक प्रकार के दृश्यों से उद्भासित हो उठा था। सारे वातावरण में एक दिव्य सुगंध छा गयी थी। आकाश से पुष्पवर्षा हुई। दिव्यगान सुनाई पड़े। देवता-गण, डाकिनियां आदि अपने नग्न शरीर से आकर सबके साथ सहज भाव से मिल रहे थे, बातें कर रहे थे। सारे प्रदेशों में शिष्य एकत्र होने लगे थे।

किंतु आदमी तो आदमी है। शव की अंतिम क्रिया के लिए वे आपस में झगड़ने लगे। अंततः मिलरेप ने अपना शव भी बहुगुणित कर दिया था। ब्रिन वाले एक शव ले गये; न्यानम् वाले दूसरा। किंतु चूवर में, जहां उनकी मृत्यु हुई थी, छह

दिन तक उनकी मुख्य शव एक अजीब-सी प्रभा से आलोकित रहा और छठे दिन वह आठ वर्ष के बच्चे का जैसा हो गया। रे-चुंग तब तक वहां पहुंच नहीं पाया था। केवल उसी को शव छूने की अनुमति थी।

सातवें दिन सब शिष्यों ने हठपूर्वक शव को चिता पर रख दिया और विधिपूर्वक उसे जलाने की चेष्टा की। किंतु चिता ने आग पकड़ी ही नहीं। अंत में एक डाकिनी ने उन्हें एक गीतिका सुनायी, तब उनका अज्ञान हटा और वे फिर रे-चुंग की प्रतीक्षा करने लगे।

रे-चुंग उस वक्त लोहो-दौल मठ में था। उसे स्वप्न में ही दिखाई पड़ा था कि चूबर में एक स्फटिक का चैत्य जगमगा रहा है। उसके चारों ओर देवी, देवता, डाकिनी आदि खड़े हैं। सभी गा रहे हैं, भेंट-पूजा चढ़ा रहे हैं। रे-चुंग को मिलरेप की आवाज भी सुनाई पड़ी और उनका हाथ अपने सिर पर महसूस हुआ। जागने पर वह समझ गया कि गुरु मिलरेप ने महा-समाधि ले ली है। वह तुरंत चल पड़ा वहां से; और किसी तरह महीनों की यात्रा कुछ ही दिनों में पूरी करके चूबर आ गया। उसने आते ही एक प्रार्थना-गीति पढ़ी और शव पुनः ज्योतिर्मय हो उठा, चिता की आग स्वतः जल उठी।

मिलरेप भी तब तक वज्रकाय में आ गये थे। सो चिता की अग्नि अष्टदल कमल के आकार में परिणत हो गयी। मिलरेप उस पर एक घुटना उठाये बैठे दीख पड़े।

नवनीत

उन्होंने अपना दायां हाथ आगे बढ़ाया, जिससे चिता की लौ दब गयी। वे बोले— 'सुनो सब इस वृद्ध पुरुष का अंतिम उपदेश, फिर अपना बायां हाथ गाल पर रखकर उन्होंने छह उपदेशों की एक गीतिका चिता की अग्नि में से ही सुनायी। उसका भाव यह था :

'सांसारिक वस्तुओं का त्याग करो। मन की यथार्थ प्रकृति जानो, उसका स्वभाव पहचानो। सहज ज्ञान में रमो, सदा रहो। शाश्वत सत्य को पहचानो, सर्वत्र पाओ। पसंद-नापसंद, रुचि-अरुचि से बचो। सूक्ष्म तर्कों में न पड़ो। ध्याता, ध्यान, ध्येय की एकता जानकर अपने अनुभवों के आधार पर ही आगे बढ़ो।'

अंत में चिता की अग्नि ने एक विहार की शकल धारण कर ली। आग की चटखती आवाज संगीत-सी लगी, धुआं सुगंधमय। आकाश से चिता पर अमृत-वर्षा होने लगी। डाकिनियों की गीतिकाएं सुनाई पड़ीं। चिता जलने के बाद सबको वहां पृथक्-पृथक् वस्तुएं दीख पड़ीं। कुछ को सिर्फ बीजमंत्र ही मिले। किसी को कुछ भी नहीं मिला।

कुछ लोगों को तो चिता जलने से पहले भी मिलरेप के शव में हेवज, शेवर (या सेवर), गुह्यकाल और वज्रवाराही दीख पड़े थे। फिर रे-चुंग को पांच डाकिनियां एक ज्योतिर्मय पिंड चितागृह से बाहर ले जाती दिखीं। उसने दूसरे सबको बुलाकर अंदर जाकर देखा, तो वहां कुछ भी शेष

नवंबर

नहीं रहा था—राख का एक भी कण नहीं। रे-चुंग ने जब डाकिनियों से कुछ अवशेष देने के लिए कहा तो सुनाई पड़ा :

‘उसके लिए तुम मिलरेप से प्रार्थना करो। वे धर्मकाय के रूप में तो तुम सबके मन में बचे ही हैं। उनके लिए कोई चिह्न या अवशेष बेकार है।’

बहुत प्रार्थना करने पर शिष्यों को और भी तरह-तरह के दृश्य दिखाई पड़े और अंत में मिलरेप की आवाज में यह सुनाई पड़ा :

‘दुःखी न होओ। अमोलिक चट्टान पर तुम चार अक्षर खुदे देखोगे। उन्हें श्रद्धा-भक्तिपूर्वक देखो।’

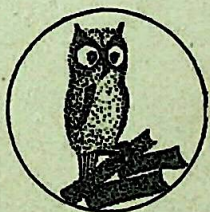
इसी तरह लपजी-चूवर मठ में मिलरेप का अवशिष्ट चिह्न बना लिया गया। चट्टान उठाकर खोदने पर भी उन्हें सोना तो नहीं मिला, सूती कपड़े का एक चौकोर टुकड़ा और उल्लू के आकार की मूठ वाला

एक चाकू अवश्य मिला। वहीं लाल मिस्त्री का एक टुकड़ा भी रखा था, एक छोटी-सी पांडुलिपि थी, उसमें एक गीतिका लिखी थी, जिसका भावार्थ है :

‘इस कपड़े और मिस्त्री को यदि इस चाकू से काटो और जितने टुकड़े हो सकें करो, फिर उन्हें भक्तों को बांट दो तो जो इस मिस्त्री को चर्खेंगे और कपड़े को छुएंगे वे अपने अस्तित्व की निम्नताओं से बचे रहेंगे। समाधि के समय यही दोनों वस्तुएं मिलरेप का खाद्य और आच्छादन थीं। उसके पास कभी कुछ भी सोना नहीं था। सारी सृष्टि ही उसके लिए स्वर्ण हो चुकी थी।’

बहुत-से टुकड़े किये जाने पर भी मूल मिस्त्री और कपड़ा चुके नहीं। हर एक टुकड़ा उतना ही बड़ा हो गया, जितने कि मूल टुकड़े थे। हर एक पाने वाले के पास वे ज्यों के त्यों रहे और बहुत-से चमत्कार दिखाते रहे।

[समाप्त]



एक विज्ञ बूढ़ा उल्लूक बैठा बलूत के तरवर पर,
जितना निरखा करता उतना ही बोला करता था कम।
जितना कम बोला करता था, सुनता उतना ही ज्यादा,
फिर क्यों इस बूढ़े पक्षी के सदृश नहीं हो सकते हम !

[अंग्रेजी से अनुवाद : किशोरी रमण टंडन]



एक पत्र-अंश

लक्ष्मीकांत सरस

मुझे पता है तुम आये थे

कब आये थे और क्यों ?

मैं जानता हूँ

क्योंकि मैं तुम्हारे साथ-साथ था ।

आदमी का संवेदनशील होना बुरी बात नहीं

ओढ़ा जाना बुरी बात है

चलो, मान लिया मेरी राहों में

कई मोड़ हैं

मैं कोई सीधा रास्ता बनाना भी नहीं चाहता

मुझे पता है, यह तुम्हें पसंद नहीं

क्यों और क्यों नहीं ?

का उत्तर भी मैं जानता हूँ ।

यह जो सूरज है न

मुझे बहुत अच्छा लगता है

तुम्हारी पसंद विपरीत है

फिर भी हमारी छोटी-सी दुनिया

दिन और रात के घेरे में आबाद रही है ।

कल की बात मैं नहीं करता

तुम्हीं करो, मैं सुनता रहूँगा ।

सुनो !

मैं तुम्हें अपने दहकते हुए मांसपिंड में मिला तो संकता हूँ

लेकिन, मुझे पता है

तुम बारिश में भीगी हुई रोशनी बनना चाहते हो,

बनो,

मुझे तो दहकते हुए सूरज की रोशनी पसंद है ।

-१७, अण्णा पिल्ले स्ट्रीट, थर्ड फ्लोर, मद्रास-६०० ००१

शास्त्रीय संगीत' कितना शास्त्रीय ?

प्यारेलाल श्रीमाल

संगीत को आजकल मुख्यतः तीन श्रेणियों में विभाजित किया जाता है—शास्त्रीय, सुगम तथा लोक-संगीत । हमारे पुराने शास्त्रकारों ने संगीत के तीन अंग माने हैं—गायन, वादन तथा नृत्य । परंतु प्रस्तुत चर्चा को हम गायन और वादन तक सीमित रखेंगे । हिंदुस्तानी संगीत-पद्धति में ध्रुपद, धमार तथा खयाल को, वादन में मसीत-खानी-रजाखानी गतों को, अवनद्ध वाद्य-वादन में दिल्ली-पूरव आदि बाज को 'शास्त्रीय' की संज्ञा दी जाती है । किंतु आजकल व्यवहार में 'शास्त्रीय संगीत' केवल खयाल गायन का ही पर्यायवाची बनता जा रहा है । ठुमरी को उपेशास्त्रीय कहा जाता है । भजन, गीत, गजल आदि विधाएं सुगम संगीत की श्रेणी में आती हैं । शहरों तथा गांवों में गाये जाने वाले पारंपरिक गीतों को लोक-संगीत के नाम से जाना जाता है ।

जीवन के विविध प्रसंगों पर विविध भावों की अभिव्यक्ति के लिए समाज द्वारा सहज ही गाये जाने वाले पारंपरिक गीतों

को लोक-संगीत नाम देना तो उचित लगता है, किंतु 'सुगम संगीत' एवं 'शास्त्रीय संगीत' नाम बहुत तर्क-संगत नहीं लगते । व्यवहार में आते-आते ये नाम आज रूढ़ बन गये हैं । फिर भी इन शब्दों की मर्यादाओं को समझने के लिए कुछ चर्चा करना असमीचीन न होगा ।

'सुगम संगीत' से तात्पर्य यदि सरलता-पूर्वक गाये जाने वाले संगीत से है, तो क्या लोक-संगीत सुगम नहीं है ? भजन, गीत और गजल की अपेक्षा बना-बनी, सोहर, गंगापूजन, मातापूजन आदि लोकगीत कहीं अधिक सुगम है । यदि ध्रुपद और खयाल की अपेक्षा से भजन-गीत-गजल को सुगम संगीत नाम दिया गया है, तो फिर ध्रुपद और खयाल को भी भजन-गीत-गजल के अपेक्षाभाव से 'दुर्गम संगीत' अथवा 'क्लिष्ट संगीत' नाम दिया जा सकता है ।

यदि यह कहा जाये कि शास्त्र भी सुगम नहीं होता, अतः ध्रुपद-धम्मर-खयाल आदि शास्त्रबद्ध गानों को, जो सर्वसामान्य की

किफायत की किफायत
और इमल्शन पेण्ट का ठाठ



asian
paints

SUPER

DECORPLAST

घर की
भीतरी और
बाहरी शोभा
बढ़ाने वाला

एशियन पेण्ट्स

सुपर

डैकोप्लास्ट

Adroit - 1718 HIR

गायन-क्षमता से परे हैं, 'शास्त्रीय संगीत' नाम दिया गया तो बात कुछ समझ में आती है। फिर भी तर्क की दृष्टि से यह बात सिद्ध नहीं है। कई भजन, गीत और गजल की बंदिशें इतनी कठिन हैं कि उन्हें सामान्यजन नहीं गा सकते। रागों पर आधारित अनेक भजन जो तानालाप के साथ गाये जाते हैं, क्यों न उन्हें शास्त्रीय संगीत कहा जाये ?

शास्त्र पर आधारित संगीत को 'शास्त्रीय संगीत' कहते हैं—ऐसी परिभाषा करते हमने संगीतशास्त्रियों को प्रायः सुना है। यह परिभाषा भी विचारणीय है। 'शास्त्र' किसे कहा जाये और कौन-से 'शास्त्र' पर आधारित संगीत को 'शास्त्रीय संगीत' कहा जाये—यह हमें देखना है।

भरत के 'नाट्यशास्त्र' को लें तो उसमें राग नदारद है और शाङ्गधर के 'संगीत-रत्नाकर' को लें तो उसमें खयाल का कहीं उल्लेख नहीं। मतंग का 'बृहद्देशी' (ई. ४००) प्रथम ग्रंथ है, जिसमें राग की चर्चा मिलती है। कई रागों का तो बहुत बाद में निर्माण हुआ है। श्रीराग को आज पूर्वी थाट-जनित्र राग माना जाता है; किंतु तेरहवीं शताब्दी से पूर्व रचे गये संगीत-ग्रंथों में पूर्वी का कहीं उल्लेख नहीं है। मियां की मल्हार, बिलासखानी तोड़ी आदि राग मुगल-काल में निर्मित हुए, यह प्रायः सभी जानते हैं। खयाल शैली को विशेष रूप से प्रचार में लाने का श्रेय मोहम्मदशाह रंगीले के आश्रित सदारंग-अदारंग को दिया जाता है। स्वर-स्थापना, थाट-पद्धति तथा राग-

निर्णय की दृष्टि से प्राचीन एवं अर्वाचीन ग्रंथों में पूर्ण साम्य नहीं है।

नाद से लेकर रागोत्पत्ति तक का क्रमिक वर्णन जिस ग्रंथ में रहता है, यदि उसे शास्त्र कहा जाये, तो वह शास्त्र तीनों प्रकार के संगीत का आधार हो सकता है। यदि ध्रुपद और खयाल की बंदिशें जिस ग्रंथ में लिखी हैं उसे शास्त्र कहा जाये तो सुगम तथा लोक-संगीत के भी ग्रंथ लिखे जा चुके हैं। ग्रंथरूप में लिपिवद्ध होने से ही यदि किसी संगीत को शास्त्रीय कहा जाता है, तो सुगम और लोक-संगीत को भी शास्त्रीय संगीत क्यों नहीं कहा जा सकता ? संगीतोद्धारक पं. विष्णु नारायण भातखंडे ने हिंदुस्तानी संगीत को लिपिवद्ध करके शास्त्र का स्वरूप दिया, इस आधार पर यदि उसे शास्त्रीय कहना उपयुक्त है, तो क्या उनके पूर्व-प्रचलित इसी संगीत को अशास्त्रीय की संज्ञा देनी होगी ?

सामान्यतः संगीत-प्रेमी यह मानते हैं कि रागों पर आधारित संगीत शास्त्रीय संगीत है। वे उन फिल्मी धुनों को भी शास्त्रीय संगीत कह बैठते हैं, जो किसी राग में निबद्ध हों। यदि यह कसौटी सही मानी जाये तो अनेक भजन, गीत, गजल और लोकगीतों को शास्त्रीय संगीत कहना होगा। लोक-संगीत को तो रागों का जनक ही माना जाता है। क्या शास्त्रीय संगीत इतना व्यापक शब्द है, जिसमें सुगम और लोक-संगीत भी समाहित हो जाते हैं ?

यह भी तर्क दिया जा सकता है कि

ध्रुपद, धमार और खयाल गाने के लिए स्वर, ताल तथा लय की कठोर साधना अनिवार्य है (जिसका विशद विवेचन ग्रंथों में पाया जाता है) और इसी कारण उसे शास्त्रीय संगीत कहते हैं। किंतु यह तर्क भी अकाट्य नहीं है, क्योंकि स्वर, ताल और लय की साधना तो सुगम तथा लोक-संगीत में भी आवश्यक है, चाहे वह ध्रुपद-खयाल की तरह कठोर न हो।

ध्यान देने की बात है कि ठुमरी को उपशास्त्रीय क्यों कहा जाता है, जबकि उसमें स्वर-ताल-लय की साधना खयाल से किसी प्रकार कम नहीं होती। इस आधार पर तो ठुमरी को भी शास्त्रीय संगीत ही कहा जाना चाहिये। शायद इसका यह उत्तर दिया जाये कि ठुमरी में उतनी गंभीरता नहीं है, जितनी ध्रुपद व खयाल में है तथा वह सुगम संगीत के निकट भी है। ठीक है, क्या छोटा खयाल और तराना जनसाधारण को सुगम संगीत की तरह रुचिकर नहीं लगते? क्यों न उन्हें भी उपशास्त्रीय कहा जाये?

जहां तक मैं जानता हूं, 'शास्त्रीय संगीत' शब्द हमारे यहां स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात् व्यवहार में आया है। इसी ध्रुपद और खयाल को राजदरबारों में शास्त्रीय संगीत नहीं कहा जाता था। राजदरबारों से निकलकर जब यह संगीत जनता-जनार्दन के बीच आया, तब जनता को यह सुनने में तो प्रिय लगा, किंतु समझने और गाने में कष्टसाध्य जान पड़ा। बिना गुरु के इसे समझना और सीखना संभव नहीं होने से

लगा कि इसका शास्त्र अत्यंत कठिन है। इस प्रकार संगीत की यह विधा शास्त्रीय संगीत के नाम से पुकारी जाने लगी। छोटा खयाल और तराना, बड़े खयाल से जुड़कर खयाल-शैली को पूर्णता प्रदान करते हैं, इस कारण उन्हें ठुमरी की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता।

वस्तुतः ठुमरी गाना खयाल गाने से कठिन है। फिर भी उसे उपशास्त्रीय कहा जाता है; इसका कारण है ध्रुपद-खयाल की तुलना में इसमें गंभीरता की कमी तथा नियमों की शिथिलता। ठुमरी का विस्तार करते समय भावानुकूल सुमधुर स्वरावलियों का मनचाहा आविर्भाव-तिरोभाव किया जा सकता है, जबकि ध्रुपद और खयाल में यह छूट नहीं है। ध्रुपद और खयाल गाते समय तनिक भी मर्यादा भंग करने वाला गायक अकुशल समझ लिया जाता है। इस प्रकार ध्रुपद, धमार तथा खयाल को अपनी-अपनी मान्य सीमाओं के भीतर ही चलना होता है। दूसरी ओर भजन, गीत तथा गजल को अल्प प्रयास द्वारा भी गाया जा सकता है। इसी कारण इन्हें सुगम संगीत के नाम से अभिहित किया जाने लगा।

इस प्रकार यौगिक अर्थ को दृष्टि से बहुत शुद्ध न होते हुए भी 'शास्त्रीय संगीत', 'उपशास्त्रीय संगीत' तथा 'सुगम संगीत' नाम प्रयोग में आते-आते उक्त विधाओं के वाचक बन गये हैं।

—रंगमहल, नयी पैठ, उज्जैन, म. प्र.

अवैध किंतु असाधारण

सुदीप

क्या अवैध संतान होना वास्तव में बहुत बड़ा अभिशाप है? क्या दुनिया अवैध बच्चों को हमेशा हेय नजर से ही देखती रही है? इस संबंध में ख्याति, कीर्ति, यश-मान और प्रशंसा प्राप्त करने वाले 'अवैध' लोगों पर एक नजर डाली जाये, तो ऐसा नहीं लगता।

जब एक विश्व-विख्यात अभिनेत्री ने एक अवैध बच्चे को जन्म दिया, तो उसके प्रशंसकों को आश्चर्य तो हुआ, लेकिन दुरा नहीं लगा। रंगमंच से संबंधित कलाकारों में ऐसा होता ही रहता है, उन्होंने सोचा। बल्कि ऐसा न हुआ होता, तो मंचीय दुनिया की परंपरा टूट जाती। और फिर फ्रांसीसी अभिनेत्री सारा बर्नहार्ड को तो उन्नीसवीं सदी का यूरोप उसकी अभिनय-प्रतिभा के कारण 'दैवी सारा' के नाम से पुकारता था। सारा जब तक अपने अभिनय से लोगों को मुग्ध करती रही, लोगों को इस बात पर कोई एतराज नहीं था कि उसकी व्यक्तिगत जिंदगी कैसी है—वह किससे प्यार करती है, किसके साथ रहती है। सारा के बच्चे का पिता शहजादा दि लाईनी है, उसका अपना पति नहीं; यह बात भी सब लोगों को मालूम थी।

प्रेम—घनिष्ठ प्रेम—बहुत बार नैतिकता की सीमाओं को मान्यता नहीं देता। यह बात जरूर है कि सामान्य जन इस सीमातिक्रमण पर क्षुब्ध होते हैं और मन ही मन 'प्रेमियों' और उनके अवैध संबंधों को कोसते रहते हैं—हालांकि आपस में गपवाजी करते समय लोग इन्हीं संबंधों की चर्चा चटखारे ले-लेकर करते हैं। यह अंत-विरोध भी अनंतकाल से चला आ रहा है—ठीक वैसे ही जैसे अवैध संबंध चले आ रहे हैं।

एक बात और भी है। समाज कई बार गलती करने वालों को माफ भी कर देता है, लेकिन वक्त कई बार माफ नहीं करता। सारा बर्नहार्ड के बेटे, मॉरिस ने अपनी मां को बहुत सताया। वह मॉरिस से बहुत प्यार करती थी, उसे हर तरह का आराम देती थी। नतीजा यह हुआ कि मॉरिस बिगड़ गया। अपनी गैर-जिम्मेदाराना जिंदगी से उसने अपनी मां की जिंदगी में कड़वाहट भर दी।

लेकिन ऐसा भी नहीं है कि सभी 'अवैध' संतानें मॉरिस की ही तरह गुमनामी के अंधेरों में खोयी रही हों। बल्कि इनमें से अनेक ने तो खूब यश कमाया है और समाज



फ्रेंच अभिनेत्री सारा बर्नहार्ट

में मान भी पाया है।

अवैध संतान होना रैमसे मेक्डॉनल्ड को ब्रिटेन का प्रधान मंत्री बनने से रोक नहीं सका। वे एक गरीब किसान और एक मजूरिन की संतान थे और अपने जन्मजात कलंक से डरकर छिपते फिरने के बजाय उन्होंने इतनी तरक्की भी कि वे ब्रिटेन के चोटी के राजनीतिज्ञ बन गये।

ग्यारहवीं सदी में इंग्लैंड पर विजय पाने वाला प्रख्यात नार्मन सम्राट विजेता विलियम (विलियम द कान्करर) 'दोगला विलियम' के नाम से भी जाना जाता है। वह नार्मंडी के ड्यूक 'शैतान' राबर्ट और

मवनीत

एक मामूली-से चमार की बेटी की अवैध संतान था। राबर्ट की कोई वैध संतान नहीं थी। मरते समय उसने अपना खिताब विलियम को ही हस्तांतरित कर दिया। विलियम नार्मंडी का ड्यूक तो था ही, अपने प्रताप से इंग्लैंड का राजा भी बना।

ग्यारहवीं सदी के इंग्लैंड में 'वास्टर्ड' यानी अवैध संतान होना बहुत ज्यादा बुरी बात नहीं मानी जाती थी। अंग्रेजी के 'वास्टर्ड' शब्द की व्युत्पत्ति फ्रेंच शब्द 'वास्त' से मानी जाती है, जिसका अर्थ होता है—घोड़े की काठी। वास्टर्ड का अर्थ हुआ 'काठी का बेटा'।

विलियम जब इंग्लैंड पर विजय प्राप्त कर रहा था, तो उसके सिपाहियों को एक-एक तंबू में एक-एक औरत भी दी जाती थी। इन औरतों को अलग से विस्तर नहीं दिया जाता था और उन्हें घोड़े की जीन या काठी ही सोने के लिए मिलती थी। इन औरतों के बच्चे ही 'वास्टर्ड' कहलाते थे और अक्सर इन्हें भी पता नहीं रहता था कि उनके बच्चे का बाप कौन है! लेकिन उस जमाने में पिता अपनी अवैध संतान को प्रश्रय देने में हिचकिचाते नहीं थे।

पंद्रहवीं सदी में एक पोप हुए, अलेग्जेंडर षष्ठ। एक सामंत महिला से उनका संबंध

नबंबर

हो गया और इस संबंध से जन्म लिया सीजर बोगिया ने। सीजर बड़ा महत्वाकांक्षी था। वह सत्ता चाहता था। पिता अलेग्जेंडर ने उसे प्यार ही नहीं दिया, उसे ख्याति अर्जित करने में भी मदद दी। लेकिन सीजर जितना महत्वाकांक्षी था, उतना ही क्रूर भी था। अंततः वह कार्डिनल बना। पूरा इटली उसके वर्चस्व में आ गया; फिर फ्रांस भी, क्योंकि फ्रांसीसी राजा उसके रोव में आ गया।

पिता की अवैध संतानों की वजह से कई बार वैध संतानों को काफी परेशानियां भी उठानी पड़ी हैं। मध्ययुगीन ब्रितानवी राजा रिचर्ड को, जिसे 'शेरदिल' (लायन हार्टेड) कहा जाता था, लंबे अरसे तक घर्मयुद्धों में मुत्तिला रहना पड़ा था। वह युद्धभूमि में पड़ा हुआ था कि एक दिन उसे पता चला, उसके पिता के एक अवैध बेटे जान ने अपने आपको इंग्लैंड का राजा घोषित कर दिया है। ताजपोशी होने ही जा रही थी कि ऐन वक्त पर रिचर्ड इंग्लैंड आ पहुंचा और उसने अपने तख्त को बचा लिया।

विवादास्पद जन्म के कारण इंग्लैंड की रानी एलिजाबेथ प्रथम भी राजपद से वंचित रह गयी होती। उसके पिता हेनरी अष्टम ने उसकी मां एन से शादी करने के लिए अपनी पहली रानी को तलाक दे दिया था, लेकिन गिरजे ने इस तलाक को मंजूरी नहीं दी थी। जब हेनरी की मृत्यु हो गयी, तो पहले एलिजाबेथ की



पोप अलेग्जेंडर षष्ठ का बेटा
सीजर बोगिया

वहन को गद्दी पर बैठाया गया, फिर उसके भाई को, क्योंकि एलिजाबेथ को अवैध संतान माना जाता था। अंत में एलिजाबेथ रानी बनने में सफल तो हुई, परंतु इस ग्रंथि से वह अपने आपको कभी मुक्त नहीं कर सकी।

यह बात अक्सर कही जाती है कि नाजायज बच्चे नहीं, नाजायज मां-बाप होते हैं। मां-बाप की गलतियों की सजा निर्दोष बच्चों को भुगतनी पड़े, यह कहां का न्याय है?

लेकिन कुछ बच्चे ऐसे भी होते हैं, जो अपने मां-बाप की गलतियों से फायदा उठाने से भी बाज नहीं आते। ब्लैकमेल करने वाले नाजायज बच्चों की कहानियां

बड़ी आम हैं। जब जमाना सामंतों और राजा-महाराजाओं का था, गद्दी या दौलत के हकदारों की अच्छी-खासी फौजें इकट्ठा हो जाया करती थीं। अठारहवीं सदी में फ्रांस में एक कुब्यात औरत हुई—ज्यां दे वलोइ। इस औरत ने यह कहते हुए फ्रेंच सरकार से पेन्शन की मांग की कि उसकी मां फ्रांस के राजा की बेटी थी।

एक ऐसी नाजायज लड़की, जिसे कभी किसी तरह की तकलीफ नहीं उठानी पड़ी, आल्बनी की डचेस शार्लट थी। उसका जन्म २९ अक्टूबर १७५३ को हुआ। उसका पिता था इंग्लैंड का प्रिंस चार्ल्स एडवर्ड स्टूअर्ट। मां—क्लिमेंटीना वाकिनशा। प्रिंस चार्ल्स की बीवियां तो बहुत-सी थीं, लेकिन वह उनमें से किसी से भी प्यार नहीं करता था। क्लिमेंटीना से उसे अगाध प्रेम था और इसी वजह से उसे अपनी बेटी शार्लट से भी बहुत प्यार था। चार्ल्स जहां कहीं भी जाता, शार्लट उसके साथ जाती और आखिर में शार्लट की गोद में ही चार्ल्स ने दम तोड़ा। शार्लट डचेस बना दी गयी। उसने पूरे यूरोप की यात्राएं कीं और कभी किसी व्यक्ति ने उसकी तरफ उंगली नहीं उठायी। सच बात तो यह है कि शार्लट को अवैध संतान मानने के बजाय लोग उसे 'प्रेम-संतान' कहकर पुकारते थे।

कुछ लोग ऐसे भी होते हैं, जो प्रेम पर किसी तरह का बंधन कभी स्वीकार नहीं करते। प्रख्यात नर्तकी इसाडोरा डंकन ऐसे ही लोगों में से एक थी। इसाडोरा

अपने प्रणय संबंधों के लिए भी इतनी ही मशहूर है, जितनी अपने नृत्य और स्वतंत्रता संबंधी अपने विचारों के लिए। इसाडोरा ने यह घोषणा खुले-आम की थी कि उसे शादी की संस्था में कोई यकीन नहीं है। लेकिन उसे बच्चों से भी प्यार था—और बच्चे उसके हुए। हालांकि उसके प्रेमियों की एक लंबी फेहरिस्त मौजूद है, फिर भी अपने बच्चों के पिता के रूप में उसने केवल ऐसे लोगों को ही चुना, जो उसके बच्चों को भी अपनी प्रतिभा और कलात्मक रुचियों का अंश दे सकें।

इसी इरादे से एक बार इसाडोरा ने प्रख्यात नाटककार जार्ज बर्नार्ड शा को भी एक पत्र लिखा था—'हमें मिलकर एक बच्चा पैदा करना चाहिये।' उसने लिखा था—'मेरी खूबसूरती और तुम्हारी बुद्धि के मिलन से कितना आश्चर्यजनक बच्चा पैदा होगा, तुम खुद सोच सकते हो!' शा ने जवाब दिया था—'लेकिन मेरी प्यारी इसाडोरा—कल्पना करो, बच्चे में तुम्हारी बुद्धि और मेरी खूबसूरती हो, तब क्या होगा?'

(वैसे अब इस बारे में कसफी विवाद है कि इसाडोरा ने शा को कभी यह पत्र लिखा भी था या नहीं—इससे भी ज्यादा विवादास्पद यह है कि शा खुद अपने पिता की संतान थे या उस पड़ोसी संगीतज्ञ के, जिसके आधार पर शा के प्रख्यात चरित्र प्रोफेसर हिगिन्स का जन्म हुआ!)

इसाडोरा डंकन की ही तरह कोसीमा बैंगनर ने भी प्यार के लिए दुनिया को

धृता बतायी थी। कोसीमा खुद महान पियानोवादक फ्रांज लीस्त की नाजायज संतान थी। उसकी शादी लीस्त के पट्टशिष्य हान्स वान बूलो से हुई थी; लेकिन वह उसे छोड़कर रिचर्ड वैग्नर के साथ रहने लगी। वैग्नर से शादी होने तक उनके तीन बच्चे हो चुके थे।

बैजामिन फ्रैंकलिन अमरीका के अत्यंत प्रभावशाली राजनेता और प्रतिभावान आविष्कारक थे। उनकी मान्यता थी कि आदमी अगर थोड़े-से संयम से काम ले, तो दुनिया का हर काम ठीक हो सकता है। पर उन्होंने खुद कितने संयम से काम लिया? उन्हें फ्रांस का राजदूत बनाकर भेजा गया, और जब तक वे वापस अमरीका पहुंचे, तब तक वे अपने पीछे चौदह नहें-मुन्ने फ्रेंच-अमरीकी राजदूत छोड़ चुके थे!

फ्रैंकलिन के समकालीन अलेग्जेंडर हैमिल्टन अमरीका के राष्ट्र-संस्थापकों में गिने जाते हैं। कूटनीतिज्ञ के रूप में अपने जमाने में उनकी ख्याति अतुलनीय थी। वे खुद एक स्काट व्यापारी और एक फ्रांसीसी चिकित्सक की बेटी की जारज संतान थे।

प्रख्यात चित्रकार मॉरिस डजिलो की कहानी भी काफी दिलचस्प है। डजिलो ने अपनी जिंदगी की शुरूआत पेरिस के हंगामाखेज इलाके मोंमार्ग में की थी। उनकी मां का नाम था सूझाना वालादों, जो अपना गांव छोड़कर मोंमार्ज में आ बसी थी-अपनी मां के साथ। वह स्वयं



इतालवी अभिनेत्री अन्ना मैन्यानी

भी अवैध संतान थी और उसे न तो पता था कि उसका बाप कौन है, और न वह यह ही निश्चय कर पायी कि उसके बेटे मॉरिस का बाप कौन है! आज तक लोग यह तय नहीं कर पाये हैं कि मॉरिस के पिता रेनुआ थे, या देगा, प्युई दि शेबाने थे या कोई और, क्योंकि सूझाना इन सभी के लिए माडल का काम किया करती थी।

उन्नीसवीं सदी तक नाजायज संतानों के मामले में जो स्थिति रंगमंच की दुनिया की थी, आज वही स्थिति फिल्म जगत की हो चुकी है। इतालवी अभिनेत्री अन्ना मैन्यानी खुद अवैध संतान थी, तो सोफ्रिया लारेन ने कालों पोंती (जिससे उसने बाद में शादी की) के बच्चों को जन्म दिया; प्रख्यात फ्रांसीसी अभिनेत्री जां मॉर्यों अपने

हर निर्देशक के बच्चे की मां बनने की इच्छुक रही है। भारतीय फ़िल्म-जगत में भी अवैध संतानों का अभाव नहीं है।

नाजायज संतानों और उनकी ख्याति-कुख्याति का सिलसिला अनादि काल से चला आ रहा है। यूनान, रोम और भारत की ही नहीं, मैसेपोटेमिया, असीरिया, बेबिलोनिया की संस्कृतियों का इतिहास भी ज़ारज संतानों की कथाओं से भरा पड़ा है..... और उनमें हमें अनेक प्रतिभावान कर्तृत्ववान ज़ारजों के दर्शन होते हैं।

ऐसी भी एक धारणा है कि अवैध संतानों में वैध संतानों की अपेक्षा प्रतिभाशालियों का अनुपात बहुत अधिक होता है। इस बारे में एक चुटकुला लगे हाथ पढ़ लीजिये।

दिल्ली के एक प्रोफेसर ने नाजायज बच्चों पर काफी खोज कार्य किया था। एक दिन अपने मित्रों के साथ काफी-हाउस में काफी की चुस्की लेते हुए उन्होंने अपनी थीसिस का सारांश लोगों को सुनाया और बोले—‘मैं इस नतीजे पर पहुंचा हूँ कि “वास्टर्ड” (अवैध) लोग जीनियस होते हैं।’ तभी एक मित्र सिगरेट का धुआं छोड़ते हुए प्रोफेसर साहब की तरफ मुखातिब हुआ और बड़े सराहना-भरे स्वरों में बोला—‘वाह-वाह प्रोफेसर, सचमुच आप जीनियस हैं।’ कहते हैं, प्रोफेसर साहब ने अपना शोध-कार्य उसी दिन बंद कर दिया।

—एन ४/१३ सुंदर नगर, एस.वी. रोड, मालाड (पश्चिम), बंबई—४०००६४



उस दिन दादा (पं. द्वारकाप्रसाद मिश्र) के पास मैं भी था, जब उनके निवास-स्थान ‘उत्तरायण’ में जबलपुर विश्वविद्यालय के कुलपति श्री कान्ति चौधुरी उन्हें डी. लिट्. की मानद उपाधि देने आये। उपाधि-पत्र बड़े-से फाइल-कवर में एक ओर अंग्रेजी में तथा दूसरी ओर हिंदी में था, लेकिन हिंदी-अंग्रेजी दोनों में पंडितजी का नाम गलत लिखा था—पं. द्वारिकाप्रसाद मिश्र, जबकि वे अपना नाम द्वारकाप्रसाद मिश्र लिखते हैं।

मिश्रजी ने बड़े आकार के उस उपाधि-पत्र को देखा और श्री कान्ति चौधुरी से बोले—‘अरे भाई, मैं जानता था कि गलती से यह डी. लिट्. की डिग्री मुझे देने आये हो, इसलिए मना भी किया था। अगर सही होता तो कम से कम सही नाम तो लिखाते।’

मैंने इस पर टिप्पणी की—‘सच में डी. लिट्. की उपाधि पर तो सही नाम होना ही चाहिये, नहीं तो लोग विश्वविद्यालय को क्या कहेंगे !’

इस पर कुलपति महोदय ने अपनी गलती स्वीकारते हुए आश्वासन दिया कि इसे मैं संशोधित करा दूंगा। चार-पांच महीने बाद पंडितजी के दर्शनार्थ जब जबलपुर गया तो मैंने पूछा—‘दादा, डी. लिट्. की उस मानद उपाधि में नाम संशोधित हुआ या नहीं?’

वे बोले—‘भाई, मैंने इसीलिए तो मना किया था, लेकिन वे डिग्री दे गये और गलत नाम से दे गये।’

—शंकरदयाल सिंह



महान विप्लवी

वचनश त्रिपाठी

यतीन्द्रनाथ दास की शहादत का अर्ध-शताब्दी समारोह पिछले १३ सितंबर को मनाया गया। केंद्र सरकार ने उनकी स्मृति में डाक-टिकट जारी किया; दिल्ली, कलकत्ता, लखनऊ, चंडीगढ़ आदि कुछ नगरों में समारोह हुए जिनमें उन्हें श्रद्धांजलि दी गयी। फिर भी नयी पीढ़ी को अभी यह जानना है कि ये यतीन्द्रनाथ दास कौन थे? किस लिए उन्होंने ६३ दिन के उपवास में तिल-तिल करके छीजते-गलते हुए अपनी जवानी उत्सर्ग की?

सन १९०४ की २७ अक्तूबर को कलकत्ता में उस बालक को मानो घुट्टी के साथ ही देशभक्ति के संस्कार दे दिये गये थे। पिता वंकिम विहारी दास सामान्य सद्गृहस्थ थे। घर में कोई अभाव न था। बंगभंग करके अंग्रेजों ने उस समय युवकों के मानस को उद्वेलित कर रखा था; उसी वातावरण में बालक यतीन्द्र (जतीन) पला-बढ़ा।

अभी वह आठ साल का था कि माता संसार छोड़ गयीं। चूंकि वह बहुत भावुक बच्चा था, मृत्यु की बात उससे छिपायी गयी; उसे यही बताया गया कि वे बीमार

हो गयी हैं और ऊपर आकाश के पार एक अच्छा अस्पताल है, वहीं इलाज कराने गयी हैं; अच्छी होते ही वापस आ जायेंगी।

भोला-भाला यतीन्द्र बहुत समय तक इसी को सच समझ, मां की प्रतीक्षा करता रहा। अंत में असलियत उसकी समझ में आयी। मगर तभी उसे उससे भी बड़ी मातेश्वरी का परिचय अनायास ही मिल गया और उसकी सारी प्रीति, सारी भक्ति सदा के लिए उस पर स्थिर हो गयी।

उन दिनों बंगाल में घर-घर माताएं शहीद खुदीराम बोस पर लोकगीत गाया करती थीं। बच्चों को सुलाने के लिए लोरियां भी खुदीराम बोस पर ही गायी जातीं। एक गीत की दो पंक्तियां मुझे आज भी याद हैं:

ए बार बिदाई दो मां

घरे आसी.....

[हे मां, इस बार बिदाई दो, जल्दी ही फिर लौट आऊंगा।]

शहीद खुदीराम को सोलह वर्ष की कच्ची उम्र में ही फांसी दी जा रही है और वे भारत-जननी को आश्वस्त कर रहे हैं—इस बार तो जाने दो मां! जल्दी

ही आकर फिर से तुम्हारी सेवा-अर्चना करूंगा। यतीन्द्र यह गीत सुनता, बार-बार सुनता और इसका मर्म गुनता। उसके भावुक अंतःकरण में वह गीत बस गया। कुछ गीत और थे जो उसे विशेष प्रिय थे और जिन्हें वह अक्सर गुनगुनाया करता था—बंकिम का 'वंदे मातरम्', नजरूल इस्लाम का 'आमि बिद्रोही' और रवीन्द्र-नाथ ठाकुर का 'एकला चलो रे।'

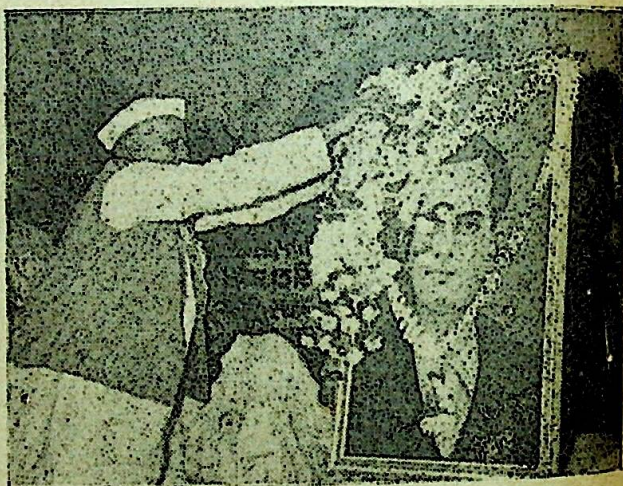
अब यतीन्द्र किशोरावस्था से यौवन में प्रवेश कर रहे थे। १९२० में सोलह साल की अवस्था में उन्होंने मैट्रिक की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण कर ली थी। तभी महात्मा गांधी ने देशवासियों का आह्वान किया, छात्रों से कहा—सरकारी स्कूल-कालेज छोड़ दो। साल-भर में देश को आजादी दिला देने का वचन उन्होंने दिया था। यतीन्द्र ने पढ़ाई छोड़ दी और १९२१ के असह-योग आंदोलन में कूद पड़े। घरना देने पर एक मास की जेल हुई। रिहा हुए तो फिर से मोर्चे पर पहुंच गये। विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार के सिलसिले में पकड़े गये और छह महीने की जेल हो

नवनीत

गयी।

पिता बहुत नाराज थे। वे चाहते थे कि बेटा आंदोलन से दूर रहे, पढ़े-लिखे। पर यतीन्द्र कहाँ मानने वाले थे! इसलिए जब जेल से रिहा हुए तो घर से भी अलग हो गये। अब कूलकत्ते का कांग्रेस कार्यालय ही उनका रैन-बसेरा बन गया।

तभी अचानक असहयोग आंदोलन रुक गया। उत्तर प्रदेश के चोरीचोरा नामक स्थान पर एक जुलूस के सिलसिले में उग्र जनता ने पुलिस के २९ आदमियों को थाने में बंद करके आग लगा दी, जिससे वे सब जल कर मर गये। गांधीजी ने इसे हिंसा कह कर आंदोलन स्थगित कर दिया।



समारोह के अध्यक्ष तथा काकोरी केस के क्रांतिकारी श्री रामकृष्ण खत्री १३ सितंबर को शहीद यतीन्द्र दास को श्रद्धांजलि देते हुए।

१३६

नवंबर

सारे देश में निराशा और निष्कर्मण्यता का अंधेरा छाया देखकर वे सशस्त्र क्रांति-कारी जो असहयोग में आ जुटे थे, अपने अग्निपथ पर फिर लौट गये। तडिदाघातों की तरह उनके बम-रिवाल्वर फिर गरज उठे। यतीन्द्र भी ऐसे ही एक दल में सम्मिलित हो गये। दल का नाम था—'हिंदुस्तान रिपब्लिकन एसोसिएशन'।

शचीन्द्रनाथ सान्याल सशस्त्र क्रांति के एक अत्यंत कर्मठ नेता थे। यतीन्द्र उन्हीं के संपर्क से विप्लवी दल में आये। शचीनदा से उन्होंने बम बनाना सीखा। उन्होंने दल की ओर से गुप्त पच्चे बड़ी तादाद में छपवाये और पूरे देश में एक ही दिन एक ही समय बंटवाये। दल को शस्त्रास्त्रों से सश्रेद्ध करने में भी वे जुटे रहे। इसी उद्देश्य से उन्होंने इंडो-बर्मा पेट्रोलियम कंपनी का रुपया लूटा—वह भी राह चलते छपा मारकर और रुपया ले जाने वालों की आंखों में पिसी मिर्चें झाँककर! यूरोपीय कंपनी थी और काफी रुपया मिला। यतीन्द्रनाथ ने उससे पार्टी के लिए छह माउजर पिस्तौलें मूल लीं।

इन माउजरों से अनेक महत्त्वपूर्ण कार्य हुए। इनमें से चार तो शाहजहांपुर में पं. रामप्रसाद बिस्मिल के पास भेज दिये गये और वे काकोरी में सरकारी खजाना लूटने में प्रयुक्त हुए। दो माउजर काशी की शाखा को भेजे गये। इन दिनों शचीनदा काशी में ही थे और यतीन्द्रनाथ उनके दायें हाथ समझे जाते थे। शचीनदा से

मिलने वे दो बार काशी आये।

तभी 'काकोरी केस' के सिलसिले में गिरफ्तारियाँ शुरू हुईं और यतीन्द्र भी पकड़े गये। कलकत्ते से उन्हें पंजाब ले जाकर मियांवाली जेल में रखा गया, हालांकि सबूत के अभाव में उन पर मुकद्दमा बन नहीं पा रहा था।

जेल अधिकारियों के पाशविक बरताव के विरुद्ध यतीन्द्र ने अनशन कर दिया, जो २१ दिन चला। स्वास्थ्य चौपट हो गया। जब वे अत्यंत दुर्बल हो गये, सरकार ने उन्हें बिना शर्त रिहा कर दिया। यही नहीं, मियांवाली जेल के जेलर ने उनसे अपने दुर्व्यवहार के लिए क्षमा-याचना भी की। परंतु अभी सारा देश उनका नाम नहीं जान पाया था, हालांकि इससे पूर्व बंगाल में वे सुभाषचंद्र बसु के साथी रहे थे और सुभाष बाबू ने उन्हें बंगाल वालंटियर्स कोर में मेजर बनाया था।

मियांवाली जेल से छूटकर यतीन्द्र चौथी बार घर लिये गये। इस बार उन्हें बंगाल आर्डिनेन्स में नजरबंद किया गया। नजरबंदी से मुक्त हुए तो फिर वही धुन। सरदार भगतसिंह और भगवती चरण बोहरा कलकत्ते आकर उनसे मिले और उत्तर प्रदेश में बम-फैक्टरी खोलने के लिए बात की। यतीन्द्र बम-विशेषज्ञ थे; वे बड़ी खुशी से भगतसिंह के साथ आगरा चल दिये।

यतीन्द्र के ही कर्तृत्व से बाद में आगरा के अलावा दिल्ली में झंडेवालों में और



दायें से क्रांतिकारी और शहीद के साथी सर्वश्री जयदेव कपूर, शिव वर्मा, रामकृष्ण खत्री (काकोरी केस), सदाशिवराव मलकापुरकर (भुसावल बमकांड), बोलते हुए शचीन्द्रनाथ बखशी (काकोरी केस) तथा रमेश सिन्हा (समिति के मंत्री) ।

सहारनपुर में भी बम-फैक्टरी चलायी गयी । झंडेवालों में सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन (वाद में 'अज्ञेय'), यशपाल और विमल-प्रसाद जैन आदि बम बनाते थे; बाहर साइन-बोर्ड लगा था साबुन-फैक्टरी का । सहारनपुर की बम-फैक्टरी में जयदेव कपूर, शिव वर्मा और डा. गया प्रसाद कटियार जुटे हुए थे । जयदेव और शिव वर्मा वहीं पकड़े गये ।

[जब गत १३ सितंबर को लखनऊ की कैसर बाग-बारादरी में यतीन्द्र-नाथ दास के बलिदान की अर्ध-शताब्दी मनायी गयी तो उसमें यतीन्द्र के जीवित साथी जयदेव कपूर, शिव वर्मा और जितेन्द्र सान्याल (शचीन्द्र सान्याल के अनुज)

का सार्वजनिक सम्मान उ. प्र. के राज्यपाल और मुख्यमंत्री ने किया । वंबई के लैमिंग्टन शूटिंग केस से जुड़ी प्रसिद्ध क्रांतिकारिणी दुर्गा भाभी ने इस अवसर पर यतीन्द्रनाथ दास स्मारक डाक-टिकट का विमोचन किया ।]

सर्वश्री जयदेव कपूर, शिव वर्मा, विजय-कुमार सिन्हा, जितेन्द्र सान्याल प्रत्यक्ष-दर्शी हैं उस बोस्टल जेल के, जहां यतीन्द्र ने स्वेच्छया मृत्यु का वरण किया था । वह उनकी पांचवीं और आखिरी गिरफ्तारी थी । असेम्बली बमकांड और लाहौर षडयंत्र केस में (जिसमें राजगुरु और भगतसिंह ने गोली मारकर अंग्रेज पुलिस अफसर सांडर्स को खत्म किया था) भगत-

सिंह के साथ यतीन्द्र भी गिरफ्तार किये गये थे। उन्हें पकड़वाया था मुखबिर फणीन्द्र घोष ने जिसे बाद में क्रांतिकारी वैकुण्ठ शुक्ल और चंद्रमा सिंह ने चाकुओं से गोदकर मार डाला। वैकुण्ठ ने फांसी पायी; चंद्रमा सिंह को हाजीपुर ट्रेन डकैती में लंबी सजा मिल चुकी थी।

चंद्रमा भाई से मेरी मुलाकात थी। यतीन्द्रनाथ के वे बड़े प्रशंसक थे और उन्हें इसका बड़ा संतोष था कि यतीन्द्र को पकड़वाने वाले को वे युगलोक भेज सके। उस समय वे २८ साल के थे। सुंदर व्यक्तित्व, फुर्तीला कसरती शरीर। देश-शत्रु से जूझने की उमंग। आजाद से उनका संपर्क रहा।

असेम्बली वम-केस में आजीवन काले पानी की सजा पाकर भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त दिल्ली से लाहौर सेंट्रल जेल आये, जहां उन पर सांडर्स-वध का मुकद्दमा चलना था। यतीन्द्र तब लाहौर बोस्टल जेल में थे। उन दिनों जेलों में अलग श्रेणियां न थीं। राजनैतिक कैदियों के साथ जानवरों से भी बदतर सलूक होता था। दिन-रात उन्हें अपमानित किया जाता। इसलिए काकोरी केस के कैदियों ने और उसके बाद भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त ने अनशन शुरू कर दिया। साथियों के निर्णय से यतीन्द्र, शिव वर्मा, जयदेव कपूर, विजय कुमार सिन्हा आदि भी अनशन पर उतर आये।

उन दिनों जेल-अधिकारी भूख-हड़ता-

लियों को बलात् दूध पिलाने की चेष्टा किया करते थे। अनशनकारी के हाथ-पांव, सीने और सिर पर सात-आठ आदमी बैठ जाते और नाक में नली डालकर दूध और अन्य तरल पदार्थ पेट में उतार दिये जाते। यतीन्द्र अनशन से काफी कमजोर हो गये थे मगर दवा तो क्या एनीमा लेने से भी इन्कार कर रहे थे—इस भय से कि कहीं इसी वहाने जेल के डाक्टर कोई पौष्टिक तत्त्व शरीर में न पहुंचा दें।

उन्हें मनाने के लिए भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त को बोस्टल जेल लाया गया; पर उनके कहने पर भी यतीन्द्र माने नहीं। उनकी देखभाल के लिए उनके छोटे भाई किरणचंद्र दास को उनके पास रखा गया था। मगर यतीन्द्र ने पहले ही उनसे प्रतिज्ञा करा ली थी कि वे दवा और भोजन लेने के लिए उनसे आग्रह न करेंगे। तब भगतसिंह और बटुकेश्वर ने उनसे इत्तिजा की कि एनीमा ले लें ताकि इस वहाने में और बटुकेश्वर आपके साथ रह सकें और आजादी की लड़ाई के भविष्य के संबंध में योजनाएं बना सकें। देश की बात आने पर यतीन्द्र मान गये। उन्होंने एनीमा ले लिया।

परंतु एक दिन जेल अधिकारी उन्हें बलात् दूध पिलाने के लिए जोर-आजमाइश कर रहे थे। यतीन्द्र विरोध कर रहे थे। उन्होंने नाक की नली हटाकर मुंह में डाल ली और दांतों से चबा डाली। तब दूसरी नली नथुने में डाली गयी। उसे हटाने के लिए यतीन्द्र ने हाथ का झटका दिया तो

आजमाइएँ और सुबूत पाइए:

**किसी भी अन्य डिटर्जेंट टिकिया या
बार से सुपर रिन की चमकाव
ज्यादा सफ़ेद**



किसी भी अन्य
डिटर्जेंट बार
से धोया हुआ



सुपर रिन से
धोया हुआ

सुपर रिन नियमित इस्तेमाल कीजिए और अपनी
आंखों देखिए आपके कपड़े कितने ज्यादा सफ़ेद नज़र
आते हैं, उन कपड़ों से कहीं ज्यादा सफ़ेद जो आपने
किसी अन्य डिटर्जेंट टिकिया या बार से धोये हैं.
यह इसलिए कि सुपर रिन में अधिक सफ़ेदी लाने की
शक्ति है. आजमाइए और सुबूत पाइए.



किसी अन्य डिटर्जेंट टिकिया या बार से अधिक सफ़ेदी की शक्ति से भरपूर
हिन्दुस्तान लीवर का एक उत्कृष्ट उत्पादन.

सिंदास-RIN. 34-1511 JH (RR)

नली का निचला सिरा फेफड़े में उतर गया। फलतः उस दिन जो सेर भर दूध नली में उड़ेला गया, सबका सब फेफड़े में चला गया। यतीन्द्र की हालत खराब हो गयी। सांस लेना दुश्वार, भयंकर खांसी। अर्धमूर्च्छा की हालत। फिर भी जब डाक्टर ने दवा देना चाहा वे आकुल-आकुल होकर प्रतिरोध करने लगे। नहीं ली कोई दवा। वे जानते थे कि क्या हुआ है और इसी लिए पूर्णतया संतुष्ट थे। कह रहे थे—‘अब सरकार मेरा कुछ विगाड़ नहीं बसकती।’

सरकार ने फर्जी जामीन खड़े करके जमानत करायी। जेल-अधीक्षक ने आकर कहा—‘आपको बिना शर्त छोड़ने को सरकार तैयार है और मुकद्दमा भी उठा लिया जायेगा।’ क्रांतिकारी का प्रश्न था—‘और कैदियों की मांगों का क्या हुआ?’ जेल-अधीक्षक चुप। फिर यतीन्द्र अनशन कैसे तोड़ते, रिहाई कैसे स्वीकारते!

उसी तरह अनुदिन मृत्यु की घाटी की तरफ अग्रसर होते-होते १३ सितंबर आ गया। (वर्ष था १९२९, जिस साल आगे चलकर लाहौर में जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में कांग्रेस का ऐतिहासिक जल्सा हुआ।) डाक्टरों ने विगड़ती दशा देखकर इंजेक्शन देना चाहा। मगर दधीचि तुल्य क्रांतिकारी की विरोध-मुद्रा देखकर उन्हें साहस न हुआ। अंतिम क्षण दूर न थे। ए वार विदाई दो मां, घरे आसी.....

अनुज किरणदास से बोले—‘एक कथा

सुनाता हूँ।’ और सुनाने लगे रक-रककर वशिष्ठ की नंदिनी कामधेनु की कथा। किस प्रकार उसने अपहर्ता के विपुल सैन्य बल को व्यर्थ कर दिया, किस तरह सैन्य-शक्ति के मुकाबले में सैन्य शक्ति ही जीती, न कि निष्क्रिय-निहत्था विरोध-प्रदर्शन। यही था उस कथा का मर्म और साथियों के लिए आग्रह कि रास्ता सही है, उसे न छोड़ना।

बार-बार उनका शरीर सिहर उठता था। अनुज से कहा—‘एकला चलो रे गाओ।’ किरणदास गाते रहे। तब कहा—‘अब बंदे मातरम् गाओ।’ और उसी महामंत्र को सुनते उनका प्राण-प्रदीप दिन के दो बजे निर्वापित हो गया। आत्मत्याग और बलिदान की परंपरा में एक अखंड दीपक जल उठा।

सुभाषचंद्र बसु, किरण दास, दुर्गा भाभी और एहसान इलाही उनके शव को लेकर ट्रेन से कलकत्ता चले। मथुरा स्टेशन पर आजाद और भगवती चरण बोहरा ने अपने साथी के अंतिम दर्शन किये; पुलिस उन्हें पहचान ही न पायी। कलकत्ता में पांच-छह लाख की भीड़ ने अमरशहीद को अंतिम श्रद्धांजलि दी। चिता की एक-एक चुटकी राख बंट गयी।

ये थे यतीन्द्रनाथ दास, जिनकी शहादत की अर्ध-शताब्दी हमने हाल में मनायी।

—२० रमा निवास, उपासनी बिल्डिंग,
हुसैनगंज, लखनऊ।



महामिथोरा

एक अमरीकी राष्ट्रपति पर

० विश्वास ०

अब्राहम लिंकन की हत्या के बाद एंड्रू जान्सन ने न केवल लिंकन का रिक्त किया हुआ राष्ट्रपति-पद ही संभाला बल्कि दिवंगत राष्ट्रपति की उन नीतियों के क्रियान्वय का दायित्व भी अपने कंधों पर ले लिया, जिनकी खातिर लिंकन को मौत का शिकार होना पड़ा था। पराजित दक्षिणी राज्यों की समस्या का समाधान भी इन नीतियों में एक थी। लिंकन पराजित दक्षिण के प्रति उदारता बरतना चाहते थे। परंतु उत्तर के उग्र रिपब्लिकन नेता दक्षिण के साथ समस्त संवैधानिक अधिकार गंवा चुके विजित प्रदेशों जैसा व्यवहार करना चाहते थे।

उदारता और प्रतिशोध का यह संघर्ष एंड्रू जान्सन को विरासत में मिला था। लिंकन की तरह उन्होंने भी उग्र रिपब्लिकनों का मुकाबला करने का निर्णय किया। संघर्ष जारी रहा। वस्तुतः यह संघर्ष केवल उदारता और प्रतिशोध के बीच का ही नहीं था, कार्यपालिका और विधायिका के

बीच का भी था। उग्र रिपब्लिकन नेता देश के पुनर्निर्माण के विषय में लिंकन के संवैधानिक एवं उदार दृष्टिकोण के विरुद्ध थे तथा विधायिका को प्रशासन का सर्वोच्च अंग बनाना चाहते थे। लिंकन की मृत्यु के बाद उन्हें अपने इरादों की सफलता का विश्वास हो गया था। परंतु राष्ट्रपति एंड्रू जान्सन की लिंकनपंथी नीतियों ने उनकी आशाओं पर तुपापपात कर दिया।

अधिकारों के नाम पर राष्ट्रपति और सेनेट के बीच तलवारें खिंच गयीं। राष्ट्रपति कांग्रेस द्वारा पारित अनेक विधायकों को संविधान-विरुद्ध, दक्षिण के प्रति अत्यंत कठोर, शांतिकाल में अनावश्यक रूप से सैनिक शासन को जारी रखने वाला, कार्यपालिका के कार्य में अकारण हस्तक्षेप करने वाला आदि कह-कहकर रद्द करते चले गये। दूसरी ओर अमरीकी इतिहास में पहली बार ऐसा हुआ कि कांग्रेस (अमरीकी संसद) ने महत्वपूर्ण विधेयकों को राष्ट्रपति के निषेध के बावजूद पारित करके,

नवनीत

१४२

नवंबर

राष्ट्रपति की सहमति के बिना ही कानून का रूप दे दिया ।

परंतु उग्र रिपब्लिकन अपने बहुमत के बावजूद राष्ट्रपति जान्सन के सभी निषेधों को रद्द नहीं कर पाये थे । राष्ट्रपति को वे अपना शत्रु समझने लगे थे और शत्रु को 'समाप्त' करना उनका एकमात्र ध्येय बन गया था । उन्होंने राष्ट्रपति पर महाभियोग लगाने का निर्णय कर लिया । किंतु इस निर्णय को कार्यान्वित करने के लिए जरूरी था सेनेट में दो तिहाई का बहुमत । यह उनके पास नहीं था । इसे प्राप्त करना उनका तात्कालिक लक्ष्य बन गया ।

अब तो समस्त महत्वपूर्ण विषयों पर—विशेषतः संघ में नये राज्यों के समावेश, पुराने दक्षिणी राज्यों के पुनः प्रवेश और सेनेटरों के अधिकार-पत्रों की स्वीकृति आदि पर—एकही सवाल को दृष्टि में रखकर निर्णय किया जाने लगा । और वह सवाल था राष्ट्रपति के विरुद्ध ठोस दो-तिहाई बहुमत कैसे खड़ा किया जाये । इस के लिए उचित-अनुचित का विवेक भी ताक पर रख दिया गया । जान्सन का समर्थन करने वाले एक सेनेटर को अत्यंत संदिग्ध उपायों द्वारा उसकी सीट से वंचित कर दिया गया । राष्ट्रपति के निषेध के

बावजूद नेब्रास्का को संघ में सम्मिलित कर लिया गया, जिससे सेनेट में दो और राष्ट्रपति-विरोधी सदस्य आ गये ।

राष्ट्रपति-विरोधी सदस्यों का बहुमत एक-एक करके बढ़ता जा रहा था । इसी बीच कन्सास के परंपरावादी रिपब्लिकन जिम लेन ने आत्महत्या कर ली । वे राष्ट्रपति के समर्थकों में से थे । राष्ट्रपति-विरोधी इससे मन ही मन बहुत खुश थे और जब जिम लेन के रिक्त स्थान पर एडमंड जी. रास निर्वाचित होकर आये, तो उनकी खुशी का ठिकाना नहीं रहा । लेन के कट्टर विरोधियों में से थे रास । अब उग्र रिपब्लिकन नेताओं को विश्वास हो गया कि वे राष्ट्रपति पर महाभियोग लगाकर उन्हें पदच्युत करने की अपनी महत्वाकांक्षा जरूर पूरी कर सकेंगे ।

और उन्हें इसका मौका भी जल्दी ही मिल गया । ५ अगस्त १८६७ को राष्ट्रपति



राष्ट्रपति एंड्रू जान्सन

जान्सन ने अपने युद्धमंत्री एम. स्टेन्टन से इस्तीफा मांगा; क्योंकि उन्हें महसूस होने लगा था कि स्टेन्टन पराजित दक्षिण पर अपनी तानाशाही चलाना चाहते हैं । इस बीच कांग्रेस ने राष्ट्रपति के निषेध के बावजूद 'कार्यकाल-विधेयक' पारित कर दिया था, जिसने राष्ट्रपति के लिए

यह लाजमी कर दिया था कि वे किसी भी ऐसे कर्मचारी को, जिसकी नियुक्ति की पुष्टि सेनेट से करानी आवश्यक हो, पद-च्युत करने के लिए सेनेट की स्वीकृति ले।

‘मैं कांग्रेस के अगले अधिवेशन से पहले इस्तीफा नहीं दूंगा।’ स्टेन्टन ने राष्ट्रपति को धमकी-सी दी।

राष्ट्रपति ने स्टेन्टन को मुआत्तिल कर दिया।

स्टेन्टन ने भी मोर्चाबंदी कर रखी थी। सारे राष्ट्रपति-विरोधी रिपब्लिकन सेनेटर उनके साथ थे ही। कांग्रेस के निर्णय का उल्लंघन करने के नाम पर जनमत को भी राष्ट्रपति के खिलाफ भड़का दिया गया। राष्ट्रपति के खिलाफ महाभियोग लगाने का प्रस्ताव रखा गया और प्रस्ताव हाउस आफ रिप्रेजेंटेटिव्स में स्वीकृत हो गया।

५ मार्च १८६८। अमरीकी सेनेट में महाभियोग का मुकद्दमा शुरू हुआ अमरीका के प्रधानन्यायाधीश की अध्यक्षता में। प्रत्येक सेनेटर इसमें न्यायाधीश था और प्रधान न्यायाधीश ने प्रत्येक को निष्पक्ष होकर निर्णय देने की शपथ विधिवत् ग्रहण करवायी थी।

हाउस आफ रिप्रेजेंटेटिव्स की ओर से मुख्य अभियोक्ता थे जनरल बेंजमिन एफ. बटलर, जो ‘न्यू ओर्लियन्स का कसाई’ कहा जाते थे।

महाभियोग के आरोप-पत्र में ११ धाराएं थीं। इनमें से पहली आठ धाराएं कार्यकाल-कानून का उल्लंघन करने तथा

स्टेन्टन की पदच्युति के संबंध में थीं। नौवीं धारा में सैनिक व्यय कानून का उल्लंघन करने के लिए एक जनरल को उकसाने का आरोप था। दसवीं धारा में अमरीकी कानूनों के विरुद्ध असंयत तथा भड़काने वाले भाषण करने का आक्षेप था और ग्यारहवीं धारा इन सब आरोपों की खिचड़ी थी। (अमरीकी राष्ट्रपति स्व. जान एफ. केनेडी के अनुसार, यह धारा जानबूझ कर अस्पष्ट रखी गयी थी, ताकि उन तमाम सेनेटरों को एकमत होने का अवसर मिल सके, जो राष्ट्रपति को अपराधी तो घोषित करना चाहते थे, पर बुनियादी प्रश्नों पर अपना मत स्पष्ट नहीं करना चाहते थे।)

पक्ष-विपक्ष के वकील मुकद्दमे में हाजिर थे। मगर धीरे-धीरे यह बिलकुल स्पष्ट दिखने लगा था कि रिपब्लिकन सेनेटरों ने भले ही निष्पक्ष निर्णय देने की शपथ ली हो, परंतु वे पूर्वग्रहों से ग्रस्त हैं और उन्होंने राष्ट्रपति के लिए सजा पहले ही तय कर रखी है। सच तो यह है कि उन सेनेटरों ने निष्पक्षता का ढोंग रचने की भी आवश्यकता नहीं समझी। और पहले ही अपने निर्णय की घोषणा कर दी।

उधर महाभियोग-विरोधी सेनेटरों को अपने पक्ष में करने के लिए घूस और दबाव का खुला खेल खेला जा रहा था।

मतदान का गणित बहुत सीधा और स्पष्ट था। सेनेट में कुल ५४ सदस्य थे। राष्ट्रपति को दोषी घोषित करने के लिए दो तिहाई अर्थात् ३६ वोटों की आवश्यकता

थी। ५४ में से बारह सदस्य डेमोक्रेट थे
शेष ४२ रिपब्लिकन। इन ४२ में से यदि
छह से अधिक सेनेटर टूट गये, तो महा-
भियोग खारिज हो जाता। स्थिति यह थी
कि छह रिपब्लिकन सेनेटर पहले ही यह
घोषणा कर चुके थे कि वे राष्ट्रपति को
अपराधी नहीं मानते। इसलिए अब राष्ट्र-
पति के विरोधियों के लिए यह निहायत
जरूरी था कि बाकी ३६ को जैसे भी हो एक-
जुट रखा जाये। यह मामला जटिल इस-
लिए था कि इन ३६ में से एक सेनेटर ऐसा
था जिसने पहले से अपना मत बताने से
इन्कार कर दिया था। सो असली सवाल
यह था कि उसकी अक्ल जैसे ठिकाने लगायी
जाये।

अपना निर्णय पहले से बताने से इन्कार
करने वाले उस एकाकी सेनेटर का नाम
था एडमंड जी. रास। वैसे इससे पहले तक
रास सेनेट में प्रत्येक रिपब्लिकन प्रस्ताव
का हमेशा समर्थन करते आये थे; इसलिए
उग्र रिपब्लिकनों को लगभग विश्वास था
कि वे राष्ट्रपति को अपराधी ही करार देंगे।

परंतु 'विश्वास' और 'लगभग विश्वास'
एक ही चीज नहीं होती। रास का वोट
अनिश्चित बना रहे, यह उग्र रिपब्लिकनों को
सह्य नहीं था। इसी बीच यह अफवाह
फैल गयी कि 'रास डांवाडोल है।' फिर तो
रास का जीना हराम कर दिया गया। रोज
उनसे अगिलें की जातीं। रोज उन्हें धम-
कियां दी जातीं। यही हाल उन छह सेने-
टरों का भी था, जिन्होंने राष्ट्रपति को दोषी

मानने से इन्कार कर लिया था। सातों
सेनेटरों को अब दिन-रात परेशान किया जा
रहा था। उन्हीं पर नहीं, उनके परिवारों
पर भी नजर रखी जा रही थी। उनकी हर
गतिविधि का व्योरा दर्ज किया जाता था।
उन्हें राजनैतिक बहिष्कार और हत्या तक
की धमकियां दी जा रही थीं।

रास के भाई को इस आशय का पत्र
मिला कि अगर आप एडमंड रास का
इरादा बता देंगे, तो आपको २० हजार
डालर दिये जायेंगे। बेन बटलर ने तो
खुल्लमखुल्ला कहा—'लो यह डालरों का
बोरा घरा है, वह बदमाश कितना धन
चाहता है?'

परंतु सारे प्रलोभनों, सारी धमकियों
के जवाब में रास ने एक ही बात कही—
'मैंने शपथ ली है कि मैं संविधान और कानून
के अनुसार निष्पक्ष न्याय-निर्णय करूंगा।
और मुझे विश्वास है कि अपने विवेक के
अनुसार तथा देशहित की दृष्टि से वोट देने
का साहस मुझमें रहेगा।'

आखिर निर्णय का दिन भी आ पहुंचा।
सेनेट की गैलरियां ठसाठस भरी हुई थीं।
दर्शकों के लिए लगभग १,००० टिकट छापे
गये थे और कांग्रेस-भवन के बाहर हर
टिकट की बोली लग रही थी। सभी सेनेटर
अपनी-अपनी कुर्सियों पर आ बिराजे थे।
एक सेनेटर को तो स्ट्रेचर पर लाया गया था।

कार्रवाई शुरू हुई। शायद अभ्यासवश
प्रधान न्यायाधीश ने शांति और व्यवस्था
बनाये रखने का निर्देश दिया। असल में

इस निदश की आवश्यकता नहीं थी; वैसे ही चुप्पी छापी हुई थी। एक सेनेटर ने वाद में कहा था—'मेरे पास बैठे कुछ सदस्य अनिश्चितता के बोझ के मारे पीले और बीमार-से हो गये थे। फर्श पर पाँव सरकने की आवाज, रेशमी वस्त्रों की सर-सराहट, पंखों की चरमर और लोगों की फुसफुसाहट सब बंद हो गयी थी।'

सबसे पहले मतदान आरंभ हुआ महा-भियोग की ११ वीं धारा पर जो कि सबसे अस्पष्ट धारा थी और जिस पर सबसे अधिक सहमति की आशा की गयी थी। एक-एक करके चौबीस रिपब्लिकन सेनेटरों ने राष्ट्रपति को दोषी घोषित कर दिया था। शेष ग्यारह रिपब्लिकन सेनेटरों के बारे में भी यह तय था कि वे राष्ट्रपति को बरी नहीं करेंगे। परंतु २४ और ११ का योग सिर्फ ३५ होता है, जबकि महाभियोग के पारित होने के लिए ३६ वोट जरूरी थे। एक वोट अनिश्चित था और वह था कन्सास के युवा सेनेटर रास का वोट।

तभी प्रधान न्यायाधीश की आवाज गूँजी—'सेनेटर रास, आपकी क्या राय है ? प्रतिवादी एंड्रू* जान्सन इस धारा में उल्लिखित महापराध का अपराधी है या नहीं ?'

प्रधान न्यायाधीश के इस प्रश्न के वाद जो कुछ हुआ, उसका विवरण स्वयं सेनेटर रास ने यों दिया है :

'उस विराट जमघट का प्रत्येक व्यक्ति मुझे अलग और स्पष्ट दीख रहा था। कुछ

के मुंह उत्सुकता के मारे खुले हुए थे और शरीर आगे को झुके हुए थे। कुछ लोग अपने हाथ ऐसे उठाये हुए थे मानो किसी आशंकित वार को रोकना चाहते हों सबके चेहरों पर आशंका और आशा का मिश्रण झलक रहा था। कुछ के चेहरों से प्रतिहिंसापूर्ण घृणा टपक रही थी; कुछ के चेहरे आशा से दमक रहे थे। सेनेटर अपनी डेस्कों पर आगे झुके हुए थे। कुछ ने ध्यान से सुनने के लिए हाथ कानों से लगा रखे थे। बड़ी जवर्दस्त जिम्मे-दारी थी। और परिस्थितियों के विचित्र संयोग के कारण जिस व्यक्ति पर यह जिम्मेदारी आन पड़ी थी, यदि वह इसे दुःस्वप्न की तरह दूर करने की, इससे बचने की कोशिश करे तो उसमें आश्चर्य ही क्या था ! मैंने देखा कि मेरी कन्न मुंह बाये हुए है। मित्रता, पद, प्रतिष्ठा, धन-संपत्ति और वे सब वस्तुएं जो किसी भी महत्त्वाकांक्षी व्यक्ति के लिए जीवन को स्पृहणीय बनाती हैं, मेरी जवान की एक हलचल से शायद सदा के लिए समाप्त हो जाने वाली थीं। इसलिए अगर मेरी आवाज कांप गयी और दूर बैठे सेनेटरों को मुझसे अपना निर्णय पुनः घोषित करने की मांग करनी पड़ी, तो उसमें अचरज ही क्या है !'

परंतु दूसरी बार रास की आवाज बिल-कुल भी कांपी नहीं। बहुत स्पष्ट और दृढ़ आवाज में उन्होंने कहा—'निर्दोष।'

पासा पलट गया। राष्ट्रपति बच गये। मुकद्दमा मानो समाप्त ही हो गया। अब

प्रधान न्यायाधीश के द्वारा राष्ट्रपति के बरी किये जाने की घोषणा मात्र एक औपचारिकता रह गयी थी ।

०००

राष्ट्रपति एंड्रू जान्सन तो बच गये; मगर अपने विवेक और अंतःकरण की आज्ञा पर चलने का दंड एडमंड जी रास को भुगतना पड़ा । अखबारों में इन्हें क्षुद्र नारकीय कीड़ा, और 'मुट्ठी-भर पैसे के लिए बिक जाने वाला' कहा गया । मांग की गयी कि रास और उनके छह साथियों के साथ 'किसी प्रकार का रहम या रियायत न की जाये ।'

इसके बाद वे सातों सज्जन फिर कभी सेनेटर नहीं चुने गये । उनका राजनैतिक जीवन ही समाप्त हो गया । रास जब कत्सास लौटे तो उन्हें और उनके परिवार को सामाजिक बहिष्कार, मार-पीट तथा गरीबी का सामना करना पड़ा ।

परंतु रास को अपने किये का कोई पछतावा नहीं था । उन्होंने कहा था—'जो लाखों आदमी आज मुझे शाप दे रहे हैं, वही कल मुझे इस बात के लिए असीस देंगे कि मैंने देश को भयंकर खतरे से बचा लिया ।'

क्या था यह खतरा ?

रास के ही शब्दों में, 'शासन के समाना-

धिकारी अंग के रूप में कार्यपालिका की स्वतंत्रता की परख हो रही थी । यदि राष्ट्रपति को अपमानित और राजनीति से बहिष्कृत होकर पदत्याग करना पड़े, और वह भी अपर्याप्त प्रमाण के आधार पर तथा दलीय कारणों से, तो राष्ट्रपति का पद अपना सारा गौरव खो बैठेगा । वह सदा के लिए विधायकों की इच्छा का दास बन जायेगा । हमारी सरकार के समक्ष ऐसा खतरा पहले कभी नहीं आया था यह था अमरीका की राजनीति के निकृष्टतम तत्त्वों द्वारा सरकार पर नियंत्रण का खतरा ।'

राष्ट्रपति के निर्दोष घोषित करने वाले एक अन्य रिपब्लिकन सेनेटर ने कहा था—'राष्ट्रपति पर महाभियोग लगाने की नजीर एक बार कायम हो गयी तो जब भी किसी राष्ट्रपति का हाउस आफ रिप्रेजेंटेटिव्स के बहुसंख्यकों को एवं सेनेट के दो तिहाई सदस्यों से ऐसे किसी भी प्रस्ताव पर विरोध होगा जिसे वे लोग महत्वपूर्ण समझते हों, तो राष्ट्रपति की स्थिति खतरे में पड़ जायेगी । फिर संविधान में निर्दिष्ट अनिरोधों और संतुलनों (चेक्स एंड बैलेंसेज) का क्या होगा, जो संविधान के लिए परमावश्यक हैं ?'

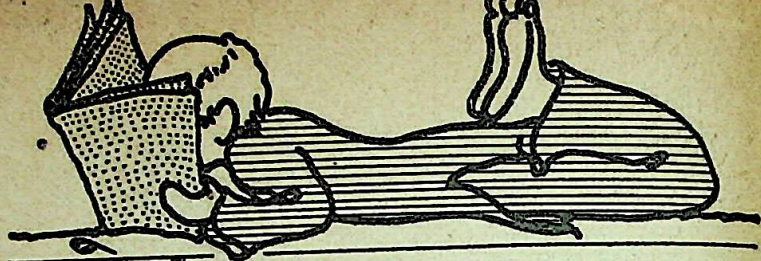


एक वचन विज्ञापन

जमशेदपुर में हुए दंगे की अवधि का एक विज्ञापन—

'हम जन्म-जन्मांतर के संबंधों में विश्वास रखते हैं, इसीलिए इन दिनों भी आसान किस्तों में आपके लिए हमारे यहां कूलर और पंखे उपलब्ध हैं।' —सत्य स्वरूप दत्त





ग्रंथलोक

समीक्षक : पृथ्वीनाथ शास्त्री

* आलोक गंगा * डा. कृष्णप्रसाद मिश्र;
वाणी प्रकाशन, दिल्ली-७; ११६ पृ.;
१० रुपये।

डा. मिश्र के इस कहानी-संग्रह में तीन अनुवादकों द्वारा ओड़िया से अनूदित ११ कहानियाँ हैं। डा. मिश्र स्वयं दर्शनवेत्ता हैं, सो मानव-मन की गहराई में पैठने की सहज क्षमता रखते हैं। यों भी वे कथा-साहित्य में किसी खास फैशन, वाद या आंदोलन के पक्षधर नहीं हैं। किंतु आधुनिक भावबोध और सशक्त संप्रेषण-क्षमता उनकी समस्त कथाकृतियों में परिलक्षित रहते हैं। हिंदी में यह उनका दूसरा कहानी-संग्रह अनूदित हुआ है, एक लघु उपन्यास भी छप चुका है।

प्रस्तुत संग्रह की शीर्षक-कहानी : 'आलोक गंगा' सबसे श्रेष्ठ 'कहानी' है। श्यामाचरण का मित्र इंद्रपति जलाशय में अपनी तैरने की कला का प्रदर्शन करते-करते डूब जाता है। किंतु लोग उसकी अपनी गलती को कारण न मानकर उसकी मृत्यु का 'अन्यथासिद्ध' हेतु पत्नी मीनाक्षी के शारीरिक लक्षणों में ढूँढ़ते हैं, जो उनकी

नवनीत

परंपरागत अंधविश्वासी धारणा के अनुसार वैधव्य के सूचक हैं। वैज्ञानिक होने पर भी श्यामाचरण अपनी मानसिक अपराध-ग्रंथि (डूबने से पहले इंद्रपति ने शायद उससे मदद मांगी थी, लेकिन वह गुस्से में भूरा वहाँ से चल पड़ा था, क्योंकि बार-बार पुकारने पर भी इंद्रपति तालाब से बाहर नहीं आया था) का निराकरण स्वयं अपनी पत्नी सुप्रभा में भी 'वैधव्य' के लक्षण देखकर उसके प्रति क्रूरता एवं हिंसा-भाव के प्रदर्शन से करता है। किंतु अंत में सुप्रभा का मातृत्व-मंडित नारीत्व पति को खूनी होने से बचा लेता है। उसे यह बोध हो जाता है कि पुरुष अपनी भूल से मरता है और दोष मढ़ देता है नारी पर। सुपरिणति होती है सुप्रभा के पावन स्पर्श से उपलब्ध आगंद और विश्वास में।

अन्य कहानियों में 'मुखौटा', 'एक हिंप्पी तरुणी की कहानी', 'यौवन की वापसी', 'ट्रोजन घोड़े' (जो नवनीत में छपा था) 'हिमपद्म' और 'यशोदा का शोक' अच्छी हैं। 'एक बात' और 'देवयानी और नियागरा' सामान्य हैं। कृति की विशेषता है

१४८

नवंबर

लेखक के 'अपने अनुभवों' की विदग्ध सहेज जो उसने कनाडा और अमरीका में हासिल की है, किंतु जिसमें प्राणवत्ता उसकी अपनी भूमि और भाषा के साथ गहराई के साथ जुड़े रहने से आयी है। यह संग्रह-विदेशी मानव-जीवन के कुछ हृद्य और अमिट चित्रों के लिए भी स्मरणीय रहेगा।

०००

* प्रतिमान (त्रैमासिक संकलन) *
सं. राजेन्द्र कुमार मेहरोत्रा एवं श्याम किशोर सेठ; सदर बाजार, शाहजहांपुर-२४२००१; चौथा (पृ. १७६) और पांचवां (पृष्ठ १६४) अंक, प्रत्येक का मूल्य ४ रुपये।

शुलाहाबाद से शुरू हुई हिंदी की यह संकलन-परंपरा सचमुच श्लाघ्य है। संकलनों में प्रायः सभी कुछ स्तरीय होता है—साक्षात्कार, कहानियां, लेख-टिप्पणी, कविताएं, समीक्षाएं, बातें, परिसंवाद, रपट आदि। प्रस्तुत दोनों में मार्कंडेय, राजेन्द्र यादव, भीष्म साहनी, शेखर जोशी, रवीन्द्र कालिया, रमेश उपाध्याय जैसे लेखक हैं। साहित्य में मध्यम वर्ग की भूमिका पर अच्छे विचार हैं। बुद्धिजीवी समुदाय के दायित्व पर खरी बातें हैं। रचना-प्रक्रिया के मर्म का उद्घाटन है। श्रीरवप्रसाद गुप्त और नागार्जुन के व्यक्तित्व और कृतित्व के कुछ महत्वपूर्ण पक्षों का सुंदर आकलन है। कम कीमत में इतनी अच्छी सुपाठ्य और सुप्रकाशित सामग्री के लिए संपादकों को बधाई। मेरा खयाल है, ऐसे संकलनों

में कुछ श्रेष्ठ अनुवाद, यात्रा और पत्र-साहित्य एवं संस्मरण, भी हों तो और भी अच्छा होगा।

०००

* ये खर्चीली बीवियां * चंद्रगुप्त विद्यालंकार; राजपाल एंड सन्ज, दिल्ली; १०७ पृष्ठ; १० रुपये।

* गौली लकड़ियों का गट्टर * सोहन शर्मा; हिंदी ग्रंथ रत्नाकर, बंबई-४; १४५ पृष्ठ; १० रुपये।

• आत्मज्ञ * प्रवणकुमार वंद्योपाध्याय; शारदा प्रकाशन, महरोली, नयी दिल्ली; १०० पृष्ठ; १० रुपये।

* कच्चे मकान * निरुपमा सेवती; नशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली; ११८ पृष्ठ; १२।। रुपये।

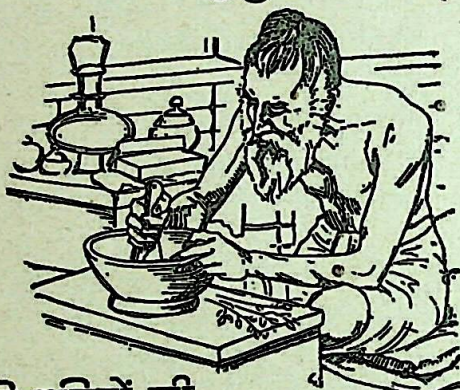
श्री सोहन शर्मा की कहानियों में माहौल और चरित्रों के सशक्त चित्र हैं। लेखक की समवेदनाशक्ति भी अच्छी तरह जगी हुई है। गांव और शहर सभी जगह उनके कैमरे का फोकस ठीक काम करता है। इस संग्रह की पंद्रहों कहानियां मनोरम हैं। मुझे 'दूसरा अंधेरा', 'एक और आत्महत्या' और 'समानांतर' ने बहुत प्रभावित किया। समग्र रचना में भाषा की खानी भी सुखप्रद है। कैमरा भी इतना बड़ा है कि देखते ही बनता है।

प्रणवकुमारजी सिद्धहस्त साहित्यकार हैं। संग्रह की पांचों कहानियों में उनकी समाज-सचेतनता बड़े सशक्त शब्दों में कलात्मकता के साथ व्यक्त हुई है। 'आलोक-

जनसेवा के
५० वर्ष



हम
आभारी हैं



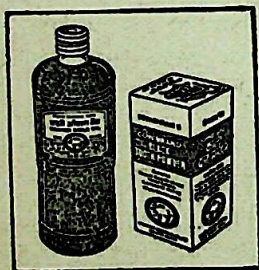
अभि मुनियों की
युगों युगों की शोध

सेवाश्रम का

गाय



छाप



**ब्राह्मी आँवला केश-तैल
और काला दन्त मन्जन**

ब्राह्मी आँवला केश-तैल आधुनिक
पद्धतिसे निर्मित केवल तैल ही नहीं
एक आयुर्वेदिक सौंदर्य प्रसाधन है।
तथा काला दन्त-मंजन केवल मंजन ही
नहीं एक आयुर्वेदिक औषधि है।

आयुर्वेद सेवाश्रम लिमिटेड उदयपुर, वाराणसी, हैदराबाद

hered AS-147

पुत्र' और 'आत्मज' इस संग्रह की श्रेष्ठ कहानियां हैं।

'ये खर्चीली बीवियां' श्री चंद्रगुप्तजी की चौदह कहानियों का नवीनतम संग्रह है। मुख्य स्वर व्यंग्य है, अतः पाठकों को निश्चय ही रुचिकर लगेगा।

सेवतीजी ने नारी-मानसिकता और आधुनिक परिस्थितियों में धनती-बिगड़ती-संवरती युवा-युवतियों की मनःस्थितियों का बड़ा जीवंत खाका खींचा है अपनी कहानियों में। एक नयी 'नैतिकता' भी है, जो आज तथाकथित 'हाइ सोसायटी' का मूलमंत्र बन गयी हैं। 'चालक' कहानी इस दृष्टि से संग्रह की जोरदार कहानी है। यह उन लोगों की भ्रांति को उजोगर करती है, जो दोगले 'कल्चर' में रहकर भी दोगले इंसानों से वचना चाहते हैं। पर साथ ही, ये आठों कहानियां आज की युवतियों की विवशता भी प्रस्तुत करती हैं। सचमुच वे 'कच्चे मकानों' में ही रहते हैं अभी तक।

०००

* तेंदुआ और चीता * रामेश ब्रेदी; प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, नयी दिल्ली; ७१ पृष्ठ; ८ रुपये।

'सिंह' और 'गेंडा' लिखने के बाद वेदीजी ने इस पुस्तक में 'तेंदुआ और चीता' का परिचय दिया है। कृति चित्रों और चुटकुलों से बहुत ही मनोरम बन गयी है। वन के हिंस्र पशुओं के जीवन की जानकारी

के लिए अवश्य ही संग्रहणीय है। वच्चे, जवान और बूढ़े सभी इसे पसंद करेंगे। कीमत भी एकदम वाजिव है।

०००

* तुंगभद्रा के तीर * उग्रसेन गोस्वामी; संजुल प्रकाशन, गुड़गांव; १२५ पृष्ठ; ८ रुपये।

विजयनगर साम्राज्य की यह सचित्र कहानी विषय का एक संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत करती है। लेखक ने भूमिका में कहा है—'विभिन्न विज्ञ इतिहासवेत्ताओं की कृतियों से तथा सैकड़ों वर्ष पूर्व विजयनगर की यात्रा करने वाले अनेक विदेशी यात्रियों के वृत्तांतों से भरपूर मदद मिली है।' किंतु इनकी कोई भी सूची नहीं दी गयी। पुस्तक छात्रोपयोगी तो है ही, भारतीय इतिहास के इस महत्त्वपूर्ण अध्याय से अपरिचित सामान्य हिंदी पाठक भी इससे लाभान्वित होगा।

०००

* ओस-धुआं * मनोज सोनकर; क्षितिज प्रकाशन, बंबई-४; ८० पृष्ठ; ६ रुपये।

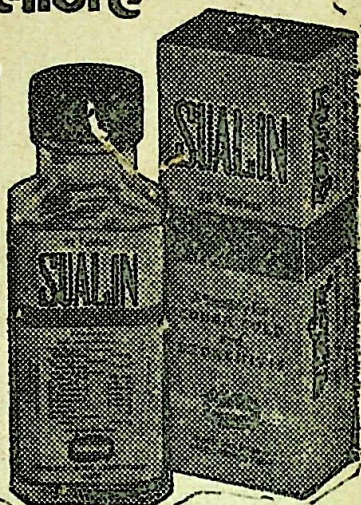
सोनकर की कविताएं सभी मनोरम हैं। भाषा में रवानी है और शैलीगत प्रयोग मनोहर हैं। कहीं वे एकदम नपे-तुले चित्र खींच देते हैं, जो शीघ्र भुले नहीं जा सकते तो कहीं थोड़े-से शब्दों में इतनी अनुभूति भर देते हैं कि पाठक सहृदय हो उठता है। जैसे—'आदमीयत की फिक्र महज इतनी/नजर न आये जरा-सा आदमी।'।

खांसी सूखी हो या बलगामी- इसका आसान इलाज है **सुआलीन**

खांसी किसी भी तरह की हो और किसी भी कारण से हो, सुआलीन इसका बलि उत्तम और आसान इलाज है। सुआलीन में मुलेठी, तुलसी, अरुना, दालचीनी तथा अन्य कड़ी बुद्धियाँ सम्मिलित हैं, जो खांसी के कीटाणुओं को नष्ट हो नहीं करती बल्कि उन्हें दुबारा पनपने से रोकती हैं। सुआलीन की चार टिकियाँ माथा रूप गरम पानी में घोलकर पीने से बिरोधकर बलवर्षी खांसी में, शीघ्र आराम मिलता है।

सुआलीन

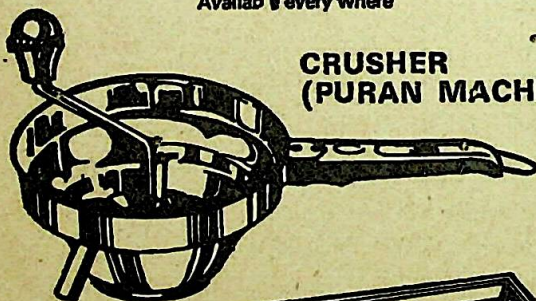
हर प्रकार की खांसी में शीघ्र
आराम के लिए



ANJALI

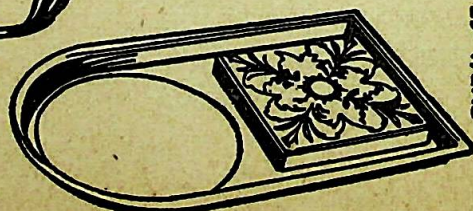
Kitchenware

Available everywhere



**CRUSHER
(PURAN MACHINE)**

**VEGETABLE
CUTTING
TRAY**



BYP/A-67

या 'जिंदगी एक फसल-सी/ जमे उखाड़,
उखाड़।'।

०००

* फूल भी, शाल भी * डा. नरेश;
पुस्तक गृह, चंडीगढ़; ९६ पृष्ठ; १०
रुपये।

डा नरेश अपनी कविताओं में साधारण
से असाधारण की ओर सहज ही
अग्रसर होते हैं। चूंकि 'कविता' उनका
'शौक नहीं मजबूरी है।' कविता के शब्दों
में उनकी परिपक्व अनुभूतियां ही व्यक्त
हुई हैं। यह कविता-संग्रह उनकी प्रथम
प्रकाशित कृति है, कुछ कविताएं अच्छी
बन पड़ी हैं।

०००

* महानाटक * सुरेश श्रीवास्तव,

संभावना प्रकाशन, हफ़ुड-२४५१०१;
८० पृष्ठ; १० रुपये।

'महानाटक' में कवि सुरेश श्रीवास्तव
का यह प्रयत्न रहा है कि 'हर कविता
वर्तमान महासंदर्भों का महानाटक प्रस्तुत
करे।' पाठकों से भी उनकी यही अपेक्षा
है कि 'वे इन कविताओं की महानाटकीय
मुद्राएं पढ़ेंगे।' कुछ पंक्तियां बहुत ही भाव-
गर्भ हैं: 'सारे संघि पत्रों पर पड़ गयी हैं दरारें/
जन्म ले रहे हैं नये-नये ज्वालामुखी / लावे
में वह जाना चाहते हैं अनेक कुरुक्षेत्र।'।
अथवा 'अधिकार की नोकों पर / झेल लिये
जाते हैं जीने के संकल्प।' और भी 'आंगन
में प्रतीक्षारत है देवन्व / और पूजा के नाम
पर चढ़ाये गये/वासी फूलों से पुजारी कर
रहा है / खाली सिंहासनों का शृंगर।'।

★

सन १९०५ या १९०६ में एक बार हेस्टिंग्स हाउस में प्रसादजी, मैथिलीशरणजी
गुप्त, राय कृष्णदास आदि एकत्र थे। संयोग से पं. रूपनारायण पांडे भी, जो किसी काम
से काशी गये हुए थे, इन महानुभावों से मिलने वहां पहुंच गये। भादों का महीना और
सायंकाल का समय। अंधेरा बढ़ रहा था और वर्षा भी हो रही थी। किसी प्रकार कविता
और फिर समस्यापूर्ति की बात छिड़ गयी।

उन दिनों पांडेजी काव्यक्षेत्र में पदार्पण कर रहे थे और उन्हें समस्यापूर्ति का
अभ्यास हो चला था। प्रसादजी ने समस्या दी—'रैन अंधेरी'; किंतु शर्त यह जगायी कि
शृंगाररस में न हो। पांडेजी ने तत्काल यह पूर्ति कर दी:

बुद्धि, विवेक की ज्योति बुझी, समता, मद, मोह घटा घन घेरी।

है न सहारौ, अनेकन हैं ठग, पाप के पन्ना की रहै फेरी।

त्यों अभिमान कौ कूप इतै, उतै कामना रूप शिलान की ढेरी।

तू चलू मूढ़ ! सम्हारि, अरे मन ! राह न जानी है, रैन अंधेरी !

इस चमत्कारपूर्ण आशु पूर्ति को सुनकर सब उपस्थित विदग्ध साहित्यिकों ने पांडेजी
की काव्यशक्ति की भूरि-भूरि प्रशंसा की।

—डा. गोपाल प्रसाद 'वंशी'

★

OKASA
THE 20th CENTURY TONIC RESTORATIVE

भरपूर जिंदगी के लिए ताकत

जीवन की खुशियाँ हैं ताकत और तंदुष्ती
इनके लिए ओकासा में शामिल हैं ६ बायो
केमिकल्स, ६ खनिजद्रव्य, १० सखरी
विटामिन तथा अश्वगंधा और योहिम्बाइन
जैसी अनमोल जड़ीबूटियाँ। जीवन को
स्फूर्ति और उत्साह से भर दीजिए—
ओकासा की मशहूर चांदी चढ़ी टॉनिक
टिकियाँ लीजिए.

अब नया पैकेट, इस्तेमाल में आसान

ओकासा

सभी बड़े-बड़े केमिस्टों के यहाँ मिलती है
ओकासा की मुफ्त पुस्तिका के लिए लिखिए:

OKASA CO. PVT. LTD.,
P. B. No. 396, Bombay 400 001.

बवासीर

शुरू होते ही
इलाज़ कीजिये
द्विश्वसनीय

हडेन्सा

मारहूम

लगाइये

-ऑपरेशन की
नौबत न आने
दीजिये !

3651 HIN

बी-टेक्स

सफ़ेद मलमल



मजकूर,
स्वाज,

रवरुज, नायट साठी

बी-टेक्स नवसारी (गुजरात)

मैं धोबी हूँ

यदुनाथ शर्मा

श्री एस. एम. जोशी बताने लगे थे.....
भूतपूर्व रेल-मंत्री श्री मधु दंडवते की
पत्नी श्रीमती प्रमिला दंडवते एक दुर्घटना
में घायल हो गयी थीं।

बंबई सेंट्रल स्टेशन के पास जगजीवन
राम अस्पताल में उनका इलाज हो रहा था।
उनसे मिलने जाना था।

एक टैक्सी रोकी, उसमें बैठ गया।

टैक्सी वाले से पूछा—‘जगजीवन राम
अस्पताल जानते हो?’

बोला—‘हां-हां, जानता हूँ। जगजीवन
बाबू हमारे ही प्रदेश के हैं। वे चमार हैं न?’

‘तुम्हें यह पता कैसे चला?’

‘क्यों न चलेगा? हमारे जाने पर उनकी
जाति के लोग अपना काम छोड़कर उठकर
खड़े हो जाते हैं।’

‘‘क्यों उठकर खड़े हो जाते हैं?’’

‘वे नीची जाति के हैं। हम उनसे ऊंची
जाति के हैं।’

‘तो तुम कौन हो?’

‘मैं मल्लाह हूँ।’

‘तो क्या नीची जाति के आदमी का
ऊंची जाति वाले के आने पर हाथ का काम
छोड़कर खड़े हो जाना जरूरी है?’

‘बिलकुल। ऐसी ही परंपरा है।’

‘तो तुम भी स्टीयरिंग छोड़कर खड़े हो
जाओ।’

‘क्यों?’

‘मल्लाह तो ब्राह्मणों से नीची जाति
के हैं, और अभी तुमने बताया न कि ऊंची
जाति वाला आ जाये तो नीची जाति वाले
को हाथ का काम छोड़कर खड़े हो जाना
चाहिये।’

‘लेकिन साहब, वह तो मैं देहात की
बात बता रहा था। शहर में थोड़े ही वह
सब चलता है!’

मैं चुप हो गया।

फिर उसने पूछा—‘साहब, आप धंधा क्या
करते हैं?’

उसका सवाल सुनकर मुझे कुछ आश्चर्य
हुआ। कह दिया—‘मैं धोबी हूँ, धोबी!’

वह बोला—‘साहब, मजाक तो नहीं
कर रहे? अभी तो कह रहे थे कि ब्राह्मण
हूँ और अब बता रहे हैं कि धोबी हूँ।’

‘तो इसमें आश्चर्य की क्या बात है?
तुम मल्लाह हो, फिर भी नाव चलाने के
बजाय टैक्सी चला रहे हो? तो ब्राह्मण
धोबी का धंधा करे तो क्यों आश्चर्य होना
चाहिये?’

‘नहीं साहब, विश्वास नहीं होता।’

सफ़ेदी ऐसी चकाचौंध कि जो भी देखे, वो बोले...



यह है

डेट

डिटर्जेंट
टिकिया की
धुलाई



Shilpi DM 35A/78 Hln

‘अरे भैया, धुलाई का काम करने वाले को ही तो घोवी कहते हैं न ?’

‘हां साहब !’

‘और मैं दिल और दिमाग की धुलाई का काम करता हूं। दस मिनट से वही तो कर रहा हूं।’

विहार, उत्तर प्रदेश और प्रदेशों में घोवी की गणना बहुत नीची जातियों में होती है।

वह हक्का-बक्का मुझे देख रहा था। मैंने कहा—‘आश्चर्य की इसमें क्या बात है ? दिल और दिमाग की धुलाई का काम सचमुच ही मैं पिछली आधी सदी से कर रहा हूं। हमारे दिल और दिमाग ऐसे मैले हो गये हैं कि कपड़ा फट जाता है, लेकिन ये ऊंच-नीच के धब्बे नहीं धुलते। भगवान बुद्ध से लेकर गांधी-अंबेडकर तक सबने दिल-दिमाग की धुलाई करने

की बराबर कोशिश की। घोवी धोते-धोते थक गये, लेकिन ये धब्बे हैं कि अभी नहीं मिटे हैं। गांधी, अंबेडकर तो चले गये, उनका काम किसी न किसी को उठाना ही पड़ेगा। कवीर ने कहा था—सो चांदर सुर नर मुनि ओढ़ी, ओढ़ि के मैली कीन्हों चदरिया। दास कवीर जतन से ओढ़ी, ज्यों की त्यों धरि दीन्हों चदरिया। कवीर की तरह मैली किये वगैर अपने जीवन की चादर वैसी ही रखेंगे, तभी यह घोवी का धंधा बंद हो सकेगा। नहीं तो किसी न किसी आदमी को यह धंधा करना ही पड़ेगा।’

टैक्सी अस्पताल पहुंच चुकी थी। टैक्सीवाला मेरी बातों से आश्चर्य कर रहा था। शायद वोर भी हुआ हो। पैसा चुकाते ही मुस्कराते हुए निकल गया।

—३१३, शुक्रवार पेठ, पूना-४११००२



एक सज्जन अपने लिए कुरता सिलवाने कपड़ा लेकर एक दर्जी की दुकान में गये। दर्जी बोला—‘यह कपड़ा काफी नहीं। आधा मीटर और चाहिये !’ सज्जन कपड़ा उठाकर पास ही दूसरे दर्जी की दुकान में गये। यह दर्जी उनका नाप लेकर बोला—‘अगले बुध को आइये। आपका कुरता तैयार मिलेगा।’

नियत दिन वे सज्जन उस दुकान में गये, तो देखा कि पांच साल का एक बच्चा उन्हीं के दिये हुए कपड़े से बना नया कुरता पहने बैठा है। दर्जी मुस्कान के साथ उनके हाथ में कुरता थमाते हुए बोला—‘आपके दिये कपड़े में कुछ बच गया था। मैंने सोचा, इतना-सा कपड़ा आपके किस काम आयेगा। सो उसी से अपने बच्चे के लिए भी मैंने एक कुरता सी दिया !’ सज्जन को ताज्जुब हुआ कि इसने कपड़ा बचा भी लिया जबकि पहला दर्जी तो और अधिक कपड़ा मांग रहा था ! वे अपने कुरते और उस बच्चे के साथ बगल के दर्जी के पास गये और बोले—‘तुम अधिक कपड़ा मांग रहे थे। पर बगल वाले ने तो कपड़ा बचाकर अपने पांच बरस के बेटे के लिए भी एक कुरता सी लिया है।’ ‘पर मेरा बेटा तो पांच बरस का नहीं, बीस बरस का है ! मैं कैसे सीता ?’ दर्जी ने तुरंत उत्तर दिया ! —रा. वीलिनाथन



दो क्षण तो हैंस लें

जुआरियों के अंतरराष्ट्रीय अड्डे मोन्टो कालों के एक होटल में एक अमरीकी प्रकाशक जेम्स गार्डन बेनेट नियमित आते और एक खास कोने में रखी एक खास कुर्सी पर बैठते थे। वह उनकी निश्चित और प्रिय जगह थी। एक दिन वे आये, तो अपनी कुर्सी पर दूसरे को बैठा देखा। वे ठिठके। क्षण-भर में उन्होंने निर्णय कर लिया और मंहमांगी कीमत देकर होटल को खरीद लिया। फिर अपनी कुर्सी पर बैठे हुए आदमी से बड़ी नम्रतापूर्वक कुर्सी खाली करने को कहा।

उस कुर्सी पर बेनेट ने वह शाम खूब आनंद से बितायी। फिर जब जाने का समय हुआ, तो पूरा होटल ही 'टिप' में उस वेटर को दे दिया, जो उनकी सुख-सुविधा का खयाल रखता था। उनकी इस उदारता ने क्षणमात्र में एक साधारण आदमी को मोन्टे कालों के एक प्रसिद्ध होटल का मालिक बना दिया।

०००

कविता-पाठ चल रहा था। श्रोताओं में कुछ फुसफुसाहट हुई। कवि महोदय ने रुककर श्रोताओं से पूछा—'आप लोगों को कविता ठीक से सुनाई पड़ रही है?'

नबनीत

एक श्रोता ने कहा—'नहीं।'

तुरंत माइक ठीक किया गया और कवि ने अधिक उत्साह से कविता पढ़ी। अब पहले से अधिक आवाज आने लगी। कवि ने पुनः प्रश्न किया—'प्रिय श्रोताओ, अब आपको क्या तकलीफ है?'

'यही कि अब आपकी कविता सुनायी दे रही है।' एक श्रोता ने उत्तर दिया।

०००

प्रकृति-प्रेमी सज्जन एक पहाड़ की आगे बढ़ी हुई चट्टान पर से समुद्र-दर्शन का आनंद ले रहे थे। उनके एक हाथ में मिठाई का डिब्बा था। उनका बेटा आया और उनके कोट का छोर पकड़कर बोला—'पापा, मम्मी कहती हैं कि यहां खड़े रहना सुरक्षित नहीं है। इसलिए या तो आप उतर चलें, नहीं तो मिठाई का डिब्बा मुझे दे दें।'

०००

रोगी : हे भगवान, बहुत दर्द हो रहा है। इससे तो अच्छा है कि तू मुझे मौत दे दे।

डाक्टर : घबराओ नहीं, भई में आ गया हूं।

०००

किराये पर मकान ढूँढ़ रहे कलकं को

नवंबर

मकान-मालिक ने घर दिखाते हुए कहा—
‘ये दो कमरे, रसोईघर, स्नानघर, बरामदा
और....’

‘और किराया?’ क्लर्क ने उत्सुकता
से पूछा।

‘केवल ३०० रुपये।’ मकान मालिक ने
बताया। फिर आश्वासन देने हुए बोला—
‘और बिजली-पानी का बिजुल तुम्हें नहीं
चुकाना पड़ेगा। वह मुफ्त में रहेगा।’

‘और भोजन?’ क्लर्क ने दबी जवान
से पूछा।

०००

अभिनेत्री के घर पार्टी थी। चीनी मिट्टी
के सुंदर से सुंदर वरतन अतिथियों के लिए
निकाले गये थे। खाने के बाद कमसिन
नौकरानी टेबल पर से एक साथ बहुत-सी
प्लेटें उठाकर रसोईघर की ओर जाने लगी
और अचानक तमाम प्लेटें हाथ से छूटकर
खन्न से फर्श पर गिरीं और टूट गयीं।

★

काल-बेल बजी। दरवाजा खोलने पर देखा कि मकान के सामने बैठने वाला भिखारी है।
‘आज आपसे भीख नहीं एक सूचना चाहिये।’ उसने कहा।

मुझे कुछ आश्चर्य हुआ—‘कैसी सूचना?’

‘आज आप “मैटीरियल हैंडलिंग” के सेमिनार में जा रहे हैं कंपनी की ओर से...’

मेरा आश्चर्य और भी बढ़ गया—‘तुम्हें कैसे मालूम?’

‘आपके मकान के सामने बैठकर भीख मांगता हूं, इसलिए यह सब खबर मुझे रहनी
ही चाहिये। मैं आपसे यही पूछना चाहता था कि सेमिनार में चाय किस समय मिलेगी
और लेंच किस समय दिया जायेगा? सच बात यह है कि आजकल खाने-पीने का जितना
अधिक और जितना बढ़िया प्रबंध सेमिनारों में रहता है, दूसरी जगह नहीं रहता। इसी
कारण मैं शहर में होने वाले हर सेमिनार में उपस्थित रहना चाहता हूं और उनकी खबर
रखता हूं।’

—सत्य स्वरूप दत्त

★

अभिनेत्री रसोईघर की ओर दौड़ी। उसका
कीमती डिनर-सेट सैकड़ों टुकड़ों में चारों
ओर बिखूरा पड़ा था।

क्षण-भर के स्तब्ध मौन के बाद नौक-
रानी बोली—‘मालकिन, यह अच्छा हुआ
कि मैंने अभी इन्हें धोया नहीं था। वरना
मेरी मेहनत बेकार जाती।’

०००

एक सज्जन होटल में चाय-टोस्ट का
आर्डर देकर इंतजार करते-करते थक
गये थे।

इतने में कोई वेटर सामने से गुजरा
तो चिढ़कर उससे बोले—‘तुम्हीं लोगों में
से कोई मुझसे आर्डर ले गया था, कहां
चला गया वह?’

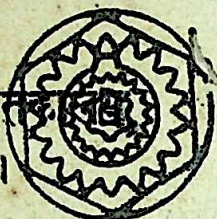
‘जी, दाढ़ीवाला था वह?’

‘जब उसने मुझसे आर्डर लिया था,
तब तो दाढ़ी नहीं थी उसके, अब उग आयी
हो, तो ईश्वर जाने।’

यांत्रिक प्रगति का अनुपम प्रतीक

मुमुक्षु भवन वेद पैदाऊ पु कि सिद्धि

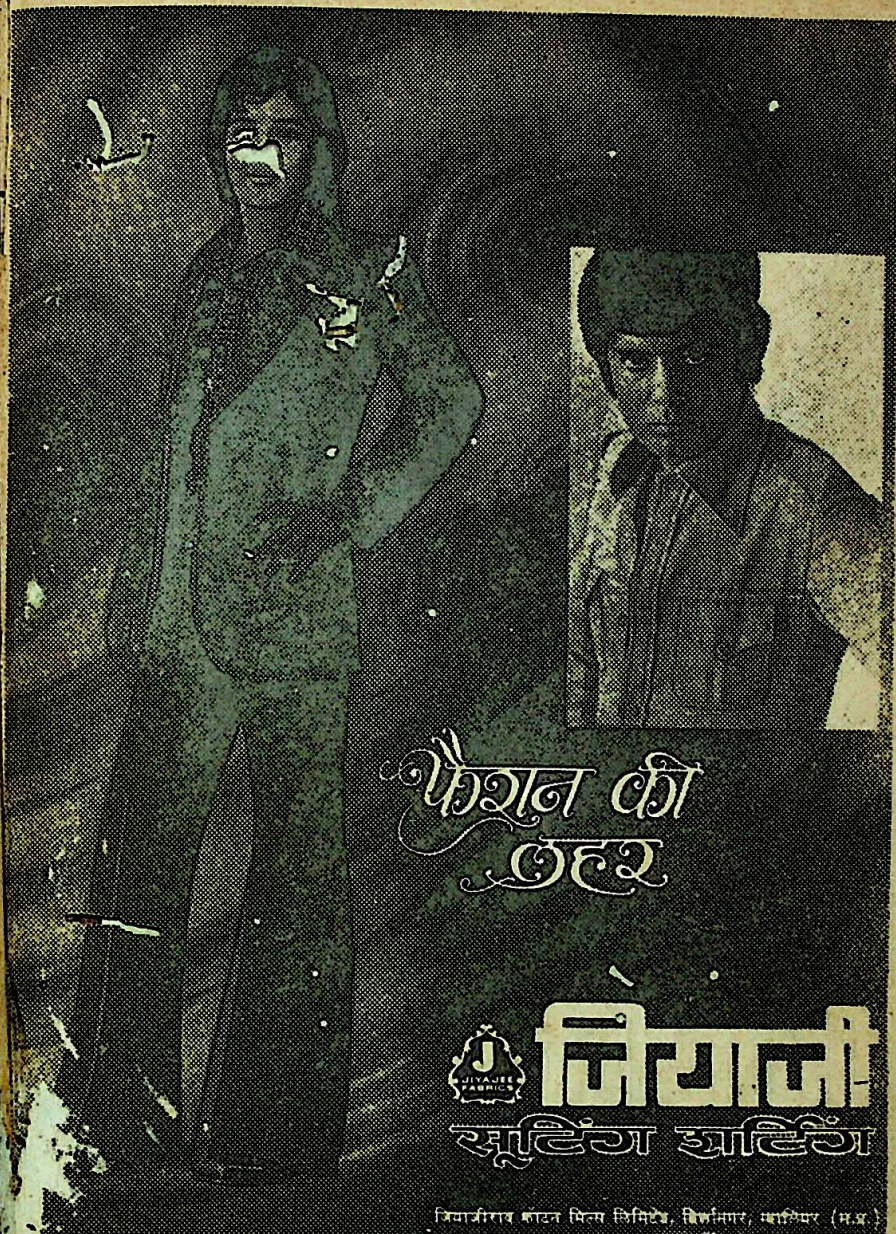
अस्सी, पारणसी ।



लोहे में गोल छेद बनाना आसान है, पर उसे विभिन्न प्रकार का बनाने के लिए विशेष प्रकार के टूल 'ब्रोच' की जरूरत होती है। जिन-जिन देशों में मोटर, लारी, स्कूटर, मशीन टूल इत्यादि इंजीनियरिंग उत्पादन होते हैं, वहां 'ब्रोच' उत्पादन परमावश्यक होता है। डेंगर-फोर्स्ट टूल लिमिटेड ने इस आवश्यकता की पूर्ति की है। उनके बनाये 'ब्रोच' से लोहे या अन्य धातु के भीतर व बाहर के भाग को आसानी से विविध स्वरूप दीजिये।



डेंगर-फोर्स्ट टूल्स लि.,
पहला पोखरण रास्ता,
थाना (बंबई)



फैशन की
ओर



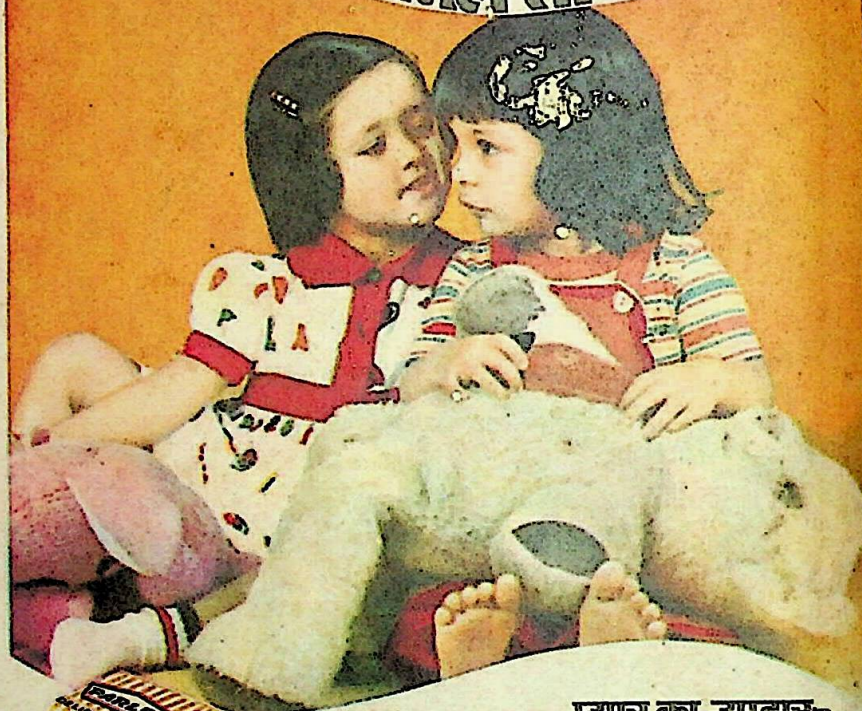
जियाजी
सूटिंग आर्टिंग

जियाजीराव साठन प्रिन्टिंग लिमिटेड, बिलासपुर, मध्य प्रदेश

एक मूल्य रु. २४

मूल्य रु. २-२५

नन्हें मुझे
प्यार चाहते, प्यार मिले तो बढ़ते जाते



प्यार का उपहार
पारले ग्लूको-
स्वाद में निराले
शक्ति से भरपूर

दूध, गेहूं, शक्कर और ग्लूकोज के
स्वाद और पौष्टिक गुणों से भरपूर

पारले
ग्लूको

भारत के सबसे ज़रूरी विक्रेता बिस्किट

वर्ल्ड सिलेक्शन
पारितोषिक विजेता



मुमुक्षु भवन वेद वेदाङ्ग पुस्तकालय
 वा. रा. ग. पी.
 दत्तांक... २६१८
 दिनांक...

मुमुक्षु भवन वेद वेदाङ्ग पुस्तकालय
 वा. रा. ग. पी.
 दत्तांक... २५३६
 दिनांक...

